dation Chennai and eGangotri

MADHURI HINDI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGa



Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111019

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय



R
८०
मा२६मा
२७०१

विषय संख्या
पुस्तक संख्या 66900
आगत पंजिका संख्या 668900

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11-12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
८०
मा२६मा
ख०१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

खंड १] श्रावण, ३०० तुलसी-संवत [संख्या १ ; पूर्ण संख्या १३

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी





111019

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥) इस संख्या का मूल्य १)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

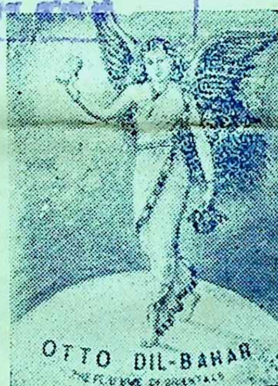
सुंदर गुच्छेदार चमकीले बाल



कामिनिया ऑइल

हरएक स्त्री की शोभा बढ़ाकर, उसकी क़ुदरती सुंदरता को दुगुना बढ़ाता है। क्या आप ऐसा नहीं चाहते कि अपने और अपनी स्त्री तथा बच्चों के बाल घने, लंबे, काले, चमकीले और रेशम के तुल्य मुलायम हों? यदि चाहते हों, तो दुनिया में मशहूर रजिस्टर्ड "कामिनिया ऑइल" का व्यवहार करें। 'कामिनिया ऑइल' एक सच्चा वनस्पति-मिश्रित सुगंधित द्रव्यों से बनाया हुआ नुमाइशी सुगंधित तेल है। दाम प्रति-शीशी १) रु०। डाक-म० ।=), ३ शीशी २॥=) डा०-म० ॥)

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)



ओटो दिलबहार को सेंट कहो, चाहे इत्र कहो। क्योंकि इसमें स्पिरिट का नाम तक नहीं है। इस "ओटो दिलबहार सेंट" का कपड़े पर दाग़ नहीं पड़ता। यह सेंट कई क़िस्म के नए-नए फूलों के अर्क़ से बनाया गया है। इसके दो या चार बूँद कपड़े पर डालने से कपड़े का सुगंध कई दिन तक क़ायम रहता है।

दाम छोटी शीशी ॥), मँझली ॥।), आध औंस २) डा०-म० अलग।

नमूना देखना हो, तो पहले "ओटो दिलबहार का सुगंधित कार्ड" एक आने का टिकट भेजकर मँगाइए।

सोल एजेंट्स—

दि ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी,
१५५, जुम्मामसजिद—बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची

हिंदी-साहित्य में एक अनूठा रत्न

ज्ञानोदय-ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प

कालिदास और शेक्सपियर

साहित्य-संसार में भला ऐसा कौन होगा, जिसने कालिदास और शेक्सपियर का नाम न सुना हो। कौन ऐसा साहित्य-सेवी होगा, जो इनकी सुमधुर और चमत्कारिणी लेखनी से प्रभावित न हुआ हो। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं दोनों कवि-सम्राटों की प्रतिभाओं का दिग्दर्शन कराया गया है। यदि आपको प्राच्य और पाश्चात्य प्रतिभाओं का कौतुक देखना है, यदि आप प्रकृति के सौंदर्य का पूर्ण रस-स्वादन करना चाहते हैं, यदि आप मनुष्य-प्रकृति से पूर्णतया परिचित होना चाहते हैं, यदि आप अंतर्जगत् और बहिर्जगत् का समुचित ज्ञान संपादन करना चाहते हैं, यदि आप इन दोनों कवि-कुल-गुरुओं के भाव, भाषा और काव्य के संबंध में कुछ भी जानने की इच्छा रखते हैं और यदि आप इनकी आनंदोत्पादिनी तथा चमत्कारिणी उक्तियों तथा युक्तियों से लाभ उठाना चाहते हैं, तो शीघ्र लौटती डॉक से आर्डर भेजिए। मूल्य २)

नोट—"श्रीयुत रामदासजी गौड़ एम्० ए०, श्रीयुत पं० कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए० एल्-एल्० बी० प्रभृति लोगों ने इस पुस्तक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।"

आलम-केलि—(खंड-काव्य) सुप्रसिद्ध आलम और शेख़ का यह वही ग्रंथ है, जिसके लिये सवा दो सौ वर्ष से काव्य-रसिक लालायित हो रहे थे। यदि आपको काव्य से कुछ भी प्रेम है और कविता-कानन की सैर करना चाहते हैं, तो आप ला० भगवानदीन द्वारा संपादित इस आलम-केलि को अवश्य मँगाइए। टिप्पणी देने से ग्रंथ और भी सुगम और सरल हो गया है। दाम भी केवल १) है।

पता:—ज्ञानोदय-ग्रंथमाला कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्भुत आविष्कार ! अद्भुत आविष्कार ! !

श्रीकाशी-धाम के जगद्विख्यात काशी सुर्ती, ज़र्दा, जाफ़रानी पत्ती और पान-मसाला इत्यादि के प्रस्तुतकारक तथा विक्रेता

बदलराम लक्ष्मीनारायण का नया आविष्कार किया हुआ बदलराम मारका

पान-विलास

बदलराम लक्ष्मीनारायण का परिचय आप भली भाँति उनके बनाए हुए काशी सुर्ती, ज़र्दा इत्यादि नाना प्रकार के पदार्थों से पा चुके हैं। वे जिस परिश्रम तथा वैज्ञानिक रीति से सुर्ती, ज़र्दा तैयार करके सर्व-साधारण में यशस्वी हुए हैं, उसको पुनः उल्लेख करना हम निष्प्रयोजन समझते हैं। उन्होंने ही आज फिर सर्व-साधारण का अभाव दूर करने के लिये विलासिता की सामग्री 'पान-विलास' की गोलियों का अद्भुत आविष्कार किया है।

यह गोलियाँ ऐसी वैज्ञानिक रीति से बनाई गई हैं कि जिसको आज तक कोई नहीं बना सका। परीक्षा प्रार्थनीय है।

मूल्य छोटी शीशी ~) आना, बड़ी ।~) आना, मझली ~) आना।

सुवर्ण-पदक प्राप्त

पता—बदलराम लक्ष्मीनारायण बनारस सिटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरों पर विजय प्राप्त करो

सिद्धि सर्वमोहन गोलियों के द्वारा बिना किसी के जाने हुए दूसरों की इच्छा और विश्वास पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ये गोलियाँ गुप्त हिंदू-शास्त्रों के अनुसार जीवन को खतरे में डालकर तैयार की गई हैं। तीन तरह की तैयार हैं—(१) मस्तक, नाक, गाल, ठुड्डी या कमीज़-कुरते पर तिलक या अन्य कोई ऐसे ही चिह्न से व्यवहार करने वाली; (२) सुरमा या आँजन की भाँति आँखों में लगाने वाली और (३) पान या भोजन के साथ खिलाने वाली। इस गुप्त और अद्भुत तैयारी को सभी जानते हैं। बहुत-से भाग्यवान् लोग—मर्द और स्त्रियाँ अपने भिन्न-भिन्न अभिप्रायों से जैसे नियुक्ति, उन्नति, अभ्यास, व्यापार, अदालती कार्य, प्रेम, स्नेह सामाजिक उन्नति आदि और जीवन के प्रत्येक दिन के आनंद के लिये सफलता के साथ व्यवहार करते हैं। अपने मुख अपनी प्रशंसा करने से कोई बड़ाई नहीं होती। बुद्धिमान् के लिये एक शब्द काफ़ी है। इसकी परीक्षा करो और तुम आश्चर्य के साथ विश्वास करोगे। किसी क़ीमत पर भी सस्ती हैं। प्रत्येक तरह की प्रत्येक गोली का मूल्य १०) दश रुपया (विदेश के लिये २१ शिलिंग)। चौथाई, आधा या एक दर्जन किसी क़िस्म की गोलियों का मूल्य यथाक्रम ३०), ३५) और १००) है। विदेश के लिये यथाक्रम ३, ४½ और १० गिन्नियाँ हैं। मूल्य पेशगी भेजना चाहिए।

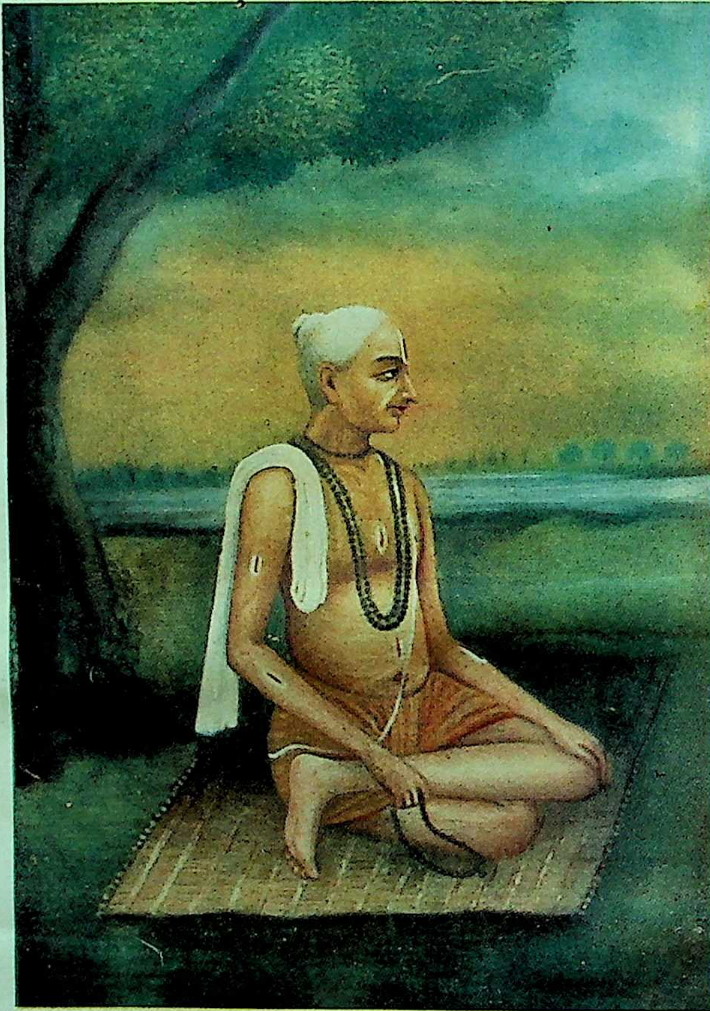
ब्रह्मर्षि श्रीशंकराचार्य महाराज, डिपार्टमेंट एम्० एल्० सिद्धाश्रम,
फ़तेहपुर सीकरी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महाकवि तुलसीदासजी

[काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की कृपा से]

जंगम तुलसी-तरु लसै आनँद-कानन-खेत ;
जाकी कविता-मंजरी, राम-भँवर रस लेत ।

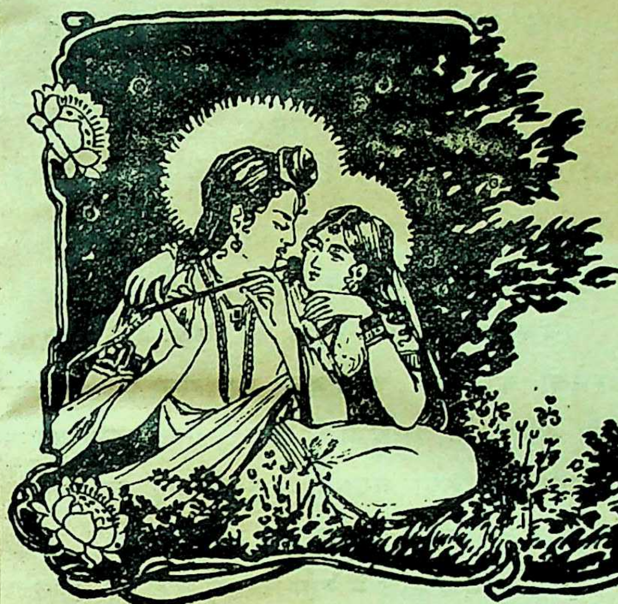
(हिंदी-नवरत्न)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तुलसी-संख्या

66900

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



माधुरी

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र, मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रस-मयी अनन्य !

वर्ष २ खंड १	श्रावण-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८० वि०)— १८ अगस्त, १९२३ ई०	संख्या १ पूर्ण संख्या १३

तुलसीदास की कविता

साधन की सिद्धि, ऋद्धि सगुन-अराधन की,
सुभग समृद्धि-वृद्धि सुकृत-कमाई की ;
कहै 'रतनाकर' सुजस-फल कामधेनु,
ललित लुनाई राम-रस-रुचिराई की।
सब्दनि की बारी, चित्रसारी भूरि भावनि की,
सरबस-सार सारदा की निपुनाई की ;
दास तुलसी की नीकी कबिता उदार, चारु,
जीवन-अधार औ' सिंगार कबिताई की।

जगन्नाथदास (रत्नाकर)

तुलसी-कृत रामायण का भूगोल



रामायण में भौगोलिक नाम ५० से अधिक नहीं हैं। कुछ नाम बार-बार आते हैं। अवध या उसके पर्याय-वाची अवध-पुर, अवध-पुरी, अयोध्या, कोशल, कोशला, कोशल-पुर, कोशल-पुरी, राम-पुर, राम-पुरी या दशरथ-पुर, ये नाम १०० से अधिक बार आए हैं। अकेले अयोध्या-कांड में अवध का नाम ५४ बार आया है। सुरसरि और उसके पर्याय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाची सुर-सरिता, देव-सरि, देव-धुनी, विबुध-नदी और गंग या गंगा का नाम ५० बार से अधिक मिलता है। ३५ बार लंका, २६ बार हिम-गिरि, २३ बार प्रयाग, १८ बार चित्रकूट, १६ बार सरयू, ११ बार यमुना, १० बार कैलास, ८ बार मिथिला, ७ बार काशी और त्रिवेणी, ६ बार दंडक और पंचवटी, ५ बार शृंगवेर-पुर या सिंगरौर ४ बार मंदाकिनी, विंध्याचल और गोदावरी, ३ बार तमसा, गोमती, प्रवर्षण-गिरि, त्रिकूट-गिरि और अशोक-वन, और २ बार से कम कर्मनाशा, मेकल-सुता, सई, नील-गिरि, सेतु-बंध और सुबेल के नाम नहीं आए। प्रसंगानुसार नंदि-ग्राम, बदरी-वन, नैमिष, केकय-देश मग, मरु-देश, मालव, उज्जैन, सोन-नद, मानस, पंपा-सरोवर, ऋष्यमूक, रामेश्वर आदि का नाम भी कम-से-कम एक बार तो आ ही गया है। कहीं-कहीं पौराणिक भूगोल के भी नाम आ गए हैं; जैसे सुमेरु, सरस्वती, सप्तद्वीप, भोगवती, अमरावती, मंदर, मैनाक, आदि। कई स्थलों में राजों आदि के नाम भौगोलिक नामों पर से बतलाए गए हैं; जैसे अवधेश, अवध-पति, अवध-नृपति, अवध-राज, अवध-नाथ, कोशलेश, कोशलेंद्र, कोशल-भूप, कोशल-धनी, कोशल-पति, कोशल-राय, कोशल-राउ, कोशल-राज, कोशला-नाथ, कोशला-मंडन, और कोशलाधीश। लंका-कांड में तो कोशलाधीश की भरमार है। इसी प्रकार जनक के नाम मिथिलेश, मिथिला-धनी, मिथिला-पति, तिरहुति-राउ, विदेह, और उनकी लड़की का नाम मैथिली, वैदेही आदि से कई स्थलों में सूचित किया गया है। रावण के लिये लंका-पति, लंकेश आदि का प्रयोग किया गया है।

राम-वनवास के संबंध में जितने भौगोलिक नाम चाहिए, उतने तो नहीं हैं, फिर भी कुछ मुख्य-मुख्य स्थानों के नाम आ ही गए हैं। अवध के निकट-स्थ स्थानों के नाम कुछ विशेष हैं; परंतु ज्यों-ज्यों वहाँ से फ़ासला बढ़ता गया है त्यों-त्यों स्थलों के नाम न्यून होते गए हैं। राम-प्रवास के तीन अड्डे मुख्य हैं; चित्रकूट, पंचवटी और प्रवर्षण-गिरि। पहले अड्डे तक तो सई-सरीखी सड़ी * नदी पार करने का भी उल्लेख है।

चित्रकूट के आगे बहुत ही बड़े भौगोलिक स्थलों का नाम कहीं-कहीं आ गया है; नहीं तो मुनियों के आश्रमों से राम-भ्रमण के पते का इंगित-भर किया गया है। दूसरे अड्डे से लंका पहुँचने तक बहुत ही कम नाम लिखे गए हैं।

यद्यपि बाल-कांड में राम-विवाह तक का वर्णन है, तथापि उसमें प्रायः सभी स्थानों के नाम आ गए हैं; क्योंकि आदि में तुलसीदास ने कथा-प्रसंग से रामायण का सार ही वर्णन कर दिया है। सबसे मुख्य स्थान अयोध्या है; जहाँ राम का जन्म हुआ। अयोध्या इसी नाम से अब भी वर्तमान है, यद्यपि उसका विस्तार बहुत छोटा हो गया है और वहाँ अब कोई ऐसे चिह्न विद्यमान नहीं हैं, जो राम के समय के हों। जन्म-स्थान पर एक चबूतरा बना है। रामायण में अवध-शब्द का बहुत उपयोग किया गया है। अयोध्या-शब्द केवल उत्तर-कांड में एक बार ही उपयोग में लाया गया है। किष्किंधा-कांड को छोड़कर कोई कांड ऐसा नहीं, जिसमें अवध का नाम किसी रूप में न आया हो। किष्किंधा में भी कोशलेश-शब्द आया है; जो राम की जन्म-भूमि का स्मरण कराता है। राम का विवाह मिथिला में हुआ, इसलिये उसका ज़िक्र बाल-कांड में कई

* संभव है, सई-नदी का पाट उस समय बहुत बड़ा रहा हो; अब कम हो गया है।—संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार मिथिला, विदेह-नगर, विदेह-पुर, जनक-पुर और तिरहुत के रूप में किया गया है। इसकी स्थिति नैपाल की तराई में बतलाई जाती है। लोग वहाँ तीर्थ-यात्रा को जाया करते हैं।

बाल-कांड में जिन दो-चार देशों के नाम आए हैं, वे गुण-अवगुण दिखलाने के लिये लिखे गए हैं, न कि भौगोलिक संबंध से; यथा— 'काशी-मग सुरसरि, कर्मनासा; मरु, मालव, महिदेव गवासा।' अयोध्या-कांड में भी "कर्मनास जल सुरसरि परई; तेहि को कहहु, सीस नहिं धरई।" जैसे गंगा तारनेवाली और कर्मनाशा-नदी कर्म का नाश करनेवाली है, वैसे ही काशी मोक्ष देती है। और, "मगहर मरै, सो गदहा होई।" यदि मग का अर्थ मगध है, तो वह भी कुदेश का सूचक है। प्राचीन काल में कर्म-निष्ठ आर्य कर्मनाशा को पार कर मगध में नहीं जाते थे। कर्मनाशा-नदी कैमोर-पर्वत से निकलकर चौसा के पास गंगा में मिली है। राजपूताने का मरु-स्थल और उसी से लगा हुआ मालवा-देश, ये ऊसर और उपजाऊ की सीमा दिखाते हैं। ऐसे ही उपमाओं के प्रसंग में नर्मदा और सोन का नाम आ गया है। तुलसीदास लिखते हैं— राम-कथा शिव को 'मेकलशैल-सुता-सी' प्रिय है। अयोध्या-कांड में बड़ी नदियों के संबंध से 'मेकल-सुता' का नाम लिया गया है—"सुरसरि, सरस्वति, दिनकर-कन्या; मेकल-सुता, गोदावरि धन्या। सब सर, सिंधु, नदी, नद नाना, मंदाकिनि कर करहिं बखाना।" ऐसे ही सरयू की प्रशंसा में सोन का नाम आ गया है—"राम, भक्ति-सुरसरि तहिं जाई; मिली सुकीरति-सरजु सुहाई। सानुज राम-समर-यश पावन; मिलेउ महानद सोन सुहावन।" नर्मदा और सोन, दोनों अमरकंटक से निकली हैं, और एक खंभात की खाड़ी में तथा दूसरी गंगा में जा मिली है। सोन पुरुष-वाची महानद कहलाता है। वह नर्मदा से विवाह करना चाहता था; परंतु नर्मदा की अप्रसन्नता हो जाने से संबंध न हो सका। रामावतार का हेतु वर्णन करते समय 'तीरथवर नैमिष विख्याता' का नाम भी आ गया है; जहाँ स्वायंभुव मनु तप करने के लिये 'पहुँचे जाइ धेनु-मति-तीरा।' नैमिषारण्य, अवध में, सीतापुर से २० मील, गोमती के बाएँ किनारे पर, है। अब इसको नीमखार या नेमसार कहते हैं। इस क्षेत्र में धेनु-मती, अर्थात् गोमती-नदी, में स्नान करने से सब पापों का क्षय हो जाता है, ऐसा पुराणों में लिखा है। रामावतार-वर्णन के सिलसिले ही में प्रताप-भानु का ज़िक्र आता है। यह केकय-देश का राजा था। केकय-देश कश्मीर-राज्य में है। उसका वर्तमान नाम कक्का है।

अयोध्या के उत्तरीय अंचल-स्थ चार और स्थानों के नाम आते हैं—हिम-गिरि, कैलास, बदरी-वन और मान-सरोवर। हिम-गिरि, हिम-भूधर, हिमाचल, हिमवंत, हिमवान्, तुषाराद्रि, तुहिन-गिरि, गिरीश, गिरि-पति, गिरि-राई, गिरि-राऊ, शैल-राज आदि हिमालय के नाम हैं। उसका ज़िक्र पार्वती के पिता के रूप में अनेक बार किया गया है। कैलास या शिव-शैल इसी पर्वत की एक चोटी है, और बदरीवन वर्तमान बदरीनाथ हैं। मान-सरोवर हिमालय-श्रेणी ही में प्रख्यात झील है। मालवे की प्रख्यात उज्जयिनी का नाम कागभुशुंड के भ्रमण में, न कि राम-चरित के संबंध में, आया है। इन स्थानों का निबटारा होने से अब केवल वे ही स्थान बच रहते हैं, जो राम-वनवास के समय राम के मार्ग में पड़े, या प्रवास के संबंध से उनकी चर्चा उठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम अवध से चित्रकूट तक जिस मार्ग से गए, उसके विषय में मत-भेद नहीं है। अवध से चलकर 'तमसा-तीर निवास किय प्रथम दिवस रघुनाथ।' तमसा या टौंस एक छोटी-सी नदी है; जो अयोध्या के पश्चिम से निकलकर बलिया के पास गंगा में मिली है। दूसरा मुक़ाम गंगा के किनारे शृंगवेरपुर (वर्तमान सिंगरौर) में हुआ। तीसरा मुक़ाम एक वट-वृक्ष के नीचे, और चौथा मुक़ाम तीर्थराज प्रयाग में हुआ। वहाँ से चलकर पाँचवाँ मुक़ाम शायद यमुना के किनारे और छठा वाल्मीकि के आश्रम में हुआ। परंतु वहाँ ठहरने का कुछ पता नहीं लगता। वाल्मीकि ने उन्हें चित्रकूट में वास करने का उपदेश दिया। यदि आश्रम में रात-भर ठहर गए होंगे, तो वह सातवें मुक़ाम में चित्रकूट पहुँचे होंगे।

राम ने पहले मंदाकिनी में स्नान किया; जो एक छोटी-सी नदी है, और चित्रकूट के तले पयोष्णी में मिल गई है। चित्रकूट बाँदा-ज़िले में, प्रयाग (इलाहाबाद) से ७१ मील दूर है। इस प्रकार यदि चित्रकूट में सातवाँ मुक़ाम हुआ हो, तो प्रायः २०-२५ मील नित्य चलना पड़ा होगा। चित्रकूट में भरत आकर मिले। वह ६ मुक़ाम करके वहाँ पहुँचे। उनका प्रथम दिवस तमसा-तट पर, और दूसरे दिन गोमती के तीर पर निवास हुआ। तीसरे दिन सई-नदी के किनारे डेरा पड़ा। यह नदी गोमती और गंगा के बीच में पड़ती है, और जौनपुर के निकट गोमती में मिल गई है। चौथे दिन गंगा के किनारे शृंगवेरपुर में ठहरे। पाँचवें दिन प्रयाग में प्रवेश किया, और त्रिवेणी में स्नान करके भरद्वाज के अतिथि बने। वहाँ से चलकर छठा मुक़ाम किसी अज्ञात जगह में हुआ। फिर सातवाँ मुक़ाम यमुना के किनारे हुआ। इसके पीछे आठवाँ और नवाँ मुक़ाम बीच में करके दसवें में चित्रकूट पहुँचना ज्ञात होता है। जान पड़ता है, लौटने पर भरत बड़ी फ़ुर्ती से गए; चार ही मुक़ाम में अयोध्या पहुँच गए और निकट-स्थ नंदिग्राम में रहना निश्चित किया। रामायण में चित्रकूट को कामद और राम-गिरि कहा है। पिछली पदवी से बड़ा झगड़ा उत्पन्न हो गया है; क्योंकि किसी-किसी टीकाकार ने उसे कालिदास के मेघदूत का राम-गिरि मान लिया है। कालिदास ने राम-गिरि में 'जनकतनया-स्नान-पुण्योदकों' का अस्तित्व बतलाया है; जिससे जान पड़ता है, राम वहाँ कुछ काल तक ठहरे रहे होंगे। चित्रकूट में वह बहुत समय तक ठहरे थे, इसलिये उसको राम-गिरि ठहराने में बड़ी सरलता पड़ती है। परंतु ऐसा करने से मेघदूत में बतलाए हुए राम-गिरि के उत्तर-दिशा के कई स्थान पीछे रह जाते हैं। खोज करने से प्रायः निश्चित हो चुका है कि कालिदास-वर्णित राम-गिरि मध्य-प्रदेश के नागपुर-ज़िले का रामटेक है *। वहीं अगस्त्य का आश्रम था। वहाँ भी राम कुछ दिन ठहरे थे। मेघदूत के झगड़े से एक लाभ यह अवश्य हुआ कि चित्रकूट और पंचवटी के बीच राम-निवास का एक और अड्डा मिल गया। चित्रकूट और रामटेक के बीच के स्थानों के नाम रामायण में नहीं मिलते। केवल कुछ थोड़े-से आश्रमों के नाम लिखे हैं। यथा—चित्रकूट से कूचकर वह अत्रि के आश्रम को गए, और वहाँ से शरभंग ऋषि के आश्रम को। पश्चात् सुतीक्ष्ण के और फिर अगस्त्य के आश्रम में पहुँचे। इन सबका ज़िक्र आरण्य-कांड में है। चित्रकूट

* देखो 'हितकारिणी'-पत्रिका, भाग ५, संख्या ६, पृष्ठ २२६-२३६, और भाग ६, संख्या ११, पृष्ठ ४५०-४५२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ने पर राम ने अरण्य में प्रवेश किया था। विंध्याचल से गोदावरी-नदी तक दंडक-वन का विस्तार था।

ऊपर लिख आए हैं कि अगस्त्याश्रम का सदर-स्थान रामटेक था। वह चित्रकूट से तीन सौ मील से अधिक दूर है। इस विस्तीर्ण स्थल में, जान पड़ता है, दो ही मुनियों के मुख्य आश्रम थे—अत्रि और शरभंग के। रामटेक से पंचवटी भी ३०० मील दूर पड़ती है। इसके बीच में किसी बड़े मुनि का आश्रम नहीं था। यहाँ पर सघन जंगल अब तक है। निवासी विशेषकर गोंड़ हैं; जो लगभग पचास वर्ष पूर्व तक किसी जगह बिलकुल नंगे रहते थे। अगस्त्याश्रम को छोड़कर राम पंचवटी ही में रमे। कई लोग नासिक को पंचवटी बतलाते हैं। परंतु यह भ्रम है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि पंचवटी बस्तर-रजवाड़े के दक्षिणी छोर पर, गोदावरी के किनारे, है। उस गाँव का नाम अभी तक पर्णशाला चला आता है। जिस स्थान से सीता-हरण हुआ था, वहाँ पर एक पत्थर है; जिसमें सीताजी के दो छोटे-छोटे पैर और रावण का एक बड़ा भारी पैर बना है।

सीता-हरण होने के पश्चात् पंपा-सरोवर का नाम आता है। यह स्थान भी पंचवटी से ३०० मील से कम नहीं है। पंपा-सरोवर निज़ाम के राज्य में, दक्षिणी छोर पर, अनगुंडी-गाँव के निकट है। वहाँ तुंगभद्रा का किनारा है। उस पार विजयनगर की उजाड़ बस्ती है। वहीं पर प्रवर्षण-गिरि है; जहाँ एक चट्टान पर राम का मंदिर बना है। पंपा से लगा हुआ ऋष्यमूक-पर्वत है। ये सब स्थान किष्किंधा में हैं। यहाँ पर राम ने अपनी सेना सजाई; फिर चलकर समुद्र के किनारे सेतु बाँधा, और रामेश्वर की स्थापना की। यहीं चार धामों में दक्षिण का धाम 'रामेश्वरम्' है। रामेश्वरम् से १२ मील पर धनुष्कोटि है। अब वहाँ से लंका को रेल बन गई है। जान पड़ता है, राम के सेतु ही की सीध में यह बनाई गई है। इस मार्ग से समुद्र केवल ४० ही मील पड़ता है। राम की सेना सुवेल-पर्वत पर ठहरी थी। इस पर्वत का पता कहीं नहीं लगता। न रावण की राजधानी का पता है। अलबत्ते अशोक-वन 'नुवरा-एलिया' में बतलाया जाता है। यदि यह राजधानी के निकट था, तो राम की सेना को 'जैफना' के पास उतरकर स्थल-मार्ग से, वहाँ पहुँचने को, २०० मील के ऊपर चलना पड़ा होगा। इस स्थान के निकट 'पिदुरू-तला-गला'-नामक लंका का सबसे ऊँचा पर्वत है। उसकी उँचाई मदरास के नील-गिरि के बराबर है। इसके निकट दो और बड़ी चोटियाँ हैं। शायद इसी पर्वत-श्रेणी का प्राचीन नाम त्रिकूट रहा हो। लंका की स्थिति त्रिकूट-गिरि पर बतलाई गई है। फ़ौजों के छिपाने के लिये तो शायद विरला ही स्थान इससे अच्छा और सुबीते का निकलेगा। क्या आश्चर्य, जो यह दुर्गम स्थान दुर्ग के काम में लाया जाता रहा हो!

रामायण में सिंहल की राजधानी लंका या हाटकपुर बतलाई गई है। परंतु लंका नाम का कोई नगर नहीं है, और हाटकपुर सुवर्ण-भूमि का अनुवाद है। वह कोई विशेष नाम नहीं था। यथार्थ में लंका का अर्थ दक्षिणी भाषाओं में द्वीप होता है। जान पड़ता है, उत्तरीय लोग जाति-गत संज्ञा को व्यक्ति-गत नाम समझ गए। परंतु केवल एक बात से लंका के विशेष नाम होने का संकेत मिलता है। वह यह है कि अनुराधपुर में एक बौद्ध स्तूप है; जिसका नाम लंकाराम है। परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अशोक के समय के आगे का नहीं हो सकता। उस समय लंका-शब्द व्यक्ति-सूचक हो चुका था। इस सिंहल-द्वीप में 'पोलन-नरुआ'-नामक प्राचीन पुर है; जो पौलस्त्य-नगर का अपभ्रंश जान पड़ता है। इसके विषय में इतना तो निश्चय है कि यह चतुर्थ शताब्दी से १३वीं शताब्दी तक सिंहल-द्वीप के राजों की राजधानी रहा है। राजा परिक्रमबाहु की विशाल मूर्ति और अनेक प्राचीन खँड़हर अब तक वहाँ मौजूद हैं। ये मीलों तक फैले हुए हैं। इनमें बहुत-से वैष्णव-धर्म-संबंधी मंदिर हैं। विभीषण राम का भक्त था। यदि हिंदू-धर्म का प्रचार लंका में किया गया हो, तो उसका आरंभ विभीषण की राजधानी ही से उचित और संभव जान पड़ता है। इन सब बातों से उसके रावण की राजधानी होने की संभावना अन्य स्थानों से अधिक जान पड़ती है। 'पोलन-नरुआ' 'नुवरा-एलिया' से प्रायः ६० मील दूर है। कदाचित् यह कहा जाय कि रामायण के वर्णन से जान पड़ता है कि अशोक-वन राजधानी के निकट था, तो संभव है कि पोलन-नरुआ के पास भी अशोक-वन रहा हो। अभी तक वहाँ अत्यंत सघन जंगल लगा है। अशोक-वन का नाम अशोक-वृक्षों की बहुतायत के कारण रक्खा हुआ जान पड़ता है। ६० मील के अंदर कई अशोक-वन हो सकते हैं; परंतु यदि नुवरा-एलिया का अशोक-वन ही सीता-निवास माना जाय, तो भी पोलन-नरुआ के राजधानी होने में कोई बात असंगत नहीं देख पड़ती। रावण की नीयत ख़राब नहीं थी, इसलिये सीता को दूर रखने में कुछ बाधा नहीं होती। यथार्थ में उनके लिये दुर्गम स्थान ही योग्य था; जहाँ कड़ा पहरा रहने के कारण बंदी को भागने या भगाने का अवसर नहीं मिल सकता था। यदि पोलन-नरुआ राजधानी रही हो, तो सुबेल-पर्वत निकट ही रहा होगा। तीन-चार मील पर एक पर्वत-श्रेणी है; जिसका सिरा जैफना और पोलन-नरुआ के बीच पड़ता है। यह मर्म-सूचक गिरि-तल्ला-नामक झील के पास है। बहुत करके इसी के निकट-स्थ गिरि का प्राचीन नाम सुबेल रहा होगा; जिस पर राम की सेना जाकर ठहरी थी। समुद्र-तट से यहाँ तक पहुँचने के लिये राम-सेना को प्रायः पौने दो सौ मील चलना पड़ा होगा। यदि समुद्र-तट राजधानी से इतनी दूर न होता, तो कदाचित् रावण के पहरुए सेतु बाँधने में बहुत-सी बाधाएँ डालते। वे लोग अपनी राजधानी ही में सोते रह गए और इधर राम की सेना सुबेल पर आ धमकी। यथार्थ बात चाहे जो हो; वर्तमान समय में लंका में पोलन-नरुआ के सिवा ऐसा कोई दूसरा स्थान नहीं देख पड़ता, जो रावण की राजधानी होने का दावा कर सके *।

हीरालाल

---

* सन् १९१५ की 'हित-कारिणी'-पत्रिका की छठी संख्या में, 'कालिदासीय राम-गिरि'-विषयक लेख में, मैंने प्रसंग-वश लिखा था—"लंका में मैंने रावण की राजधानी का पता लगाने का प्रयत्न किया, और कोलंबो के एक बड़े विद्वान् से पूछा भी; परंतु वह उसका पता कुछ भी नहीं बता सके। मैंने उनसे पूछा—'क्या पोलन-नरुआ-शहर तो उसकी राजधानी नहीं थी? क्योंकि कदाचित् वह पुलस्त्य-नगर का सिंहली अपभ्रंश हो।' मेरे उत्तरदाता ने कहा—'संभव है। परंतु यहाँ पर ऐसी कोई दंत-कथा तक नहीं है।'" आज ७।७।२३ को, जब 'तुलसी-कृत रामायण का भूगोल' लिखे तीन मास से अधिक हो गए, मेरी दृष्टि अकस्मात् सन् १८७५ ई० के 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी जरनल' के १५६वें पृष्ठ पर पड़ी। उसमें पुलस्ति-पुर और पोलन-नरुआ का ज़िक्र है; जिससे पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि प्रख्यात बौद्ध-धर्म के मर्म-वेत्ता राइज़ डेविड्स साहब भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभूषण

(१)



आभूषणों की निंदा करना हमारा उद्देश्य नहीं है । हम असहयोग का उत्पीड़न सह सकते हैं ; पर ललनाओं के निर्दय, घातक वाक्य-बाणों को नहीं झेल सकते । तो भी इतना अवश्य कहेंगे कि इस तृष्णा की पूर्ति के लिये जितना त्याग किया जाता है, उसका सदुपयोग करने से महान् पद प्राप्त हो सकता है ।

यद्यपि हमने किसी रूप-हीना महिला को आभूषणों की सजावट से रूपवती होते नहीं देखा, तथापि हम यह भी माने लेते हैं कि रूप के लिये आभूषणों की उतनी ही ज़रूरत है, जितनी घर के लिये दीपक की । किंतु शारीरिक शोभा के लिये हम मन को कितना मलिन, चित्त को कितना अशांत, और आत्मा को कितना कलुषित बना लेते हैं, इसका हमें कदाचित् ज्ञान ही नहीं होता । इस दीपक की ज्योति में आँखें धुँधली हो जाती हैं । यह चमक-दमक कितनी ईर्षा, कितने द्वेष, कितनी प्रतिस्पर्धा, कितनी दुश्चिंता और कितनी दुराशा का कारण है, इसकी केवल कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं ! इन्हें भूषण नहीं, दूषण कहना अधिक उपयुक्त है । नहीं तो यह कब हो सकता था कि कोई नव-वधू, पति के घर आने के तीसवें ही दिन, अपने पति से कहती कि "मेरे पिता ने तुम्हारे पल्ले बाँधकर मुझे तो कुएँ में ढकेल दिया !"

शीतला आज अपने गाँव के ताल्लुक़ेदार कुँअर सुरेश-सिंह की नव-विवाहिता वधू को देखने गई थी । उसके सामने जाते ही वह मंत्र-मुग्ध-सी हो गई । बहू के रूप-लावण्य पर नहीं, उसके आभूषणों की जगमगाहट पर उसकी टकटकी लगी रही । और, वह जब से लौटकर घर आई, उसकी छाती पर साँप लोटता रहा । अंत को ज्यों ही उसका पति घर आया, वह उस पर बरस पड़ी, और दिल में भरा हुआ ग़ुबार पूर्वोक्त शब्दों में निकल पड़ा ।

शीतला के पति का नाम विमलसिंह था । उनके पुरखे किसी ज़माने में इलाक़ेदार थे । इस गाँव पर भी उन्हीं का सोलहो आने अधिकार था । लेकिन अब इस घर

पोलन-नरुआ को पुलस्ति-नगर का अपभ्रंश समझते थे । पुलस्ति-पुर और पोलन-नरुआ एक ही स्थान में हैं । पुलस्ति-पुर में, जिसे अब तोपावेवा कहते हैं, एक शिला-लेख, सिंहली-भाषा में, मिला है । उसमें पुलस्ति-पुर का उल्लेख है । राइज़ डेविड्स ने लिखा है —"*It should be added that the modern name of Pulastipura is Topaweva, sometimes shortened into Topawa, i.e., Stūpa-vapi ; Tennent's name Pollanarua usually pronounced Pollanarua is simply a mistake for Polan narua, with the accent on shortba, a form perhaps derived from Pulasti-nagara, but only found in the artificial language of modern poetry, and never used by the Singhalese people of the district.*" इस प्रायः अर्द्ध-शताब्दी के अनुमान से, जिसका मुझे आज तक ज्ञान नहीं था, एक नामी विद्वान् के द्वारा मेरे १० वर्ष पूर्व किए हुए अनुमान की पुष्टि होती है, और किसी अंश में यह कहने का अवसर मिलता है कि रावण की राजधानी का पता लग गया । यदि नगर का नाम पुलस्ति-पुर था, तो स्पष्ट है कि वह रावण के पिता के समय में ही बसाया गया होगा । इसीलिये उसका नाम उन मुनि के नाम पर रक्खा गया । और, यदि पोलन-नरुआ पौलस्त्य-नगर का अपभ्रंश है, तो कहा जा सकता है कि अभिमानी रावण ने अपने बाप का नाम गौण कर, उस स्थान का अधिक गुरुत्व बढ़ाकर, अपने नाम के साथ उसको पुर से नगर का महत्त्व दे दिया । परंतु प्राचीन नाम बड़ी कठिनाई से बदलते हैं, इसी कारण दोनों नामों का बना रहना भी असंगत नहीं है ।

यहाँ पर यह भी जता देना उचित जान पड़ता है कि आज ही 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जरनल' उलट-पुलटकर देखते समय, सन् १८९४ ई० के अंक में, पुराण-पारंगत पारगीटर साहब का 'राम-वनवास का भूगोल'-नामक लेख मिल गया । उसमें वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के वन-पर्व के रामोपाख्यान और द्रोण-पर्व के 'षोडश राजिक' में वर्णित भौगोलिक स्थानों के अन्वेषण का प्रयत्न किया गया है । लेख पठनीय और उपयोगी, परंतु बहुत ही कल्पना-पूर्ण है । निश्चय-पूर्वक बिरले ही स्थानों का पता लगाया गया है । ऊपर-लिखे लेख में और पारगीटर के कथन में बहुत-सी विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होंगी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दशा हीन हो गई है। सुरेशसिंह के पिता ज़मींदारी के कामों में दक्ष थे। विमलसिंह का सब इलाक़ा किसी-न-किसी प्रकार से उनके हाथ आ गया। विमल के पास सवारी का टट्टू भी न था; उसे दिन में दो बार भोजन भी मुशकिल से मिलता था। उधर सुरेश के पास हाथी, मोटर और कई घोड़े थे; दस-पाँच बाहर के आदमी नित्य द्वार पर पड़े रहते थे। पर इतनी विषमता होने पर भी दोनों में भाईचारा निभाया जाता था। शादी-ब्याह में, मूँडन-छेदन में परस्पर आना-जाना होता रहता था। सुरेश विद्या-प्रेमी थे। हिंदुस्तान में ऊँची शिक्षा समाप्त करके वह योरप चले गए, और, सब लोगों की शंकाओं के विपरीत, वहाँ से आर्य-सभ्यता के परम भक्त बनकर लौटे। वहाँ के जड़-वाद, कृत्रिम-भोग-लिप्सा और अमानुषिक मदांधता ने उनकी आँखें खोल दी थीं। पहले वह घरवालों के बहुत ज़ोर देने पर भी विवाह करने को राज़ी नहीं हुए थे, लड़की से पूर्व-परिचय हुए विना प्रणय नहीं कर सकते थे। पर योरप से लौटने पर उनके वैवाहिक विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। उन्होंने उसी पहले की कन्या से, विना उसके आचार-विचार जाने हुए, विवाह कर लिया। अब वह विवाह को प्रेम का बंधन नहीं, धर्म का बंधन समझते थे। उसी सौभाग्यवती वधू को देखने के लिये आज शीतला, अपनी सास के साथ, सुरेश के घर गई थी। उसी के आभूषणों की छटा देखकर वह मर्माहत-सी हो गई है।

विमल ने व्यथित होकर कहा—"तो माता-पिता से कहा होता, सुरेश से ब्याह कर देते। वह तुम्हें गहनों से लाद सकते थे।"

शीतला—"तो गाली क्यों देते हो?"

विमल—"गाली नहीं देता, बात कहता हूँ। तुम-जैसी सुंदरी को उन्होंने नाहक़ मेरे साथ ब्याहा।"

शीतला—"लजाते तो हो नहीं, उलटे और ताने देते हो!"

विमल—"भाग्य मेरे वश में नहीं है। इतना पढ़ा भी नहीं हूँ कि कोई बड़ी नौकरी करके रुपए कमाऊँ।"

शीतला—"यह क्यों नहीं कहते कि प्रेम ही नहीं है। प्रेम हो, तो कंचन बरसने लगे।"

विमल—"तुम्हें गहनों से बहुत प्रेम है?"

शीतला—"सभी को होता है। मुझे भी है।"

विमल—"अपने को अभागिनी समझती हो?"

शीतला—"हूँ ही, समझना कैसा? नहीं तो क्या दूसरों को देखकर तरसना पड़ता!"

विमल—'गहने बनवा दूँ, तो अपने को भाग्यवती समझने लगोगी?"

शीतला—(चिढ़कर) "तुम तो इस तरह पूछ रहे हो, जैसे सुनार दरवाज़े पर बैठा है।"

विमल—"नहीं, सच कहता हूँ, बनवा दूँगा। हाँ, कुछ दिन सबर करना पड़ेगा।"

(२)

समर्थ पुरुषों को बात लग जाती है, तो वे प्राण ले लेते हैं। सामर्थ्य-हीन पुरुष अपनी ही जान पर खेल जाता है। विमलसिंह ने घर से निकल जाने की ठानी। निश्चय किया, या तो इसे गहनों से ही लाद दूँगा, या वैधव्य-शोक से। या तो आभूषण ही पहनेगी, या सेंदुर को भी तरसेगी।

दिन-भर वह चिंता में डूबा पड़ा रहा। शीतला को उसने प्रेम से संतुष्ट करना चाहा था। आज अनुभव हुआ कि नारी का हृदय प्रेम-पाश से नहीं बँधता, कांचन के पाश ही से बँध सकता है।

पहर रात जाते-जाते वह घर से चल खड़ा हुआ। पीछे फिरकर भी न देखा। ज्ञान से जागे हुए विराग में चाहे मोह का संस्कार हो, पर नैराश्य से जागा हुआ विराग अचल होता है। प्रकाश में इधर-उधर की वस्तुओं को देखकर मन विचलित हो सकता है; पर अंधकार में किसका साहस है, जो लीक से जौ-भर भी हट सके।

विमल के पास विद्या न थी; कला-कौशल भी न था। उसे केवल अपने कठिन परिश्रम और कठिन आत्म-त्याग ही का आधार था। वह पहले कलकत्ते गया। वहाँ कुछ दिन तक एक सेठ की दरबानी करता रहा। वहाँ जो सुन पाया कि रंगून में मज़दूरी अच्छी मिलती है, तो रंगून जा पहुँचा, और बंदर पर माल चढ़ाने-उतारने का काम करने लगा।

कुछ तो कठिन श्रम, कुछ खाने-पीने के असंयम, और कुछ जल वायु की ख़राबी के कारण वह बीमार हो गया। शरीर दुर्बल हो गया, मुख की कांति जाती रही; फिर भी उससे ज़्यादा मेहनती मज़दूर बंदर पर दूसरा न था। और मज़दूर मज़दूर थे, पर यह मज़दूर तपस्वी था। मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जो कुछ ठान लिया था, उसे पूरा करना ही उसके जीवन का एक-मात्र उद्देश्य था।

उसने घर को अपना कोई समाचार न भेजा। अपने मन से तर्क किया, घर में कौन मेरा हितू है? गहनों के सामने मुझे कौन पूछता है? उसकी बुद्धि यह रहस्य समझने में असमर्थ थी कि आभूषणों की लालसा रहने पर भी प्रणय का पालन किया जा सकता है। और मज़दूर प्रातःकाल सेरों मिठाई खाकर जल-पान करते थे; दिन-भर—दम-दम-भर पर—गाँजे, चरस और तमाखू के दम लगाते थे; अवकाश पाते, तो बाज़ार की सैर करते थे। कितनों ही को शराब का भी शौक़ था। वे पैसों के बदले रुपए कमाते थे, तो पैसों की जगह रुपए ख़र्च भी कर डालते थे। किसी की देह पर साबित कपड़े तक न थे। पर विमल उन गिनती के दो-चार मज़दूरों में था, जो संयम से रहते थे, जिनके जीवन का उद्देश्य खा-पीकर मर जाने के सिवा कुछ और भी था। थोड़े ही दिनों में उसके पास थोड़ी-सी संपत्ति हो गई। धन के साथ और मज़दूरों पर दबाव भी बढ़ने लगा। यह प्रायः सभी जानते थे कि विमल जाति का कुलीन ठाकुर है। सब ठाकुर ही कहकर उसे पुकारते थे। संयम और आचार सम्मान-सिद्धि के मंत्र हैं। विमल मज़दूरों का नेता और महाजन हो गया।

विमल को रंगून में काम करते तीन वर्ष हो चुके थे। संध्या हो गई थी। वह कई मज़दूरों के साथ समुद्र के किनारे बैठा बातें कर रहा था।

एक मज़दूर ने कहा—"यहाँ की सभी स्त्रियाँ निठुर होती हैं। बेचारा झींगुर १० बरस से उस बर्मी स्त्री के साथ रहता था। कोई अपनी ब्याही जोरू से भी इतना प्रेम न करता होगा। उस पर इतना विश्वास करता था कि जो कुछ कमाता, सो उसके हाथ में रख देता। तीन लड़के थे। अभी कल तक दोनों साथ-साथ खाकर लेटे थे। न कोई लड़ाई न झगड़ा, न बात न चीत, रात को औरत न-जाने कब उठी, और न-जाने कहाँ चली गई। लड़कों को छोड़ गई। बेचारा झींगुर बैठा रो रहा है। सबसे बड़ी मुशकिल तो छोटे बच्चे की है। अभी कुल छः महीने का है। कैसे जिएगा, भगवान् ही जानें।"

विमलसिंह ने गंभीर भाव से कहा—"गहने बनवाता था कि नहीं?"

मज़दूर—"रुपए-पैसे तो औरत ही के हाथ में थे। गहने बनवाती, तो उसका हाथ कौन पकड़ता?"

दूसरे मज़दूर ने कहा—"गहनों से तो लदी हुई थी। जिधर से निकल जाती थी, छम-छम की आवाज़ से कान भर जाते थे।"

विमल—"जब गहने बनवाने पर भी निठुराई की, तो यही कहना पड़ेगा कि यह जाति ही बेवफ़ा होती है।"

इतने में एक आदमी आकर विमलसिंह से बोला—"चौधरी, अभी मुझे एक सिपाही मिला था। वह तुम्हारा नाम, गाँव और बाप का नाम पूछ रहा था। कोई बाबू सुरेशसिंह हैं?"

विमल ने सशंक होकर कहा—"हाँ, हैं। मेरे गाँव के इलाक़ेदार और बिरादरी के भाई हैं।"

आदमी—"उन्हीं ने थाने में कोई नोटिस छपवाया है कि जो विमलसिंह का पता लगावेगा, उसे १,०००) का इनाम मिलेगा।"

विमल—"तो तुमने सिपाही को सब ठीक-ठीक बता दिया?"

आदमी—"चौधरी, मैं कोई गँवार हूँ क्या? समझ गया, कुछ दाल में काला है; नहीं तो कोई इतने रुपए क्यों ख़रच करता। मैंने कह दिया कि उनका नाम विमलसिंह नहीं, जसोदा पाँड़े है। बाप का नाम सुक्खू बताया, और घर ज़िला झाँसी में। पूछने लगा, यहाँ कितने दिन से रहता है? मैंने कहा, कोई दस साल से। तब कुछ सोचकर चला गया। सुरेश बाबू से तुमसे कोई अदावत है क्या चौधरी?"

विमल—"अदावत तो नहीं थी, मगर कौन जाने, उनकी नीयत बिगड़ गई हो, मुझ पर कोई अपराध लगाकर मेरी जगह-ज़मीन पर हाथ बढ़ाना चाहते हों। तुमने बड़ा अच्छा किया कि सिपाही को उड़नघाई बताई।"

आदमी—"मुझसे कहता था कि ठीक-ठीक बता दो, तो ५०) तुम्हें भी दिला दूँ। मैंने सोचा—आप तो हज़ार की गठरी मारेगा, और मुझे ५०) दिलाने को कहता है। फटकार बता दी।"

एक मज़दूर—"मगर जो २००) देने को कहता, तो तुम सब ठीक-ठीक नाम-ठिकाना बता देते? क्यों? धत् तेरे लालची की!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी—(लज्जित होकर) "२००) नहीं, २,०००) भी देता, तो न बताता। मुझे ऐसा विश्वास-घात करनेवाला मत समझो। जब जी चाहे, परख लो।

मज़दूरों में यों वाद-विवाद होता ही रहा, विमल आकर अपनी कोठरी में लेट गया। वह सोचने लगा—अब क्या करूँ? जब सुरेश-जैसे सज्जन की नीयत बदल गई, तो अब किसका भरोसा करूँ! नहीं, अब विना घर गए काम नहीं चलेगा। कुछ दिन और न गया, तो फिर कहीं का न रहूँगा। दो साल और रह जाता, तो पास पूरे ४,०००) हो जाते। शीतला की इच्छा कुछ पूरी हो जाती। अभी तो सब मिलाकर ३,०००) ही होंगे। इतने में उसकी अभिलाषा न पूरी होगी। ख़ैर, अभी चलूँ, छः महीने में फिर लौट आऊँगा। अपनी जायदाद तो बच जायगी। नहीं, छः महीने रहने का क्या काम है? जाने-आने में एक महीना लग जायगा। घर में १५ दिन से ज़्यादा न रहूँगा। वहाँ कौन पूछता है, आऊँ या रहूँ, मरूँ या जिऊँ! वहाँ तो गहनों से प्रेम है।

इस तरह मन में निश्चय करके वह दूसरे दिन रंगून से चल पड़ा।

(३)

संसार कहता है, गुण के सामने रूप की कोई हस्ती नहीं। हमारे नीति-शास्त्र के आचार्यों का भी यही कथन है। पर वास्तव में यह कितना भ्रम-मूलक है! कुँअर सुरेशसिंह की नव-वधू मंगलाकुमारी गृह-कार्य में निपुण, पति के इशारे पर प्राण देनेवाली, अत्यंत विचार-शील, मधुर-भाषिणी और धर्म-भीरु थी; पर सौंदर्य-विहीन होने के कारण पति की आँखों में काँटे के समान खटकती थी। सुरेशसिंह बात-बात पर उस पर झुँझलाते, पर घड़ी-भर में पश्चात्ताप के वशीभूत होकर उससे क्षमा माँगते; किंतु दूसरे ही दिन फिर वही कुत्सित व्यापार शुरू हो जाता। विपत्ति यह थी कि उनके आचरण अन्य रईसों की भाँति भ्रष्ट न थे। वह दंपति-जीवन ही में आनंद, सुख, शांति, विश्वास, प्रायः सभी ऐहिक और पारमार्थिक उद्देश्य पूरा करना चाहते थे। और, दांपत्य-सुख से वंचित होकर उन्हें अपना समस्त जीवन नीरस, स्वाद-हीन और कुंठित जान पड़ता था। फल यह हुआ कि मंगला को अपने ऊपर विश्वास न रहा। वह अपने मन से कोई काम करते हुए डरती कि स्वामी नाराज़ होंगे। स्वामी को खुश रखने के लिये अपनी भूलों को छिपाती, बहाने करती, झूठ बोलती। नौकरों को अपराध लगाकर आत्म-रक्षा करना चाहती। पति को प्रसन्न रखने के लिये उसने अपने गुणों की, अपनी आत्मा की, अवहेला की; पर उठने के बदले वह पति की नज़रों से गिरती ही गई। वह नित्य नए शृंगार करती; पर लक्ष्य से दूर होती जाती थी। पति की एक मधुर मुसकान के लिये, उनके अधरों के एक मीठे शब्द के लिये, उसका प्यासा हृदय तड़प-तड़पकर रह जाता था। लावण्य-विहीन स्त्री वह भिक्षुक नहीं है, जो चंगुल-भर आटे से संतुष्ट हो जाय। वह भी पति का संपूर्ण, अखंड प्रेम चाहती है, और कदाचित् सुंदरियों से अधिक; क्योंकि वह इसके लिये असाधारण प्रयत्न और अनुष्ठान करती है। मंगला इस प्रयत्न में निष्फल होकर और भी संतप्त होती थी।

धीरे-धीरे पति पर से उसकी श्रद्धा उठने लगी। उसने तर्क किया कि ऐसे क्रूर, हृदय-शून्य, कल्पना-हीन मनुष्य से मैं भी उसी का-सा व्यवहार करूँगी। जो पुरुष केवल रूप का भक्त है, वह प्रेम, भक्ति के योग्य नहीं। इस प्रत्याघात ने समस्या और भी जटिल कर दी।

मगर मंगला को केवल अपनी रूप-हीनता ही का रोना न था। शीतला का अनुपम रूप-लालित्य भी उसकी कामनाओं का बाधक था। बल्कि यही उसकी आशा-लताओं पर पड़नेवाला तुषार था। मंगला सुंदरी न सही, पर पति पर जान देती थी। जो अपने को चाहे, उससे हम विमुख नहीं हो सकते। प्रेम की शक्ति अपार है। पर शीतला की मूर्ति सुरेश के हृदय-द्वार पर बैठी हुई मंगला को अंदर न जाने देती थी, चाहे वह कितना ही वेष बदलकर आवे। सुरेश इस मूर्ति को हटाने की चेष्टा करते थे, उसे बलात् निकाल देना चाहते थे; किंतु सौंदर्य का आधिपत्य धन के आधिपत्य से कम दुर्निवार नहीं होता। जिस दिन शीतला इस घर में मंगला का मुँह देखने आई थी, उसी दिन सुरेश की आँखों ने उसकी मनोहर छवि की एक झलक देख ली थी। वह एक झलक मानो एक क्षणिक क्रांति थी; जिसने एक ही धावे में समस्त हृदय-राज्य को जीत लिया, उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया।

सुरेश एकांत में बैठे हुए शीतला के चित्र को मंगला से मिलाते, यह निश्चय करने के लिये कि उनमें क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर है ? एक क्यों मन को खींचती है, दूसरी क्यों उसे हटाती है ? पर उनके मन का यह खिंचाव केवल एक चित्रकार या कवि का रसास्वादन-मात्र था। वह पवित्र और वासनाओं से रहित था। वह मूर्ति केवल उनके मनोरंजन की सामग्री-मात्र थी। वह अपने मन को बहुत समझाते, संकल्प करते कि अब मंगला को प्रसन्न रक्खूँगा। यदि वह सुंदरी नहीं है, तो उसका क्या दोष ? पर उनका यह सब प्रयास मंगला के सम्मुख जाते ही विफल हो जाता था। वह बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से मंगला के मन के बदलते हुए भावों को देखते थे; पर एक पक्षाघात-पीड़ित मनुष्य की भाँति घी के घड़े को लुढ़कते देखकर भी रोकने का कोई उपाय न कर सकते थे। परिणाम क्या होगा, यह सोचने का उन्हें साहस ही न होता था। पर जब मंगला ने, अंत को, बात बात में उनकी तीव्र आलोचना करना शुरू कर दिया, वह उनसे उच्छृंखलता का व्यवहार करने लगी, तो उसके प्रति उनका वह उतना सौहार्द भी विलुप्त हो गया। घर में आना-जाना ही छोड़ दिया।

एक दिन संध्या के समय बड़ी गरमी थी। पंखा झलने से आग और भी दहकती थी। कोई सैर करने बग़ीचों में भी न जाता था। पसीने की भाँति शरीर से सारी स्फूर्ति बह गई थी। जो जहाँ था, वहीं मुर्दा-सा पड़ा था। आग से सेंके हुए मृदंग की भाँति लोगों के स्वर कर्कश हो गए थे। साधारण बात-चीत में भी लोग उत्तेजित हो जाते थे, जैसे साधारण संघर्ष से वन के वृक्ष जल उठते हैं। सुरेशसिंह कभी चार क़दम टहलते थे, फिर हाँफकर बैठ जाते थे। नौकरों पर झुँझला रहे थे कि जल्द-जल्द छिड़काव क्यों नहीं करते। सहसा उन्हें अंदर से गाने की आवाज़ सुनाई दी। चौंके, फिर क्रोध आया। मधुर गान कानों को अप्रिय जान पड़ा। यह क्या बेवक़्त की शहनाई है ! यहाँ गरमी के मारे दम निकल रहा है, और इन सबको गाने की सूझी है ! मंगला ने बुलाया होगा, और क्या ! लोग नाहक़ कहते हैं कि स्त्रियों के जीवन का आधार प्रेम है। उनके जीवन का आधार वही भोजन, निद्रा, राग-रंग, आमोद-प्रमोद है, जो समस्त प्राणियों का है। घंटे-भर तो सुन चुका। यह गीत कभी बंद भी होगा या नहीं। सब व्यर्थ में गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रही हैं।

अंत को न रहा गया। ज़नानख़ाने में आकर बोले—"यह तुम लोगों ने क्या काँव-काँव मचा रक्खी है ? यह गाने-बजाने का कौन-सा समय है ? बाहर बैठना मुशकिल हो गया !"

सन्नाटा छा गया। जैसे शोर-गुल मचानेवाले बालकों में मास्टर पहुँच जाय। सभी ने सिर झुका लिए, और सिमट गईं।

मंगला तुरंत उठकर सामनेवाले कमरे में चली गई। पति को बुलाया, और आहिस्ते से बोली—"क्यों इतना बिगड़ रहे हो ?"

"मैं इस वक़्त गाना नहीं सुनना चाहता।"

"तुम्हें सुनाता ही कौन है ? क्या मेरे कानों पर भी तुम्हारा अधिकार है ?"

'फ़ज़ूल की बमचख़—"

"तुमसे मतलब ?"

"मैं अपने घर में यह कोलाहल न मचने दूँगा !"

"तो मेरा घर कहीं और है ?"

सुरेशसिंह इसका उत्तर न देकर बोले—"इन सबसे कह दो, फिर किसी वक़्त आवें।"

मंगला—"इसलिये कि तुम्हें इनका आना अच्छा नहीं लगता ?"

"हाँ, इसीलिये !"

'तुम क्या सदा वही करते हो, जो मुझे अच्छा लगे ? तुम्हारे यहाँ मित्र आते हैं, हँसी-ठट्ठे की आवाज़ अंदर सुनाई देती है। मैं कभी नहीं कहती कि इन लोगों का आना बंद कर दो। तुम मेरे कामों में दस्तंदाज़ी क्यों करते हो ?"

सुरेश ने तेज़ होकर कहा—"इसलिये कि मैं घर का स्वामी हूँ।"

मंगला—"तुम बाहर के स्वामी हो ; यहाँ मेरा अधिकार है।"

सुरेश—"क्यों व्यर्थ की बक-बक करती हो ? मुझे चिढ़ाने से क्या मिलेगा ?"

मंगला ज़रा देर चुप-चाप खड़ी रही। वह पति के मनोगत भावों की मीमांसा कर रही थी। फिर बोली—"अच्छी बात है। अब इस घर में मेरा कोई अधिकार नहीं, तो न रहूँगी। अब तक भ्रम में थी। आज तुमने वह भ्रम मिटा दिया। मेरा इस घर पर अधिकार कभी नहीं था। जिस स्त्री का पति के हृदय पर अधिकार नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका उसकी संपत्ति पर भी कोई अधिकार नहीं हो सकता।"

सुरेश ने लज्जित होकर कहा—"बात का बतंगड़ क्यों बनाती हो! मेरा यह मतलब न था। कुछ-का-कुछ समझ गईं।"

मंगला—"मन की बात आदमी के मुँह से अनायास ही निकल जाती है। सावधान होकर हम अपने भावों को छिपा लेते हैं।"

सुरेश को अपनी असज्जनता पर दुःख तो हुआ, पर इस भय से कि मैं इसे जितना ही मनाऊँगा, उतना ही यह और जली-कटी सुनावेगी, उसे वहीं छोड़कर बाहर चले आए।

प्रातःकाल ठंडी हवा चल रही थी। सुरेश खुमारी में पड़े हुए स्वप्न देख रहे थे कि मंगला सामने से चली जा रही है। चौंक पड़े। देखा, द्वार पर सचमुच मंगला खड़ी है। घर की नौकरानियाँ आँचल से आँखें पोछ रही हैं। कई नौकर आस-पास खड़े हैं। सभी की आँखें सजल और मुख उदास हैं। मानों बहू बिदा हो रही है।

सुरेश समझ गए कि मंगला को कल की बात लग गई। पर उन्होंने उठकर कुछ पूछने की, मनाने की, या समझाने की चेष्टा नहीं की। यह मेरा अपमान कर रही है, मेरा सिर नीचा कर रही है। जहाँ चाहे, जाय। मुझसे कोई मतलब नहीं। यों बिना कुछ पूछे-गछे चले जाने का अर्थ यह है कि मैं इसका कोई नहीं। फिर मैं इसे रोकनेवाला कौन!

वह यों ही जड़वत् पड़े रहे, और मंगला चली गई। उनकी तरफ़ मुँह उठाकर भी न ताका।

(४)

मंगला पाँव-पैदल चली जा रही थी। एक बड़े ताल्लुक़ेदार की औरत के लिये यह मामूली बात न थी। हर किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि उससे कुछ कहे। पुरुष उसकी राह छोड़कर किनारे खड़े हो जाते थे। नारियाँ द्वार पर खड़ी करुण-कौतूहल से देखती थीं, और आँखों से कहती थीं—"हा निर्दयी पुरुष! इतना भी न हो सका कि एक डोली पर बैठा देता।"

इस गाँव से निकलकर मंगला उस गाँव में पहुँची, जहाँ शीतला रहती थी। शीतला सुनते ही द्वार पर आकर खड़ी हो गई, और मंगला से बोली—"बहन, ज़रा आकर दम ले लो।"

मंगला ने अंदर जाकर देखा, तो मकान जगह-जगह से गिरा हुआ था। दालान में एक वृद्धा खाट पर पड़ी थी। चारों ओर दरिद्रता के चिह्न दिखाई देते थे।

शीतला ने पूछा—"यह क्या हुआ?"

मंगला—"जो भाग्य में लिखा था।"

शीतला—"कुँअरजी ने कुछ कहा-सुना क्या?"

मंगला—"मुँह से कुछ न कहने पर भी तो मन की बात छिपी नहीं रहती।"

शीतला—"अरे, तो क्या अब यहाँ तक नौबत आ गई!"

दुःख की अंतिम दशा संकोच-हीन होती है। मंगला ने कहा—"चाहती, तो अब भी पड़ी रहती। उसी घर में जीवन कट जाता। पर जहाँ प्रेम नहीं, पूछ नहीं, मान नहीं, वहाँ अब नहीं रह सकती।"

मंगला—"तुम्हारा मैका कहाँ है?"

शीतला—"मैके कौन मुँह लेकर जाऊँगी?"

मंगला—"तब कहाँ जाओगी?"

शीतला—"ईश्वर के दरबार में। पूछूँगी कि तुमने मुझे सुंदरता क्यों नहीं दी? बदसूरत क्यों बनाया? बहन, स्त्री के लिये इससे अधिक दुर्भाग्य की बात नहीं कि वह रूप-हीन हो। शायद पुरबले जनम की पिशाचिनियाँ ही बदसूरत औरतें होती हैं। रूप से प्रेम मिलता है, और प्रेम से दुर्लभ कोई वस्तु नहीं है।"

यह कहकर मंगला उठ खड़ी हुई। शीतला ने उसे रोका नहीं। सोचा—इसे क्या खिलाऊँगी? आज तो चूल्हा जलने की कोई आशा नहीं।

उसके जाने के बाद वह बहुत देर तक बैठी सोचती रही—मैं कैसी अभागिन हूँ। जिस प्रेम को न पाकर यह बेचारी जीवन को त्याग रही है, उसी प्रेम को मैंने पाँव से ठुकरा दिया! इसे ज़ेवर की क्या कमी थी? क्या ये सारे जड़ाऊ ज़ेवर इसे सुखी रख सके? इसने उन्हें पाँव से ठुकरा दिया। उन्हीं आभूषणों के लिये मैंने अपना सर्वस्व खो दिया। हा! न-जाने वह (विमल सिंह) कहाँ हैं, किस दशा में हैं!

अपनी लालसा को, तृष्णा को, वह कितनी ही बार धिक्कार चुकी थी। शीतला की दशा देखकर आज उसे आभूषणों से घृणा हो गई।

विमल को घर छोड़े दो साल हो गए थे। शीतला को अब उनके बारे में भाँति-भाँति की शंकाएँ होने लगीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। आठों पहर उसके चित्त में ग्लानि और क्षोभ की आग सुलगा करती थी।

दिहात के छोटे-मोटे ज़मींदारों का काम डाँट-डपट, छीन-झपट ही से चला करता है। विमल की खेती बेगार में होती थी। उसके जाने के बाद सारे खेत परती रह गए। कोई जोतनेवाला न मिला। इस ख़याल से साझे पर भी किसी ने न जोता कि बीच में कहीं विमलसिंह आ गए, तो साझेदार को अँगूठा दिखा देंगे। असामियों ने लगान न दिया। शीतला ने महाजन से रुपए उधार लेकर काम चलाया। दूसरे वर्ष भी यही कैफ़ियत रही। अब की महाजन ने रुपए नहीं दिए। शीतला के गहनों के सिर गई। दूसरा साल समाप्त होते-होते घर की सब लेई-पूँजी निकल गई। फ़ाक़े होने लगे। बूढ़ी सास, छोटा देवर, नंद, और आप, चार प्राणियों का ख़र्च था। नात हित भी आते ही रहते थे। उस पर यह और मुसीबत हुई कि मैके में एक फ़ौजदारी हो गई। पिता और बड़ा भाई उसमें फँस गए। दो छोटे भाई, एक बहन, और माता, चार प्राणी और सिर पर आ डटे। गाड़ी पहले ही मुशकिल से चलती थी, अब ज़मीन में धँस गई।

प्रातःकाल से कलह का आरंभ हो जाता। समधिन समधिन से, साले बहनोई से गुथ जाते। कभी तो अन्न के अभाव से भोजन ही न बनता; कभी, भोजन बनने पर भी, गाली-गलौज के कारण खाने की नौबत न आती। लड़के दूसरों के खेतों में जाकर गन्ने और मटर खाते; बूढ़ियाँ दूसरों के घर जाकर अपना दुखड़ा रोतीं, और ठकुर-सोहाती करतीं। पुरुष की अनुपस्थिति में स्त्री के मैकेवालों का प्राधान्य हो जाता है। इस संग्राम में प्रायः विजय-पताका मैकेवालों ही के हाथ रहती है। किसी भाँति घर में नाज आ जाता, तो उसे पीसे कौन! शीतला की मा कहती, चार दिन के लिये आई हूँ, तो क्या चक्की चलाऊँ? सास कहती, खाने की बेर तो बिल्ली की तरह लपकेंगी, पीसते क्यों जान निकलती है? विवश होकर शीतला को अकेले पीसना पड़ता। भोजन के समय वह महाभारत मचता कि पड़ोसवाले तंग आ जाते। शीतला कभी मा के पैरों पड़ती, कभी सास के चरण पकड़ती; लेकिन दोनों ही उसे झिड़क देतीं। मा कहती, तूने यहाँ बुलाकर हमारा पानी उतार लिया। सास कहती, मेरी छाती पर सौत लाकर बैठा दी, अब बातें बनाती है? इस घोर विवाद में शीतला अपना विरह-शोक भूल गई। सारी अमंगल शंकाएँ इस विरोधाग्नि में शांत हो गईं। बस, अब यही चिंता थी कि इस दशा से छुटकारा कैसे हो? मा और सास, दोनों ही का यमराज के सिवा और कोई कहीं ठिकाना न था; पर यमराज उनका स्वागत करने के लिये बहुत उत्सुक नहीं जान पड़ते थे। सैकड़ों उपाय सोचती; पर उस पथिक की भाँति, जो दिन-भर चलकर भी अपने द्वार ही पर खड़ा हो, उसकी सोचने की शक्ति निश्चल हो गई थी। चारों तरफ़ निगाहें दौड़ाती कि कहीं कोई शरण का स्थान है? पर कहीं निगाह न जमती।

एक दिन वह इसी नैराश्य की अवस्था में द्वार पर खड़ी थी। मुसीबत में, चित्त की उद्विग्नता में, इंतज़ार में, द्वार से हमें प्रेम हो जाता है। सहसा उसने बाबू सुरेशसिंह को सामने से घोड़े पर जाते देखा। उनकी आँखें उसकी ओर फिरीं। आँखें मिल गईं। वह झिझककर पीछे हट गई। किवाड़े बंद कर लिए। कुँअर साहब आगे बढ़ गए। शीतला को खेद हुआ कि उन्होंने मुझे देख लिया। मेरे सिर पर सारी फटी हुई थी, चारों तरफ़ उसमें पेबंद लगे हुए थे! वह अपने मन में न-जाने क्या कहते होंगे!

कुँअर साहब को गाँववालों से विमलसिंह के परिवार के कष्टों की ख़बर मिली थी। वह गुप्त रूप से उनकी कुछ सहायता करना चाहते थे। पर शीतला को देखते ही संकोच ने उन्हें ऐसा दबाया कि द्वार पर एक क्षण भी न रुक सके। मंगला के गृह-त्याग के तीन महीने पीछे आज वह पहली बार घर से निकले थे। मारे शर्म के बाहर बैठना छोड़ दिया था।

इसमें संदेह नहीं कि कुँअर साहब मन में शीतला के रूप-रस का आस्वादन करते थे। मंगला के जाने के बाद उनके हृदय में एक विचित्र दुष्कामना जग उठी। क्या किसी उपाय से यह सुंदरी मेरी नहीं हो सकती? विमल का मुद्दत से पता नहीं। बहुत संभव है कि वह अब संसार में न हो। किंतु वह इस दुष्कल्पना को विचार से दबाते रहते थे। शीतला की विपत्ति की कथा सुनकर भी वह उसकी सहायता करते हुए डरते थे। कौन जाने, वासना यही वेष रखकर मेरे विचार और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक पर कुठाराघात करना चाहती हो। अंत को लालसा की कपट-लीला उन्हें भुलावा दे ही गई। वह शीतला के घर उसका हाल-चाल पूछने गए। मन में तर्क किया—यह कितना घोर अन्याय है कि एक अबला ऐसे संकट में हो, और मैं उसकी बात भी न पूछूँ! पर वहाँ से लौटे, तो बुद्धि और विवेक की रस्सियाँ टूट गई थीं, और नौका मोह और वासना के अपार सागर में डुबकियाँ खा रही थी। आह! यह मनोहर छवि! यह अनुपम सौंदर्य!

एक क्षण में उन्मत्तों की भाँति बकने लगे—यह प्राण और यह शरीर तेरी भेंट करता हूँ। संसार हँसेगा, हँसे। महापाप है, हो। कोई चिंता नहीं। इस स्वर्गीय आनंद से मैं अपने को वंचित नहीं कर सकता! वह मुझसे भाग नहीं सकती। इस हृदय को छाती से निकालकर उसके पैरों पर रख दूँगा। विमल? मर गया। नहीं मरा, तो अब मरेगा। पाप क्या है? अगर किसी की स्त्री से प्रेम करना पाप है, तो यह पाप देवतों ने भी किया है। विष्णु और इंद्र की श्रेणी में स्थान पाना छोटी बात नहीं। कमल कितना कोमल, कितना प्रफुल्ल, कितना ललित है। क्या उसके अधरों——

अकस्मात् वह ठिठक गए, जैसे कोई भूली हुई बात याद आ जाय। मनुष्य में बुद्धि के अंतर्गत एक अज्ञात बुद्धि होती है। जैसे रण-क्षेत्र में हिम्मत हारकर भागनेवाले सैनिकों को किसी गुप्त स्थान से आनेवाली कुमक सँभाल लेती है, वैसे ही इस अज्ञात बुद्धि ने सुरेश को सचेत कर दिया। वह सँभल गए। ग्लानि से उनकी आँखें भर आईं। वह कई मिनट तक किसी दंडित क़ैदी की भाँति क्षुब्ध खड़े सोचते रहे। फिर विजय-ध्वनि से कह उठे—"कितना सरल है। इस विकार के हाथी को सिंह से नहीं, चिंउटी से मारूँगा। शीतला को एक बार 'बहन' कह देने से ही यह सब विकार शांत हो जायगा। शीतला! बहन! मैं तेरा भाई हूँ!"

उसी क्षण उन्होंने शीतला को पत्र लिखा—"बहन, तुमने इतने कष्ट झेले; पर मुझे ख़बर तक न दी! मैं कोई ग़ैर न था। मुझे इसका दुःख है। ख़ैर, अब ईश्वर ने चाहा, तो तुम्हें कष्ट न होगा।" इस पत्र के साथ उन्होंने नाज और रुपए भेजे।

शीतला ने उत्तर दिया—"भैया, क्षमा करो। जब तक जिऊँगी, तुम्हारा यश गाऊँगी। तुमने मेरी डूबती नाव पार लगा दी।"

(५)

कई महीने बीत गए। संध्या का समय था। शीतला अपनी मैना को चारा चुगा रही थी। उसे सुरेश नैपाल से उसी के वास्ते लाए थे। इतने में सुरेश आकर आँगन में बैठ गए।

शीतला ने पूछा—"कहाँ से आते हो भैया?"

सुरेश—"गया था ज़रा थाने। कुछ पता नहीं चला। रंगून में पहले कुछ पता मिला था। बाद को मालूम हुआ कि वह कोई और आदमी है। क्या करूँ? इनाम और बढ़ा दूँ?"

शीतला—'तुम्हारे पास रुपए बढ़े हैं, फूँको। उनकी इच्छा होगी, तो आप ही आवेंगे।"

सुरेश—"एक बात पूछूँ, बताओगी? किस बात पर तुमसे रूठे थे?"

शीतला—"कुछ नहीं, मैंने यही कहा था कि मुझे गहने बनवा दो। कहने लगे, मेरे पास है क्या? मैंने कहा (लजाकर), तो ब्याह क्यों किया? बस, बातों-ही-बातों तकरार हो गई।"

इतने में शीतला की सास आ गई। सुरेश ने शीतला की मा और भाइयों को उनके घर पहुँचा दिया था, इसलिये यहाँ अब शांति थी। सास ने बहू की बात सुन ली थी। कर्कश स्वर से बोली—"बेटा, तुमसे क्या परदा है। यह महारानी देखने ही को गुलाब का फूल हैं, अंदर सब काँटे हैं। यह अपने बनाव-सिंगार के आगे विमल की बात ही न पूछती थी। बेचारा इस पर जान देता था; पर इसका मुँह ही न सीधा होता था। प्रेम तो इसे छू नहीं गया। अंत को उसे देश से निकालकर इसने दम लिया।"

शीतला ने रुष्ट होकर कहा—"क्या वही अनोखे धन कमाने घर से निकले हैं? देस-बिदेस जाना मरदों का काम ही है।"

सुरेश—"योरप में तो धन-भोग के सिवा स्त्री-पुरुष में कोई संबंध ही नहीं होता। बहन ने योरप में जन्म लिया होता, तो हीरे-जवाहिर से जगमगाती होतीं। शीतला, अब तुम ईश्वर से यही कहना कि सुंदरता देते हो, तो योरप में जन्म दो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतला ने व्यथित होकर कहा—'जिनके भाग्य में लिखा है, वे यहीं सोने से लदी हुई हैं। मेरी भाँति सभी के करम थोड़े ही फूट गए हैं।"

सुरेशसिंह को ऐसा जान पड़ा कि शीतला की मुख-कांति मलिन हो गई है। पति-वियोग में भी गहनों के लिये इतनी लालायित है! बोले—"अच्छा, मैं तुम्हें गहने बनवा दूँगा।"

यह वाक्य कुछ अपमान-सूचक स्वर में कहा गया था; पर शीतला की आँखें आनंद से सजल हो आईं, कंठ गद्गद हो गया। उसके हृदय-नेत्रों के सामने मंगला के रत्न-जटित आभूषणों का चित्र खिंच गया। उसने कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से सुरेश को देखा। मुँह से कुछ न बोली; पर उसका प्रत्येक अंग कह रहा था—'मैं तुम्हारी हूँ!"

(६)

कोयल आम की डालियों पर बैठकर, मछली शीतल निर्मल जल में क्रीड़ा करके और मृग-शावक विस्तृत हरियालियों में छलाँगें भरकर इतने प्रसन्न नहीं होते, जितना मंगला के आभूषणों को पहनकर शीतला प्रसन्न हो रही है। उसके पैर ज़मीन पर नहीं पड़ते। वह आकाश में विचरती हुई जान पड़ती है। वह दिन-भर आइने के सामने खड़ी रहती है; कभी केशों को सँवारती है, कभी सुरमा लगाती है। कुहरा फट गया है, और निर्मल, स्वच्छ चाँदनी निकल आई है। वह घर का एक तिनका भी नहीं उठाती। उसके स्वभाव में एक विचित्र गर्व का संचार हो गया है।

लेकिन शृंगार क्या है? सोई हुई काम-वासना को जगाने का घोर नाद, उद्दीपना का मंत्र! शीतला जब नख-शिख से सजकर बैठती है, तो उसे प्रबल इच्छा होती है कि मुझे कोई देखे। वह द्वार पर आकर खड़ी हो जाती है। गाँव की स्त्रियों की प्रशंसा से उसे संतोष नहीं होता। गाँव के पुरुषों को वह शृंगार-रस-विहीन समझती है। इसलिये सुरेशसिंह को बुलाती है। पहले वह दिन में एक बार आ जाते थे; अब शीतला के बहुत अनुनय-विनय करने पर भी नहीं आते।

पहर रात गई थी। घरों के दीपक बुझ चुके थे। शीतला के घर में दीपक जल रहा था। उसने कुँअर साहब के बग़ीचे से बेले के फूल मँगवाए थे, और बैठी हार गूँध रही थी—अपने लिये नहीं, सुरेश के लिये। प्रेम के सिवा एहसान का बदला देने के लिये उसके पास और था ही क्या?

एकाएक कुत्तों के भूँकने की आवाज़ सुनाई दी, और दम-भर में विमलसिंह ने मकान के अंदर क़दम रक्खा। उनके एक हाथ में एक संदूक़ था, दूसरे हाथ में एक गठरी। शरीर दुर्बल, कपड़े मैले, दाढ़ी के बाल बढ़े हुए, मुख पीला; जैसे कोई क़ैदी जेल से निकलकर आया हो। दीपक का प्रकाश देखकर वह शीतला के कमरे की तरफ़ चले। मैना पिंजरे में तड़फड़ाने लगी। शीतला ने चौंककर सिर उठाया। घबराकर बोली—"कौन?" फिर पहचान गई। तुरंत फूलों को एक कपड़े से छिपा दिया। उठ खड़ी हुई, और सिर झुकाकर पूछा—"इतनी जल्दी सुध ली!"

विमल ने कुछ जवाब न दिया। वह विस्मित हो-होकर कभी शीतला को देखता, और कभी घर को। मानो किसी नए संसार में पहुँच गया है। यह वह अध-खिला फूल न था, जिसकी पँखड़ियाँ अनुकूल जल-वायु न पाकर सिमट गई थीं। यह पूर्ण विकसित कुसुम था—ओस के जल-कणों से जगमगाता और वायु के झोंकों से लहराता हुआ। विमल उसकी सुंदरता पर पहले भी मुग्ध था। पर यह ज्योति नहीं, अग्नि-ज्वाला थी; जिससे हृदय में ताप और आँखों में जलन होती थी। ये आभूषण, ये वस्त्र, यह सजावट! उसके सिर में एक चक्कर-सा आ गया। वह ज़मीन पर बैठ गया। इस सूर्यमुखी के सामने बैठते हुए उसे लज्जा आती थी। शीतला अभी तक स्तंभित खड़ी थी। वह पानी लाने नहीं दौड़ी, उसने पति के चरण नहीं धोए, उसके पंखा तक नहीं झला। वह हतबुद्धि-सी हो गई थी। उसने कल्पनाओं की कैसी सुरम्य वाटिका लगाई थी! उस पर तुषार पड़ गया! वास्तव में इस मलिन-वदन, अर्ध-नग्न पुरुष से उसे घृणा हो रही थी। यह घर का ज़मींदार विमल न था। वह मज़दूर हो गया था। मोटा काम मुखाकृति पर असर डाले बिना नहीं रहता। मज़दूर सुंदर वस्त्रों में भी मज़दूर ही रहता है।

सहसा विमल की मा चौंकी। शीतला के कमरे में आई, तो विमल को देखते ही मातृ-प्रेम से विह्वल होकर उसे छाती से लगा लिया। विमल ने उसके चरणों पर सिर रक्खा। उसकी आँखों से आँसुओं की गरम-गरम बूँदें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल रही थीं। मा पुलकित हो रही थी। मुख से बात न निकलती थी।

एक क्षण में विमल ने कहा—"अम्मा !"

कंठ-ध्वनि ने उसका आशय प्रकट कर दिया।

मा ने प्रश्न समझकर कहा—"नहीं बेटा, यह बात नहीं है।"

विमल—"यह देखता क्या हूँ ?"

मा—"स्वभाव ही ऐसा है, तो कोई क्या करे ?"

विमल—"सुरेश ने मेरा हुलिया क्यों लिखाया था ?"

मा—"तुम्हारी खोज लेने के लिये। उन्होंने दया न की होती, तो आज घर में किसी को जीता न पाते।"

विमल—"बहुत अच्छा होता।"

शीतला ने ताने से कहा—"अपनी ओर से तो तुमने सबको मार ही डाला था। फूलों की सेज नहीं बिछा गए थे !"

विमल—"अब तो फूलों की सेज ही बिछी हुई देखता हूँ।"

शीतला—"तुम किसी के भाग्य के विधाता हो ?"

विमलसिंह उठकर क्रोध से काँपता हुआ बोला—"अम्मा, मुझे यहाँ से ले चलो। मैं इस पिशाचिनी का मुँह नहीं देखना चाहता। मेरी आँखों में खून उतरता चला आता है। मैंने इस कुल-कलंकिनी के लिये तीन साल तक जो कठिन तपस्या की है, उससे ईश्वर मिल जाता; पर इसे न पा सका !"

यह कहकर वह कमरे से निकल आया, और मा के कमरे में लेट रहा। मा ने तुरंत उसका मुँह और हाथ-पैर धुलाए। वह चूल्हा जलाकर पूरियाँ पकाने लगी। साथ-साथ घर की विपत्ति-कथा भी कहती जाती थी। विमल के हृदय में सुरेश के प्रति जो विरोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, वह शांत हो गई; लेकिन हृदय-दाह ने रक्त-दाह का रूप धारण किया। ज़ोर का बुख़ार चढ़ आया। लंबी यात्रा की थकन और कष्ट तो था ही, बरसों के कठिन श्रम और तप के बाद यह मानसिक संताप और भी दुस्सह हो गया।

सारी रात वह अचेत पड़ा रहा। मा बैठी पंखा झलती और रोती थी। दूसरे दिन भी वह बेहोश पड़ा रहा। शीतला उसके पास एक क्षण के लिये भी न आई। इन्होंने मुझे कौन सोने के कौर खिला दिए हैं, जो इनकी धौंस सहूँ। यहाँ तो 'जैसे कंता घर रहे, वैसे रहे बिदेस।' किसी की फूटी कौड़ी नहीं जानती। बहुत ताव दिखाकर तो गए थे। क्या लाद लाए ?"

संध्या के समय सुरेश को ख़बर मिली। तुरंत दौड़े हुए आए। आज दो महीने के बाद उन्होंने इस घर में क़दम रक्खा। विमल ने आँखें खोलीं, पहचान गया। आँखों से आँसू बहने लगे। सुरेश के मुखारविंद पर दया की ज्योति झलक रही थी। विमल ने उनके बारे में जो अनुचित संदेह किया था, उसके लिये वह अपने को धिक्कार रहा था।

शीतला ने ज्यों ही सुना कि सुरेशसिंह आए हैं, तुरंत शीशे के सामने गई; केश छिटका लिए, और विषाद की मूर्ति बनी हुई विमल के कमरे में आई। कहाँ तो विमल की आँखें बंद थीं, मूर्च्छित-सा पड़ा था, कहाँ शीतला के आते ही आँखें खुल गईं। अग्निमय नेत्रों से उसकी ओर देखकर बोला—"अभी क्यों आई है ? आज के तीसरे दिन आना। कुँअर साहब से उस दिन फिर भेंट हो जायगी।"

शीतला उलटे पाँव चली गई। सुरेश पर घड़ों पानी पड़ गया। मन में सोचा, कितना रूप-लावण्य है; पर कितना विषाक्त ! हृदय की जगह केवल शृंगार-लालसा !

आतंक बढ़ता ही गया। सुरेश ने डॉक्टर बुलवाए। पर मृत्यु-देव ने किसी की न मानी। उनका हृदय पाषाण है। किसी भाँति नहीं पसीजता, कोई अपना हृदय निकालकर रख दे, आँसुओं की नदी बहा दे; पर उन्हें दया नहीं आती। बसे हुए घर को उजाड़ना, लहराती हुई खेती को सुखाना उनका काम है। और, उनकी निर्दयता कितनी विनोदमय है ! वह नित्य नए रूप बदलते रहते हैं। कभी दामिनी बन जाते हैं, तो कभी पुष्प-माला। कभी सिंह बन जाते हैं, तो कभी सियार। कभी अग्नि के रूप में दिखाई देते हैं, तो कभी जल के रूप में।

तीसरे दिन, पिछली रात को, विमल की मानसिक पीड़ा और हृदय-ताप का अंत हो गया। चोर दिन को कभी चोरी नहीं करता। यम के दूत प्रायः रात ही को सबकी नज़रें बचाकर आते हैं, और प्राण-रत्न को चुरा ले जाते हैं। आकाश के फूल मुरझाए हुए थे। वृक्ष-समूह स्थिर थे; पर शोक में मग्न, सिर झुकाए हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात शोक का बाह्य रूप है। रात मृत्यु का क्रीड़ा-क्षेत्र है। उसी समय विमल के घर से आर्त-नाद सुनाई दिया—वह नाद, जिसे सुनने के लिये मृत्यु-देव विकल रहते हैं।

शीतला चौंक पड़ी, और घबराई हुई मरण-शय्या की ओर चली। उसने मृत देह पर निगाह डाली, और भय-भीत होकर एक पग पीछे हट गई। उसे जान पड़ा, विमलसिंह उसकी ओर अत्यंत तीव्र दृष्टि से देख रहे हैं। बुझे हुए दीपक में उसे भयंकर ज्योति दिखाई पड़ी। वह मारे भय के वहाँ ठहर न सकी। द्वार से निकल ही रही थी कि सुरेशसिंह से भेंट हो गई। कातर स्वर में बोली—"मुझे यहाँ डर लगता है।" उसने चाहा कि रोती हुई इनके पैरों पर गिर पड़ूँ; पर वह अलग हट गए।

(७)

जब किसी पथिक को चलते-चलते ज्ञात होता है कि मैं रास्ता भूल गया हूँ, तो वह सीधे रास्ते पर आने के लिये बड़े वेग से चलता है। झुँझलाता है कि मैं इतना असावधान क्यों हो गया! सुरेश भी अब शांति-मार्ग पर आने के लिये विकल हो गए। मंगला की स्नेहमयी सेवाएँ याद आने लगीं। हृदय में वास्तविक सौंदर्यो-पासना का भाव उदय हुआ। उसमें कितना प्रेम, कितना त्याग, कितनी क्षमा थी! उसकी अतुल पति-भक्ति को याद करके कभी-कभी वह तड़प जाते। आह! मैंने घोर अत्याचार किया। ऐसे उज्ज्वल रत्न का आदर न किया। मैं यहीं जड़वत् पड़ा रहा, और मेरे सामने ही लक्ष्मी घर से निकल गई! मंगला ने चलते-चलते शीतला से जो बातें कही थीं, वे उन्हें मालूम थीं। पर उन बातों पर विश्वास न होता था। मंगला शांत प्रकृति की थी। वह इतनी उद्दंडता नहीं कर सकती। उसमें क्षमा थी। वह इतना विद्वेष नहीं कर सकती। उनका मन कहता था कि जीती है, और कुशल से है। उसके मैकेवालों को कई पत्र लिखे। पर वहाँ व्यंग्य और कटु वाक्यों के सिवा और क्या रक्खा था? अंत को उन्हों-ने लिखा—"अब उस रत्न की खोज में स्वयं जाता हूँ। या तो लेकर ही आऊँगा, या कहीं मुँह में कालिख लगाकर डूब मरूँगा।"

इस पत्र का उत्तर आया—"अच्छी बात है, जाइए; पर यहाँ से होते हुए जाइएगा। यहाँ से भी कोई आप-के साथ चला जायगा।"

सुरेशसिंह को इन शब्दों में आशा की झलक दिखाई दी। उसी दिन प्रस्थान कर दिया। किसी को साथ नहीं लिया।

सुसराल में किसी ने उनका प्रेममय स्वागत नहीं किया। सभी के मुँह फूले हुए थे। ससुरजी ने तो उन्हें पति-धर्म पर एक लंबा उपदेश दिया।

रात को जब वह भोजन करके लेटे, तो छोटी साली आकर बैठ गई, और मुसकिराकर बोली—"जीजाजी, कोई सुंदरी अपने रूप-हीन पुरुष को छोड़ दे, उसका अपमान करे, तो आप उसे क्या कहेंगे?"

सुरेश (गंभीर स्वर से)—"कुटिला!"

साली—"और ऐसे पुरुष को, जो अपनी रूप-हीना स्त्री को त्याग दे?"

सुरेश—"पशु!"

साली—"और जो पुरुष विद्वान् हो?"

सुरेश—"पिशाच!"

साली (हँसकर)—"तो मैं भागती हूँ। मुझे आपसे डर लगता है।"

सुरेश—'पिशाचों का प्रायश्चित्त भी तो स्वीकार हो जाता है।"

साली—"शर्त यह है कि प्रायश्चित्त सच्चा हो।"

सुरेश—"यह तो वह अंतर्यामी ही जान सकते हैं।"

साली—सच्चा होगा, तो उसका फल भी अवश्य मिलेगा। मगर दीदी को लेकर इधर ही से लौटिएगा।"

सुरेश की आशा-नौका फिर डगमगाई। गिड़गिड़ाकर बोले—"प्रभा, ईश्वर के लिये मुझ पर दया करो। मैं बहुत दुखी हूँ। साल-भर से ऐसा कोई दिन नहीं गया कि मैं रोकर न सोया हूँ।"

प्रभा ने उठकर कहा—"अपने किए का क्या इलाज? जाती हूँ, आराम कीजिए।"

एक क्षण में शीतला की माता आकर बैठ गईं, और बोलीं—"बेटा, तुमने तो बहुत पढ़ा लिखा है, देस-बिदेस घूम आए हो, सुंदर बनने की कोई दवा कहीं नहीं देखी?"

सुरेश ने विनय-पूर्वक कहा—"माताजी, अब ईश्वर के लिये और लज्जित न कीजिए।"

माता—"तुमने तो मेरी प्यारी बेटी के प्राण ले लिए! मैं क्या तुम्हें लज्जित करने से भी गई? जी में तो था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी-ऐसी सुनाऊँगी कि तुम भी याद करोगे; पर मेरे मेहमान हो, क्या जलाऊँ ? आराम करो ।"

सुरेश आशा और भय की दशा में पड़े करवटें बदल रहे थे कि एकाएक द्वार पर किसी ने धीरे से कहा—"जाती क्यों नहीं, जागते तो हैं।" किसी ने जवाब दिया—"लाज आती है।"

सुरेश ने आवाज़ पहचानी। प्यासे को पानी मिल गया। एक क्षण में मंगला उनके सम्मुख आई, और सिर झुकाकर खड़ी हो गई। सुरेश को उसके मुख पर एक अनूठी छवि दिखाई दी, जैसे कोई रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर चुका हो।

रूप वही था, पर आँखें और थीं।

प्रेमचंद

गोसाईंजी-कृत रामायण का उड़िया और बँगला-अनुवाद



हित्य-सौंदर्य-सुधाकर, हमारे पूज्य, द्विज-राज तुलसी निस्संदेह समग्र संसार के काव्य-गगन के निष्कलंक चंद्र ही हैं। उनके अमर काव्य राम-चरित-मानस में जो विलक्षण माधुरी, अपूर्व चातुरी और चरित्र-चित्रण में अलौकिक महत्ता है, उसकी प्रशंसा हो ही नहीं सकती। सर ग्रियर्सन साहब-जैसे उन्नत साहित्यों के प्रकांड पंडित और समालोचक गोसाईंजी के विषय में लिखते हैं—

"Tulasi Das, a genius whose name will some day be insertea by universal consent in the list of the great poets of the world." *

ऐसे सार्वभौम महाकवि की रचना का रसास्वादन करने को भला किस भाषा का पंडित लालायित न होगा? अँगरेज़ी में रामायण का सुंदर अनुवाद, ग्राउस साहब-कृत, विद्यमान है। उर्दू में भी कदाचित् तुलसी-कृत रामायण का अनुवाद किया जा चुका है। एक संस्कृतज्ञ कविता-प्रेमी विद्वान् ने भी 'भाषा-रामायण' का संस्कृतानुवाद * करके गोसाईंजी के काव्य-गौरव से अपनी लेखनी को अलंकृत किया है। यदि मैं भूलता नहीं हूँ, तो मराठी में भी रामायण का अनुवाद किए जाने का समाचार मैंने कहीं पढ़ा है। आज मैं रामायण के उड़िया तथा बँगला-अनुवाद पर कुछ लिखता हूँ।

उत्कल-भाषा में तुलसी-कृत रामायण के एक नहीं, दो नहीं, चार अनुवाद किए जाने की सूचना मुझे मिली है। सर्व-प्रथम अनुवाद गोविंद-साव-नामक एक तेली ने किया। इसका निवास मेरे जन्म-ग्राम बालपुर के निकट एक ग्राम में था। यह बड़ा राम-भक्त और विद्यानुरागी था। हमारे पूज्य पितामह से यह बड़ा प्रेम-भाव रखता था। सर्प-विष उतारने में यह अद्वितीय था। सर्पाघात से मर चुके लोगों को इसके मंत्र-बल ने प्राण-दान दिए थे। अनुवाद के विषय में यह लिखता है—

तुलसीदासंकर ए रामायण-सार,
अर्थ देखि लेखह गोविंदसाहु छार।

अपने उत्कलानुवाद रामायण का नाम इसने 'गोविंद-रामायण' रक्खा है। यह अनुवाद आज से ६० वर्ष पूर्व का है। अभी तक अप्रकाशित है। गोविंद कवि का नाम एक दोहे में यों आया है—

माली, तेली, कोलता, हुए यहाँ कबि तीन;
श्याम, तथा गोबिंद कबि, पीतवास हरि-लीन।

सारंगढ़-राज्य में माली-जाति का श्यामसुंदर

---

* Linguistic Survey of India, Vol. VI, page 13.

* इसका परिचय इसी संख्या में अन्यत्र प्रकाशित लाल सीतारामजी बी० ए० के लेख में देखिए। —संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक एक, उड़िया भाषा का, कवि हुआ। रायगढ़-राज्य में तेली-जाति का गोविंदसाव-नामक कवि हुआ। और, पद्मपुर-इलाक़े में कोलता-जाति का पीतवास-नामक कवि हुआ। पीतवास-कृत 'पितवसिया रामायण' इधर प्रसिद्ध है। ये तीनों साधारण पढ़े लिखे थे; पर थी इनमें कवि-सुलभ प्रतिभा। गोविंदसाव के उड़िया-अनुवाद से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

(मूल)

सोइ सर्वज्ञ, गुणी, सोइ ज्ञाता,
सोइ महि-मंडन, पंडित, दाता,
धर्म-परायण, सोइ कुल-त्राता,
राम-चरण जाकर मन राता।

(उड़िया-अनुवाद)

सेहि सर्वज्ञ पुरुष, सेहि ज्ञानवंत,
सेहि दाता, सेहि महि-मंडित पंडित,
धर्म-परायण, कुल-दीपक अटइ,
राम-चरण-कमले मन जार रहि।

(मूल)

नीति-निपुण सोइ, परम सयाना,
श्रुति-सिद्धांत ठीक सोइ जाना,
सोइ कवि-कोविद, सोइ नर धीरा,
जो छल छाँड़ि भजै रघुबीरा।

(उड़िया-अनुवाद)

नीतिरे निपुण सेहि परम चतुर,
निगम-सिद्धांते दक्ष सेहि भाग्यधर,
सेहिटि कबि-कोविद, सेहि नर धीर,
छल त्यागि करि जेहू भंज रघुबीर।

(मूल)

धन्य नारि पतिव्रत-अनुसरी;
धन्य सो देश, जहाँ सुर-सरी।
धन्य सो भूप, नीति जो करई;
धन्य सो द्विज, निज धर्म न टरई।

(उड़िया-अनुवाद)

धन्य-धन्य नारी पतिव्रत-अनुसरि;
धन्य सेहू देश, जहिं बहंति सुरसरि।
नीतिरे चलइ जेहू, धन्य नर साईं;
निज धर्म पालइ, से द्विज धन्य कहि।

गोविंद कवि ने अपनी अनूदित रामायण का श्रीगणेश यों किया है—

जहांकु स्मरण कले कार्ये हुए सिद्धि,
से गजवदन कर दया दिअ बुद्धि।
मोते जेबे सुदया कर हे गणेश्वर!
बद्धि-राशि उदे हेब शरीरे मोहर।
तुंभ दया हेले मूक बचन कहिब;
शुभ गुण-सदन! पंगु गिरि लंघिब।
नील-सरोरुह-श्याम, शंख-चक्र-धर;
बिकच कमल-प्राये नयन तुंभर।
सदा काल शयन कर क्षीर-सागरे,
से प्रभु बिजय कर मोहर हृदरे।
कुंद-इंदु-सम दिसे शरीर जाहार,
बर्णना करइ उमा-रमण पयर।
करुणा-सदन तुंभे अटंह गोसाईं!
तुंभ कृपा कले दुःख-दरिद्र खंडई।
पुणि बंदना करइ श्रीगुरु-पयर;
महामोह-तम-पुंज बाक्य-रविकर।
श्रीगुरु-पाद-कमल-पराग अटइ;
सुरुचि-सुवास, अनुराग बिकासई।
अमृतर मूल से, जे चूर्ण अटे चारु;
"शमन सकल भव-रुज-परिवारु *।"
सुकृत कल्याण सुर बिमल बिभूति;
मंगल मंजुल अटे मोदर प्रसूति।
जन-मन-मंजुल-दर्पण मल-हारी;
तिलक करंते त्रिगुणरूँ होंति पारि।

गोविंद कवि एक अनुभवी और अमृत-हस्त वैद्य था। उड़िया-भाषा में उसने कई ग्रंथ लिखे हैं। रामायण का अनुवाद पयार या 'चौदह अक्षर' के छंद में किया है। इसने 'भक्तमाल' का अनुवाद करके उसका नाम रक्खा है 'भक्त-

* इस चौपाई में १४ अक्षर हैं। अनुवाद-कर्ता ने उसे ज्यों-का त्यों रख दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुदावली'। यह हिंदी (छत्तीसगढ़ी-हिंदी)-भाषा-भाषी था।

खरियार के साहित्य-प्राण, विद्वान्, राजा वीर विक्रमसिंह ने तुलसी-कृत रामायण का एक सुंदर और विशुद्ध अनुवाद करने का निश्चय किया था; और 'बाल-कांड' का अनुवाद पूर्ण भी हो चुका था। इतने में उनका शरीर-पात हो गया। सुनते हैं, राजा साहब के द्वारा प्रारंभ किए गए उस साधु-कार्य की पूर्ति का भार उनके सुयोग्य अनुज तथा नवयुवक पुत्र ने ग्रहण किया, और तुलसी-कृत रामायण के सब कांडों के उड़िया-अनुवाद किए जा चुके हैं।

तीसरा अनुवाद संबलपुर-वासी बाबू रामप्रसाद बोहिदार बी० ए०, बी० एल्०, बी० टी० के बड़े भाई ने, आज से ४०-५० वर्ष पूर्व, प्रस्तुत किया था।

चौथा अनुवाद संबलपुर के प्रसिद्ध कवि और 'हीराखंड', 'साधना' आदि पत्रों के संपादक, हमारे मित्र, कविरंजन पं० स्वप्नेश्वरदास ने किया है। इसे उड़ीसा के कोई साहित्य-रसिक राजा अपने व्यय से प्रकाशित करा रहे हैं। यह अनुवाद यंत्र-स्थ है।

सबसे पहले 'तुलसी-स्तवक' नाम से गोसाईं-जी के 'वर्षा और शरद्-वर्णन' का उड़िया-अनुवाद रायबहादुर, कविवर राधानाथ रायजी (Divisional Inspector of Schools, Cuttack) ने किया था। उस अनुवाद की कुछ पंक्तियाँ हमें अद्यावधि स्मरण हैं। यथा—

(मूल)

बरसहिं जलद भूमि नियराए;
यथा नवहिं बुध बिद्या पाए।

(उड़िया-अनुवाद)

वर्षंति मही-मुखे नइ अंबुदे;
बिद्या-संपदे यथा [illegible] बुधे।

(मूल)

बूँद-अघात सहैं गिरि कैसे?
खल के बचन संत सह जैसे।

(अनुवाद)

सहंति धारा पात शइल-गण;
खल-बचन यथा सहे सुजन।

(मूल)

रस-रस सूख सरित-सर-पानी;
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।

(अनुवाद)

सर-सरित-नीर क्रमे हटइ;
ममता यथा साधू, मनूँ टुटइ।

यह अनुवाद "कलहंसकेदार"-वृत्त में है। यति ७वें और ५वें अक्षर पर है।

उत्कल-साहित्य सम्राट्, कविवर राधानाथ रायजी उच्च कोटि के साहित्य-मर्मज्ञ, पंडित एवं विलक्षण प्रतिभाशाली थे। गोसाईं-कृत "रामायण" का पठन और मनन उनका एक प्रधान कर्तव्य था।

अब श्रीरामचरित-मानस के वंगानुवादों का हाल सुनिए। इस कार्य का प्रथम श्रेय पुरुलिया (बंगाल) के वकील श्रीमदनमोहन चौधरी बी० एल्० महोदय को है। आपने 'पयार' और 'त्रिपदी'-छंद में रामायण का सरल, सुंदर और सरस अनुवाद करके अपने हिंदी-प्रेम, उभय भाषाओं के पांडित्य, और अपनी कवित्व-शक्ति का उत्तम परिचय दिया है। इस साधु उद्योग के लिये आप प्रत्येक हिंदी-प्रेमी के धन्यवाद के पात्र हैं। आज ३०० वर्षों के पश्चात् वंग-भाषा-भाषियों को गोसाईंजी के काव्यामृत के रसास्वादन का सुयोग प्राप्त हो सका है। वंगानुवाद के बाल-कांड के प्रकाशन पर लेखक को किसी हिंदी-भाषी से एक पद्य प्राप्त हुआ था। वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बँगला में)

श्रीतुलसीदास-कृत पूज्य, पुण्य रामायण,
संसार-विख्यात सुधा-भांड ;
मदनमोहन-कृत तार बंग-अनुवाद
पाइलाम आजि 'बाल-कांड'।
आहा ! कि अमृत-मय, सुमधुर पद्य-चय-
परिपूर्ण एहि अनुवाद ;
श्रीगोसाईं कवि-रत्न, देखिया ए साधु यत्न,
देन शत-शत आशीर्वाद ।
नागरी-भारती भव्य चिर-उपकृता आज
देन शत-शत आशीर्वाद ;
तिनि शत वर्ष अंते बंग-भूमि पाइयाछे
तुलसीदासेर काव्य-स्वाद ।

सातों कांडों का समस्त अनुवाद चार भागों में पूर्ण हुआ है। विवरण यथा—

प्रथम खंड	**बाल-कांड**	**मूल्य १)**
द्वितीय खंड	**अयोध्या-कांड**	**,, १)**
तृतीय खंड	**आरण्य-कांड, किष्किंधा-कांड, सुंदर-कांड, लंका-कांड**	**,, १)**
चतुर्थ खंड	**उत्तर-कांड, लवकुश-कांड**	**,, १॥=)**

R
८०
मा२६मा
ख.१
1.10.19

इस रामायण का दूसरा वंगानुवाद है 'तुलसी-चरितामृत'। इस अनुवाद में एक विशेषता यह है कि कठिन शब्दों के अर्थ, पाद-टीका में, दे दिए गए हैं। वंगाक्षरों में गोसाईंजी की मूल-कविता भी दी गई है। अनुवाद-कर्ता के शब्दों में—"बांगाला-अक्षरे मूल ओ दुरूह शब्देर अर्थ सह बांगाला-पद्ये अनुवादित" है। यह अनुवाद बंगालियों को हिंदी सिखलाने में एक उत्तम गुरु का काम दे सकता है। अनुवाद-कर्ता ने मूल और अनुवाद साथ-साथ प्रकाशित करके बड़ी बुद्धिमत्ता दिखलाई है। नमूना देखिए—

(मूल)

वर्णानाम् अर्थसंघानाम्[1] रसानां छंदसामपि ;
मंगलानां च कर्तारौ वंदे वाणी-[2]विनायकौ[3] ।

(वंगानुवाद)

छंदरसवर्णार्थेर कर्त्री वीणा-पाणि,
वंदि विनायक, मंगलेर कर्ता जिनि ।

(मूल)

जेहि सुमिरत[4] सिधि होइ, गण-नायक[5], करिवर-बदन[6],
करौ अनुग्रह सोइ, बुद्धि-राशि, शुभ-गुण-सदन ।

(वंगानुवाद)

स्मरिले जाहार नाम, पूर्ण हय मनस्काम,
सुरेर नायक गजानन ;
करून आमार प्रति, अनुग्रह तिनि अति,
बुद्धि-राशि, सद्गुण-सदन[7] ।

(मूल)

निज कबित्व केहि लाग न नीका,
सरस होय अथवा अति फीका ।
जे पर-भणित सुनत हरषाहीं,
ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ।

(वंगानुवाद)

निजेर कवित्व कार नाहिं लागे भाल,
सरस हउक किंबा होक अ-रसाल ।
आनंदित हन शुनि परेर भणिते,
ए रूप पुरुष-श्रेष्ठ दुर्लभ जगते ।

एक नमूना और लीजिए—

जबा निजे भाल हय, भालत्व बाँधिया लय ;
करे नीच नीचत्व ग्रहण ;
अमरता सुधा-दाने, बिषे मृत्यु, के न जाने ?
विचारि करिबे निर्वाचन ।

ऊपर की पंक्तियाँ इस दोहे का अनुवाद हैं—

भले भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच ;
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ।

मूल के शब्दों की रक्षा अनुवाद में कहाँ तक की गई है, यह आगे देखिए—

१ समूह । २ वाग्देवी = सरस्वती । ३ गणेश । ४ स्मरण करिले । ५ देवता, नेता । ६ गजानन । ७ सद्गुणेर आलय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मूल)

काम-रूप, सुंदर तनु-धारी,
सहित समाज, सहित बर नारी,
गे सब तुरत हिमाचल-गेहा ;
गावहिं मंगल सहित सनेहा ।

(वंगानुवाद)

काम-रूप तनु-धारी, परम सुंदर,
सह बर नारी आर सह अनुचर,
त्वराय गेलेन सब हिमाचल-गेह ;
गाहिलेन सुमंगल सहित सनेह ।

(मूल)

श्यामल, गौर, किशोर बर, सुंदर, सुखमा-ऐन ;
शरद-शर्बरीनाथ-मुख, शरद-सरोरुह-नैन ।
कोटि मनोज लजावनहारे
सुमुखि, कहहु को अहहिं तुम्हारे ?
सुनि सनेह-मय, मंजुल बानी,
सकुचि सीय मन महँ मुसकानी ।
तिनहिं बिलोकि बिलोकत धरनी ;
दुहुँ सकोच सकुचति बर-बरनी ।
सकुचि सप्रेम बाल-मृग-नयनी,
बोली मधुर बचन पिक-बयनी ।
सहज-सुभाव, सुभग, तनु गोरे,
नाम लखन, लघु देवर मोरे ।
बहुरि बदन-बिधु अंचल ढाँकी,
पिय-तन चितय, भौंह करि बाँकी,
अंजन-मंजु तिरीछे नैननि,
निज-पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि ।
भईं मुदित सब ग्राम-बधूटीं;
रंकन रतन-रासि जनु लूटी ।
अति सप्रेम सिय पाँय परि, बहु बिधि देहिं असीस;
सदा सुहागिनि रहहु तुम, जब लगि महि अहि-सीस ।

(वंगानुवाद)

श्याम, गौर, सुबरण, सुकुमार, सुशोभन-
समुदाय, सुखमा-आकर ;
शरदिंदु-सुबदन, कमलेव सुनयन,
मरि-मरि, किबा मनोहर ।
जाँर रूप हेरि लज्जा पाय कोटि मार,
सुमुखि ! बलना तिनि के हन तोमार ?
सुनिया सनेह-मय मधुर बचन,
मने-मने हासि सीता संकुचित हन ।
राम के बिलोकि सीता बिलोके धरारे,
बरबर्णा संकुचिता उभय प्रकारे ।
प्रेमे संकुचिता मृग-शावक-नयनी,
पिक-कंठी बलिलेन सुमधुर बानी ।
सरल-स्वभाव, गौर-तनु, सुशोभन,
कनिष्ठ देवर मोर, नाम श्रीलक्ष्मण ।
अंचल ढाँकिया पुनः सुधाकराननें,
भ्रू बक्र करिया चान प्रियतम-पाने ।
मंजुल खंजन-आँखि करि बक्राकार,
इंगिते कहेन रामे पति आपनार ।
गराम्य-बधूटी सब हरषित हेन,
दरिद्र रतन-राशि लूटितेछे येन ।
अतिशय प्रेम-भरे, पड़ि सीता पद परे,
बहु बिधि आशीर्बाद करे—
सोहागिनी रह तुमि, जावत रहिबे भूमि
अहीश अनंत शिरोपरे ।

(मूल)

राम-नाम को कलपतरु, कलि-कल्याण-निवास ;
जो सुमिरत भए भाग ते तुलसी तुलसीदास ।

(वंगानुवाद)

कल्पतरु राम-नाम, कलिर कल्याण-धाम,
भव-बंध-मोचन-कारण ;
छाड़ाइया भव-पाश, तुलसी तुलसीदास
हन, भाग्ये करिया स्मरण ।
चारि जुग, तिन काल, ए तिन भुवने,
नाम जपि शोक-मुक्त हय जीवगणे ।
बेद ओ पुराण साधु मत इहा हय—
सकल सुकृत-फल राम प्रेम-मय ।

लेख बहुत बढ़ गया है, इसलिये यहीं समाप्त किया जाता है । इसमें संदेह नहीं कि गोस्वामीजी की रामायण, उसके भिन्न-भिन्न अनुवादों, और स्वयं गोस्वामीजी की प्रतिभा और भक्ति आदि सद्‌गुणों के संबंध में आलोचनात्मक बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी जा सकती हैं ।

लोचनप्रसाद पांडेय

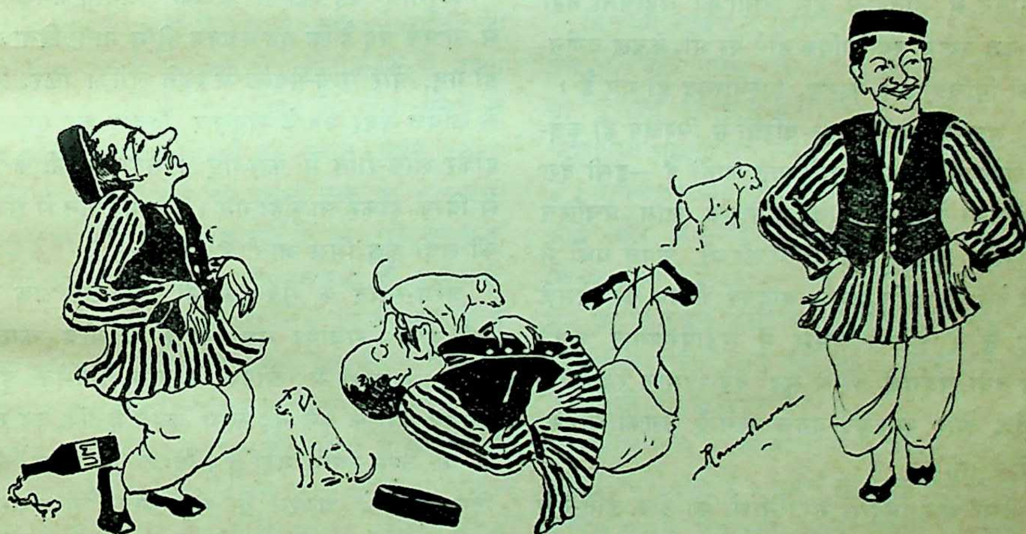
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शराबी

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]





कैसी बुरी बना दी है हालत शराब ने :
मिट्टी में यों मिला दी है इज़्ज़त शराब ने ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदासजी



भारत के प्रायः सभी प्रांतों के लोग—आ-बाल-वृद्ध, पठित-अपठित—गोस्वामी तुलसीदास से कुछ-न-कुछ अवश्य परिचित हैं, और उनका नाम सादर स्मरण करते हैं। आपका जीवन-वृत्तांत (गद्य या पद्य-बद्ध) रामायण के प्रायः सभी संस्करणों में, किसी-न-किसी रूप में, प्रकाशित देखा जाता है। भिन्न-भिन्न भक्तमालों में भी उसका वर्णन हुआ है। पर उन सबमें लेखकों की श्रद्धा-भक्ति का विशेष प्रभाव देख पड़ता है। इसका कारण कुछ तो सांप्रदायिक गौरव जतलाना और कुछ इस महान् महात्मा की महिमा दिखलाना है। इसी से इनकी जीवन-गाथा में बहुत-सी ऐसी अनैसर्गिक घटनाओं का समावेश हुआ है, जिन्हें स्वीकार करने के लिये सब लोग तैयार नहीं देखे जाते। कुछ ऐसे वर्णन भी आए हैं, जिन्हें मानने में इतिहास हम लोगों की सहायता नहीं करता। कुछ वर्णन, स्वाभाविक होने पर भी, केवल वर्णन-शैली की विचित्रता के कारण, हास्यास्पद हो गए हैं।

सभी महात्माओं के जीवन-चरित्रों में निश्चय ही कुछ-न-कुछ आश्चर्य-जनक घटनाएँ पाई जाती हैं—इसी देश में नहीं, सभी देशों में। चरित्र-लेखक लोग प्रचलित गाथाओं और सुनी-सुनाई बातों को भी अपने ग्रंथों में स्थान दे देते हैं। परंतु उनका बाहुल्य विषय को बेमज़े कर देता है। हमारी समझ में महापुरुषगण अपने सच्चरित्र तथा सद्गुणों ही से सदा देदीप्यमान रहते हैं; अनैसर्गिक और आश्चर्य-जनक घटनाएँ उनकी महिमा को नहीं बढ़ातीं।

कुछ देसी और बिदेसी महात्माओं का ठीक इति-वृत्त भी नहीं प्राप्त होता। ऐसी अवस्था में अनुमान ही से बहुत काम लिया जाता है। गोसाईंजी के विषय में भी यही बात समझिए। आपके जीवन की जितनी बातें आज तक सर्व-साधारण को ज्ञात हैं, उनसे निश्चय-पूर्वक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि आपने भारत में जन्म लेकर अपनी ललित लेखनी के बल से देश का असाधारण उपकार किया है। नहीं तो, हमारी राय में, इनके जन्म-काल, जन्म-स्थान, कुल-परिवार तथा शिक्षा आदि, किसी बात का कुछ ठीक पता नहीं लगता। जिन बातों का कुछ पता भी लगता है, उन पर अपूर्व रंग चढ़ाया गया है। यों तो, कहने को, सभी कुछ लिखा हुआ है।

भिन्न-भिन्न लेखकों के कथनानुसार, सं० १५८३, १५८९, तथा १६००-१६१० के बीच इनका जन्म-काल होता है। उस पर तुर्रा है सभी में अभुक्त-मूल-नक्षत्र, और माता-पिता द्वारा परित्यक्त होना। तो क्या चाहे किसी वर्ष, किसी मास और किसी भी दिवस में इनका जन्म माना जाय, अभुक्त-मूल इनके पीछे ही लगा रहेगा? फिर, जब इनके माता-पिता ने इन्हें त्यागकर कहीं फेंक दिया, और इन्हें साधु उठाकर ले गए, तो इन्हें या अन्य लोगों को यह कैसे ज्ञात हुआ कि ये अमुक कुल के शिशु तथा अमुक व्यक्ति की संतान थे? कारण, यदि ग्रह-भय से उन्होंने इन्हें दूर कर दिया होगा, तो शैशवावस्था ही में। सयाने होने पर न इससे कुछ लाभ होता, और न उनसे प्रेम-वश बिलग ही करते बनता।

अनुमान यह कहता है कि 'जननि-जनक तज्यो' से तात्पर्य यह है कि यह बचपन ही में माता-पिता से हीन हो गए, और साधु-मंडली में रहने लगे। फिर, 'बाहुक' के कबित्त नंबर ४० के अनुसार, विवाह कर गृहस्थाश्रमी होकर लोक-रीति में फँस गए। तदनंतर स्त्री के उपदेश से विरक्त होकर साधु हो गए। इस अनुमान से सब बातों की लड़ी कुछ मिल जाती है।

जन्म-स्थान के संबंध में भी अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर तथा तारी के बीच झगड़ा है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ है, तथापि वहीं के कुछ बूढ़े लोग कहते हैं कि वह गोसाईं-जी का जन्म-स्थान नहीं है। विरक्त होने पर यह कुछ दिन वहाँ रहे अवश्य थे, और प्रायः जाया करते थे।

स्त्री से किसे प्रीति नहीं होती? धर्म-पत्नी के साथ प्रेमाभाव ही तो अधर्म और पाप कहा गया है। पत्नी में अधिक अनुरक्ति एवं उसका वियोग असह्य होने से यदि यह उसके पीछे-ही-पीछे उसके पिता के घर तक पहुँच गए, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। परंतु लेखकों ने इनकी परमासक्ति दिखाने के लिये वर्षा-काल की गंगा-यमुना में तैराकर, छप्पर पर चढ़ाकर, और आँगन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुदाकर इन्हें कैसा पागल बनाया है! किसके सुसराल-वाले नहीं चाहते कि दांपत्य-प्रेम पूर्ण और प्रबल हो? इनके पत्नी-प्रेम से क्या इनके सुसरालवाले परिचित न होंगे? दरवाज़े पर जाकर पुकारकर दरवाज़ा खुलवाने से क्या वे लठ लेकर इन्हें मारने दौड़ते? संभव है, इन-की हँसी उड़ाते, व्यंग्य की बौछार करते। बस।

सुनते हैं, यह इनका तीसरा विवाह था, और इसमें इन्हें ६०००) तिलक में मिले थे। आप पूछ सकते हैं, "तो प्रथम विवाह में कितना मिला था?" आप स्वयं अटकल लगा लीजिए। आप तो इसी देश के हैं, और जानते ही हैं कि प्रथम बार सर्वापेक्षा अधिक धन प्राप्त होता है। उत्तरोत्तर उसकी मात्रा में कमी होती जाती है। क्या आप पूछते हैं कि गोसाईंजी के समान मातृ-पितृ-हीन दरिद्र को इतना धन कैसे मिला? हम नहीं जानते। कदाचित् कुलीनता के विचार से मिला हो। परंतु क्या उस समय भी तिलक-जहेज़ का बाज़ार इतना गरम था? वरों का मूल्य इतना बढ़ा-चढ़ा था?

हमें ज्ञात हुआ है कि केसरिया (चंपारन)-निवासी बाबू इंद्रदेवनारायण को गोसाईंजी के किसी चेले की, एक लाख दोहे-चौपाइयों में, लिखी हुई गोसाईंजी की जीवनी प्राप्त हुई है। सुनते हैं, गोसाईंजी ने पहले उसका प्रचार न होने का शाप दिया था; किंतु लोगों के अनुनय-विनय से शाप-मोचन का समय संवत् १९६७ निर्धारित कर दिया। तब तक उसकी रक्षा का भार उसी प्रेत को सौंपा गया, जिसने गोसाईंजी को श्रीहनुमान्‌जी से मिलने का उपाय बताकर श्रीरामचंद्रजी के दर्शन की राह दिखाई थी। वह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के घर पड़ी रही। एक मुंशीजी उसके बालकों के शिक्षक थे*। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उसकी पूरी नक़ल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्रोधित हो वह ब्राह्मण उनके वध के निमित्त उद्यत हुआ, तो मुंशी-जी वहाँ से चंपत हो गए। वही पुस्तक किसी प्रकार अलवर पहुँची, और फिर पूर्वोक्त बाबू साहब के हाथ लगी।

क्या हम अपने स्वजातीय इन मुंशीजी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा नहीं करेंगे? उन्होंने सारी पुस्तक की नक़ल कर ली, तब तक ब्राह्मण-देवता के कानों तक ख़बर न पहुँची, और जब भागे, तो अपने बोरिए-बस्ते के साथ उस दीर्घ-काय ग्रंथ को भी लेते हुए! इसके साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अश्रुतपूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्त-गत करने पर बधाई न देनी चाहिए?

पर प्रेत ने उसकी कैसे रक्षा की, और वह उस ब्राह्मण के घर कैसे पहुँची? यह कुछ हमारे संवाद-दाता ने हमें नहीं बताया।

जो हो, जिस प्रेत की बदौलत सब कुछ हुआ, उसके साथ गोसाईंजी ने यथोचित प्रत्युपकार नहीं किया। वन-खंडी तथा केशवदास के समान उसके उद्धार का उद्योग तो भला करते। उलटे उसके माथे ३०० वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया!

विद्वद्वर मिश्र-बंधुओं के लिखे 'नवरत्न'* की समा-लोचना के समय बाबू इंद्रदेवनारायण ने 'मर्यादा' में कदाचित् इसी ग्रंथ के दो-एक पृष्ठ प्रकाशित किए थे। अभी तक यह पूर्ण जीवनी अथवा इसका कोई विशेष अंश सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित नहीं किया गया है; जिससे लोगों को इस पर विचार करने का अवसर मिलता।

ग्रियर्सन साहब ने मार्च, १८९८ ई० के एक लेख में प्लेग से इनका स्वर्ग-वास होना सिद्ध करने की चेष्टा की थी। परंतु उनकी युक्तियाँ सर्वथा निर्बल थीं; जैसा कि 'गोस्वामी तुलसीदास'-नामक पुस्तक में दिखलाया गया है। पुनर्विचार कर जुलाई, १९०३ ई० के 'तुलसीदास कवि और धर्म-संशोधक'-शीर्षक लेख में उन्होंने स्वयं लिखा कि "१६२३ ई० में, बनारस में, गोसाईंजी पर प्लेग का आक्रमण हुआ था, यद्यपि यह स्पष्ट है कि इस बीमारी से उनकी मृत्यु नहीं हुई।" मगर हमें उनके प्लेग-ग्रस्त होने ही में संदेह है।

हमारी दृष्टि में गोस्वामीजी के जीवन की प्रायः सभी बातें विवाद-ग्रस्त हैं। इससे हम इन वर्णनों में किसी का अधिक समय नहीं नष्ट करना चाहते। जिसे इन सब बातों के जानने और इनकी विस्तृत समालोचनाएँ देखने की इच्छा हो, वह 'गोस्वामी तुलसीदास'-नामक ग्रंथ पढ़े। उसमें हमने यथासाध्य इन सब बातों की आलोचना करने की चेष्टा की है।

* प्रतीत होता है, वह ब्राह्मण अपने बालकों को अरबी-फ़ारसी पढ़ाते थे, तभी तो कायस्थ शिक्षक नियुक्त हुए थे।

* इस उत्कृष्ट पुस्तक का द्वितीय संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण गंगा-पुस्तकमाला में निकल रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम यहाँ गोसाईंजी के केवल उन गुणों का थोड़ा-सा वर्णन करेंगे, जिनके कारण यह जगद्विख्यात, सर्व-प्रिय तथा सबके सम्मान-भाजन हुए हैं। उन गुणों को जानने के लिये इन्हें कवि और धर्म-प्रचारक, इन दो रूपों में देखना होगा।

संसार में गोसाईंजी के आविर्भाव के पूर्व से ही हिंदू-समाज में शिथिलता आ गई थी, और बहुत-से मतों के अनुयायी धर्म के नाम पर कुत्सित कर्म एवं अत्याचार और कुव्यवहार का प्रचार करने लगे थे। अनेक धर्म-संशोधक धर्म-रक्षा में लगे हुए थे। श्रीरामानंदजी वैष्णव-धर्म के रक्षक और संशोधक हो चुके थे; परंतु राम-नाम में प्रेम तथा विश्वास उत्पन्न करनेवाला गोसाईं-जी से बढ़कर कोई नहीं हुआ। इन्होंने इसे पूर्व से पश्चिम तक फैला दिया। इन्होंने कोई नया संप्रदाय नहीं स्थापित किया। पंडित रामगुलाम तथा पंडित शेषदत्त आदि की गणना जो इनकी शिष्य-परंपरा में होती है, सो केवल रामायण-शिक्षा के संबंध से; क्योंकि कबीर-पंथी, दादू-पंथी, नानकशाही, रयदासी, आर्य-समाजी और ब्रह्म-समाजी आदि की तरह किसी को अपने तईं तुलसी-दासी या तुलसी-पंथी कहते नहीं सुना।

इन्होंने लंबी-लंबी वक्तृताओं और उपदेशों का भी आश्रय नहीं लिया, न जहाँ-तहाँ दौड़-धूपकर शास्त्रार्थ में उलझते फिरे, और न भिन्न-भिन्न प्रांतों में भ्रमण कर दिग्विजय का डंका पीटते या पिटवाते रहे। इन्होंने स्वदेशियों के दुःख से दुःखित होकर और ही उपाय का अवलंबन किया।

एकाग्र-चित्त हो, अपने इष्टदेव श्रीरामचंद्र के पाद-पद्म हृदय में धारण कर, आपने केवल लेखनी का सहारा लिया, और उसी के बल से आप दुखियों का दुख दूर करने, सुखियों को अधिकतर सुखी बनाने, धर्म-विरोध की ज्वाला शांत करने, धर्म-जिज्ञासुओं की तृष्णा को बुझाने, और वर्तमान तथा भविष्य के युवकों एवं उदार-चेताओं को देखने, सोचने और अनुभव करने की योग्यता देकर उन्हें परम उत्साही, साहसी तथा पक्का धार्मिक बनाने में प्रवृत्त हुए।

ऐसे समय में, जब अन्य प्रकार के अत्याचारों और उत्पातों की बात दूर रहे, मत-मतांतर के झगड़ों से लोगों की बुद्धि भ्रांत हो रही थी, जब शैव और वैष्णव लोग परस्पर विरोध रखना ही मानो अपने इष्टदेव की उत्कृष्ट उपासना समझते थे, जब रामोपासक और कृष्णोपासक परस्पर एक दूसरे को नीचा दिखाने ही में अपनी धर्मज्ञता और ईश्वर की प्रसन्नता मानते थे, आपने अपनी कवित्व-शक्ति से स्वदेशियों को सच्चे धर्म-मार्ग में अटल रखने के लिये ऐसा दृढ़ तथा प्रबल प्रयत्न किया कि उससे लोग आज तक लाभ उठा रहे हैं, और उठाते ही रहेंगे।

आज सब संप्रदायों के अनुयायी इनके सदुपदेश-गर्भित ग्रंथों का आदर करते और उनसे सत्शिक्षा ग्रहण कर लेते हैं। लाखों इनके लेखों ही पर अपना धर्म तथा सदाचार स्थापित किए हुए हैं, और उन्हीं को वेद-शास्त्र, सब कुछ समझते हैं। आज भारत का ऐसा कौन-सा भाग है, जहाँ के लोग किसी-न-किसी ढंग से आपकी सत्शिक्षाओं से लाभ न उठाते हों? राज-महलों से लेकर फूस की झोपड़ियों तक में आपके सदुपदेश गूँज रहे हैं।

कहीं व्यास-गद्दी लगाए पंडितजी इनके ग्रंथों की व्याख्या करते हैं, तो कहीं गाँवों के मंदिरों में ढोल और झाँझें बजा-बजाकर, झूम-झूमकर, लोग इनकी रचनाएँ गा रहे हैं। कहीं कुछ लोग बरगद या पकरिया के पेड़-तले बैठे रामायण का पाठ कर रहे हैं।

गोसाईंजी को स्वर्ग-प्रयाण किए लगभग ३०० वर्ष हुए; परंतु हम समझते हैं, आज भी यह अपनी रचनाओं के रूप में विराजमान होकर सजीव के समान हम लोगों को सुमार्ग दिखा रहे हैं, हमारा कल्याण कर रहे हैं। हम लोग इनकी रचनाओं में धर्म-कर्म तथा सामाजिक, व्यावहारिक, राजनीतिक, सभी बातों की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। धर्म-प्रचार का हाल तो पूज्य मित्र स्वर्गीय श्रीअंबिकादत्त व्यासजी की इसी कविता से पूर्ण प्रकट है—

डगर-डगर अरु नगर-नगर माँहि
कहनि पसारी राम-चरित-अवलि की;
कहै 'कबि अंबादत्त' राम ही की लीलन सों
भरि दीनी भीर सबै चहलि-पहलि की।
सूद्रन ते ब्राह्मन लौं, मूरुख ते पंडित लौं,
रसना डुलाई सबै "जै-जै बलि-बलि" की;
जम को भगाय, पाप-पुंज को नसाय, आज
तुलसी गुसाईं नाक काटि लीनी कलि की।

अब कवि तुलसीदास की ओर दृष्टि डालिए। आप कविता-नभोमंडल के उज्ज्वल नक्षत्र माने जाते हैं। आप निस्संदेह प्राकृत कवि थे। प्रकृति-पुस्तक के पृष्ठों से आप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने बहुत कुछ पाठ-ग्रहण किया था। अपने सम-सामयिक विलायती कवि शेक्सपियर के सदृश आप बड़े तत्त्वज्ञ तथा प्रकृति और मानव-स्वभाव के उत्तम ज्ञाता थे। संत-समाज के साथ देशाटन में, पुनः गृहस्थी में, इन्हें इन सब बातों के समझने-बूझने और बुरे-भले के अनुभव और विचार का अच्छा अवसर मिला था। इन्होंने संस्कृत-साहित्य का भी खूब अनुशीलन किया था। इसी से इनकी बुद्धि अति विचक्षण और कवित्व-शक्ति बहुत बलवती हो गई थी। कविता-कामिनी को सुसज्जित कर मनोमोहिनी बनाने के लिये इनकी बुद्धि ने आकाश-पाताल, सरिता-सरोवर, गह्वर-गुफा, गंभीर सागर, पुष्पोद्यान, मरुस्थान, सभी कहीं से उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करने में त्रुटि नहीं की, और उसे विविध अलंकारों से अलंकृत एवं अद्भुत भावों से भूषित कर साहित्य-वाटिका में उपस्थित किया है। जहाँ जिस रस की कविता पढ़िए, वहाँ वही रस बरस रहा है।

प्राकृतिक शोभा के चित्रण मानवीय प्रकृति के प्रदर्शन, घटनावलियों के वर्णन, तथा अन्य सभी स्थानों में इनकी लेखनी अपना अपूर्व कौशल दिखा रही है। कल्पना-शक्ति जैसी बलवती है, वैसी ही श्रुति-गुण-विशिष्ट है। जहाँ जैसा भाव दिखाना है, वहाँ वैसे ही शब्द भी रक्खे गए हैं। कल्पना की उत्तेजना के साथ-साथ वाक्य भी प्रबल होते गए हैं। वाक्य ऐसे धारा-प्रवाह हैं कि शायद उनकी रचना में इन्हें कुछ कष्ट ही नहीं हुआ। पाठक को यही प्रतीत होता है कि वह एक बाधा-हीन और अखंड प्रवाहित वाग्धारा में प्रवेश कर विना परिश्रम के बहा जा रहा और अकथनीय सुख का अनुभव कर रहा है।

यों तो गोसाईंजी की रचनाएँ अनेक कही और सुनी जाती हैं, परंतु उनमें रामायण, कवितावली, गीतावली और विनय-पत्रिका ही मुख्य हैं; और इनमें भी रामायण सर्व-प्रधान है।

शिष्य-परंपरा में—स्वयं गोसाईंजी से संबंध रखनेवाले मिर्ज़ापुर-निवासी पं० रामगुलामजी के कथनानुसार—रामलला-नहछू, बरवै-रामायण, पार्वती-मंगल, रामाज्ञा, दोहावली, कवितावली, गीतावली, कृष्ण-गीतावली, वैराग्य-संदीपिनी, जानकी-मंगल, मानस-रामायण, और विनय-पत्रिका, ये १२ ग्रंथ आदि से गोस्वामीजी-कृत माने जाते हैं। इधर लोगों ने इनके ग्रंथों की संख्या ३२ से ऊपर पहुँचा दी है। परंतु उनमें सबको सब लोग इन्हीं की रचना नहीं मानते। कोई किसी को मानता है, कोई किसी को। बहुत-से लोग उपर्युक्त १२ ग्रंथों में भी सतसई तथा प्रथम चार पुस्तकों के गोस्वामीजी-कृत होने में संदेह करते हैं। तब कड़खा और झूलना आदि की बात कौन चलावे?

हमारी समझ में, गोसाईंजी के ऊपर बहुत-सी पुस्तकों का भार लादने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि किसी का यह विचार हो कि रचना-बाहुल्य ही इनकी सुख्याति का कारण है, या होगा, तो हम इसे भारी भूल कहेंगे। यदि इनके नाम से प्रसिद्ध सभी पुस्तकें अन्य कवि की रचना सिद्ध हो जायँ, तो भी कुछ क्षति नहीं; केवल 'रामचरित-मानस' ही के कारण इनका मस्तक जगत् में सदा ऊँचा रहेगा, और साहित्य-संसार में यह सदैव उच्च आसन के अधिकारी बने रहेंगे।

जो हो, अब रामायण आदि चार पुस्तकों के विषय में कुछ विशेष कहने की हमारी इच्छा है। इन चार ग्रंथों को गोसाईंजी ने भिन्न-भिन्न ढंगों, भावों और अभिप्रायों से, भिन्न-भिन्न भाषाओं में, लिखा है। यह बात इनके पाठ से ही प्रकट होती है।

रामायण की भाषा बैसवाड़ी और अवधी है। इसमें संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के शब्द भी बहुत आए हैं। इसमें गोसाईंजी ने 'सूत' के समान श्रीरामचंद्र का ऐश्वर्य तथा माधुर्य वर्णन किया है। इनकी रचनाओं में इसे प्रथम आसन प्राप्त है। इसमें धर्म जाज्वल्यमान है। यह सब प्रकार की सत्‌शिक्षाओं की मंजूषा है। कविता सर्वांग-सुंदरी बनकर इसमें नृत्य कर रही है। कलुष का कहीं लेश भी नहीं। इसके सभी पात्र सजीव हैं, और वे कार्य करते, सोचते-विचारते हुए हम लोगों के नेत्रों के सामने उपस्थित किए गए हैं। इसके पाठ से बोध होता है कि नाटक के पात्र नेपथ्य से निकल-निकलकर रंग-मंच पर आते और प्रत्यक्ष रूप से वार्तालाप तथा अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। संसार में सुख-पूर्वक जीवन बिताने एवं परलोक में परमानंद प्राप्त करने के लिये जितनी बातों के जानने की आवश्यकता है, इसके पात्र हमें उन सभी बातों की शिक्षा दे रहे हैं।

इसी से ग्रियर्सन साहब ने कहा है कि "इसके पात्र वीर-रस-पूर्ण हैं, और मेरे नेत्रों के सामने अँगरेज़ी-महा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्यों के पात्रों के समान नाच रहे हैं।" केवल इन्हीं कई शब्दों में आपने सुप्रसिद्ध विलायती कवि शेक्सपियर तथा मिल्टन के साथ इन्हें आसन दे दिया है।

हम कहते हैं, गोस्वामीजी के सदृश मिल्टन का भाग्य नहीं है। उनकी रचनाएँ केवल छात्रों के हाथों और पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाती हैं; किंतु इनकी रामायण छात्रों के अध्ययनागारों और पुस्तकालयों के अलावा गाँव-गाँव, घर-घर, राज-प्रासादों और झोपड़ियों में भी विराज रही है।

और, शेक्सपियर? उन्होंने मानव-प्रकृति का चाहे जैसा चित्रण किया हो, उनकी कविता में ईश्वर-प्रेम उत्पन्न करने की शक्ति नहीं पाई जाती। और, पोर्शिया के स्वयंवर में वसेनियो के हाथ से संदूक खोले जाने के समय और उसके पूर्व जब हम पोर्शिया के चित्त के भावादि की सीता के स्वयंवर में रामचंद्र के शिव-धनु तोड़ने के समय उत्पन्न सीताजी के चित्त के भावों से तुलना करते हैं, या रामचंद्र के पितृ-स्नेह तथा कार्डिलिया के पितृ-प्रेम को तुलना की तुला पर चढ़ाते हैं, तब, हमारी समझ में, शेक्सपियर का पल्ला बहुत ऊँचा हो जाता है। और, "उठा रहता है ऊँचा कम-वज़न पल्ला तराजू का।", यह बात सभी जानते हैं।

परंतु खेद है, गोस्वामीजी के ऐसे अपूर्व रचना-सौंदर्य को लोभी संपादक और क्षेपकानुरागी पंडित टीकाकार नित्यप्रति नष्ट करते जा रहे हैं, और कोई कान तक नहीं फटफटाता। किसी ने 'स' और 'न' को 'श' और 'ण' बना-बनाकर रसीली भाषा को कर्ण-कटु कर देने में अपनी क्षमता का परिचय दिया है, तो किसी ने शब्दों के हिज्जे ही को संस्कृत के अनुसार ठीक किया है। किसी ने स्वेच्छानुसार शब्दों को एकदम बदल डाला है। कोई इस 'रामचरित-मानस' के प्राचीन सोपानों में जहाँ-तहाँ क्षेपकों की नई-नई ईंटें जमाते गए हैं, तो कोई एक नूतन सोपान का निर्माण कर आठ कांड की रामायण छापने लगे हैं, और 'श्रीगोस्वामी तुलसीदास-कृत लव-कुश-कांड' ऐसा सर्वथा मिथ्या कहने में इन लोगों ने कुछ भी संकोच नहीं किया। यह नहीं विचारा कि गोसाईंजी-कृत यह आधी चौपाई कि "सप्त प्रबंध सुभग सोपाना;" इस कथन को स्पष्ट झुठला देगी। हाँ, यदि इसे भी "अष्ट प्रबंध" कर देते, तो कुछ इज़्ज़त रह जाती।

क्या प्राचीन अँगरेज़ी-ग्रंथों के संपादन में संपादक और टीकाकार ऐसी ही अंधाधुंध मचाते हैं? कदापि नहीं। १५१६ ई० की मोर साहब की बनाई युटोपिया (Utopia)-पुस्तक का एक संस्करण J. Rawson Lumby ने १८९७ ई० में निकाला है। किंतु एम्० ए० होकर भी उन्होंने उसके शब्दों के हिज्जे तक को भी नहीं छुआ है, रद्दोबदल की कौन कहे। ऐसा करने में क्या हानि है, इसे वे लोग खूब समझते हैं; परंतु जिन्हें अपना पांडित्य दिखलाना या धन-राशि बढ़ाना है, वे इस ओर क्यों ध्यान देने लगे?

रामायण के सौंदर्य की रक्षा करना क्या किसी साहित्य-सम्मेलन या हिंदी-सभा का कर्तव्य नहीं है? प्राचीन कवियों और लेखकों की रचनाओं को खोजकर प्राप्त करना और लुप्त होने से उन्हें बचाना यदि कर्तव्य समझा जाता है, तो क्षेपकों के कंटकों और लता-जालों से आच्छादित हो रहे साहित्य-वाटिका के ऐसे सुखद और सुफलद वृक्ष को दीदोदानिश्ता विनष्ट और शोभा-रहित होने देना क्या हिंदी-प्रेमियों का उचित कार्य कहा जायगा?

'गीतावली' की रचना व्रज-भाषा में हुई है, और उसकी भाषा बड़ी ही मधुर और कर्ण-सुखद है। उसके अधिकांश में श्रीरामचंद्र की बाल-लीला का वर्णन हुआ है। वर्णन सर्वथा स्वाभाविक है। देखिए, दोनों भाई मुनि के संग कैसे जा रहे हैं—

खेलत चलत, करत मग कौतुक,
बिलमत सरित सरोवर-तीर;
तोरत लता, सुमन, सरसीरुह,
पियत सुधा-सम नीर।
बैठत विमल सिलनि, बिटपनि तर
पुनि-पुनि बरनत छाँह, समीर;
देखत नटत केकि, कल गावत
मधुप, मराल, कोकिला, कीर।

आहा! कैसी सहज बाल-चपलता है!

'कवितावली' बैसवाड़ी-मिश्रित व्रज-भाषा में है। इसके छंद बड़े ज़ोरदार हैं। शब्द-विन्यास प्रशंसनीय है। शब्द नहीं हैं, आशय की मानो प्रतिध्वनि हैं। लंका-दहन के वर्णन में लंका-निवासियों की व्यग्रता का चित्र खींच दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग वहीं खड़े निज नेत्रों से सब घटनाएँ देख रहे हैं। देखिए, लंका में आग लगी है। कैसी हलचल मची है! पुर-वासियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मुखाकृति, कार्य तथा बोल-चाल से कैसी व्यग्रता, घबराहट और निराशा प्रकट हो रही है ! सुनिए—

जहाँ-तहाँ बुबुकि बिलोकि बुबुकारी देत—
जरत निकेत, धाओ-धाओ, लागी आगि रे ;
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
ढोटा, छोटे छोहरा, अभागे भोंड़े, भागि रे।
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष, वृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगाओ, जागि-जागि रे ;
'तुलसी' बिलोकि अकुलानि जातुधानि कहैं—
बार-बार कह्यो पिय, कपि सों न लागि रे।
लागि-लागि आगि, भागि-भागि चले जहाँ-तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत ना सँभारहीं ;
छूटे बार, बसन उघारे, धूम-धुंध-अंध,
कहैं बारे, बूढ़े 'बारि-बारि' बार-बारहीं।
हय हिहिनात, भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि, पेलि, रौंदि, खौंदि डारहीं ;
नाम लै चिलात, बिललात, अकुलात अति,
तात-तात तौंसियत, झौंसियत झारहीं।

"Full fathom five thy father lies." के घोषक और प्रशंसक क्या इन कवित्तों के यमक या अनुप्रासों में कुछ आनंद का अनुभव करेंगे ?

'विनय-पत्रिका' को गोसाईंजी ने अधीन होकर लिखा है। इसकी रचना की कथा यही कह रही है। यह विनय का एक परमोत्कृष्ट ग्रंथ है। लोगों का कथन है कि ऐसा पांडित्य इन्होंने अपने अन्य ग्रंथों में नहीं दिखाया। इसके पद ग्रियर्सन साहब को ऐसे पसंद आए हैं कि वह इसके १४८-१४९वें पदों को कृस्तानी भजन-पुस्तक में स्थान पाने के योग्य समझते हैं।

जो लोग इनकी सत्शिक्षाओं तथा कल्याण-कारिणी रचनाओं में उच्चाटन और वशीकरणादि देखते हैं, 'नवाह'-'सप्ताह' सिखाकर लोगों को भरमाते हैं, वे उनका दुरुपयोग करते हैं। गोसाईंजी ने जगत् के उद्धार और कल्याण का उपाय किया है; मारण, वशीकरण, उच्चाटन सिखलाकर संसार में जकड़ने का यत्न नहीं किया।

अंत में हम यही कहेंगे कि यदि आप स्वच्छ हृदय से सचमुच गोस्वामीजी का आदर-सम्मान करते हैं, तो मन लगाकर उनके ग्रंथों को—विशेषकर रामचरित-मानस को—पढ़िए। उसके पात्रों तथा उपदेशों से सत्शिक्षा ग्रहण कर उस पर अमल कीजिए; जिससे उभय लोक में सुख की संभावना है। केवल झाँकी और पुष्प-दीप अर्पण करने ही पर संतोष न कीजिए।

आशा है, इस बार माधुरी में उसके सुविज्ञ लेखकों के गवेषणा-पूर्ण लेखों से श्रीगोसाईंजी के संबंध की कुछ विवाद-ग्रस्त बातों का भी पूर्ण रूप से निर्णय हो जायगा।

शिवनंदनसहाय

अर्थ

कुछ न पूछ, मैंने क्या गाया; बतला कि क्या गवाया ?
जो तेरा अनुशासन पाया, मैंने शीश नवाया।
क्या-क्या कहा, स्वयं भी उसका आशय समझ न पाया;
मैं इतना ही कह सकता हूँ—जो कुछ जी में आया।
जैसी हवा चली, वैसा ही वेणु-रंध्र-रव छाया;
जैसा धक्का लगा, लहर ने वैसा ही बल खाया।
जब तक रही अर्थ की, मन में, मोह-कारिणी माया,
तब तक कोई भाव भुवन का भूल न मुझको भाया !
नाची कितने नाच, न-जाने, कठ-पुतली-सी काया;
मिटी न तृष्णा, मिला न जीवन, बहुतेरा मुँह बाया।
अर्थ भूलकर इसीलिये अब ध्वनि से ध्यान लगाया;
दूर किए सब बाजे-गाजे, ढूह ढोंग का ढाया।
हृत्तंत्री के तार मिलें, तो स्वर हो सरस सवाया;
और, समझ जाऊँ फिर मैं भी—क्या है मैंने गाया।

मैथिलीशरण गुप्त

जर्मनी-आस्ट्रिया की सैर

(दिसंबर १९२१ से आरंभ)

[१]



तीन महीने पहले ही से हम लोग अनेकों मंसूबे बाँधने लगे थे। अंत को यह राय ठहरी कि बड़े दिन की छुट्टियाँ जर्मनी और आस्ट्रिया की सैर में बिताई जायँ। पहले तो यह मंसूबा था कि इटली और दक्खिनी फ्रांस की सैर की जाय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु फिर किसी कारण से यह इरादा छोड़ना पड़ा।

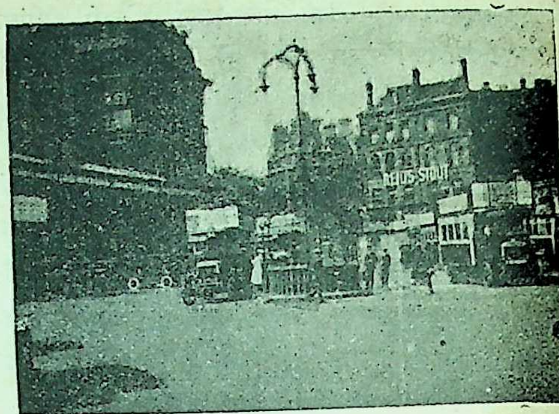
अस्तु। छुट्टी शुरू होते ही मेरे एक मित्र—'रामन'—ऑक्सफ़र्ड से, और दो मित्र—'आचार्य' और 'ऐयर'—कैंब्रिज से लंदन आ गए। तीनों मित्र मदरासी थे, इसलिये हमको आपस में अँगरेज़ी ही बोलनी पड़ती थी।

असबाब का यहाँ बहुत बखेड़ा नहीं होता। हर-एक के पास सूट-केस में एक सूट, रात के सोने का पैजामा सूट, कमीज़ें, अंडर-वीयर और हजामत का सामान-भर रहता है। बिस्तर वग़ैरह सब कुछ जहाँ ठहरते हैं, वहीं मिल जाता है। रेल पर भी, ज़रूरत पड़ने पर, स्वच्छ तकिए और कंबल किराए पर मिलते हैं।

हम लोग विक्टोरिया-स्टेशन पर ठीक डेढ़ बजे दिन को पहुँच गए, और असबाब (सिर्फ़ चार सूट-केस) रजिस्ट्री से सीधा बर्लिन भेज दिया।

टिकट हमने दो-तीन रोज़ पहले ही 'टामस कुक' के यहाँ से ख़रीद लिए थे। यह कंपनी चाहे जहाँ का, चाहे जिस रास्ते से जाने का, टिकट बना देती है। टिकट उसी क़ीमत में दिए जाते हैं, जिसमें स्टेशन पर मिलते हैं। टिकट पहले से ख़रीद लेने के कारण गाड़ी के वक़्त भागा-भाग से बचाव हो जाता है।

यहाँ टिकट-घर में धक्कमधक्का बिलकुल नहीं होता। जैसे-जैसे मनुष्य आते-जाते हैं, वैसे-वैसे, क्रम से, एक के पीछे एक, लाइन बाँधकर खड़े होते जाते हैं, और अपनी पारी आने पर टिकट लेते हैं। सिर्फ़ स्टेशन पर ही नहीं, हर जगह, जहाँ भीड़ ज़्यादा होती है, वहाँ के मनुष्य ऐसा ही करते हैं। इससे किसी को कष्ट नहीं होता, और सब काम आसानी से हो जाता है।



विक्टोरिया-स्टेशन का बाहरी दृश्य

विक्टोरिया-स्टेशन लंदन के बड़े-बड़े स्टेशनों में से एक है। भारत और योरप के यात्री इसी स्टेशन से आया-जाया करते हैं। स्टेशन के बाहर ही फ्रेंच और इटैलियन भोजनालय हैं। सर्राफ़ों की भी दूकानें हैं; जहाँ योरप के हरएक देश का सिक्का मिल जाता है। मैंने एक बर्लिन-बैंक के नाम लंदन से ही हुंडी ले ली थी। इसलिये हम लोगों को इन सर्राफ़ों के पल्ले पड़कर कष्ट नहीं उठाना पड़ा।

ठीक दो बजे ट्रेन रवाना हुई। स्टेशन के पास ही टेम्स-नदी को पार करके, लंदन के दक्खिनी हिस्से में होकर रेल चलने लगी। मीलों तक ट्रेन पुल के ऊपर थी। नीचे मकान थे, जिनकी सिर्फ़ छतें और चिमनियाँ ही देख पड़ती थीं।

दुर्भाग्य-वश उस रोज़ आँधी ख़ूब चल रही थी। ठंडक भी ख़ूब थी। पर अभी तक बरफ़ (Snow) नहीं पड़ी थी। लंदन से डोवर का रास्ता क़रीब एक घंटे का है। ट्रेन सीधी जहाज़ के किनारे जाकर खड़ी हो जाती है।

गाड़ी रुकते ही मालूम हुआ, तूफ़ान की भयंकरता के कारण आस्टेंड (Ostend) के स्टीमरों की यात्रा दो रोज़ से बंद है। हवा की गति इँगलैंड से योरप की तरफ़ थी। इस कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरपियन बंदरगाहों में जहाज़ों का जाना ख़तरनाक था। यह भी मालूम हुआ कि आँधी की विकटता जो ऐसी ही रही, तो दो-तीन रोज़ और जहाज़ न जा सकेंगे। ट्रेन आध घंटे में लंदन लौटनेवाली थी; पर हम लोग धुन के पक्के और मनमौजी ठहरे! जब चल पड़े तब लौटना कैसा!

पता लगा कि रात के दस बजे एक स्टीमर बोलन (Bologne) जायगा। बस, हमने डोवर से बोलन के टिकट ख़रीदे, और ब्रेक से अपना असबाब निकलवाकर क्लाक-रूम में रखवा दिया। रिफ़्रेशमेंट-रूम में जाकर सबने चाय पी, कुछ भोजन भी किया। यहाँ सिर्फ़ ठंडा भोजन और चाय मिलती थी। हम लोगों में से दो-एक को मांस से घृणा थी। उन्होंने सिर्फ़ चाय पी। फिर यह राय ठहरी कि बस्ती में जाकर कोई अच्छा भोजनागार (Restaurant) ढूँढ़ना चाहिए।

बड़ी कड़ाके की सरदी पड़ रही थी। वेंकटाचारियर महाशय अभी हाल ही में इनफ़्लुएंज़ा की बीमारी से उठे थे। उनके पास ऐयर को छोड़कर मैं और रामन, दोनों स्टेशन से शहर की ओर चल खड़े हुए। हवा बहुत वेग से चल रही थी। सीधे चलना मुशकिल था। अँधेरा हो गया था। हम लोग रास्ते से बिलकुल अपरिचित थे। बड़ी कठिनता से, पचीसों बार पूछने के बाद, हम आबादी के पास पहुँचे। देर बहुत हो गई थी। भूख भी लग रही थी। इसीलिये बहुत खोज-खाज नहीं की। अधिक समय न नष्ट कर एक फलवाले के यहाँ से कुछ केले, सेब, नारंगी, खजूर वग़ैरह फल ही लिए, और लौट पड़े।

इधर बहुत देर हो जाने के कारण हमारे मित्र घबरा रहे थे। हम जब लौटकर स्टेशन पहुँचे, तब स्टेशन का भी रेस्टोराँ (रेफ़्रेशमेंट-रूम) बंद हो चुका था। वेटिंग-रूम में खूब आग जल रही थी। वहाँ, आतिशदान के सामने, बैठकर हम लोगों ने फलाहार ही से पेट-पूजा की, और स्टीमर का इंतज़ार करने लगे।

इतने में सरदी के सताए दो कांस्टेबिल हम लोगों की आज्ञा लेकर आग तापने लगे। यहाँ की पुलीस बहुत ही भली है। उसकी तारीफ़ सारे संसार में है। पुलीस के आदमी सबकी, हर तरह से, मदद करने को तैयार रहते हैं। उन दोनों सिपाहियों ने कोशिश करके हमको एक घंटा पहले ही से जहाज़ पर पहुँचा दिया था। अभी तक कोई कुली भी नहीं आया था। उन बेचारों ने खुद हमारा असबाब उठाकर स्टीमर तक पहुँचा दिया।

समुद्र में लहरें बहुत उठ रही थीं। स्टीमर डॉक से जकड़ा हुआ था। इसलिये अभी तक हिलता न था। स्टीमर पर पहुँचते ही भोजन के कमरे में जाकर हम लोगों ने भोजन किया, और आराम करने के वास्ते सैलून में जा लेटे। इँगलिश चैनल पार करने में क़रीब डेढ़ या दो घंटे लगते हैं। मुसाफ़िरों को सोने का अवकाश नहीं मिलता। सैलून में चारों तरफ़ सोने और आराम करने के लिये गद्दे बिछे हुए थे। उन पर कंबल भी रक्खे थे। हरएक के सिरहाने के नीचे एक-एक तसला भी रक्खा हुआ था।

ठीक दस बजे स्टीमर रवाना हुआ। खुले समुद्र में पहुँचते ही जहाज़ के साथ ही पेट में भी हलचल शुरू हो गई। समुद्री बीमारी (सी-सिकनेस) जिनको होती है वे ही उसको समझ सकते हैं। एक हज़रत हरएक से पूछते फिरते थे कि इस बीमारी के लक्षण क्या हैं? बेचारे को शीघ्र ही मालूम हो गया कि जब यह बीमारी होती है, तब और कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सूझता। जी मचलाता है, वमन होने लगता है। हालत बहुत ही बुरी हो जाती है।

स्टीमर पर रवाना होने के पहले समुद्री बीमारी के बारे में हम लोग कुछ क़िस्से सुन चुके थे। यथा—

"एक आइरिश को एक दफ़े सी-सिकनेस ने बेहद तंग किया। उसका हाल बहुत बुरा हो गया। कप्तान ने उसके पास जाकर कहा—'पैट! घबराओ नहीं; तुम मरोगे नहीं।' उसने तुरंत जवाब दिया—'क्या! मरूँगा नहीं? हाय, इसी मौत की आशा से तो मैं अब तक ज़िंदा बैठा था।"

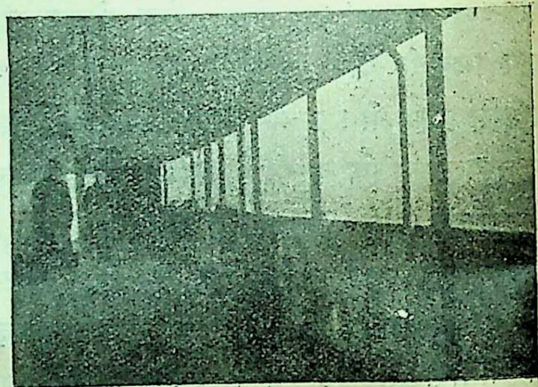
ठीक है, इस बीमारी से घबराकर कभी-कभी जी चाहता है कि सारा जहाज़ डूब जाय, और इस तरह शांति मिले।

हवा बहुत ज़ोर की थी। डेक पर खड़ा होना मुशकिल था। अंदर सैलून ही में जाकर लेटना पड़ा। यहाँ भी असबाब एक सिरे से दूसरे सिरे तक लुढ़क रहा था। कोई-कोई मुसाफ़िर भी बे-सुध होते ही अपने गद्दे से ज़मीन पर लुढ़क जाते थे। पोर्ट-हाल मोटे शीशे की खिड़कियों से बंद थे। परंतु जब कभी जहाज़ एक तरफ़ बहुत झुक जाता था, तो समुद्र की लहरें शीशे के ऊपर होती हुई निकल जाती थीं।

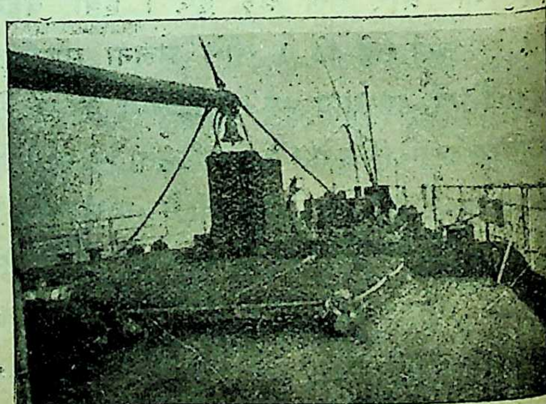
बहुतों ने पास रक्खे हुए तसलों में वमन करना शुरू किया। जिनकी तबियत ठीक थी, वे भी यह दृश्य देखकर घबरा उठे और वमन करने लगे।

मुझे थोड़ी देर बाद नींद आ गई। जब आँखें खुलीं, तो मालूम हुआ कि हम लोग कैले की तरफ़ जा रहे हैं; क्योंकि बोलन का बंदरगाह तूफ़ान के सबब से बंद था। कैले पहुँचते-पहुँचते तूफ़ान ने प्रचंड रूप धारण किया। स्टीमर के एक-आध लाइफ़-बोट लहरों की चपेट में आकर चकनाचूर हो गए। दो-तीन मल्लाह भी घायल हो गए। रात को कैले के बंदर में भी घुसना खतरनाक था। अतएव कप्तान ने फिर डोवर वापस चलने की ठानी।

डोवर लौटकर १२ बजे दोपहर तक बंदर के बाहर ही पड़े रहे। सुबह होते ही मैं डेक पर पहुँच गया। जहाज़ का हिलना कुछ कम हो गया था। फिर भी डेक पर बग़ैर कुछ पकड़े नहीं खड़ा हो सकता था। सूर्य-देवता भी निकल आए थे, और डोवर की सफ़ेद पहाड़ियाँ साफ़ दिखलाई पड़ती थीं। अधिकांश लोगों ने स्टीमर पर ब्रेक-फ़ास्ट किया। जो पहले पहुँचे, उन्हें



डेक का एक किनारा



डेक का अगला हिस्सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उमर ख़य्याम

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन अच्छी तरह प्राप्त हो गया, पर औरों को सिर्फ़ चाय ही पीकर संतोष करना पड़ा।

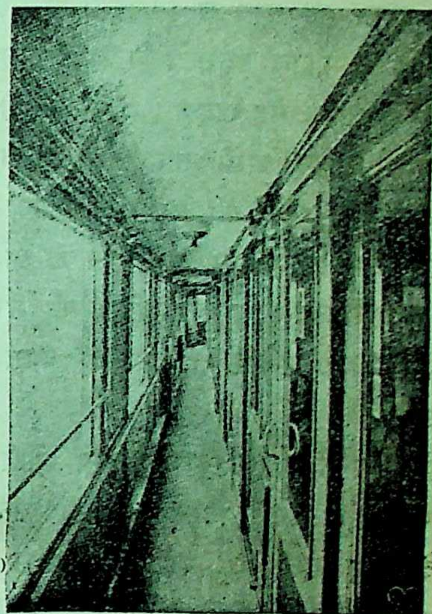
दूसरी बार डोवर से १२ बजे रवाना हुए। दो बजते-बजते कैले दिखलाई पड़ने लगा। अभी तक लहरों की भीषणता कम न हुई थी। कैले-बंदर का प्रवेश-पथ बहुत तंग है। जहाज़ से बाँध की टक्कर लगने का बहुत डर था। सब लाइफ़-बोट तैयार थे; परंतु ईश्वरेच्छा से जैसे-तैसे जहाज़ किनारे लगा, और हम लोग ईश्वर को धन्यवाद देते ज़मीन पर उतर पड़े। अभी तक हमारे दिमाग़ से जहाज़ का हिलना नहीं हटा था। कभी-कभी चक्कर आ जाता था। जो रास्ता आम तौर से निर्विघ्न १ घंटे में समाप्त हो जाता है, उसी में हम लोगों को १६ घंटे लगे।

कैले में दो घंटे का अवकाश मिला। यहाँ से ब्रुसेल(Brussels)-एक्सप्रेस चार बजे रवाना होती है।

डोवर से कैले सिर्फ़ २५ मील दूर है। यहाँ पर इँगलिश-चैनल की चौड़ाई सब जगह से कम है। इस कारण योरप से आने-जानेवाले अधिकतर कैले डोवर ही के रास्ते चलते हैं। शहर क़िलों और मोर्चा-बंदी से खूब सुरक्षित है। कैले-बंदर हाल ही में और भी अच्छा बनाया और बड़ा किया गया है।

अभी तक फ़्रांस और जर्मनी में बहुत अधिक वैमनस्य है। एक दूसरे के नाम से बहुत चिढ़ता है। स्टेशन पर हमने एक सिपाही से पूछा कि ब्रुसेल-एक्सप्रेस कहाँ खड़ी होती है? वह हमारे सूटकेसों पर बर्लिन के बड़े-बड़े लेबिल देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगा। उसने बड़ी रुखाई से जवाब दिया। पचीस ही मील समुद्र बीच में होने से यहाँ इतना फ़र्क़ हो जाता है! भाषा, रहन-सहन, चाल-ढाल, सभी कुछ बदल जाता है। यहाँ के कुली झगड़ालू होते हैं। परदेसी देखकर तंग करते हैं। परंतु यह बात सिवा यहाँ के योरप-भर में और कहीं नहीं देख पड़ी।

चार बजे ब्रुसेल से गाड़ी रवाना हुई। कांटीनेंट पर एक्सप्रेस-ट्रेनों में हमेशा कॉरीडर-गाड़ियाँ



कॉरीडर-गाड़ी

होती हैं। मुसाफ़िर एंजिन से लेकर ब्रेक तक चलती ट्रेन में जा सकता है। हरएक दरजे में छः आदमियों के बैठने की जगह होती है।

दरजे में सिर्फ़ छोटी चीज़ें रक्खी जाती हैं। बाक़ी सामान ब्रेक में जाता है। आम गाड़ियों में, फ़र्स्ट क्लास तक में, सोने की जगह नहीं होती। सोने के वास्ते खास गाड़ियाँ हैं, जिन्हें 'वागों ली' (Waggon Lit), यानी सोने की गाड़ी, कहते हैं। इसमें सिर्फ़ पहले दरजे के मुसाफ़िर कुछ और दाम देकर सो सकते हैं।

रास्ते में चारों तरफ़ स्नो (बर्फ़) ही-स्नो पड़ी थी। अब भी स्नो धीरे-धीरे गिर रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

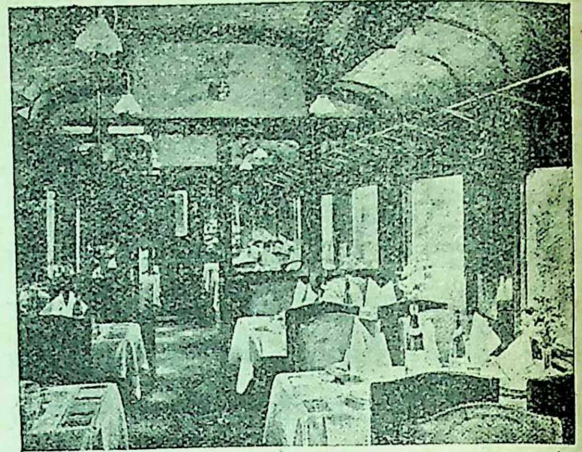
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर तरफ़ सफ़ेदी छाई हुई थी। मकान, पेड़, ज़मीन, सभी बर्फ़ के नीचे दबे पड़े थे। कैले से कुछ मील आगे ट्रेन महायुद्ध के मैदान से गुज़रने लगी। अभी तक जहाँ-तहाँ Barbed wire और टूटा-फूटा लोहा पड़ा है। कहीं-कहीं एक-आध मकान या पेड़ दिखलाई पड़ जाता है; पर वह भी गोलों की मार से बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट। बग़ैर छतों के मकान, दीवालों में हज़ारों सूराख़, पृथ्वी पर जगह-जगह ख़ंदक (trenches) और गोली-गोलों के छेद अभी तक नज़र आते थे। अभी तक इस प्रांत की बहुत ही ऊजड़ दशा है। फ्रेंच लोग जर्मनों से रुपए पाने की आशा में बैठे हैं। उसी रक़म से इस प्रदेश की मरम्मत शुरू होगी। पर जर्मनों से हरजाना पाना ज़रा टेढ़ी खीर है।

यहाँ खेतों के किनारे सुंदर, सुदृश्य, छोटी-छोटी नहरें बनी हैं। उनके ऊपर कहीं-कहीं एक-आध नाव देख पड़ जाती है। परंतु अधिकांश नहरों का पानी जम जाने के कारण नाव नहीं चल सकतीं।

जैसे ही ट्रेन बेलजियम की सरहद के पास पहुँची, पुलीस और चुंगी के कर्मचारियों ने आकर ट्रेन ही में हमारे पास-पोर्ट और असबाब की जाँच की। थोड़ी ही दूर आगे, बेलजियम में प्रवेश करने के उपरांत, फिर यहाँ के अफ़सरों ने पास-पोर्ट और असबाब की जाँच की। कभी-कभी इसमें बहुत दिक़्क़त होती है। पर जिनके पास ब्रिटिश पास-पोर्ट होते हैं, उन्हें कुछ कष्ट नहीं होता।

यहाँ ट्रेन में भोजन की गाड़ी जोड़ दी गई। ठीक समय पर हमने उसमें जाकर भोजन किया। भोजन का दरजा बहुत ही साफ़ और उत्तमता से सजा हुआ था।



भोजन की गाड़ी

योरप में शराब पीने का बहुत चलन है। बग़ैर इसके भोजन पूरा नहीं समझा जाता। बहुत कुछ समझाने के बाद हमें पीने के वास्ते स्वच्छ जल मिल गया। ट्रेन में लंच या डिनर खाने से ३) रु० के लगभग प्रत्येक मनुष्य को देना पड़ता है। खाना अच्छा और काफ़ी मिलता है।

बर्फ़ अभी तक पड़ रही थी, और सरदी भी अत्यंत हो चली थी। परंतु गाड़ियाँ ख़ूब बंद थीं, और भाप से ख़ूब गरम की गई थीं। इसलिये ट्रेन के अंदर सरदी नहीं मालूम होती थी।

आठ बजे शाम को गाड़ी ब्रुसेल पहुँच गई।

बुसेल (Brussels)

इँगलैंड के सबसे नज़दीक होने के सबब बेलजियम ही में हमेशा युद्ध होते रहे हैं। इसको योरप का रण-क्षेत्र कहना अनुचित न होगा। नेपोलियन से वाटरलू की लड़ाई भी यहीं हुई थी। गत महायुद्ध में भी जर्मनी ने इसी के भीतर से रास्ता निकाला था।

मशीनों के आविष्कार से बहुत पहले यहाँ का ऊनी कपड़ा और लेस बहुत मशहूर थी। अब भी ब्रुसेल की लेस जगत्-प्रसिद्ध है। बेलजियम

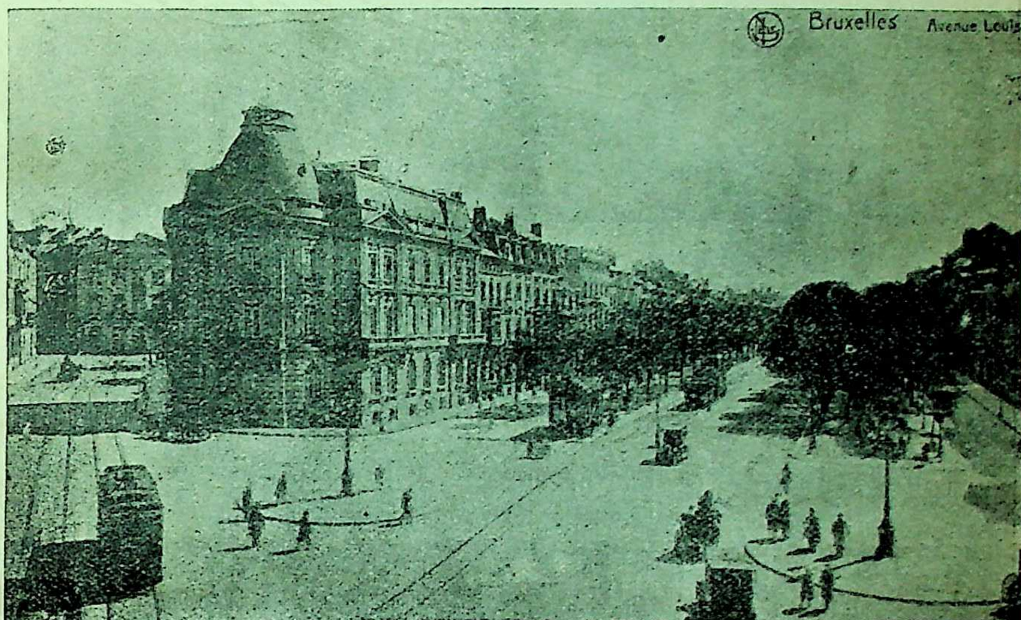
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मुरम (?) और राज-भाषा फ्रेंच ही है। सिक्का भी फ्रांस ही की तरह फ्रैंक है।

ब्रुसेल बेलजियम की राजधानी है। बहुत ही सुंदर बनी हुई है। इसको 'छोटा पेरिस' कहते हैं; क्योंकि यहाँ की सड़कें बहुत ही मनोहर हैं। सड़कों के दोनों किनारे वृक्षों की क़तारें लगी हैं। शहर के दक्खिन तरफ़ वाटरलू का मशहूर मैदान है।

योरप में बड़े शहरों के स्टेशन हावड़ा के स्टेशन



लूइस एविन्यू रोड



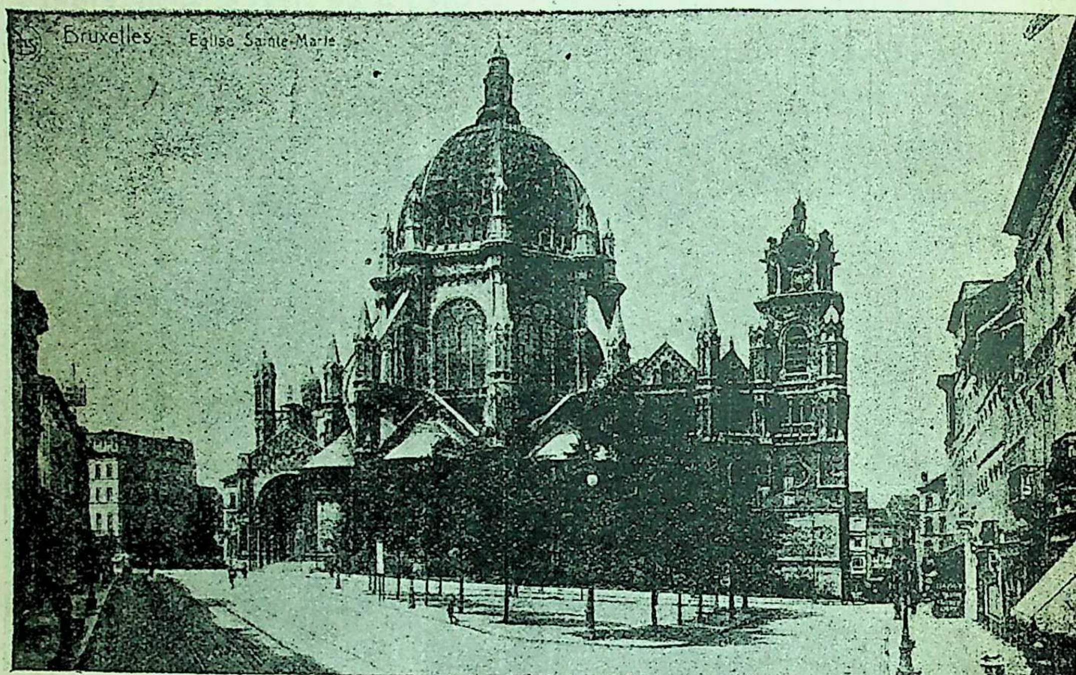
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उत्तरी स्टेशन और रोज़ियर चौराहा

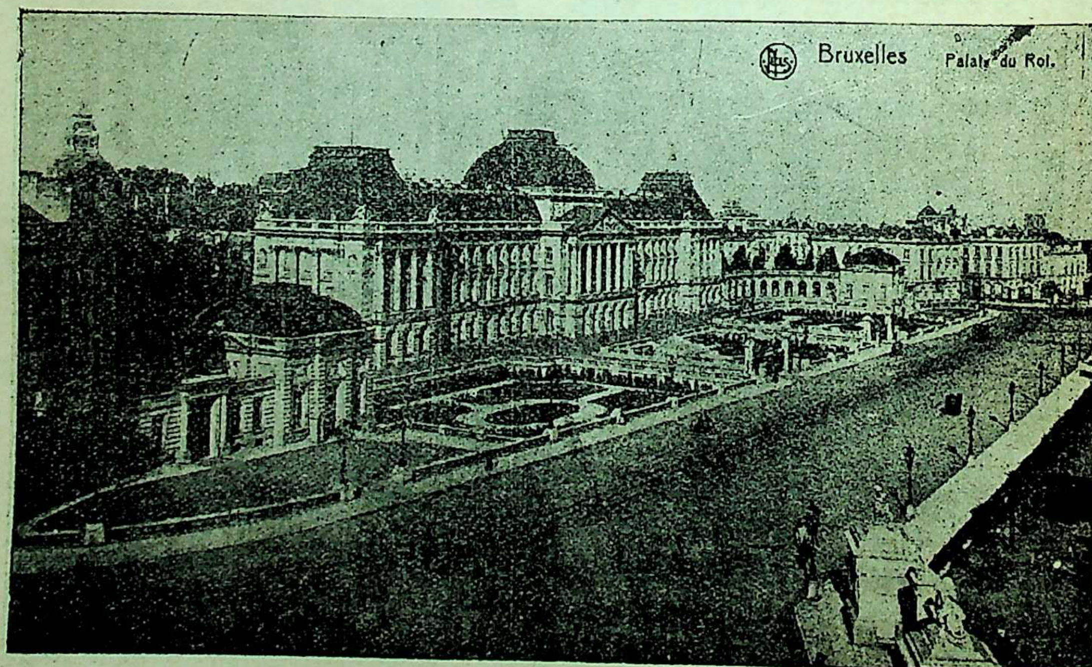
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह होते हैं । रेल शहर को काटकर नहीं निकल जाती ; बल्कि शहर के अंदर तक चली जाती है, और फिर वैसी ही लौट आती है ।

रात के समय ब्रुसेल का दृश्य बहुत ही भला मालूम होता था । चारों तरफ़ ताज़ीबर्फ़ पड़ी थी। उसके ऊपर बिजली के लैंपों की रोशनी बहुत ही



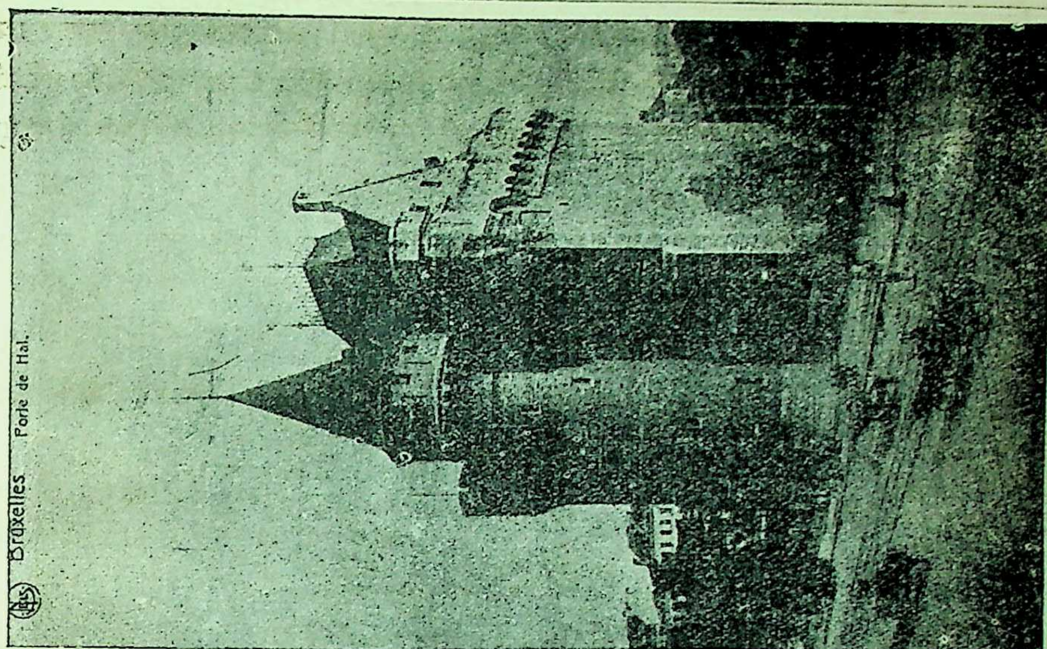
सेंट मारी का गिरजा



राजमहल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आल का दरवाज़ा



म्युनिसिपलिटी की इमारत

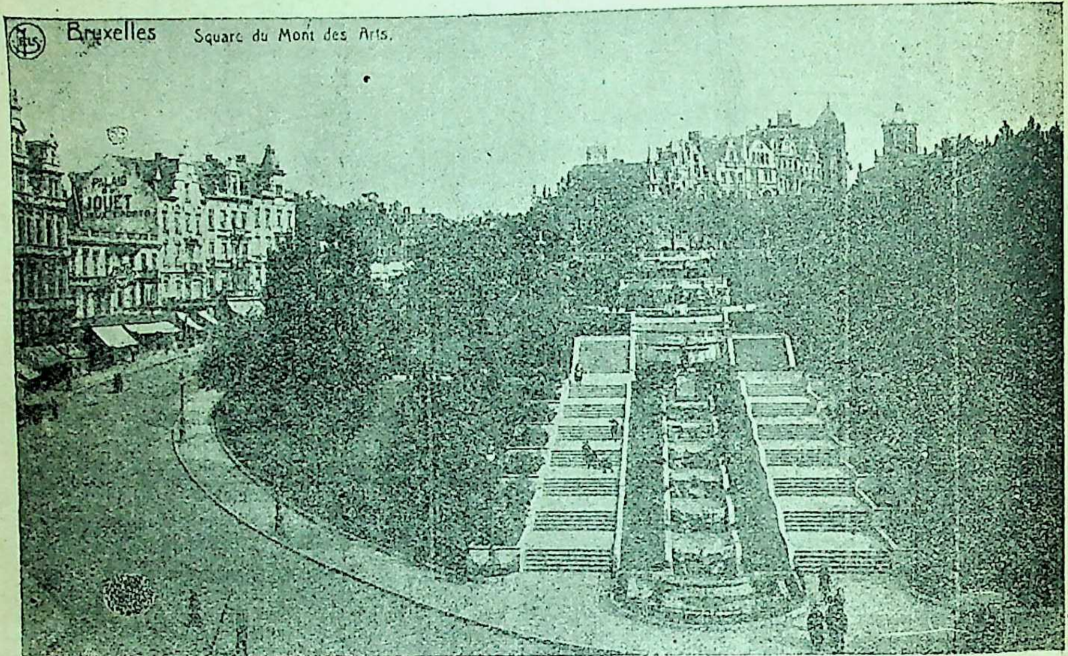
शोभायमान मालूम होती थी। काफ़े या क़हवा-घरों में बैठकर गरम-गरम क़हवा पीते समय बड़ी-बड़ी शीशे की खिड़कियों से बाहर देख पड़नेवाला रमणीय दृश्य वर्णन नहीं किया जा सकता।

यहाँ सैंट मारी का गिरजा, राजमहल, आल का दरवाज़ा, म्युनिसिपलिटी की इमारत, मों देज़ार का चौराहा, सैं गुडूल-सड़क, और उसमें बना हुआ भारी गिरजा, ये स्थान विशेष रूप से दर्शनीय हैं। इन स्थानों की इमारतें और मनोहर दृश्य चित्रों में दो देप।

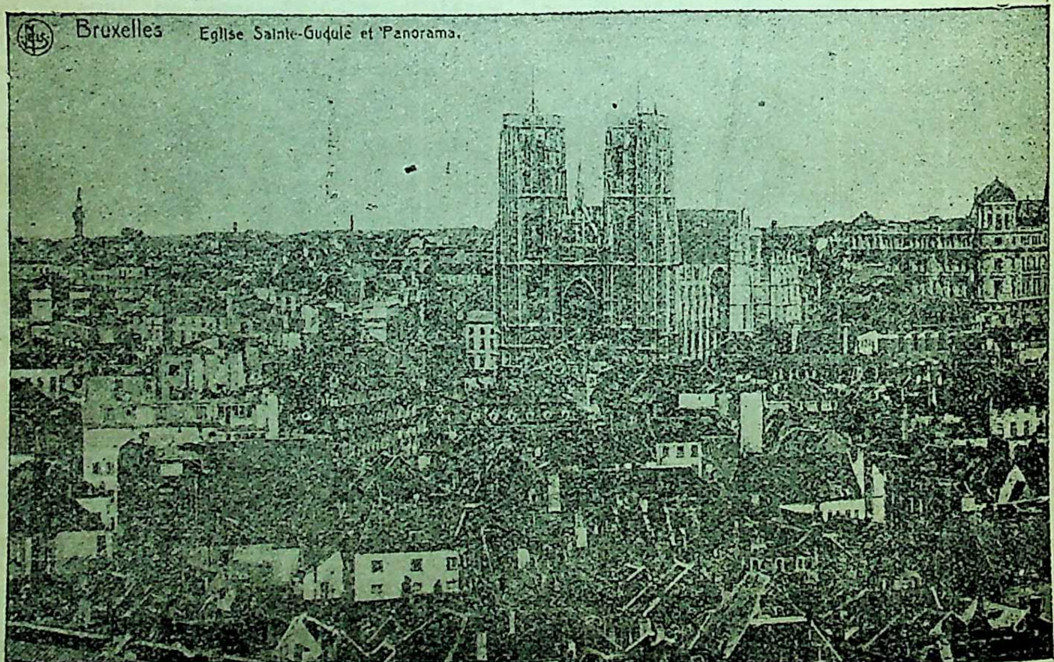
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रसेल से रात को बारह बजे, बर्लिन-एक्सप्रेस में बैठकर, बर्लिन की तरफ़ रवाना हुए। बेलजियम और जर्मनी की सरहद पर ए-ला-शापेल (Aix-la-chapelle) नाम का मशहूर नगर है। यहाँ पर अँगरेज़ों और फ्रैंचों की प्रसिद्ध संधि हुई थी। इस जगह फिर से हमारे पास-पोर्टों की जाँच हुई।



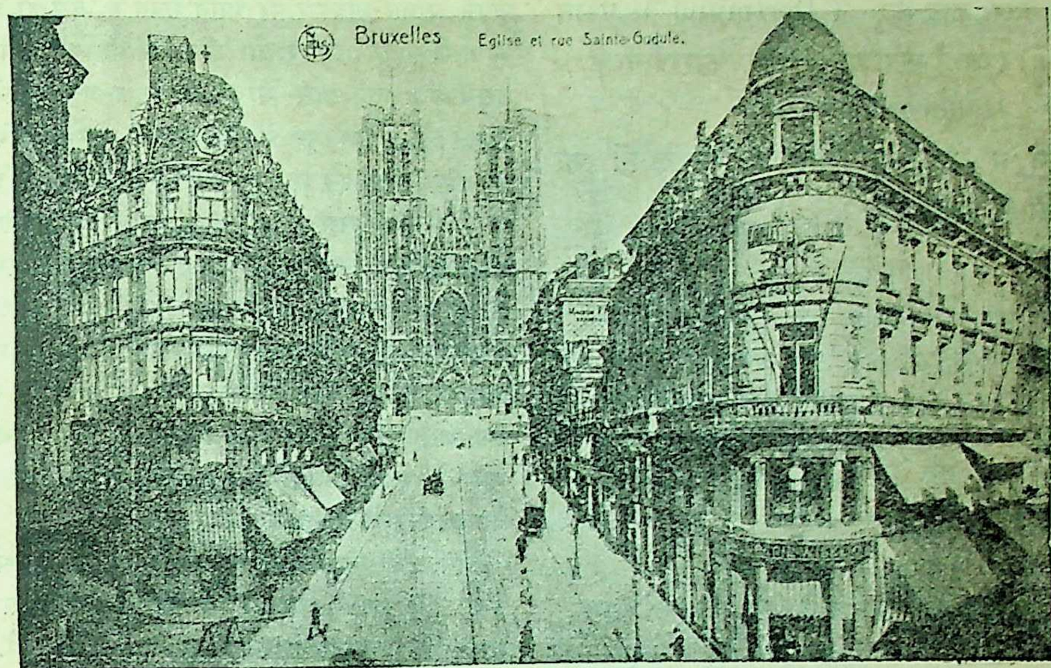
मों देज़ार का चौराहा



सैं गुडूल का गिरजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गिरजा और सैं गुडूल रोड

ए-ला-शापेल से ३८ मील की दूरी पर कलोन (Cologne) का शहर है। Eau-de-Cologne (ए-डि-कलोन—एक प्रकार की विलायती खुशबू) के कारण इसका नाम हर कोई जानता है। हम भी आशा लगाए बैठे थे कि कलोन पहुँचते ही कमरा खुशबू से भर जायगा। मगर हुआ उलटा ही। गाड़ी ए-डि-कलोन के कारखानों के समीप से न निकलकर एक सरेस (Glue) के भट्ठे के पास से गुज़री। नाक को रूमाल से बंद करना पड़ा।

कलोन राइन (Rhine)-नदी के वाम पार्श्व में बसा है। यहाँ तक जर्मनों की भूमि मित्रों (Allies) के क़ब्ज़े में है। यहाँ उनकी बहुत बड़ी छावनी है; परंतु फ़ौज ज़्यादातर अँगरेज़ों ही की है। कलोन का रेलवे-स्टेशन बिलकुल कानपुर के स्टेशन की तरह है। एक बात अभी तक याद है। प्लेट-फ़ार्म पर नाई अँगरेज़-सिपाहियों की हजामत बना रहे थे। प्लेट-फ़ार्म पर जंगी पहरा था। इस दफ़े यहाँ नहीं रुके। इरादा था कि लौटते वक़्त Frankfort वग़ैरह होते हुए यहाँ आवेंगे। फ़ॉरेन-ऑफ़िस से यहाँ सिर्फ़ एक दफ़े उतरने की इजाज़त मिली थी। यहाँ भी पास-पोर्ट जाँचे गए।

रास्ते में एक बड़े मज़े की बात हुई। हम लोग आपस में, अँगरेज़ी में, ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। ख़याल था कि यहाँ कोई अँगरेज़ी समझेगा ही नहीं। हम सामने बैठे हुए एक आदमी का कुछ मज़ाक़-सा कर रहे थे। वह चुप-चाप सुनता रहा। चलते वक़्त अँगरेज़ी में बोला—"मैं आपको बहुत धन्यवाद देता हूँ।" हम लोगों को बहुत ही शरम मालूम हुई। उससे माफ़ी माँगी। इस घटना ने आइंदा के लिये हमें होशियार कर दिया। अँगरेज़ी ऐसी भाषा है कि उसके जानने-वाले हरएक देश में मिल जाते हैं।

ट्रेन बहुत ही प्रसिद्ध शहरों में होकर गुज़र रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी ; जैसे डार्ट-मंड (Dortmund), एसेन (Essen) (जहाँ क्रप का मशहूर कारखाना है), हैनोवर (Hanover) इत्यादि ।

एसेन में तो सिर्फ़ लोहे के कारख़ानों का धुआँ ही दिखलाई पड़ा ।



शाम होते-होते ट्रेन बर्लिन में दाखिल हो गई ।

श्यामाचरण

रामचरित-मानस की शिक्षा और व्याकरण

प्राकृत और संस्कृत का भेद



भी देशों और सभी कालों में भाषा के दो रूप हुआ करते हैं प्राकृत और संस्कृत । प्रकृति, प्रजा या साधारण जन-समुदाय—जिसमें पौर और जानपद, दोनों परिगणित हैं—जिस भाषा को विना किसी बनावट के बोलता है, जिसमें अपने मनोभाव प्रकट करता है, वह 'प्राकृत' कहलाती है । शिष्ट और शालीन, पौर या पंडित या शिष्ट-समाज में रहनेवाले जैसे अपने आचार-व्यवहार पर ध्यान रखते हैं, वैसे ही अपनी भाषा के सौंदर्य, सौष्ठव और शील पर भी ध्यान रखते हैं ; उसमें कोमलता और माधुर्य लाने का प्रयत्न करते हैं । विचार और कल्पना के विकास से नए मुहावरे, नई परिभाषा तथा नई रचना का समावेश हो जाता है । नियम और प्रयोग की समता पर निगाह रहा करती है । शिष्टों का प्रयोग प्रमाण बनने लगता है । इन समस्त परिस्थितियों से भाषा का संस्कार हो जाता है, और शिष्ट, शालीन जनानुमोदित भाषा 'संस्कृत' कहलाती है । प्राचीन भारत में जिस समय जातकों की भाषा या पाली साधारण बोल-चाल की भाषा थी, उसी समय 'भोवादी ब्राह्मणों' अर्थात् विद्वानों और शिष्ट सज्जनों की भाषा वैयाकरणानुमोदित संस्कृत थी ।

जनता की बोल-चाल जब तक व्याकरण के साँचे में ढल नहीं जाती, या नियमों के शिकंजे में कस नहीं जाती, तब तक उसका रूप नित्य बदलता रहता है, उसमें निरंतर विकार होते रहते हैं, और यही बातें स्वाभाविक है, प्रकृति है, जीवन-मरण का कारण है । व्याकरण के कड़े नियम उसे विकारों की परिधि से बाहर निकाल लेते हैं, और यद्यपि उसके प्रयोग की सीमा संकुचित हो जाती है, तथापि वह भाषा अमर भी हो जाती है, उस पर देश, काल और स्वभाव की परिस्थिति, पहले की तरह, अपना प्रभाव नहीं डाल सकती ।

साधारण जनता की भी उन्नति और विकास होता ही रहता है । जनता के विकसित अंश की भाषा भी देश और काल के क्रम से धीरे-धीरे संस्कृत होती जाती है । इस तरह ये दोनों विभाग, प्राकृत और संस्कृत, प्रत्येक देश और काल में स्वभावतः रहते ही हैं । वर्तमान काल में खड़ी-बोली हमारी संस्कृत है, और प्रांतीय बोलियाँ प्राकृत ।

हिंदुओं की 'हिंदुई' अथवा हिंद की 'हिंदी'-भाषा भी मुद्दत से इन्हीं विकारों के अधीन चली आई है । आवा-जाई, चिट्ठी-पत्री, तथा समाचार-पत्रादि के काल से पहले, जब खड़ी-बोली को वर्तमान गौरव नहीं मिला था, जब तक वह 'संस्कृत' नहीं समझी गई थी, उसकी गिनती प्रांतीय बोलियों में ही थी । जिन प्रांतीय बोलियों में हिंदी की कविता होती चली आई है, उनमें, राजस्थानी प्राकृत में चंद का रासो, दिल्ली, सहारनपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मेरठ-प्रांत की खड़ी बोली और व्रज-भाषा में अमीर खुसरो की रचनाएँ, खड़ी बोली और भोजपुरिया में कबीरदास की रचनाएँ, अवधी में जायसी की कविता, और भोजपुरिया मागधी में विद्यापति की पद्य-रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। उस समय ये प्रांत की बोलियाँ निस्संदेह प्राकृत थीं, और इन्हीं के मुक़ाबले पाणिनि के सूत्रों से बँधी 'संस्कृत' कुछ चुने हुए विद्वानों से ही आदर पा रही थी। संस्कृत किसी देश की प्रचलित भाषा नहीं रह गई थी। ऐसे ही काल में गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी अपनी कविता की भाषा देश, काल और परिस्थिति के अनुसार अधिकांश अवधी, कुछ व्रज-भाषा, कहीं-कहीं बुंदेलखंडी और कहीं स्पर्श-मात्र भोजपुरिया रक्खी है। यथा—

१. "राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा ;
बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा।
स्रवन-समीप भए सित केसा ;
मनहुँ जरठपन अस उपदेसा—
नृप जुवराज राम कहँ देहू ;
जीवन-जनमु-लाहु किन लेहू ?" (अवधी)

२. "अवलोकि हौं सोच-बिमोचन कौं
ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक-से।" (व्रज-भाषा)

३. "ये दारिका परिचारिका,
गृह-किंकरी करि मानवी ;
अपराध छमिए, बोलि पठए,
बहुत हौं ढीठी दई।" (बुंदेलखंडी)

४. "सठहु सदा तुम मोर मरायल ;
अस कहि गगन-पंथ कहँ धायल।" (भोजपुरिया)

मानसकार गोस्वामीजी के समय में आजकल की खड़ी बोली, जो वस्तुतः प्रांत विशेष की प्राकृत थी, संस्कृत के पद पर नहीं आई थी। यही कारण है कि गोस्वामीजी ने स्थल-स्थल पर, जहाँ भाषा की चर्चा है, एक ओर 'संस्कृत' का विचार किया है, तो दूसरी ओर 'प्राकृत' 'भाषा' 'ग्राम्य वाणी' आदि का प्रयोग किया है। यथा—

"का भाषा, का संसकृत, प्रेम चाहिए साँच ;
काम तो आवे कामरी, का लै करै कमाँच।" (दोहावली)
"भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति।"
"भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासः × × ×।"
"भाषाबंध करबि मैं सोई।"
"जे प्राकृत-कबि परम सयाने; भाषा जिन हरि-चरित बखाने।"
"भाषा-भनित, मोरि मति भोरी ;"
"भनिति भदेस, बस्तु भलि बरनी ;"
"गिरा ग्राम्य सिय-राम-जस गावहिं, सुनहिं सुजान।"
"सियनि सुहावनि टाट पटोरे।"
"राम सुकीरति, भनित भदेसा।" इत्यादि

(रामचरित-मानस)

जिस तरह प्राचीन कवि नाटकों में संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत का मिश्रण करते आए हैं, उसी तरह तुलसीदास ने अपने महाकाव्य में प्राकृत के साथ-साथ पवित्र 'देव-वाणी' से अपनी रचना का आरंभ और अंत किया है। "इति श्रीरामचरितमानसे" इत्यादि, यह संस्कृत का ही ढंग है।

'भाषा' लिखने का कारण

तुलसीदासजी के पूर्ववर्ती या परवर्ती कवियों ने भाषा और संस्कृत के भेद की चर्चा न तो इतनी विशेषता से कहीं की है, और न प्राचीन संस्कृत को अपनी कविता में कोई विशेष आदर दिया है। इतनी बात अवश्य देखी जाती है कि चंद कवि संस्कृत की छौंक-बघार से बाज़ नहीं आते। अनुस्वारों के प्रयोग से संस्कृत का अनुकरण तो चंद के सिवा अन्य कवियों ने भी किया है। तो भी भाषा में कविता करने के लिये विशेष रूप से कोई कारण नहीं दिखाए। तुलसीदास ने स्वीकार किया है कि मैं "स्वांतःसुखाय", "मोरे हिय प्रबोध जेहि होई" भाषा में लिखता हूँ। स्पष्ट है कि प्राचीन संस्कृत मातृ-भाषा नहीं थी ; अतः उससे 'प्रबोध' होना कठिन था। "गुरुजी ने वारंवार जो कथा मुझसे कही, वह संस्कृत में थी। अपनी बाल-बुद्धि के अनुसार थोड़ा-बहुत मैंने समझा। प्रबोध तभी होगा, जब मैं अपनी भाषा में कहूँगा। इसमें यह एक विशेष लाभ भी है कि भगवान् के चरित का बखान कर मैं अपनी वाणी को पवित्र करूँगा। चतुर कवि भगवान् का गुण-गान करके अपनी वाणी को पवित्र करते हैं। भाषा में प्राकृत जनों का गुण-गान करने से सरस्वती अप्रसन्न हो जाती है।"—यह युक्ति गोस्वामीजी ने इसलिये दी कि उनके पहले के अनेक कवियों ने राजों की प्रशंसा या रईसों की ख़ुशामद में अपनी कविता का दुरुपयोग किया था। साथ ही यह भी स्मरण रहे कि साढ़े तीन सौ बरस पहले भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल की तरह संस्कृत के प्रकांड पंडित 'भाषा' को हेय-दृष्टि से देखते थे। संस्कृत के पंडितों की यह प्रवृत्ति इतनी ही पुरानी नहीं है। 'धम्मपद' की 'भोवादियों'वाली बात ढाई हज़ार बरस के पहले का पता देती है। गोस्वामीजी भक्तों और पंडितों के बीच रहते थे; रईसों के दरबारदार न थे। पंडितों की राय का उन्हें बड़ा ख़याल था। ऐसा होने पर भी, नैसर्गिक कवित्व-शक्ति उन्हें भाषा-कविता की ओर खींचे लिए जाती थी। देश, काल की आवश्यकता भी भाषा के ही पक्ष में थी। इस दृष्टि से भी गोस्वामीजी को भाषा-पक्ष-समर्थन की आवश्यकता थी।

मानस की भाषा का स्थान

रामचरित-मानस की भाषा प्रधानतः अवधी है। यह प्रायः वही भाषा है, जिसमें गोस्वामीजी से कुछ पहले मलिक मुहम्मद जायसी ने पदमावत लिखी। पदमावत की भाषा और रामचरित-मानस की भाषा में कुछ अंतर है; परंतु व्याकरण का नहीं, शैली का। पदमावत जहाँ शुद्ध तद्भव-शब्द-मय है, वहाँ रामचरित-मानस अर्द्ध-तत्सम-शब्दों से भरा हुआ है। गोस्वामीजी कहने को तो कहते हैं कि हमारी गँवारू भाषा है, पर उनकी शैली वास्तव में अधिक परिमार्जित है। उनकी भाषा विद्वान् की लिखी हुई ग्रामीण भाषा है। उसमें संस्कृत-काव्य का अनुकरण पर्याप्त रूप से है। जहाँ पदमावत का शील मुसलिम का पता देता है, वहाँ रामचरित-मानस भक्ति-भाव में डूबी हुई कविता है। विषय के कारण भी भाषा-शैली में अंतर पड़ जाता है। गोस्वामीजी की मातृ-भाषा संभवतः बुंदेलखंडी-मिली अवधी होगी; क्योंकि टोडरमल के लड़कों के लिये पंचायतनामा लिखते हुए—जब कि काशी में उनके जीवन का एक बड़ा भाग बीत चुका था—गद्य में भी वह अवधी का ही प्रयोग करते हैं। काशी की भाषा अब भी भोजपुरिया से मिलती-जुलती अर्ध-मागधी का रूपांतर है, और गोसाईंजी के समय में भी थी। "हमहिं दिहल जड़ करम कुटिलचँद मंद मोल बिन डोला रे।"—इत्यादि गोसाईंजी के ही पदों के सिवा कबीरदास भी, जो काशी में तुलसीदासजी से डेढ़ सौ बरस पहले हो गए थे, खड़ी बोली और भोजपुरिया में ही कविता कर गए थे। इतने पर भी राम-भक्त गोसाईंजी ने रामजी की पुरी अवध की भाषा का ही प्रयोग, काशी में रहते, हुए स्थिर रक्खा।

छंद-रचना में पिंगल की रीति से भेद

गोसाईंजी अपने समय में प्रचलित प्राकृत के अपूर्व पंडित थे। उनकी कविता का ढंग हिंदी-कविता की परंपरा के अनुकूल था। मलिक मुहम्मद जायसी की पदमावत दोहे-चौपाइयों में ही है। यह चाल इतनी मिलती-जुलती है कि दोहे के पहले और तीसरे चरणों में तेरह के बदले बारह मात्राओं का प्रयोग, गोसाईंजी और जायसी, दोनों ने किया है। प्रचलित पिंगल की रीति से इसे दोहे के किसी 'प्रकार' में नहीं गिन सकते। तो भी यह गोसाईंजी या जायसी की भूल नहीं है। उन्होंने जान-बूझकर ऐसा किया है। वे आचार्य थे। उनका लिखना ही प्रमाण है। पिंगलकारों को चाहिए था कि दोहों के एक प्रकार में, अथवा मात्रिक छंदों के अर्ध-समों के रूप-विशेष में, इसे सन्निविष्ट करते। जो हो, रामचरित-मानस का छंदःप्रबंध भी परंपरा के अनुसार ही है। चौपाइयों में भी ऐसी विषमता कहीं-कहीं देखने में आती है, जो पिंगल-ग्रंथों के अनुसार नियम का व्यतिरेक समझी जायगी।

लिपि और शिक्षा

गोसाईंजी स्वयं बड़े अच्छे अक्षर लिखते थे। उन्होंने अनेक पोथियों की नक़ल की होगी। उनके हाथ की लिखी वाल्मीकीय रामायण की एक प्रति काशी के सरकारी सरस्वती-भवन में रक्खी हुई है। राजापुर का अयोध्या-कांड उन्हीं के हाथ का लिखा हुआ जान पड़ता है। वह 'ब' को आजकल के 'व' की तरह लिखते थे। 'व' का उच्चारण व्यक्त करने को उसके नीचे बिंदी रख देते थे। 'श्री' को छोड़ भाषा में तालव्य श का प्रयोग नहीं है। सर्वत्र 'ख' की जगह मूर्धन्य 'ष' लिखा गया है। अमृत-शब्द प्राकृत में 'अमिअ' या 'अमी' बन जाता है। वह नियत रूप से 'अमिअ' लिखते थे। संयुक्ताक्षर 'ज्ञ' के स्थान में 'ग्य' और 'क्ष' के स्थान में 'छ' या 'ष' लिखना उनका नियम था। 'ङ' 'ञ' और 'विसर्ग' का प्रयोग उनकी प्राकृत में न था। संयुक्ताक्षरों का प्रयोग कम करते थे। 'धर्म-कर्म' का रूप "धरम-करम" था। ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ये अक्षर उनकी 'भाषा-बरनमाला' में नहीं थे।

मागधी के प्रभाव से पूर्वी और पहाड़ी बोलियों में जैसे शकार का ही प्रयोग है, सकार का नितांत अभाव है, वैसे ही शौरसेनी से प्रभावान्वित बोलियों में शकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अभाव है। शौरसेनी और पैशाची वर्ण-माला में 'ण' है, 'न' नहीं है। उसी तरह मागधी में 'ण' नहीं है, 'न' है। अवध का प्रांत दोनों के मध्य में पड़ता है। इसीलिये, हम देखते हैं, अवधी में जहाँ शौरसेनी की तरह तालव्य 'श' नहीं है, वहाँ मागधी की तरह मूर्धन्य 'ण' भी नहीं है। इनकी जगह क्रमशः दंत्य 'स' और 'न' से ही काम लिया गया है। ये दोनों सम-स्थानीय हैं, और इनसे अवधी का माधुर्य बढ़ जाता है। 'रैयत' और 'कौआ' वाले 'ऐ' और 'औ' के स्थान में 'अइ' और 'अउ' का प्रयोग, तुलसी और जायसी, दोनों ही करते हैं। 'बैल' और 'ठौर' वाले 'ऐ' और 'औ' के लिये ही 'ऐ' और 'औ' अवधी में लिखे गए हैं। जैसे—अनैसे, वैसा, भैंसा इत्यादि। 'कहउ', 'रहइ' को 'कहौ' और 'रहै' लिखना अवधी नहीं, व्रज-भाषा है।

इस तरह अवधी की वर्ण-माला यों हुई—

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं
क ष ग घ
च छ ज झ
ट ठ ड ढ ड़ ढ़
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व स ह

तुलसीदासजी जिसे 'भाषा' कहते हैं, उसमें ये ही ४१ अक्षर व्यवहार में आते हैं। अवधी के शब्द-भांडार में अधिक की आवश्यकता नहीं पड़ती। 'ऋषि' 'भगति' पूछते हैं, और 'सिव' अधिकारी पाकर कहते हैं। और, सच तो यह है कि जिस 'शिक्षा' के अनुकूल 'ऋ' का स्वर की तरह शुद्ध उच्चारण होता था, वह तो नष्ट ही हो गई है। अब लिखने को हम 'ऋषि' लिखते हैं, पर पढ़ते हैं 'रिषि'। मदरास-प्रांत का विद्वान् 'रुषि' उच्चारण करता है। 'ऋ' के ठीक उच्चारण का पता नहीं। यही हाल 'ऌ' आदि का भी है। आजकल की लिपि में रैयत और बैल, दोनों के 'ऐ' का उच्चारण भिन्न तो है, परंतु दोनों को व्यक्त एक ही तरह से करते हैं। तुलसीदासजी के समय में भिन्न-भिन्न रीति से व्यक्त करते थे। 'ष' लिखकर आजकल के 'ख' का उच्चारण करते थे। 'ख' अक्षर था ही नहीं। संयुक्ताक्षरों में जब 'विष्णु' की जगह 'बिस्नु', 'अष्टादश' की जगह 'अस्टादस' लिखते थे, तब श,ष, अंतःस्थ की आवश्यकता ही क्या थी। प्राकृतों की साधारण प्रवृत्ति सदा से सादगी की ओर चली आई है। भरसक संयुक्ताक्षरों का प्रयोग घटाना ही समीचीन समझा गया है। यही बात जायसी और तुलसी में भी पाई जाती है। 'ज्ञ' के उच्चारण में संस्कृत में ही प्रांत-भेद है। उसे अब भी महाराष्ट्र 'द्न' उत्तर-भारतीय 'ग्यँ' और बंगाली 'गँ' कहते हैं। जायसी और तुलसी ने इसे साफ़ 'ग्य' लिखा है। 'ज्ञ' का बहिष्कार हो गया। प्राकृतों में यह सर्वथा उचित ही समझा जाता है। प्रतिज्ञा-शब्द पहले 'पतिज्ञा' फिर 'पइज्जाँ', फिर 'पइज्ज' और अंत को व्रज-भाषा का 'पैज' बन जाता है। 'सज्ञान' का पहले 'सज्ञान' फिर 'सयान' बनता है। "तौकि बराबरि करत अयाना" में अयान भी अज्ञान का ही प्राकृत रूप है। इसी तरह 'क्ष' का भी प्राकृत में बहिष्कार ही समझना चाहिए। 'लक्ष्मण' का कहीं 'लछिमन' और अधिकांश में 'लषन' हो गया है; जो 'लक्खँन' का उसी तरह सुधरा रूप है, जिस तरह लक्ष्मी का रूप बँगला में 'लक्खीं' और हिंदी में 'लक्खी' या 'लखी' हो गया है।

शब्दों के तोड़ने-मरोड़ने का दोष

व्रज-भाषा के कवियों की समालोचना करते हुए लोग साधारणतः उन पर शब्दों के तोड़ने-मरोड़ने का दोष लगाते हैं; परंतु जो उदाहरण देखे गए हैं, उनमें से अधिकांश प्रचलित प्राकृत के शुद्ध तद्भव-शब्द हैं; जिनका प्रयोग किसी-किसी प्रांत के लिये केवल स्थानीय है, और उसकी अभिज्ञता सबको होना संभव नहीं है। कवि का ज्यों-ज्यों विकास होता है, त्यों-त्यों वह एकदेशीयता की सीमा से निकलकर सार्वदेशिकता की प्रशस्त परिधि में आता जाता है, अधिक व्यापक शब्दों का ही व्यवहार करने लगता है। मानस के शुद्ध पाठ को देखकर बहुधा प्राकृत के नियमों से अनभिज्ञ सज्जन उन शब्दों के अशुद्ध या तोड़े-मरोड़े होने का भी दोष लगाते हैं, जो वस्तुतः एकदेशीय या स्थानीय हैं। इतना ही नहीं, आए दिन प्रेसों से पंडितों द्वारा शोधी हुई जो तुलसी-कृत रामायणें निकला करती हैं, उन्हें अर-सिक, अज्ञ जनता अधिक पसंद करती है। पंडित ज्वाला-प्रसाद मिश्र, पंडित रामेश्वर भट्ट आदि ने तो शोधकर उसका रूप ही बदल दिया। गोसाईंजी की रचना को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों ने यहाँ तक अपनाया कि घटाने या बढ़ाने में, संशोधन या परिवर्तन में, किसी बात में तनिक भी संकोच न किया। इससे जनता इतने भ्रम में पड़ गई कि आज शुद्ध पाठ का यदि आदर है, तो ऊँची श्रेणी के हिंदी-प्रेमियों में ही। ऐसे संस्करण निकले हैं कि यदि आज तीन सौ बरस पीछे गोस्वामीजी की मुक्त आत्मा देखे, तो पहचान न सके कि यह हमारी ही रचना की कपाल-क्रिया है। पंडित-समुदाय यह भूल जाता है कि 'मानस' जनता या प्राकृत जनों के लिये लिखा गया है।

लिपि-प्रणाली और शिक्षा पर हम जो कुछ ऊपर लिख आए हैं, वह अनेक प्राचीन हस्त-लिखित ग्रंथों की पद्धति पर विचार और आलोचना का फल है। हमारे तर्क की प्रतिज्ञा यह नहीं है कि लिखनेवालों ने सर्वत्र अपने को हमारे उपर्युक्त नियमों में दृढ़ता-पूर्वक बाँध रक्खा है। जब तीन सौ बरस पीछे आज भी —रेल, तार, डाक, प्रेस, आवा-जाई, तथा विचार और कार्य-विनिमय के पूर्वापेक्षा अपरिमित सुबीते के युग में भी—अच्छे-अच्छे लेखक, जिनके व्याकरण-सिद्धांत निश्चित हैं, लिपि और शिक्षा की सर्व-मान्य प्रणाली स्थिर नहीं कर सके—बल्कि आज भी एक ही सिद्धांत-निष्ठ सुलेखक अपने एक ही लेख में अपने ही मान्य नियम का बराबर पालन नहीं कर पाता—तब गोस्वामीजी के समय में यदि पूर्वोक्त लिपि के नियम अस्सी प्रति-शत भी पाले जाते थे, तो कुछ कम प्रशंसा की बात नहीं है।

अब तक की छपी पोथियों में प्रयाग के इंडियन-प्रेसवाले संस्करणों का ही पाठ सबसे अधिक शुद्ध है। जिनकी मातृ-भाषा हिंदी नहीं है, उन्हीं के सुबीते की दृष्टि से शायद उसमें केवल 'ख' और 'ष' का प्रयोग-भर संस्कृत की तरह किया है। उक्त पोथियों के पाठकों को यह समझ लेना चाहिए कि 'विशेष' का अनुप्रास 'देख' तभी हो सकता है, जब 'बिसेख' पढ़ा जाय। तुलसीदास ने अंत्यानुप्रास द्वारा 'ष' का स्व-मान्य उच्चारण निर्दिष्ट कर दिया है।

एकवचन अकारांत संज्ञा यदि कर्म-कारक हो, तो उसके अंत में, अवधी में, प्रायः 'उ' का आदेश हो जाता है। हमने 'प्रायः' इसलिये कहा कि शुद्ध पाठों में भी इस नियम के अनेक अपवाद हैं। 'समाजु', 'राजु', 'थलु' 'विचारु', 'करमु', 'धरमु' इत्यादि का प्रयोग मानस में विस्तृत रूप से पाया जाता है। अवधी में शब्दों और क्रियाओं के रूप जैसे पहले प्रयोग में आते थे, आजकल उनसे कुछ ही भिन्न हैं।

छंदों का चुनाव

रामचरित-मानस विशेषकर दोहे-चौपाइयों में लिखा गया है। बीच-बीच में, अवसरानुकूल, और विषय या कांड के अंत में अवश्य, हरिगीतिका-छंद दिए हैं। स्तुतियों में और युद्ध-प्रकरण में अन्य छंद भी प्रयुक्त हुए हैं। संस्कृत-काव्यों में भी सर्गांत में किसी भिन्न वृत्त से समाप्ति होती है। स्तुति या युद्धादि के प्रकरण में भिन्न-भिन्न वृत्त काम में लाए जाते हैं। मानस और पदमावत के सैकड़ों बरस पहले से दोहे-चौपाई का ढंग लोक-प्रिय रहा है। छः सौ बरस पहले की ख़ालकबारी भी चौपाइयों में ही है, और आज भी जो गाँव के अपढ़ अहीर बिरहे गाते हैं, वे वास्तव में दोहे से आरंभ करके बीच में चौपाइयाँ कहते और फिर दोहे से ही समाप्त करते हैं। उनकी रचनाएँ चाहे छंदः-शास्त्र के बारीक काँटे पर न तुल सकें, पर वे दोहे-चौपाई के मूल-रूप अवश्य हैं, इसमें रत्ती-भर भी संदेह नहीं।

कवि की प्रतिभा

गोसाईंजी ने यह शालीनता-पूर्वक कहा है कि मैं गवाँरू भाषा में लिखता हूँ, और मुझे कविता का विवेक नहीं है, चतुर पाठक सुधार लें, इत्यादि। वास्तव में उनकी लोकोत्तरानंद-दायिनी कविता, उनका वाक्-पाटव, उनका विचित्र कथा-प्रबंध, उनका भाषा-शील, सभी कुछ उनकी अपूर्व प्रतिभा का परिचायक है। जब कबीर-दास-जैसे निरक्षर भक्त प्रतिभा-संपन्न कविता कर सकते हैं, तब शिक्षित गोसाईंजी ऐसी अनुपम कविता करें, तो क्या असंगत है? उनके महाकाव्य की आलोचना एक स्वतंत्र विषय है। इस छोटे-से लेख में उसका स्पर्श भी असंभव है। यहाँ इतना ही कह सकते हैं कि "कविरनुहरतिच्छायाम्" की उक्ति के अनुसार गोसाईंजी ने अपने पूर्व के संस्कृत और प्राकृत कवियों के भाव ग्रहण किए हैं; परंतु उनका वर्णन ऐसा स्वाभाविक है, भाषा ऐसी कसी हुई है, ढंग ऐसा अनोखा है कि उनकी रचना मौलिक जान पड़ती है, और मूल-कविता उन्हीं का भद्दा-सा अनुवाद। गोसाईंजी की भाषा इतनी स्वाभाविक है कि झट ज़बान पर चढ़ जाती है। शब्दों का चुनाव इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़िट है कि उनके एक शब्द के बदले दूसरा शब्द चुनना असंभव है। क्षेपक सैकड़ों लगाए गए, उन्हें खपाने का प्रयत्न हुआ; परंतु गोसाईंजी की कविता में पेवंद का लगना कितना मुशकिल है यह इसी बात से स्पष्ट है कि क्षेपकवाले जब गोसाईंजी की नक़ल न उतार सके, तो उनके पाठ को ही उन्होंने बिगाड़ा कि मेल मिल जाय। कहावत है कि 'ऐब करने को भी हुनर चाहिए', बिगाड़ने को भी शऊर चाहिए। अतः पाठ बिगाड़ने से काम न बना।

गोसाईंजी पूर्वापर का विचार इतनी दूर-दर्शिता से करते थे कि आज तक लोग सैकड़ों शंकाएँ निकालते हैं, और उनका समाधान भी उसी मानस के भीतर ही हो जाता है। लक्ष्मणजी की मूर्च्छा पर श्रीरामचंद्र के अनेक असंगत वाक्यों के पीछे 'प्रभु-प्रलाप' कहना या "दुइ सुत सुंदर सीता जाए;" में सीता का ही, उल्लेख और शेष संतान के प्रकरण में 'सब भ्रातन्ह' कहना इत्यादि इस बात के उदाहरण हैं।

पाठ-भेद

गोसाईंजी के समय में विभक्तियों के सटाने या हटाने का कोई झगड़ा न था। छंद के चरण अवश्य अलग-अलग लिखे जाते थे; शेष सब एकमें मिलाकर लिखते थे। आजकल अलग-अलग करके लिखनेवालों ने "दशरा-मशराः" के न्याय से अनेक पाठ-प्रमाद उत्पन्न कर दिए हैं। पुरानी हाथ की लिखी पोथियों में पाठ है—"सीतल निसित बहसि बर धारा।"; पर आजकल उसका पाठ कहीं हो गया है—"सीतल निसि तव असि बर धारा।," और कहीं "सीतल निसि तव हासि बर धारा।" अर्थ-संगति में जो कठिनाई पड़ती है, उसे रसज्ञ लोग जान सकते हैं। पाठ होना चाहिए, "सीतल निसित बहसि बर धारा।" उसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। पाठ था—"जे हित रहे करत सोइ पीरा।" अलग करने से हुआ "जेहि तर हे करत सोइ पीरा।" अब 'जेहि' के 'जे' को ह्रस्व पढ़ना पड़ा, तो चौपाई का पद पंद्रह मात्रा का हो गया, और अर्थ भी नहीं लगा। 'हे' के पहले 'र' की छूट समझकर यों शोधा गया कि "जेहि तर रहे करत सोइ पीरा।" अब 'तर' की जगह 'तरु' हो जाना तो कुछ बात ही नहीं है। परंतु पाठ "जे हित रहे करत सोइ पीरा।" यों रखने से सभी दोष दूर हो जाते हैं। अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। सौभाग्य-वश ऐसे प्रमादों की संख्या थोड़ी ही है। रामचरित-मानस की नक़लें गोस्वामीजी के समय से ही होने लगी थीं। गोसाईंजी स्वयं अपने जीवन में यत्र-तत्र संशोधन करते रहे होंगे। यह बात स्वाभाविक ही है। इसी कारण अनेक पाठांतर मिलते हैं; जो लेखकों की भूल नहीं, वरन् ग्रंथ-कार के ही रचे पाठांतर हैं। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने पाठांतरों का उल्लेख करके भक्त पाठकों का बड़ा उपकार किया है। ये पाठांतर प्रामाणिक हस्त-लिखित प्रतियों से संशोधन के फल हैं। ये वे पाठांतर नहीं हैं, जो पंडितों ने अपने आसन पर बैठे-ही-बैठे कर डाले हैं। जैसे किसी विद्वान् ने 'गाहा' का अर्थ 'गहा' समझकर—

"खल अघ अगुन साधु गुन गाहा ;
उभय अपार उदधि अवगाहा।"

में 'अव'-शब्द को 'गह' करके 'शुद्ध' कर दिया। उन्होंने यह समझा कि "खल अगुन गह (इ), साधु गुन गहा, उभय (ने) अपार उदधि अवगाहा" यह अन्वय है। परंतु इस अन्वय और संशोधन से चौपाई का चमत्कार लुप्त हो जाता है, और आगे के पदों से असंगति भी होती है। वास्तव में 'गाहा' तद्भव है 'गाथा' का, और 'अवगाहा' क्रिया नहीं, विशेषण है। शुद्ध अन्वय इस प्रकार है—'खल' (के) अघ (अरु) अगुन (की) (अरु) साधु (के) गुन (की) गाहा, उभय अपार अवगाह [गंभीर=अथाह] उदधि (हैं)।" इसी ढंग के पाठांतर संशोधक पंडितों ने पैदा कर दिए हैं; जो गोस्वामीजी की कल्पना में भी न आए होंगे।

हमारी हिंदी उतनी परिवर्तन-शीला नहीं है, जितनी कि और भाषाएँ। विशेषकर गाँवों की भाषा पर समय का उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना नागरिक भाषा पर। कुछ ऐसी ही बात होगी कि गोसाईंजी की अवधी आज भी प्रांतीय बोली है, और तीन सौ बरस बीत जाने पर भी आज घर-घर रामचरित-मानस का इतना प्रचार है, जितना कि ईसाई-देशों में बाइबिल या मुसलिम-देशों में कुरान-शरीफ़ का भी नहीं है। और यद्यपि एक-एक पद के सत्रह लाख अर्थ लगानेवाले चतुर टीकाकार इसकी चौपाइयों के भाव में उलझे रहते हैं, तथापि केवल अक्षर पहचाननेवाला भी बड़े गर्व से कहता है कि "मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण पढ़ लेता हूँ।" यद्यपि ग्रंथ का नाम रामचरित-मानस है, तथापि 'रामायण'-शब्द से साधारणतः लोग "तुलसी-कृत" ही समझते हैं। इसका इतना अधिक प्रचार शायद गोस्वामीजी के जीवन-काल में ही हो गया था; क्योंकि यह ग्रंथ उन्हीं के समय से राम-लीला का आधार है। गोसाईंजी ने कहा भी है—

"सपनेहु साँचहु मोहिं पर जौ हर-गौरि-पसाउ,
तौ फुर होउ, जो कहउँ, सब भाषा-भनित प्रभाउ।"

यह सब करामात 'भाषा-भनित' की ही है। जिस तरह गौतम-बुद्ध ने प्राकृत को अपनाकर अपने मत का प्रचार किया, उसी तरह गोसाईंजी ने भी ललित प्राकृत या मधुर 'भाषा' में 'भलि वस्तु' का वर्णन करके राम-चरित-मानस को अमर कर दिया है। 'रामनामामृत' या 'रामयश-सुधासम सलिल से' पूर्ण इस 'अगाध मान-सरोवर' का तीन सौ बरस से नित्य वर्धमान कीर्ति-संपन्न बने रहना हमें यह दृढ़ आशा दिलाता है कि इसी प्रकार कई सौ बरस आगे की संतान भी इस मानस-सर का अवगाहन करती रहेगी। एवमस्तु।

रामदास गौड़

तुलसीदास और उनकी रामायण



भारत का काव्य-रूपी आकाश-मंडल अगणित प्रभा-पूर्ण जुगनुओं से देदीप्यमान है; पर तुलसीदासजी का तेज, उज्ज्वलता और चमत्कार, उनकी प्रदीप्ति, कांति और कीर्ति कुछ और ही है। वह इस आकाश-मंडल के असंख्य चमकीले तारों के बीच मध्याह्न-कालीन प्रचंड मार्तंड के समान प्रकाशमान हैं। उनकी बराबरी कोई कवि न कर सका है, और न कर सकता है। वह भारत के एक अद्वितीय, अतुलनीय और अनुपम कवि हैं। इन कवि-सम्राट् का आसन लाखों नहीं, करोड़ों नर-नारियों के हृदय-मंच पर है। यह केवल प्रशंसनीय ही नहीं हैं, परमादरणीय और पूजनीय भी हैं। तुलसीदास एक अनुकरणीय और अनुपम आदर्श हैं—हमारे लिये ही नहीं हमारी आगामी संतानों के लिये भी। जो स्थान अँगरेज़ी-साहित्य में महाकवि शेक्सपियर का है, उससे कहीं ऊँचा स्थान हम हिंदी-साहित्य में तुलसीदास को देते हैं। क्यों न दें? यह तो चरित्र-हीन कोरे कवि ही नहीं थे। यह थे एक अद्वितीय चरित्रवाले, कवि-सम्राट्, परमोच्च श्रेणी के महात्मा, राम के अनन्य भक्त, धर्म और नीति के उच्च पथ-प्रदर्शक, दार्शनिक गंभीर तत्त्वों को सरल, सरस शब्दावली में समझानेवाले उपदेशक, एवं भविष्य के गर्भ में निहित घटनाओं को बतानेवाले महात्मा।

भारत में इनकी रामायण की पुनीत कथा घर-घर सुनाई देती है। गिरि-सम्राट् हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, कच्छ की खाड़ी से लगाकर मनीपुर की अंतिम पूर्व सीमा तक इनकी कीर्ति की ध्वनि निरंतर गूँज रही है। यही क्यों, भू-मंडल पर कौन ऐसा देश है, जहाँ तुलसीदास की प्रसिद्धि नहीं—जहाँ उनकी रामायण का आदर नहीं—जहाँ राम-कथा की पहुँच नहीं? संसार की सभी सभ्य भाषाओं में रामायण का अनुवाद हो गया है। अनुवाद गद्यात्मक और पद्यात्मक, दोनों प्रकार का हुआ है। अँगरेज़ी-साहित्य में ग्रिफ़िथ साहब का पद्यात्मक अनुवाद बड़े महत्त्व का है। वह अँगरेज़ी-साहित्य-भांडार का एक अमूल्य रत्न है।

रामायण-काव्य की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। भाव-गंभीरता, आध्यात्मिक तत्त्वों की सरल और सुगम विवेचना, दार्शनिक विद्वत्ता, धार्मिक और नैतिक उपदेशों की उत्कृष्टता, लेखन-शक्ति का चमत्कार, चरित्र-चित्रण की अलौकिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति, प्राकृतिक दृश्य-वर्णन की अद्वितीय योग्यता, पात्र-संगठन की अतुलनीय शक्ति, कहाँ तक कहें, एक आदर्श काव्य में जो-जो गुण होने चाहिए, सो सभी रामायण में हैं। तभी तो यह बात है कि जब से इस पुस्तक की रचना हुई है, तभी से इसका चारों ओर प्रचार है, और इसकी लाखों नहीं, करोड़ों प्रतियाँ बिकी और बिक रही हैं। भारत में जितने हिंदी-प्रेस हैं, लगभग उतने ही इस ग्रंथ के संस्करण हैं। खीष्ट-धर्म की बाइबिल के प्रचार से इसका प्रचार अधिक ही है। जिस मनुष्य ने तुलसी-कृत रामायण नहीं पढ़ी, वह संसार के साहित्य में एक अद्वितीय, अनुपम और अनूठे ग्रंथ के पढ़ने के स्वर्गीय आनंद के अनुभव से वंचित है। यह और गीता, संसार में अपने ढंग की एक ही पुस्तक हैं। इस (रामायण) एक ही पुस्तक का पढ़ लेना लाखों घटिया पुस्तकों के पढ़ने से अच्छा है।

तुलसीदासजी ने बहुत ग्रंथ लिखे हैं। उनकी संख्या ३०-३२ से अधिक है। लेकिन इन सब ग्रंथों में रामायण सर्वोपरि और परम श्रेष्ठ है। उससे किसी मात्रा में गौण विनय-पत्रिका है। वह भी अपने विषय की एक ही पुस्तक है। उसमें ईश्वर-प्रार्थना, भक्त-हृदयोद्गार, और आदर्श जीवन बनाने के उपदेश कूट-कूटकर भरे हैं। वह बड़ी उच्च श्रेणी की पुस्तक है, और हिंदी की उत्तमा-परीक्षा में पढ़ाने योग्य है। पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि बाइबिल में डेविड के भजन संसार के साहित्य में अद्वितीय हैं। यदि ये विद्वान् तुलसीदास की विनय-पत्रिका पढ़ सकें, और उसके पदों का अर्थ समझ सकें, तो डेविड के भजनों को भूल जायँगे, और मुक्त-कंठ हो विनय-पत्रिका के पदों की प्रशंसा करेंगे। सूरदास की विनय-पत्रिका को छोड़कर, भक्ति-विषय में, आज तक ऐसा ग्रंथ नहीं लिखा गया। इसका कुछ मुक़ाबला सूरदास के पद ही कर सकते हैं, अन्य कोई काव्य नहीं। संसार के प्रसिद्ध कवियों की जीवनी के विषय में बहुत ही कम लिखा गया है। वे अपने समय के अनोखे और अनूठे विद्वान् होते हैं और उनको अपनी विद्वत्ता का कुछ ध्यान नहीं होता। जिस समय में ऐसे सुकवि होते हैं, उस समय उनके समकालीन मनुष्य उनका कुछ भी आदर नहीं करते, और वे सामान्य मनुष्यों के समान अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं। उनकी मृत्यु के पश्चात् ज्यों-ज्यों उनके ग्रंथों का प्रचार होता जाता है, त्यों-त्यों उनकी ख्याति और प्रसिद्धि बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि जिस स्थान पर उन्होंने जीवन व्यतीत किया है, वह तीर्थ-समान पवित्र गिना जाने लगता है, उनके संबंध की छोटी-से-छोटी बात की भी खोज की जाती है, और उससे इतिहास का गौरव बढ़ता है। यही हाल तुलसीदासजी का है। तुलसीदासजी का जन्म कब हुआ, और उन्होंने अपना जीवन कैसे, कब और कहाँ व्यतीत किया, इन प्रश्नों का अभी तक निश्चित रूप से उत्तर नहीं मिला। इस संबंध में जो कुछ सामग्री उपलब्ध हुई है, वह संशयात्मक है। विद्वानों में इस विषय पर अभी तक मत-भेद है। संभव है, भविष्य में कोई ऐसे निश्चित और अखंडनीय प्रमाण मिलें, जिनके आधार पर इन कवि-सम्राट् की संपूर्ण जीवनी समुचित रीति से लिखी जा सके। अब तक जो सामग्री मिली है, उसके आधार पर इनकी जीवनी के विषय में निम्न-लिखित बातें कही जा सकती हैं।

तुलसीदास ने बाँदा-ज़िले के राजापुर-गाँव में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ग़रीब सरवरिया-ब्राह्मण के घर में, सन् १५४२ ई० में, जन्म लिया था। दरिद्रता के कारण इनके माता-पिता न इनका उत्तम रीति से पालन-पोषण कर सके, और न इनको उच्च शिक्षा ही दे सके। परंतु सच्ची आत्माओं की जाँच दरिद्रता की कसौटी पर ही होती है। हम नहीं कह सकते कि यदि तुलसीदासजी को अपना जीवन दीन-हीन दशा में व्यतीत न करना पड़ता, तो रामायण और विनय-पत्रिका का आविर्भाव होता या नहीं, और उनसे संसार का जो भारी उपकार हुआ है, यह होता या नहीं। यदि हिंदी-साहित्य में रामायण न होती, तो उसका महत्त्व और गौरव इतना न होता। किंवदंती है कि तुलसीदास अपनी स्त्री पर बड़ा प्रेम रखते थे, और रात-दिन उसके मनोरंजन में ही तत्पर रहते थे। स्त्री ने एक दिन उनको ताना दिया कि जितना प्रेम आप मुझसे करते हैं, उतना यदि ईश्वर से करते, तो आपकी सब मनःकामना पूरी हो जाती। इस ताने का यह परिणाम हुआ कि तुलसीदासजी रात्रि में स्त्री को छोड़कर चल दिए, और रामानंदजी के चेले हो गए। इस संप्रदाय में प्रवेश करने के अनंतर यह तीर्थ-स्थानों में भ्रमण करते रहे, और अंत को काशी में जा बसे। यहाँ पर उन्होंने इस अनुपम रामायण-ग्रंथ की रचना शुरू की। कहा जाता है, तुलसीदासजी के हाथ की लिखी हुई रामायण का कुछ भाग अभी तक काशी में सुरक्षित है। इनकी मृत्यु सन् १६२३ में हुई।

रामायण की कथा क्या है, इसके बताने की आवश्यकता नहीं। भारतवर्ष में सब नर-नारी और बालक-बालिकाएँ तक उसकी मुख्य-मुख्य बातों से परिचित हैं। 'राम', 'सीता', 'भरत,' 'लक्ष्मण', 'हनुमान्' आदि रामायण के पात्रों के नाम सभी जानते हैं। भारत-भर में शायद कोई नगर या ग्राम ऐसा नहीं है, जहाँ वर्ष में एक दफ़े राम-लीला न होती हो। रामायण के पात्र बड़ी उच्च श्रेणी के हैं। भू-मंडल के साहित्य में सीता के समान अन्य किसी महिला का चरित्र नहीं है। भरत का चरित्र-संगठन अद्वितीय है। उनके समान भी किसी अन्य ग्रंथ में चरित्र-रचना नहीं है। रामचंद्र तो ग्रंथ के नायक ही हैं। ऐसा प्रतिभाशाली, ओजस्वी, सदाचारी एवं उदार नायक संसार के किसी ग्रंथ में न होगा। इस लेख का विषय रामायण के पात्रों का चरित्र-चित्रण न होने के कारण हम इस विषय को और किसी लेख के लिये छोड़ते हैं। यहाँ तो केवल तुलसीदासजी और उनके प्रसिद्ध ग्रंथ रामायण के विषय में कुछ मोटी बातें ही बताना था। उनका उल्लेख हो चुका है।

हमने तुलसी-कृत रामायण को कई बार पढ़कर उसमें से कुछ ऐसे वाक्यों का संग्रह किया है, जो सार्वभौमिक और विश्व-व्यापी हैं। वे संसार के सामने धर्म-नीति और सदाचार के उच्च आदर्श उपस्थित करते हैं। उन्हें अखिल ग्रंथ का निष्कर्ष कहना अत्युक्ति नहीं है। उन वाक्यों को नीचे देकर लेख को समाप्त करते हैं—

भले भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच ;
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच।
ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट, पाय सुयोग, कुयोग ;
होय कुबस्तु, सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छण लोग।
अति अपार जे सरित बर, जो नृप सेतु कराहिं ;
चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिनु श्रम पारहि जाहिं।
राम-नाम मणि-दीप धरु, जीह-देहरी द्वार,
तुलसी भीतर-बाहिरो, जो चाहसि उजियार।
कुपथ, कुतर्क, कुचालि, कलि, कपट, दंभ, पाखंड ;
दहन राम-गुण-ग्राम इमि, ईंधन अनल प्रचंड।
राम-चरित-राकेश-कर-सरिस सुखद सब काहु ;
सज्जन-कुमुद-चकोर-चित-हित बिशेष बड़ लाहु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु ;
विद्यमान रन पाय रिपु, कायर करहिं प्रलापु ।
काह न पावक जरि सकै, का न समुद्र समाय ?
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय ?
सहज सुहृद, गुरु, स्वामि-सिख, जो न करहि हित मानि ;
सो पछिताइ, अघाइ उर, अवशि होइ हित-हानि ।
मातु, पिता, गुरु, स्वामि-सिख, सिर धरि करहिं सुभाय ;
लहेउ लाभ तिन जन्म के, नतरु जन्म जग जाय ।
और करै अपराध कोउ, और पाव फल-भोग ;
अति बिचित्र भगवंत-गति, को जग जानै जोग ?
सुनहु भरत, भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनि-नाथ ;
हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश विधि-हाथ ।
अनुचित-उचित-बिचार तजि, जे पालहिं पितु-बैन ;
ते भाजन सुख, सुजस के, बसहिं अमर-पति-ऐन ।
ग्रह-गृहीत पुनि बात-बस, तेहि पर बीछी मार ;
ताहि पियाई बारुनी, कहहु, कवन उपचार ?
सेवक कर-पद-नैन-से, मुख-सो साहिब होय ;
तुलसी प्रीति कि रीति लखि, सुकवि सराहहिं सोय ।
मुखिया मुख-सो चाहिए, खान-पान को एक ;
पालै, पोषै सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ।

इसी तरह के कोई १५०-२०० दोहों का संग्रह मेरे पास है। स्थानाभाव से सब यहाँ नहीं दिए जा सके।

कन्नोमल

कब ?

शून्य हृदय में प्रेम-जलद-माला कब फिर घिर आवेगी ?
वर्षा इन आँखों से होगी, कब हरियाली छावेगी ?
रिक्त हो रही मधु से, सौरभ सूख रहा है आतप से ;
सुमन-कली खिलकर कब अपनी पंखुरियाँ बिखरावेगी ?
लंबी विश्व-कथा में सुख-निद्रा समान, इन आँखों में—
सरस मधुर छवि शांत तुम्हारी कब आकर बस जावेगी ?
मन-मयूर कब नाच उठेगा कादंबिनि-शोभा लखकर ;
शीतल आलिंगन करने को सुरभि-लहरियाँ आवेंगी ?
बढ़ उमंग-सरिता आवेगी आर्द्र किए रूखी सिकता ;
सकल कामना स्रोत-लीन हो पूर्ण विरति कब पावेगी ?

जयशंकर 'प्रसाद'

तुलसी-कृत रामायण का आदर्श



एक ही बात को लोग हज़ार ढंग से कहते हैं । शायद इसीलिये कहा है—"एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति ।" एक ही प्रकार के शब्द किसी के मुँह से निकलकर कानों के परदे फाड़ डालते हैं, और किसी के मुँह से निकलकर कानों में अमृत बरसाते हैं । जिनके वचन-विन्यास में यह शक्ति होती है, जिनके शब्दों में मधुरता का यह स्वाद मिलता है, वे कवि कहे जाते हैं । कवि शब्दों को जोड़ते नहीं । उनके शब्द हृदय के स्वाभाविक उद्गार होते हैं । आदि और अद्वितीय कवि वाल्मीकि की प्रथम कविता इसका प्रमाण है । कवियों में बनावट का लेश भी नहीं रहता । कृत्रिमता हो, तो वे अपने आसन से गिरा दिए जायँ ; लोगों पर उनके वाक्यों का कुछ भी प्रभाव न पड़े । कवियों के हृदय-निर्गत कविता-रूपी उद्गार में इतनी शक्ति होती है कि उसका प्रवाह जनता को अपनी गति की ओर खींच लेता है । कवि की सुझाई हुई बात जनता के चित्त में पैठ या बैठ जाती है, प्रतिकूल विचारों का बल घटा देती है । जनता प्रायः वही सम्मति सच मानती है, जो कवि से प्राप्त होती है । इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएँ देखने को मिलती हैं, जिनका प्रवाह एक दूसरी ओर कवि ने ही फेरा, और जनता को तदनुकूल अपनी प्रगति का निर्णय करना स्वीकृत हुआ । जनता तो हृदय देखती है, हृदय की बात सुनती है, और हृदय की प्रेरणा से ही अपने कर्तव्य का निर्णय करती है । किरकिरे शब्दों की वह तत्काल थाह ले लेती है । सविकार भावों को तौलकर स्वभावतः जन-समूह पीछे हट जाता है । बढ़ता उस ओर है, जहाँ उसे सरस वाक्यों से विशाल हृदय की सूचना मिलती है । हृदय को ताड़कर कवि ने क्या ही सुंदर कहा है —

"उनकी गल-ध्वनि कर्ण में है कठिनता से पैठती ;
अंतःकरण की बात ही अंतःकरण में बैठती ।"

कितने ही ऐसे सहृदय कवि शाही ज़माने के रत्न माने जाते हैं । उस समय गद्य का जन्म नहीं हुआ था । हृदय का उच्छ्वास कविता के रूप से ही निकलता था । उस समय कवि राजों-महाराजों के प्रभूत सम्मान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पात्र थे। देश में प्रतिभा का आदर था। महाकवि भूषण तो शिवाजी महाराज के दाहने हाथ ही थे। अनेक अन्य कविजन भी, देसी नरेशों ही के नहीं, बादशाह तक के सभा-भूषण समझे जाते थे। समय का रुख़ जिस ओर होता है, जिस ओर चलने के लिये कवि की अंतरात्मा उसे संकेत करती है, कवि को सफलता की आशा होती है, उसी ओर उसकी काव्य-प्रतिभा विकसित होती है। अतएव तत्कालीन कवियों का एक बड़ा संप्रदाय शृंगार-रस-सागर की तह तक पहुँचकर बचे-खुचे रत्न निकालने ही में व्यस्त रहा। हाँ, कुछ शृंगार-रस-विमुख कवि भी उस समय हो गए हैं। इन भक्त कवियों की कविताएँ प्रायः स्तुतियाँ या संगीत हैं। ये कवि 'एक पंथ, दो काज' में लगे रहते थे। कविता भी करते थे, और इष्ट-देव को संतुष्ट रखते हुए अपना परकाल भी बनाते थे। किसी-किसी ने समय के सदुपयोग के ख़याल से भक्ति-पूर्ण बड़े-बड़े ग्रंथ तक लिख डाले हैं। उस समय की हिंदी-कविता अपने विषय की चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। हम संकोच के साथ नहीं, निःसंकोच होकर कह सकते हैं कि भारत की किसी भी वर्तमान प्रांतीय भाषा को कवित्व का वह दरजा अब तक नहीं मिला है।

उस समय के कवि-समुदाय में गोस्वामी तुलसीदासजी श्रेष्ठ माने जाते हैं। जनता ने उनकी रचना —रामायण— का कितना आदर किया, यह प्रत्यक्ष है। यह बात निर्विवाद है कि आर्यावर्त के अधिकांश लोगों ने रामायण-निर्दिष्ट मार्ग को ही अपना मार्ग मान लिया। भारत का एक बहुत बड़ा भाग रामायण को अपना धर्म-ग्रंथ समझने लगा। रामायण की चौपाइयाँ वेद-वाक्य हो गईं। आज निरे मूर्ख भी, एक नहीं, दो नहीं, अनेकानेक चौपाइयों की आवृत्ति कर जाते हैं। भारत की वर्तमान परिस्थिति पर ध्यान दीजिए, तो यह बात स्वतःसिद्ध सिद्धांत के समान जान पड़ती है कि 'हिंदू, हिंदी, हिंदुस्तान' का सबसे अधिक उपकार गोस्वामीजी ने ही किया है। अपढ़ जनता के मर्म-स्थान को मानो वह जान गए थे। उनकी अंतर्दृष्टि के निकट मानो भारत के भविष्य का रहस्य खुल गया था। वह समाज-संचालन-क्रिया का पर्यवेक्षण करके समझ गए थे कि पतनोन्मुख हिंदू-जाति को उन्नति-शील बनाना अभी दुःसाध्य ही नहीं, असाध्य है। उसका गिरना रोकना मानो उसे और भी गिराना है। यही कारण है, जो गोस्वामीजी ने समय की प्रतीक्षा की, और भावी संतान को सुपथ-गामी करने के लिये रामायण के रूप में अपने श्रेष्ठ और अमूल्य विचार भारत को सौंप गए। उनकी गहरी विवेचन-शक्ति को सूचित हो गया था कि समय रामायण का सद्व्यवहार अवश्य करेगा। रामायण लिखने के लिये उन्हें परमात्मा का आदेश भी तो मिला था। रामायण ही में लिखा है—

"भनिति मोरि शिव-कृपा बिभाती; ससि-समाज मिलि मनहुँ सुराती॥
सपनेहु, साँचेहु, मोहिं पर, जो हर-गौरि-पसाउ,
तौ फुर होउ, जो कहौं, सब भाषा-भनित-प्रभाउ।"

आज हम देख भी रहे हैं कि हरएक संप्रदाय और हरएक पंथ में रामायण की अबाध गति है। इसका मुख्य कारण यही जान पड़ता है कि गोस्वामीजी ने किसी समाज की पोषकता नहीं की। वह सदा उदार और निःस्पृह रहे। उन्होंने धैर्य ही से काम लिया; क्षणिक उत्तेजना में आकर कुछ-का-कुछ नहीं कर डाला। गोस्वामीजी के सम-सामयिक तथा पूर्वकालीन कितने ही भक्त-कवि समय का विचार बिना किए ही देश की दशा सुधारने में लग गए थे। सांप्रदायिक भेद-भावों को जड़ से उखाड़ फेंकने का उनका प्रयत्न किसी दृष्टि से प्रशंसनीय भले ही हो, हिंदुओं और मुसलमानों के दिली घावों पर उन्होंने एकता की पट्टी भले ही बाँधी हो, दोनों को हृदय से भले ही लगाया हो, और इस प्रकार एक नवीन समाज की सृष्टि भले ही की हो, किंतु उनके धर्म-ग्रंथों की रचना रस-हीन होने अथवा उन भावों का समय द्वारा तिरस्कार किए जाने के कारण, वह सफलता उन्हें प्राप्त नहीं हुई, जो, धैर्य के कारण, गोस्वामीजी को कुछ और आगे चलकर प्राप्त होगी। 'कुछ और आगे चलकर' हमने इसलिये लिखा कि हिंदी को राष्ट्र-भाषा का पद केवल रामायण ही को महत्त्व दिलाने के लिये दिया जायगा। अथवा, रामायण जिस मौन कर्म-वीर की अपूर्व कृति है, उसकी सत्ता को संसार में सुदृढ़ बनाने तथा महान् धैर्य के साथ मौन कर्म की महत्ता को प्रकट करने के लिये हिंदी को उक्त पद दिया जायगा। परमात्मा ने गोस्वामीजी से जिस कार्य का संपादन कराया, जिसका चुप-चाप उनके द्वारा प्रचार किया, और यों आज कितने दिनों से जिसका क्षेत्र तैयार किया, उसका योग्य पुरस्कार भी वह देंगे; और, तभी देंगे, जब संपूर्ण भारत सरल और सरस भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वर्णित रामायण की राज-नीति, समाज-नीति, धर्म-नीति और ऊँचे वेदांत-तत्त्व को देखकर, अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से, तदनुसार ही अपना सुधार और संशोधन आदि करने पर तत्पर होगा।

रामायण की रसमयी रचना ने जनता को मुग्ध तो कर दिया, किंतु शिक्षा के अभाव के कारण, स्मृति-सुखद और श्रुति-मधुर कुछ पदावली को छोड़कर, रामायण के गूढ़ अध्यात्म-भाव जनता की समझ में नहीं आए। यह बात तब और भी स्पष्ट हो जाती है, जब शिक्षित जनों की की हुई टीकाओं पर ध्यान जाता है। हम यह नहीं कहते कि टीकाएँ किसी काम की नहीं। नहीं, अपरिपक्व विचार-वाले साधारण जनों के लिये वे अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुई हैं। किंतु जो योग्यता रामायण-जैसी आध्यात्मिक पुस्तक की टीका में होनी चाहिए, वह तो आज तक हमें किसी भी टीका में देखने को नहीं मिली। शृंखला के साथ पद-बंध, अनुप्रास, अलंकार आदि श्रेष्ठ काव्य-गुण तो गोस्वामी-जी ने उसमें दिखाए ही हैं; और उसकी यह सरल, स्वाभाविक और सुंदर गति उसकी लोक-प्रियता का प्रधान कारण भी है। किंतु, फिर भी, काव्य-कला से कहीं बढ़कर उसके वे भाव हैं, जिनका जीवन के साथ, निम्न-तम आदर्श से आरंभ कर सर्वोच्च सीमा तक, घनिष्ठ संबंध है। रामायण में गोस्वामीजी ने कोरी कविता ही नहीं लिखी। न शब्द-जाल बुनने का व्यर्थ प्रयास ही उठाया है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचंद्रजी की केवल जीवनी लिखकर श्रम को सार्थक करना भी गोस्वामीजी का उद्देश्य नहीं था। उन्होंने उसमें अपनी चिर-काल की निष्कपट तपस्या के जो दृश्य दिखाए हैं, उनके हमें गौतम, कपिल, जैमिनि, पतंजलि, व्यास और कणाद के दुर्बोध दर्शनों में भी कहीं मुशकिल से दर्शन मिलते हैं।

रामायण की जितनी टीकाएँ लिखी गई हैं, उन सब-में हिंदी के भक्त तथा विख्यात विद्वान् बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए० की लिखी और काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित टीका श्रेष्ठ मानी जाती है। उसी का हम एक उदाहरण देते हैं। हमें दृढ़ विश्वास है कि इस थोड़े-से साहित्य-विरोध के कारण हम किसी के विराग-भाजन न होंगे। रामायण के बाल-कांड में ४१वें दोहे के बाद—

"सुनि, अवलोकि सुचित चख चाही;
भक्ति मोरि .. मति स्वामि सराही।
कहत नसाइ, होइ हिय नीकी;
रीझत राम जानि जन-जी की।"

चौपाई की तीसरी और चौथी लाइन का अर्थ टीकाकार ने यह लिखा है—"कहने में जी को चाहे बुरी लगे या अच्छी, परंतु रामचंद्रजी तो हृदय की भक्ति जानकर रीझते हैं।" तीसरी लाइन का जो अर्थ किया गया है कि 'कहने में जी को चाहे बुरी लगे या अच्छी', सो यह तो उलहना-सा दिया गया है। वास्तव में, हमें तो, अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार, इस चौपाई का ठीक-ठीक अर्थ कुछ और ही जँच रहा है। गोस्वामीजी ने पहले अपने दैन्य या जीवोचित व्यवहार का वर्णन किया, फिर अपने स्वामी सीता-नाथ की अपार करुणा की स्तुति की। तदनंतर स्वामी द्वारा प्रशंसित होने का उल्लेख भी उद्धृत दूसरी लाइन में किया। कल्पना कीजिए, भक्त यदि अपने इष्टदेव के मुख से अपनी तारीफ़ सुने, तो उसके हृदय में आनंद का वेग कितना प्रबल हो जायगा। किंतु इष्ट वाक्यों का यह आनंद, और की तो बात ही क्या, खुद गुरु के पास भी व्यक्त न करने का उपदेश शास्त्रों में दिया गया है। कारण, भक्त की भाव-धारणा-शक्ति इससे क्षीण हो जाती है। यहाँ तक कि पतन का भी भय रहता है। इसीलिये गोस्वामीजी समझदारों को केवल संकेत ही से समझाते हैं कि "(हिय) हृदय की (नीकी) अच्छी ही बात क्यों न (होइ) हो, (कहत) कहने से (नसाइ) भाव नष्ट हो जाता है।" इतना कहकर अपने स्वामि-संवाद का मर्म छिपाते हुए, केवल उदारता-वश लोक-कल्याण के लिये, आप कहते हैं—"रीझत राम जानि जन-जी की।"—(अर्थ—तो क्या हुआ, यदि तुम हृदय से उन्हें चाहोगे, तो वह, अंतर्यामी होने के कारण, तुम्हारे प्यार पर अवश्य रीझेंगे।) अस्तु, कह डालने से हृदय का भाव हलका हो जाने का रामायण ही से एक और उदाहरण लीजिए। जानकीजी को हनुमान्‌जी श्रीरामचंद्र की उक्तियाँ सुनाते हैं—

"कहेहू ते कछु दुख घटि होई;
काहि कहौं, यह जान न कोई।"

अब शायद इस बात में संदेह की जगह नहीं रह गई। संभव ही नहीं, अवश्यमेव कहना चाहिए कि गोसाईंजी ने भाव-गोपन के लिये ही यह प्रकाश डाला है कि 'कहत नसाइ, होइ हिय नीकी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक उदाहरण और लीजिए। बाल-कांड में ३८वें दोहे के बाद ४थी चौपाई है—

"अस प्रभु हृदय अछत, अबिकारी ;
जीव चराचर दीन, दुखारी।
नाम-निरूपन नाम-जतन तें ;
सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें।"

टीका में पहले दोनों चरणों के अर्थ ने जितनी जगह घेरी है, उसका एक-तिहाई हिस्सा ही पिछले दोनों पदों के अर्थ को—उनके कठिनतर होने पर भी—बड़े भाग्य से मिला जान पड़ता है। व्याख्या स्पष्ट तो है, किंतु कुछ खटकती है। तीसरी और चौथी पंक्तियों का अर्थ टीकाकार ने लिखा है—"नाम का निरूपण (सच्चा रूप) नाम के यत्न करने (जपने) पर वैसे ही प्रकट होता है, जैसे रत्न से उसका मूल्य मालूम हो जाता है।" हमारा सविनय निवेदन यह है कि गोसाईंजी की चौपाई में तो 'प्रगटत' इस क्रिया का कर्ता 'सोउ' साफ़ नज़र आ रहा है, परंतु टीकाकार की टीका में कर्तृ-रूप से 'नाम का निरूपण' प्रकट होता है, और 'सोउ' सशरीर ग़ायब। शायद पदच्छेद-अन्वय करते समय 'सोउ' की कोई आवश्यकता ही नहीं हुई। तो क्या तुकबंदी पूरी करने के लिये गोसाईं-जी 'सोउ' से बेगार ले रहे हैं? किंतु ऐसे उदार और सहृदय कवि शब्द बेचारे को अकारण कष्ट देंगे, यह विश्वास की बात नहीं। हमारी मलिन मति तो यह कहती है कि 'सोउ' यहाँ अपना ख़ास अर्थ रखता है। अंतिम दोनों लाइनों का वह नहीं, यह अर्थ है—"नाम-निरूपण और नाम-यत्न से वह भी (सोउ) प्रकट होता है, जैसे रत्न से मूल्य; अर्थात् पहले नाम का निरूपण या नियोग अथवा धारण करो, फिर उसका यत्न (उसकी देख-भाल) करो (कहीं ऐसा न हो कि भूलकर किसी दूसरी ही भावना में लीन हो रहो), तो वह ब्रह्म भी उस नाम से प्रकट हो जायगा ; जैसे रत्न से मूल्य प्रकट होता है।" टीकाकार 'नाम-निरूपन' के 'निरूपन'-शब्द में नाम ही का स्वरूप देखते हैं। किंतु यह सर्वथा भ्रमात्मक है। कारण, यहाँ तो गोसाईंजी नाम के प्रभाव से किसी रूपवाले को नहीं, किंतु निर्गुण ब्रह्म को, जो अरूप है, आकर्षित कर रहे हैं। यह उन्होंने पहले ही लिखा है—

"उभय अगम जुग सुगम नाम तें ;
कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म राम तें।
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी ;
सत् - चेतन - घन- आनँद-रासी।
अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी ;
जीव चराचर दीन, दुखारी।"

इसके बाद ही आप लिखते हैं—

"नाम-निरूपन नाम-जतन तें ;
सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें।"

इस चौपाई से नाम की महत्ता सिद्ध करके बाद ही के दोहे में आप फिर लिखते हैं—

"निर्गुण तें यहि भाँति बड़, नाम-प्रभाउ अपार ;
कहउँ नाम बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार।"

अब शायद इसमें संदेह न रह गया होगा कि 'सोउ' निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर सर्वनाम के रूप से व्यवहृत हुआ है, और सार्थक है।

गोसाईंजी ने साधना से प्राप्त किए गए अनुभवों को अपनी कविता में कूट-कूटकर भर दिया है। शब्द थोड़े, भाव गहन। स्वभावतः समझ में जल्दी नहीं आते। और, उनके समझने में कोरी विद्वत्ता से भी काम नहीं चलता। कुछ साधन भी चाहिए। पूर्वोक्त चौपाइयों में गोसाईंजी ने साधना का सार रख दिया है ; किंतु इस ढंग से कि विद्वज्जन शब्द के सहारे अर्थ समझें, और सिद्ध-साधक जन विचार-शैली की सत्यता की परीक्षा करके। जिन चौपाइयों में गोसाईंजी ने ब्रह्म का दर्शन नाम के अधीन बतलाया है, उनके इने-गिने शब्दों में, तर्क से अलग रहते हुए भी, आपने बड़ी योग्यता से तर्क और मीमांसा-शास्त्र का निचोड़ रख दिया है। संक्षेप में उसे लिख देना असंगत न होगा—

"ब्रह्म या परमात्मा वैदिक साहित्य और दर्शन-शास्त्रों का मुख्य आधार है। जिसने ब्रह्म, परमात्मा, प्रकृति या ईश्वर, कुछ भी सिद्ध किया है, अर्थात् जिसके विषय का आधार अस्ति है, वह आस्तिक कहा जाता है। और, जिसकी विचार-परंपरा का आधार नास्ति है, जिसने खंडन-पक्ष ग्रहण किया है, वह नास्तिक है। किंतु कोई आस्तिक हो या नास्तिक, मित्र-भाव से करे चाहे शत्रु-भाव से, ग्रहण उसी एक ही सत्ता का करता है। जो 'अवाङ्-मनसोऽगोचरम्' है, उसे वाक्यों द्वारा सिद्ध करने से न लाभ है और न खंडन करने से हानि। वह वस्तु तो साधना से ही प्राप्त होती है, वाक्यों से नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिये गोसाईंजी दीर्घ शब्द-जाल की सृष्टि नहीं करते, थोड़े में ही सार-तत्त्व कह जाते हैं। और, इससे साधकों को उनकी महोच्च साधना का पता मिल जाता है। मन-स्तत्त्व के पूरे पंडित गोसाईंजी मन को विक्षिप्त अवस्था से खींचकर, बहु वस्तुओं से उठाकर, नाम में—सद्गुणों से पूर्ण केवल एक ही वस्तु में—लगाने का उपदेश देते हैं। राज-योग की यह एक-मात्र महत्त्व-पूर्ण क्रिया है। इसका भी संबंध गोसाईंजी के 'नाम-निरूपन' और 'नाम-जतन' से हो जाता है। मन नाम-रूपी विषय का अवलंब करके जब उसमें तन्मय हो जायगा, ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता तीनों एक हो जायँगे, तब 'एको ब्रह्म' स्वभावतः प्रकाशित होगा।

शुष्क दर्शनों की नीरसता के कारण प्रेम-पिपासु हृदय उस ओर नहीं जाता। वह तो सरस शब्दावली की खोज में रहता है। इसीलिये गोस्वामीजी रस का लोभ दिखाकर विचित्र ढंग से ऊँचे-से-ऊँचे तत्त्व कह जाते हैं, फिर कोई समझे चाहे न समझे। हाँ, मनुष्य-स्वभाव के मर्मज्ञ गोसाईंजी गृहीजनों को अद्वैत-रस के स्वाद से वंचित रखते हैं। वह गृहस्थों के लिये "अवगुन-मूल, शूल-प्रद, प्रमदा सब दुख-खानि।" नहीं कहते। उनके लिये तो है—"कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि"। गोसाईंजी जानते थे कि जिनमें अभी वासना विद्यमान है, जो भोग के लिये घर सँवारने में लगे हैं, उन्हें त्याग का मंत्र बताना मानो ऊसर में बीज बोना है। गोसाईंजी यह भी जानते थे कि जिनका जीवन द्वैत-वाद-मय है, उन्हें आदर्श भी द्वैत-वाद ही का देना चाहिए। इसीलिये नर-रूप भगवान् रामचंद्र को उनके आदर्श रूप से उपस्थित किया। परंतु योगियों के आदर्श हैं वह राम, जिन्हें महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—

"राम, स्वरूप तुम्हार, बचन-अगोचर बुद्धिबर ;
अबिगत, अकथ, अपार, नेति-नेति जिहि निगम कह।"

यहाँ भगवान् रामचंद्र मनुष्य के आकार में नहीं रह जाते। यहाँ महर्षि की दृष्टि राम को देखकर उनके अस्थि-मज्जा-विशिष्ट नश्वर शरीर पर नहीं अटक जाती। वह श्रीराम को सच्चिदानंद-स्वरूप देखती है। गोसाईंजी यही सच्चिदानंद-रूप गृहस्थों को भी दिखाना चाहते हैं; परंतु उनकी वृत्ति के अनुसार पहले-पहल उनकी दृष्टि अस्थि-चर्म पर ही लाते हैं, और साथ ही कहते हैं—

"जिनहिं राम तुम प्राण-पियारे,
तिनके उर शुभ सदन तुम्हारे।"

अर्थात् इन्हीं नराकार भगवान् को प्राणों की तरह प्यार करने से वह हृदय में विराजमान होते हैं। इन शब्दों से गोसाईंजी गृहस्थों की प्रीति एकमुखी और अन्यान्य बंधन ढीले कर रहे हैं, और उनकी प्रीति का अवलंब रामचंद्र के स्थूल शरीर को बताते हैं। गोसाईंजी इसी तरह क्रमशः उन्हें त्याग के रास्ते से ले चलते हुए अंत को उसी जगह स्थापित करते हैं, जहाँ उन्नति का चरम आदर्श—सच्चिदानंद ब्रह्म—प्रतिष्ठित है। ईश्वर को जान लेना ईश्वर ही हो जाना है।

"सो जानै, जिहि देहु जनाई ;
जानत तुमहिं, तुमहि है जाई।"

सूर्यकांत त्रिपाठी

हिंदू-विश्वविद्यालय



तो भारत में अनेक विश्वविद्यालय हैं, पर काशी के इसविश्व-विद्यालय का आदर्श उन सब-से न्यारा है। प्राच्य और पाश्चात्य-सभ्यता के गुणों का एकत्र समावेश, चरित्र-संगठन, और मानसिक तथा शारीरिक उन्नति का समान समावेश—संक्षेप में हिंदू एवं हिंदुस्थान का उत्थान—ही इस विश्व-विद्यालय का मुख्य उद्देश्य या प्रधान लक्ष्य है। आज हम यह देखेंगे कि इस आदर्श की पूर्ति और उद्देश्य की सिद्धि के लिये इसके संचालकों ने किन साधनों का सहारा लिया है, और अपनी चेष्टा में वे कहाँ तक सफल हुए हैं।

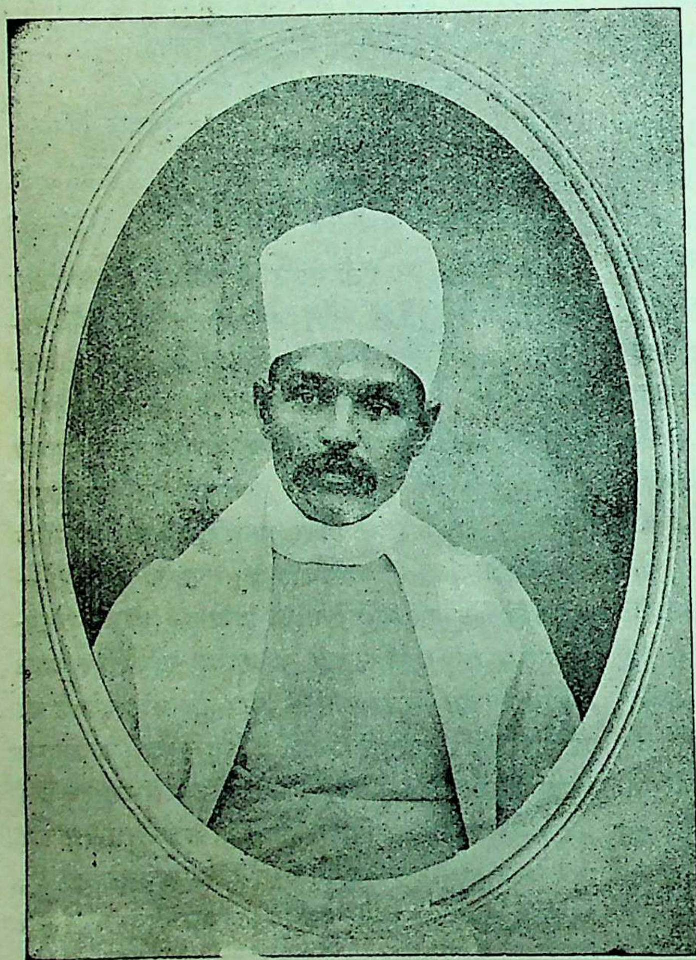
सर्व-साधारण को विदित ही है कि यह विश्वविद्यालय उस प्राचीन सेंट्रल हिंदू-कॉलेज का विकास-मात्र है, जिसका संचालन पहले मिसेज़ (अब डॉक्टर) एनी बेसेंट के हाथ में था। आज से आठ वर्ष पहले—ऑक्टोबर, सन् १९१५ ई० में—व्यवस्थापक-सभा में "बनारस-हिंदू-युनिवर्सिटी-ऐक्ट" पास हुआ; और, सन् १९१६ के फ़रवरी में विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। स्थापना-संस्कार लार्ड हार्डिंज ने किया था। उस शुभ अवसर पर भारत के सभी मान्य व्यक्ति तथा राजे-महाराजे उपस्थित थे। २ वर्ग मील क्षेत्र-फल की भूमि ६ लाख रुपए में मोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली गई। दो वर्ष के पश्चात् भवनों के निर्माण का आरंभ हो गया; जिसमें आज तक कुल ४० लाख रुपए के लगभग व्यय हुआ है। इधर २ वर्ग-मील भूमि और भी ली गई है। इससे विश्वविद्यालय का विस्तार गंगा के तट तक, ऑक्सफ़ोर्ड तथा कैंब्रिज के विस्तार से कहीं अधिक, हो गया है।

विश्वविद्यालय देश-भर की वस्तु है, और इसकी स्थापना में सारे देश ने सहायता दी है। परंतु इस कार्य का सारा श्रेय इसके स्तंभ और वाइस-चांसलर, माननीय मालवीयजी को ही दिया जा सकता है। भारत के इन



पं० मदनमोहन मालवीय

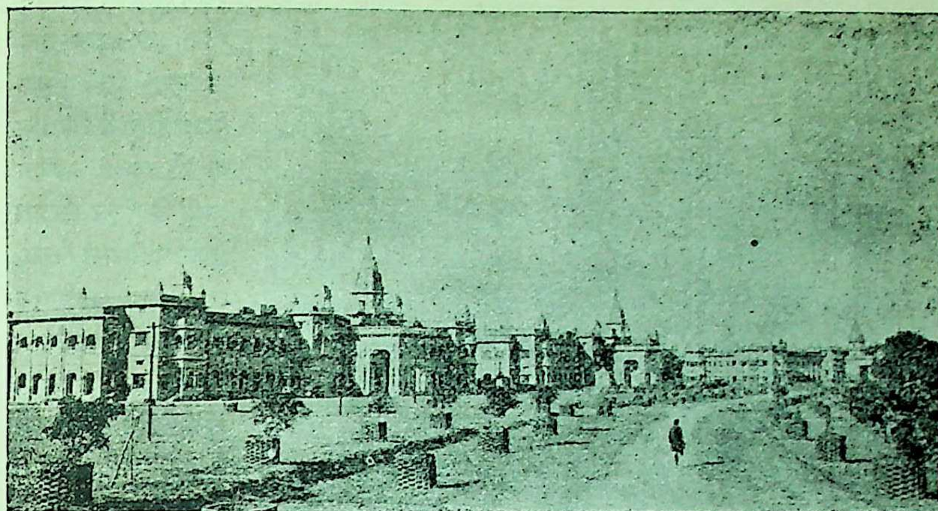
(संस्थापक और वाइस-चांसलर)

'सर्व-श्रेष्ठ भिक्षुक' के ही हृदय में पहले-पहल इस संस्था की स्थापना का ख़याल पैदा हुआ था। लोगों को अब तक वे दिन नहीं भूले, जब मालवीयजी, विश्वविद्यालय का सच्चा आदर्श-मय ख़ाका लिए, देश में धन के लिये घूम रहे थे और कुछ लोग कहा करते थे—"यह तो पागल हो गए हैं!" सचमुच, संसार में सभी बड़ी बातें पागलपन के ही सहारे हुआ करती हैं, और इन बड़े पागल ने यह दिखा दिया है कि 'पागलपन' कभी-कभी बहुत आवश्यक हुआ करता है। इस कार्य में काशी के महाराज ने भी बहुत-सी भूमि देकर बड़ी सहायता की है। भारत-सरकार के अतिरिक्त देश के रजवाड़े भी विश्वविद्यालय को धन से बड़ी सहायता देते हैं। काश्मीर, मैसूर तथा बीकानेर से १२,०००), जोधपुर तथा पटियाले से २४,०००) (इसी प्रकार अन्य दरबारों से भी) वार्षिक चंदा मिलता है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार की सहायताएँ मिलती हैं। अभी विश्वविद्यालय को बहुत-से धन की आवश्यकता है। आज तक एक करोड़ से अधिक रुपए एकत्रित हो चुके हैं। इनमें से ५० लाख तो नियमानुसार स्थायी कोष में जमा हैं। विश्वविद्यालय की वार्षिक आय ७ लाख से कुछ ऊपर है।

इंजीनियरिंग-कॉलेज तो प्रारंभ से ही नए स्थान पर काम करने लग गया, पर आर्ट्स कॉलेज, टीचर्स ट्रेनिंग-कॉलेज और प्राच्य-विद्या-विभाग कमच्छा के पुराने ही भवनों में कई वर्षों तक रहे। भारत के सभी विश्वविद्यालयों का उद्देश्य केवल परीक्षा लेना-भर था। शिक्षा का कार्य चाहे जैसे हो, कॉलेज विश्वविद्यालय के केंद्र से चाहे जितनी दूर हों, उनका कार्य तो केवल परीक्षा लेकर डिग्री दे देना था। हिंदू-विश्वविद्यालय ने सर्व-प्रथम यह प्रचलित पद्धति छोड़कर भारत के प्राचीन आदर्श को ग्रहण किया। इसके संचालकों का पहले से ही यह उद्देश्य रहा है कि जिस प्रकार प्राचीन भारत के गुरु-कुलों और ऋषि-कुलों में शिष्यगण आचार्यों के साथ रहकर विद्योपार्जन करते थे, उसी प्रकार यहाँ भी सब विद्यार्थी एकत्र ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत कर, गुरु-जनों के साथ रहकर पढ़ें। इसकी देखा-देखी बाद को प्रयाग, लखनऊ आदि स्थानों में भी विश्वविद्यालयों की यह (Residential) प्रणाली चल पड़ी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जब आर्ट्स कॉलेज तथा साइंस की लेबोरेटरियों के भवन बन गए, तो उधर छात्रावास भी बनने लगे। थोड़े ही दिनों में अनेक भवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आर्ट्स कॉलेज और वैज्ञानिक प्रयोग-शाला

एक धनाढ्य सज्जन ने कोई ३ लाख रुपए लड़कियों के छात्रावास के लिये दिए हैं। यह छात्रावास तैयार हो रहा है।

छात्रावासों के अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे क्वार्टर बने हुए हैं। जो विद्यार्थी अलग रहना चाहें, वे इनमें रह सकते हैं। होस्टलों में प्रत्येक विद्यार्थी के लिये एक-एक कमरा है। प्रति ५२ छात्रों के पीछे

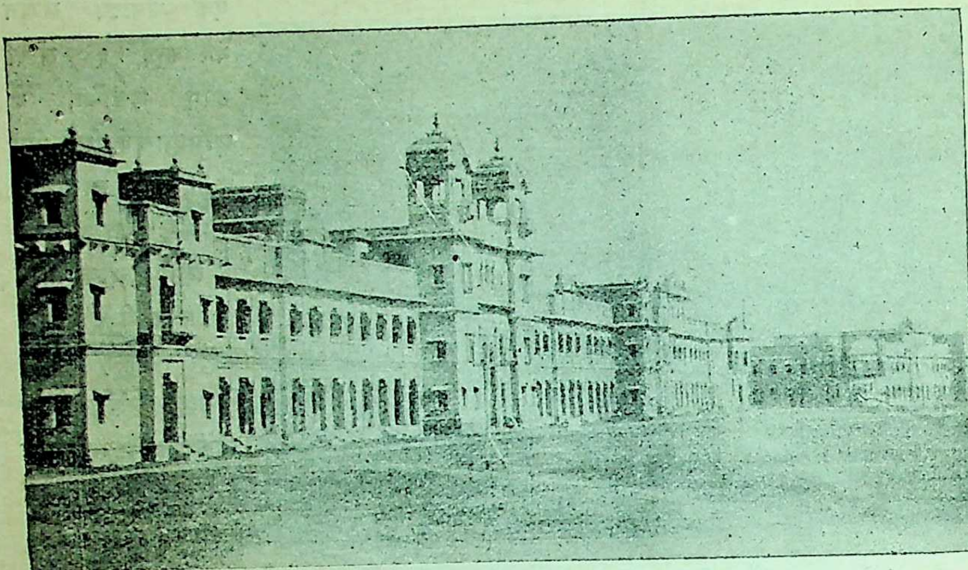
तैयार हो गए, और यद्यपि अभी बहुतों की नींव भी नहीं दी गई है, तथापि आजकल लगभग १००० विद्यार्थी नए स्थान— नगवा —में ही रहते हैं। तीन कॉलेजों की पढ़ाई भी वहीं होती है। प्रायः सभी प्रोफ़ेसरों के लिये रहने के स्थान (Quarters) भी बन गए हैं। सबके विनोदार्थ खेलने-कूदने और टहलने के लिये मैदान भी तैयार हो गए हैं। टीचर्स ट्रेनिंग-कॉलेज स्थानाभाव के कारण अभी नगवे में नहीं आ सका।

इन कॉलेजों के अतिरिक्त एक बालिका-महाविद्यालय (Girls' College) भी है। उसमें केवल एफ़० ए० तक की पढ़ाई होती है। यह भी अभी कमच्छा में ही है। पास ही सेंट्रल-हिंदू-स्कूल है। ओरियंटल कॉलेज से संबद्ध एक रणवीर-पाठशाला है। इन सभी संस्थाओं में, कुल मिलाकर, २००० से ऊपर विद्यार्थी हैं; जिनमें आधे से अधिक छात्रावासों में रहते हैं। इनमें बहुत-से मुसलमान भी हैं। मगर उनकी संख्या बहुत कम है। उनके प्रवेश के लिये कोई रोक-टोक नहीं है। हिंदू-विद्यार्थियों के लिये धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है; परंतु अहिंदू-छात्रों के लिये कुछ भी बाध्य नहीं है। यहाँ की फ़ीस सभी स्थानों से कम है। यहाँ भारतवर्ष के सभी प्रांतों के विद्यार्थी हैं। लड़कियाँ भी एम्० ए० तक की कक्षाओं में पढ़ती हैं। उनके पढ़ने के लिये विशेष प्रबंध किया गया है। थोड़े दिन हुए,

एक निरीक्षक रहता है। वह उनके साथ ही निवास करता है। इस प्रकार एक-एक छात्रावास में ६ निरीक्षक रहते और छात्रों की देख-रेख तथा उनके लिये सभी प्रकार के प्रबंध करते हैं। ८-१० छात्र मिलकर अपने-अपने भोजन का प्रबंध एकत्र कर लेते हैं। जो अपना भोजन स्वयं बनाना चाहें, उनके लिये भी अलग प्रबंध किया गया है। ओरियंटल कॉलेज में तो प्रायः सभी विद्यार्थी अपना भोजन आप बनाते हैं। उनके लिये एक अलग छात्रावास है। प्रत्येक होस्टल में ६ बड़े-बड़े कमरे— वाचनालय, व्यायाम-शाला आदि के लिये —हैं। छात्रावासों के लिये अलग एक बड़ा अस्पताल है। इनके अतिरिक्त, सबके लिये और कई प्रकार की व्यायाम-शालाएँ और बड़े-बड़े वाचनालय हैं; जिनमें कई भाषाओं के कई दर्जन पत्र आते हैं। छात्रावासों में प्रत्येक एकादशी के दिन कथा हुआ करती है; जिसमें स्वयं मालवीयजी भी भाग लेते हैं। एक-आध बार तो उन्होंने स्वयं ही कथा कही है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन पठन-पाठन का प्रारंभ होने के पूर्व सभी विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों की एकत्र प्रार्थना होती है। व्याख्यानों की तो हर हफ़्ते भरमार ही रहती है। कितने ही लोग, भारत के भीतर तथा बाहर से, प्रतिदिन विश्वविद्यालय ही देखने आया करते हैं। होस्टल तथा कॉलेजों में छात्रों और गुरुओं के व्यवहार बहुत ही सरल, स्वतंत्रता-पूर्ण और दूसरे कॉलेजों से कहीं भिन्न हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



छात्रावासों का एक भाग (नगवा)

दर्शन से लेकर रसायन और वृक्ष-शास्त्र तक की एम्० ए० तक शिक्षा होती है। साइंस न लेनेवाले जिन छात्रों ने एंट्रेंस संस्कृत लेकर नहीं पास किया, उन्हें संस्कृत की एक प्रवेशिका-परीक्षा पास करनी पड़ती है। प्रत्येक विषय का एक पृथक् विभाग है। उन सबके अलग-अलग अध्यक्ष हैं। मालवीय-जी ने प्रत्येक विषय के विद्वानों को चारों ओर से बुलाकर एकत्र कर दिया है।

गणित-शास्त्र के अध्यक्ष अपने विषय के अपूर्व विद्वान् डॉक्टर गणेशप्रसादजी हैं। इनके अतिरिक्त

विश्वविद्यालय के चारों ओर प्राकृतिक दृश्यों की छटा भी अच्छी देख पड़ा करती है। एक ओर गंगाजी लहराती हैं, और तीनों ओर गाँव हैं। बीच में अनेक जलाशय तथा बग़ीचे हैं। कॉलेजों के पास ही विश्वविद्यालय की गउएँ चरती रहती हैं। विश्वविद्यालय की ओर से खेती भी होती है। ये ही गउएँ विद्यार्थियों को ताज़ा दूध, सस्ते भाव में, देती हैं। जिन गाँवों के हटने से विश्वविद्यालय को भूमि मिली है, वे पास ही बसा दिए गए हैं। वहाँ के लोग आस-पास खेती करते और विद्यार्थियों को अनेक प्रकार से सहायता देते हैं। नगवे-भर में कितनी ही सड़कें हैं। उन सड़कों पर, दोनों ओर, छोटे-छोटे वृक्षों की दुहरी पंक्तियाँ लगी हैं। हरएक सड़क पर एक ही प्रकार के पेड़ हैं। विश्वविद्यालय के लिये अलग डाक-घर, तार-घर, होटल तथा दूकानें हैं। सब मिलाकर पूरा एक नगर हो गया है। यह नगर प्रति-दिन बढ़ता ही जा रहा है। ईश्वर करे, इसकी निरंतर वृद्धि होती रहे!

अब यहाँ की शिक्षा का कुछ हाल सुनिए। ओरियंटल कॉलेज में संस्कृत और प्राच्य विद्याओं की शिक्षा तो होती ही है, वैद्यक, आयुर्वेद, इतिहास, अर्थ-शास्त्र तथा थोड़ी-सी अँगरेज़ी भी पढ़ाई जाती है। प्रत्येक विषय—ज्योतिष, गणित आदि—की शिक्षा आधुनिक रीति से दी जाती है। फ़ीस तो लगती ही नहीं। प्रायः प्रत्येक विद्यार्थी को छात्र-वृत्ति दी जाती है। आर्ट्स कॉलेज में संस्कृत और



डॉ० गणेशप्रसाद
(गणित-विभाग के अध्यक्ष)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक विद्वान् इनके साथ गणित-संबंधी खोज करते हैं। खोज के लिये योग्य विद्वानों और नवयुवक विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना भी विश्वविद्यालय का एक उद्देश्य है। सचमुच, ऐसी संस्था भी यदि संसार के ज्ञान की वृद्धि न करे, तो उसके रहने से लाभ ही क्या ? ऐसी खोज करने के लिये विद्यार्थियों को विशेष छात्र-वृत्तियाँ—प्रत्येक ७५) मासिक की—दी जाती हैं। इसी प्रकार हिंदी में एम्० ए० पढ़नेवालों को भी विशेष छात्र-वृत्ति मिलती है।

खोज के लिये अनेक प्रोफ़ेसर योरप तक पहुँचे हैं। साइंस-विभाग के प्रोफ़ेसर श्रीयुत सनत्कुमारजी वसु तथा हरूरामजी मेहरा दो वर्ष से जर्मनी में हैं। इधर अभी एप्रिल में औद्योगिक रसायन के अध्यक्ष अध्यापक



प्रो० नरेंद्रनरसिंह गोडबोले एम्० ए०, बी० एस्-सी०

(औद्योगिक रसायन-विभाग के प्रधान)

नरेंद्रनरसिंहजी गोडबोले भी जर्मनी गए हैं। उनके साथ ही ओरियंटल कॉलेज के प्रोफ़ेसर प्राणनाथजी विद्यालंकार भी विलायत गए हैं। आप प्राच्य-विद्या-विभाग में अर्थ-शास्त्र तथा इतिहास के अध्यापक हैं। प्रो० गोडबोले कई वर्ष तक जापान में भी रह चुके हैं। आपने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है, और उसी अनुभव से अपने नए विभाग



प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार

(अर्थ-शास्त्र तथा इतिहास के अध्यापक)

का संगठन भी खूब किया है। ये सभी महाशय विदेशों से लौटकर फिर विश्वविद्यालय की सेवा करेंगे।



प्रो० गुरुमुखसिंह एम्० एस्-सी० (लंदन), बार-एट-लॉ

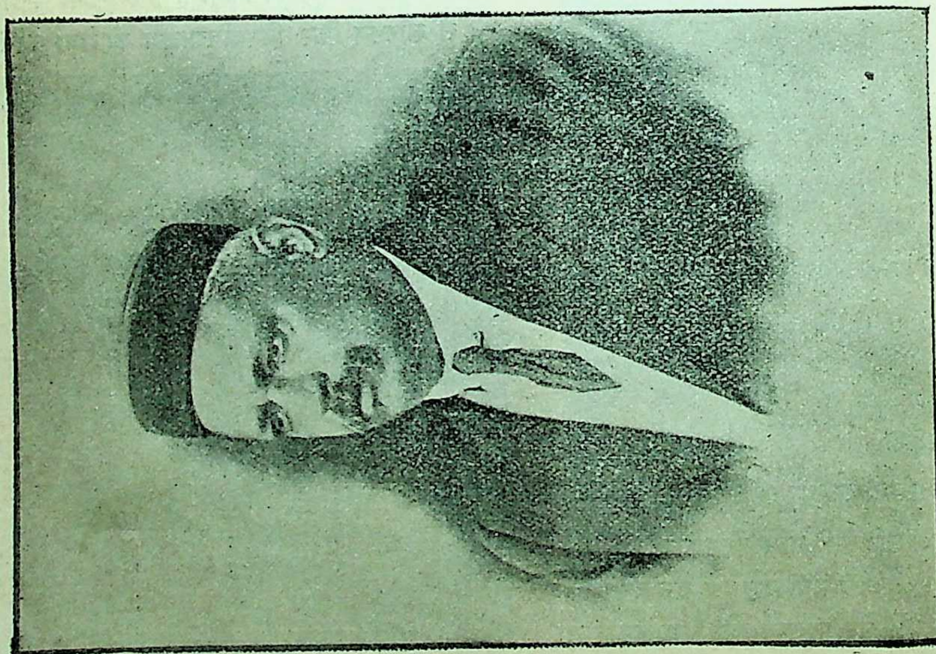
(अर्थ-शास्त्र के मुख्याध्यापक)

प्रो० गुरुमुखसिंह एम्० एस्-सी०, बैरिस्टर अर्थ-शास्त्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० रामचंद्र शुक्ल (हिंदी-अध्यापक)



बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०
(हिंदी के प्रोफ़ेसर)

मुख्याध्यापक हैं । आप श्रीयुत सेंट निहालसिंहजी के छोटे भाई हैं । हिंदी-संसार के चिरपरिचित बाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए० और पं० रामचंद्रजी शुक्ल जैसे धुरंधर विद्वान् हिंदी के अध्यापक हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिर्ज़ा मोहम्मद हुसेन विश्वविद्यालय के फ़ारसी एवं उर्दू-विभाग के प्रधान हैं। आप उर्दू और फ़ारसी के अच्छे



मिर्ज़ा मोहम्मद हुसेन
(फ़ारसी और उर्दू-विभाग के प्रधान)

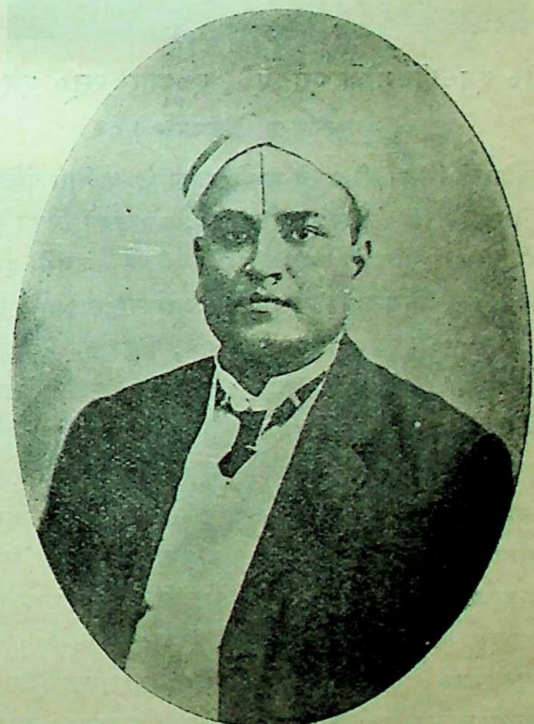
कवि हैं, और आपने फ़ारसी में एक 'दीवान' भी लिखा है। प्रोफ़ेसर एच्० बी० मलकानी एम्०ए० टीचर्स ट्रेनिंग-कॉलेज के एज्युकेशन-प्रोफ़ेसर हैं।

इसी प्रकार ऍंगरेज़ी-विभाग के अध्यक्ष प्रो० पुंडी शेषाद्रिजी हैं। आप अभी नवयुवक ही हैं; पर आपकी-सी योग्यता के आदमी बहुत कम मिलेंगे। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। ऍंगरेज़ी में कविता भी अच्छी करते हैं। मदरास में आप सलेम-कॉलेज के प्रिंसिपल थे। कुछ दिनों तक यहाँ भी प्रिंसिपल के पद पर रह चुके हैं। भूगर्भ-शास्त्र के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर एन्० पी० गाँधी हैं। आप कई स्थानों पर अनुभव के साथ काम कर चुके हैं।

इन विद्वानों के अतिरिक्त यहाँ और भी अनेक आचार्य हैं। रसायन-विभाग में डॉक्टर शांतिस्वरूप भटनागर डी० एस्-सी० (लंदन), और भौतिक-शास्त्र-विभाग में डॉ० निहालकरन सेठी डी० एस्-सी० अपने-अपने विषय के अद्वितीय विद्वान् हैं। इसी प्रकार ओरियंटल कॉलेज में भी महामहोपाध्याय पंडितवर



प्रो० एच० बी० मलकानी एम्० ए०
(टीचर्स ट्रेनिंग-कॉलेज के एज्युकेशन-प्रोफ़ेसर)



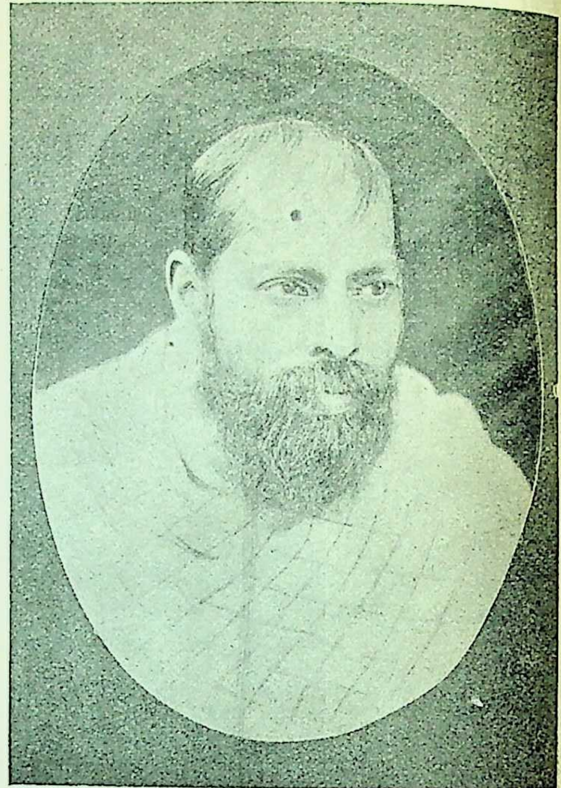
प्रो० पी० शेषाद्रि
(ऍंगरेज़ी-विभाग के अध्यक्ष)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रो० एन०पी०गाँधी एम्०ए०, ए०आर०एस्० एम्०
(भूगर्भ-शास्त्र के अध्यक्ष)



प्रो० श्यामाचरण दे एम्० ए०
(रजिस्ट्रार)

जयदेवजी मिश्र-जैसे अपने-अपने शास्त्र के पारंगत पंडित हैं। यही नहीं, कई सज्जन तो ऐसे हैं, जो अपने विषय के पंडित, और साथ ही त्याग की मूर्ति भी, हैं। उनमें एक तो हैं, विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार प्रोफ़ेसर श्यामाचरण दे एम्० ए०। आप बाल-ब्रह्मचारी हैं, और कई वर्षों से इस संस्था की सेवा कर रहे हैं। कलकत्ता-विश्वविद्यालय की एम्० ए०-परीक्षा में प्रथम आने के बाद आप गणित के अध्यापक रहे। इस प्रकार जो कुछ आपने अब तक कमाया, उसे भी अपने जीते-जी विश्वविद्यालय के नाम वसीयत कर दिया है। रजिस्ट्रार नियमानुसार वेतन लेने को बाध्य है। अतएव आप १) मासिक लेते हैं। क्या भारत में और किसी विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार ऐसे होंगे ? दूसरे सज्जन हैं, प्रो० पंढरीनाथ-काशिनाथजी तेलंग। आप स्वर्गीय जस्टिस काशिनाथ-त्र्यंबक तैलंग के सुपुत्र हैं। आप के पास बहुत-सी पैतृक संपत्ति है। आप विश्वविद्यालय से कुछ भी नहीं लेते। उलटे अपने पिता की एक बड़ी भारी लायब्रेरी की सारी पुस्तकें आपने इस संस्था को दान कर दी हैं। इसके अतिरिक्त आप स्वतंत्र रूप से थियासोफ़िकल स्कूल का संचालन करते हैं; वहाँ पढ़ाते भी हैं। विश्वविद्यालय को ऐसे ही परोपकारी नर-रत्नों की आवश्यकता है।

विश्वविद्यालय की वैज्ञानिक प्रयोग-शालाओं का संगठन बड़ा ही अच्छा है। अनेक भारतीय तथा अन्य-देशीय विद्वान् मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा कर चुके हैं। उनके साथ-साथ कई अजायब-घर भी हैं। उनमें बड़े परिश्रम से अनेक अद्भुत वस्तुओं का संग्रह किया गया है।

टीचर्स ट्रेनिंग-कॉलेज में सभी विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ दी जाती हैं। कुछ छात्र-वृत्तियाँ सरकार की ओर से मिलती हैं, और शेष विश्वविद्यालय की ओर से। सच पूछिए, तो अध्यापक ही देश के निर्माता और उसके भाग्य या भविष्य के विधाता होते हैं। यदि हमारी इस संस्था के उच्च आदर्शों को सम्मुख रखकर ये अध्यापक जातीय शिक्षा के प्रमुख बनेंगे, तो पूर्वोक्त उद्देश्यों और आदर्शों की पूर्ति में बड़ी सहायता मिलने की आशा है।

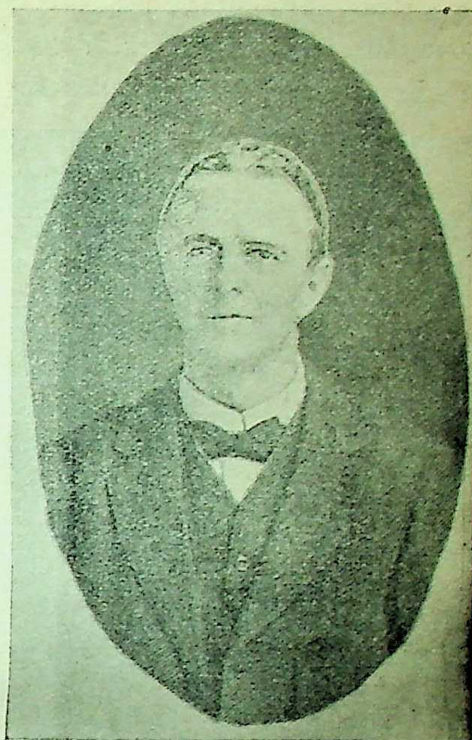
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

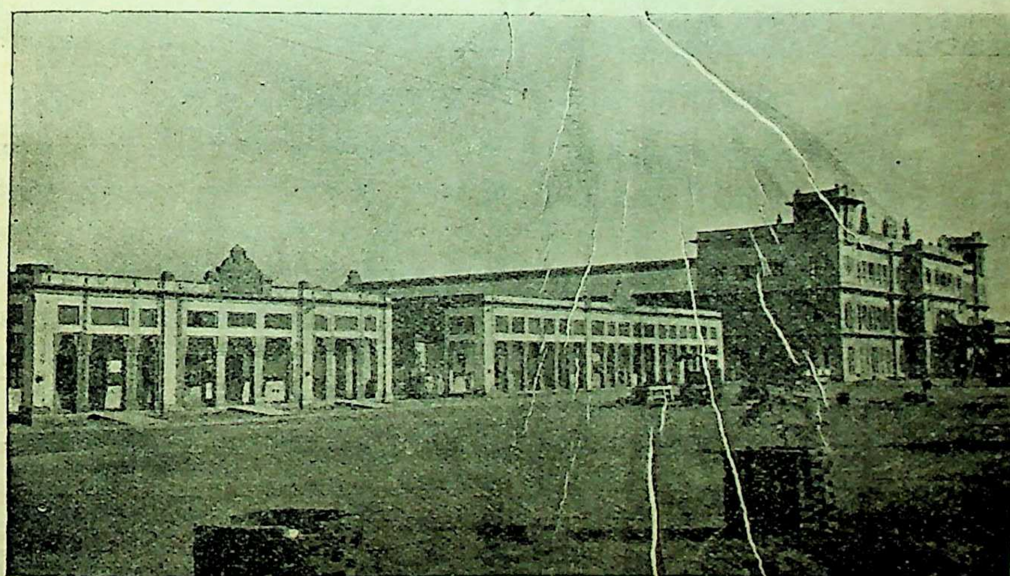
विश्वविद्यालय की सर्वोपयोगी संस्था है, उसका इंजीनियरिंग-कॉलेज। उसके प्रिंसिपल हैं, प्रोफ़ेसर चार्ल्स ए० किंग। आप बड़े ही उदार-चित्त और उत्साही हैं। इस



अध्यापक पंढरीनाथ-काशिनाथ तैलंग एम्०ए०, एल्-एल्०बी०
(इतिहास के युनिवर्सिटी-प्रोफ़ेसर)



मिस्टर चार्ल्स ए० किंग
(इंजीनियरिंग-कॉलेज के प्रिंसिपल)



इंजीनियरिंग-कॉलेज का वर्कशाप और बिजली-घर

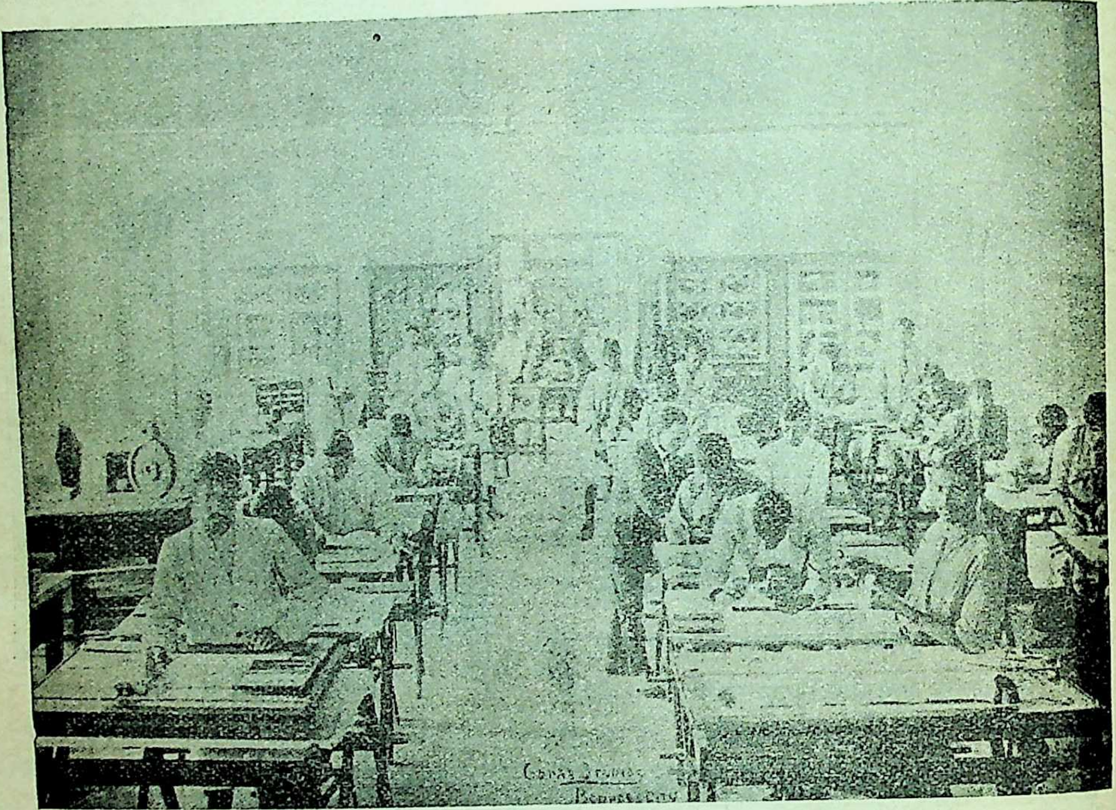
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कॉलेज में ५ वर्ष की पढ़ाई है। ४ वर्ष तो कॉलेज में रहना पड़ता है, और शेष एक वर्ष बाहर किसी स्थान में रहकर कार्य करके अपने अनुभव का परिचय देना पड़ता है। तदनंतर डिग्री मिलती है। कोर्स तीन प्रकार का है—डिप्लोमा, डिग्री तथा आर्टीज़न । जो लोग एंट्रेंस पास करके भरती होते हैं, वे डिप्लोमा में और जो

रोशनी देने का प्रबंध करेगा । उससे विश्वविद्यालय को बहुत बड़ा लाभ होने की संभावना है।

इस वर्ष विश्वविद्यालय का छठा वार्षिक अधिवेशन (Convocation) हुआ है । यह वर्ष इस संस्था के इतिहास में अधिक महत्त्व का रहा । इसी वर्ष से हिंदी, एम्० ए० तक, वैकल्पिक विषयों में रक्खी गई,



इंजीनियरिंग-कॉलेज के एक क्लास का दृश्य

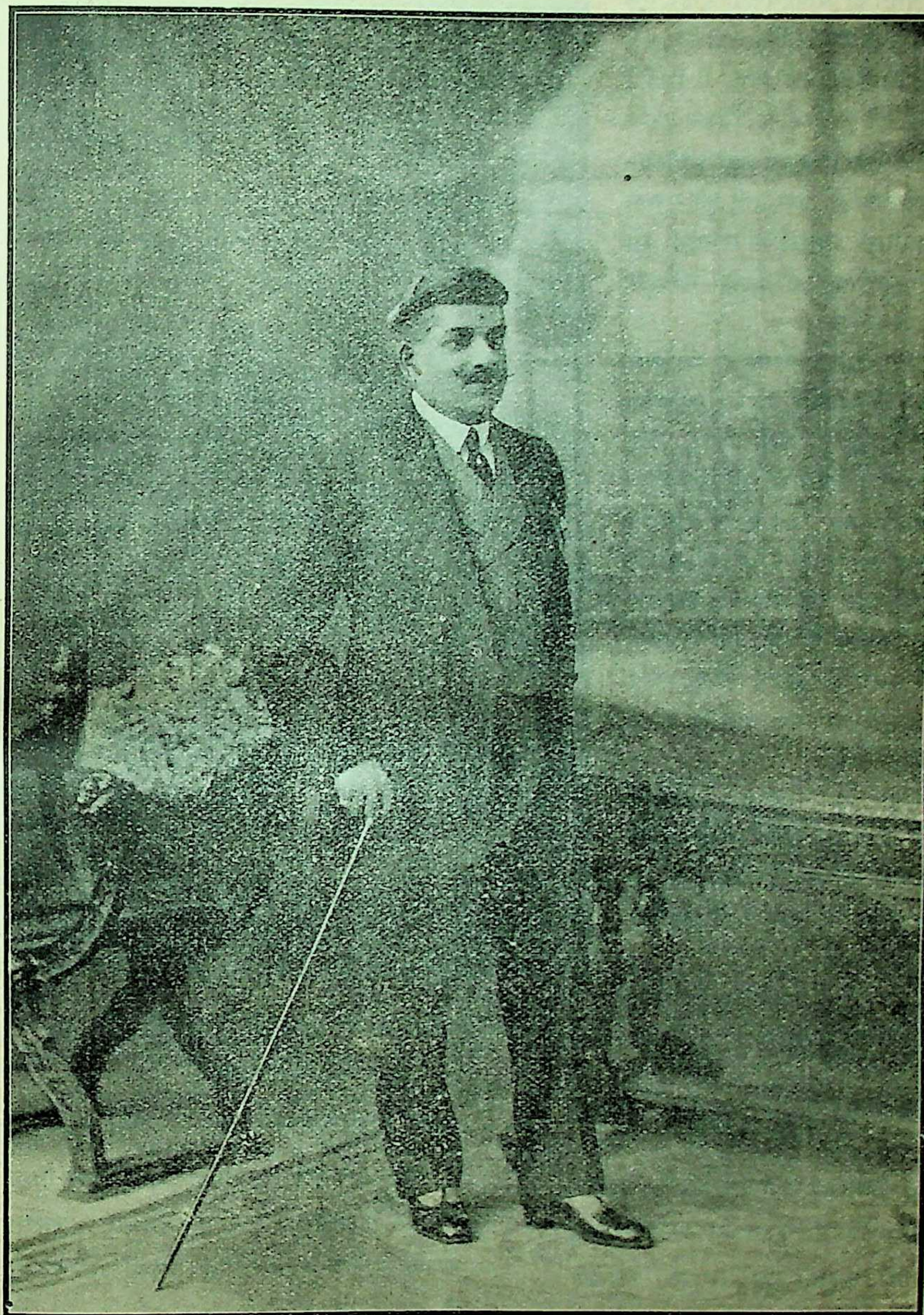
एफ़्० ए० या बी० एस्-सी० पास करके आते हैं, वे डिग्री में प्रवेश करते हैं। और, जो थोड़ी हिंदी और अँगरेज़ी पढ़कर आते हैं, वे आर्टीज़न-कोर्स में भरती होते हैं। तीनों कोर्स ५ वर्ष के हैं। अंतर केवल श्रेणियों का है। तीनों में मेकैनिकल, एलेक्ट्रिकल और सिविल इंजीनियरिंग की शिक्षा दी जाती है। यहाँ के कोर्स लंदन की डिग्रियों के बराबर स्वीकृत हो चुके हैं। इधर दो-तीन वर्षों से लंदन की City and guilds परीक्षा भी यहाँ होने लगी है। गत वर्ष यहाँ का एक विद्यार्थी संसार-भर में सर्व-प्रथम आया था । यह कॉलेज छोटे-मोटे पुर्ज़े भी बनाता है, और शीघ्र ही काशी-नगर-भर को बिजली की

और यह नियम बना कि जो चाहे, वह एंट्रेंस तक हिं में प्रश्नों के उत्तर लिख सकता है । इसी व रजिस्टर्ड ग्रेजुएटों को विश्वविद्यालय की व्यवस्थाप तथा शासक-समितियों में अपने प्रतिनिधि भेज की आज्ञा मिली है । भारत-सरकार ने अब य की ट्रेनिंग कोर (Officers' Training Corps की रचना की स्वीकृति भी दे दी है । इस विश्व विद्यालय से अब तक—इन ४-५ वर्षों के भीतर—३ से अधिक ग्रेजुएट पास हो चुके हैं।

यद्यपि अनेक ऐसी सभा-समितियाँ हैं, जिन विश्वविद्यालय अनेक प्रकार से कार्य करता रहता है; दिन-पर-दिन उन सबकी वृद्धि की आवश्यकता है। आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बड़ोदा-नरेश महाराज सयाजीराव गायकवाड़
(चांसलर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक कॉलेज, लॉ-कॉलेज तथा कृषि-कॉलेज के तो शीघ्र बनने की आवश्यकता है ही, एक नहर, एक वेध-शाला (Observatory), टेक्निकल इंस्टिट्यूट, ड्रिल शेड (Drill Shed) तथा एक बड़े भारी जिमनेज़ियम (Gymnasium) की भी बड़ी आवश्यकता है। संचालकों ने इस बात की सूचना दी है कि आगामी जुलाई से संभवतः लॉ (क़ानून) और घुड़सवारी की शिक्षा भी शुरू कर दी जायगी।

इधर बड़ोदा तथा बीकानेर के महाराजे विश्वविद्यालय के चांसलर तथा प्रो-चांसलर चुने गए हैं। आशा है, ऐसे योग्य तथा उत्साही महाराजों के नेतृत्व में विश्वविद्यालय को किसी प्रकार का अभाव न रहेगा; इसकी निरंतर उन्नति होकर इसके महान् उद्देश्यों की पूर्ति और देश का परम कल्याण होगा। हमें विश्वास है कि देश के सभी लोग तन-मन-धन से इसके लिये प्रयत्न करेंगे, और परमेश्वर की दया से हमारे मनोरथ सफल होंगे।

विश्वविद्यालय के अनेक अध्यापकों और इमारतों के चित्र मिल नहीं सके। अतएव इस लेख के साथ वे दिए नहीं जा सके। वे फिर कभी प्रिय पाठकों को भेंट किए जायँ गे।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी



बीकानेर-नरेश महाराज गंगासिंहजी बहादुर
(प्रो-चांसलर)

पुनीत पंचक

रामचरित-सरसिज-मधुप, पावन-चरित नितांत,
जय तुलसी, कबि-कुल-तिलक, कबिता-कामिनि-कांत ॥ १ ॥
सुरसरि-धारा-सी सरस, पूत, परम रमनीय,
है तुलसी की कल्पना कलपलता कमनीय ॥ २ ॥
अमित-मनोहरतामयी, अनुपमता-आवास,
है तुलसी-रचना रुचिर, बहु सुचि, सुरुचि-बिकास ॥ ३ ॥
सकल अलौकिकता-सदन, सुंदर-भाव-उपेत,
है तुलसी की कांत कृति, निरुपम कला-निकेत ॥ ४ ॥
जब लौं कबि-कुल-कल्पना करै कलित आलाप,
अवनि लसित तब लौं रहै तुलसी-कीर्ति-कलाप ॥ ५ ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रदीप

(राय कृष्णदासजी की कृपा से प्राप्त)

[चित्रकार—श्रीयुत रामप्रसाद]

माना कि मैं मृत्पात्र में स्थापित हुआ ;
पर उच्च मेरा स्थान है,
क्या ही सरस सम्मान है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदीप

अस्तित्व था, जीवन न था इस तूल में ;
होती कहाँ स्थिति भी अतः,
मैं शून्य और इतस्ततः,
उच्छिन्न-सा था उड़ रहा वातूल में ॥ १ ॥

ऊपर उठा, तब भी रहा पर-वश निरा ;
वह था नितांत निपात ही,
अवलंब था, बस, वात ही,
मैं हो सका न स्वयं खड़ा तक, जब गिरा ॥ २ ॥

सौभाग्य था यह एक दिन संयोग से ;
उड़कर पवन के साथ में,
आया तुम्हारे हाथ में,
मुझको मिली तब मुक्ति उस भव-भोग से ॥ ३ ॥

आकर तुम्हारे हाथ, बस, मैं बच गया ;
मैं बार-बार बटा गया,
यह भी तुम्हारी थी दया,
फिर मैं तुम्हारे स्नेह-रस से रच गया ॥ ४ ॥

माना कि मैं मृत्पात्र में स्थापित हुआ ;
पर उच्च मेरा स्थान है,
क्या ही सरस सम्मान है,
तुमसे प्रबोधित और मैं ज्ञापित हुआ ॥ ५ ॥

आलोक ऐसा अंत में मुझको मिला ;
जो उस समय वितरित हुआ,
जब सूर्य अंतर्हित हुआ,
क्या और भी कोई कभी मुझ-सा खिला ? ६ ॥

जलता हुआ भी आज मैं कृतकृत्य हूँ ;
आकर शलभ तक गेह में,
जलते स्वयं हैं स्नेह में,
शिक्षक नहीं, मैं पथ-प्रदर्शक भृत्य हूँ ॥ ७ ॥

करता अभी तक वायु मुझ पर चोट है ;
पर अब उसे मैं क्यों डरूँ ?
क्यों सिर हिला न घृणा करूँ ?
अँचल तुम्हारे की मिली जो ओट है ॥ ८ ॥

कृष्णदास

गोस्वामी तुलसीदास और लोक-धर्म



(क)र्म, ज्ञान और उपासना, ये लोक-धर्म के तीन अवयव बहुत प्राचीन काल से जन-समाज की स्थिति के लिये भारत में प्रतिष्ठित हैं। मानव-जीवन की पूर्णता इन तीनों के मेल विना नहीं हो सकती। परंतु देश-काल के अनुसार कभी किसी अवयव की प्रधानता रही, कभी किसी की। यह प्रधानता जब लोक में इतनी प्रबल हो जाती है कि दूसरे अवयवों की ओर लोगों की प्रवृत्ति का अभाव-सा होने लगता है, तब साम्य स्थापित करने के लिये—शेष अवयवों की ओर जनता को आकृष्ट करने के लिये—कोई-न-कोई महात्मा उठ खड़ा होता है। एक बार जब कर्म-कांड की प्रबलता हुई, तब याज्ञवल्क्य के प्रभाव से लोग उपनिषदों द्वारा ज्ञान-कांड की ओर प्रवृत्त किए गए। कुछ दिनों में फिर कर्म-कांड प्रबल पड़ा। यज्ञों में पशुओं का बलिदान धूम-धाम से होने लगा। उस समय भगवान् बुद्ध-देव का अवतार हुआ। उन्होंने भारतीय जनता को एक बार कर्म-कांड से बिलकुल हटाकर अपने ज्ञान-वैराग्य-मिश्रित धर्म की ओर लगाया। पर उनके धर्म में उपासना का भाव नहीं था, इस कारण उससे साधारण जनता के हृदय की तृप्ति नहीं हुई, और उपासना-प्रधान धर्म की फिर से स्थापना हुई।

पर किसी एक अवयव की अत्यंत वृद्धि से उत्पन्न हुई विषमता को हटाने के लिये जो मत प्रवर्तित हुए, उनमें उसके स्थान पर दूसरे अवयव का हद से बढ़ना स्वाभाविक था। किसी बात की एक हद पर पहुँचकर जनता फिर पीछे पलटती और क्रमशः बढ़ती हुई दूसरी हद पर जा पहुँचती है। धर्म और राजनीति, दोनों में यह उलट-फेर, चक्र-गति के रूप में, होता चला आ रहा है। जब जन-समाज नई उमंग से भरे हुए किसी शक्ति-शाली व्यक्ति के हाथ में पड़कर किसी एक हद से दूसरी हद पर पहुँचा दिया जाता है, तब काल पाकर उसे फिर किसी दूसरे के सहारे किसी दूसरी हद तक जाना पड़ता है। हम लोग मत-प्रवर्तक महात्माओं को आजकल की बोली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सुधारक कहते हैं, वे भी मनुष्य ही थे। किसी वस्तु को अत्यधिक परिमाण में देखकर जो विरक्ति या द्वेष होता है, वह उस 'परिमाण' ही के प्रति नहीं रह जाता, बरन् उस वस्तु तक पहुँच जाता है। चिढ़नेवाला उस वस्तु की अत्यधिक मात्रा से चिढ़ने के स्थान पर उस वस्तु से ही चिढ़ने लगता है, और उससे भिन्न वस्तु की ओर अग्रसर होने तथा अग्रसर करने में परिमिति या मर्यादा का ध्यान नहीं रखता। इस प्रकार नए-नए मत-प्रवर्तकों या 'सुधारकों' से लोक में, शांति स्थापित होने की जगह अब तक अशांति ही होती आई है। धर्म की जगह पक्षों का ऐसा सामंजस्य, जिससे समाज के भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी प्रकृति और विद्या-बुद्धि के अनुसार धर्म का स्वरूप ग्रहण कर सकें, यदि पूर्ण-रूप से प्रतिष्ठित हो, तो धर्म का रास्ता अधिक चलता हो जाय।

उपर्युक्त सामंजस्य का भाव लेकर तुलसीदासजी की आत्मा ने उस समय भारतीय जन-समाज के बीच अपनी ज्योति जगाई, जिस समय नए-नए संप्रदायों की खींच-तान के कारण आर्य-धर्म का व्यापक स्वरूप आँखों से ओझल हो रहा था, और एकदेश-दर्शिता बढ़ रही थी। जो एक कोना देख पाता था, वह दूसरे कोने पर दृष्टि रखनेवालों को बुरा-भला कहता था। शैवों, वैष्णवों, शाक्तों और कर्मठों की 'तू-तू, मैं-मैं' तो थी ही, बीच में मुसलमानों से अविरोध-प्रदर्शन के लिये भी अपढ़ जनता को अपने साथ से घसीटनेवाले कई नए पंथ निकल चुके थे। उनमें एकेश्वर-वाद का कट्टर स्वरूप, उपासना का आशिक़ी रंग-ढंग, ज्ञान-विज्ञान की निंदा, विद्वानों का उपहास, वेदांत के दो-चार प्रसिद्ध शब्दों का अनधिकार-प्रयोग आदि सब कुछ था; परंतु लोगों को व्यवस्थित करनेवाली वह मर्यादा नहीं थी, जो भारतीय आर्य-धर्म का प्रधान लक्षण है। जिस उपासना-प्रधान धर्म का ज़ोर बुद्ध के पीछे बढ़ने लगा, वह उस मुसलमानी राजत्व-काल में आकर, जिसमें जनता की बुद्धि भी, पुरुषार्थ के ह्रास के साथ-साथ, शिथिल पड़ गई थी, कर्म और ज्ञान दोनों की उपेक्षा करने लगा था। ऐसी स्थिति में इन नए-नए पंथों का निकलना कुछ आश्चर्य की बात नहीं। इधर शास्त्रों का पठन-पाठन लोगों में कम रह गया था, उधर ज्ञानी कहलाने की इच्छा रखनेवाले ऐसे मूर्ख बढ़ रहे थे, जो किसी 'सत्गुरु' के 'प्रसाद'-मात्र से ही अपने को सर्वज्ञ मानने के लिये तैयार बैठे थे। अतः 'सत्गुरु' भी उन्हीं में से निकल पड़ते थे, जो धर्म का कोई एक अंश नोचकर एक ओर भाग खड़े होते थे; और, कुछ लोग झाँझ-खँजड़ी लेकर उनके पीछे हो लेते थे। दंभ बढ़ रहा था। गोस्वामीजी के शब्दों में 'ब्रह्म-ज्ञान बिनु नारि-नर, कहहिं न दूसरि बात।' ऐसे लोगों ने भक्ति को बदनाम कर रक्खा था। भक्ति ही के नाम पर वे वेद-शास्त्र की निंदा करते थे, पंडितों को गालियाँ देते थे, और आर्य-धर्म के सामाजिक तत्त्व को न समझकर लोगों में वर्णाश्रम के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न कर रहे थे। यह उपेक्षा लोक-समाज के लिये कदापि कल्याण-कर नहीं हो सकती। जिस समाज से बड़ों का आदर, विद्वानों का सम्मान और अत्याचार का दमन करनेवाले शूर-वीरों के प्रति श्रद्धा इत्यादि के भाव उठ जायँ, वह कदापि फल-फूल नहीं सकता। उसमें सदा अशांति बनी रहेगी।

भक्ति का यह विकृत रूप जिस समय उत्तर-भारत में अपनी जड़ जमा रहा था, उसी समय भक्तवर गोस्वामी-जी का अवतार हुआ। उन्होंने वर्णाश्रम-धर्म, कुलाचार, वेद-विहित कर्म, शास्त्र-प्रतिपादित ज्ञान इत्यादि सब बातों के साथ भक्ति का पुनः सामंजस्य स्थापित करके आर्य-धर्म को छिन्न-भिन्न होने से बचाया। ऐसे सर्वांग-दर्शी, लोक-व्यवस्थापक महात्मा को मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचंद्र के चरित्र से बढ़कर अवलंब और क्या मिल सकता था? उसी आदर्श चरित्र के भीतर अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से उन्होंने धर्म के सब रूपों को दिखाकर भक्ति का प्रकृत आधार खड़ा किया। जनता ने लोक की रक्षा करनेवाले प्राकृतिक धर्म का मनोहर रूप देखा। उसने धर्म को दया, दाक्षिण्य, नम्रता, सुशीलता, पितृ-भक्ति, सत्य-व्रत, उदारता, प्रजा-पालन, क्षमा आदि में ही नहीं, क्रोध, घृणा, शोक, विनाश और ध्वंस आदि में भी देखा। अत्याचारियों पर जो क्रोध प्रकट किया जाता है, असाध्य दुर्जनों के प्रति जो घृणा प्रकट की जाती है, उसमें भी धर्म अपना मनोहर रूप दिखलाता है। जिस धर्म की रक्षा से लोक की रक्षा होती है, जिससे समाज चलता है, वह यही व्यापक धर्म है। सत् और असत्—भले और बुरे—दोनों के मेल का नाम संसार है। पापी और पुण्यात्मा, परोपकारी और अत्याचारी, सज्जन और दुर्जन सदा संसार में रहे हैं, और रहेंगे। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगुन छीर, अवगुन जल, ताता; मिलइ रचइ परपंच विधाता।
सुधा-सुरा-सम साधु-असाधू; जनक एक जग-जलधि अगाधू।

किसी एक सर्प को चाहे कोई उपदेश द्वारा अहिंसा में तत्पर कर दे, किसी डाकू को साधु बना दे, किसी क्रूर को सज्जन कर दे; पर सर्प, दुर्जन और क्रूर संसार में रहेंगे—और अधिक रहेंगे। यदि ये दोनों पक्ष न होंगे, तो सारे धर्म और कर्तव्य की, सारे जीवन-प्रयत्न की, इतिश्री ही हो जायगी। यदि एक गाल में चपत मारनेवाला ही न रहेगा, तो दूसरा गाल फेरने का महत्त्व कैसे दिखाया जायगा? प्रकृति के तीनों गुणों की अभिव्यक्ति जब तक अलग-अलग है, तभी तक उसका नाम जगत् या संसार है। अतः ऐसी दुष्टता सदा रहेगी, जो सज्जनता के द्वारा कभी नहीं दबाई जा सकती; ऐसा अत्याचार सदा रहेगा, जिसका दमन उपदेशों के द्वारा कभी नहीं हो सकता। संसार जैसा है, वैसा ही उसे मानकर, उसके बीच से—उसके एक-एक कोने को स्पर्श करता हुआ—जो धर्म निकलेगा, वही लोक-धर्म होगा। जीवन के किसी एक अंग-मात्र को स्पर्श करनेवाला धर्म लोक-धर्म नहीं। जो धर्म उपदेश से न सुधरनेवाले दुष्टों और अत्याचारियों को कोरा छोड़ दे, उनके लिये दंड की कोई व्यवस्था न करे, वह लोक-धर्म नहीं, व्यक्ति-गत साधना है। वह साधना मनुष्य की वृत्ति को ऊँचे-से-ऊँचे ले जा सकती है; जहाँ वह लोक-धर्म से परे हो जाती है। परंतु सारा समाज उसका अधिकारी नहीं हो सकता।

ईसाई, बौद्ध, जैन इत्यादि वैराग्य-प्रधान मतों में साधना के जो धर्मोपदेश दिए गए, उनका पालन अलग-अलग कुछ व्यक्तियों ने चाहे किया हो, पर सारे समाज ने नहीं किया। किसी ईसाई-साम्राज्य ने अन्याय-पूर्वक अग्रसर होनेवाले किसी दूसरे साम्राज्य से मार खाकर अपना दूसरा गाल उधर नहीं फेरा। वहाँ भी समष्टि-रूप में, जनता के बीच, लोक-धर्म ही चलता रहा। अतः व्यक्ति-गत साधना के कोरे उपदेशकों की तड़क-भड़क दिखाकर लोक-धर्म के प्रति उपेक्षा प्रकट करना पाखंड ही नहीं, उस समाज के प्रति घोर कृतघ्नता भी है, जिसके बीच उनकी काया पली है।

लोक-मर्यादा का उल्लंघन, समाज की व्यवस्था का तिरस्कार, अनधिकार-चर्चा, भक्ति और साधुता का मिथ्या दंभ, मूर्खता छिपाने के लिये वेद-शास्त्र की निंदा, ये सब बातें ऐसी थीं, जिनसे गोस्वामीजी की अंतरात्मा बहुत व्यथित हुई। अशिष्ट संप्रदाय का औद्धत्य वह नहीं देख सकते थे। उन्होंने कई जगह नए पंथों के प्रति अपनी चिढ़ प्रकट की है। जैसे—

श्रुति-सम्मत हरि-भक्ति-पथ, संजुत बिरति बिबेक,
तेहि परिहरहिं बिमोह-बस, कल्पहिं पंथ अनेक।
साखी, सबदी, दोहरा, कहि किहनी, उपखान,
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद-पुरान।

उत्तर-कांड में कलि के व्यवहारों का वर्णन करते हुए वह इस प्रसंग में कहते हैं—

बादहिं शूद्र द्विजन सन, हम तुम तें कछु घाटि?
जानहिं ब्रह्म सो विप्रबर, आँखि दिखावहिं डाँटि।

जो बातें ज्ञानियों के चिंतन के लिये थीं, उन्हें अपरिपक्व रूप में अनधिकारियों के आगे रखने से लोक-धर्म का तिरस्कार अनिवार्य था। 'शूद्र'-शब्द जाति की नीचता-मात्र का बोधक नहीं है; उससे विद्या, बुद्धि, शील, शिष्टता, सभ्यता आदि सभी की हीनता समझनी चाहिए। समाज में मूर्खता के प्रचार, बल और पौरुष के ह्रास, अशिष्टता की वृद्धि, और प्रतिष्ठित आदर्शों की उपेक्षा को कोई विचारवान् पुरुष नहीं सह सकता। गोस्वामीजी सच्चे भक्त थे। भक्ति-मार्ग की यह दुर्दशा वह भला कब देख सकते थे? उन्होंने लोक-विहित आदर्शों की पुनः प्रतिष्ठा करने के लिये, भक्ति के सच्चे सामाजिक आधार फिर से खड़े करने के लिये, रामचरित का आश्रय लिया; जिसके बल से लोगों ने फिर धर्म के जीवन-व्यापी स्वरूप का साक्षात्कार किया, और उस पर मुग्ध हुए। 'कलि-कलुष-विभंजिनी' राम-कथा घर-घर धूम-धाम से फैली। हिंदू-धर्म में नई शक्ति का संचार हुआ। 'श्रुति-सम्मत' हरि-भक्ति की ओर जनता फिर से आकृष्ट हुई। रामचरित-मानस के प्रभाव से उत्तर-भारत में सांप्रदायिकता का वह उच्छृंखल रूप अधिक न ठहरने पाया, जिसने गुजरात आदि में वर्ग-के-वर्ग को वैदिक-संस्कारों से एकदम विमुख कर दिया, दक्षिण में शैवों और वैष्णवों का घोर विद्रोह खड़ा किया। वहाँ की किसी प्राचीन पुरी में शिव-कांची और विष्णु-कांची के समान दो अलग-अलग बस्तियाँ होने की नौबत नहीं आई। अब भी शैवों और वैष्णवों में मार-पीट कभी नहीं होती। यह सब किसके प्रसाद से? भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी के ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी शांति-प्रदायिनी वाणी के मनोहर प्रभाव से जो सामंजस्य की बुद्धि जनता में आई, वह अब तक बनी है, और जब तक रामचरित-मानस का पठन-पाठन होता रहेगा, तब तक रहेगी।

रामचरित-मानस में शैवों और वैष्णवों के विरोध के परिहार का प्रयत्न स्थान-स्थान पर लक्षित होता है। ब्रह्मवैवर्त-पुराण के गणेश-खंड में शिव हरि-मंत्र के जापक कहे गए हैं। उसके अनुसार गोस्वामीजी ने शिव को राम का सबसे अधिकारी भक्त बनाया। पर, उसके साथ ही, राम को शिव का उपासक बनाकर उन्होंने दोनों का महत्त्व प्रतिपादित किया। राम के मुखारविंद से उन्होंने स्पष्ट कहला दिया कि—

शिव-द्रोही मम दास कहावै,
सो नर सपनेहु मोहिं न भावै।

एक स्थान पर और कहते हैं—"शंकर-प्रिय मम द्रोही, शिव-द्रोही मम-दास" मुझे पसंद नहीं।

इस प्रकार गोस्वामीजी ने उपासना या भक्ति का केवल कर्म और ज्ञान के साथ ही सामंजस्य नहीं स्थापित किया, बल्कि भिन्न-भिन्न उपास्य देवों के कारण जो भेद दिखाई पड़ते थे, उनकी भी एक में पर्यवसान कर दिया। इसी एक बात से यह अनुमान हो सकता है कि उनका प्रभाव हिंदू-समाज की रक्षा के लिये—उसके व्यापक स्वरूप को स्थिर रखने के लिये—कितने महत्त्व का था।

तुलसीदासजी यद्यपि राम के अनन्य भक्त थे, पर लोक-रीति के अनुसार अपने ग्रंथों में गणेश-वंदना पहले करके तब आगे चले हैं। सूरदासजी ने "हरि-हरि-हरि-हरि सुमिरन करौ" से ही ग्रंथ का आरंभ किया है। तुलसीदासजी की अनन्यता सूरदासजी से कम न थी, पर वह लोक-मर्यादा की रक्षा का भाव लिए हुए थी। सूरदासजी की भक्ति में लोक-संग्रह का भाव न था; पर हमारे गोस्वामीजी का भाव अत्यंत व्यापक था। वह मानव-जीवन के सब व्यापारों तक पहुँचनेवाला था। वह राम की लीला के भीतर जगत् के सारे व्यवहार और जगत् के सारे व्यवहारों के भीतर राम की लीला देखते थे। पारमार्थिक दृष्टि से तो सारा जगत् राम-मय है। पर व्यावहारिक दृष्टि से उसके राम और रावण, दो पक्ष हैं। अपने स्वरूप के प्रकाश के लिये मानो राम ने रावण का असत् रूप खड़ा किया। 'मानस' के प्रारंभ में सिद्धांत-कथन के समय तो वह "सिया-राम-मय सब जग जानी" सबको सप्रेम प्रणाम करते हैं, पर आगे व्यवहार-क्षेत्र में चलकर रावण के प्रति 'शठ' आदि बुरे शब्दों का प्रयोग करते हैं।

भक्ति के तत्त्व को हृदयंगत करने के लिये उसके विकास पर ध्यान देना आवश्यक है। मनुष्य-जाति अपने ज्ञान की परिमिति के अनुभव के साथ-साथ आदिम काल से ही आत्म-रक्षा के लिये परोक्ष शक्तियों की उपासना करती आई है। वह अपनी परिस्थिति के अनुरूप ही इन शक्तियों की भावना करती रही। दुःखों से बचने का प्रयत्न जीवन का प्रथम प्रयत्न है। इन दुःखों का आना या न आना बिलकुल अपने हाथ में नहीं है, यह देखते ही मनुष्य ने उनको कुछ परोक्ष शक्तियों द्वारा प्रेरित समझा; और इसी से बलिदान आदि के द्वारा उन्हें शांत और तुष्ट रखना उसे आवश्यक दिखाई पड़ा। इस आदिम उपासना का मूल था 'भय'। जिन देवतों की उपासना असभ्य दशा में प्रचलित हुई, वे 'अनिष्ट देव' थे। आगे चलकर जब परिस्थिति ने दुःख-निवारण-मात्र से कुछ अधिक सुख की आकांक्षा का अवकाश दिया, तब साथ ही देवतों के सुख-समृद्धि-विधायक स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई। यह 'इष्टानिष्ट'-भावना बहुत काल तक रही। वैदिक देवतों को हम इसी रूप में पाते हैं। वे पूजा पाने से प्रसन्न होकर धन, धान्य, ऐश्वर्य, विजय आदि सब देते थे; किंतु पूजा न पाने पर कोप और घोर अनिष्ट करते थे। व्रज के गोपों ने जब इंद्र की पूजा बंद कर दी, तब उन्होंने ऐसा ही कोप किया था। उसी काल से 'इष्टानिष्ट'-काल की समाप्ति माननी चाहिए।

समाज के पूर्ण रूप से सुव्यवस्थित हो जाने के साथ ही मनुष्य के कुछ आचरण लोक-रक्षा के अनुकूल और कुछ प्रतिकूल दिखाई पड़ गए थे। 'इष्टानिष्ट'-काल के पूर्व ही समाज में लोक-धर्म और शील की प्रतिष्ठा हो चुकी थी; पर उनका संबंध प्रचलित देवतों के साथ नहीं स्थापित हुआ था। देवगण धर्म और शील से प्रसन्न और अधर्म तथा दुःशीलता पर कुपित होनेवाले नहीं हुए थे। वे अपनी पूजा से प्रसन्न और उस पूजा में त्रुटि से ही अप्रसन्न होनेवाले बने थे। ज्ञान-मार्ग की ओर एक ब्रह्म का निरूपण बहुत पहले से हुआ था। पर वह ब्रह्म लोक-व्यवहार से तटस्थ था;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौकिक उपासना के योग्य नहीं था। धीरे-धीरे उसके व्यावहारिक रूप—सगुण रूप—की तीन रूपों में प्रतिष्ठा हुई—स्रष्टा, पालक और संहारक। उधर स्थिति-रक्षा का विधान करनेवाले धर्म और शील के नाना रूपों की अभिव्यक्ति पर जनता पूर्ण रूप से मुग्ध हो चुकी थी। उसने चट दया, दाक्षिण्य, क्षमा, उदारता, वत्सलता, सुशीलता आदि उदात्त वृत्तियों का आरोप ब्रह्म के सगुण 'पालक'-स्वरूप में किया। लोक में 'इष्ट-देव' की प्रतिष्ठा हो गई। नारायण वासुदेव के मंगलमय रूप का साक्षात्कार हुआ। जन-समाज आशा और आनंद से नाच उठा। भागवत-धर्म का उदय हुआ। भगवान् पृथ्वी का भार उतारने और धर्म की स्थापना करने के लिये बार-बार आते हुए साक्षात् दिखाई पड़े। जिन गुणों से लोक की रक्षा होती है, जिन गुणों को देख हमारा हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, उनको हम जिसमें देखें, वही 'इष्ट-देव' है—हमारे लिये वही सबसे बड़ा है—

तुलसी जप, तप, नेम, व्रत, सब सब ही तें होइ ;
लहै बड़ाई देवता, 'इष्ट-देव' जब होइ।

इष्ट-देव भगवान् के स्वरूप के अंतर्गत केवल उनका दया-दाक्षिण्य ही नहीं, असाध्य दुष्टों के संहार की उनकी अपरिमित शक्ति और लोक-मर्यादा-पालन भी है।

भक्ति का यह मार्ग बहुत प्राचीन है। जिसे रूखे ढंग से 'उपासना' कहते हैं, उसी ने व्यक्ति की रागात्मक सत्ता के भीतर प्रेम-परिपुष्ट होकर भक्ति का रूप धारण किया। व्यष्टि-रूप में प्रत्येक मनुष्य के और समष्टि-रूप में मनुष्य-जाति के सारे प्रयत्नों का लक्ष्य स्थिति-रक्षा है। अतः ईश्वरत्व के तीनों रूपों में से स्थिति-विधायक रूप ही भक्ति का अवलंबन हुआ। विष्णु या वासुदेव की उपासना ही मनुष्य के रति-भाव को अपने साथ लगाकर भक्ति की चरम अवस्था को पहुँच सकी। या यों कहिए कि भक्ति की ज्योति का प्रकाश वैष्णवों में ही हुआ। तुलसीदास के समय में दो प्रकार के भक्त पाए जाते थे। एक तो प्राचीन परंपरा के राम-कृष्णोपासक भक्त; जो वेद-शास्त्रज्ञ, तत्त्व-दर्शी आचार्यों द्वारा प्रवर्तित संप्रदायों के अनुयायी थे, और अपने उपदेशों में दर्शन, इतिहास, पुराण आदि के प्रसंग लाते थे। दूसरे वे, जो समाज-व्यवस्था की निंदा तथा पूज्य और सम्मानित व्यक्तियों के उपहास द्वारा अशिष्टों के द्वेष और अहंकार-वृत्ति को तुष्ट करके उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करते थे। समाज की व्यवस्था में कुछ विकार आ जाने से ऐसे लोगों के लिये अच्छा मैदान हो जाता है। समाज के बीच शासकों, कुलीनों, श्रीमानों, विद्वानों, शूर-वीरों, आचार्यों इत्यादि को अवश्य अधिकार और सम्मान कुछ अधिक प्राप्त रहता है। अतः ऐसे लोगों की भी कुछ संख्या सदा रहती है, जो उन्हें अकारण ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से देखते हैं, और उन्हें नीचा दिखाकर अपने अहंकार को तुष्ट करने की ताक में रहते हैं। इसलिये उक्त शिष्ट वर्गों में कोई दोष न रहने पर भी उनमें दोषोद्भावना करके कोई चलता-पुरज़ा आदमी ऐसे लोगों को संग में लगाकर 'प्रवर्तक', 'अगुआ', 'महात्मा', 'क्रांतिकारी' इत्यादि-इत्यादि होने का डंका पीट सकता है। यदि दोष सचमुच हुआ, तो फिर क्या कहना है ! सुधार की सच्ची इच्छा रखनेवाले दो-चार होंगे, तो ऐसे लोग पचीस। किसी समुदाय के मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष और अहंकार को काम में लाकर 'अगुआ' और 'प्रवर्तक' बनने का हौसला रखनेवाले समाज के शत्रु हैं। योरप में जो सामाजिक अशांति चली आ रही है, वह बहुत कुछ ऐसे ही लोगों के कारण। संघ-निर्माण में प्राच्य देशों की अपेक्षा अधिक कुशल होने के कारण वे अपने व्यवसाय में बहुत जल्दी सफलता प्राप्त कर लेते हैं। योरप में जितने लोक-विप्लव हुए हैं, जितनी राज-हत्याएँ और नर-हत्याएँ हुई हैं, उन सबमें जनता के वास्तविक दुःख का भाग यदि $\frac{1}{3}$ था, तो विशेष जन-समुदाय की नीच वृत्तियों का भाग $\frac{2}{3}$। 'क्रांतिकारक', 'प्रवर्तक' आदि कहलाने का उन्माद योरप में बहुत अधिक है। इन्हीं उन्मादियों के हाथ में पड़कर वहाँ के समाज का अंग-भंग हो रहा है। अभी थोड़े दिन हुए, एक मेम साहबा पति-पत्नी के संबंध पर व्याख्यान देती फिरती थीं कि कोई आवश्यक नहीं कि स्त्री पति के घर में ही रहे।

भक्त कहलानेवाले एक विशेष समुदाय के बीच इस प्रकार का उन्माद जिस समय बढ़ रहा था, उस समय उसी समुदाय के भीतर एक ऐसी शुभ्र, सात्त्विक ज्योति का उदय हुआ, जिसके प्रकाश में लोक-धर्म के छिन्न-भिन्न होते हुए अंग भक्ति-सूत्र के द्वारा फिर से जुड़े। चैतन्य महाप्रभु के भाव-प्रवाह द्वारा बंग-देश में और अष्ट-छाप के कवियों के संगीत-स्रोत के द्वारा उत्तर-भारत में प्रेम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो धारा बही, उसने पंथवालों की परुष वचनावली से सूखते हुए हृदयों को आर्द्र तो किया, पर वह आर्य-शास्त्रानुमोदित लोक-धर्म के माधुर्य की ओर आकृष्ट न कर सकी। यह काम तुलसीदास ने किया। हिंदू-समाज में फैलाया हुआ विष उनके प्रभाव से बढ़ने न पाया। हिंदू-जनता अपने गौरव-पूर्ण इतिहास को भुलाने, कई सहस्र वर्षों के संचित ज्ञान-भांडार से वंचित रहने, और अपने प्रातःस्मरणीय आदर्श पुरुषों के आलोक से दूर पड़ने से बच गई। उसमें यह संस्कार न जमने पाया कि श्रद्धा और भक्ति के पात्र केवल सांसारिक कर्तव्यों से विमुख, कर्म-मार्ग से च्युत कोरे उपदेश देनेवाले ही हैं। उसके सामने यह फिर से अच्छी तरह झलका दिया गया कि संसार के चलते व्यापारों में मग्न, अन्याय के दमन के अर्थ रण-क्षेत्रों में अद्भुत पराक्रम दिखलानेवाले, अत्याचार पर क्रोध से तिलमिलानेवाले, प्रभूत-शक्ति-संपन्न होकर भी क्षमा करनेवाले, अपने रूप, गुण, और शील से लोक का अनुरंजन करनेवाले, मैत्री का निर्वाह करनेवाले, प्रजा का पुत्रवत् पालन करनेवाले, बड़ों की आज्ञा का आदर करनेवाले, संपत्ति में नम्र रहनेवाले और विपत्ति में धैर्य रखनेवाले लोग प्रिय या अच्छे ही लगते हों, यह बात नहीं है। वे भक्ति और श्रद्धा के प्रकृत आलंबन हैं—धर्म के दृढ़ प्रतीक हैं। जिन-जिन वृत्तियों से लोक की रक्षा होती है, उन सबका समाहार जहाँ अपनी परमावस्था को पहुँचा दिखाई पड़े, वहाँ भगवान् की उतनी कला का पूर्ण प्रकाश समझकर, जितनी से मनुष्यता को प्रयोजन है, और उतनी मर्यादा के भीतर अनंत पुरुषोत्तम को देखकर, जितनी से लोक का परिचालन होता है, उसके आगे सिर झुकाना मनुष्य होने का परिचय देना है—पूरी आदमीयत का दावा करना है। इस व्यवहार-क्षेत्र—नाम-रूप—से परे जो ईश्वरत्व है, वह प्रेम और भक्ति का नहीं, बोध का विषय है। वह इस प्रकार लक्षित नहीं कि हमारी वृत्तियों का परम लक्ष्य हो सके। अलक्ष्य का बहाना करके जितना लक्षित है, उसकी ओर ध्यान न देना धर्म से भागना है। हम अपने साथ जगत् का जो संबंध अनुभव करते हैं, उसी के मूल में उसकी सत्ता हमें देखनी चाहिए। इसी से 'अलख-अलख' पुकारते हुए एक साधु को बाबाजी ने फटकारा था कि—

हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच ;
तुलसी अलखहिं का लखहि ? राम-नाम जपु नीच !

सूरदास आदि अष्ट-छाप के कवियों ने श्रीकृष्ण के शृंगारिक रूप के प्रत्यक्षीकरण द्वारा 'टेढ़ी-सीधी निर्गुण वाणी' की खिन्नता और शुष्कता को हटाकर जीवन की प्रफुल्लता का आभास तो दिया, पर भगवान् के लोक-संग्रहकारी रूप का प्रकाश करके धर्म के सौंदर्य का साक्षात्कार नहीं कराया। कृष्णोपासक भक्तों के सामने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला ही रक्खी गई, भगवान् की लोक-धर्म-स्थापना का मनोहर चित्रण नहीं किया गया। उन्होंने कौरवों के विनाश द्वारा अधर्म और अन्याय के साथ वैभव और समृद्धि का जो विच्छेद कराया, लोक-धर्म से च्युत होते हुए अर्जुन को जिस प्रकार सँभाला, शिशुपाल के प्रसंग में क्षमा और दंड की जो मर्यादा दिखाई, किसी प्रकार ध्वस्त न होनेवाले प्रबल अत्याचारी के निराकरण की जिस नीति के अवलंबन की व्यवस्था जरासंध-वध द्वारा दी, उसका सौंदर्य जनता के हृदय में अंकित नहीं किया गया। इससे कृष्ण की शृंगारिक भावना ने असंस्कृत हृदयों में जाकर विलास-प्रियता का रूप धारण किया, और समाज केवल नाच-कूदकर जी बहलाने के योग्य हुआ। जहाँ लोक-धर्म और व्यक्ति-धर्म का विरोध हो, वहाँ कर्म-मार्गी के लिये लोक-धर्म का ही अवलंबन श्रेष्ठ है। यदि किसी अत्याचारी का दमन सीधे न्याय-संगत उपायों से नहीं हो सकता, तो कुटिल नीति का अवलंबन, लोक-धर्म की दृष्टि से, उचित है। किसी अत्याचारी द्वारा समाज को जो हानि पहुँच रही है, उसके सामने वह हानि कुछ नहीं है, जो किसी एक व्यक्ति के बुरे दृष्टांत से होगी। लक्ष्य यदि व्यापक और श्रेष्ठ है, तो साधन का अनिवार्य अनौचित्य उतना खल नहीं सकता। भारतीय जन-समाज में लोक-धर्म का यह आदर्श यदि पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित रहने पाता, तो यह देश विदेशियों के आक्रमण को व्यर्थ करने में अधिक समर्थ होता।

तुलसीदासजी ने राम-चरित के सौंदर्य द्वारा जनता को लोक-धर्म की ओर जो फिर से आकृष्ट किया, वह निष्फल नहीं हुआ। वैरागियों का सुधार चाहे उसने उतना न हुआ हो, पर, परोक्ष रूप से, साधारण गृहस्थ जनता की प्रवृत्ति का बहुत कुछ संस्कार हुआ। दक्षिण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रामदास स्वामी ने इसी लोक-धर्माश्रित भक्ति का संचार करके महाराष्ट्र-शक्ति का अभ्युदय किया। पीछे से सिखों ने भी लोक-धर्म का आश्रय लिया, और सिख-शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। हिंदू-जनता शिवाजी और गुरु गोविंद को राम-कृष्ण के रूप में और औरंगज़ेब को रावण और कंस के रूप में देखने लगी।

गोस्वामीजी ने यद्यपि भक्ति के साहचर्य से ज्ञान-वैराग्य का भी निरूपण किया है, और पूर्ण रूप से किया है, पर उनका सबसे अधिक उपकार उन गृहस्थों के ऊपर है, जो अपनी प्रत्येक स्थिति में उन्हें पुकारकर कुछ कहते हुए पाते हैं, और वह 'कुछ' भी ऐसा कि लोक-व्यवहार के अंतर्गत, उससे अतीत नहीं। मान-अपमान से परे, साधक संतों के लिये तो वह "खल के वचन संत सहैं जैसे" कहते हैं, पर साधारण गृहस्थों के लिये सहिष्णुता की मर्यादा बाँधते हुए कहते हैं—"कतहुँ सुधाइहु तें बड़ दोषू"। साधक और संसारी, दोनों के मार्गों की ओर वह संकेत करते हैं। व्यक्ति-गत सफलता के लिये जिसे लोग 'नीति' कहते हैं, वही सामाजिक आदर्श की सफलता का साधक होकर 'धर्म' हो जाता है।

सारांश यह कि गोस्वामीजी से पूर्व तीन प्रकार के साधु समाज के बीच रमते दिखाई देते थे। एक तो प्राचीन परंपरा के भक्त, जो प्रेम में मग्न होकर संसार को भूल रहे थे। दूसरे वे, जो अनधिकार ज्ञान-गोष्ठी द्वारा समाज के प्रतिष्ठित आदर्शों के प्रति तिरस्कार-बुद्धि उत्पन्न कर रहे थे। तीसरे वे, जो हठ-योग, रसायन आदि द्वारा अलौकिक सिद्धियों की व्यर्थ आशा का प्रचार कर रहे थे। इन तीनों वर्गों के द्वारा साधारण जनता के लोक-धर्म पर आरूढ़ होने की संभावना कितनी दूर थी, यह कहने की आवश्यकता नहीं। आज जो हम फिर झोपड़ों में बैठे किसानों को भरत के 'भायप-भाव', लक्ष्मण के त्याग, और राम की पितृ-भक्ति पर पुलकित होते पाते हैं, सो गोस्वामीजी के ही प्रसाद से। धन्य है गार्हस्थ्य जीवन में धर्म का आलोक-स्वरूप राम-चरित, और धन्य हैं उस आलोक को घर-घर पहुँचानेवाले तुलसीदास! व्यावहारिक जीवन धर्म की ज्योति से एक बार फिर जगमगा उठा। उसमें नई शक्ति का संचार हुआ। जो कुछ भी नहीं जानता, वह भी जानता है—

जे न मित्र-दुख होहिं दुखारी,
तिनहिं बिलोकत पातक भारी।

स्त्रियाँ और कोई धर्म जानें या न जानें, पर वह धर्म जानती हैं, जिससे संसार चलता है। उन्हें इस बात का विश्वास रहता है कि—

बृद्ध, रोग-बस, जड़, धन-हीना,
अंध, बधिर, क्रोधी, अति दीना,
ऐसेहु पति कर किए अपमाना,
नारि पाव जम-पुर दुख नाना।

जिसमें बाहु-बल है, उसमें यह समझ भी पैदा कर दी गई है कि दुष्ट और अत्याचारी पृथ्वी के भार हैं; उस भार को उतारनेवाले भगवान् के अवतार हैं, और उस भार को उतारने में सहायता पहुँचानेवाले भगवान् के सच्चे सेवक। प्रत्येक दिहाती लठैत 'बजरंग बली' की जय-जयकार मनाता है—कुंभकर्ण की नहीं। गोस्वामीजी ने 'रामचरित-चिंतामणि' छोटे-बड़े सबके बीच बाँट दिया; जिसके प्रभाव से हिंदू-समाज यदि चाहे—सच्चे जी से चाहे—तो सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

बाबाजी ने भक्ति और प्रेम के पुट-पाक द्वारा धर्म को रागात्मिका वृत्ति के साथ सम्मिश्रित करके एक ऐसा रसायन तैयार किया, जिसके सेवन से धर्म-मार्ग में कष्ट और श्रांति न जान पड़े; आनंद और उत्साह के साथ—खींच-खाँच और ज़बरदस्ती से नहीं—आप-से-आप लोग उसकी ओर प्रवृत्त हों। जिस धर्म-मार्ग में कोरे उपदेशों से कष्ट-ही-कष्ट दिखाई पड़ता है, वही चरित्र-सौंदर्य के साक्षात्कार से आनंद-मय हो जाता है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति और निवृत्ति की दिशा को लिए हुए धर्म की जो लीक निकलती है, वही लोगों के चलते-चलते चौड़ी होकर सीधा राजमार्ग हो सकती है। उसके संबंध में गोस्वामीजी कहते हैं—

गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो।

गोस्वामीजी द्वारा प्रस्तुत नव रसों का राम-रसायन ऐसा पुष्टिकर हुआ कि उसके सेवन से हिंदू-जाति विदेशीय मतों के आक्रमण से भी बहुत कुछ रक्षित रही, और अपने जातीय स्वरूप को भी दृढ़ता से पकड़े रही। उसके भगवान् जीवन की प्रत्येक स्थिति में—खेलने-कूदने में, हँसने-रोने में, लड़ने-भिड़ने में, नाचने-गाने में, बालकों की क्रीड़ा में, दांपत्य-प्रेम में, राज्य-संचालन में, आज्ञा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन में, आनंदोत्सव और शोक-समाज में, सुख-दुःख में, घर में, वन में, संपत्ति में, विपत्ति में—उसे दिखाई पड़ते हैं। विवाह आदि शुभ अवसरों पर राम के मंगल-गीत गाए जाते हैं। विमाताओं की कुटिलता के प्रसंग में कैकेयी की कहानी कही जाती है। दुःख के दिनों में राम का वनवास स्मरण किया जाता है। वीरता के प्रसंग में उनके धनुष की भीषण टंकार सुनाई पड़ती है। सारांश यह कि सारा हिंदू-जीवन राम-मय प्रतीत होता है। वेदांत का परमार्थ-तत्त्व समझने की सामर्थ्य न रखनेवाले साधारण लोगों को भी व्यवहार-क्षेत्र में चारों ओर राम-ही-राम दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार हिंदू-हृदय के साथ राम के स्वरूप का पूर्ण सामंजस्य कर दिया गया है। इस साहचर्य से साधारण जनता में राम के प्रति जो भाव प्रतिष्ठित हो गया है, उसका लावण्य उसके संपूर्ण जीवन का लावण्य हो गया है। राम के विना हिंदू-जीवन नीरस है, फीका है। यही राम-रस उसका स्वाद बनाए रहा, और बनाए रहेगा। राम ही का मुख देखकर हिंदू-जनता का इतना बड़ा भाग अपने धर्म और जाति के घेरे में पड़ा रहा। न उसे तलवार हटा सकी, न धन-मान का लोभ, न उपदेशों की तड़क-भड़क। जिन राम को जनता जीवन की प्रत्येक स्थिति में अपने साथ देखती चली आई, उन्हें छोड़ना अपने प्रिय-से-प्रिय परिजन को छोड़ने से कम कष्टकर न था। बिदेसी कच्चा रंग एक चढ़ा, एक छूटा; पर भीतर जो पक्का रंग था, वह बना रहा। हमने चौड़ी मोहरी का पाजामा पहनकर आदाब-अर्ज़ किया; पर 'राम-राम' न छोड़ा। अब कोट-पतलून पहनकर बाहर 'डैम नान-सेंस' करते हैं; पर घर में आते ही फिर वही 'राम-राम'। एक बार शीरीं-फ़रहाद और हातिमताई के क़िस्से के सामने हर्म कर्ण, युधिष्ठिर, नल-दमयंती, सबको भूल गए थे; पर राम-चर्चा कुछ-न-कुछ करते ही रहे। कहना न होगा कि इस एक के न छोड़ने से एक प्रकार से सब कुछ बना रहा; क्योंकि इसी एक नाम में हिंदू-जीवन का सारा सार खींचकर रख दिया गया था। इसी एक नाम के अवलंबन से हिंदू-जाति के लिये अपने प्राचीन स्वरूप और अपने प्राचीन गौरव के स्मरण की संभावना बनी रही। राम-नामामृत पान करके हिंदू-जाति अमर हो गई। इस अमृत को घर-घर पहुँचानेवाला भी अमर है।

रामचंद्र शुक्ल

तुलसीदास की उपमाएँ



पमा-अलंकार बड़ा व्यापक अलंकार है। थोड़े अंतर से यह अलंकार अनेक अलंकारों की सृष्टि का कारण हुआ है। इसीलिये साहित्यदर्पणकार ने इस अलंकार को 'उपजीव्य' का विशेषण दिया है। वह लिखते हैं—

"प्राधान्यात्सादृश्यमूलेषु लक्षितकेषु तेषामप्युपजीव्यत्वेन प्रथममुपमामाह।"

और, यही कारण है कि यह लेख लिखने में रूपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत आदि अलंकारों से अलंकृत कविताएँ भी उदाहरण में ग्रहण कर ली गई हैं। "अलं करोतीति अलंकारः", कविता को जो अलंकृत करता है, उसको अलंकार कहते हैं। साहित्यदर्पणकार कहते हैं—

"शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ;
रसादीनुपकुर्वंतोऽलंकारास्तेंगदादिवत्।"

अर्थात् शोभा को अतिशयित करनेवाले तथा रस-भाव आदि के उपकारक जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं, वे अंगद (बाजूबंद) आदि की तरह अलंकार कहलाते हैं। प्रयोजन यह कि जैसे शरीर को अंगद आदि आभूषण सुशोभित करते हैं, वैसे ही अलंकारों से कविता की शोभा होती है। मेरा विचार है कि अलंकार कविता को केवल सुशोभित ही नहीं करते, उसके भावों के स्पष्टीकरण, प्रतिपादन और व्यक्तीकरण के हेतु भी होते हैं। किंतु अनेक अर्थालंकारों के विषय में ही यह बात कही जा सकती है, शब्दालंकारों के विषय में नहीं। कारण, वे केवल शोभा-वर्द्धन ही के लिये होते हैं। भावुक-प्रवर भर्तृहरि कहते हैं—

"नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं
विद्यापि नैव न च यत्नकृता च सेवा ;
भाग्यानि पूर्वतपसा किल संचितानि
काले फलंति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः।"

अर्थात्—न आकृति फलती है, न कुल, न शील, विद्या, और न यत्न-पूर्वक की गई सेवा। पूर्व तप संचित भाग्य ही काल पाकर फलता है ; वैसे ही, जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष। इस श्लोक के 'यथैव वृक्षाः' दृष्टांत ने ही श्लोक में जान डाल दी है। उसके विशेषण 'काले फलंति' ने भी कमाल किया है। वृक्ष को आप जल से नित्य सींचें, फल लानेवाले दूसरे अनेक उपाय भी करें; किंतु वृक्ष जब फलेगा, तो काल आने पर ही। वह उपायों से असमय में कदापि फल न लावेगा। उसी प्रकार आकृति, कुल, शील, विद्या और यत्न-पूर्वक की गई सेवा से भी कुछ न होगा। भाग्य जब फलेगा, तो काल पाकर ही। आप देखें, इस श्लोक के भाव के व्यक्तीकरण और प्रतिपादन में आलंकारिकता कितनी उपकारक सिद्ध हुई है। कुछ पद्य और मैं नीचे लिखता हूँ। उनके द्वारा भी मेरे विचार की पुष्टि होगी। गोस्वामीजी कहते हैं—

"करम-कमंडल कर गहे, तुलसी जहँ लगि जाय;
सागर, सरिता, कूप-जल, बूँद न अधिक समाय।"

'करम-कमंडल' और 'बूँद न अधिक समाय' ये दोहे में अपने-अपने स्थान पर कितने भाव-मय और साभिप्राय प्रयोग हैं, इसको प्रत्येक सहृदय स्वयं हृदयंगत कर सकता है। दोहे का अर्थ स्पष्ट है।

एक उर्दू का कवि कहता है—

"चश्म ने की मुद्दतों गर्दिश, तो पाया एक तिल;
रिज़्क़ इंसाँ को मुक़द्दर से सिवा मिलता नहीं।"

इस शेर के 'मुद्दतों गर्दिश' और 'एक तिल', ये जुमले उसके भाव-प्रतिपादन के कितने सहायक हैं, इसको आप लोग स्वयं समझ सकते हैं। मैं इस विषय में कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं समझता।

एक संस्कृत का कवि बड़ी मार्मिकता से कहता है—

"यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी;
दीपो भक्षयते ध्वांतं कज्जलं च प्रसूयते।"

अर्थात्—मनुष्य जिस प्रकार का अन्न खाता है, उसकी उपज (बुद्धि) भी वैसी ही होती है। दीपक अंधकार को खा जाता है, इसलिये कज्जल उत्पन्न करता है। कितना भाव-मय यह पद्य है, दृष्टांत की इस पद्य में कितनी सार्थकता है, और उससे पद्य का भाव समझने में, विचार के स्पष्टीकरण में कितनी सुविधा हुई है, इस विषय पर कुछ अधिक लिखना बाहुल्य-मात्र होगा।

उर्दू का एक सहृदय कवि कहता है—

"किसी का कब कोई रोज़े-सियह में साथ देता है;
कि तारीकी में साया भी जुदा रहता है इंसाँ से।"

यह पद्य भी संस्कृत-पद्य के टक्कर का ही है। जो गुण संस्कृत के पद्य में हैं, लगभग वे समस्त गुण इस पद्य में हैं। इस पद्य का अलंकार भी पद्य को अलंकृत ही नहीं करता, उसकी भाव-व्यंजकता का भी प्रधान साधन है।

इन कतिपय पंक्तियों द्वारा अलंकारों की उपयोगिता और उपकारिता दिखलाई गई है। साहित्यदर्पणकार ने भी इन बातों को स्वीकार किया है। यदि वह स्वीकार न करते, तो यह न लिखते 'रसादीनुपकुर्वंतो'। किंतु बाद का उदाहरण जो 'अंगदादिवत्' है, उसने अपने प्रथम वाक्य की प्रभा मलिन कर दी है। इसलिये मुझको इस स्थान पर इतना लिखना पड़ा। आजकल के कुछ लोगों का संस्कार है कि कविता के लिये अलंकार की आवश्यकता नहीं। जो स्वभाव सुंदरी है, उसको आभरण से क्या मतलब? इस भ्रांति का कारण अलंकारों को केवल शोभा-वर्धन का हेतु ही मान लेना है। अन्यथा इस प्रकार का तर्क उपस्थित हो ही नहीं सकता। स्वभाव की स्वाभाविकता का अपहरण अलंकारों का उद्देश्य नहीं है। स्वाभाविक सौंदर्य को सुविकसित करना ही उनका ध्येय है। अपवाद की बात दूसरी है। इन अलंकारों के प्रयोग में जो कवि जितना कुशल पाया गया, उसका कविता-कौशल लोक में उतना ही समादृत हुआ। उपमा-अलंकार समस्त अलंकारों का शिरोमणि है। अतएव इस अलंकार द्वारा जो अपनी कविता को अलंकृत कर सका, उसके कवि-वृंद-शिरोमणि बनने में संदेह नहीं रहा। संस्कृत के कवियों में कवि-कुल-गुरु कालिदास को और हिंदी में कवि-कुल-तिलक तुलसीदास को यह महत्त्व प्राप्त है। 'उपमा कालिदासस्य' यह पद्यांश कहावत के रूप में प्रसिद्ध है। गोस्वामीजी के विषय में ऐसी कोई प्रसिद्धि न होने पर भी, मेरा हृदय इस विषय में उन्हीं के सिर सेहरा बाँधता है। मेरा विचार है कि जैसी अनुपम उपमाएँ गोस्वामीजी को उपलब्ध हुईं, वैसी आज तक हिंदी-संसार में किसी अन्य कवि को नहीं सूझीं। जैसे संस्कृत का यह श्लोक है—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्;
दंडिनः पदलालित्यं माघे संति त्रयो गुणाः।"

वैसे ही हिंदी का यह दोहा भी है—

"उत्तम पद कवि गंग को, उपमा को बरबीर;
केशव अर्थ गँभीरता, सूर तीनि गुन धीर।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दोहा 'बीरबर' अर्थात् सम्राट् अकबर के प्रसिद्ध प्रतिभावान् सचिव राजा बीरबल की उपमाओं का प्रशंसक है। और, कवि-पुंगव श्रीसूरदासजी की उपमाओं को भी प्रशंसनीय समझता है। सूर, तुलसी और केशव के सामने कवि गंग और बीरबल का नाम लेना सचमुच साहित्य-मर्मज्ञता का उपहास करना है। खद्योत-माला कभी ज्योतिर्मय तारका-निचय का सामना नहीं कर सकती। हाँ, कवि-पुंगव सूरदास निःसंदेह अनुपम उपमाओं के भांडार हैं; किंतु मैं गोस्वामीजी को उनसे इस विषय में अधिक दक्ष समझता हूँ। वह यदि उपमा-रजनी के मयंक हैं, तो गोस्वामीजी समधिक रमणीय राकेश हैं। यदि उपमा-विषय में सूरदासजी की प्रतिभा कलित कलिंद-नंदिनी के समान कमनीया है, तो गोस्वामीजी की प्रतिभा पुनीत-सलिला भगवती भागीरथी के समान अभिनंदनीया है।

आज मैं गोस्वामीजी की कुछ अनुपम उपमाएँ आप लोगों के सामने उपस्थित करूँगा। इस लेख का यही उद्देश्य है। मैं ऊपर अलंकारों का महत्त्व प्रकट कर आया हूँ। उपमा-अलंकार की विशेषता भी दिखला आया हूँ। आप उनका महान् विकास गोस्वामीजी की रचनाओं में देखेंगे; जिससे अलंकारों की उपादेयता तो विदित ही होगी, साथ ही यह भी ज्ञात होगा कि अनुपम उपमाओं का समुचित प्रयोग करके गोस्वामीजी साहित्य के समुच्च मंदिर पर कितने ऊँचे चढ़ गए हैं। उनकी उपमाएँ स्वाभाविक और सरल हैं, साथ ही उच्च कोटि की भी।

कवि-पुंगव कालिदास के जिस ग्रंथ को आप उठा लें, उसी में आपको सुंदर-सुंदर उपमाएँ मिलेंगी। अवसर आने पर उनकी भाव-मयी लेखनी उपमा-सुधा-वर्षण में संकोच नहीं करती। उपमा चाहे छोटी हो चाहे बड़ी, वह होती है बड़ी ही हृदय-ग्राहिणी। साथ ही स्वाभाविकता और सरलता भी उससे बरसती रहती है। गोस्वामीजी की रचनाओं में भी यही चमत्कार है। उनमें भी उपमाओं की प्रचुरता है। वे भी मनोहारिणी होती हैं; तत्काल हृदय पर एक अद्भुत प्रभाव डालती हैं। रामचरित-मानस की कोई चौपाई भले ही विना उपमा की मिल जाय, किंतु उसका कोई पृष्ठ कठिनता से ऐसा मिलेगा, जिसमें किसी सुंदर उपमा का प्रयोग न हो। उपमाएँ साधारण नहीं हैं। वे अमूल्य रत्न-राजि हैं। उनकी परख दुस्तर है। तथापि रुचि के अनुकूल उनमें से कुछ चुनकर सेवा में उपस्थित की जाती हैं। आप देखें, ये किस मूल्य की हैं।

भगवान् रामचंद्र के सहज सरल वचन को भी कुमति कैकेयी ने कुटिलता से पूरित समझा। यह बात सुनने में असंगत जान पड़ती है। क्या यह संभव है? सहज सरल वचन में कुटिलता कैसे परिलक्षित होगी? किंतु गोस्वामीजी की उपमा का महत्त्व देखिए। उन्होंने उसके द्वारा किस प्रकार इस तर्क का निराकरण किया है। वह कहते हैं—

"सहज सरल रघुबर-बचन कुमति कुटिल कर जान;
चलइ जोंक जिमि वक्र-गति, यद्यपि सलिल-समान।"

वास्तव बात यह है कि सलिल की समतलता क्या करेगी, जब जोंक स्वयं वक्र-गति है? इसी प्रकार सहजता और सरलता क्या काम देगी, जब कुमति ने स्वयं उसमें कुटिलता की कल्पना कर ली? आपने देखा, कितनी सुंदर और व्यापक उपमा है! आगे चलिए, बिलकुल प्रतिकूल भाव देखिए। कुटिला कैकेयी ने जितनी कुटिल बातें कहीं, महान् हृदयवाले भगवान् रामचंद्र को वे सभी प्यारी लगीं। गोस्वामीजी किस सहृदयता से कहते हैं—

"रामहिं मातु-बचन सब भाए; जिमि सुरसरि-गत सलिल सुहाए।"

पुण्य-तोया भगवती भागीरथी में पहुँचकर सभी सलिल सुंदर हो जाते हैं, अपवित्र जल भी पवित्र जल बन जाता है। तब परम सरल भगवान् रामचंद्र तक पहुँचकर कुटिल वचन भी सरल क्यों न बन जाते? दूसरी बात यह कि भगवती भागीरथी का समस्त जल ही मनोरम और पावन माना जाता है, चाहे उसमें अपेय और असुंदर जल ही क्यों न मिला हो। उसी प्रकार माता के वचन फिर भी माता के वचन हैं। उनमें दुर्भाव का संस्थान कहाँ? फिर यदि वे भगवान् रामचंद्र-जैसे मर्यादा-शील और मातृ भक्त पुरुष को भाए, प्यारे लगे, तो क्या आश्चर्य? बलिहारी इस सहृदयता की!

भगवान् रामचंद्र की वन-यात्रा का समाचार नगर में किस प्रकार फैला, और उसका क्या परिणाम हुआ, यह भी देख लीजिए, और भावुकता से उस पर विचार कीजिए—

"नगर ब्यापि गइ बात सु तीछी; छुवत चढ़ी जनु सब तनु बीछी।
सुनि से बिकल सकल नर-नारी; बिटप-बेलि जिमि दाखि दवारी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तनिक बीछी का चढ़ना देखिए । इस बीछी के चढ़ने में कितनी स्वाभाविकता है । उसमें आकुलता, पीड़ा और व्यग्रता का कैसा सच्चा चित्र है । आप इसका स्वयं अनुभव करें । विधि और कैकेयी को कोसते हुए नागरिक कहते हैं—

"यहि पापिनिहिं बूझि का परेऊ ; छाइ भवन पर पावक धरेऊ ।
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा ; डारि सुधा बिष चाहत चीखा।
कुटिल, कठोर, कुबुद्धि, अभागी ; भइ रघुबंस-बेनु-बन आगी ।
पालव बैठि पेड़ यहि काटा ; सुख महँ सोक-ठाट यहि ठाटा ।"

आहा ! कैसी सुंदर भावमयी और हृदय-ग्राहिणी उपमाएँ हैं !

आगे बढ़िए, देखिए, सामने एक बड़ा विचित्र, किंतु बड़ा ही हृदय-द्रावक दृश्य उपस्थित है । यह देखिए, मलिन-मुखी, पुत्र-वियोग-विह्वला, अश्रु-मुखी श्रीमती कौशल्या-देवी अर्ध-मूर्च्छित अवस्था में रो-कलप रही हैं । पास बैठे भगवान् रामचंद्र अव्यथित चित्त से उनका समाधान कर रहे हैं । वह उनके दुःख से दुःखित हैं । उनकी कातरता उनका कातर कर रही है । किंतु वह धैर्य-च्युत नहीं हैं । उनका विशाल और गंभीर मुख-मंडल अब भी विषाद-रेखा से विहीन है । अचानक एक 'पति-प्रेम-पुनीता रूप-राशि' का यहाँ आविर्भाव हुआ । वह धीरे-धीरे कौशल्या-देवी के निकट आई, और उनके युगल चरण-कमलों की वंदना करके बैठ गई । वह सिर झुकाकर, मुख नीचाकर, चरण-नख द्वारा पृथ्वी पर कुछ लिखने लगी, और उसके नेत्रों से अविरल अश्रु-प्रवाह प्रवाहित होकर धरातल को सींचने लगा । इस मूर्ति की नवनीत-कोमल सुकुमारता देखकर कौशल्या-देवी आकुल हुईं ; भगवान् रामचंद्र भी सन्नाटे में आ गए । यह मूर्ति यद्यपि नीरव थी, तथापि इसकी नीरवता में ही वह भाव-ज्ञापन-शक्ति थी, जो हृदय-तल को अत्यंत विह्वल किए देती थी । पृथ्वी-तल पर पद-नख-लिखन द्वारा वह समयातिपात ही नहीं कर रही थी, बल्कि किसी ममतामयी के मानस-पटल पर वे अंक अंकित कर रही थी, जो करुणा और विषाद का एक ज्वलंत चित्र थे । विगलित अश्रु-धारा भी कम मर्म-वेधिनी नहीं थी । उसमें आंतरिक कथा प्रकट करने की वह शक्ति थी, जो करुणामयी वाग्धारा को किसी काल में उपलब्ध नहीं हो सकी । यह हृदय को व्यथित करनेवाली मूर्ति श्रीविदेह-नंदिनी की थी । कौशल्या-देवी उनकी दशा देखकर अपना दुःसह कष्ट भूल गईं । उस समय उन्होंने जो मर्म को बेधनेवाली बातें कहीं, उनको सुनकर पत्थर का भी हृदय विदीर्ण होता था । भगवान् रामचंद्र ने सब कुछ सुना । मर्यादा उनको माता के सामने बोलने नहीं देती थी । उनको संकोच हो रहा था । उनका कंठ रुँध रहा था । किंतु वह बोले । उन्होंने जो कुछ अपनी प्राण-वल्लभा से कहा, वह हृदय-संवेद्य है । जड़ लेखनी उस मर्म के उद्घाटन में असमर्थ है । उनके कथन की पंक्तियाँ बड़ी सजीव हैं, बहुत ही प्रभाव-शालिनी हैं, बड़ी ही हृदय को बेधनेवाली हैं ।

हम उनकी कुछ उपमाएँ आपके सामने रखते हैं । आप उनकी हृदय-तल-स्पर्शिनी शक्ति देखिए—

"हंसगवनि, तुम नहिं बन-जोगू ; सुनि अपजस देहहिं मोहिं लोगू ।
मानस-सलिल-सुधा-प्रतिपाली, जिअइ कि लवन-पयोधि मराली ?
नव रसाल-बन-बिहरन-सीला, सोह कि कोकिल बिपिन करीला ?
सुरसरि सुभग बनज-बनचारी ; डाबर-जोग कि हंसकुमारी ?"

श्रीमती विदेह-नंदिनी का जीवन राम-मय जीवन है । उनमें आत्म-भाव का अभाव है । उनकी आत्मीयता पति-प्रेम पर उत्सर्गीकृत है । वह मूर्तिमती लज्जा हैं । मौन ही उनके जीवन का व्रत है । मुखरता उनकी सहचरी नहीं । गंभीरता ही उनकी कार्य-साधिका है । किंतु प्रिय पति का कथन सुनकर वह मर्माहत हुईं, और बोलने के लिये बाध्य होकर बोलीं । पहले उन्होंने सास की पग-वंदना की, अविनय की क्षमा चाही, (भगवन्, क्या भारतवर्ष से इस मर्यादा-शीलता का लोप हो जायगा ? कौन अपक्व-मति हमारी इस विकच मल्लिका पर तप्त जल छिड़क रहा है ? कौन इस कुसुम-कोमल मार्ग को कंट-कित कर रहा है ? तुम उसकी बुद्धि को विमल करो; जिसमें हमारी कुलांगनाएँ अपने सद्गुण-रत्नों से वंचित न हों ।) फिर बोलीं । क्या बोलीं ? गोस्वामीजी की लेखनी ही इसको बतला सकती है । मैं उनकी दो-चार पंक्तियाँ लिखकर ही आगे बढ़ूँगा । उन्हीं को पढ़कर आप सोचें कि उन्होंने क्या कहा । उनमें जो तेजस्विता, जो मार्मिकता, जो निगूढ़ भावुकता निहित है, वह अवर्ण-नीय है । श्रीमती जनक-नंदिनी कहती हैं—

"जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी; तैसिय, नाथ, पुरुख बिनु नारी।
नाथ, सकल सुख साथ तिहारे ; सरद-बिमल-बिधु-बदनु निहारे।
छिन-छिनप्रभु-पद-कमलबिलोकी; रहिहहुँमुदितदिवसजिमिकोकी।
प्रभु, करुणामय, परम बिबेकी; तनु तजि रहति छाँह किमि छेकी ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभा जाय कहँ भानु बिहाई ? कहँ चंद्रिका चंद्र तजि जाई ?''

रामायण पढ़ने में जैसी तन्मयता होती है, वैसी और कोई दूसरा ग्रंथ पढ़ने में नहीं। इस ग्रंथ में ऐसी सजीव पंक्तियाँ हैं, ऐसा भाव-मय चरित्र-चित्रण है कि कोई सहृदय ऐसा नहीं, जिसको उसे पढ़ते समय आत्म-विस्मृति न हो जाय। यह हमारे लिये गर्व का विषय है कि जो महान् ग्रंथ ऐसा अलौकिक है, वह हमारी जातीय संपत्ति है, और हमारे ही एक अद्भुत भाव-मय हृदय का उद्गार है। अयोध्या-कांड में जैसा सजीव चरित्र-चित्रण है, उसमें जैसा उदात्त भाव-मय ऊहापोह है, उसमें जैसी स्वाभाविकता, सरसता, मनो-मोहकता, गंभीरता, और सदाशयता है, वह अनन्य है—संसार-भर के साहित्य में दुर्लभ है। कौशल्या-देवी, विदेह-नंदिनी और भगवान् रामचंद्र का कथनोपकथन जिस भावुकता से रामायण में लिखित है, वैसी भावुकता शायद ही किसी देश के साहित्य में दृष्टि-गत हो।

इच्छा के विरुद्ध लेख अधिक लंबा हो गया। अब मैं कतिपय सुंदर उपमाएँ लिखकर इस लेख को समाप्त करूँगा। आप इन उपमाओं के सौंदर्य और भाव-प्रवणता पर स्वयं विचार कीजिए—

"सो धनु राजकुँवर कर देहीं ; बालमराल कि मंदर लेहीं ?
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा ; सिरिस सुमन किमि बेधिहिं हीरा ?
लोचन-जल रह लोचन-कोना ; जैसे परम कृपन कर सोना।
मन मलीन, तन सुंदर कैसे ? बिष-रस-भरा कनक-घट जैसे।
तिन कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे ; देखिय रबि कि दीप कर लीन्हे ?
सो मैं कहउँ कवन बिधि बरनी ; भूमि-नाग सिर धरइ कि धरनी ?
देखि लागि मधु कुटिल किराती ; जिमि गँव तकय लेहुँ केहि भाँती।
फिरा कर्म प्रिय लागि कुचाली ; बकिहिं सराहिय मानि मराली।
लखइ न रानि निकट दुख कैसे ? चरइ हरिततृण बलि-पशु जैसे।
पैसेउ पीर बिहँसि तेहि गोई ; चोर-नारि जिमि प्रगट न रोई।
सुनि मृदु बचन भूप-हिय-सोकू ; ससिकर छुवत बिकल जिमि कोकू।
कंठ सूख, मुख आव न बानी ; जनु पाठीन दीन बिनु पानी।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा ; मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा।
राम सप्रेम पुलकि उर लावा ; परम रंक जनु पारस पावा।
भा सबके मन मोद न थोरा ; जनु घन-धुनि सुनि चातक-मोरा।
झलका झलकत पाँयन कैसे ? पंकज-कोस ओस-कन जैसे।
हमहिं अगम अति दरस तुम्हारा ; जस मरु-धरनि देव-धुनि-धारा।
और करइ को भरत बड़ाई ? सरसि सीपि कि सिंधु समाई ?
कहत शारदहुँ कर मति हीचे ; सागर सीप कि जाहिं उलीचे ?
मुख प्रसन्न, मन मिटा बिषादू ; भा जनु गूँगहिं गिरा-प्रसादू।
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा ; चंचरीक जिमि चंपक-बागा।''

रामायण उपमाओं का रत्नाकर है। रुचि के अनुकूल जो कुछ चमकीले रत्न हाथ आए, सो स्थान-स्थान से एकत्र कर सेवा में उपस्थित किए गए। किंतु वह अगाध पारावार अब तक बिना छाना हुआ ही पड़ा है। छानने पर उसमें से एक-से-एक उत्तम रत्न छाननेवाले को प्राप्त हो सकते हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

तुलसी-कृत रामायण की मौलिकता



जनवरी, १९१३ के रायल एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में मैंने सर जार्ज ग्रियर्सन का लेख पढ़ा; जिसका शीर्षक है—"क्या तुलसीदास की रामायण किसी पुस्तक का अनुवाद है ?" मैंने पंडित बलभद्रप्रसाद द्वारा प्रकाशित संस्कृत रामचरित-मानस को पढ़ा है, और मुझे इस बात के कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि तुलसीदासजी ने अपनी रामायण इस पुस्तक के आधार पर नहीं लिखी। संस्कृत के प्रत्येक विद्वान् को, यदि उसने तुलसी-कृत रामायण सावधानी से पढ़ी है, यह पुस्तक अच्छा ख़ासा जाल मालूम पड़ती है। इंडियन-प्रेसवाली रामायण तथा अन्य कई रामायणों के अंत में एक श्लोक दिया हुआ है। संपादकों ने उसको उद्धृत करके यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि तुलसीदास ने शंभु कवि की रामायण का भाषानुवाद किया था। मेरे पिता की रामायण में यह श्लोक नहीं है। यह रामायण संवत् १९०० में—चौंसठ साल पहले—लखनऊ में छपी थी। किंतु यदि यह मान भी लिया जाय कि उक्त श्लोक तुलसीदास का ही बनाया हुआ है, तो उससे कुछ भी प्रमाणित नहीं होता ; क्योंकि उसका भावार्थ यह है कि भाषा-रामायण शंभु और सुकवियों की कृतियों के आधार पर बनाई गई है। इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि शंभु कवि की बनाई रामायण का आधार लेकर तुलसीदास ने अपनी रामायण की रचना की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहले तुलसीदास ही ने अपने देश-वासियों के लाभार्थ रामायण को भाषा में लिखा था। अपनी रामायण को किसी शंभु कवि की रामायण का अनुवाद कहने से उनका कुछ लाभ नहीं हो सकता था। उस समय उनका कोई प्रतिद्वंद्वी न था। इस कारण उन्हें यह कहने की आवश्यकता न थी कि उनकी रामायण और रामायणों से अच्छी है। वह अपनी रामायण में केवल दो रामायणों का हवाला देते हैं—सुकवि वाल्मीकि की रामायण और अध्यात्म-रामायण का। और, दोनों ही इस विषय में प्रमाण मानी जाती हैं। अध्यात्म-रामायण शंभु और पार्वती का संवाद है। वैष्णवों के लिये वह उतनी ही मान्य तथा पूजनीय है, जितनी कि ईसाइयों के लिये इंजील और मुसलमानों के लिये कुरान। किंतु संपादक महाशयों ने उन संस्कृत श्लोकों पर ध्यान नहीं दिया, जो सभी भाषा-रामायणों के संस्करणों में लिखे हुए मिलते हैं। उन श्लोकों में तुलसीदासजी सरस्वती और गणेश की वंदना करने के बाद भिन्न-भिन्न रामायणों के लेखकों की वंदना करते हैं, और उन्हीं के साथ अपने गुरु की भी। कारण, उन्हें अपने गुरु से ही सर्व-प्रथम ज्ञान और रामायण की कथा प्राप्त हुई थी। पहले श्लोक को छोड़कर अन्य श्लोकों को मैं सिलसिलेवार लिखता हूँ—

भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ;
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वांतःस्थमीश्वरम्।

अर्थ—श्रद्धा और विश्वास के अवतार भवानी और शंकर की मैं वंदना करता हूँ। उनके विना सिद्ध लोग भी ईश्वर को नहीं देख सकते।

वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ;
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते।

अर्थ—मैं अपने गुरु की वंदना करता हूँ ; जो उन शंकर के अवतार के समान हैं, जिनका आश्रित चंद्रमा वक्र (टेढ़ा) होने पर भी सर्वत्र पूजा जाता है।

यहाँ यह वक्र-व्यक्ति स्वयं तुलसीदास हैं। जैसा कि उन्होंने कवितावली-रामायण में कहा है—

× × ×

जाति के, कुजाति के, सुजाति के, पेटागि-बस
खाए टूक सबके, बिदित बात दुनी सो।
मानस, बचन, काय, किए पाप सति भाय,
राम को कहाय दास, दगाबाज पुनी सो,
राम-नाम को प्रभाउ, पाउ महिमा-प्रताप,
तुलसी सो जग मानियत महामुनी-सो।

यहाँ तुलसीदासजी अपने महत्त्व का कारण अपने गुरु का आश्रय बतलाते हैं। और, जैसा कि मैं ऊपर कह आया हूँ, गुरु से ही उन्हें रामायण का ज्ञान प्राप्त हुआ था।

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ;
वंदे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ।

अर्थ—मैं उन कवीश्वर और कपीश्वर की वंदना करता हूँ, जो विशुद्ध-ज्ञान-संपन्न हैं, और सदा सीता-राम के अनंत पुण्य-रूपी पवित्र वन में आनंद-पूर्वक विहार करते हैं।

'गुण-ग्राम'-शब्द उनकी रामायण की कृति का दूसरा सूचक है। यहाँ कवीश्वर से तात्पर्य वाल्मीकिजी से है ; जो रामायण के प्रथम कर्ता थे। और, कपीश्वर-शब्द हनुमन्नाटक के लेखक का बोधक है। यह नाटक वैष्णवों का एक प्रिय ग्रंथ है। आजकल क्षेपकों के कारण इसका रूप विकृत हो गया है। इसके बाद तुलसीदासजी, सीता और राम की वंदना करके, अपने ज्ञान के सूत्र का निचोड़ यों बतलाते हैं—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ;
स्वांतःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति।

अर्थ—भिन्न-भिन्न पुराणों और निगमों के अनुसार, और रामायण तथा अन्य स्थानों में जो कुछ लिखा है, उसको सामने रखकर, मैंने (तुलसी ने) अपने चित्त के संतोष के लिये रघुनाथ की यह कथा मंजुल भाषा में लिखी है।

जिस रामायण का हवाला दिया गया है, वह वाल्मीकि और अध्यात्म, इन दोनों में से कोई भी हो सकती है। 'अन्य स्थानों' में एक तो जयदेव-कृत प्रसन्नराघव-नाटक है। लोग इसके लेखक को गीतगोविंदकार जयदेव ही समझते हैं। यह बड़े भक्त थे, और तुलसीदास से कई शताब्दी पहले हुए थे। तुलसीदास को इस पुस्तक से यत्र-तत्र दो-एक प्रकरण ले लेने में कुछ संकोच नहीं हुआ *। कारण, उस समय वैष्णवों में इस पुस्तक का बहुत प्रचार था। इनमें से एक

* गोस्वामीजी ही नहीं, आचार्य केशवदास ने भी इस नाटक के अनेक स्थानों का अविकल अनुवाद अपनी रामचंद्रिका में कर डाला है। किसी स्वतंत्र लेख में इस पर प्रकाश डालने की इच्छा है।—संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरण, सुंदर-कांड, में रावण और सीता का संवाद है। मैं उसे विस्तृत रूप से उद्धृत करता हूँ। जयदेव की पुस्तक का अंश चतुर्थ दृश्य (पृष्ठ १५२, पूनेवाला संस्करण, १८९४) से उद्धृत किया गया है—

रामचरित-मानस ने तुलसीदास के गुण ही नहीं, किंतु दोष भी ले लिए हैं, और इस उपमा को तो 'निशा' के आगे निशित (तेज़) जोड़कर और भी विकृत कर दिया है।

कह रावन, सुनु, सुमुखि, सयानी !	रावण—
मंदोदरी आदि सब रानी।	मां जीवय नयनामृतेन —
तव अनुचरी करउँ, पन मोरा ;	मंदोदरीमपि विमुंचति राज्यमेत-
एक बार बिलोकु मम ओरा।	दप्युन्मदं तव पदाब्जतले करोति।
× × × कहति बैदेही	× × ×
सुनु दसमुख, खद्योत-प्रकासा	सीता—।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ?	यदि खद्योतभासापि समुन्मीलति पद्मिनी।
	रावण—
आपुहि सुनि खद्योत-सम, रामहिं भानु-समान ;	आः पाप ! यावत् किल तपनखद्योतयो-
परुष बचन सुनि, काढ़ि असि,बोला अति खिसियान।	स्तावदंतरं रामरावणयोः।
	तदियं हन्यसे। (इति खड्गमुत्पाटयति)
सीता, तैं मम कृत अपमाना ;	
कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।	
नाहिंत सपदि मानु मम बानी ;	तदिदानीमपि दशकंठभुजाश्लेषभेषजमनुजानीहि।
सुमुखि, होत नतु जीवन-हानी।	
	सीता—
स्याम - सरोज - दाम - सम - सुंदर,	रघुपतिभुजदंडादुत्पलश्यामकांते-
प्रभु-भुज करि-कर-सम, दसकंधर।	र्दशमुख भवदीयान् निष्कृपाद्वा
सो भुज कंठ, कि तव असि घोरा ;	कृपाणात् । × × ×
सुनु सठ, अस प्रमान पन मोरा।	
चंद्रहास हर मम परितापं,	चंद्रहास हर मे परितापं
रघुपति - बिरह - अनल - संजातं।	रामचंद्र - विरहानल - जातम्।
सीतल निसि तव असि बर धारा ;	× × ×
कह सीता हरु मम दुख-भारा।	त्वं हि धारया वहसि शीतलमंभः।

अंतिम चार पंक्तियों में पहली पंक्ति निस्संदेह जयदेव ही की कृति है। दूसरी पंक्ति में 'रामचंद्र' के स्थान पर 'रघुपति' लिख दिया गया है, और छंद पूरा करने के लिये 'सं' जोड़ दिया गया है। चौथी पंक्ति में जयदेव का विशेषण (शीतल) 'जल' निकालकर तुलसीदास ने अकारण ही 'शीतल निसि' कर दिया है। जयदेव ने अपनी उपमा को अपने पद्य में निभाया है। वह अग्नि को शीतल जल से (शीतलमंभः) बुझाने को कहते हैं। तुलसीदास की 'शीतल निसि' में कवित्व नहीं है। हिंदी-कविता में ठंडी रात सुख की सूचक नहीं है। फिर भी संस्कृत

यह संवाद न तो वाल्मीकि की रामायण में है, और न अध्यात्म में। अतएव यदि संस्कृत-रामचरित-मानस का दावा सही है, तो चोरी का पहला अभियोग जयदेव पर लगाना चाहिए। हमें इस विचित्र पुस्तक के बनने की तिथि नहीं मालूम; किंतु यह बात हमारे मन में नहीं बैठती कि जयदेव और तुलसीदास, दोनों ने बिना कृतज्ञता स्वीकार किए हुए ही ये बातें एक ऐसी पुस्तक से ले ली हैं, जो अभी हाल में इटावे में खोद निकाली गई हैं। मैं इन संपादकों से प्रार्थना करता हूँ कि वे उस पुस्तक को अधकार में ही रहने दें। मैं उन्हें विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलाता हूँ कि भाषा-रामायण के पाठक यह मानने को तैयार नहीं हैं कि तुलसीदास की हृदय ग्राहिणी कविता किसी संस्कृत-ग्रंथ का केवल शब्दानुवाद ही है * ।

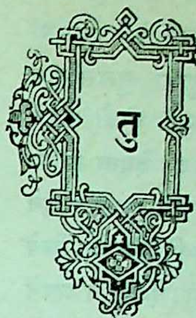
श्रीअवधवासी सीताराम

---

* लालाजी का यह पुराना, किंतु हिंदी-संसार के लिये नया लेख इस बात का उदाहरण है कि साहित्य-संसार में लोगों की नासमझी से कैसे बड़े-बड़े वितंडा-वाद उठ खड़े होते हैं, और ज़रा-सी बात को लेकर सर जार्ज ग्रियर्सन तथा लाला सीताराम-जैसे प्रकांड विद्वानों को भाषा-रामायण-जैसी पुस्तक की मान-मर्यादा रखने के लिये मैदान में आना पड़ता है । इस संस्कृत-रामायण का संक्षिप्त इतिहास यह है— मेरे वृद्ध प्रपितामह वैकुंठ-वासी श्रीमन्नारायणजी संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् थे । उनका अधिकांश समय संस्कृत के पठन-पाठन ही में बीतता था । एक बार भाषा-रामायण की बात चलने पर उनके कुछ शिष्यों ने उनसे उसका संस्कृत-अनुवाद करने की प्रार्थना की । श्रीमन्नारायणजी राज़ी हो गए । वह भाषा-रामायण लेकर उसका अनुवाद बोलते और उनके शिष्य उस अनुवाद को लिख लिया करते थे । इस प्रकार तुलसीदासजी की रामायण का संस्कृत-अनुवाद हुआ । यह पुस्तक, घर की अन्य संस्कृत-पुस्तकों के साथ, हमारे घर (इटावे) में ही थी; किंतु सन् १९०१ के लगभग मेरे पितृव्य वैकुंठ-वासी कृष्णरामानुजदासजी के काश्मीर-महाराज की सेवा में चले जाने और पूज्य पिताजी के प्रयाग चले आने से घर सूना हो गया, और मेरे चचेरे भाई ने आवारगी और लड़कपन के कारण बहुत-सी पुरानी पुस्तकें इधर-उधर कर दीं । हमारे पड़ोस में पंडित सेवाराम रहते थे । इन्हें रामायण से प्रेम था । सो इन्होंने यह पुस्तक मेरे चचेरे भाई से ले ली । पीछे यह पुस्तक उन्हीं के द्वारा छपाई गई । मैंने भी इसका छपा हुआ एक कांड, कई साल हुए, देखा था । मैंने मूल-पुस्तक तो अभी तक नहीं देखी, किंतु सुना है कि जिन पंक्तियों में लेखक का नाम था, वे पंक्तियाँ नष्ट कर दी गई हैं । शायद इससे यह समझा गया हो कि लेखक का नाम रहने से पुस्तक की प्राचीनता सिद्ध करना असंभव हो जायगा, और फिर उसका महत्त्व नहीं रहेगा । किंतु असल में न तो यह पुस्तक बहुत प्राचीन है, और न भाषा-रामायण इसका अनुवाद ही है । प्रत्युत यह स्वयं भाषा-रामायण का अनुवाद है । मोटे मोटे लोगों में कौतूहल उत्पन्न करने के लिये ही यह पुस्तक इस प्रकार प्रकाशित की गई थी । इटावे में अब भी एक-दो ऐसे वृद्ध सज्जन विद्यमान हैं, जो इस पुस्तक की वास्तविक कथा को जानते हैं । आशा है, इस नोट से बहुत-से लोगों का इस पुस्तक के संबंध का भ्रम दूर हो जायगा ।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

तुलसीदास और देवता



तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे । जहाँ कहीं उन्हें अवसर मिला है, राम का यश गाने में उन्होंने कोई बात उठा नहीं रक्खी । राम-चरित्र वर्णन करते-करते जहाँ कहीं उन्हें शंका-संदेह की गुंजाइश समझ पड़ी, राम के वकील की तरह वह, भ्रम-निवारण के लिये, विना कुछ कहे आगे नहीं बढ़े । राम अपने विमुखों को भले ही क्षमा कर दें; पर तुलसीदास ने राम का पक्ष लेकर उन्हें खूब खोटी-खरी सुनाई है, उन्हें खूब डाँटा-डपटा है । भक्त ही ठहरे, राम का विरोध कैसे सह सकते थे ? रामचरित-मानस में प्रारंभ से लेकर अंत तक उन्होंने स्त्रियों को सहज, जड़, अज्ञ और दुर्गुणों की राशि बतलाया है । स्त्रियों से वह इतने क्यों चिढ़े थे ? क्या उनकी स्त्री ने उन्हें घर से निकाल दिया, इसी-लिये ? उसके लिये तो वह परम कृतज्ञ की तरह कहते हैं—

हम तो चाखा प्रेम-रस पतनी के उपदेस ;

फिर क्या बात थी ?

अपने विरोधियों की तुलसीदास ने सदा उपेक्षा की है । कभी-कभी अत्यधिक कष्ट पाकर ही उन्होंने गीता-वली और दोहावली में शिव और हनुमान् से प्रार्थना की है कि मुझे लोग नाहक़ सता रहे हैं, आप मेरी रक्षा कीजिए । अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों के लिये उन्होंने कभी किसी के अनिष्ट की कामना नहीं की । करते ही क्यों ? शरीर और मन, दोनों को तो वह राम को समर्पण कर चुके थे । उनका अपना था ही क्या, जिसके लिये वह सांसारिक जनों से मोरचा लेते फिरते ? राम ही उनके तन, मन, धन थे । राम ही को वह सर्वत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापक देखते थे । देवता, दानव, यक्ष, नर, नाग, किन्नर, गंधर्व, सबसे वह राम को बड़ा समझते थे । राम के विरोधी को ही वह अपना विरोधी समझते थे । राम की ईश्वरता में जहाँ किसी को कुछ संदेह हुआ, तुलसीदास ने उसकी दुर्गति के लिये कोई कल्पना नहीं छोड़ी । राम से जिसने ज़रा भी विरोध प्रकट किया, वह देवता हो या मनुष्य, स्त्री हो या पुरुष, तुलसीदास ने उसको दंड देने में कोई मुलाहिज़ा नहीं किया । राम-विमुख के लिये उनके दिल में मुरौवत बिलकुल नहीं थी। देवतों ने अपने शत्रु राक्षसों के विध्वंस के लिये राम को वन भेजने का षड्यंत्र रचा, और वह षड्यंत्र स्त्री-जाति—सरस्वती, मंथरा और कैकेयी –द्वारा सफल हुआ । क्या यही कारण तो नहीं था, जिसने तुलसीदास को स्त्री-जाति का विरोधी बना दिया ?

अब रहे देवता । देवतों का जैसा परिहास तुलसीदास ने रामचरित-मानस में किया है, वैसा और किसी कवि ने आज तक किसी जाति-विशेष या व्यक्ति-विशेष के लिये किसी काव्य में किया है या नहीं, यह मैंने नहीं देखा । कवि की हैसियत से तुलसीदास को राम के अनुकूल और प्रतिकूल, सबकी बातें कहनी पड़ी हैं । पर जहाँ राम के विरुद्ध कुछ कहने का प्रसंग आया है, वहाँ उन्होंने बहुत सँभल-सँभलकर पैर रक्खा है । वह सदा चौकन्ने दिखाई पड़ते हैं कि कोई बात राम की शान के विरुद्ध न निकल जाय । पर जहाँ अन्य देवतों के विरुद्ध कुछ कहना पड़ा है, वहाँ उन्होंने बेखटके लगाम ढीली कर दी है । जहाँ-जहाँ मौक़ा मिला है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इंद्र और नारद तक का परिहास करने में वह नहीं चूके ! मामूली देवतों की तो बात ही क्या ? यह क्या देवतों के राम को कष्ट पहुँचाने का बदला नहीं है ?

सारे रामचरित-मानस में तुलसीदास ने देवतों को केवल दो काम सौंप रक्खे हैं, दुंदुभी बजाना और फूल बरसाना । जहाँ कोई अद्भुत घटना हुई, चाहे जंगल हो या बस्ती, घर के भीतर हो या बाहर, देवता झट फूल बरसाने लगते, और दुंदुभी बजा देते । मानो उनकी यही ड्यूटी थी कि वे दुंदुभी और फूलों की झोली लिए घूमते रहें, और जहाँ ज़रूरत समझें, दुंदुभी बजा-कर फूल बरसाने लगें । कहीं-कहीं देवतों की स्त्रियों को तुलसीदास ने नचाया और सताया भी है । देवतों का कोई रहस्य चाहे वह भला हो या बुरा, खोलने में तुलसीदास ने कभी असावधानी नहीं की । राम के चरित्र में वह कभी दोष नहीं देखते थे । साधारण मनुष्य राम के किसी कार्य को दोष-युक्त न समझ लें, इसके लिये तुलसीदास बिना कुछ समझाए-बुझाए आगे नहीं बढ़े । पर अन्य देवतों के दोषों का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया । लीजिए, पहले-पहल विष्णु की ही करतूत सुनिए। नारद का अभिमान दूर करने के लिये विष्णु भगवान ने एक रचना रची । उससे नारद को बड़ा विक्षोभ हुआ । भेंट होने पर नारद ने विष्णु भगवान् की अच्छी ख़बर ली । उन्होंने कहा—

परसंपदा सकहु नहिं देखी ; तुम्हरे इरिषा-कपट बिसेखी।
मथत सिंधु रुद्रहिं बौरायहु ; सुरन्ह प्रेरि बिष-पान करायहु।
असुर सुरा, बिष शंकरहिं, आपु रमा, मनि चारु ;
स्वारथ-साधक, कुटिल तुम्ह, सदा कपट-व्यवहारु ;
परम स्वतंत्र, न सिर पर कोई ; भावइ मनहिं, करहु तुम्ह सोई।
भलेहि मंद, मंदहि भल करहू ; बिसमय-हरष न हिय कछु धरहू।
डहँकि-डहँकि परिचेहु सब काहू ; अति असंक मन सदा उछाहू।
करम सुभासुभ तुमहिं न बाधा ; अब लगि तुमहिं न काहू साधा।
भले भवन अब बायन दीन्हा ; पावहुगे फल आपन कीन्हा।

तुलसीदास ने यहाँ नारद के मुँह से विष्णु की पोल खुलवाई है, तो एक अन्य स्थान पर सप्तर्षियों के मुँह से नारद का भंडाफोड़ कराया है । नारद इधर की उधर लगाने में बड़े प्रवीण थे । उनकी सम्मति से उमा ने शिव के लिये तप करना प्रारंभ किया । उस मौक़े पर सप्तर्षियों ने उमा के हृदय का भाव देखने के लिये नारद के विरुद्ध उन्हें ऐसा समझाया —

सुनत बचन बिहँसे ऋषय, गिरि-संभव तव देह ;
नारद कर उपदेस सुनि, कहहु, बसेउ को गेह ?
दच्छ सुतन उपदेसिन्हि जाई ; तिन फिरि भवन न देखा आई।
चित्रकेतु कर घर उन घाला ; कनककसिपु कर पुनि अस हाला।
नारद-सिष जे सुनहिं नर-नारी ; अवसि होहिं तजि भवन भिखारी।
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा ; आपु सरिस सब ही चह कीन्हा।

लगे हाथों सप्तर्षियों ने शिवजी का भी रूप वर्णन कर दिया—

निर्गुन, निलज, कुबेष, कपाली, अकुल, अदेह, दिगंबर, ब्याली
कहहु कवन सुख अस बर पाए ? भल भूलिहु ठग के बौराए
पंच कहे सिव सती बिवाही ; पुनि अवडेरि मरायनि ताही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब सुख सोवत सोच नहिं ; भीख माँगि भव खाहिं ;
सहज एकाकिन के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं ?

शिवजी की बरात में भी शिव-स्वरूप का बड़ा हास्य-पूर्ण वर्णन है—

सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा ; जटा-मुकुट, अहि-मौर सँवारा ।
कुंडल, कंकन पहिरे ब्याला ; तन बिभूति, पट केहरि-छाला ।
ससि ललाट सुंदर, सिर गंगा ; नयन तीनि उपबीत भुजंगा ।
गरल कंठ, उर नर-सिर-माला ; असिव बेष सिव-धाम कृपाला ।
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा ; चले बसह चढ़ि, बाजहिं बाजा ।
देखि सिवहिं सुर-त्रिय मुसुकाहीं ; बर-लायक दुलहिनि जग नाहीं ।
विष्णु, बिरंचि आदि सुरत्राता ; चढ़ि-चढ़ि बाहन चले बराता ।
सुर-समाज सब भाँति अनूपा ; नहिं बरात दूलह-अनुरूपा ।
बिष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज ;
बिलग-बिलग होइ चलहु सब, निज-निज सहित समाज ।
बर-अनुहारि बरात न भाई ; हँसी करइहउ पर-पुर जाई ।
बिष्णु-बचन सुनि सुर मुसुकाने ; निज-निज सेन-सहित बिलगाने ।
मन-हीं-मन महेस मुसुकाहीं ; हरि के ब्यंग-बचन नहिं जाहीं ।

× × ×

बर बौराह बरद असवारा ; ब्याल कपाल, बिभूषन छारा ।

इंद्र पर तुलसीदास विशेष कृपा रखते थे । जहाँ कहीं उनकी चर्चा करने का अवसर इन्हें मिला, वहीं इन्होंने उनकी जी भरकर भर्त्सना की है । नारद जब तप कर रहे थे, तब इंद्र ने उनको तप से भ्रष्ट करने के लिये काम को भेजा । इस पर क्रुद्ध होकर तुलसीदासजी कहते हैं—

जे कामी, लोलुप जग माहीं , कुटिल काक-इव सबहिं डराहीं ।
सूख हाड़ लेइ भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज ;
छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहिं न लाज ।

परशुरामजी भी विष्णु के अवतारों में से एक थे । पर उन्होंने धनुष-भंग के अवसर पर राम के लिये कटु वाक्य कहे । राम-भक्त तुलसीदास अपने आराध्य-देव का अपमान न सह सके । उन्होंने मौक़ा मिलते ही लक्ष्मण के द्वारा परशुराम की पूरी फ़ज़ीहत करा डाली । यह प्रसंग इतना लंबा-चौड़ा है कि यहाँ स्थानाभाव से सब नहीं दिया जा सकता । और, बिना सब उद्धृत किए उसका आनंद नहीं मिल सकता । परशुराम-लक्ष्मण-संवाद बड़ा रोचक है । उसे रामचरित-मानस में ही पढ़ना चाहिए ।

शिव के पाँच मुख थे ; प्रत्येक मुख पर तीन नेत्र थे । इस तरह सब पंद्रह नेत्र हुए । ब्रह्मा के चार मुख और आठ नेत्र थे । कार्त्तिकेय के छः मुख और बारह नेत्र तथा इंद्र के एक हज़ार नेत्र थे । देवतों की यह विचित्र बनावट देखकर तुलसीदास से बिना छेड़-छाड़ किए नहीं रहा गया । राम-विवाह के अवसर पर उन्होंने इंद्र आदि का मज़ाक़ उड़ा ही डाला । राम की बरात जा रही है । राम घोड़े पर सवार हैं । उस अवसर की बात है—

जेहि बर बाजि राम असवारा ; तेहि सारदहु न बरनइ पारा ।
संकर राम-रूप अनुरागे ; नयन पंचदस अति प्रिय लागे ।
हरि हित-सहित राम जब जोहे ; रमा-समेत रमापति मोहे ।
निरखि राम-छबि बिधि हरखाने ; आठै नयन जानि पछताने ।
सुर-सेनप-उर बहुत उछाहू ; बिधि तें डेवढ़ सुलोचन-लाहू ।
रामहिं चितव सुरेश सुजाना ; गौतम-साप परम हित माना ।
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं ; आजु पुरंदर-सम कोउ नाहीं ।

राम को युवराज-पद देने की चर्चा चल रही है । हाट-बाट, घर, गली, अथाई, सर्वत्र इस उत्सव के संबंध की चर्चा चल रही है । अयोध्या में आनंद उमड़ रहा है । पर देवता इसमें विघ्न डालना चाहते हैं । तुलसीदास उनसे बहुत रुष्ट हैं । वह उन्हें कुचाली कहकर चोर से उनकी उपमा देते हैं—

सकल कहहिं कब होइहि काली ; बिघन मनावहिं देव कुचाली ।
तिनहिं सुहाइ न अवध-बधावा ; चोरहिं चाँदनि राति न भावा ।

देवतों ने सरस्वती से बड़ी बिनती की कि हे माता, कोई ऐसी युक्ति करो, जिससे राम राज्य छोड़कर वन जायँ, और देवतों का कार्य सिद्ध हो । सरस्वती पहले अस्वीकार करती थीं । पर—

सारद बोलि बिनय सुर करहीं ; बारहि बार पायँ लै परहीं ।

× × × × ×

बार बार गहि चरन सँकोची , चली बिचारि बिबुध-मति पोची ।
ऊँच निवास, नीच करतूती ; देखि न सकहि पराइ बिभूती ।

देवता बड़े खुशामदी और बड़े चालाक थे । राम को उत्साहित करने के लिये वे राम की प्रशंसा सुनकर फूल बरसाते और दुंदुभी बजाते थे । राम ने जब चित्रकूट को, रहने के लिये, पसंद किया, तब इंद्र आदि देवता वेष बदलकर, कोल-किरात की सूरत बनाकर, आए, और उन्होंने राम के लिये झोपड़े खड़े कर दिए । अपने मतलब के लिये इंद्र को झोपड़ा छाने में कुछ शर्म न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आई। देवतों ने सूरत क्यों बदली ? एक कारण तो यह जान पड़ता है कि राम देवतों को छप्पर छाने आदि का छोटा काम न करने देते। पर राम तो अंतर्यामी थे। देवतों का छद्म-वेश उनसे छिपा थोड़े ही रहा होगा ? दूसरा कारण रावण को धोखा देना था। देवता रावण से बहुत डरते थे। रावण को कहीं मालूम हो जाता कि देवता राक्षसों के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं, उन्हीं की प्रेरणा से राम वन को आए, और अब वे उनके लिये सब सुबीते करते फिरते हैं, तो वह उन्हें अच्छी तरह दंड देता। फिर देवतों को यह संदेह भी था कि राम रावण को मार सकेंगे या नहीं ! इसी से वे प्रकट रूप से राम की सहायता नहीं करते थे। रावण यदि कभी देवतों पर यह दोष लगाता कि उन्होंने उसके विरुद्ध राम की सहायता की, तो देवता साफ़-साफ़ इनकार कर सकते थे। राम-रावण-युद्ध के समय रावण को यह संदेह हुआ कि देवता राम की मदद कर रहे हैं ; क्योंकि राम के बाणों से जब रावण व्याकुल हो जाता था, तब देवता राम पर फूल बरसाते और दुंदुभी बजाते थे। इससे रावण बड़ा कुढ़ता था। इसी से एक दिन वह रण-क्षेत्र में ही देवतों की ओर यह कहता हुआ झपटा—

रहेहु सदा सठ मोर मरायल।

भरत राम को मनाने के लिये चित्रकूट जा रहे हैं। उनके प्रभाव से—

भइ मृदु महि मग मंगल-मूला।
किए जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात ;
तस मग भयहु न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात।

यह प्रभाव देवतों को असह्य हो गया। देवतों के राजा बड़े तिकड़मी थे। स्वार्थ-साधन के लिये छल-कपट करना उनके बाएँ हाथ का खेल था—

देखि प्रभाव सुरेसहिं सोचू ; जग भल भलेहिं, पोच कहँ पोचू।
गुरु सन कहेउ—करिय प्रभु सोई, रामहिं भरतहिं भेंट न होई।
राम सकोची प्रेम-बस, भरत सुप्रेम-पयोधि ;
बनी बात बिगरन चहत, करिय जतन छल सोधि।
बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने ; सहस नयन बिनु लोचन जाने।

× × ×

राम सदा सेवक-रुचि राखी ; बेद, पुरान, साधु, सुर साखी।
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई; करहु भरत-पद प्रीति सुहाई।
स्वारथ-बिबस बिकल तुम होहू ; भरत-दोस नहिं, राउर मोहू।

गुरु की बात सुनकर इंद्र को कुछ ढाढ़स हुआ। वह फिर ख़ुशामद करने लगे—

बरषि प्रसून हरषि सुर-राऊ ; लगे सराहन भरत-सुभाऊ।

इंद्र ने राम को लौटा लाने के लिये भरत के प्रयत्न को निष्फल करने की इच्छा से बड़े-बड़े प्रपंच रचे। तुलसीदास ने इंद्र को फटकारा भी ख़ूब।

लंका-कांड में देवतों का रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पहले वे सदा शंकित रहते थे कि राम से राक्षसों का नाश हो सकेगा या नहीं। इसी से वे खुल्लम-खुल्ला, प्रकट रूप से, राम की सहायता नहीं करते थे। हाँ, राम के लिये सब सुबीते अवश्य कर देते थे। ऋषियों-मुनियों की मुलाक़ात के अवसर पर राम जब राक्षसों के विध्वंस की प्रतिज्ञा करते थे, तब देवता फूल बरसाते और दुंदुभी बजा देते थे। लंका में राम ने जब रावण के कुटुंबियों को मार डाला, तब देवतों को कुछ तसल्ली हुई। उनको विश्वास हुआ कि राम रावण को मार सकते हैं। अब वे निर्भय होकर राम की सहायता करने लगे—

देवन्ह प्रभुहिं पयादे देखा; उपजा उर अति छोभ बिसेखा।
सुर-पति निज रथ तुरत पठावा; हरष-सहित मातलि लेइ आवा।

रावण की माया के प्रभाव से जब असंख्य रावण युद्ध में प्रवृत्त हो गए, तब—

डरे सकल सुर, चले पराई; जय कै आस तजहु अब भाई।
सब सुर जिते एक दसकंधर; अब बहु भए तकहु गिरि-कंदर।

पर राम ने जब रावण की माया नष्ट कर डाली, तब—

रावन एक देखि सुर हरषे; फिरे, सुमन बहु प्रभु पर बरषे।

रावण ने जब देखा कि देव-गण राम की प्रशंसा कर रहे हैं, तब वह बहुत चिढ़ा, और कहने लगा—

सठहु सदा तुम मोर मरायल; कहि अस, कोपि गगन-पथ धायल।
हाहाकार करत सुर भागे; खलहु, जाहु कहँ मोरे आगे।

रामायण में प्रायः सर्वत्र देवतों को निकम्मा, डरपोक, स्वार्थी और ख़ुशामदी दिखाया गया है। देवता अपना मतलब निकालने में सब तरह का छल—अँगरेज़ी भाषा में पालिसी—कर सकते थे। तुलसीदास ने देवतों का चित्र अच्छा नहीं दिखलाया।

तुलसीदास स्वर्ग गए होंगे ; देवतों से उनकी भेंट भी हुई होगी। पता नहीं, देवतों से उनकी कैसी निपटी।

रामनरेश त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयंसिद्ध संपादक

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]



पत्रों से ले लेख, टिप्पणी, काट-छाँटकर ठीक करें ;
फिर उनसे कालम-के-कालम क़लम चलाए विना भरें ।
चले जिधर को हवा, उधर ही पीठ फेरने का है यत्न ;
संपादन कर रहे देखिए, स्वयंसिद्ध संपादक-रत्न ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी-गुण-गान

एई तुलसीदास हैं, एई हिंदी-प्रान ;
एई भगवत-भक्त-बर, इन सम धन्य न आन ॥१॥
धनि संबत, धनि मास वह, धन्य घरी, जब मीत !
लियो जन्म इन आय, किय भारत-भूमि पुनीत ॥२॥
धन्य मातु-पितु-गोद, जिन ऐसो सुअन खेलाय,
पावन कुल सब बिधि कियो, जीवन-मुक्त कहाय ॥३॥
भयो न ऐसो कबि दुतिय, अहै, न होनहुहार ;
कबिता-कामिनि-कंत ये, कवि-कुल के सिंगार ॥४॥
का हिंदी, उरदू कहा, का अँगरेजी मित्र !
का अरबी, का पारसी, भाषा अन्य बिचित्र—॥५॥
हैं जितनी देखी-सुनी, लिखी-पढ़ी, गुन-आल,
काहू मैं देख्यो नहीं, ऐसो सुकबि बिसाल ॥६॥
हीन दसा हू मैं जदपि भारतबासी आजु,
पै तुलसी-बल करि सकत मस्तक उच्च समाजु ॥७॥
ऐसो कबि देख्यो-सुन्यो जग मैं कतहुँ न आन,
करत गुनीजन जगत के जाको सुजस बखान ॥८॥
भारत के कबिराजन मैं अति ऊँचो है नाम सदा तुलसी को ;
जासु प्रताप-दिवाकर के लखे औरन को जस लागत फीको ।
जूगुनू औ तरैयन की कहा, तेज ह्वै जात है मंद ससी को ;
धाक सुने रिपु खाक सदा मिलै, छूटि परै उतसाह जसी को ९
सूर फिरै निज राह टटोवत, देव की चातुरी हू बिसरी है ;
भूलि बिहारी रह्यो छरछंदन, भूषन बीरता छोरि धरी है ।
बिज्ञपनो गयो केसव को, मतिराम की माधुरी फीकी करी है ;
का गिनती हरिचंद की, चंद-कबीरहू की नहिं बात खरी है १०

षट्पद

हिंदी, हिंदू, हिंद-नाम जब लौं जग राजै,
तब लौं तुलसीदास-सुजस महि-मंडल गाजै ।
सत-कबिता-सतकार जहाँ लौं यहि संसारा,
ऋषिबर को परताप तहाँ लगि टरै न टारा ।
तुम शेक्सपियर, होमर तथा दांते हू सों हौ अधिक ;
जय-जय तुलसी, जय-जय नमः, राम-भगति-रस के रसिक ११

मिश्र-बंधु

तुलसी-महिमा

[१]

गंगा के पुलिन मैं बिछो है बर आसन,
बिराजै देवरूप, भरो नेह-बिसवास है ;
पुलकि-पुलकि बाँचै बिनय की पाती,
सुनि हिय हुलसाती, भीर भारी आस-पास है ।
नैनन सों आनँद के आँसू बहि रहे, मानो
भक्ति-रस-उदधि को मंजुल बिलास है ;
ऐसो ध्यान मन मैं बसत मेरे जाको,
तौन तुलसी सदा को रामचंदजू को दास है ।

[२]

देव-बानी बैभव को मिलै जो सहारो कछू,
सूर के प्रकास को तुरत अपनाऊँ मैं ;
मंजुल बिमल रामचरित के मानस मैं,
उमँगि-उमँगि चिरकाल लौं नहाऊँ मैं ।
नेह रँग-मगे लै कै बिनय की पाती कर,
नैनन के सौहैं राखि सुख सरसाऊँ मैं ;
तनमय ह्वै कै आचरन करौं उनहीं के,
दास तुलसी के गुन तब कहि पाऊँ मैं ।

[३]

घाम, मेघ, सीत के रहत बस वह, यह
कैसे हू कबौं न कहूँ ऋतु के अधीन है ;
जड़तामयी है वह, चेतना भरी है यह ;
वाको रूखो कहैं, यह सरस नवीन है ;
धूरि मैं धँसति वह, उर बिहँसति यह ;
एक स्वाद वाको, यह नवरस-लीन है ;
तुलसी के बिरवासों भलेकै बिचारि देखौ,
तुलसी की कबिता परम परबीन है ।

कृष्णविहारी मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा तुलसीदासजी



संवत् १५८६ भारतवर्ष के लिये जैसा शुभ हुआ था, उसके प्रकाशित करने के लिये इतना ही कह देना यथेष्ट है कि इसी स्वनाम-धन्य संवत् में कवि-श्रेष्ठ श्रीराम-पद-पंकजानुरागी महात्मा तुलसी-दास ने जन्म लिया था। इनके जन्म-स्थान के विषय में मत-भेद है ; पर बहु-मत से अब तक यही माना गया है कि यह गर्व, गौरव और सौभाग्य ज़िला बाँदा (बुँदेलखंड), राजापुर परगना और तहसील मऊ को ही प्राप्त है। यहाँ गोस्वामीजी का स्थान अब तक यमुना के किनारे वर्तमान है। वहाँ अब एक सुंदर मंदिर बनवा दिया गया है, तथा स्वयं तुलसीदासजी के हाथ की लिखी हुई रामायण (अयोध्या-कांड) की एक प्रति सुरक्षित है। हम संवत् १९७७ में प्रयाग से राजापुर गए थे। वहाँ हमने उक्त मंदिर और पुस्तक के दर्शन किए थे।

गोस्वामीजी के जीवन-चरित्र की मुख्य घटनाएँ हिंदी-प्रेमियों से छिपी नहीं हैं। इससे हम उन्हें यहाँ पर लिखना आवश्यक नहीं समझते। हमने भी अपने "हिंदी-नवरत्न"-नामक ग्रंथ में बहु-मान्य घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया है। आपके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का हुलसी था। आपके मंत्र-गुरु थे महात्मा नरहरिदासजी। यह गुरु-परंपरा से सुप्रसिद्ध स्वामी रामानंदजी की छठी पीढ़ी में थे। आप कान्यकुब्ज अथवा सरयूपारी ब्राह्मण थे, और विवाह होने के थोड़े ही दिनों पीछे त्यागी होकर इधर-उधर विचरने लगे। इन्होंने विद्याध्ययन में बहुत श्रम किया था, और हिंदू-शास्त्रों में इनकी प्रगाढ़ गति थी। सभी उपनिषदों तथा भगवद्गीता इत्यादि का मर्म इन्होंने खूब ही हस्तामलक किया था। यहाँ तक कि डॉक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन ने इन्हें स्वयं गौतम-बुद्ध के प्रायः बराबर माना है। संवत् १६८० में गोस्वामीजी का गोलोक-वास हुआ।

कविता में तुलसीदासजी की जोड़ का सत्कवि समस्त संसार में कदाचित् और कोई भी न मिलेगा। हम जानते हैं, हमारे यह कहने पर बहुत-से लोग बिगड़ पड़ेंगे ; क्योंकि अपने-अपने यहाँ सभी जातियों के मनुष्यों में अन्य सत्कविगण भी बड़ी पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं। इधर संस्कृतज्ञ पंडितगण कालिदास, व्यास, वाल्मीकि, श्रीहर्ष, माघ, भवभूति इत्यादि कवियों को भला किसी हिंदी-कवि से कम कब मानने लगे। बहुतेरे हिंदी के रसज्ञ रसिक सूरदास, देव और विहारी को, अपनी-अपनी रुचि के अनुसार, सर्व-श्रेष्ठ कहने में नहीं हिचकते। उधर अँगरेज़ लोग कदाचित् संसार के बड़े-से-बड़े महाकवि को भी शेक्सपियर से बढ़कर मानने में हिचकेंगे। तब 'कहा कीट बपुरे नर-नारी ?" वे शेक्सपियर या किसी अन्य अँगरेज़ी-कवि को भी संसार का शिरोमणि कहने में कुछ भी संकोच नहीं करते ; परंतु यदि कोई अन्य-जातीय पुरुष अपने देश के किसी कवि को शेक्सपियर से बड़ा अथवा उसके बराबर भी कहे, तो ग़ज़ब हो जाता है ! वे घृणा-युक्त घमंड से कहने लगते हैं कि ऐसी बात के कहने से यही प्रतीत होता है, मानो वह मनुष्य भू-मंडल से उड़कर बादलों में जा पहुँचा ! ग्रीक लोग होमर को, इटालियन लोग वर्जिल को, फ्रेंच लोग दांते को, रूसी लोग पुश्किन को, अरब लोग हम्मासा को, फ़ारसीवाले सादी, अनवरी, ख़ाक़ानी और हाफ़िज़ को, उर्दूवाले ग़ालिब और सौदा को, बंगाली लोग मधुसूदन दत्त, नवीनचंद्र सेन और रवींद्र बाबू को, महाराष्ट्र लोग तुकाराम आदि को सबसे बढ़कर मानते हैं। मतलब यह कि अपने-अपने रंग में सभी मस्त हैं। पर न्याय-पूर्वक पूछने पर बहुत-से अन्य-प्रांतीय, और विदेशी लोग भी, हठ और कुतर्क छोड़कर कभी-कभी मान लेते हैं कि तुलसीदास की बराबरी का कवि वास्तव में उनके यहाँ कोई नहीं है। कुछ भी हो, हमें बहुत दिनों से यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि कवि-कुल-कमल-दिवाकर महात्मा तुलसी-दासजी कविता की दृष्टि से संसार में एकदम अद्वितीय हैं। इस कथन के समर्थन में हमने अपने "हिंदी-नवरत्न" एवं "मिश्र-बंधु-विनोद" में बहुत-से प्रमाण दिए हैं। तल्लीनता कविता का एक मुख्य अंग है। भगवान् श्री-रामचंद्र की अखंड भक्ति के कारण गोस्वामीजी में उस-की मात्रा इतनी अधिक हो गई है कि वैसी तल्लीनता किसी अन्य कवि में दृष्टिगोचर नहीं होती। अपनी असीम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति, पूर्ण विद्वत्ता, अनुपम कवित्व-शक्ति और उससे उत्पन्न अखंड तल्लीनता के कारण गोस्वामीजी की भक्ति-मयी कविता संसार-साहित्य की शिरोमणि हो गई है। फिर भाषा पर आपका ऐसा प्रगाढ़ अधिकार है कि उसे कुँभार की मिट्टी की तरह यह चाहे जैसा रूप दे सकते हैं। हमने "नवरत्न" में दिखलाया है कि इन्होंने भिन्न-भिन्न पाँच प्रकार की भाषाओं में कविता की है। रामचरित-मानस, कवितावली, कृष्ण-गीतावली, विनय-पत्रिका और दोहावली की भाषा तथा कविता-शैली बिलकुल भिन्न-भिन्न प्रकार की है। इनके शेष ग्रंथ इन्हीं ५ विभागों में आ जायँगे। इन सब सद्गुणों के सम्मिश्रण से इनकी कविता ऐसी मनोहारिणी हुई है कि उसे पढ़कर मनुष्य अवाक्-सा रह जाता है। अपने पात्रों के शील-गुण का ख़ाका भी इन्होंने ऐसे उत्तम ढंग से खींचा है कि कुछ कहते नहीं बनता।

यों तो गोस्वामीजी के ग्रंथों का अंत ही नहीं मिलता (क्योंकि बहुतेरे अच्छे कवियों ने भी इनके नाम से ग्रंथ बना डाले हैं, और अब तक इस कार्यवाही का अंत नहीं हुआ है), पर आपके २५-३० ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। यथा—(१) रामचरित-मानस (रामायण), (२) कवितावली, (३) गीतावली, (४) छंदावली, (५) पद्यावली, (६) छप्पै-रामायण, (७) बरवै-रामायण, (८) कुंडलिया-रामायण, (९) कड़खा-रामायण, (१०) रोला-रामायण, (११) झूलना-रामायण, (१२) रामाज्ञा, (१३) रामलला-नहछू, (१४) जानकी-मंगल, (१५) पार्वती-मंगल, (१६) कृष्ण-गीतावली, (१७) हनुमान्-बाहुक, (१८) संकट-मोचन, (१९) हनुमान्-चालीसा, (२०) राम-सलाका, (२१) राम-सतसई, (२२) वैराग्य-संदीपिनी, (२३) विनय-पत्रिका (२४) कलि-धर्माधर्म-निरूपण, (२५) दोहावली, (२६) ज्ञान को परिकरण, (२७) मंगल-रामायण, (२८) गीता-भाष्य, (२९) राम-मुक्तावली, (३०) ज्ञान-दीपिका। इनमें से नंबर १, २, ३, १२, १४, २१, और २३-२५ तो इन्हीं के हैं। शेष ग्रंथों के विषय में संदेह है। इन सब ग्रंथों के विषय में विशेष कुछ लिखने के लिये स्थान का अभाव है। केवल इतना कह देना काफ़ी होगा कि इनमें कविता के प्रायः सभी गुण ठौर-ठौर पर पाए जाते हैं। विषय का सम्यक् प्रकार से युक्ति-पूर्वक प्रतिपादन, अरुचिकर तैयारियों में पाठक का समय नष्ट न करना, सद्गुणों की बीच-बीच में प्रशंसा एवं दुर्गुणों की निंदा, किसी भी पूर्व-वर्णित कथा-प्रसंग से बद्ध न होकर स्वच्छंदता-पूर्वक कथानक को कहना, चरित्र-नायकों और पात्रों का शील-गुण सम्यक् प्रकार से वर्णन करना, आद्योपांत एकरस निबाह देना, सत्संग की महिमा गाना, पात्रों की बड़ी युक्ति के साथ परस्पर बात-चीत कराना, उत्तम रूपकों का समावेश, अनूठी उपमाएँ, समुचित शब्दों का प्रयोग, तीक्ष्ण दृष्टि से नैसर्गिक पदार्थों का अवलोकन एवं सम्यक् वर्णन, प्रबल उमंग का उत्कर्ष, प्रच्छन्न प्रहसन की छटा, बहुज्ञता, अर्थ-गौरव, पद-लालित्य, मानव-प्रकृति के चित्र खींचना, कविता में कहावतों का सन्निवेश कर देना और इनकी अनेक रचनाओं का कहावतों के रूप में परिणत हो जाना, अनेक प्रकार की भाषाओं और शैलियों का व्यवहार, वर्णनों में नाटक का-सा प्रभाव लाना, वर्णित विषयों का चित्र-सा सामने खींच देना इत्यादि अनेकानेक गुणों के कारण तुलसीदासजी संसार-साहित्य के मुकुट हो गए हैं। इतने गुण किसी भी कवि की कविता में एकसाथ नहीं मिलते। इनकी कविता में एक तो कोई वैसे भारी दोष हैं ही नहीं, और जो दो-चार हैं भी, वे एक प्रकार से गुण ही कहे जा सकते हैं; क्योंकि उनसे भी इनकी कविता में सर्व-प्रियता विशेष आ गई है। जितना हिंदी का उपकार इन एक महात्मा से हुआ है, उतना दो-तीन महानुभावों को छोड़कर अन्य दर्जनों कवि भी नहीं कर सके। गोस्वामी-जी ने मनुष्य-प्रकृति का बहुत ही सच्चा और मनोहर वर्णन किया है। साथ ही जो ईश्वरीय प्रकृति, शांत-रस और भक्ति-भाव की अखंड तरंगें प्रवाहित की हैं—जिनमें निमग्न होकर वह स्वयं इस स्वार्थी संसार के बहुत ऊपर उठ गए हैं—उनका बड़े-बड़े प्रसिद्ध कवियों की कविता में भी कहीं पता नहीं लगता।

इन्हीं सब गुणों को देखकर लोग गोस्वामीजी को अद्वितीय कवि और अमूल्य नर-रत्न मानते हैं।

श्यामविहारी मिश्र एम्० ए०
शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदासजी के कविता-विषयक सिद्धांत



अँगरेज़ी-साहित्य के सुप्रसिद्ध मर्मज्ञ समालोचक मैथ्यू आरनल्ड के इस मत में बहुत कुछ सत्य है कि किसी समय की कविता तत्कालीन सामाजिक जीवन का प्रतिबिंब होती है, और उसमें एक प्रकार से उसकी आलोचना-सी होती है। वास्तव में कविता ही नहीं, साहित्य-मात्र अपने समय के समाज की आकांक्षाओं, प्रवृत्तियों तथा जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है।

यद्यपि उपर्युक्त सिद्धांत सर्वांश में मान्य नहीं हो सकता, तथापि किसी कवि की रचना का सूक्ष्म रूप से परिशीलन करते समय यदि वह दृष्टि के सामने रहे, तो उस कवि को समझने में बहुत सुविधा होगी, और अर्थ का अनर्थ करने की संभावना न्यूनातिन्यून रह जावेगी। अस्तु। इसी निर्दिष्ट परिपाटी का अनुसरण करके इस लेख में तुलसीदासजी की कविता तथा तद्विषयक उनके विचारों की विवेचना की जायगी।

प्रथम यह देखना है कि तुलसीदासजी के विचार से कविता का स्वरूप क्या होना चाहिए; अर्थात् कविता की भाषा तथा भाव में से वह किसकी महत्ता पर विशेष ध्यान देते हैं? इसी के साथ इस बात की गवेषणा भी करनी है कि वह कविता-स्रोत का उद्गम-स्थान कहाँ पर स्थित करते हैं?

इन सब बातों की तालिका यह ध्यान में रखने से मिल सकती है कि तुलसीदासजी पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध भक्ति-आंदोलन की लहर पर उठे थे; जिसके कारण हिंदू-समाज के अंग-प्रत्यंग पर एक अनोखा रंग चढ़ गया था। उस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य यह था कि जीवन में बुद्धि के अनुचित और अत्यधिक साम्राज्य का नियमन किया जाय, और उसके स्थान में हृदय का समुचित परिमाण में प्रयोग। तत्कालीन हिंदू-समुदाय म्रियमाण क्यों हो रहा था? केवल इसीलिये कि ब्राह्मणों ने हार्दिक शक्तियों की अवहेलना करके बौद्धिक शक्तियों का विशेष उपयोग किया था, और दार्शनिक की भाँति बाल की खाल निकालकर कर्म-कांड को चरम सीमा तक पहुँचा दिया था। बौद्धों तथा जैनों ने उस कर्म-कांड की अनुचित वृद्धि को रोकने का सत् प्रयत्न किया; परंतु उनका सिक्का जमने पर भी लोगों में अभिप्रेत दिशा की ओर कोई परिवर्तन नहीं हुआ, अर्थात् समाज पूर्ववत् निरे मानसिक विकास की ओर झुका रहा। जिसे देखिए, वही अपनी फ़िलासफ़ी गढ़ने लगा। यह किसी को न सूझा कि साधारण जन-समुदाय के लिये तत्त्व-ज्ञान उपयुक्त तथा बोध-गम्य नहीं हो सकता; ऐसे दुरूह विषयों से वह दूर भागता है; उसके लिये निर्गुण ब्रह्म की उपासना ऐसी है, जैसे एक बालक के लिये अपने उन माता-पिता का स्मरण करना, जो जन्म-समय ही मर चुके हैं।

कहा जाता है, घात-प्रतिघात का नियम नैसर्गिक है। यदि किसी समय अमुक बात की धूम होती है, तो कालांतर में वही बात लोगों की दृष्टि में गिर जाती है, और उसके स्थान में जनता की रुचि का रुख़ दूसरी ओर घूम जाता है।

अस्तु। भक्ति-आंदोलन ने हिंदू-समाज में एक अपूर्व परिवर्तन कर दिया। लोगों के शुष्क हृदयों में भक्ति का अविरल स्रोत बहा। दार्शनिकों के वितंडा-वाद के पैर उखड़े, और राम-कृष्णादि शरीरधारी वीरों की आवेश-पूर्ण पूजा का प्रचार हुआ। बाह्य आडंबरों का महत्त्व कम हुआ। तल्लीनता की मात्रा उपासकों में बढ़ने लगी। तल्लीनता ही समस्त कविता का आवश्यक उपादान है। अतः इस समय के जितने कवि हुए, वे प्रायः भक्ति की मस्ती से भरे थे। उनकी रचना में रस का आधिक्य है। उन्होंने शब्द-योजना की विशेष पर्वा नहीं की; परंतु, तब भी, वह स्वाभाविक होने के कारण उपयुक्त तथा निर्दोष है।

तुलसीदास भी, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उन्हीं भक्त-कवियों की श्रेणी में से एक थे। अतः भक्ति-आंदोलन के स्थूल लक्षणों को जानने से उनके कविता-विषयक सिद्धांत सुबोध हो जाते हैं।

उपर्युक्त आलोचना से यह स्पष्ट हुआ कि उस समय के कवियों की कविता में दो उल्लेख-योग्य लक्षण थे। एक तो, उनकी कविता में नैसर्गिक प्रवाह था; दूसरे, उनमें भाव प्रधान है, भाषा गौण।

इँगलैंड में १८वीं शताब्दी के पूर्व भाग में, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Romantic Revival-नामक युग-परिवर्तनकारी आंदोलन हुआ था, उसका परिणाम भी प्रायः वही था, जो भक्ति-आंदोलन के कारण भारतीय साहित्य में हुआ। जैसे वर्ड्सवर्थ और कोलरिज अँगरेज़ी-साहित्य की उस महान् क्रांति के अग्रसरों में से थे, वैसे ही हिंदी-साहित्य में कबीर और तुलसीदास को हम नूतन प्रणाली के आदर्श-भूत अनुयायियों में गिन सकते हैं। आगे चलकर वर्ड्सवर्थ और तुलसीदास के सिद्धांतों की तुलना, कुछ अंशों में, की जायगी। अभी तुलसीदास के ग्रंथों ही से उनके कविता-विषयक सिद्धांतों का निदर्शन करना अभीष्ट है।

अनादि काल से कविता-मर्मज्ञों तथा जन-साधारण की यही धारणा रही है कि कविता एक दैवी शक्ति पर निर्भर है, यद्यपि समय-समय पर प्रत्येक देश के जीवन में ऐसी स्थिति आ गई है, जिसमें लोगों की आँखों में दुनियादारी का आवरण पड़ जाने से उनकी मति ऐसी औंधी हो गई कि वे यह समझने लगे—

"श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्।"

अर्थात् पढ़ने-लिखने तथा अभ्यास करने से सर्व-साधारण कवि बन सकते हैं। परंतु, तो भी, सब जातियों के वाग्देवी के उपासकगण, यह समझकर कि कविता एक पवित्र दैवी वस्तु है, रचना करते समय आदि में, किसी-न-किसी रूप में, एक दैवी शक्ति का स्तवन करते रहे हैं। संस्कृत-साहित्य के आचार्यों ने तो मंगलाचरण करने का एक आवश्यक निर्देश रख दिया है। प्राचीन योरपियन साहित्य के गोप-काव्यों (Pastoral Poetry) के आदि में भी सरस्वती (Muse) का आह्वान किया जाता था।

कतिपय एतद्देशीय तथा विदेशीय कवियों ने न केवल कविता के दैवी अंश का उल्लेख किया है, वरन् वे यहाँ तक कह गए हैं कि वह दैवी प्रेरणा से ही रची जा सकती है। अँगरेज़ी के कवि शेली कविता की परिभाषा इस प्रकार करते हैं—

"Poetry is what redeems from decay the visitations of the Divine in man."

अर्थात् कविता वह वस्तु है, जो मानव-हृदय में दैवी अंश को, जो समय-समय पर स्फुरित होता है, जाग्रत् रखती है।

तुलसीदास का भी यही मत है कि कवित्व-शक्ति बिना किसी महापुरुष अथवा देवता की उपासना के नहीं प्रवाहित हो सकती। कोई भी अपने को चाहे जितना प्रकांड कवि समझे, और चाहे जितना अलंकार-शास्त्र में निष्णात हो, जब तक उसमें भक्ति-जनित तल्लीनता न होगी, तब तक उसकी रचना में रस का अभाव रहेगा, और वह कोरी तुकड़बंदी होगी।

अपने इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

"हृदय सिंधु, मति सीप-समाना;
स्वाती सारद कहहिं सुजाना।
जो बरषै वर बारि बिचारू;
होहिं कवित मुक्ता-मनि चारू।
युक्ति बेधि पुनि पोहिए, राम-चरित बर ताग;
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, शोभा अति अनुराग।

× × ×

सारद दारु-नारि सम स्वामी;
राम सूत्रधर अंतरजामी।
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी;
कवि-उर-अजिर नचावहिं बानी।"

सारांश यह कि किसी कविता की चारुता तथा सर्व-ग्राहिता के लिये भाषा की प्रौढ़ता तथा विशेष काव्यांगों के ज्ञान की इतनी आवश्यकता नहीं, जितनी कि दैवी कृपा तथा विचार-पूर्णता की। तुलसीदास ने जो रूपक बाँधा है, उसके अनुसार यदि सरस्वती-रूपी स्वाती-नक्षत्र तथा विचार-रूपी वारि न होंगे, तो कविता-रूपी मोती कदापि न बनेंगे, चाहे हृदय-सिंधु और मति-सीप क्यों न हों।

यहाँ तक तो हुई कविता की उत्पत्ति के विषय में तुलसीदासजी की सम्मति। अब यह देखना है कि भाषा और भाव जो कविता के दो अंग हैं, उनके लिये वह क्या कहते हैं? साहित्यिक समालोचकों में यह चिर-काल से विवाद-ग्रस्त विषय रहा है कि भाषा और भाव, इन दोनों में से काव्य में किसकी महत्ता अधिक है! दोनों ओर के पक्षपाती प्रायः अपने मत की परिपुष्टि करने में अत्यधिक गरम पड़ जाते हैं, और भाषा और भाव, दोनों की अपेक्षा-कृत महत्ता को भूल-सा जाते हैं। तुलसीदासजी उस प्रकार के पक्ष-पोषकों में नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी स्वयं यह सम्मति है कि कविता में भाषा पर इतना ध्यान न देना चाहिए, जितना उसके विषय तथा भावों पर। यदि किसी काव्य में अन्य कोई गुण न भी हों, पर उसका प्रतिपाद्य विषय सर्वथा समीचीन हो, तथा उसके अंतर्गत भाव प्रशंसनीय हों, तो वह सर्व-मान्य होने के योग्य है। वह स्वयं एक अनन्य भगवद्भक्त थे। उनका जीवन भक्तोचित प्रेम से परिप्लावित था। रामचंद्रजी उनके एक-मात्र उपास्य देव थे। उनके लिये यह स्वाभाविक ही था कि वह अपनी कविता में अपने इष्ट-देव का चरित-गान करते हुए गौण रूप से यह व्यक्त करें कि कविता में वर्ण्य विषय का महत्त्व भाषा से अधिक है। अपने कविता-विषयक सिद्धांतों का निदर्शन करते हुए वह कहते हैं—

"भनिति बिचित्र न कवि-कृत जोऊ,
राम नाम बिन सोह न सोऊ।
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी,
सोह न बसन बिना बर नारी।
भक्ति-हेतु बिधि-भवन बिहाई,
सुमिरत सारद आवत धाई।
रामचरित-सर बिनु अन्हवाए,
सो श्रम जाय न कोटि उपाए।
कबि-कोबिद अस हृदय बिचारी,
गावहिं हरिगुण, कलिमल-हारी *।
जदपि कबित-रस एकौ नाहीं,
राम-प्रताप प्रगट यहि माहीं।

वास्तव में, तुलसीदासजी ने अपने ग्रंथों में, विशेषकर रामायण में, जान-बूझकर उपयुक्त शब्दों की खोज में समय नष्ट नहीं किया। राम-भक्ति की मस्ती में मस्त होने के कारण शारदा-देवी अक्षरशः ब्रह्मा का घर छोड़-कर उनकी लेखनी के निकट दौड़ आई हैं, और उन्होंने उससे भावोपयुक्त शब्दों की योजना कराई है। उनकी कविता की धारा-प्रवाह-गति से पाठक को यह बात स्वतः प्रतीत होने लगती है।

परंतु केवल इस बात के आधार पर कि तुलसीदासजी भाषा की अपेक्षा भाव का अधिक विचार रखते हैं, यह न समझ लेना चाहिए कि वह भी, वर्ड्सवर्थ की भाँति, गद्य तथा पद्य की भाषा की विभिन्नता के पक्षपाती नहीं हैं। वर्ड्सवर्थ ने तो—

"I measured it from side to side.
It was three feet long and three feet wide."

इस प्रकार की कतिपय कविताएँ बनाकर सब धान बाईस पंसेरी बेचने का प्रयत्न किया है; परंतु इससे उन्होंने उलटे अपने को उपहासास्पद बनाया है। पीछे से उनकी समझ में यह बात आ गई थी कि गद्य और पद्य की भाषा को एक करना ऐसा ही असंभव तथा अस्वाभाविक है, जैसा कि तेल और पानी को एक करना।

यदि शब्दों की चमत्कार-शक्ति पर तुलसीदासजी का विश्वास न होता, तो महादेवजी से कृपा-प्रार्थना की उन्हें कोई आवश्यकता न पड़ती। वह कहते हैं—

"सपनेहुँ साँचहुँ मोहिं पर जौ हर-गौरि-पसाउ,
तौ फुर होउ, जो कहउँ मैं, भाषा-भनिति-प्रभाउ।"

चतुर्थ पद से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके विचार से भाषा कविता की प्रभावोत्पादिका शक्ति को बढ़ा देती है। जैसे मैजिक लैंटर्न के द्वारा दिखाए हुए दृश्य दर्शकों के मनस्तल में व्याप्त हो जाते हैं, वैसे ही साधारणतः प्रतिदिन की बोल-चाल के शब्दों में व्यक्त किए हुए भावों की अपेक्षा कविता की वेष-भूषा पहनाए हुए भाव हृदय पर अधिक प्रभाव डालते हैं।

रामायण में तुलसीदास ने उपर्युक्त बात को अच्छी तरह से सिद्ध करके दिखा दिया है। भाव-सौष्ठव के साथ-साथ प्रत्येक पद में शब्द-माधुर्य तथा शब्दोपयुक्तता विद्यमान है, अर्थ और ध्वनि का मेल है। माधुर्य का प्रधान कारण प्रायः अल्प-प्राण वर्णों की योजना हुआ करती है। ध्यान-पूर्वक देखने से यह पता लगेगा कि रामायण में अल्प-प्राण वर्णों का आधिक्य है। यथा—

"सुकृत-पुंज मंजुल अलिमाला;
ज्ञान-बिराग-बिचार मराला।
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही;
चारु चित्त-भीती लिखि लीन्ही।
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा;
सुंदर खग-रव नाना रूपा।"

इन चौपाइयों के अंतिम स्वर दीर्घ हैं; जिनके कारण संपूर्ण पंक्ति पढ़ जाने के बाद पाठक को दीर्घोच्चारण के द्वारा यथेष्ट विश्राम मिलता और उससे माधुर्य बढ़ जाता है।

* ये गोस्वामीजी के अपने विचार नहीं हैं। जयदेवकृत प्रसन्नराघव-नाटक के श्लोकों का शब्दानुवाद हैं। —संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त प्रत्येक पद में अल्प-प्राण वर्णों के होने से श्रुति-माधुर्य का समावेश है। यह धारणा न कर लेनी चाहिए कि तुलसीदास की कविता में माधुर्य आदि गुण कोई स्वाधीन गुण हैं; जिनका अस्तित्व किसी विशेष ध्येय से निरपेक्ष है। प्रत्युत, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, तुलसीदासजी की विचार-कोटि में भाव अथवा अर्थ का विशेष महत्त्व है। केवल ध्वनि के लिये कोई स्थान नहीं। उनकी कविता में भाव और ध्वनि साथ-साथ रहते हैं; जैसे कि अँगरेज़ी के कवि टेनिसन की कविता में। उदाहरणार्थ जनक-वाटिका में विचरती हुई सीता की किंकिणी की ध्वनि का वर्णन करते हुए वह कहते हैं—

"कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि,
कहत लषन सन राम हृदय गुनि।"

इस चौपाई में 'कंकन', 'किंकिनि' तथा 'नूपुर'-शब्दों से आभूषणों की अव्यक्त ध्वनि निकलती और मंदगामिनी सीता का स्वरूप देख पड़ने लगता है।

उपर्युक्त पर्यालोचना से यह सारांश निकला कि तुलसीदासजी कविता के वर्णित विषय को भाषा से अधिक महत्त्व-पूर्ण मानते हैं; परंतु वर्णन-शैली तथा शब्द-योजना की ओर भी उनका ध्यान रहता है। पर जान-बूझकर वह उपयुक्त शब्दों की काट-छाँट नहीं करते; जिससे उनकी कविता अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होती।

अब यह देखना है कि उनके मत से कविता-कला का ध्येय क्या होना चाहिए? एक अँगरेज़ी-समालोचक के विचार में कविता का उद्देश्य हृदय को प्रफुल्लित करना तथा गौण रूप में शिक्षा देना है। काव्यप्रकाशकार मम्मट भी कहते हैं—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये;
सद्यःपरनिर्वृतये कांतासम्मिततयोपदेशयुजे।"

अर्थात् काव्य लिखने में कई ध्येय रहा करते हैं। कोई तो यश के लिये कविता करते हैं, कोई धन-वैभव के लिये। इसके अतिरिक्त काव्य से अन्य कई अर्थ संपादित होते हैं। उसके पढ़ने से लोग भूत-पूर्व तथा सामयिक व्यावहारिक व्यवस्था से अवगत होते हैं। कभी-कभी एक विशेष प्रकार की मंगल-सूचक कविता इसलिये की जाती है कि विघ्नों का नाश हो। परंतु कविता के दो प्रयोजन इन सबसे महत्तर हैं। एक तो, वह सदैव तत्काल आनंददायिनी होनी चाहिए। दूसरे, इसको पढ़ने से पाठक को अवश्य रूप में कोई-न-कोई शिक्षा मिलनी चाहिए। मम्मट के मतानुसार वह शिक्षा इस प्रकार से दी जानी चाहिए, जैसे स्त्री अपने प्रिय पति को समय-समय पर मुसकिराती हुई मृदु शब्दों में समझाती है। पूर्व-लिखित अँगरेज़ी-समालोचक भी यही कहता है कि आह्लाद तथा शिक्षा, ये ही कविता के दो मुख्य कार्य हैं।

खोज करने से पता लगता है कि तुलसीदासजी ने भी स्वयं इस अभिप्राय से रामायण लिखी थी कि संसार के गोरख-धंधे में फँसे मनुष्यों में भगवद्भक्ति का संचार हो। उनकी यह धारणा थी कि केवल प्रेमालापादि को छंदोबद्ध करने ही में कवि तथा कविता का श्रेय नहीं होता; बरन् किसी अलौकिक पुरुष के चरित-गान द्वारा वाचकों में सदुपदेश करने से ही वे कृतकृत्य हो सकते हैं। तभी तो वह कह बैठे कि—

"कीन्हे प्राकृत जन-गुन-गाना,
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।"

परंतु अपने उपदेश की सूचना तुलसीदासजी ने सहसा स्पष्ट शब्दों में, अन्य कतिपय कवियों की भाँति, नहीं दी। वर्ड्सवर्थ की तरह उनको यह कहने का साहस नहीं हुआ कि "I wish to be honoured either as a teacher or nothing."

यद्यपि यह सत्य है कि कहीं तो भक्ति-हीन पुरुषों की विडंबना और कहीं राम-भक्ति की प्रशंसा करके वह गौण रूप में उपदेश करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे स्थलों से अवतरण देने की इच्छा रहने पर भी स्थानाभाव हमें रोकता है। पाठक रामायण में अनायास ऐसे स्थल पा सकते हैं।

तुलसीदासजी कई प्रकार से पाठकों को शिक्षा देते हैं। कहीं तो राम के मुख से, कहीं अन्य पात्रों के मुख से राम-भक्ति का उपदेश दिलवाते हैं, और कहीं स्वयं सीधी आज्ञा देते हैं। परंतु प्रायः वेदों की दुहाई देकर ही राम-भक्ति का प्रचार करते हैं।

सारांश यह कि तुलसीदास भी अन्य कवियों की तरह पाठकों की नैतिक उन्नति का ध्यान रखते हुए कविता द्वारा सदुपदेश करते हैं। परंतु ऐसे ढंग से कि वे वारंवार उनकी कविता का परिशीलन और उसमें दिखाए हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धांतों का अनुसरण करें। वास्तव में, आधुनिक साहित्याचार्यों के मत में, यह गुण कवियों तथा अन्य कलाकारों में दुर्लभ-सा समझा जाता है कि उनकी रचना सर्वांग-सुंदर, मनोरम और साथ ही अदृश्य रूप से उपदेशवाहिनी हो। यह तो कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं, जो तुलसी की कविता सत् शिक्षा से युक्त है; क्योंकि वह एक अनन्य भक्त थे। उनके लिये यह स्वाभाविक ही था कि वह अपनी तल्लीनता के रस को दूसरों की नस-नस में व्याप्त करने का प्रयत्न करें। हाँ, यह अवश्य उल्लेखनीय है कि एक धार्मिक उपदेशक की भाँति उनमें दूसरों को मूड़ने का अणु-मात्र भी भाव न था। वह तो सदैव विनीत होकर दुष्टों तक को प्रणाम करने को उद्यत हैं। मगर इतना वह अवश्य करते हैं कि भले और बुरे, दोनों मार्ग सामने रख देते हैं। जहाँ दुष्टों की निंदा करते हैं, वहाँ सज्जनों की प्रशंसा भी। ऐसी दशा में विचार-शील पुरुष स्वयमेव सत् मार्ग पर पग रक्खेगा। विशेष कहने की आवश्यकता नहीं, केवल इसी से लोग समझ सकते हैं कि—

"जे यहि कथहिं सनेह-समेता,
कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता,
होइहहिं राम-चरन-अनुरागी,
कलि-मल-रहित, सुमंगल-भागी।"

तुलसीदास की कविता 'कांता-सम्मित' उपदेश से पूर्ण है; जिसके कारण उनकी कला अक्षुण्ण तथा अनवद्य है।

इसके अनंतर यह जानना आवश्यक है कि उनका सिद्धांत काव्य-कला के विषय में क्या है? आधुनिक समय के प्रसिद्ध रशियन साहित्य-मर्मज्ञ टालस्टाय के विचार में कला के दो स्वरूप होते हैं। एक प्रकार की कला वह होती है, जो सर्व-साधारण के लिये बोध-गम्य हो, जिसके तत्त्व को समझने के लिये विशेषज्ञता की आवश्यकता न हो। ऐसी कला किसी वर्ग-विशेष के हित के लिये नहीं, उच्च-नीच, धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष, सबके काम की होती है। दूसरे प्रकार की कला वह होती है, जो एक संकीर्ण, विशेषज्ञ समुदाय में आबद्ध रहे। केवल वे ही पुरुष, जिन्होंने उससे संबंध रखनेवाले समस्त विषयों का गंभीर अध्ययन किया है, उसके रहस्य को समझकर आनंद प्राप्त कर सकते हैं।

यह लोक-तंत्र का युग है। चारो ओर स्वतंत्रता का शंख बज रहा है। इसलिये यह स्वयंसिद्ध है कि समकालीन विद्वानों में प्रथम प्रकार की कला का समादर हो।

अँगरेज़ी के विद्वान् स्वर्गीय फ़्रेडरिक हैरिसन भी कला के विषय में कह गए हैं—

"A work of art should be intelligible to every one without an extract from a book or a reference to an anecdote"

अर्थात् वास्तविक कला वही है, जिसके समझने के लिये किसी पुस्तक के पढ़ने की आवश्यकता न पड़े, तथा जो पहेली की भाँति बूझनी न पड़े। तुलसीदासजी भी इसी प्रकार की काव्य-कला के पक्षपाती हैं। वर्ड्सवर्थ की भाँति वह भी उसी कविता को मान्य समझते हैं, जिससे मनुष्य-मात्र का कल्याण हो, और जिसे सब समझ सकें।

इस विषय में वह कहते हैं—

"कीरति, भनिति, भूति भलि सोई,
सुरसरि-सम सब कहँ हित होई।"

इस पंक्ति का द्वितीय पद तुलसीदासजी के कविता-विषयक सिद्धांतों का एक प्रकार से निचोड़ है। जैसे गंगा में स्नान करने से सब समय कुलीन तथा नीच, धनी तथा निर्धन, सबको पुण्य-लाभ होता है, वैसे ही, उनके मतानुसार, कविता ऐसी भाषा में तथा ऐसे विषय पर होनी चाहिए, जिससे साक्षर तथा निरक्षर, दोनों को आनंद प्राप्त हो।

वर्ड्सवर्थ भी अपनी कविता का उद्देश्य निरूपण करते हुए कह गए हैं—

"To console the afflicted; to add Sunshine to day-light, by making the happy happier, to teach the young and gracious of every age.........to become more actively and securely virtuous"

अर्थात् उनकी कविता इस अभिप्राय से लिखी गई थी कि उससे दुःखित-चित्तों का आश्वासन हो, मानव-जीवन और भी सुखमय बने, और बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सभी उसे पढ़कर धार्मिक बनें।

इन्हीं कारणों से वर्ड्सवर्थ ने अपनी कविता की भाषा अत्यंत सुबोध रक्खी थी। तुलसीदासजी ने भी इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार से रामायण की भाषा को यथाशक्ति प्रसाद-गुण-पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है; क्योंकि वह जानते थे कि उनके समय में, जन-साधारण में, संस्कृत का प्रचार अत्यंत न्यून था, और इसलिये हिंदू-धर्म के प्राचीन वीर-काव्यों तथा शास्त्रों को उन तक पहुँचाने को इस बात की आवश्यकता थी कि उनका सारांश स्थानिक जन-प्रयुक्त नागरिक भाषा में उनके सम्मुख रक्खा जाय।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकला कि तुलसीदासजी एक असाधारण साहित्यिक कलाकार थे। उन्होंने कतिपय विशद सिद्धांतों को सामने रखकर काव्य-रचना की थी। उनके कविता-विषयक विचार किसी भी अन्य-देशीय दिग्गज कवि के विचारों से टक्कर ले सकते हैं, एवं उनकी कविता अनिंद्य है। महाकवि भारवि का यह कथन उनकी कविता पर ठीक उतरता है कि—

"विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयंती हृदयानपि द्विषान्।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगंभीरपदा सरस्वती।"

भारवि की इस कसौटी पर तुलसीदास की कविता निर्दोष उतरती है। संभव है, भविष्य में काव्य-समालोचकों की रुखानी लगने से वह और भी चमक उठे।

रमाकांत त्रिपाठी

गुरु-गरिमा

(१)

गरज रहे घन घोर, घटा गहरी घिर आई;
दम-दम-भर पर दमक दामिनी ने दिखलाई।
होती वृष्टि अपार, राह में नदी बहाई;
बाहर रखना पैर हुआ दूभर दुखदाई।
इस कुसमय में जा रहा कौन निडर उस पार है?
किसने काम-कमान के शर की खाई मार है?

(२)

ठीक यही है बात, भीगता, कष्ट उठाता,
जीव-जंतु की भीति नहीं कुछ मन में लाता,
प्रेमी बना प्रमत्त पथिक द्रुत पद से जाता,
पहुँच प्रिया के द्वार किंवाड़ों को खटकाता।
"आप कौन हैं, इस समय कैसे आए, बोलिए?"
"दास आपका ही प्रिये! उठ झटपट पट खोलिए।"

(३)

परिचित स्वर सुन और जानकर निज हृदयेश्वर;
खोल दिया गृह-द्वार प्रिया ने चुपके-से; पर
हुआ बड़ा आश्चर्य, प्रश्न यों किया खीझ से,
"आए यह दुर्योग देख भी कौन रीझ से?
सुहावनी बरसात है, ऐसी काली रात है!
थर-थर कँपता गात है, कहो-कहो, क्या बात है?"

(४)

"प्रिये! बात कुछ नहीं, हुआ मतवाला हूँ मैं;
पिए हुए परिपूर्ण प्रेम का प्याला हूँ मैं।
जिससे घिरता चंद्र वही बस, हाला हूँ मैं;
वर-बाला की कृपा चाहनेवाला हूँ मैं।
पंच-बाण ने तानकर बाण प्राण व्याकुल किए;
हुआ उपस्थित कष्ट सह प्रिये! दर्शनों के लिये।"

(५)

"धन्य-धन्य हो नाथ, धन्य है प्रेम तुम्हारा;
पंच-बाण संतुष्ट हुआ है जिसके द्वारा।
है वह धन्य कमान, बाप तक जिसने मारा;
विकल प्राण कर दिए, चित्त पर चला न चारा।
धन्य, ज्ञान है आपका जो किंकर है वाम का;
बना लिया हा! प्रेम को केवल साधन काम का!

(६)

यदि सुबुद्धि को हृदय आपका कुछ अपनाता,
तो न प्रेम-परिणाम काम का काम कहाता।
जैसा मेरे साथ प्रेम का जोड़ा नाता;
वैसा ही जो कहीं राम में मन लग जाता।
तो भव के भ्रम-जाल की चाल न चलती इस तरह;
पंच-बाण के बाण की दाल न गलती इस तरह।

(७)

कोटि काम की कांति बनी है जिसकी चेरी,
अगणित रवि, शशि नित्य लगाते रहते फेरी।
ऐसी अनुपम मूर्ति, मुग्ध हो होती हेरी,
ठंडी होती आज सत्य ही छाती मेरी।
पाते परमानंद तुम, प्रभु के पावन प्रेम से;
बलि-बलि जाती आप पर मैं भी श्रद्धा-नेम से।"

(८)

खाकर इन उपदेश-पूर्ण वचनों की ठोकर;
चौंक पड़ा वह पथिक, चकित हो, भ्रम को खोकर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुले हृदय के नेत्र, मोह-निद्रा से सोकर ;
कहने लगा स-खेद वचन मर्माहत होकर—
"प्रिये ! तुम्हारे वाक्य-शर काम-बाण से हैं प्रबल ;
हृदय-विकारों का मरा जिनसे दुर्दमनीय दल ।

(९)

धन्य, देवि, तुम धन्य, धन्य है बुद्धि तुम्हारी !
ज्ञान धन्य यह, धन्य समझदारी यह भारी ।
तम का तम सब छुटा, सतोगुण-छटा पसारी ;
सच्ची गुरु हो तुम्हीं, मुझे दी शिक्षा प्यारी ।
'प्रभु से नाता जोड़ना शुद्ध प्रेम का तत्त्व है'
तुमसे इस सिद्धांत का समझा आज महत्त्व है ।

(१०)

राम-नाम ने अहा, दूर कर दिए सभी दुख;
एक बार ही आज प्रेम ने पलट दिया रुख ।
समा गया भरपूर हृदय में उस प्रभु का मुख ;
बस, अब यह लौ लगी कि कब पाऊँ सच्चा सुख ?
अब तो प्यारे राम के दर्शन पाना है मुझे;
पथ गुरु ने दिखला दिया, उस पर जाना है मुझे ।

(११)

हुआ ज्ञान का उदय, याद वह गाथा आई,
'चिंतामणि ने, जो कि एक गणिका कहलाई,
सूरदास को विमल कृष्ण की भक्ति सिखाई ;
आख़िर आशा फली, भक्ति से झाँकी पाई ।'
कैसे होगी व्यर्थ फिर, चेष्टा सारी काम की ?
मैं भी पाऊँगा सही झाँकी प्यारे राम की ।

(१२)

उऋन न हूँगा कभी, ज्ञान जो तुमसे पाया ;
मन से क्रमशः दूर हो गई ममता, माया ।
दो अब बिदा सहर्ष, हृदय हो गया पराया ;
प्यारे प्रभु पर आज हुई न्योछावर काया ।"

× × ×

"धन्य हुई मैं, जाइए, यदि सच्चा अनुराग है,
प्रभु-दर्शन में किंतु, इस दासी का भी भाग है ।

(१३)

है अवश्य परिताप, आप होते हैं न्यारे ;
किंतु, शुभाशा किए रहूँगी मैं मन मारे ।
है मुझको विश्वास, कि दर्शन देंगे प्यारे ;
सफल करेंगे काम रामजी सभी तुम्हारे ।"

× × ×

वाचक ! देखा, भक्ति-युत नव गुरु शक्ति-विकास को,
पहिचाना, क्या पथिक को—कविवर तुलसीदास को ?

(१४)

छोड़ा जिसने सदन, मदन का मान घटाया,
करके प्रबल प्रयत्न राम का दर्शन पाया,
रचकर राम-चरित्र काव्य-कौशल दिखलाया,
कथा-रूप में अमृत भावुकों पर बरसाया,
भारत-भर में पा रहा जो आदर-सत्कार है,
योरप भी है मानता 'रामायण में सार है ।'

(१५)

बालक, वनिता, वृद्ध, सभी को सम है प्यारी ;
गूढ़ बहुत है, किंतु सरलता भी है भारी ।
प्रकटित होतीं काव्य-कलाएँ जिससे सारी,
काम-धेनु के तुल्य शक्ति रखती है न्यारी ।
सुखद, विचित्र प्रभाव भी भूतल-भर में भर दिया,
भक्ति-भाव-मय चरित ने नारी का नर कर दिया ।

× × ×

(१६)

कविवर तुलसीदास साधु सच्चे थे जैसे,
प्रायः मिलते नहीं महात्मा जग में वैसे ।
आदरणीय चरित्र पूज्य हैं उनके ऐसे,
लिख सकती लेखनी भला, उनको फिर कैसे ?
मुग़लों के सम्राट भी जिनकी महिमा से डरे ;
ख़ूब कसौटी पर कसा, कुंदन ही निकले खरे ।

(१७)

हुए भक्ति में लीन, हृदय में राम रमे थे ;
कविता-कानन-मध्य अमर-तरु-तुल्य जमे थे ।
महावीर की कृपा-कोर से कष्ट कटे थे ;
अन्य उठे उत्पात घड़ी में घटे हटे थे ।

× × ×

श्रेय-प्राप्ति-अधिकारिणी है स्वामीजी की प्रिया ;
'गुरु की गरिमा' धन्य है जिसने कुछ का कुछ किया ।

द्वारकाप्रसाद गुप्त (रसिकेंद्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

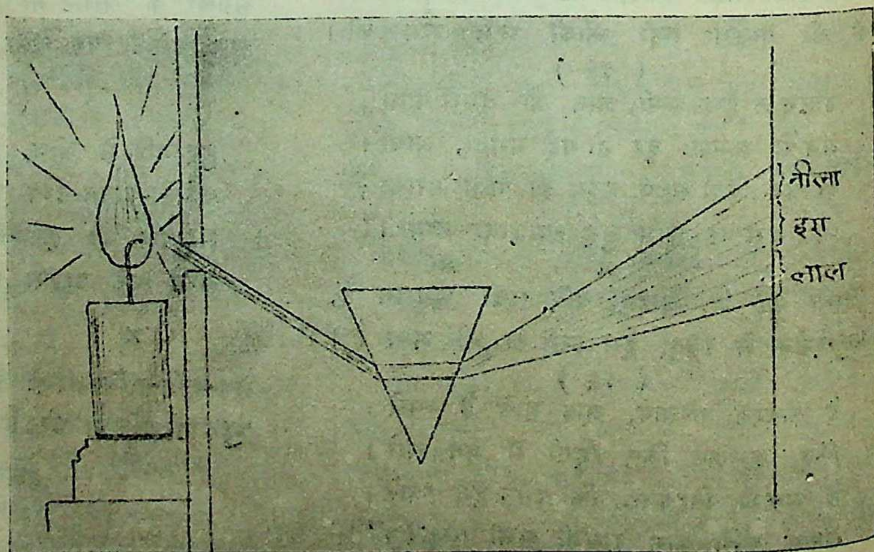
रंगीन छाया-चित्रण



जिन लोगों ने फ़ोटो-कैमरे के फ़ाकस-परदे पर पड़ती हुई मूर्ति को एक बार भी देखा है, उनको सदा स्मरण रहेगा कि यह चित्र प्रकृति के असली रंगों में रँगा होने के कारण कैसा सुहावना जान पड़ता है। साधारण फ़ोटो केवल एक रंग में उतरता है, और इसलिये उसका यह सौंदर्य मिट जाता है। आरंभ से ही वैज्ञानिक लोग इस चेष्टा में थे कि वे किसी ऐसी वस्तु का पता लगावें, जो भिन्न-भिन्न रंगों के प्रकाश के पड़ने से भिन्न-भिन्न रंग की हो जाय, और इस प्रकार वे रंगीन चित्र उसी सुगमता से बना सकें, जिस प्रकार साधारण फ़ोटो बनाए जाते हैं। इस तरफ़ तो उनको पूरी सफलता नहीं हुई, परंतु एक दूसरी ही रीति से रंगीन छाया-चित्रण में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम समय में महाशय जोली ने एक ही प्लेट के प्रयोग से रंगीन छाया-चित्र लेने की रीति निकाली। १६०७ में लूमियर कंपनी ने अपना आटो-क्रोम (Auto-chrome)-प्लेट बेचना शुरू किया; जिससे सर्व-साधारण रंगीन छाया-चित्र उतारने में समर्थ हुए। एप्रिल, सन् १६१३, में पैजेट (Paget)-रीति से रंगीन छाया-चित्र बनाने की सामग्री बाज़ार में बिकने लगी। आजकल भी आटोक्रोम-प्लेट बहुत चलते हैं; परंतु पैजेट-रीति कुछ सरल है, और इसी का उल्लेख यहाँ किया जायगा। रंगीन छाया-चित्र की रीति निकलने के पहले लोग कई बार ठगे भी गए थे। एक बार एक महाशय, जिनका नाम हिल था, बड़े कौशल से हाथ के रँगे फ़ोटोग्राफ़ों को असली रंगीन छाया-चित्र प्रमाणित करने में सफल हुए। उन्होंने यह कहकर कि हम सर्व-साधारण को रंगीन चित्र उतारने का परिचय देने के लिये एक बड़ी पुस्तक छापेंगे, बहुत-सा धन इकट्ठा किया, और फिर ला-पता हो गए!

रंगीन छाया-चित्रण के भेद को अच्छी तरह समझने के लिये प्रकाश के विषय में कुछ बातों का जानना आवश्यक है। इस कारण पहले हम यहाँ उन्हीं पर विचार करेंगे। इन दिनों सभी जानते हैं कि श्वेत प्रकाश कई भिन्न-भिन्न रंगों के प्रकाश का मिश्रण है। इसका प्रमाण किसी अँधेरी कोठरी के एक छिद्र से आती हुई प्रकाश-रश्मियों के मार्ग में



चित्र नं० १ प्रकाश को उसके अवयवों में तोड़ना

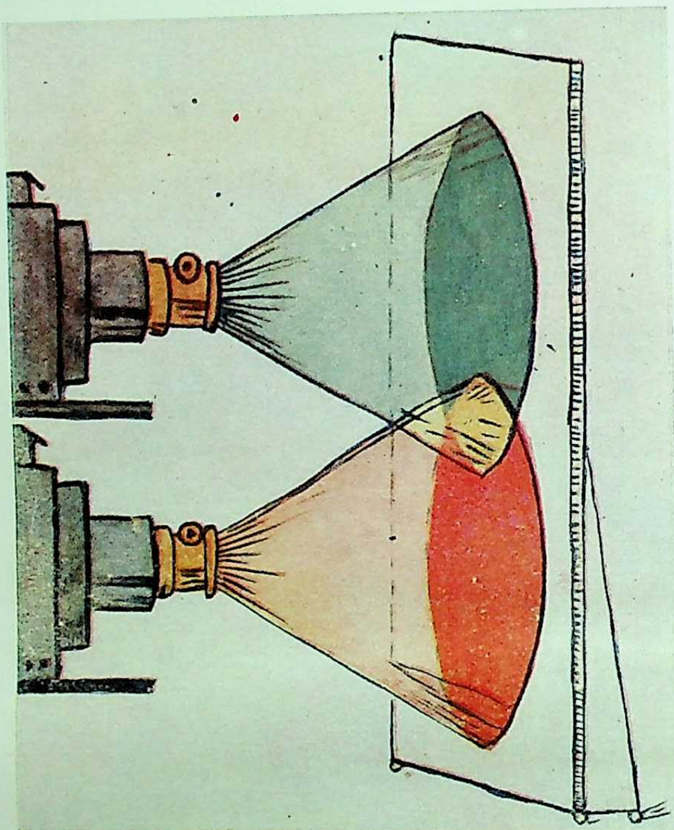
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

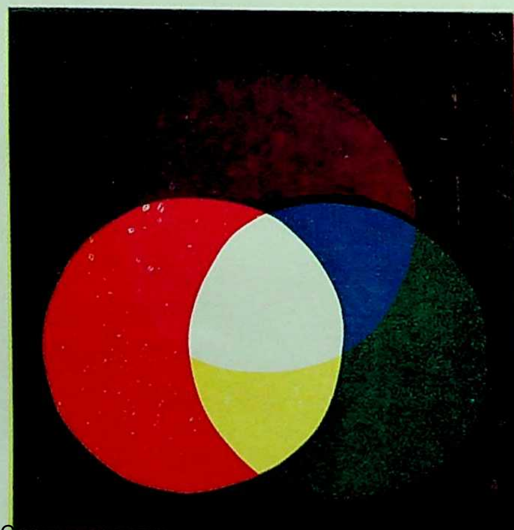
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र नं० २ श्वेत प्रकाश के भिन्न-भिन्न रंगवाले अवयव



चित्र नं० ३ नारंगी और नीले प्रकाशों से पीला प्रकाश बनता है



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

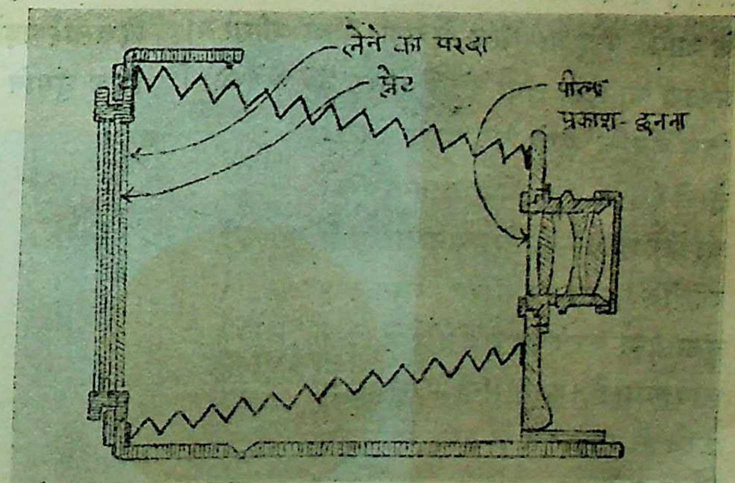
चित्र नं० ४ भिन्न-भिन्न रंगों के प्रकाश का योग

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्लौर की एक तिनपहलू क़लम (Prism) का व्यवधान करने से हम पा सकते हैं। हम देखेंगे कि श्वेत प्रकाश उन भिन्न-भिन्न रंगों में परिणत हो जाता है (चित्र नं० २ देखो), जिनसे यह बना हुआ होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि तीन रंग के प्रकाश मौलिक हैं, और उन्हीं के भिन्न-भिन्न मात्राओं में मिलने से प्रकृति में जो अगणित रंग दिखलाई देते हैं, वे सभी बन जाते हैं। इन मौलिक प्रकाशों का रंग है नारंगी, हरा और बैंगनी। नारंगी और हरे प्रकाश के योग से पीला प्रकाश बनता है। (चित्र नं० ३ देखो) किन रंगों के प्रकाशों से कौन-से रंग का प्रकाश बनता है, यह चित्र नं० ४ से स्पष्ट है। तीनों मौलिक रंगों के प्रकाश के मेल से सफ़ेद रोशनी और तीनों के अभाव से काला बनता है, यह भी चित्र नं० ४ से स्पष्ट है। प्रायः सभी ने देखा होगा कि पीला और नीला रंग मिलाने से हरा रंग बनता है (चित्र नं० ५ देखो)। और, कदाचित् आपने यह भी देखा हो कि नारंगी और हरा रंग मिलाने से पीला रंग नहीं बनता। यह अनुभव ऊपर लिखी बातों के विरुद्ध नहीं है। भिन्न-भिन्न रंगों (रँगनेवाले पदार्थों) और भिन्न-भिन्न रंग के प्रकाशों के संयोग से नए रंग या रंगीन प्रकाश के बनने के नियमों में अंतर है। रंगों (रँगनेवाले पदार्थों) के मिलने का नियम चित्र नं० ६ में दिखलाया गया है। इस नियम को वैज्ञानिक लोग यों समझाते हैं—

कोई पदार्थ पीला इसलिये दिखलाई देता है कि वह श्वेत प्रकाश के बैंगनी भाग को सोख लेता है, और नारंगी और हरे भागों को लौटा देता है। इन रंगों की किरणें मिली हुई आती हैं, इसलिये इनके प्रकाश से पीला प्रकाश बनता है। यही कारण है कि वह पदार्थ पीला दिखलाई देता है। इसी प्रकार नीला पदार्थ नारंगी रंग की किरणों को सोखता और बैंगनी और हरी किरणों को लौटाता है। इन दोनों प्रकार की किरणों के मेल से नीला प्रकाश बनता है, और इसलिये वह पदार्थ नीला दिखलाई पड़ता है। अब यदि पीले रंग की वस्तु पर (पार-दर्शक) नीला रंग चढ़ावें, तो पीले और नीले रंग बारी-बारी से श्वेत प्रकाश के बैंगनी और नारंगी रंग के भागों को सोख लेंगे। इसलिये केवल हरे भाग का विसर्जन होगा ; जिससे वह वस्तु अब हरी दिखलाई पड़ेगी।

पैंजेट की रीति से रंगीन छाया-चित्र बनाना तीन रंग के मौलिक प्रकाशों के न्यूनाधिक मात्रा में मिलने से सब प्रकार के रंगों के बन जाने पर निर्भर है। इस रीति के प्रत्येक चित्र के लिये एक (सब रंगे) पैनक्रोमैटिक (Panchromatic) स्लेट को एक तीन रंग के खिड़कियों से छपे पार-दर्शक परदे के पीछे और उसको छूते हुए



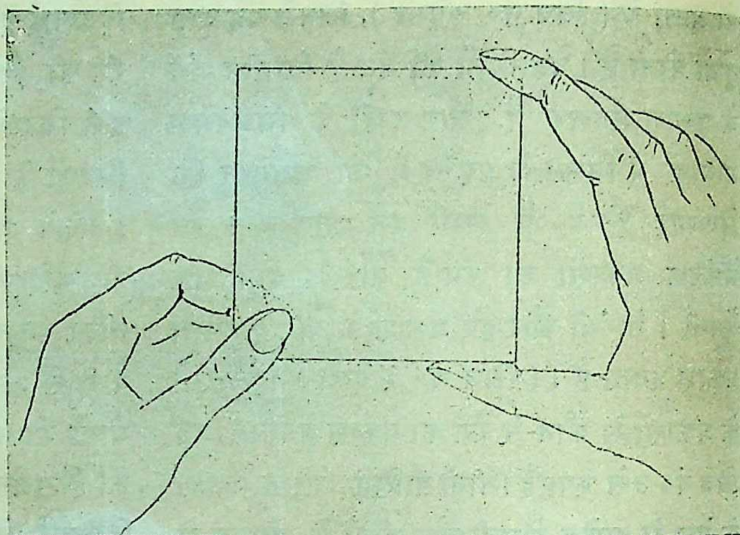
चित्र नं० ७ लेने के परदे और स्लेट की स्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

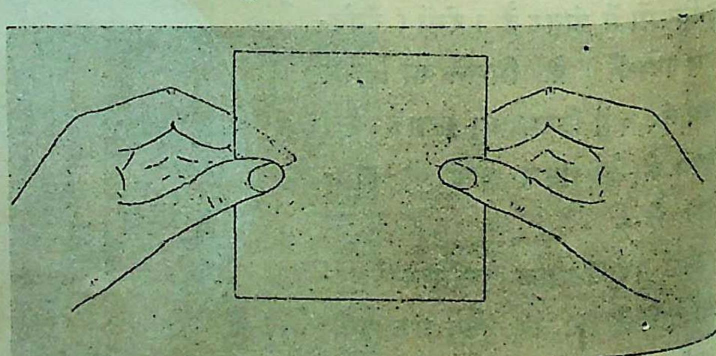
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखकर प्रकाशोन्मुख या उन्मीलित (एक्सपोज़) किया जाता है, और फिर उस प्लेट को साधारण रीति से विकासित (डेवेलप) और स्थायी कर धोया और सुखाया जाता है। इस नेगेटिव से एक लैंटर्न-स्लाइड या पार-दर्शक चित्र छापते हैं ; जिसको एक तीन रंग के बिंद-कियोंवाले "देखने के परदे" के साथ ठीक मिलान कर बाँध देने से रंगीन लैंटर्न स्लाइड या पार-दर्शक चित्र बन जाता है। इस रीति से रंगीन चित्र काग़ज़ पर नहीं छापा जा सकता। एक नेगेटिव से जितनी चाहें, उतनी स्लाइडें बनाई जा सकती हैं; परंतु प्रत्येक स्लाइड के लिये एक देखने का परदा चाहिए।

पैनक्रोमैटिक (सबरंगा) प्लेट साधारण प्लेटों से केवल इसी बात में भिन्न होता है कि उस पर लाल और हरे प्रकाश का भी प्रभाव पड़ता है। इतने पर भी इस पर इन प्रकाशों की अपेक्षा नीला प्रकाश अधिक प्रभाव डालता है। इसलिये ताल के आगे, पीछे या बीच में एक पीला शीशा या प्रकाश का छन्ना लगा देते हैं (चित्र नं० ७ देखो)। चित्र लेने के परदे पर बहुत छोटी-छोटी (१/३०० इंच की) तीन रंग की चौकोर बिंदकियाँ नियमानुसार छपी रहती हैं। इसका एक छोटा भाग १०० गुना बड़ा करके चित्र नं० ८ में दिखलाया गया है। सावधानी के साथ काम करने से एक लेने के परदे से सैकड़ों चित्र उतारे जा सकते हैं। देखनेवाला परदा भी इसी मेल का होता है। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, स्लाइड के छापने तक के काम में कुछ भी विशेषता नहीं है। स्लाइड को देखनेवाले परदे के साथ बाँधने का काम नया और बहुत रोचक है। स्लाइड को परदे के साथ (दोनों की मसालेदार तहें छूती रहें) चित्र नं० ९ में दिखलाई गई रीति से पकड़ते हैं, और दाहने हाथ की उँगलियों को मोड़ने से परदे के हिसाब से स्लाइड को इतना घुमाते हैं कि रंग के जो चारख़ाने पहले दिखलाई पड़ते हैं, वे बढ़ते-बढ़ते मिट जायँ। अधिक घुमाने से चारख़ाने फिर दिखलाई पड़ते हैं,



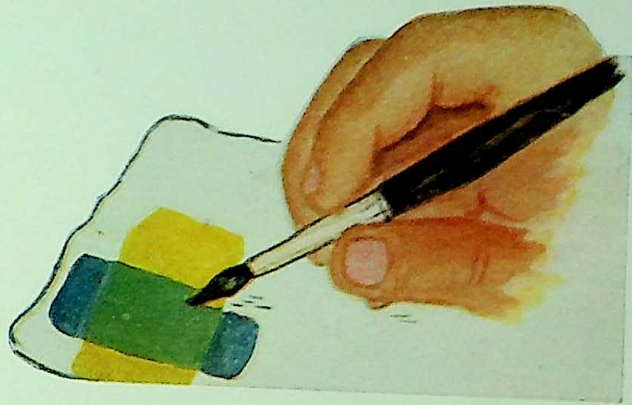
चित्र नं० ९ स्लाइड और देखने के परदे को ठीक लगाना
(पहली स्थिति)



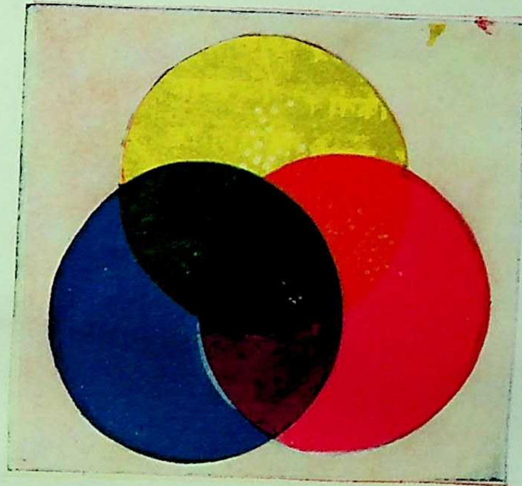
चित्र नं० १० स्लाइड और देखने के परदे को ठीक लगाना
(दूसरी स्थिति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

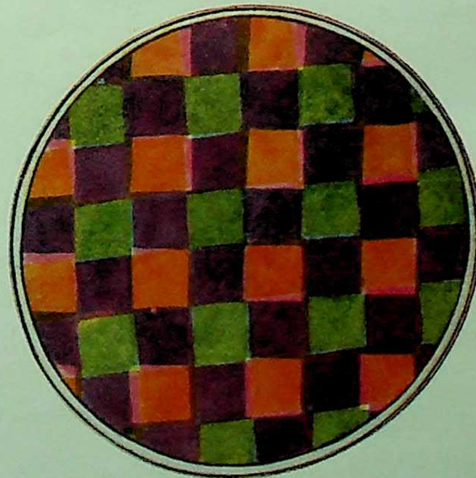
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चित्र नं० ५ पीले और नीले रंगों से हरा रंग बनता है



चित्र नं० ६ भिन्न-भिन्न रंगों का योग



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चित्र नं० ८ लैन का परदा × १००

N. K. Press, Lucknow.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

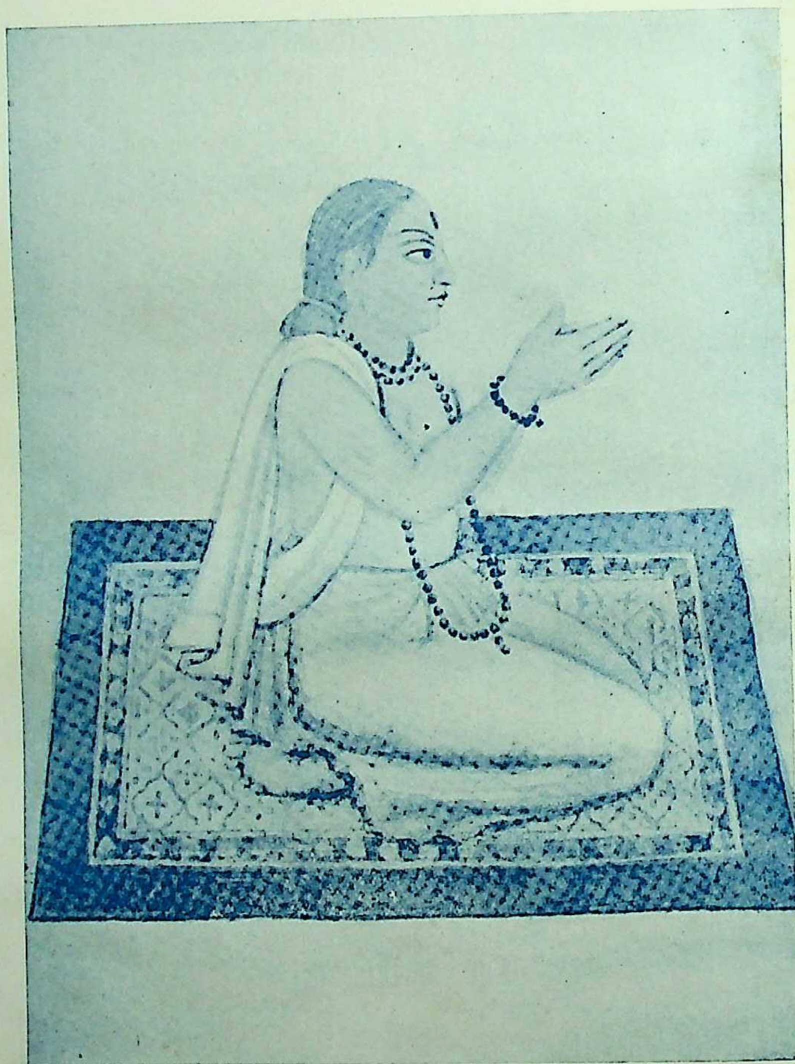
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी



गोस्वामी तुलसीदासजी

इष्ट-देव-वंदन करें, मूर्तिमान विश्वास,
भक्त-शिरोमणि हैं यही कविवर तुलसीदास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

N. K. Press, Lucknow.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये इस क्रिया में कुछ कठिनाई नहीं पड़ती। अब चित्र नं० १० में दिखलाई गई रीति से स्लाइड और परदे को पकड़कर परदे को इधर-उधर नाम-मात्र खिसकाने से चित्र ठीक रंगों में दिखलाई देगा। इसके बाद दोनों को क्लिप से दबाकर गोंद-लगे काग़ज़ से एकसाथ वैसे ही बाँध देते हैं, जैसे साधारण स्लाइड बाँधे जाते हैं।

इस प्रकार काम करने से रंगीन स्लाइड क्यों बनता है, यह यों समझाया जा सकता है। मान लीजिए कि हरे पत्ते और पीले फूल की फ़ोटो ली गई है। पीला प्रकाश नारंगी और हरे प्रकाशों से बनता है। इसलिये पैनक्रोमैटिक-प्लेट पर फूल की मूर्ति जहाँ पड़ती है, वहाँ लेनेवाले परदे की नारंगी और हरी बिंदकियों को पार करके आए हुए प्रकाश के कारण इन बिंदकियों से सटे भागों में ऐसा परिवर्तन हो जायगा कि डेवेलप करने पर ये भाग काले हो जायँगे। पीले प्रकाश में बैंगनी अंश नहीं रहता। इसलिये इस रंग की बिंदकियों के पीछे (सब-रंग) पैनक्रोमैटिक-प्लेट पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। लैंटर्न स्लाइड में नेगेटिव की काली बिंदकियों की जगह स्वच्छ बिंदकियाँ बन जाती हैं। देखने के परदे के साथ बाँधने पर इन बिंदकियों के सामने फिर नारंगी और हरी बिंदकियाँ पड़ेंगी। इसी प्रकार बैंगनी रंग की बिंदकियों के पीछे काली बिंदकियाँ पड़ेंगी; जो प्रकाश को रोक देंगी। फल यह होगा कि स्लाइड में फूल के स्थान में नारंगी और हरी रंग की ही बिंदकियों से प्रकाश आ सकेगा। इन बिंदकियों के बहुत समीप रहने के कारण हमारी आँखों को इन दो रंगों के प्रकाश मिले दिखलाई देंगे। परंतु, नारंगी और हरे प्रकाश के मिलने से पीला प्रकाश बनता है, इसलिये फूल पीला और पत्तियाँ हरी दिखलाई पड़ेंगी। कारण, यहाँ हरी बिंदकियों के पीछे स्वच्छ बिंदकी तथा नारंगी और बैंगनी बिंदकियों के पीछे काली बिंदकियाँ पड़ेंगी। इसी प्रकार और सब रंग भी बन जाते हैं। स्लाइड की काली बिंदकियाँ यदि पूर्ण रूप से काली न होंगी, तो उनके पार भी कुछ प्रकाश जा सकेगा। इसलिये अगणित रंग और प्रत्येक रंग की सब मात्राओं की घनताएँ, सभी शुद्ध रूप में बन सकेंगी।

गोरखप्रसाद

तुलसी-वंदना

तुमको बार-बार प्रणाम,

भक्ति के भंडार हो तुम, ज्ञान के ध्रुव धाम।
नाम-मात्र प्रयत्न से निकला बड़ा परिणाम;
अंत को जिसमें कि पाया एक कोरा नाम!
लड़ रहे हैं आज भी तो ख़ूब रावण-राम :
कर्म-योग व स्वार्थ का है नित्य लड़ना काम।
प्रेम की थी चरम सीमा वह बिचारी वाम,
था तुम्हें जिसने सिखाया दिव्य प्रेम अकाम।
कालिमा जब धुल गई, तब रँग गया मन श्याम,
ज्ञान के नभ में कहीं से आ गया घनश्याम!
भक्ति का वह रस पिलाया आपने बे-दाम,
रोम-रोम पुलक उठा, मिल गया बिछुड़ा राम।

बदरीनाथ भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



[हमीर---तीव्रा मात्रा सात]

शब्दकार—गोस्वामी तुलसीदास

वंदना

१. श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन, हरण भव-भय-दारुणं ;
२. नव कंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद-कंजारुणं ।
३. कंदर्प अगणित अमित छबि, नव-नील-नीरद-सुंदरं ;
४. पट पीत मानो तड़ित-रुचि, शुचि, नौमि जनक-सुता-बरं ।
३. भजु दीन-बंधु, दिनेश, दानव-दैत्य-बंश-निकंदनं ;
४. रघुनंद, आनँद-कंद, कोशल-चंद, दशरथ-नंदनं ।
३. शिर मुकुट, कुंडल. तिलक चारु, उदार अंग-बिभूषणं ;
४. आजानु-भुज, शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खर-दूषणं ।
३. इमि बदत 'तुलसीदास' शंकर-शेष मुनि-मन-रंजनं ;
४. मम हृदय-कंज निबास करु, कामादि-खल-दल-गंजनं ।

	३		×			२		३		×			२	
१	सां	—	ध	—	प	ध	—	ग	म	ध	—	रीं	सां	नी
	श्री	—	रा	—	म	चं	—	द्र	कृ	पा	—	लु	भ	जु
	ध	प	म̍	प	ध	नी	ध	म̍	प	ग	—	म	ध	—
	म	न	ह	र	ण	भ	व	भ	य	दा	—	रु	णं	—
२	ग	म	नी	ध	ध	नी	ध	नी	रीं	सां	नी	ध	म̍	प
	न	व	कं	—	ज	लो	—	च	न	कं	—	ज	मु	ख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	म	प	ग	म	री	ग	म	ध	प	ग	म	री	सा	—
	क	र	कं	—	ज	प	द	कं	—	जा	—	रु	णं	—
३	म	—	नी	ध	ध	नी	ध	नी	रीं	सां	नी	ध	नी	सां
	कं	—	द	—	र्प	अ	ग	णि	त	अ	मि	त	छ	वि
	नी	सां	नी	—	ध	नी	ध	नी	रीं	सां	नी	सां	नी	ध
	न	व	नी	—	ल	नी	—	र	द	सुं	द	—	रं	—
४	म	प	गं	मं	रीं	ध	—	नी	रीं	सां	नी	ध	नी	ध
	प	ट	पी	—	त	मा	—	नो	—	त	ड़ि	त	रु	चि
	म	प	ग	म	री	ग	म	ध	प	ग	म	री	सा	—
	शु	चि	नौ	—	मि	ज	न	क	सु	ता	—	व	रं	—

नोट—आगे की पंक्तियाँ भी इसी प्रकार---३, ४ की तरह—बजाई जायँगी ।

जनता के हितार्थ

यदि आप हर प्रकार जीवन से निराश हो चुके हों, तो भी ईश्वर पर भरोसा कर श्रीयुत **डॉक्टर डी० डी० एस० टंडन** से यथावत् चिकित्सा कराकर अवश्य लाभ उठावें । आप वर्षों के अनुभवी, चतुर और विख्यात होमियोपैथिक डॉक्टर हैं । आपने स्त्रियों, बालकों और पुराने रोगों की चिकित्सा करने में विशेष योग्यता प्राप्त की है, यहाँ तक कि आपकी चिकित्सा से बाँझ स्त्रियों को भी लाभ पहुँचा है । आपका मुख्य उद्देश्य जनता को दुःखों से छुड़ाना ही है । आपने बहुत-से एलोपैथिक डॉक्टरों, नवाबों, राजाओं, ताल्लुक़ेदारों, रईसों, ज़मींदारों, वकीलों, बड़े लाट साहब की कौंसिल के मेंबरों तथा देसी और अँगरेज़ी सरकारी ऑफ़िसरों इत्यादि के परिवारों में सहस्रों ऐसे जटिल रोगियों को स्वस्थ कर पुनर्जन्म दिया है, जिनको इँगलिस्तान, बंबई, कलकत्ता, लाहौर और लखनऊ के बड़े चतुर और विख्यात डॉक्टर, वैद्य और हकीम हताश हो, असाध्य कहकर, त्याग चुके थे। इनमें से अधिकांश रोगी ऐसे थे जिनके लिये चीड़ फाड़ का होना अनिवार्यतः आवश्यक बतलाया गया था । आपने उन्हें केवल औषधि खिलाकर ही भला-चंगा कर दिया !

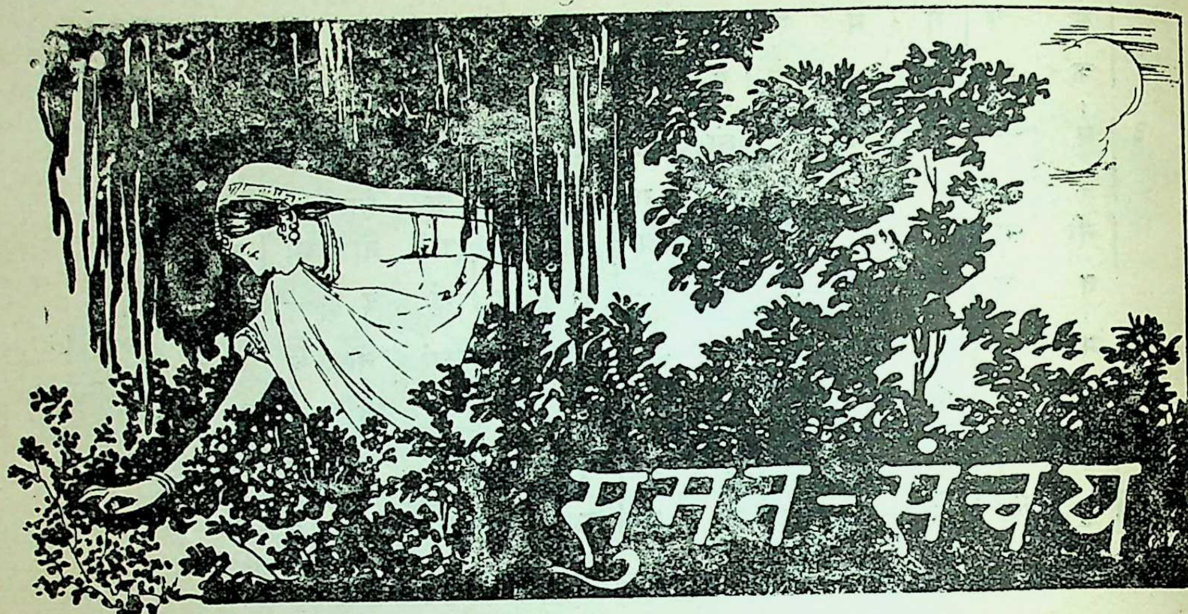
इन सज्जनों के प्रशंसा-पत्र पढ़ने से पाठकों को डॉक्टर साहब की योग्यता का भली भाँति परिचय मिल जायगा । यहाँ विशेष और मिथ्या प्रशंसा न कर यथार्थ का ही उल्लेख किया गया है । कुछ पत्र पाठकों के विश्वास के लिये 'होमियोपैथिक की विजय'-नामक पुस्तक में दिए गए हैं, जो मँगाने पर विना मूल्य भेजी जाती है । आवश्यकता के लिये निम्न-लिखित पूरा नाम और पता स्मरण रखना चाहिए ।

पता—**डॉक्टर देवीदयालसिंह टंडन**

नं० २८, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. रामचरित-मानस में अरबी-फ़ारसी के शब्द



मग्र भारत में हिंदू-समाज का कोई बिरला ही पुरुष होगा, जिसे तुलसी-कृत रामायण का थोड़ा-बहुत परिचय न हो। चाहे पढ़कर हो या सुनकर, किसी-न-किसी भाँति हरएक मनुष्य उसके विषय में कुछ-न-कुछ जानता अवश्य है।

यों तो रामायण का प्रभाव सारे भारतवर्ष में है, परंतु उत्तर-भारत में उड़ीसा, बिहार, संयुक्त-प्रांत, पंजाब इत्यादि प्रांत ऐसे हैं, जिनकी भाषा या तो हिंदी है या हिंदी से मिलती-जुलती। कम-से-कम इन प्रांतों में अगर कोई हिंदी-भाषा-भाषी जाय, तो उसे अपने भाव दूसरों पर व्यक्त करने में कठिनाई न होगी। अतः यहाँ तो तुलसी-कृत रामायण का पूर्ण राज्य समझिए। भारत के अन्य-भाषा-भाषी—आसामी, बंगाली, मराठे, गुजराती, दक्षिणी इत्यादि—भी रामायण को बड़ी महत्त्व-पूर्ण पुस्तक समझते हैं। इसका प्रमाण यही है कि बहुतेरे नित्य श्रद्धा से इसका पाठ करते हैं। कुछ ने तो अपनी मातृ-भाषा में इसका अनुवाद भी कर डाला है।

रामायण का प्रचार दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। केवल हिंदी ही में इसके सैकड़ों संस्करण हो चुके हैं। फिर भी पुस्तक-विक्रेता लोग नित्य नए संस्करण छपाते जाते हैं। वे इस व्यवसाय से लाभ भी ख़ूब उठाते हैं। अँगरेज़ी तथा जर्मन-भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो चुका है।

अगले पृष्ठ में दिए हुए भारत के मान-चित्र से पाठकों को रामायण-प्रचार-संबंधी ऊपर के वाक्यों का महत्त्व समझने में सरलता होगी।

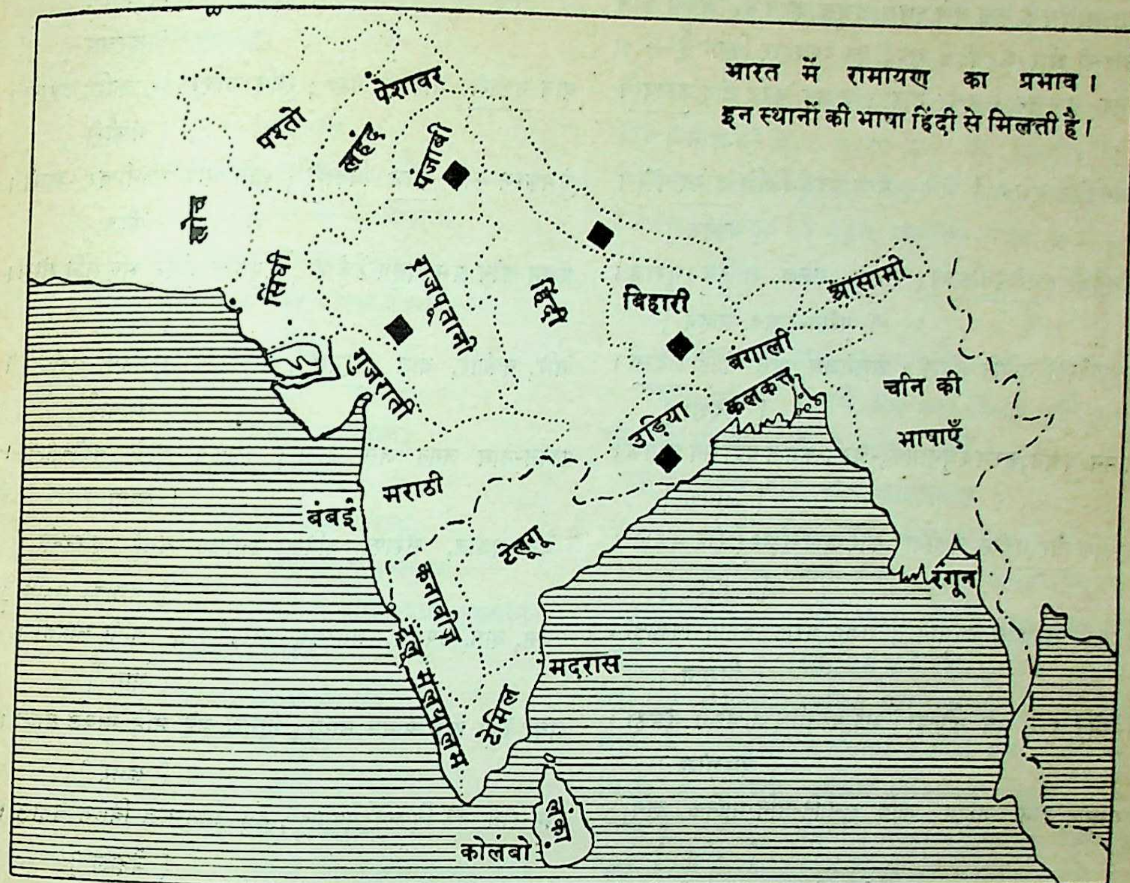
गोसाईंजी से पूर्व तथा पश्चात् भाषा के बहुत-से कवि हो गए हैं। कविता की दृष्टि से बहुतों के ग्रंथ तुलसीदासजी के ग्रंथों की टक्कर के हो सकते हैं। किंतु राम-चरित-मानस के समान सर्व-प्रिय तथा विख्यात ग्रंथ और किसी की लेखनी से नहीं निकला। कारण, उसमें कई विशेषताएँ हैं। यथा—

सर्व-प्रिय होने का सबसे बड़ा कारण तो यह है कि तुलसीदासजी ने दादू, कबीर आदि की तरह किसी भिन्न मत का प्रचार नहीं किया। अतः भारत के किसी भी धार्मिक विचार का मनुष्य क्यों न हो, उनके सिखलाए मार्ग का अनुसरण अवश्य करेगा।

उन्होंने प्राचीन ऋषि-ग्रंथों के अनुसार धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों का, अपनी सरल तथा भाव-पूर्ण भाषा में, इस सुंदरता से वर्णन किया है कि किसी भी मत के सिद्धांत से विरोध नहीं पड़ता, और सभी उसका सम्मान करते हैं। दूसरे हिंदी-ग्रंथों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देश-भेद के कारण भिन्न-भिन्न भाषाओं का व्यवहार किया गया है। सोलहवीं शताब्दी में बड़े-बड़े प्रतिभा-शाली कवियों का जन्म हुआ, और व्रज-भाषा में कविता बना, गद्य भी लिखा जाने लगा। व्रज-भाषा की इतनी प्रबलता होने पर भी तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस की रचना कर अवधी और व्रज-भाषा के सम्मिश्रण से एक नवीन भाषा की सृष्टि की। उन्होंने किसी विशेष भाषा का बंधन नहीं रक्खा। जहाँ तक बन सका, केवल भावों को मनोहरता से प्रकट करने तथा ग्रंथ को सरल और रोचक बनाने का प्रयत्न किया।

पुस्तक की सरलता के विषय में स्वयं उनके ये शब्द हैं—

सरल कवित, कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान ;

* * *

गिरा ग्राम्य सिय-राम-जस, गावहिं, सुनहिं सुजान ;

जिस समय रामचरित-मानस की रचना हुई थी, उस समय मुग़ल-सम्राट् शाहजहाँ भारत के सिंहासन को सुशोभित कर रहे थे। यह मुग़लों का मध्याह्न-काल था। इस समय फ़ारसी का अच्छा प्रचार था। सब शाही काम फ़ारसी ही में होते थे। जैसे आजकल सर्व-साधारण की बोल-चाल में अँगरेज़ी के शब्द व्यवहृत होते हैं, वैसे ही उस समय फ़ारसी का व्यवहार था। फ़ारसी की वह छाप हमारी भाषा पर अब तक मौजूद है।

तुलसीदास की भाषा न तो शुद्ध अवधी है और न व्रज-भाषा। उन्होंने दोनों ही भाषाओं का उपयोग किया है। यहाँ तक कि उन्होंने ग्रंथ को सरल बनाने के लिये उस समय की सर्व-साधारण की बोल-चाल में आनेवाले फ़ारसी, अरबी तथा ग्राम्य शब्दों का भी उपयोग किया है। इन शब्दों की मिलावट से रामायण में किसी प्रकार की क्लिष्टता न उत्पन्न होकर एक नवीन प्रकार की सुंदरता आ गई है; जिससे ग्रंथकार की प्रतिभा तथा बुद्धि की प्रखरता का ही प्रमाण मिलता है।

अब हम यहाँ पर अपने पाठकों के मनोरंजनार्थ राम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित-मानस के कुछ ऐसे स्थल उद्धृत करते हैं, जिनमें कवि ने फ़ारसी और अरबी के शब्दों का व्यवहार किया है—

जलचर, थलचर, नभचर नाना ; जे जड़ चेतन जीव जहाना ।
[जहान]

कबित-बिबेक एक नहिं मोरे ; सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे ।
[काग़ज़]

गई बहोरि गरीब-निवाजू ; सरल, सबल, साहिब रघुराजू ।
[ग़रीब-नेवाज़, साहब]

राम सुकीरति भनिति भदेसा ; असमंजस अस मोहिं अँदेसा ।
[अंदेशा]

पुनि मन, बचन, करम रघुनायक,-चरन-कमल बंदौं सब लायक ।
[लायक़]

तकि-तकि तीर महीस चलावा ; करि छल सुअर सरीर बचावा ।
[तीर]

तुम कहँ सर्बकाल कल्याना ; सजहु बरात बजाय निसाना ।
[निशान]

प्रेम-समेत राव सब लीन्हा ; भइ बकसीस जाचकन दीन्हा ।
[बख़शिश]

जगमगत जीन जड़ाव जोति सुमोति-मनि-मानिक लगे,
[ज़ीन]

किंकिनि ललाम लगाम ललित बिलोकि सुर, नर, मुनि ठगे ।
[लगाम]

बना बजारु, न जाय बखाना ; तोरन, केतु, पताक, बिताना ।
[बाज़ार]

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू ; भयउ बिकल बड़ बनिक-समाजू ।
[जहाज़]

देइ पान पूजे जनक, दसरथ सहित समाज ;
जनवासे गवने मुदित सकल भूप सिरताज ।
[सरताज]

जेहि राखहिं रहु घर रखवारी ; सो जानै जनु गरदन मारी ।
[गर्दन]

सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाय ;
[रुख़]

गवने भरत पयादेहि पाए ; कोतल संग जाहिं डोरियाए ।
[प्यादा, कोतल]

नतरु प्रजा, परिजन, परिवारू, हमहिं सहित सब होत खुआरू ।
[ख़्वार]

गयउँ सभा-दरबार तब, सुमिरि राम-पद-कंज ;
[दरबार]

बाज नफीरी भेरि अपारा ; सुनि कादर उर जाहिं दरारा ।
[नफ़ीरी]

कुंभकरन कपि फौज बिड़ारी ; सुनि धाए रजनीचर भारी ।
[फ़ौज]

प्रथम कीन प्रभु धनुष-टँकोरा ; रिपुदल बधिर भए सुनि शोरा ।
[शोर]

भेरि, नफीरि, बाज सहनाई ; मारु-राग सुभटन सुखदाई ।
[शहनाई]

रावन-नाम जगत जस जाना ; लोकप जाके बंदी-खाना ।
[ख़ाना]

बैठे बजाज, सराफ, बनिक अनेक मनहुँ कुबेर-से ;
[बज़ाज़, सर्राफ़]

बन, बाग, उपवन, बाटिका, सर, कूप, बापी सोहहीं ;
[बाग़]

खबर लेन हम आयउ नाथा ; तिनक कहे महिं नायउ माथा ।
[ख़बर]

राम-राम रट बिकल भुआलू ; जनु बिन पंख बिहंग बेहालू ।
[बेहाल]

जो कह झूठ मसखरी जाना ; कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना ।
[मसख़री]

कबि-बृंद उदार दुनी न सुनी ; गुन दूःख न भ्रात न कोपि गुनी ।
[दुनिया]

लघु जीवन बतसर पंचदसा ; कलपांत न नास गुमान असा ।
[गुमान]

आजु परेउ सठ काल-हवाले ; परेउ कठिन रावन के पाले ।
[हवाले]

तुलसीदासजी के हृदय में भक्ति थी, जी में तरंग थी, इसी से भाषा उनके मार्ग में रुकावट न डाल सकी । उन्होंने कविता उस भाषा में की, जिसमें वह स्वयं सोचते थे । इसी से उनकी कविता कृत्रिम नहीं न होकर प्राकृतिक स्रोत-सी प्रवाहित होती है । उन्होंने दिखला दिया कि शुद्ध ब्रज-भाषा का आश्रय लिए बिना भी मधुर कविता हो सकती है ।

श्रीधर-नारायणदास मेहता

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. तुलसी-वंदना

सुकवि-सुधाकर,
पूर्ण महानुभाव,
महात्मन्,
भक्तमाल के सुमेरु,
श्रीमानों के भी श्रीमान्,
सुना विनय-पत्रिका
राम को रिझानेवाले,
विज्ञ,
साधु शिरोमणि,
सहृदय-जीवन-प्रान,
विज्ञान-दीपक जगा
आंतरिक तमोनाशक,
निगमागम-सम्मत
गाता राम-गुणगान—
मनसा वाचा कर्मणा ;
तुलसी की माला फेर
वंदे रत्न सदा
जान
भक्त-रूप भगवान ।

श्रीगिरिधर शर्मा

× × ×

३. नेता के विषय में तुलसीदासजी की सम्मति

हर काम की सिद्धि के लिये नेता और उसके अनुयायियों की आवश्यकता होती है । अनुयायियों को अपने नेता को किस प्रकार मानना चाहिए, और नेता को अपने अनुयायियों के हित की किस प्रकार रक्षा करनी चाहिए, इस भाव को तुलसीदासजी ने बड़ी मार्मिकता के साथ निम्न-लिखित दो दोहों में व्यक्त किया है । जो लोग समाज या देश-हित के काम में नेता या अनुयायी होना चाहते हैं, उन्हें इन दोहों के भावों पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

मुखिया मुख-सो चाहिए, खान-पान को एक ;
पालै-पोषै सकल अँग, तुलसी सहित-बिबेक ।
सेवक कर-पद-नयन-से, मुख-सो साहिब होय ;
तुलसी प्रीति कि रीति लखि, सुकबि सराहैं सोय ।

इन दोहों में तुलसीदासजी लिखते हैं कि जो नेतागण मुख के समान विना पक्षपात के अपने हाथ, पाँव, नाक, कान आदि अंगों के तुल्य अनुयायियों के हित की रक्षा करते हैं, और उसी प्रकार जो उनके अनुयायी हाथ, पाँव आदि के समान अपने नेता की आज्ञा का निष्कपट-भाव से प्रेम के साथ पालन करते हैं, उनकी विवेकी पंडितगण प्रशंसा करते हैं । नेता और अनुयायी, दोनों के लिये निस्संदेह यह बहुत उपयोगी उपदेश है ।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

× × ×

४. गुसाईं तुलसीदासजी की रचना में शब्दों का परिवर्तन

'विनय-पत्रिका' में, 'मैं केहि कहौं बिपति अति भारी'-गीत में, एक स्थल में, ये पंक्तियाँ भी हैं—

(१) तम, मोह, लोभ, अहँकारा ;
मद, क्रोध बोध रिपु मारा ।

(पृष्ठ २२३, विनय-पत्रिका सटीक, नवलकिशोर-प्रेस)

गुसाईंजी के हाथ की लिखी प्रति में जब तक यही 'अहँकारा' पाठ न मिले, तब तक इसे शुद्ध-पाठ मानना, मेरी क्षुद्र सम्मति में, उचित नहीं प्रतीत होता । जिस भाषा में गुसाईंजी ने 'विनय-पत्रिका' और 'रामायण' लिखी है, उसमें 'हंकार'-शब्द का प्रचलित रहना संभव है । यद्यपि रामायण तथा पत्रिका की भाषा में किसी स्थल-विशेष की बोली ही का आधिपत्य नहीं है, तथापि वह कही 'अवधी' ही जायगी । अवधी-बोली की दो प्रधान शाखाएँ हैं—बघेली या बघेलखंडी, और छत्तीसगढ़ी । छत्तीसगढ़ी में अब तक 'हंकार'-शब्द 'अहंकार' के बदले में प्रचलित है ।

अहंकार छत्तीसगढ़ी में 'हंकार' हो जाता है । उसी प्रकार छत्तीसगढ़ी में अड़ूसा का रूसा तथा अगस्ति (वृक्ष-विशेष) का गस्ती होकर उनमें 'अ' का लोप हो जाता है । मेरे अनुमान से ऊपर की प्रथम पंक्ति का शुद्ध पाठ है—

तम, मोह, लोभ, हंकारा ।

विनय-पत्रिका में एक पंक्ति यह है—

मोह-दशमौलि, तद्-भ्रात हंकार पाकारिजित काम-बिश्रामहारी ।

(पृष्ठ १०६)

इसमें 'हंकार'-शब्द ही प्रयोग में आया है । पृष्ठ ११४ के "प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर महा" में 'हंकार' रखने से ही छंद का प्रवाह ठीक होगा * ।

* पाठक ऐसा न समझें कि गुसाईंजी ने अपनी रचना में 'अहंकार'-शब्द का प्रयोग ही नहीं किया । ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) राम-भक्ति जहँ सुरसरि-धारा ;
सरस्वति ब्रह्म-बिचार-प्रचारा ।

'सरस्वती' का शुद्ध उच्चारण, अवधी-बोली के अनुसार, 'सरसती' है । मेरे विचार में गुसाईंजी ने 'सरस्वति' के बदले 'सरसति' ही का प्रयोग किया होगा । अन्यथा 'यति-भंग'-दोष की संभावना है ।

(३) सादर सब कहँ राम-गुरु, पठए भरि-भरि भार ।
पूजि पितर, सुर, गुरु, अतिथि, लगे करन **फलहार** ।
(अयोध्या-कांड, पृष्ठ ५०२)

यह 'फलहार'-शब्द संस्कृत 'फलाहार' का अपभ्रंश-रूप है । अवधी-बोली में स्थल-विशेष पर 'फल' का 'फर' हो जाता है, और, 'आहार' का अहार । इसके अनुसार 'फर-अहार' से 'फरहार' या 'फरहार' रूप बनता है । छत्तीसगढ़ी में लोग 'एकादशी' के उपवास में 'फरहार' किया करते हैं । मेरी राय में, उस सामासिक शब्द का शुद्ध पाठ 'फरहार' है ।

(४) उपरोहित **जेवनार** बनाई ;
छ रस चारि बिधि, जस श्रुति गाई ।
(पृष्ठ १४२)
बन, सागर, नद, नदी, तलावा ;
हिम-गिरि सब कहँ **नेवत** पठावा ।
(पृष्ठ ८९)

ऊपर के 'जेवनार' और 'नेवत'-शब्दों के 'जे' और 'ने' में दो मात्राएँ मानने पर १७ मात्राएँ प्रति चरण में होंगी, और चौपाई शुद्धता से पढ़ी भी नहीं जा सकेगी । अवधी में कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनके ए, ऐ, ओ, औ के एक-एक ह्रस्व रूप भी हैं, और उनकी ह्रस्वता बोल-चाल में स्पष्ट प्रकट होती है । सर ग्रियर्सन तथा डॉक्टर हार्नली आदि प्रसिद्ध वैयाकरणों और भाषा-तत्त्वज्ञों ने ऐसे ह्रस्व उच्चारित शब्दों के लिये नूतन अक्षर और सांकेतिक चिह्न निर्मित किए हैं । मैं सोचता हूँ, कम-से-कम अवधी

विचार करना ठीक नहीं । 'अहंकार' शुद्ध संस्कृत-शब्द है । उसको उसी रूप में गुसाईंजी ने स्थान दिया है । यथा—

अहंकार जो दुखद डमरुआ ;
दंभ, कपट, मद, मान-नहरुआ ।
(उत्तर-कांड)

पर जहाँ उन्होंने उसे 'हंकार' लिखा हो, वहाँ उसका 'अहँकार' पाठ रखना संगत नहीं जान पड़ता ।

के दो प्रसिद्ध ग्रंथों—जायसी-कृत 'पद्मावत' तथा गुसाईं-जी के 'रामचरित-मानस'—में उन नूतन स्वरों एवं उनके सांकेतिक मात्रा-चिह्नों का उपयोग करना चाहिए । वे यों हैं—

ह्रस्व	उदाहरण
ए	बेटवा; जेवनार, नेवता, जेहि, तेहि, सेरसौं, बेगारि, मेहरारू ।
ऐ	जैसन, तैसन ।
ओ	घोड़वा, मोटरा, गोसाईं, सोनार, डोलवा, चोराई, पतोहिया ।
औ	हौं, मैं, धौं ।

दीर्घ	उदाहरण
ए	बेटा, जेवन ।
ऐ	जैसा, तैसा ।
ओ	घोड़ा, मोटा, गोस्वामी ।
औ	और । इत्यादि

अब भी लोग जब आपस में बोलते हैं, तो वे अपनी घरू भाषा (Colloquial language) में ऐसे शब्दों का उच्चारण ह्रस्व ही करते हैं, यद्यपि लिखित भाषा (Literary language) में वे दीर्घ लिखे जाते हैं । मैं सोचता हूँ, उक्त प्रकार के नवीन अक्षरों का प्रचार हिंदी में भी करना चाहिए ।

सर ग्रियर्सन ने अपने Linguistic Survey of India, Vol VI में ऐसे अक्षरों का उपयोग किया है । महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी-रचित एक पद्य-खंड की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

एक हँकारि सेवकन्ह माहीं ;
अपने ढिग **पूँछेउ** का आहीं ।
सो **ओहि कहेउ** तुम्हारहि भाई;
आएउ तुम्ह पितु नीक **जेवाँई** ।
पाएउ ताहि नीक अउ सुभरा;
कुसल-खेम लखि **हुलसेउ** हिअरा ।

'गोस्वामी'जी 'गोसाईं'जी हुए, फिर 'गुसाईं'जी बन गए । पर शुद्ध शब्द 'गोसाईं'जी ही है ।

लोचनप्रसाद पांडेय

× × ×

५. तेरी प्रीति

ज्यों विदीर्ण होती जाती हो सीप,
धरे हृदय में मुक्ताफल अविमुक्त ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े, कांति-मय, जैसे नभ के दीप,
तारागण, ज्यों छिपते शोभा-युक्त ।
था ज्यों मानो जाता फटा अँगूर,
भरे हृदय में होता सुधा-मिठास ।
रस सुस्वादु, ज्यों बढ़ता अनुदिन भूरि,
रूप अदृश्य, एक-सा, विना प्रयास ।
अथवा जैसे टूटी जाती डाल—
लदी हुई होती नव-पल्लव दल-भार --
स्वर्ण-फलों से; जिनको ग्रीष्म कृपालु,
है सुपक्क करता निज कर-व्यापार ।
त्यों तव अमित प्रीति यह है, सच मान;
फटा जा रहा हृदय जीवनाधार !

रामानुजदयालु

× × ×

६. प्यारी लेखनी

लेखनी ! प्रिय लेखनी ! परमपावन होने का समय आया है, चल । भक्त-जनों की कहानी लिखकर बतावेगी, तो अपना अस्तित्व सफल कर जायगी । तुलसी-काल का हाल तो तुझे मालूम है न ? हैं, क्या कहा मेरी लाड़ली ? 'जन्म-काल का निश्चय नहीं है । डॉ० ग्रियर्सन ने पं० रामगुलाम द्विवेदी के समान सं० १५८९ बतलाया है, और शिवसिंहसरोजकार ने १५८३ । उनका, मृत्यु-काल तो प्रसिद्ध ही है, मेरे रसीले ! उसे प्रकट करनेवाले इस दोहे को कौन नहीं जानता—

संबत सोरह सै असी, असी-गंग के तीर ;
सावन-सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर ।

ठीक है प्रिये, अच्छा ! तेरे इस कथन से इतना तो स्पष्ट ही है कि महात्मा तुलसीदास ने, प्यारे राम के अनन्य प्रेमी संत ने, ९७ वर्ष नहीं तो ९१ वर्ष तक अवश्य ही इस भारत-वसुंधरा को अपने पद-संचार से सुशोभित किया था ।

अच्छा सहेली, महात्माजी का जीवन-चरित कुछ बतलावेगी, कुछ अलौकिक गाथा सुनावेगी ? 'राम-कृपा कछु दुर्लभ नाहीं'—यह तो पढ़ी है दिव्य वाणी महात्मा की ? परंतु, लेखनी, वह सौभाग्य कहाँ, जिससे 'भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः', और वह भी इस 'संशयात्मा विनश्यति' के समय में ! परंतु लेखनी, राम किस पर कृपा नहीं करते? प्यारी, चौंके मत । 'रे श्याम के सखा तुझे राम से क्या काम ?'—यह न कह । मेरे श्याम, तुलसी के राम, मीरा के गिरिधर, नरसिंह के हरि, सब एक ही हैं । कोई भेद नहीं है । हैं, क्या कहा—'मेरे कवि तेरी अनन्यता कहाँ गई ?' लेखनी, प्रिय लेखनी, मेरे-जैसे पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण, ज़मीन-आसमान, नदी-समुद्र और पहाड़ आदि नाना स्थानों में दृष्टि दौड़ानेवाले में वह अनन्यता कहाँ ? वह भावुकता कहाँ ? वह एक-रसता कहाँ ? वह तो उसी आत्माराम के जाए हुलसी के तुलसी की अनन्यता, अलौकिकता, एक-रसता थी कि मेरे श्याम को राम होना पड़ा, और वृंदावन को अयोध्या । परंतु इतना तो झूठ नहीं है प्यारी लेखनी, कि मेरे नट-नागर की ही घन-श्याम-मूर्ति तो, इस व्यवस्था-मय जगत् में, राम भी हैं ! सुन लेखनी, मेरे श्याम को तुलसी कितने प्रिय हैं, यह तो छिपी हुई बात नहीं है । और लेखनी, क्या तू समय के प्रवाह से बच जायगी ? शंका-शीलता से हट जायगी ? ज़माने का रंग न बतलावेगी ? प्रेम की पूर्ण परिपक्वता का दृश्य न दिखलावेगी ? अनुपम भक्तमाल की भेंट अर्पण करनेवाले नाभाजी, प्रियादास आदि भक्तों की वाणी मान्य है ; परंतु लेखनी,—

सिया-राम-मय सब जग जानी,
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी ।

का गान करनेवाला महात्मा जो श्याम में राम को देखे, तो क्या आश्चर्य ? वह 'राधे-श्याम, राधे-श्याम, राधे-श्याम, राधे-श्याम' की जगह 'सिया-राम, सिया-राम, सिया-राम, सिया-राम' की धुन लगावे, तो कौन अचंभा ? लेखनी, कहाँ नहीं है वृंदावन ? किस जगह नहीं है राधे-श्याम की सलोनी छटा ? कहाँ नहीं है अयोध्या ? कहाँ नहीं हैं सिया-राम ? प्रकृति-पुरुष की लीला से बाहर कुछ भी नहीं है । लेखनी, संस्कृत के अमर कवि अमरुक का निम्न-लिखित कथन क्या सूचित करता है ? यही न कि प्रेमी की दृष्टि में प्रेम-पात्र ही भरा रहता है, वही उसे सर्वत्र देख-सा पड़ता है ।

प्रासादे सा पथि पथि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा
सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः ।

भद्रे, तूने जाना, इस पद्य में यह 'सा सा सा सा' कौन है ? 'कोई प्रेमी की नायिका, आशिक़ की माशूक़ा ।' हाँ, यही तो मेरे साँवरे की श्यामल मूर्ति है ; यही तो तुलसी के राम की श्याम-प्रतिमा है ; यही तो मुरली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बजा रही है, यही तो हाथों से धनुष पर बाण चढ़ा रही है। और, यह 'सा सा'-मयी मूर्ति क्या-क्या लीला नहीं दिखलाती ? लेखनी, अमरुक की बात क्या कहना, तूने भी तो आनंद का नाच नाचते हुए बतलाया है—

जहाँ में तेरी रंगत है, ये हर गुल में तेरी बू है ;
जहाँ देखूँ, वहीं तू है ; अहा-हा-हा, ओहो-हो-हो ।

बस, यही प्रेम-परिपक्वता है, यही अनन्यता है, यही एक-रसता है । लेखनी, तुलसी का जीवन है राम-मयता, तुलसी का जीवन है राम-राम और राम ! उस प्रेमी का प्रेम स्त्री से हटा कि राम में लगा । सूफ़ियों की बात क्या तुझे मालूम नहीं है लेखनी ? इश्क़े-मज़ाज़ी से ही तो इश्क़े-हक़ीक़ी होता है; लौकिक प्रेम ही तो अलौकिक प्रेम में परिणत होता है; प्रिया का प्रेम ही तो पीतम का प्रेम बन जाता है । तुलसी राम के लिये प्रेत से प्रार्थना करते हैं ; भूतनाथ को मनाते हैं ; हनुमान् को पूजते हैं; सबकी मिन्नतें करते हैं । प्रेमी प्रेम-पात्र की प्राप्ति के लिये किस-किससे प्रार्थना नहीं करता ? उसके यार-दोस्त, नौकर-चाकर, सबसे सिफ़ारिश करवाता है । विनय-पत्रिका से क्या यह सब सूचित नहीं होता लेखनी ? 'होता है ।'

तुलसी की राजनीति लिखेगी क्या लेखनी ? 'भय बिन होहि न प्रीति' तो छिपा नहीं है । लंका-विजय सहज में नहीं हुई; उसके लिये तो राम-बाण का प्रयोग हुआ है, तब सिद्धि हुई है, तब कहीं सीता मिल सकी हैं । तुलसी एक मनुष्य, छोटे-से मनुष्य, उस हाथी के मुक़ाबले में छोटे-से मनुष्य ही हैं, जिस मदोन्मत्त हाथी को मतवाली सत्ता ने उन पर दिल्ली में छोड़ दिया था ; परंतु लेखनी, क्या हुआ ? राम-बाण से हाथी के प्राण गए; दिल्ली में राम-सेना छा गई; राम-राज्य हो गया । इसमें क्या राजनीति के किसी तथ्य का वर्णन नहीं हुआ ? हुआ है लेखनी, हुआ है। प्रजा भी समझेगी कि तुलसीदास का पांडित्य, कवित्व, माहात्म्य, सब कुछ विलक्षण है ! काशी-विजय को एक पंडित आता है, लोगों में धाक-सी जम जाती है । परंतु तुलसीदास तो नम्रता-पूर्वक रामचरित-मानस को पंडित के सामने रख देते हैं, और ज्ञान-दर्प-वाले पंडित को अपना मानस-विहारी हंस बना लेते हैं । कवित्व को तू बतावेगी लेखनी ? रस-सिद्ध महात्मा के कवित्व के विषय में इससे अधिक कहना ही क्या है—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि ;
मंगलानां च कर्तारौ वंदे वाणीविनायकौ ।

महात्माजी की वाणी, विनायक की वंदना, सर्वथा सफल हुई है सखि ! तुलसी की मिश्रित भाषा में वर्ण, अर्थ, रस, छंद और मंगल-वर्णन, सबका अनुपम योग है । भारत पर तुलसी का ऋण कितना है, इसको क्या बतलावेगी ? क्या उसे कुछ चुकावेगी ? नहीं लेखनी, नहीं। संतों का ऋण नहीं होता, दान होता है । उनका उपकार समाज पर सदा के लिये होता है । तेरी तो सार्थकता इसी में है कि तू लिख—

जय तुलसी, जय-जय तुलसी ;
जय-जय राम-रसिक, कवि-वंदित,
जय हुलसी-सुत, बुध-नुत तुलसी ।

श्रीगिरिधर शर्मा

× × ×

७. तुलसी की सूक्तियाँ

महात्मा तुलसीदास ने अपनी कविता से साहित्य-संसार में एक अपूर्व आदर्श उपस्थित कर दिया है । उनकी कविता मधुर आम की तरह रसीली है । मनुष्य बार-बार उसको पढ़ता है ; पर जी नहीं भरता । फिर-फिर पढ़ने अथवा सुनने की इच्छा बनी ही रहती है । उनकी कविता में असंख्य ऐसी सुंदर उक्तियाँ मौजूद हैं, जिन पर लोग मोहित हो रहे हैं । क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित, सभी के मुँह से सब समय उनकी उक्तियाँ सुनाई देती हैं । उक्तियों का इतना बाहुल्य है कि उन्हें छाँटकर एकत्र कर लेना कठिन है । यद्यपि कविता में सभी विषयों की उक्तियाँ हैं, पर बहुलता है भक्ति, नीति अथवा उपदेश-मयी सूक्तियों की ही । प्रायः ये उक्तियाँ महात्माजी के प्रकृति-पर्यवेक्षण का भी प्रकांड परिचय देती हैं ।

महात्माजी की उक्तियों पर कुछ लिखना धृष्टता-मात्र है । संभव है, जिसे हम अनूठी उक्ति समझ रहे हों, उसे दूसरा साधारण दृष्टि से देखे । तो भी हम अपनी पसंद की हुई उक्तियों में से यहाँ कुछ को लिखने का लोभ संवरण नहीं कर सकते ।

राम-नाम ही, इस लोक तथा पर-लोक में, मनुष्य की गति बनानेवाला है । इसी को लक्ष्य कर महात्मा-जी ने यह सुंदर और सरस सूक्ति कही है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम-नाम-मणि-दीप धरु, जीह-देहरी-द्वार ;
तुलसी भीतर-बाहिरहु, जो चाहसि उजियार ।

* * *

ईश्वर का भरोसा ही सब कुछ है । वह जो चाहता है, वही होता है । उसी पर विश्वास रखने से, उसी पर भक्ति और प्रेम रखने से, मनुष्य सुखी हो सकता है । दुनिया की ख़ाक छानना व्यर्थ है । इसीलिये महात्मा-जी ने स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी है—

तुलसी बिरवा बाग के सींचे से कुम्हिलायँ ;
राम-भरोसे जे रहें, परबत पर हरियायँ ।

महात्माजी के इस सुंदर प्रकृति-पर्यवेक्षण से कौन परिचित नहीं है ? माली रात-दिन रखवाली करता है, सींचता है, पर बाग़ के वृक्ष कुम्हला ही जाते हैं ; और हज़ारों हाथ ऊँचे पर्वत पर लगे हुए पौदे, जिनकी कोई भी सुध लेनेवाला नहीं, जहाँ पानी का पता भी नहीं, प्रचंड ग्रीष्म में भी हरे रहते हैं !

* * *

राम-नाम के अवलंब बिना मोक्ष पाना असंभव है । इसी बात को महात्माजी ने अपने प्रकृति पर्यवेक्षण का परिचय देते हुए कितने अनूठे ढंग से कहा है—

राम-नाम अवलंब बिनु, परमारथ की आस ;
बरसत बारिद-बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास ?

* * *

इश्क़-हक़ीक़ी से ही इश्क़-मज़ाजी की उत्पत्ति होती है । यही सोचकर महात्माजी ने कहा है—

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं जिमि प्रिय दाम ;
ऐसे है कब लागिहौ, तुलसी के मन राम ?

* * *

तुलसी अपने राम सों, साँचो कीजे नेह ;
कहा लाज भरतार की, जिन देखी सब देह ।

पति ने पत्नी की सारी देह देखी है । इतने पर भी यदि वह पति से लाज अथवा छल-कपट करे, तो अनुचित है । इसी प्रकार मनुष्य यदि अपने राम से, जो उसके अंत-स्तल की सब कुछ जानते हैं, लाज करे, अथवा मुँह छिपावे, तो अनुचित है ।

* * *

महात्माजी श्रीराम के कट्टर उपासक थे । उन्होंने कभी अपने जीवन में राम के सिवा किसी की उपासना नहीं की । परंतु वह सब देवतों में श्रद्धा रखते थे, वह सब देवतों में राम-रूप का ही दर्शन करते थे । एक बार आप मथुरा पहुँचे । वहाँ श्रीकृष्णजी के दर्शन करते समय आपने कहा—

कहा कहौं छबि आजु की, भले बने हौ नाथ ;
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-बान लेहु हाथ ।

कहते हैं, तुरंत ही महात्माजी की मनोवांछा पूर्ण हुई ।

* * *

प्रेम यथार्थ में आत्मिक होता है, शारीरिक नहीं । शारीरिक वियोग, वियोग नहीं है ; वह तो आत्मिक स्नेह को और भी पुष्ट करनेवाला मसाला है । रामायण में लिखा है—

तत्त्व-प्रेम कर मम अरु तोरा ; जानत प्रिया एक मन मोरा ।
सो मन रहत सदा तुहि पाहीं ; जानु प्रीति-रस इतनेहि माहीं ।

* * *

सच्चे प्रेम का कैसा सुंदर चित्र है—

रटत-रटत रसना लटी, तृषा सूखिगे अंग ;
तुलसी चातक प्रेम की, नित नूतन रुचि रंग ।

* * *

देखिए, 'कपट-खटाई' से 'प्रीति-रस' कैसा हो जाता है—

जल, पय-सरिस बिकाहि, देखहु प्रीति कि रीति भलि ;
बिलग होत रस जाइ, कपट-खटाई परत ही ।

प्रकृति का कैसा सच्चा निरीक्षण है ?

* * *

श्रीरामचंद्रजी विवाहोपरांत सीताजी के शीश में सिंदूर दे रहे हैं । बात केवल इतनी ही है । परंतु महात्माजी की अपूर्व प्रतिभा ने इस बात को कितना सुंदर एवं अनूठा रूप दिया है । देखिए—

राम सीय-सिर सेंदुर देहीं ; उपमा कहि न जाय कवि केहीं ।
अरुन पराग जलज भरि नीके, शशिहिं भूष अहि लोभ अमी के ।

* * *

कवि लोग स्त्री के सुंदर मुख की चंद्रमा से उपमा दिया करते हैं । परंतु गोस्वामीजी ने कैसे सुंदर ढंग से दिखलाया है कि चंद्रमा सुंदरता में मिथिलेश-किशोरी का सामना नहीं कर सकता—

जन्म-सिंधु पुनि बंधु-विष, दीन मलिन सकलंक ;
सिय-मुख-समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक ?

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात मिथिला की है। एक कुमारी श्रीराम और लक्ष्मण-जी का नयन-मनोहर रूप देखकर विमुग्ध हो रही है। वह सीताजी से उनकी सुंदरता के विषय में कहती है—

श्याम गौर किमि कहौं बखानी; गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।

कितनी मनोहर और अनूठी उक्ति है? साथ-ही-साथ राजकुमारों की सुंदरता का कैसा अनिर्वचनीय वर्णन है?

* * *

उमा ने महादेवजी की प्राप्ति के लिये घोर तपस्या की। महर्षि नारद ने उन्हें फुसलाने के लिये विष्णु की बड़ी ही प्रशंसा की, उन्हें तरह-तरह के गुणों का आकर बतलाया, और शिवजी में तरह-तरह के दोष दिखलाए। इस पर उमा ने उन्हें कैसा मुँह-तोड़ उत्तर दिया है—

महादेव अवगुन-भवन, बिष्णु सकल गुन-धाम;
जेहि कर मन रम जाहि सन, ताहि ताहि सन काम।

मनुष्य-प्रकृति का कैसा स्पष्ट चित्र है?

* * *

आडंबर का आदर मूर्ख जन करते हैं, चतुर नहीं। महात्माजी ने यह बात उदाहरण-सहित किस खूबी से कही है—

तुलसी देखि सुबेख, भूलैं मूढ़, न चतुर नर;
सुंदर केकी पेख, बचन सुधा-सम, असन अहि।

सुवेश देखकर मूढ़ जन ही धोखा खाते हैं, चतुर जन नहीं। ज़रा सुंदर मोर को तो देखिए। वह वचन तो सुधा-सम बोलता है, पर भोजन करता है हलाहल-भरे सर्प का!

* * * *

मनुष्य को चाहिए, वह समयानुसार ही काम करे। इस पर महात्माजी ने कैसी अनूठी उक्ति को जन्म दिया है—

तुलसी पावस के समै, धरी कोकिला मौन;
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन?

* * * *

ज़रा संगति का भी गुण-दोष देखिए—

गगन चढ़े, रज पवन प्रसंगा; कीचहु मिलहि नीच जल संगा।

भावार्थ स्पष्ट है। दास कवि ने इसी का आधार लेकर इस सवैये की सृष्टि की है—

धूरि चढ़ै नभ पौन-प्रसंग तें, कीच भई जल-संगति पाई;
चंदन-संग कुठार सुगंध है, नीम-प्रसंग लहै करुआई।
फूल मिलै नृप पै पहुँचे, कृमि काठन संग अनेक बिथाई;
दासजू देखो सही सब ठौरन, संगति को गुन-दोष न जाई।

* * * *

नीच चंग-सम जानियो, सुनि-लखि तुलसीदास;
ढील देत महि गिरि परत, खैंचत चढ़त अकास।

नीच आदमी की पतंग से तुलना करना बहुत ही स्वाभाविक हुआ है।

* * * *

नम्रता भी कैसी उत्तम वस्तु है—

गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहिं; आरत अधिकारी जहँ पावहिं।

यदि नम्रता से काम लिया जाय, तो आदमी साधुओं से वे गूढ़ तत्त्व भी प्राप्त कर सकता है, जिन्हें वे ज़बान पर भी नहीं लाते।

बस, काग़ज़ की कमी कहती है, क़लम रोक ले।

ज़हूरबख़्श

× × ×

८. 'बेनी' कवि के समय में लखनऊ की सड़कें

आजकल लखनऊ-नगर को नंदन-कानन बनाने के लिये बड़े-बड़े उद्योग किए जा रहे हैं। युक्त-प्रांत के भूत-पूर्व गवर्नर तो इस पर मुग्ध थे। उनके शासन-काल में लखनऊ के सौंदर्य की वृद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया। नए-नए पार्कों और भवनों की रचना के अतिरिक्त कुछ सड़कें भी चौड़ी की गई हैं। अग़ल-बग़ल फ़ुटपाथ बन जाने से सड़कों की शोभा तो बढ़ ही गई है, उन पर चलनेवालों को आराम भी बहुत मिलता है। देखें, वर्तमान गवर्नर महोदय इस शहर का कैसा सत्कार करते हैं।

१९वीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में इस नगर की सड़कों की दशा कैसी थी, इसका परिचय हिंदी-भाषा के एक तत्कालीन कवि की कविता से भी मिलता है। उस समय अवध-प्रांत स्वतंत्र नवाबों द्वारा शासित होता था। नवाबी शासन में यहाँ आमोद-प्रमोद और विलासिता की धाराएँ निरंतर बहा करती थीं। उत्तरी भारत में लखनऊ अपनी षोडश कलाओं से जगमगा रहा था। अन्य प्रांत और नगर अनेक विषयों में इसकी सराहना किया करते थे। लखनऊ की बोल-चाल, रहन-सहन आदि को अधिकांश लोग आदर्श मानते थे। नवाबों में अनेक ऐसे भी हुए, जो प्रजा से प्रेम रखते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार प्रजा भी सुखी थी। ऐसा सुंदर और समृद्धि-शाली नगर होने पर भी उस समय लखनऊ की सड़कों की दशा अच्छी नहीं थी। ख़ासकर वर्षा-काल में तो यहाँ के निवासियों को बड़ा ही कष्ट सहना पड़ता था। आज जब हम हज़रतगंज और बैंक्स रोड के सदृश मनोहर, चौड़ी तथा बिजली के प्रकाश से जगमगाती हुई सड़कें देखते हैं, तब उस समय की सड़कों की एक झलक अरुचिकर न होगी।

बैंती, ज़िले-रायबरेली के निवासी कविवर 'बेनी' बंदीजन ने उस समय की सड़कों का बड़ा ही विनोद-पूर्ण वर्णन किया है। आप तत्कालीन अवध के प्रसिद्ध वज़ीर महाराजा टिकैतराय के उच्च श्रेणी के दरबारी कवि थे। आपने "टिकैतराय-प्रकाश" और "रस-विलास"-जैसे सुंदर ग्रंथ बनाए हैं। पहला अलंकार-शास्त्र का, तथा दूसरा रस और भाव-भेद का है। इसके अतिरिक्त आपने बहुत-सी 'भँड़ौवा'-कविताएँ भी की हैं। मेरे पुस्तकालय में इनके ये सब ग्रंथ वर्तमान हैं। खेद की बात है कि अभी तक इनका कोई भी ग्रंथ मुद्रित नहीं हुआ।

भँड़ौवा-कविता करने में आप कदाचित् हिंदी-भाषा के कवियों में अपनी जोड़ नहीं रखते। प्रसंगांतर हो जाने के भय से इस प्रकार के केवल दो छंद दिए जाते हैं—

किन्हीं 'दयाराम' ने कवि के पास कुछ आम भेजे। शायद आम अच्छे न थे। बस फिर क्या कहना! बेनी कवि ने लिया आड़े हाथों उन्हें! भेजनेवाले महाशय तथा रसालों का इस प्रकार 'सत्कार' किया गया—

चूकं ते सरस, चाखे लूक-सी लगावैं कंठ,
ताप सरसावै हैं, अपूरब अराम के;
रस को न लेस, रेसा, चोपी है हमेस,
छोड़ि दीन्हे सब देस, पकुसाने परे घाम के।
बुरे, बदसूरति, बिलौने, बदबोयदार,
'बेनी' कवि, बकला बनाए मनौ चाम के;
आए बिना दाम के, सु एकौ नहिं काम के,
हैं निपट निकाम के, ये आम दयाराम के।
चींटी की चलावै को, मसा के मुख आपु जायँ,
स्वाँस की पवन लागे कोसन भगत हैं;
ऐनक लगाए मरु-मरु कै निहारे जात,
अंड परमानु की समानता खगत हैं।
'बेनी' कवि कहै, हाल कहाँ लौं बखान करौं,
मेरी जान ब्रह्म को विचारिबो सुगत हैं;
ऐसे आम दीन्हे दयाराम मन मोद करि,
जाके आगे सरसों सुमेरु-से लगत हैं।

ख़ैर। अब मैं लेख के असली विषय पर आता हूँ। वर्षा-ऋतु में लखनऊ की सड़कों की जो दशा हो जाती थी, उसका वर्णन कविवर 'बेनी' ने चाहे कुछ अतिशयोक्ति-पूर्ण ही किया हो, फिर भी उससे यह निष्कर्ष अवश्य ही निकलता है कि यहाँ की सड़कों की अवस्था बहुत बुरी थी। इससे यह भी पता चलता है कि इस प्रकार की घनी बस्तीवाले अन्यान्य नगरों की सड़कों का भी संभवतः यही हाल रहा होगा। जो हो, आइए, बेनी-कवि की हास्य-रस-पूर्ण कविता का स्वाद लीजिए।

तंग और वर्षा-ऋतु की कीचड़ से परिपूर्ण सड़क का दृश्य है! अगणित नर-नारी, हाथी, घोड़े, ऊँट, रथ आदि का निरंतर गमनागमन रहता है। सुप्रबंध का अभाव है। इससे जो कठिनाई उपस्थित होती है, वह कवि के शब्दों में ही सुनिए—

अड़ि जात बाँजी, औ गयंद-गन गड़ि जात,
सुतुर अकड़ि जात, मुसकिल गऊ की;
दामन उठाय, पाँय धोखे जो धरत, होत
आप गड़काप, रहि जात पाग मऊ की।
'बेनी' कवि कहै, देखि थर-थर काँपे गात,
रथन को पथ न, बिपति बरदऊ की;
बार-बार कहत पुकारि, करतार, तोसों,
मीचु है कबूल, पै न कीचु लखनऊ की।

लखनऊ की तत्कालीन सड़कों का कैसा सजीव वर्णन है?

ख़ैर, कविजी ने किसी प्रकार इस दृश्य को दिखलाने की चेष्टा भी भला उपर्युक्त पद्य में की है, किंतु अब आगे उनकी हिम्मत जवाब दिए देती है। 'बरनत शेष हू के आनन थकत हैं'। देखिए—

१.-बाग़। २. सड़े। ३. निकम्मे।

१. मर-मरकर=मुशकिल से। २. प्राप्त होते हैं। ३. सहज। ४. घोड़ा। ५. हाथी। ६. ऊँट। ७. मऊ की पगड़ी मशहूर थी। ८. बैल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकै पिछलत, पिछलत तिन्हैं लखे एकै,
एकै परे कीच मैं बिधाता को बकत हैं ;
ठौर-ठौर नदी उमड़ी है नार्पदानन की,
हाथीवान हूलै, हाथी जाय ना सकत हैं।
बरसत-मेह ऐसी दसा लखनऊ बीच,
बरनत शेष हू के आनन थकत हैं ;
देवता मनाय, पुन्य पाछिली सहाय,
डेरे पहुँचत जाय, ताके पूरन बखैत हैं।

पूर्व-पुण्य के प्रबल प्रताप से किसी प्रकार वे 'भव-सागर' को पार कर ही गए ! बड़ी कुशल हुई ! स्वयं तो अगणित कष्ट झेलकर किसी प्रकार सड़क पार कर गए, पर अनेकों को जो अपार कष्ट हुआ, उसको कविजी भूल नहीं सके। समवेदना का स्वर ऊँचा करते हुए आप वर्णन करते हैं—

एकै खरे रोवैं, एकै बसन निचोवैं,
एकै जखम को टोवैं, देखे देह थहराति है ;
एकै लेत थाहैं, ऊँची करि-करि बाहैं,
एकै जोर को उमाहैं, ना जुगुति ठहराति है।
'बेनी' कबि कहै, और कहाँ लौं बखान करौं,
ऐसेई सकल मुसकिल दिन-राति है ;
एकै फँसे कटि लगि, एकै गिरेवान लगि,
आप गरकाप, सिखा साफ फहराति है।

तथा—

झीलों के परत झीलैं गली-गली भरैं,
और ऊपर पनारन के झरना झरत हैं ;
हाथिन के हलैके, तुरंग बड़े बल के,
सुतुर, खेर, खच्चर, बिलोकि बिड़रत हैं।
आगे भीर भारी, पीछे पुलिस पुकारी,
लोग तरकस के-से तीर टारे ना टरत हैं ;
सकटे सकैंट, रथ अटके अनेक जहाँ,
लपटे दिवालन मैं रपटे परत हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कुछ अत्युक्ति का समावेश रहते हुए भी बेनी कवि ने लखनऊ की जिन तत्कालीन सड़कों का वर्णन किया है, वे बहुत ही ख़राब थीं, और उन पर चलनेवालों को बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ती थी।

१. मोरियों की। २. आयु। ३. गरेवान। ४. हलकी बारिश। ५. झुंड। ६. गधे। ७. बैलों के छकड़े।

इस दृष्टि से यहाँ की वर्तमान जनता अधिक भाग्य-शालिनी है !

विपिनविहारी मिश्र

× × ×

९. इस वर्ष का साहित्य-नोबेल-पुरस्कार

इस वर्ष साहित्य का पुरस्कार जैसिन्तो बेनावांत (Jacinto Benavente) को मिला है। यह स्पेन के श्रेष्ठ नाटककार हैं। नोबेल-पुरस्कार पाने के बहुत पहले ही से यह पाश्चात्य-जगत् में सुपरिचित हैं। नोबेल-पुरस्कार पाने से इनका यश और भी बढ़ गया है।

जैसिन्तो बेनावांत के पिता डॉक्टर थे। सन् १८६६ ई० में माद्रिद-शहर में उनका जन्म हुआ था। पिता की इच्छा पुत्र को वकील बनाने की थी ; किंतु पुत्र के चित्त का झुकाव अदालत-मंच की अपेक्षा रंग-मंच की ओर ही अधिक था। पिता की इच्छा के विरुद्ध बेनावांत अभिनय करने लगे। हाँ, उनकी मा की इस विषय में सहानुभूति अवश्य थी। वह पुत्र की प्रतिभा की गति को समझ सकी थीं। बेनावांत केवल अभिनेता ही होकर चुप नहीं रह सके। उनके जीवन में और भी अनेक विचित्रताएँ भरी हैं। कुछ दिनों तक रूस के किसी एक सर्कस में वह भाँड़ का भी काम करते रहे। उनके जीवन का आभास उनके अनेक ग्रंथों में पाया जाता है।

बेनावांत का प्रथम साहित्य-प्रवेश एक कविता की पुस्तक द्वारा हुआ। उसमें उनकी कुछ विशेषता नहीं देखी जाती। उनका प्रथम नाटक El Teatro fantas-Tico सन् १८६३ ई० में निकला। उसकी भी क़दर बहुत कम हुई। इसके बाद उनके El Nido Ajeno तथा Gente Concida-नामक दो नाटकों ने स्पेन-साहित्य में हलचल मचा दी। पृथ्वी के और-और नामी साहित्य-सेवियों की तरह उनका साहित्य-जीवन भी कलुषित तथा दूषित-समाज के विरुद्ध लिखने से आरंभ हुआ। स्पेन-शहर का समाज नाना प्रकार के दूषणों से कलुषित हो गया था। वह आरंभ ही से अपने नाटकों में समाज की बुराइयों को दिखलाने और उनके लिये समाज की भर्त्सना भी करने लगे। बेनावांत के पहले के प्रायः सभी नाटक समाज की कलुषितता तथा कृत्रिमता दूर करने ही के लिये लिखे गए थे। इसके बाद के नाटकों में एक नया ही आभास दिखलाई देने लगा। La Comida

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

de Las fieras, La farandula, La Gato de Angora इत्यादि अनेक नाटकों में समाज के किसी-न-किसी पाप का खुल्लम-खुल्ला दृश्य अवश्य ही दिखलाया गया है। La Cursi और La Gobernadora-नाटक जिस समय निकले, उस समय तक स्पेन में बेनावांत का नाम व्यंग्य-चतुर नाटककारों में निकल चुका था।

हठात् बेनावांत ने व्यंग्य छोड़कर करुण-रस को अपनाया, और वियोगांत-नाटक लिखना शुरू किया। सन् १९०१ ई० में Sacrificio निकला। उसके अगले वर्ष में Alma Triumfante निकला। बेनावांत में एक खूबी यह है कि वह अमानुषिक त्याग को सर्वोपरि श्रेष्ठ मानते हैं।

बेनावांत आजकल के सिद्ध-हस्त लेखकों की तरह संसार के कपट तथा निष्ठुरता को देखकर भी हताश नहीं होते। वह मानवीय महत्त्व को प्रधानता देते तथा उसमें अगाध विश्वास रखते हैं। सबसे बड़ी बात तो उनमें यह है कि वह स्त्रियों की ममता के बड़े क़ायल हैं। ठीक यही बात उनके Mas fuerte quel el amor-नामक नाटक में देखी जाती है। बेनावांत की नायिकाएँ 'इब्सेन' की नायिकाओं की भाँति प्रारंभ से ही सोच-विचार करने लगती हैं; किंतु अंत में युक्ति की अपेक्षा करुणा का संस्कार बड़ा हो जाता है।

La Malquerida-नाटक द्वारा बेनावांत ने शिथिल साहित्य में एक नई जागृति फूँक दी। स्पेन का साहित्य कृत्रिम तथा अस्वाभाविक, अश्लील अवस्था में पड़ा था। बेनावांत के 'किसान'-नाटक ने उसकी शिथिलता पर एक आघात पहुँचाया। इस नाटक के भाव तथा भाषा, दोनों में विद्रोह है।

El Hombreito एक बहुत ही जोशीला नाटक है। सन् १९०९ ई० में Los .nteresses creados-नामक नाटक निकलने के बाद बेनावांत स्पेन में अद्वितीय साहित्य-रथी के नाम से विख्यात हुए। आज योरप में भी उनके इस सम्मान की योग्य अभ्यर्थना की गई है।

बेनावांत में सबसे बढ़कर एक विशेषता यह है कि उनकी व्यंग्य-रचना में एक अपूर्व शक्ति का आभास पाया जाता है। वह मनुष्यों में देवता की आस्था मानते हैं। इसके सिवा उनमें चरित्र-चित्रण करने की तो असाधारण शक्ति है ही।

गोपीनाथ वर्मा

× × ×

१०. उपालंभ

प्रेम के पथ में हूँ बिक चुकी, किसी मदमाती ध्वनि के हाथ;
चलूँ फिर कालिंदी के कूल, भला किस तरह तुम्हारे साथ?
तुम्हारी है वह मुरली-तान, तुम्हारी वह मधुमय झंकार,
मान लूँ कैसे कहो व्रजेश, न नैनों को जब तक आधार।
सुना करती हूँ, हाँ मोहन, फूँकते रहते तुम भी बाँस;
सुनाया करते तुम भी गीत, न मुझको पर आता विश्वास।

श्यामलाल पाठक

× × ×

११. शंकराचार्यजी के व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग

ग़लती सबसे हो जाती है। कौन ऐसा संस्कृत-लेखक है, जिससे कुछ व्याकरण की भूलें न हो जायँ? कालिदास की निरंकुशताएँ तो प्रसिद्ध ही हैं। शंकराचार्यजी की संस्कृत-शैली बहुत ही सीधी तथा शुद्ध है। उनके समान सीधी भाषा का प्रयोग किसी दार्शनिक ने नहीं किया। उनके विरुद्ध कुछ कहना वास्तव में धर्म-विरुद्ध है; तथापि उनके कुछ ऐसे प्रयोग हैं, जो पाणिनि-व्याकरण के अनुसार कभी शुद्ध नहीं ठहरते। छांदोग्य-उपनिषद् के १ अ०, खंड ६, श्लोक १ की टीका में शंकराचार्यजी ने लिखा है—"यथा ऋक्सामनी नात्यंतं भिन्ने।" इस अंश में 'ऋक्सामनी' शब्द शुद्ध नहीं। पाणिनि के 'अचतुरविचतुर...' (४।४।७७) के अनुसार 'ऋक्सामे' ही ठीक है। फिर अ० ८, खं० ८, प० ४ की टीका में शंकरजी ने 'गच्छेयातां' का प्रयोग किया है। व्याकरण के अनुसार तो 'गच्छेतां' ही शुद्ध होगा। इसी प्रकार अ० ८, खं० १२, श्लो० ३ के आरंभ में शंकरजी ने लिखा है—

'अहं मनुष्यपुत्रो जातो जीर्णो मरिष्ये इत्येवं प्रकारं" इस अंश में 'मरिष्ये'-पद चिंत्य है। पाणिनि के अनुसार 'मृ' धातु भविष्य-काल में परस्मैपदी ही रहती है। अतः 'मरिष्यामि' ही होना उचित था। किंतु इन पदों को देखकर हमें आश्चर्य न करना चाहिए; क्योंकि मति-भ्रम किसे नहीं होता? 'मुनीनां च मतिभ्रमः'।

बलदेव उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. धुआँ उगलनेवाला पिस्तौल



स पिस्तौल से चोर पकड़ा जा सकता है, और कहीं आग लगने पर उसे बुझाया भी जा सकता है। इसकी मोटी लंबी नली में अंगारजन वाष्प (Carbon Dioxide) भरा रहता है। पिस्तौल दागने पर नली के मुँह से लगातार घने धुँए-जैसी गैस निकलने लगती है। उस गैस से आच्छन्न होकर चोर-डाकुओं का दल हाँफ जाता है। उधर उनका दम घुटने लगता है, इधर आग भी क्रमशः बुझने लगती है। पिस्तौल से छोड़ी हुई गैस आगे ही जाती है। उससे अस्त्र-धारी की कोई क्षति नहीं होती। भारतवर्ष में चोर बहुत हैं। यहाँ हरएक घर में ऐसा एक पिस्तौल रखना चाहिए। पर यदि यह अस्त्र-आईन के बाहर हो।

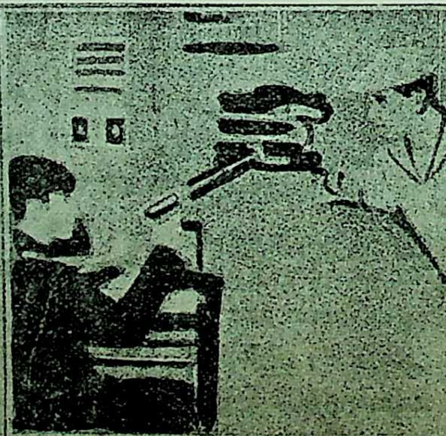
× × ×

२. चेहरा देखकर चरित्र जानना

पुलिसवालों को स्थूल रूप से चेहरा देखकर चरित्र जानने का ज्ञान कराया जाता है; किंतु उससे उन्हें कोई विशेष लाभ नहीं होता। आजकल चेहरा देखकर चरित्र जानने के विषय में जो आंदोलन हो रहा है, उसके अनुसार मनुष्य के साधारणतः चार प्रकार के चेहरे होते हैं। एक लंबा, दूसरा निकला हुआ, तीसरा धसा हुआ, और चौथा "S" के आकार का। इनके सम्मिश्रण से भी अनेक प्रकार के चेहरे हो सकते हैं।

जिसका निकला हुआ चेहरा होता है, वह दूर-दर्शी होता है। उसके विचार बहुत शीघ्र उत्पन्न होते हैं। जिसका धसा हुआ चेहरा होता है, वह सुस्त, आलसी होता है, और धीरे-धीरे अपना काम करता है। ऐसा चेहरा दार्शनिकों का होता है। वे एक बार जो सोचते हैं, ठीक ही सोचते हैं; किंतु उनके सोचने में बहुत देर लगती है। सीधे चेहरेवाला मनुष्य मनुष्यों के स्वभाव को जल्दी


पिस्तौल से आग बुझाना


पिस्तौल से चोर पकड़ना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहचानता है। लंबे मुँहवाला मनुष्य अपनी खोज में दूर तक सोचता है। "S" के आकार के चेहरेवाले सबसे अच्छे होते हैं। ऐसा ही चेहरा खूबसूरत समझा जाता है। ऐसे चेहरे के साथ नुकीली नाक का रहना आवश्यक है। ऐसे मनुष्य बहुत शीघ्र और ठीक-ठीक विचार करनेवाले तथा कार्य-शील होते हैं। जिनका चेहरा उलटे "S"-जैसा होता है, वे सोचने के पहले काम करते हैं, और बड़ी-बड़ी ज़िल्लतें उठाते हैं।

× × ×

३. एकसाथ दो काम

हम लोग अधिक-से-अधिक दो काम एकसाथ कर सकते हैं। किसी के साथ बातें करते समय एक-आध और काम भी कर लेते हैं। रास्ता चलते समय प्रकृति के दृश्य या ऋतु की चर्चा करते हैं। इन कामों को हम लोग एकसाथ कर लेते हैं। एक मुख्य काम में मन लगाकर अन्य गौण या साधारण काम को करते रहना उतना कठिन नहीं, जितना दो ख़ास कामों को एकसाथ करना। किंतु यह भी संभव है कि कोई-कोई मनुष्य दो ख़ास कामों को समान मनोयोग (Attention) से कर सकते हों। नेपोलियन और सीज़र के विषय में सुना जाता है कि वे एकसाथ भिन्न-भिन्न प्रकार की कई चिट्ठियाँ लिखाते थे, और उसी समय आप भी लिखते रहते थे।



हाथ से बेला और पैर से पियानो बजाना

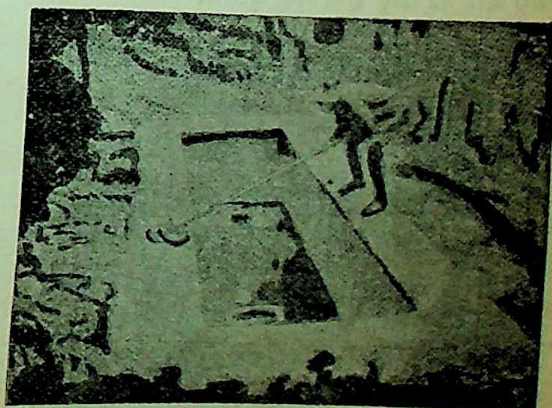
इस समय भी न्यूयार्क-शहर की एक लड़की अपने दोनों हाथों में क़लम लेकर दो विषय समान भाव से लिख सकती है। उसमें यह भी गुण है कि वह एक हाथ से सीधा और दूसरे से उलटा लिख सकती है। एक लड़की ने उक्त लड़की को भी मात कर दिया है। वह अपने दोनों हाथों में पेंसिल लेकर और दाँत से एक पेंसिल पकड़कर एक ही समय में तीन भिन्न-भिन्न बातें लिखती है। उसने एक दिन वैज्ञानिकों के सामने परीक्षा देते समय एक हाथ से तसवीर बनाई, और दूसरे से पियानो बजाकर सबको चकित कर दिया।

उस दिन एक मनुष्य ने हाथ से बेला और पैर से पियानो बजाकर लोगों को सुनाया था।

× × ×

४. साँप और लॉस एंजेलेस

हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से मदारी लोग साँप पालते, और साँप के खेल दिखलाकर अपनी जीविका चलाते हैं। मालूम हुआ है कि रामायण और महाभारत के समय में भी साँप पालना तथा उनके खेल दिखलाना प्रचलित था। इसीलिये साँप का खेल हमारे देश में कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं समझी जाती। युक्त-प्रांत, अमेरिका के केलीफ़ोर्निया-प्रदेश में लॉस एंजेलेस (Los Angeles)-प्रांत के एक सर्प-विद्या-विशारद मनुष्य साँप पालने के लिये एक बहुत बड़ा मकान बनवा रहे हैं।



लॉस एंजेलेस का कृत्रिम सर्पावास

(एक साँप को ऊपर निकालकर उसकी परीक्षा की जाती है)

जिस स्थान में यह घर बन रहा है, वह दो एकड़ है। मिट्टी में गढ़ा खोदकर घर बनाया जायगा, और उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर कंक्रीट की ऊँची दीवारें रहेंगी। दीवारें इतनी चौड़ी होंगी कि उन पर मनुष्य आसानी से चल-फिर सकेगा। दर्शकों के सुबीते के लिये आवास-भूमि के बीच में दीवारों पर इस तरह के रास्ते बनेंगे कि उन पर चलकर मनुष्य सर्पावास के सभी विभाग देख सकेगा। अमेरिका में पाए जानेवाले एक प्रकार के साँप यहाँ रक्खे जायँगे। इस भवन के बीच में जलाशय भी रहेगा; जहाँ सब प्रकार के जलवासी ज़हरीले साँप सपरिवार रह सकेंगे।

अमेरिका में एक प्रकार का ज़हरीला साँप पाया जाता है; जिसे Rattle-Snake कहते हैं। पृथ्वी पर इसके-जैसे ज़हरीले तथा भयंकर साँप बहुत ही कम होते हैं। हमारे देश के गोखरा-साँप को भी इसके सामने हार माननी पड़ती है। अब तक प्रायः ५०० रैट्‌ल-साँप जमा किए गए हैं। ये एकसाथ २५-३० बच्चे देते हैं। बच्चों के बड़े होने में पूरा एक वर्ष लगता है।

बायस्कोप के चित्रों के लिये यहीं से साँप लेकर चित्र खींचे जायँगे। अमेरिका के विद्यालयों में साँपों की आवश्यकता पड़ने पर यहीं से साँप जायँगे। यहाँ से साँप के तेल और विष का भी चालान होगा। साँप का तेल वात-रोग की औषध है। जो कारीगर सूक्ष्म यंत्र तैयार करते हैं, उनके लिये भी यह तेल बड़े काम का है। साँप का विष आजकल एलोपैथिक औषध में भी काम आता है। आठ-नव दिन बाद साँप का विष निकाल लिया जाता है। इससे साँप की कोई क्षति नहीं होती।



साँप के मुँह से विष निकलवाया जाता है
(पात्र के तले में कुछ विष जमा हुआ दिखलाई देता है)

सर्पावास के निकट ही और ज़मीन ली गई है; जो आधा एकड़ है। वहाँ चूहे और छछूँदरें रक्खी जायँगी। उनकी संतान साँपों का आहार होगी। हिसाब लगाकर देखा गया है कि पहले-पहल प्रत्येक सप्ताह प्रायः दस-पंद्रह हज़ार चूहों और छछूँदरों की आवश्यकता होगी।

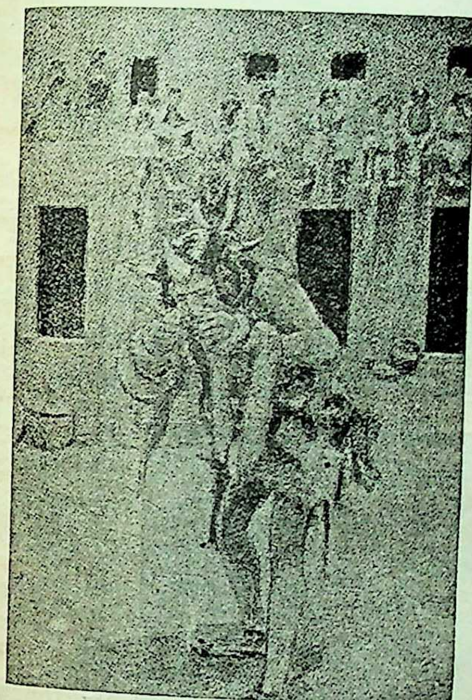
इस सर्पावास में सर्प-स्वभाव का अध्ययन करने के सभी सुबीते हैं; क्योंकि सभी समय सभी अवस्थाओं के साँपों का पर्यवेक्षण किया जा सकता है। जिन महाशय ने इस काम को अपने हाथ में लिया है, वह गत ३५ वर्ष से सर्प-संबंधी नाना प्रकार की खोजें कर रहे हैं। वह रैट्‌ल-साँप को साँपों का राजा समझते हैं। ये साँप अकारण किसी को नहीं काटते; चोट खाने पर भी चोट करने-वाले को भाग जाने का काफ़ी समय देते हैं। अधिकांश साँप डरकर काटते हैं, क्रोध से नहीं। थोड़े ही में वे भय-भीत होते हैं। बंदी-अवस्था में साँप साधारणतः थोड़ी देर बाद मर जाता है। इसका कारण उसका बहुत डर जाना ही है। अमेरिका का सिलवर रेसर-नामक साँप मधुर बाजों की आवाज़ सुनकर मुग्ध होता और मनुष्यों के पास चला आता है। जब तक बाजा बजता रहता है, तब तक वह वहाँ से हटने का नाम नहीं लेता।

इन सर्प-विद्या-विशारद के विषय में भी दो-एक बातें कहना आवश्यक है। इनके पिता का आहेवा-शहर में एक खलिहान था। वहीं सात वर्ष की अवस्था में यह एक दिन एक पक्षी का बच्चा पकड़ने गए। पेड़ के खोल में जब इन्होंने हाथ डाला, तो एक साँप इनके हाथ में लिपट गया। इन्होंने डरकर साँप का सिर दबा दिया, और कूदकर पेड़ के नीचे पहुँचे। इसके बाद उस साँप को घर लाकर एक जगह छिपा रक्खा। क्रमशः यह और साँप जमा करने लगे। इनको सर्प-संग्रह का एक नशा-सा हो गया। किसी नए प्रकार के साँप की खोज में यह कभी-कभी घने जंगल में अकेले घूमने निकल जाया करते थे। मैक्सिको के जंगलों में यह कई महीने अकेले बिता चुके हैं। युक्त-राज्य के Death Valley-नामक स्थान में भी यह कई सप्ताह रह चुके हैं। यह पृथ्वी में सबसे गरम स्थान है। दिन में यहाँ की गरमी १६० और रात में १२० डिग्री रहती है। दिन में यहाँ नंगे पैर चलना संभव नहीं। पैर का तलवा पक जाता है। यहाँ जो खानें हैं, उनमें जो कुली-मज़दूर काम करते हैं, उन्हें प्रतिदिन प्रायः १५० मील रेल पर आना-जाना पड़ता है। यहाँ कोई रह नहीं सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने इस भीषण स्थान में भी कष्ट उठाकर कई सप्ताह बिताए हैं। बायस्कोप के प्रथम युग में इन्होंने अपने एक प्रिय साँप को लेकर, जो २२ फ़ीट ८ इंच लंबा और १६० पौंड (२ मन) वज़न में था, चित्र खिंचवाया है। इस साँप का नाम "ह्यूगो" था। खेल दिखाते समय कभी-कभी वह इनके शरीर में चारों ओर लिपट जाता था। इस समय साँप यदि थोड़ा भी नाराज़ होता, या



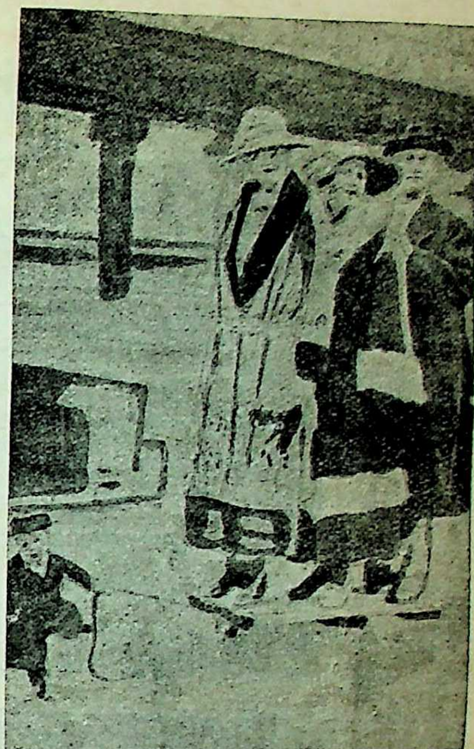
लॉस एंजेलेस के सर्प-विद्या-विशारद जुनाई
(भारतीय मदारी की पोशाक में अपने दो प्रिय साँपों को लेकर खेल दिखला रहे हैं)

भय पाता, तो इनको पीस डालता। ह्यूगो के चंगुल से निकलने में प्रायः २० मिनट लगते थे। ह्यूगो के शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरकर, थपकियाँ लगाकर ही शरीर से छुड़ाना संभव था। यह महाशय सर्प-पालन ही को अपने जीवन का एक-मात्र काम समझकर उसी में अपना बाक़ी समय लगावेंगे। इनका नाम मिस्टर जुनाई है।

× × ×

५. एक हाथ ऊँचा मनुष्य

मेजर क्लैरेंस के शरीर की उँचाई एक हाथ और वज़न साढ़े आठ सेर है। लंबाई में इनसे छोटा मनुष्य संसार-भर में नहीं है। लकड़ी की एक गाड़ी पर तीन बड़े-बड़े मनुष्यों को खड़ा कर आप खींचने की चेष्टा कर रहे हैं। बड़े मनुष्यों में जो सबसे छोटा है, उसकी लंबाई सात फ़ीट चार इंच है।



एक हाथ ऊँचा मनुष्य

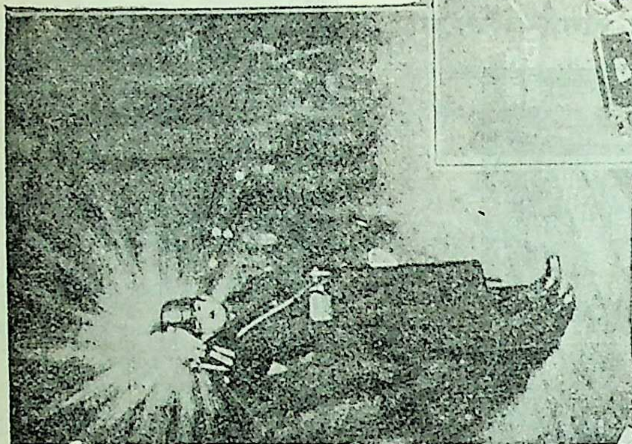
× × ×

६. पुलीस के हाथ के लिये बिजली का लैंप

अँधेरे में या वृष्टि के दिनों में सड़क के मोड़ों या चौराहों पर यातायात-निर्देश के लिये पुलीस के हाथ उठाने पर मोटरों या गाड़ियों के चालक उसे देख नहीं सकते, और इस कारण कभी-कभी दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं। इस प्रकार की दुर्घटनाओं से बचने के लिये अमेरिका में पुलीस को एक बिजली का लैंप मिलता है। उसे वह हाथ में लगा सकती है। पुलीस, कमर में जो चपरास (Belt) बाँधती है, उसी में बैटरी झुला दी जाती है। हाथ के 'बल्ब' (Bulb) के साथ उसका संबंध, एक पतले तार द्वारा, होता है। पुलीस जब अपना हाथ उठाती है, तभी प्रकाश होता है, अन्यथा नहीं। यह प्रकाश

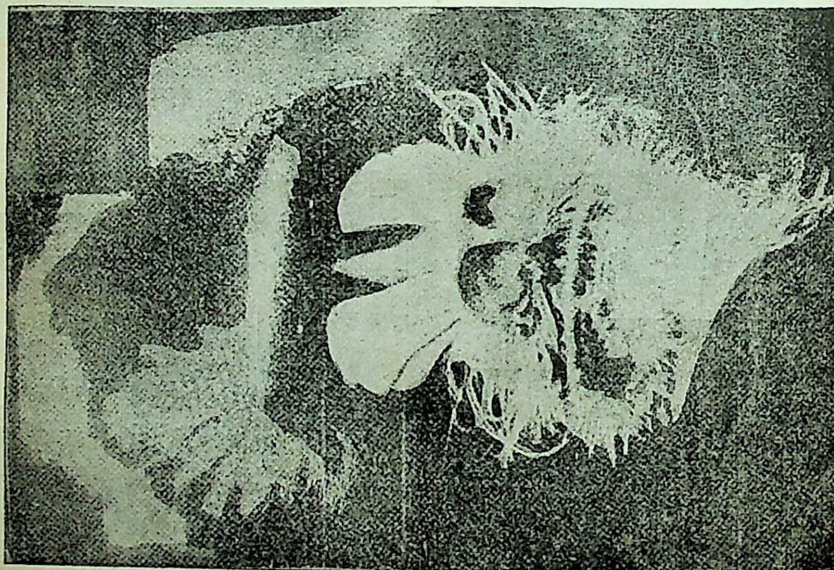
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri





पुलीस के हाथ के लिये इलेक्ट्रिक लैंप



सिंह का प्रतिद्वंद्वी पशु

बड़ा ही उज्ज्वल होता है, और कोई भी मनुष्य उसे आसानी से देख सकता है।

× × ×

७. सिंह का प्रतिद्वंद्वी

संसार में एक ऐसा भी पशु है, जो सिंह के आक्रमण से ज़रा भी नहीं डरता। देखने में वह बड़ा भीषण होता है। यह पशु पश्चिमी-आफ़्रिका में पाया जाता है। वहाँ से एक पकड़कर अमेरिका के फ़िलाडेल्फ़िया-शहर में लाया गया है। हिंदी-नाम तो इसका हमें मालूम नहीं, किंतु अँगरेज़ी में इसे "Black-faced Drill" कहते हैं। चित्र में इसकी शकल देखिए। हमारे यहाँ भी 'शरभ' नाम का जीव सिंह का प्रतिद्वंद्वी माना गया है। उसके आठ पैर होते हैं। पर वह इस युग में देखा नहीं गया। यह उसी का भाई-बंधु तो नहीं है?

रमेशप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिला मनोरंजन

१. स्त्रियों का युग



रतवर्ष में ही नहीं, सारे संसार में स्त्री-समाज के अधिकारों की अवहेलना हो रही थी। कुछ ही दिन पहले स्त्री-शिक्षा के सैकड़ों विरोधी मिलते थे; और, सच पूछिए, तो शिक्षा का अभाव ही इस अवहेलना का कारण था। परंतु गत कुछ वर्षों से संसार की प्रगति पर दृष्टि-पात करने से पता चलता है कि स्त्रियों के उत्थान का युग अब आ गया है। बात यह है कि कुछ तो स्त्रियाँ स्वयं अधिक शिक्षित हो चली हैं, और हमारे सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विचारों में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। लगभग प्रतिदिन और पृथ्वी के सभी भागों में स्त्रियों के नए-नए अधिकारों के लिये सभाएँ हुआ करती हैं। बहुत दिन हुए, सन् १८८८ ईसवी में ही अमेरिका के वाशिंगटन-नगर में एक अंतरजातीय महिला-सम्मेलन (International Women's Conference) स्थापित हुआ था। तब से इसके कितने ही अधिवेशन भी हो चुके हैं। ये अधिवेशन संसार के भिन्न-भिन्न देशों में हुआ करते हैं, और वे नारी-समाज के कल्याण का प्रयत्न करते हैं।

अब तो स्त्रियाँ जज, बैरिस्टर तथा कौंसिलों की मेंबर होने लग गई हैं। कितनी ही बिशप (Bishop), वैज्ञानिक और डॉक्टर हैं। अभी समाचार मिला है कि श्रीमती विंटिंगहम, हिल्टन फ़िलिपसन एवं लेडी ऐष्टर, ये तीन महिलाएँ इँगलैंड की पार्लियामेंट में मेंबर चुनी गई हैं। इनके चित्र दिए जा रहे हैं। आशा है, इसी भाँति भारतवर्ष में भी बड़ी-बड़ी कौंसिलों के लिये स्त्रियाँ निर्वाचित होंगी।



अंतरजातीय महिला-सम्मेलन का एक अधिवेशन

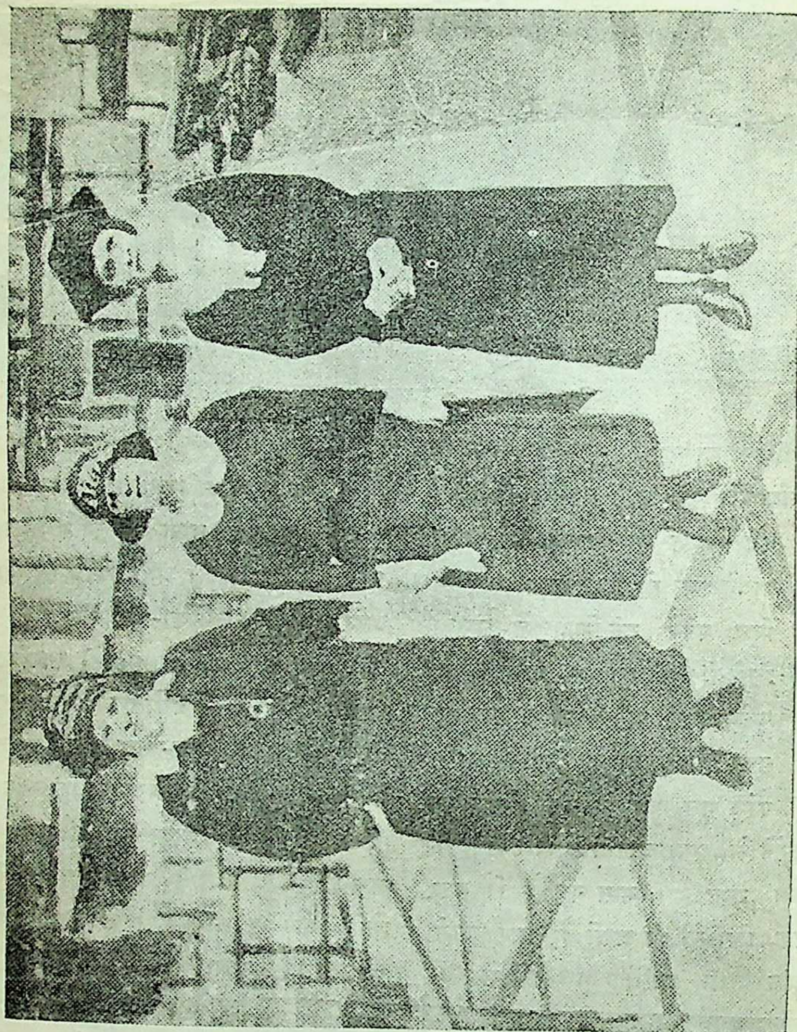
यह तो हुई स्त्रियों की शिक्षा-संबंधी उन्नति। इसके साथ ही उनकी शारीरिक उन्नति भी हो रही है। कलियुगी भीम प्रोफ़ेसर राममूर्ति के साथ-साथ प्रसिद्ध महिला कुमारी ताराबाई-जैसी स्त्रियों का भी नाम सुनने में आता है। यद्यपि स्त्रियों को शास्त्रों में 'अबला' कहते आए हैं, तथापि सभी जानते हैं कि महाराज दशरथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

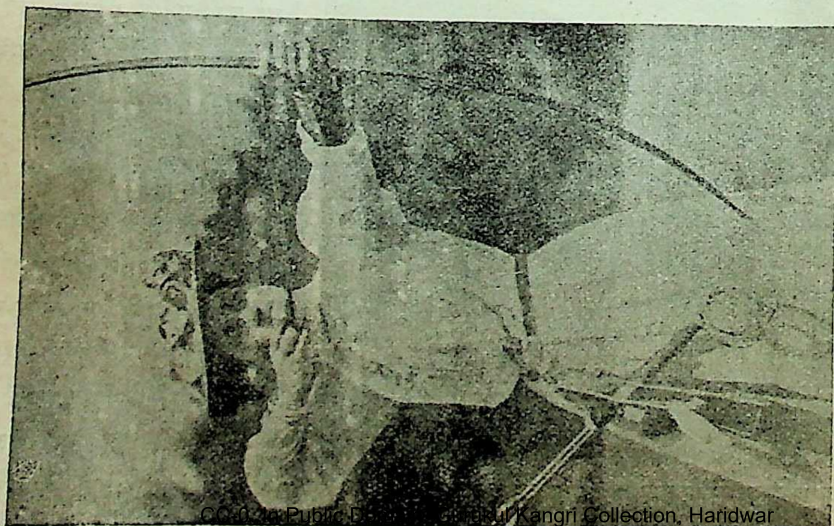
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रथ का धुरा टूट जाने पर महारानी कैकेयी ने पहिए में अपना हाथ डालकर उनकी कैसी सहायता की थी ।

हर्ष का विषय है कि अब शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों की शारीरिक उन्नति का भी ध्यान रक्खा जाने लगा है ।



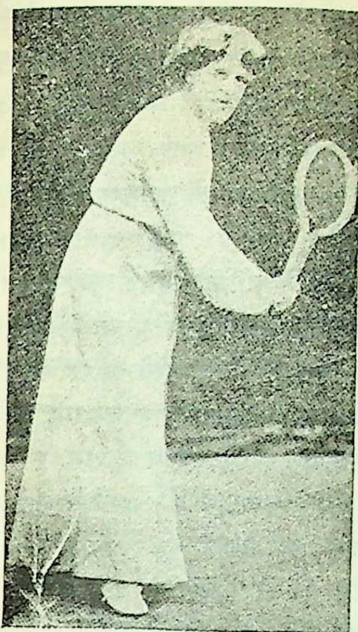
इँगलैंड की पार्लियामेंट में निर्वाचित तीन महिलाएँ



पाश्चात्य धनुर्विद्या-सम्मेलन में मिस हाइड सबसे निपुण सिद्ध हुईं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

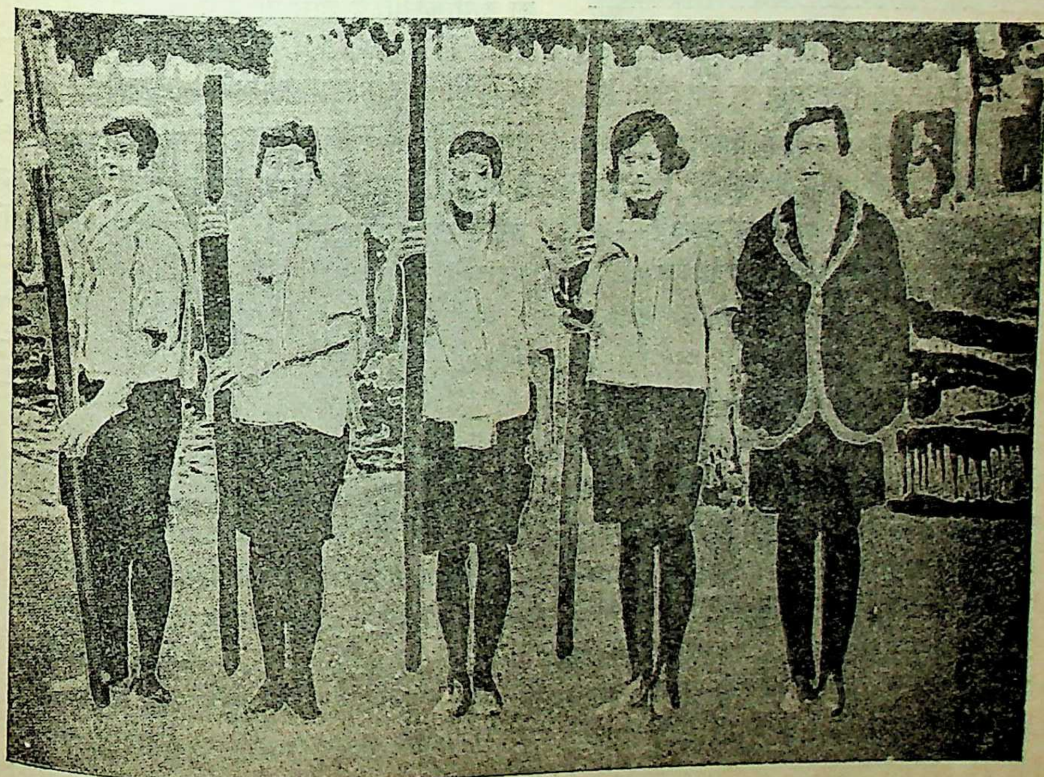
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मिस् डी० के० डगलस
(यह टेनिस के खेल में सर्व-प्रथम आई हैं)

भारतवर्ष में तो अभी इस विषय पर लोग उतना ध्यान नहीं दे रहे हैं, पर योरप और अमेरिका आदि में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ खेल-कूद, दौड़ आदि में बराबर भाग लेती हैं। कितनी ही तो पारितोषिक तथा पदक आदि भी पाती हैं। अनेक स्त्रियाँ ऐसे सार्वजनिक खेलों में सर्व-प्रथम तक आई हैं। इस संबंध में कुछ महिलाओं के चित्र भी दिए जा रहे हैं।

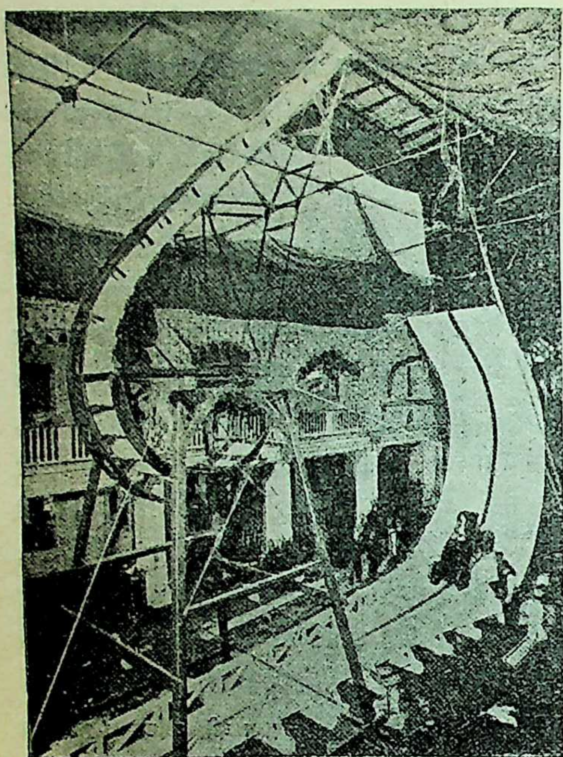
हमारा यह अभिप्राय नहीं कि शारीरिक उन्नति का इतना ध्यान रक्खा जाय कि स्त्रियाँ कर्कशा हो जाया करें, और गार्हस्थ्य-धर्म में बाधा पड़े। चाहे जो हो, हमें स्त्रियों से सरकस अथवा अखाड़े का काम तो लेना नहीं है। दूसरे, भारतवर्ष का दांपत्य-संबंधी आदर्श भी और देशों से भिन्न है। परंतु, हाँ, हम सामाजिक कुरीतियों, पारिवारिक अत्याचारों तथा उदार और सर्वांगीण उन्नति की अन्य बाधाओं के विरोधी अवश्य हैं। आशा है, देश के नेता लोग इन सब बातों का विचार करके स्त्रियों के कल्याण की व्यवस्था करेंगे।



कैंब्रिज के न्यूहम-कॉलेज से जो आठ महिलाएँ बोट-दौड़ के लिये गई हैं, उनमें ये पाँच छात्री भी हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस अद्भुत और भयंकर मशीन में एक स्त्री मोटर पर बैठकर घूमती हुई फिर भूमि पर आ जाती है

हमारी बहनें भी अपनी उन्नति में दत्त-चित्त रहेंगी। कारण, स्त्रियाँ ही देश की उन्नति का मूल हैं, और उन्हीं की सहायता से हम देश को स्वर्ग बना सकते हैं—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवताः।"

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

× × ×

२. स्त्री-संसार

इँगलैंड

इँगलैंड के कैंब्रिज-विश्वविद्यालय में स्त्रियों को पुरुषों के-से सब अधिकार नहीं दिए जाते। लार्डों की सभा में इस विषय की आलोचना हुई थी। कुछ दिन हुए, आक्सफ़ोर्ड-युनिवर्सिटी से पुरुष और स्त्रियों की विषमता दूर कर दी गई है; किंतु कैंब्रिज-विश्वविद्यालय में अब तक भेद-भाव वर्तमान है। लार्ड हैल्डेन ने कहा—"कैंब्रिज-विश्वविद्यालय को सरकारी मदद मिलती है, इसलिये पार्लियामेंट उक्त विश्वविद्यालय को स्त्रियों का प्राप्य अधिकार देने के लिये बाध्य कर सकती है।" बहुतों ने इस बात का समर्थन इसलिये नहीं किया कि ऐसा करने से विश्वविद्यालय की स्वाधीनता में हस्तक्षेप करना होगा। हाँ, लार्डों की सभा ने इतना अवश्य किया है कि कैंब्रिज-विश्वविद्यालय के नव गठित अधिकारियों से इस समस्या पर पुनः विचार करने और जनता के मत की ओर लक्ष्य रखकर स्त्रियों के अधिकार को स्वीकार करने की व्यवस्था करने का अनुरोध किया है। ऐसी बातों को देखकर कौन कहेगा कि इँगलैंड में स्त्री और पुरुषों को समान अधिकार प्राप्त हैं? विश्वविद्यालयों में स्त्री-पुरुषों के समान अधिकार नहीं हैं। वकील-बैरिस्टर होने का अधिकार भी बहुत तर्क-वितर्क के बाद स्त्रियों को प्राप्त हुआ है। इँगलैंड के पुरुष भी भारत के पुरुषों के समान ही प्रायः स्वार्थी हैं। किंतु उस देश की स्त्रियाँ इस देश की स्त्रियों से अधिक स्वाधीन प्रकृति की तथा स्वावलंबी हैं, इसीलिये वे पुरुषों की यथेच्छाचारिता को सहज ही सिर नहीं झुकातीं। वे पुरुषों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाकर अपने हक़ हासिल करना जानती हैं।

इँगलैंड में एक नियम यह हुआ है कि जो स्त्रियाँ शिक्षक का काम करेंगी, वे काम पा जाने के बाद यदि शादी कर लें, तो उन्हें पद-च्युत कर दिया जायगा। इस नियम के अनुसार कई विवाहिता शिक्षिका पद-च्युत कर दी गई हैं। पद-च्युत स्त्रियों ने अदालत की शरण ली है। उनका कहना है कि यह क़ानून विवाह में बाधक हुआ है। देखें, अदालत से क्या फ़ैसला होता है। यह क़ानून ४००० स्त्रियों को पद-च्युत करेगा।

सरकारी विवरण से पता लगता है कि इँगलैंड के रेलवे-विभाग में ७, ६६, ३८१ व्यक्ति काम करते हैं। उनमें ७, ३७, ६४६ पुरुष और बाक़ी स्त्रियाँ हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ कठिन तथा विपज्जनक कार्य करती हैं। उनमें से १ शंटर, २० स्टेशन-मास्टर, ७ फ़ायर-मैन, ६ रेलवे-पुलीस और १६५ यंत्रों का काम करनेवाली हैं।

बारविक-विभाग से श्रीमती फ़िलिप्सन पार्लियामेंट की सदस्या निर्वाचित हुई हैं। यह एक अभिनेत्री हैं। वर्तमान पार्लियामेंट में इनके अतिरिक्त और भी दो स्त्री सदस्या हैं।

अमेरिका

मिस मैकडाउल शिकागो-शहर की मंत्रणा-सभा की सदस्या हुई हैं। वह बहुत दिनों से महिला-श्रमजीवियों की उन्नति और स्त्रियों के अधिकार दिलाने के आंदोलन में शरीक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस मार्टिस मिशिगन-प्रदेश में रजिस्ट्रार चुनी गई हैं ।

मेक्सिको की क़ानून-समिति में श्रीमती वार्था पैक्सटन मेंबर चुनी गई हैं । उनकी कार्य-कुशलता से सभी संतुष्ट हैं।

श्रीमती टारविलज़ार पोर्ट जार्विस की व्यापार-सभा की अध्यक्षा नियुक्त हुई हैं । वह पहले इस सभा के कोषाध्यक्ष के पद पर थीं ।

अमेरिका के बहुत-से कॉलेजों में स्त्रियों को शिशु-पालन की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है । नीचे के चित्र में एक असली लड़का और स्त्री दिखलाई गई है । शिशु का नाम जीन क्रिस्टी है । बुकिंस-शहर के सरकारी कॉलेज की छात्रियों के यत्न से यह खूब स्वस्थ है । कॉलेज में एक शिशु-प्रयोगशाला (Laboratory) स्थापित हुई है । लड़कियाँ क्लास में शिशु की देख-रेख करती हैं, उसे



शिशु-पालन की शिक्षा प्राप्त करनेवाली
६ माताओं से पालित बालक जीन

खिलाती-पिलाती हैं, और शिशु-पालन की सभी व्यावहारिक बातें इस प्रयोगशाला में, अपने हाथों से प्रयोग कर, सीखती हैं। एक टर्म (Term) में बालक जीन छः पालिका माताओं के यत्नाधीन रहता है; अर्थात् उसकी एक-एक मा प्रायः दो सप्ताह तक उसका मातृत्व करती है। तसवीर में उसका वज़न लेते हुए दिखलाया गया है । वज़न की कमी-वेशी उसकी कृशता या मुटापे का चिह्न है ।

जापान

पेन-सुजोकी नाम की एक जापानी महिला ने व्यवसायी स्त्रियों में सर्वोपरि स्थान प्राप्त किया है । वह विधवा है । इस समय उसके ४५ करोड़ रुपए व्यवसाय में लगे हुए हैं । उसके अपने कई स्टीमर हैं । इसके अलावा एशिया, योरप और अमेरिका के अनेक स्थानों में उसके व्यवसाय के केंद्र और कारख़ाने हैं ।

न्यूज़ीलैंड

टारेस-प्रणाली का वायु-द्वीप आजकल एक महिला के शासनाधीन है । श्रीमती पाहल यहाँ की गवर्नेस हैं । उन्होंने इस द्वीप में मादक द्रव्यों का आना बंद कर दिया है । चरित्र-हीन मनुष्य इस द्वीप में नहीं रह सकते । द्वीप का शासन-व्यय यहाँ के राजस्व से ही होता है ।

आफ्रिका

दक्षिण-आफ्रिका में स्त्रियों को वोट देने के अधिकार-वाला प्रस्ताव एक वोट से गिर गया । वहाँ की स्त्रियाँ कह रही हैं कि जब तक उन्हें उनका अधिकार नहीं मिलता, तब तक वे कर नहीं देंगी ।

रशिया

मैडम कोलेंटाई को सोवियट-गवर्नमेंट ने अपना दूत बनाकर नार्वे भेजा है । वह पहले शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के पद पर थीं ।

फ़िलिपाइन-द्वीप

फ़िलिपाइन की क़ानून-परिषद् ने स्त्रियों के वोट देने के अधिकार को सर्व-सम्मति से मान लिया है ।

मिस्र

मिस्र की स्त्रियाँ पुरुषों के साथ बड़े ज़ोरों से स्वाधीनता के लिये आंदोलन कर रही हैं । गवर्नमेंट का दबाव भी उन्हें हतोत्साह नहीं कर सका । मिस्र की सब स्त्रियों को जातीय आंदोलन में शरीक करने के लिये एक विराट् महिला-महामंडल स्थापित करने की चेष्टा हो रही है । रोम में जो अखिल महिला-कानफ़्रेंस हुई थी, उसमें मिस्र की स्त्रियों ने अपना प्रतिनिधि भेजा है ।

वृंदावनविहारीशरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पुस्तक-परिचय

१. वैद्यक और शारीरिक

पवित्र जीवन—लेखक, रामनिरीक्षणसिंह अध्यापक ; प्रकाशक नवयुग ग्रंथ-मंदिर, लहेरिया सराय, दरभंगा। आकार छोटा । पृष्ठ-संख्या ५४ । छपाई-सफ़ाई साधारण । मूल्य ।≈)

इस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय "स्वास्थ्य-रक्षा" है। ग्रंथकर्ता महाशय ने "बिहार-प्रांत के ग्रामों की दशा का पर्यवेक्षण करके ग्रामवासी अपने देशबंधुओं की वर्तमान दशा को विशेष रूप से लक्ष्य करके स्वास्थ्य-विज्ञान के विषय में" यह एक पुस्तक लिखी है। आपको "आशा है कि इस प्रथम भेंट को अपनाकर सहृदय जनता अग्रिम प्रयत्न के लिये (आपको) उत्साहित करेगी"।

गीता में एक श्लोक है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु;
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।

इस पुस्तक में इसी श्लोक के नाम पर अध्यापकजी ने तमाम दुनिया-भर की बातें कह डाली हैं। गंदगी का वर्णन आपने विशेष रूप से किया है। और यों तो दूध, दही, कुआँ, तालाब, "हज्जाम के लोखर", "घासलेट किरासिन तेल की टेम" से लेकर योग-मार्ग के यम-नियमों तक का वर्णन इसमें है। गाँवों की गंदगी का सविशेष वर्णन करके आपने प्रत्येक गाँव में एक-एक आदर्श "पैखाना" स्थापित करने की सलाह दी है। और उसके लिये ७०) रुपए साल का ख़र्च भी अंदाज़ा है। आपकी राय में सरकार और ज़मींदार लोग इस ओर ध्यान नहीं देंगे। अतः ग्रामवासियों को स्वयं यह काम करना चाहिए। हमारी सम्मति में तो यदि पुस्तक लिखने की अपेक्षा आप गाँवों में प्रचार करके कुछ आदर्श पैखाने स्थापित कराते, तो प्रकृत उपकार होता। आपकी धारणा है कि बाज़ार की "सेर-भर मिठाई में आध पाव सड़क पर की धूल मिल जाती है" (?) (पृ० १०)। जेठ के महीने को आप चौमासे के अंतर्गत समझते हैं (पृ० ३८)। आपका ख़याल है कि नाई की "पानी रखने की कटोरी कभी भूल से भी नहीं मली जाती है" (पृ० ३२)। निर्धन स्त्रियों को "साल में कभी पर्व-त्यौहार में स्नान करने का सौभाग्य होता है"। इत्यादि।

अब आपके विचारों का नमूना भी देखिए। उक्त गीता के श्लोक की व्याख्या करते हुए आपने आहार को तीन भागों में बाँटा है। १ अन्न, २ जल, और ३ वायु। "प्राणि-मात्र" के लिये दो हिस्से अन्न, एक हिस्से जल और "एक-चौथाई वायु" का आहार करने की व्यवस्था आपने की है। परंतु कोई ऐसी तरकीब बताने की कृपा नहीं की, जिससे लोग रोटी-पानी के साथ एक-चौथाई वायु भी खा लिया करते। आपने "ग्रामवासियों के लिये" यह पुस्तक लिखी है। उन्हें तो अवश्य ही कोई ऐसा उपाय बताना चाहिए था, जिससे वे कमती-बढ़ती वायु न खाकर ठीक 'एक-चौथाई' खाते, और आरोग्य-लाभ करके आपको दुआ देते!

शायद आपने आयुर्वेद का निम्न-लिखित पद्य किसी से सुनकर उसी पर यह अकांड-तांडव किया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशौ पानेनैकं प्रपूरयेत् ;
वायोः संचारणार्थं च चतुर्थमवशेषयेत्।

संभवतः इसी बात को न समझकर आप 'प्राणि-मात्र' को एक-चौथाई वायु खिलाते हैं।

पूरे ३२ पृष्ठों में 'आहार' का बखान करने के बाद आपने 'विहार' की ख़बर ली है। विहार का लक्षण आप करते हैं—

"विहार—उचित समय पर उचित काम।" अर्थात् ठीक १० बजे दफ़्तर, कचहरी और कॉलेजों में पहुँचना, गाड़ी छूटने से पहले स्टेशन पर पहुँचना, सूर्य निकलने से पहले पाख़ाने में जा बैठना, यह सब 'विहार' हुआ।

आगे आप इसके तीन विभाग करते हैं—१ भोजन, २ शयन, और ३ व्यायाम।

अन्न, जल तो 'आहार' में आ चुके। अब यह 'भोजन' उसके अतिरिक्त और क्या बला है? यदि वही है, तो आहार और विहार में भेद क्या हुआ? 'शयन' और 'व्यायाम' भी विहार के ही अंतर्गत हैं। 'व्यायाम' का लक्षण भी सुन लीजिए—"व्यायाम से उन सब कामों से तात्पर्य है जिनमें अंग-संचालन हो", अर्थात् हुलास सूँघना, दातन करना और पाख़ाना फिरना भी आपकी राय में व्यायाम है। इस पुस्तक में आद्यंत इसी प्रकार की अंड-बंड बातें भरी हैं।

ग्रंथकर्ता महाशय बिहार-विद्यापीठ, पटना के अध्यापक हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि आप छात्रों को आहार-विहार आदि शब्दों का क्या अर्थ बताते होंगे! आजकल नव-जात पत्रों की कृपा से हर चौमासे में कोड़ियों नए लेखक और कवि तैयार हो जाया करते हैं। न कोई सभा इनकी परीक्षक है, न कोई पत्र, पत्रिका सच्ची समालोचक। इसी से यह दुरवस्था दिन-दिन बढ रही है।

× × ×

वृद्धावस्था दूर करने के उपाय—संगृहीता (?), डॉक्टर महेंद्रलाल गर्ग; और प्रकाशक, क्षेत्रपाल शर्मा, मालिक सुख-संचारक कंपनी, मथुरा। डिमाई आकार। पृष्ठ-संख्या ८०। चित्र-संख्या २८। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण। मूल्य १) रु०। प्रकाशक से प्राप्य।

अमेरिका-निवासी मिस्टर सानफ़ोर्ड वेनिट नाम के एक सज्जन ने बुढ़ापे से तंग आकर उसे मार भगाने के लिये कुछ विशेष प्रकार की कसरतों का आविष्कार किया है। उसमें उन्हें सफलता भी ख़ूब हुई है। यहाँ तक कि आज ७२ वर्ष की उम्र में भी उनकी सब शारीरिक शक्तियाँ ३५ वर्ष के जवान के समान काम करती हैं। ये कसरतें चारपाई पर पड़े-पड़े भी की जा सकती हैं। लिहाफ़ के अंदर भी हो सकती हैं। इनमें किसी बाहरी साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती।

वेनिट साहब ने अपने अनुभवों से दूसरों को लाभ पहुँचाने के लिये अँगरेज़ी में एक पुस्तक लिखी है; जिसमें चित्रों द्वारा सब कसरतें समझाई गई हैं।

यह पुस्तक उसी का 'संग्रह' अथवा मर्मानुवाद है। परंतु 'संगृहीता' महाशय ने चित्र देने में संकोच करके पुस्तक को निकम्मा कर दिया है। प्रथम चित्र के नीचे लिखा है—"गरदन और पेट के नस-संबंधीय दस प्रकार के कसरत"; परंतु चित्र एक ही प्रकार का दिया है। बाक़ी ९ प्रकारों का न तो कोई चित्र है, और न कहीं पुस्तक में उनका अलग-अलग वर्णन है।

यही दशा सब कसरतों की है। किसी चित्र के नीचे 'पाँच प्रकार' लिखे हैं, किसी के नीचे 'दस'। परंतु उनको यथावत् जानने के लिये न तो पूरे चित्र हैं, न कहीं सांगोपांग वर्णन। 'संगृहीता' और प्रकाशक महाशय को अगले संस्करण में इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

तथापि पुस्तक में जो कुछ वर्णन है, उससे भी कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य उठाया जा सकता है। भारतवर्ष में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो बराबर बैठे रहने के कारण अपना स्वास्थ्य खो बैठे हैं। उन्हें इस पुस्तक की सहायता से अवश्य लाभ उठाना चाहिए, और देखना चाहिए कि भारतवर्ष में इससे कहाँ तक सफलता हो सकती है।

वेनिट साहब औषध-प्रयोग के नितांत विरोधी हैं। यह बहुत अंशों में ठीक भी है। अस्वाभाविक विकृत आहार-विहार करने और ज़रा-ज़रा-सी बात में दवाख़ानों की ओर दौड़नेवाले लोग ही अपने स्वास्थ्य को अधिक बिगाड़ा करते हैं।

'भूमिका' में प्रकाशक महाशय इसी प्रकरण को लेकर भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों को भी फटकार बताते हुए लिखते हैं—"कथा है कि च्यवनप्राश की कृपा से च्यवन ऋषि युवा हो गए थे, पर आजकल तो किसी वृद्ध को च्यवनप्राश खाकर युवा होते नहीं देखा।" इस पर हमारा नम्र निवेदन है कि आपने जो च्यवनप्राश देखा है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह ठीक वैसा ही है, जैसा कि आपका 'सुधासिंधु'। जैसे आपका 'सुधासिंधु' संसार की सब बीमारियों को एक ही फूँक में उड़ाता है, वैसे ही 'इश्तहारी' वैद्यों का यह च्यवन-प्राश भी बुड्ढों को एक ही झपट में जवान कर देता है। पुराने ऋषियों का च्यवनप्राश देखना हो, तो किसी प्राचीन पुस्तक को उठाकर देखिए। उसमें लिखी सब औषधों का यथासमय यथास्थान से संग्रह कराइए। यदि आपके सौभाग्य से सब औषधें मिल जायँ, तो उनसे च्यवनप्राश तैयार कराकर खा देखिए। फिर भी यदि कुछ फल न होगा, तो हम भी आप ही की सम्मति के अनुयायी बन जायँगे। भारतवर्ष ने बुड्ढों को जवान बनाने के क्या-क्या उपाय निकाले थे, इसका पता लगाना हो, तो महर्षि पतंजलि के योग-दर्शन में 'जन्मौषधि-मन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः' इस सूत्र का भाष्य देख जाइए। यदि अनुभव करने पर भी वे सब बातें व्यर्थ सिद्ध हो जायँ, तो फिर ऋषियों-मुनियों को जी भर के खरी-खोटी सुनाइएगा।

× × ×

शरीर-विज्ञान—लेखक और प्रकाशक, भद्रगुप्त वैद्य, तिलहर (ज़िला शाहजहाँपुर)। छपाई आदि साधारण। मूल्य ।।)

इस विषय की अनेक पुस्तकें हिंदी में निकल चुकी हैं। इस पुस्तक के लेखक महाशय का कहना है कि "आज-कल भारतवासियों में से अनेकान् (?) स्त्री-पुरुष यह भी नहीं जानते कि शरीर किस प्रकार बना है। ××× इस दुःख से दुःखी हो आज मैं शरीर-विज्ञान-नामक पुस्तक आपकी भेंट करता हूँ।"

यह हम आपके कहने से मान सकते हैं कि आपने भारतवर्ष की दशा पर तरस खाकर उसके उद्धार के लिये यह पुस्तक लिखी हो; परंतु इससे लोगों का कहाँ तक उपकार होगा, यह हम नहीं कह सकते। क्या ही अच्छा होता कि गुप्त महाशय इस विषय के कुछ विशुद्ध और परिमार्जित विचार लोगों के सामने रखते। पुस्तक के आरंभ में ही एक चित्र है; जिसमें शरीर का स्नायु-जाल दिखाया गया है। परंतु आपने उसके नीचे लिखा है—"शरीर की अँतड़ियाँ।" अँतड़ियाँ सिर से पैरों तक होती हैं, या केवल पेट में ही, यह आपने ध्यान नहीं दिया। पुस्तक में पृष्ठ-संख्या नहीं है।

आरंभ में समर्पण भी है। उसमें "श्रीपूज्यास्पद (?) गुरुवर्यमहोदयाः" लिखा है; परंतु उनका नाम और पता बताने की आपने आवश्यकता नहीं समझी।

× × ×

जीवन-मरण-रहस्य—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायण-सिंह बी० ए०, एम्० एल्० सी०। देश-सुधार-ग्रंथमाला-कार्यालय, अर्दली-बाज़ार, बनारस से प्राप्य। छपाई, सफ़ाई और काग़ज़ संतोष-जनक। पृष्ठ-संख्या ७७। आकार मँझोला। मूल्य ।≈)

लोगों का मरण-भय दूर करने और भद्रा, दिशा-शूल आदि की 'मिथ्या मृत्यु' का भय हटाने के लिये ग्रंथकार ने इस पुस्तक की रचना की है।

आरंभ में इस पुस्तक में पाश्चात्य ढंग पर शरीर-रचना का वर्णन है। आगे चलकर साइकालोजी (Psychology) के आधार पर मानस-शास्त्र की कुछ बातें बताई गई हैं। अंत में थियासोफ़िकल सोसायटी के ढंग पर मृत्यु के बाद की कुछ बातें कही गई हैं। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

शालग्राम वैद्य-शास्त्री

× × ×

२. ज्योतिष

सुगम ज्योतिष—संग्रहकर्ता, अनुवादक और प्रकाशक, कूर्माचलीय पंडित देवीदत्त जोशी (संध्यादर्पणकार)। हिंदी-भाषा में अनुवादित तथा लॉ (?) जर्नल-प्रेस, इलाहाबाद में मुद्रित। स्कूली साइज़। पृष्ठ-संख्या कुल मिलाकर ८१७, काग़ज़, और छपाई-सफ़ाई, जिल्द उत्तम। मूल्य लिखा नहीं।

इस समय यद्यपि फलित-ज्योतिष के बृहज्ज्योतिस्सार आदि छोटे-मोटे कई संग्रह-ग्रंथ हिंदी-अनुवाद के साथ काशी, बंबई, लखनऊ आदि स्थानों से प्रकाशित हुए हैं, परंतु उनके विषय-संग्रहों में कई प्रकार की कमी है। अशुद्धियाँ भी भरपूर हैं। साथ ही एक ही किसी संग्रह से पूरा काम भी नहीं चलता; इधर-उधर भी कई बातें टटोलनी पड़ती हैं। तो भी वे काम-चलाऊ हैं। इसलिये किसी उत्तम साधन के अभाव से सर्व-साधारण में ऐसे ग्रंथों का बड़ा प्रचार है। जोशीजी ने इस अपने संग्रह-कार्य में, कई अंशों में, सफलता प्राप्त की है। जो कुछ काट-छाँट करके विषयों का समावेश किया है, वह प्राचीनता को लिए हुए भी नवीनता के साँचे में ढाला गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रंथ में आठ अध्याय हैं। उनके नाम हैं संज्ञाध्याय, जातकाध्याय, दशाध्याय, वर्षफलाध्याय, संस्काराध्याय, मुहूर्ताध्याय, प्रश्नाध्याय और संहिताध्याय। अध्यायों के नाम से ही विषय स्पष्ट है। इन अध्यायों में प्रकरण भी भिन्न-भिन्न नाम के हैं। आदि में ३६ पृष्ठ की भूमिका, विषय-सूची और नक्षत्र-स्वरूप, ग्रह-कक्षा, पृथ्वी, ग्रहण, राशि-चक्र आदि के प्राचीन और नवीन संप्रदाय के चित्र-पट भी दिए गए हैं: जो सभी उपयोगी हैं। भूमिका बड़े मज़े की है। आजकल के नक्षत्र-सूची ज्योतिषियों की पोल खूब खोली गई है। उनकी जड़ता, अहंभाव और उससे जो-जो हानियाँ हो रही हैं, बल्कि यह कहना चाहिए कि जिन कुकर्मों से आज फलित-विद्या से विश्वास उठ रहा और उस पर कुटिल कटाक्षों की चारों ओर से वर्षा हो रही है, वे सब गाथाएँ भी सर्व-साधारण के जानने के लिये लिख दी गई हैं। अब से भी यदि हमारे ऋषि-मुनियों की मान-मर्यादा के ही लिहाज़ से फलित के ठेकेदार महानुभावगण अपनी मलिन वृत्तियों को, वंचनाओं को, धीरे-धीरे छोड़ने की चेष्टा करें, तो भविष्य में शुभ आशाएँ बँध सकती हैं। यह बड़े दुःख की बात है कि हमारे ऋषि-मुनियों के ग्रंथों में वैदेशिक विद्वान् वैज्ञानिक तत्त्व ढूँढ़ें, उनके सत्यासत्य की परीक्षा करें, सायन-निरयण के झमेलों का निर्णय करें, ग्रह और भौतिक प्राणियों के संबंध पर विचार करें, किंतु हम सब कूप-मंडूक बने देखा करें! और, उनके ग्रंथों को, उनकी परिपाटी को, समझना तो दूर रहा, अपने ही घर की मान-मर्यादा को दासी बना डालें! अस्तु।

जोशीजी ने अपने सुलभ ज्योतिष की भूमिका में मदरासी प्रसिद्ध ज्योतिषी सूर्यनारायणरावजी के अँगरेज़ी फलित-ग्रंथों की और कई एक योरपियन ज्योतिषों की नामावली लिखी है। उनकी तारीफ़ भी की है। इन महानुभावों के नवीन विचारों के कुछ ग्रंथ हमने भी देखे हैं। यदि जोशीजी उन ग्रंथों के आधार पर, किसी स्वतंत्र प्रकरण में, ग्रह-मनुष्यों के संबंध में और उनकी सायन-गणना की श्रेष्ठता पर कुछ विशेष लिख देते, तो कम-से-कम देशीय ज्योतिषी महोदयों के कान ही खड़े हो जाते। कहीं-कहीं आपने ग्रह और राशियों के नाम आदि अँगरेज़ी में भी लिखे हैं। एक स्थान में अहर्गण-साधन के लिये किसी ग्रंथ से दो-चार पंक्तियाँ के अँ... भी दिए हैं। उनमें कलि का आरंभ ३१०२ ईसवी के पूर्व लिखा है। परंतु ये सब बातें ऐतिहासिक खोज और सिद्धांत-विषय से अधिक संबंध रखती हैं। दो-चार अँगरेज़ी नाम या किसी वैदेशिक का मोटा मंतव्य कुछ लाभदायक नहीं है। हमारे यहाँ के गणितज्ञ या फलितज्ञ, दोनों ही योरपियन रीति से अपरिचित हैं। परिचितों की संख्या बहुत ही कम है। पुराने ज्योतिषियों के जो नाम ज्योतिष-प्रकरण में दिए हैं, वे प्राचीनता के क्रम से चाहिए थे। उनमें रत्नमालाकार श्रीपति का नाम छूट गया है। रत्नमारुत मुहूर्त का सर्व-मान्य प्राचीन ग्रंथ है। इसके सिवा जन्म-पत्र और वर्ष-पत्र का पूरा उदाहरण और उसके लिखने की शुद्ध रीति का भी दिग्दर्शन आवश्यक था; क्योंकि जोशीजी भली भाँति जानते हैं, और भूमिका में लिखते भी हैं कि नक्षत्र-सूची व्याकरण शून्य मनमानी लिखते हैं, और अपनी पंडिताई दिखलाने के लिये इधर उधर कूद-फाँद मचाते हैं। ख़ैर, हमें विश्वास है कि उक्त ग्रंथ बहुत लाभ-दायक और कुछ भी ज्योतिष-विद्या से प्रेम रखनेवालों के लिये संग्राह्य है।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

× × ×

३. इतिहास

सागर-सरोज—लेखक और प्रकाशक रायबहादुर हीरालालजी बी० ए०, एम्० आर० ए० एस्०, डिपुटी कमिश्नर, नरसिंहपुर। मूल्य १।)

यह पुस्तक सी० पी० के सागर का भौगोलिक, ऐतिहासिक और सामाजिक वर्णन है। अच्छा-ख़ासा गज़ेटियर है। सागर-ज़िले का एक रंगीन नक़्शा भी दिया है। कई चित्र भी हैं। लेखक जिस उत्तर-दायित्व-पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हैं, वहाँ से उन्हें जो सुविधाएँ हो सकती हैं, उनका उपयोग करके उन्होंने यह पुस्तक लिखी है। लेखक का उद्योग सराहनीय है, और वह अपने उद्योग में सफल हुए हैं। पुस्तक बड़ी मनोरंजक और लाभ-दायक है। ऐतिहासिक भाग बड़ी खोज और परिश्रम से लिखा गया है। बीच-बीच में प्रसंगानुसार कविताओं के अंश उद्धृत कर देने से रोचकता और भी बढ़ गई है। लेखन-शैली उत्तम है। किंतु भाषा में कहीं-कहीं प्रांतीयता की झलक आ गई है. जो कोई बड़ा दोष नहीं है। यदि इसी प्रकार अन्य विद्वान् लेखक अपने-अपने ज़िलों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास लिख दें, तो हिंदी का इतिहास-भांडार समृद्धि-शाली हो जाय। प्रत्येक पुस्तकालय में यह पुस्तक होनी चाहिए।

× × ×

बाबू कुँवरसिंह—जगदीशपुर-निवासी बाबू कुँवरसिंह की सुविस्तृत, प्रामाणिक जीवनी। लेखक, श्रीयुत मथुराप्रसाद दीक्षित। प्रकाशक, श्रीयुत रामगोविंद त्रिवेदी और शुकदेव राय, भारती-प्रेस, २२, सरकार-लेन, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १०८; सुंदर रेशमी जिल्ददार पुस्तक का मूल्य २॥) रु०। चित्र भी कई हैं।

इस पुस्तक में ग़दर के समय के विख्यात बाबू कुँवर-सिंहजी की जीवनी है। ग़दर का इतिहास प्रायः एक-पक्षीय ही है। भारतीय दृष्टि से उस पर पूर्णतया अभी तक विचार नहीं किया गया। अब भी उस समय के कुछ इने-गिने लोग जीवित हैं। यदि उद्योग किया जाय, तो तत्कालीन बहुत-सी बातों का पता लग सकता है। बाबू कुँवरसिंह की जीवनी के लेखक ने स्थानीय मसाले को परिश्रम के साथ एकत्रित करके उसका संग्रह किया है, और उससे एक बहुत ही मनोरंजक और उपादेय जीवनी लिखी है। ऐतिहासिक जीवनी में जो-जो गुण होने चाहिए, वे सब इसमें मौजूद हैं। पुस्तक पढ़ते समय उपन्यास पढ़ने का-सा आनंद आता है। हम लेखक के किसी-किसी मंतव्य से सहमत नहीं हैं; किंतु उन्होंने सामग्री का जिस प्रकार उपयोग किया है, उसकी प्रशंसा किए विना नहीं रह सकते। ग़दर-साहित्य में यह पहली ही मौलिक हिंदी-पुस्तक है। सुनते हैं, इस-के बँगला और अँगरेज़ी-अनुवाद भी हो रहे हैं। इस पुस्तक के लिये हम लेखक और प्रकाशक, दोनों ही को बधाई देते हैं। पुस्तक संग्रह करने योग्य है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

ऐतिहासिक स्त्रियाँ—प्रकाशक, श्रीजैनबाला-विश्राम, धनुपुरा, आरा। लेखक, स्व० श्रीकुमार देवेंद्रप्रसाद जैन, संपादिका, श्रीमती प्रेमलता-देवी जैन (लेखक की धर्म-पत्नी)। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या १०४, और मूल्य ॥)

इसमें श्रीराजमती राजुल-देवी, महारानी सीता, महारानी चेलना-देवी, महारानी मैनासुंदरी, महारानी द्रौपदी, रानी अंजनासुंदरी, शीलवती मनोरमा-देवी, तथा रानी रयनमंजूषा, इन ८ ऐतिहासिक स्त्री-रत्नों की शिक्षा-प्रद संक्षिप्त जीवनियाँ दी गई हैं। सभी शिक्षा-प्रद हैं। भाषा साधारणतः अच्छी है। देवेंद्रप्रसादजी ने इसे असमर्थ बालिकाओं और स्त्रियों को, पत्र लिखने पर, विना मूल्य, भेंट करने का संकल्प किया था। उनकी यह भी इच्छा थी कि इस पुस्तक के पश्चात् इसी विषय की एक दूसरी पुस्तक लिखें, और उसमें भी ८ ऐतिहासिक स्त्री-रत्नों के संक्षिप्त जीवन-चरित रहें। पर आपकी अचानक स्वर्ग-यात्रा से यह व्रत अपूर्ण ही रहा। पुस्तक स्त्रियों के लिये उपयोगी है।

× × ×

४. जीवन-चरित

वीरांगना—प्रकाशक, राजपाल, मैनेजर आर्य पुस्तकालय और सरस्वती-आश्रम, अनारकली, लाहौर। लेखक, ब्रज-लाल शास्त्री एम्० ए०। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ५८, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर। मूल्य ॥) अधिक है।

इस पुस्तक में भारत की उन ११ देवियों की जीवन-घटनाओं का वर्णन है, जिन्होंने अपने पातिव्रत-धर्म के लिये सर्वस्व अर्पण कर संसार को दिखला दिया है कि स्त्रियों की पवित्रता से भारत की मान-रक्षा हुई, और होगी। इस पुस्तक के लेखक ने जीवन-घटनाओं को नाटक रूप में लिखा है। पर सफलता नहीं हुई। टाइटिल पर घोड़े पर सवार तीन वीर स्त्रियों का रंगीन चित्र है। भीतर भी दो सादे चित्र हैं। भाषा की दृष्टि से भी पुस्तक में बहुत सी भूलें हैं। उदाहरण के लिये "जिनकी लोथों पर नाचते हुए बैताल और मँडलाते हुए स्यार तुम्हारे अमोघ शस्त्रों को लाख लाख आशीसें देंगे।" स्यार भी मँडलाते हैं? तथापि पुस्तक स्त्रियों के पढ़ने योग्य है।

श्रीधर-नारायणदास मेहता

× × ×

५. नाटक और प्रहसन

भक्त सुदामा (नाटक)—प्रकाशक, श्रीयुत शिव-रामदास, उपन्यासबहार ऑफ़िस, काशी। लेखक, श्रीयुत आनंदप्रसाद कपूर। आकार २०×३० सोलह-पेजी। और काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या १२०, और मूल्य १)

यह एक धार्मिक नाटक है। कथानक मनोरंजक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शिक्षा-प्रद है। भाषा बोल-चाल की है। यत्र-तत्र जो गान और पद्य हैं, उनमें छंदःशास्त्र-विषयक अनेक दोष हैं। अशुद्धियाँ इतनी रह गई हैं कि अलग से एक शुद्धि-पत्र लगाना पड़ा है। अंदर १ रंगीन तथा ४ सादे चित्र हैं। टाइटिल का चित्र, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने सखा सुदामा के प्रेम-पूर्वक चरण धो रहे हैं, सुंदर और भाव-मय है। साहित्यिक दृष्टि से तो नाटक साधारण है, पर रंग-मंच पर सफलता-पूर्वक खेला जा सकता है।

× × ×

कंजूस की खोपड़ी—प्रकाशक, वही। लेखक, श्रीयुत पं० गोविंदवल्लभ पंत। आकार-प्रकार, कागज़, छपाई-सफ़ाई पूर्ववत्। पृष्ठ-संख्या ७४, और मूल्य ॥)

यह एक सुरुचि-पूर्ण प्रहसन है। लेखक व्याकुल-भारत-नाटक-कंपनी के नाटककार हैं। उन्होंने उसी कंपनी के खेलने के लिये इसे लिखा भी है। अतएव निस्संदेह रंग-मंच पर खेलने योग्य है। भाषा बोल-चाल की तथा रोचक है। लेखक का उत्साह प्रशंसनीय है। तीन सादे चित्र भी हैं।

× × ×

६. उपन्यास और उपाख्यान

चरित्र-हीन (उपन्यास)—प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, १२६, हरिसन-रोड, कलकत्ता; अनुवादक, शरत् बाबू के एक अंतरंग मित्र। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ६७०। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, और मूल्य सदर की जिल्दवाली प्रति का ३।) रु०

यह उपन्यास बँगला के सुप्रसिद्ध औपन्यासिक श्रीयुत शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय के इसी नाम के उपन्यास का हिंदी-अनुवाद है। अनुवाद साधारण है। उपन्यास सामाजिक है। सामाजिक उपन्यास समाज की गुत्थियाँ सुलझाने में बड़े हित-साधक होते हैं। परंतु जहाँ उन्हें समाज के लिये जान-बूझकर हित-साधक बनाया जाता है, वहाँ वे प्रायः अस्वाभाविक हो जाते हैं, और लेखक अपना अभीष्ट सिद्ध नहीं कर पाता। उपन्यासों को हित-साधक और शिक्षा-प्रद बनाने के लिये यह परम आवश्यक है कि कहीं भूल से भी उनकी घटनाओं में अस्वाभाविकता की गंध न आने पावे। पाठक को ऐसा मालूम हो कि जो कुछ होने को है, वह निष्प्रयास, आप-से-आप होता जा रहा है—घटनाएँ कल्पित नहीं हैं, पूर्णतः सत्य हैं। चरित्र-हीन में यह गुण विद्यमान है। इसमें पात्रों के हृदय और चरित्र को स्पष्ट करके रत्ती-रत्ती दिखाने में ही लेखक का कृतित्व है। चरित्रहीन नाम सुनकर सदाचारी समाज के व्यक्ति नाक-भौं सिकोड़ेंगे; परंतु पढ़ने पर उनका यह भ्रम दूर हो जायगा, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि चरित्रहीन के चरित्र-हीन पात्र समाज के ही अंग हैं। सावित्री का चरित्र-चित्रण करने में लेखक ने प्रतिभा का परिचय दिया है। सतीश सच्चा प्रेमिक है। वह सावित्री से प्रेम करता है। प्रेम ही की यह महिमा है कि वह उसकी शपथ के अनुसार शराब पीना तक छोड़ देता है। उपेंद्र, जो एक आदर्श सच्चरित्र व्यक्ति है, पहले तो सावित्री पर बड़ी घृणा करता है, परंतु जब उसे सावित्री की सच्चरित्रता का पता लगता है, तब वह उसको अपनी बहन के रूप में स्वीकार करता है! वह आदर्श पत्नी-व्रतधारी है। सुरबाला (जो उसकी पत्नी है) के स्वर्गारोहण पर वह इतना दुःख पाता है कि अंत में उसे यक्ष्मा का रोग होता है, और उसी में उसके प्राण जाते हैं! सरोजिनी एक पढ़ी-लिखी युवती है। वह सतीश को प्रेम की दृष्टि से देखती है। परंतु सतीश सावित्री को चाहता है, इसलिये सरोजिनी को चाहते हुए भी उसे प्राप्त करने की इच्छा नहीं करता। अंत को वह अपने आत्मीय बंधु उपेंद्र की आज्ञा से सरोजिनी को स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार सब चरित्र प्रभावोत्पादक हैं। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें एक-दो नहीं, तीन-तीन प्रेम-कथाएँ वर्णित हुई हैं। उपन्यास काफ़ी बड़ा और सुंदर है। प्रूफ़-संशोधन पुस्तक के अनुरूप अच्छा नहीं हुआ। फिर भी पुस्तक पढ़ने योग्य है।

× × ×

मदालसा—प्रकाशक, श्रीयुत रिखबदास बाहिती, आर० डी० बाहिती ऐंड कंपनी, नं० ४, चोरबागान, कलकत्ता। लेखक, पं० शिवशंकर मिश्र। आकार २०×३० सोलह-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर। पृष्ठ-संख्या १८६। मूल्य सादी जिल्द का १॥) रु०

यह पौराणिक उपाख्यान मार्कंडेय-पुराण के आधार पर लिखा गया है। मदालसा तथा ऋतध्वज का चरित्र मनोरंजक तथा शिक्षा-प्रद है। भाषा साधारणतः अच्छी है। विराम-चिह्नों का प्रयोग कहीं-कहीं ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुआ। पुस्तक के अंदर ६ रंगीन तथा ४ सादे चित्र भी हैं। स्त्रियों को इसका अवलोकन कर लाभ उठाना चाहिए। पुस्तक अच्छी है। टाइटिल पर लेखक के बदले प्रकाशक का नाम खटकता है।

× × ×

७. उपनिषद् और दर्शन

श्रीमद्भगवद्गीता व्रजभाषा-पद्यानुवाद—लेखक और प्रकाशक, पं० तुलसीराम मिश्र विद्यानिधि, एम्० ए०, गणेशगंज, लखनऊ। आकार २०×३० सोलह-पेजी, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या १००, और मूल्य निछावर, अर्थात् भगवद्भक्तों को विना मूल्य।

यह श्रीमद्भगवद्गीता का व्रजभाषा-मय अनुवाद दोहा-छंद में किया गया है। अनुवाद अच्छा हुआ है। अंदर भगवान् कृष्ण के १८ चित्र दिए हुए हैं; जो भक्त-रक्षा, दुष्ट-दमन और विचलित धर्म-स्थापन-विषयक हैं। पुस्तक धार्मिक व्यक्तियों के अवलोकन करने योग्य है। लेखक ने गीता की सवा लाख प्रतियाँ भगवद्भक्त जन-समुदाय में विना मूल्य बाँटने का संकल्प किया है। तदनुसार उन्होंने इस वर्ष २००० प्रतियाँ संस्कृत में तथा ३००० व्रज-भाषा में, प्रस्तुत पुस्तक की, छपवाई हैं। आपका यह प्रयत्न प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। क्या ही अच्छा हो, यदि इसी प्रकार अन्य समर्थ, उदार तथा उत्साही देश-भक्त सर्व-साधारण में समयोपयोगी साहित्य का प्रचार कर देश की वर्तमान आवश्यकता पूरी करें।

× × ×

श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्—प्रकाशक, श्रीयुत नारायण-लक्ष्मण देसाई, फ़ोटोग्राफ़र और आर्टिस्ट, लश्कर, ग्वालियर। लेखक, श्रीयुत मायानंद चैतन्य। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या १५२, और मूल्य १=)

भगवद्गीता का यह अनुवाद खड़ी बोली और अनुष्टुप्-छंद में हुआ है। ज्ञान-योग तथा कर्म-योग (निर्गुणवाद तथा सगुणवाद), इन दोनों पक्षों का भिन्न-भिन्न बिलकुल स्वतंत्र रूप से अनुवाद किया गया है। भाषा प्रायः सर्वत्र संस्कृत-गर्भित और अशुद्ध है। अनुवादक हैं श्रीयुत श्रीधर रामचंद्र देसाई। उन्होंने इसकी भूमिका लिखी है। भूमिका की भाषा हिंदी की आधुनिक शैली से सर्वथा भिन्न एवं अशुद्ध है। देसाई महाशय अपने विचार तक स्पष्ट रूप से नहीं प्रकट कर सके हैं। यही महाशय इस पुस्तक के संपादक हैं। यदि लेखक को यह पुस्तक प्रकाशित कराना ही अभीष्ट था, तो किसी हिंदी-लेखक से इसकी भाषा का संशोधन करा लेते। भाषा पर समुचित अधिकार प्राप्त किए विना पुस्तक लिखने के लिये लेखनी को कष्ट देना अनधिकार-चेष्टा एवं दुस्साहस-मात्र है।

× × ×

ईशोपनिषद् का स्वरूप—प्रकाशक, श्रीचंद्र चौधरी, प्रबंधक महेश-पुस्तकालय, घसेटी बाज़ार, अजमेर। लेखक, पं० प्रियरत्नजी विद्यार्थी। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या ८८, और, मूल्य ।≈)

यह यजुर्वेद के ४०वें अध्याय, अर्थात् ईशोपनिषद् का महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती-प्रतिपादित भाष्य है। भाषा संस्कृत-गर्भित और सुपाठ्य हिंदी-गद्य-शैली से पृथक् है। इसका अवलोकन कर वे ही लाभ उठा सकते हैं, जिन्हें संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान है। पर संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान रखनेवाले संस्कृतज्ञों को इसका अवलोकन करने की उतनी आवश्यकता भी नहीं। कारण, मूल ईशोपनिषद् के अवलोकन से वे भली भाँति अभीष्ट-सिद्धि कर सकते हैं।

× × ×

८. राजनीति

यंग इंडिया (द्वितीय और तृतीय भाग)—प्रकाशक, श्रीयुत राधाकृष्णजी नेवटिया, मंत्री बड़ाबाज़ार-कुमार-सभा, कलकत्ता। लेखक, महात्मा गांधी। अनुवादक, श्रीयुत पं० छविनाथ पांडेय बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मिलने का पता — हिंदी-पुस्तक-भवन, नं० १८१, हरीसन-रोड, कलकत्ता। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर। पृष्ठ-संख्या क्रमशः ८०० तथा ९६६, और मूल्य क्रमशः १।।) तथा २)। दोनों में महात्माजी का एक-एक सुंदर रंगीन चित्र भी है।

इस ग्रंथ-रत्न के प्रथम भाग का परिचय माधुरी के भाग १, खंड २ की तृतीय संख्या में दिया जा चुका है। प्रथम भाग की भाँति इसके ये दूसरे और तीसरे भाग भी महत्त्व-पूर्ण हैं। द्वितीय भाग असहयोग और असहयोग का कार्य-क्रम, इन दो प्रकरणों में विभक्त है; जिनमें सब मिलाकर कोई १६० लेख संगृहीत हैं। इसी प्रकार तृतीय भाग असहयोग-आंदोलन, सविनय क़ानून-भंग, स्वराज्य तथा कांग्रेस आदि ४ प्रकरणों में विभक्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



राधा-माधव

[चित्रकार—श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू]

वह भूलीं सब काज, यह बंशी-बादन-निरत ;
यौं राधा-ब्रजराज मेरे मन-मंदिर बसैं।

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें सब मिलाकर कोई १६४ लेख संगृहीत हैं। ये सब लेख प्रकाशक के कथनानुसार यंग इंडिया-नामक पत्र के उन्हीं लेखों के अनुवाद हैं, जिन्हें महात्माजी ने ही अपनी लेखनी से लिखा था। ये लेख कैसे हैं, इस विषय में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि इनमें भारतीय स्वराज्य, विश्वव्यापी शांति, अहिंसा तथा समता के उदार तथा लोक-प्रिय भावों का पूर्ण मिश्रण है। महात्माजी के विचार कहाँ तक उच्च आदर्श और विश्व-हित की चिंता से युक्त हैं, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। वह संसार-प्रसिद्ध हैं—समस्त विश्व के विचार-शील, शिष्ट तथा सहृदय व्यक्तियों पर अपना एक ख़ास असर रखते हैं। हम चाहते हैं, भारत की स्वाधीनता का यह इस काल का इतिहास भारत के घर-घर की शोभा बढ़ावे। इन महातपस्वी की अखंड तपस्या, अद्वितीय स्वार्थ-त्याग सफल हो, और यंग इंडिया के काले-काले अक्षर भारत के लिये स्वर्णाक्षर हों। सुलभ-साहित्य-माला के संस्थापक यंग इंडिया के इतने सस्ते संस्करण निकालने के लिये सचमुच बधाई के पात्र हैं। आशा है, वह इसी प्रकार सस्ते ग्रंथ-रत्न प्रकाशित कर हिंदी का भांडार भरने में अग्रसर रहेंगे।

× × ×

स्वराज्य—प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ भंडार कार्यालय, बनारस सिटी। लेखक, श्रीयुत शिवदानप्रसादसिंह बी० ए०, डी० एस्-सी०। आकार २०×३० सोलह-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ६४, और मूल्य ।=)

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है। इसमें छोटे-छोटे सात निबंध हैं। इस विषय पर हिंदी में कई अच्छी और काफ़ी बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। फिर भी पुस्तक एक विशेष उपयोगिता रखती है। विचार गंभीर हैं। भाषा भी अच्छी है।

× × ×

माडरेटों की पोल—प्रकाशक, महेश-पुस्तकालय, घसेटी बाज़ार, अजमेर। लेखक, श्रीयुत कुँवर चाँदकरण शारदा बी० ए०। आकार १७×२७ सोलह-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या ९६, और मूल्य ।)

माडरेट तथा सरकारी अफ़सर बहुतेरे साधारण व्यक्तियों से जेल-यात्रा पर स्वराज्य तथा असहयोग-विषयक जो नाना प्रकार के प्रश्न किया करते हैं, इसमें लेखक ने उन्हीं प्रश्नों का यथेष्ट उत्तर दिया है। पुस्तक राजनीति-प्रेमी पाठकों तथा असहयोगी जन-समुदाय के पढ़ने योग्य है।

× × ×

९. धर्म, नीति और सदाचार

सिद्धि—प्रकाशक, बेलवेडियर-स्टीम-प्रिंटिंग-वर्क्स, इलाहाबाद। लेखक, श्रीयुत ओझा चंद्रशेखर शर्मा। आकार २०×३० सोलह-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या १५२, और मूल्य ॥)

इसमें सिद्धि क्या है, सिद्धि पाने की योग्यता, सिद्धि-निर्वाचन, कार्य-शक्ति, अधिकार और दृढ़ता, त्रुटि का संशोधन और उद्योग-शीलता, सच्चरित्रता, संगी-साथी, विनय और विश्व-प्रेम, संतोष, परिश्रम और प्रलोभनों से बचना, मितव्यय और अपव्यय, सहयोगिता, विश्वसनीयता, व्यवहार आदि १४ विषयों पर गंभीरता-पूर्वक विचार किया गया है। विचार-प्रणाली सार-गर्भित है। भाषा भी विषयोपयुक्त, रोचक है। विराम-चिह्नों का प्रयोग कहीं-कहीं ठीक नहीं हुआ। पुस्तक अपने विषय की अच्छी है। युवकों को इस पुस्तक का अध्ययन करके अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

× × ×

उपासना-प्रकाश—प्रकाशक, बाबू रामप्रसादसिंह, खड्गविलास-प्रेस, पटना। लेखक का नाम लिखा नहीं। आकार १८×२२ अठपेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई अत्यंत साधारण। पृष्ठ-संख्या ११२, और मूल्य ॥)

यह पुस्तक रामोपासना-विषयक है। लेखक ने इसमें राम की उपासना के तत्त्व रामचरित-मानस के उद्धरण देकर समझाए हैं। भाषा अच्छी है। अशुद्धियों से पुस्तक भरी पड़ी है। ईश्वरोपासक भक्त-जन इसका अवलोकन कर लाभ उठा सकते हैं।

× × ×

लोक-परलोक-हितकारी—प्रकाशक, लोक-परलोक-हितकारी चैरिटी फ़ंड, बेलवेडियर-हाउस, इलाहाबाद। लेखक और संपादक, सत्यधाम-वासी रायबहादुर बाबू बालेश्वरप्रसाद। आकार २०×३० सोलह-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या २२२, और मूल्य ॥=)

इसमें संसार-भर के महात्माओं, महापुरुषों, कवियों, दार्शनिकों के लोक-परलोक-हितकारक कोई १७ विषयों के लगभग ७५० वचन संगृहीत हुए हैं। संग्रह-कर्ता का परिश्रम सराहनीय है। पुस्तक बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके लिये उपयोगी है। हिंदी में अपने विषय और शैली की यह पहली पुस्तक देखने में आई। पुस्तक सब प्रकार से उत्तम और संग्रहणीय है।

× × ×

विचार-कुसुमांजलि—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत बदरीदत्तजी जोशी, वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद। आकार २०×३० सोलह-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या १४०, और मूल्य ।।=)

इसमें लेखक ने मनुष्यता का आदर्श, धर्म-वाद की प्रौढ़ता, धर्म और समाज, धर्म और मत-वाद, सामाजिक संगठन, व्यक्ति और समाज, राष्ट्र-वाद, जातीय आदर्श, शिक्षा का महत्त्व, राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्र-भाषा, भारत का भविष्य तथा संसार का भावी धर्म आदि १३ विषयों पर गंभीरता-पूर्वक अपने विचार प्रकट किए हैं। भाषा अच्छी है। विचार मनन करने योग्य हैं। इस पुस्तक का अध्ययन कर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

× × ×

१०. पत्र-पत्रिकाएँ

विजयवर्गीय—सचित्र मासिक। संपादक, श्रीयुत रघुनाथदास विजयवर्गीय; प्रकाशक, अखिल भारतीय विजय-वर्गीय महासभा, विजयवर्गीय-कार्यालय, नं० ५३, सिकदरपाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता। आकार २०×३० अठ-पेजी; कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ३६ और वार्षिक मूल्य ३)

यह अखिल भारतीय विजयवर्गीय महासभा का मुख-पत्र है। इसलिये इसमें विजयवर्गीय महासभा तथा विजयवर्ग-जातीय लेख ही अधिकांश रूप से प्रकाशित होते हैं। विजय-वर्गीय पाठक इसका अध्ययन करके लाभ उठा सकते हैं।

× × ×

हितैषी—सचित्र मासिक। संपादक और प्रकाशक, श्रीयुत पं० रामदेनी तिवारी, हितैषी-कार्यालय, फ़ारबेसगंज, पुर्निया (बंगाल)। आकार २०×३० अठ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ७२, और वार्षिक मूल्य ५)

यह मासिक पत्र अभी हाल ही में निकला है। इसमें हिंदी-साहित्य, समाज-सुधार, नीति, शिक्षा, अर्थ-शास्त्र, कृषि, जीवन-चरित आदि विविध विषयों के सुपाठ्य लेख रहते हैं। इसका प्रथम अंक हमारे सामने है। इसमें 'भारतीय किसानों का आर्थिक ह्रास' तथा 'हिंदी के लिये कुछ हितकर बातें'-नामक लेख विशेष रूप से पठनीय हैं। टाइटिल के रंगीन चित्र के सिवा अंदर १ रंगीन तथा ३ सादे महाभारत-विषयक हाफ़टोन-चित्र हैं। अभी 'हितैषी' को सभी विषयों में उन्नति करने की आवश्य-कता है। हम सहयोगी का सहर्ष स्वागत करते हैं।

× × ×

भारतजीवन—साप्ताहिक। संपादक, और प्रकाशक, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद खत्री, भारतजीवन-प्रेस, बनारस। आकार, २२×२९ चौ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, और पृष्ठ-संख्या १२। वार्षिक मूल्य लिखा नहीं।

यह बहुत पुराना साप्ताहिक पत्र काशी के भारतजीवन-प्रेस से फिर निकलने लगा है। बीच में भूतपूर्व प्रकाशक-परिवार पर घोर आपत्ति आने के कारण बंद हो गया था। इसका यह नवीन संस्करण भी अच्छे ढंग से निकलने लगा है। साप्ताहिक पत्र होते हुए भी समाचार इसमें बहुत कम, पर सामयिक तथा विविध विषयों के उपयोगी लेख अधिक रहते हैं। संपादन अच्छा होता है। पर हमें तो केवल २-३ संख्याएँ ही मिली हैं।

× × ×

निम्न-लिखित पत्र भी मिल गए हैं। धन्यवाद—

देश-भक्त—मासिक। संपादक और प्रकाशक, श्रीयुत मह-ताबसिंह वर्मा, सिरसागंज, मैनपुरी। पृष्ठ-संख्या ४८, वार्षिक मूल्य ३)। लेख और कविताएँ देश-भक्ति-पूर्ण रहती हैं।

बाल-विनोद—मासिक। संपादक, श्रीयुत 'सुमन' साहित्यालंकार। बाल-विनोद-कार्यालय, दानापुर कैंट से मिलता है। वार्षिक मूल्य २) है। बालोपयोगी विनोद-पूर्ण सामग्री अच्छी रहती है।

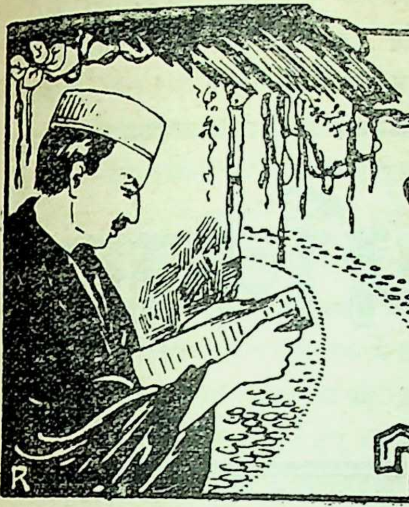
विज्ञापक—मासिक। प्रकाशक, जयदेव ब्रदर्स, बड़ौदा। यह विज्ञापन-संबंधी पत्र है। विज्ञापन ही प्रकाशित होते हैं। नमूना मुफ़्त भेजा जाता है।

प्रेमविलास—मासिक। संपादक, श्रीस्वामी मित्रसेनजी। मैनेजर प्रेम-विलास, गुजरानवाला से मिलता है। वार्षिक मूल्य २।)। नमूना मुफ़्त। धार्मिक लेख रहते हैं।

जैन-महिलादर्श—मासिक। संपादिका, पंडिता चंदा-बाई। भारतवर्षीय दिगंबर-जैन-महिला-परिषद् का मुख-पत्र है। मैनेजर जैन-महिलादर्श, चंदाबाड़ी, सूरत के पते से मिलता है। वार्षिक मूल्य १।।) है। लेख जैन-धर्म-संबंधी तथा स्त्रियों के लिये उपयोगी रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साहित्य-सूचना

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "साहित्य-विहार", श्रीवियोगीहरि-लिखित। मूल्य ॥।≤)

(२) "बाल-कथा-कहानी" (दूसरा भाग), श्री-रामनरेश त्रिपाठी-लिखित। मूल्य ।−)

(३) "कथा-कादंबिनी"। मूल्य ॥।)

(४) "हिंदी का संक्षिप्त इतिहास", श्रीरामनरेश त्रिपाठी-लिखित। मूल्य ।≤)

(५) "वंदेमातरम्", पं० कपिलदेव मिश्र-लिखित उपन्यास। मूल्य १॥।)

(६) "देशभक्त मेज़िनी", श्रीराधामोहन गोकुलजी-लिखित। मूल्य १॥).

(७) "संसार-रहस्य", ठाकुर प्रसिद्ध नारायणसिंह बी० ए०-लिखित उपन्यास। मूल्य १॥)

(८) "आत्म-दर्शन", श्रीनारायण स्वामी-लिखित। मूल्य १॥।)

(९) "जोज़ेफ़ गेरीवाल्डी", श्रीराधामोहन-गोकुल-जी-लिखित। मूल्य १।≤)

(१०) "अशोक की धर्म-लिपियाँ" (पहला खंड), रायबहादुर श्रीगौरीशंकर-हीराचंद ओझा और श्रीश्याम-सुंदरदास बी० ए० द्वारा संपादित। मूल्य ३)

(११) "स्वाधीनता के सिद्धांत", टेरेंस मैक्स्विनी की Principles of freedom-नामक अँगरेज़ी-पुस्तक का पं० हेमचंद्र जोशी बी०ए०-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य १)

(१२) "कर्म-योग", श्रीअश्विनीकुमार दत्त की बँगला-पुस्तक का पं० छविनाथ पांडेय बी० ए०, एल्-एल्० बी०-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य ॥।)

(१३) "सरल-गीता", पं० लक्ष्मीनारायण गर्दे-लिखित। मूल्य १॥)

(१४) "मधुर मिलन", पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी-लिखित नाटक। मूल्य ॥≤)

(१५) "तुलसी-ग्रंथावली" (तीन भाग)। मूल्य ६)

(१६) "बाबू कुँअरसिंह", श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित-लिखित जीवनी। मूल्य २॥)

(१७) "राजर्षि प्रह्लाद"। मूल्य २॥)

(१८) "वीर-कुमार छत्रसाल", श्रीभँवरलाल सोनी-लिखित नाटक। मूल्य १॥)

(१९) "तीन फूल", बाबू सर्वेश्वरनाथ वर्मा-लिखित गल्प-संग्रह। मूल्य ॥≤)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विविध विषय

१. गोस्वामी तुलसीदासजी

राम-चरित-रसायन पिलाकर माया-मोह-मग्न मृतप्राय मानवों को अमर बनानेवाले, भावुक, भक्त-शिरोमणि, महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी को केवल महाकवि या कवि-शिरोमणि मानना उनकी उपयुक्त पूजा नहीं है। वह कई दुर्लभ विशेषताओं की समष्टि थे। केवल उनकी रचनाओं की रुचिरता, भावों की भव्यता या पद-लालित्य पर ही मुग्ध होकर हम उनके चरणों में सिर नहीं झुकाते ; उसके और भी कारण हैं। कविता तो उपलक्ष्य-मात्र है, उनकी अन्य कई विशेषताएँ उस रचना के द्वारा, अलक्ष्य रूप से, हमारे हृदय पर असर डालती हैं, और निरक्षर से लेकर प्रकांड पंडित तक को उनके चरणों में श्रद्धा-पुष्पांजलि चढ़ाने के लिये बाध्य करती हैं। गोसाईंजी अमर—सार्वभौमिक—कवि, सफल अनुवादकर्ता, कट्टर धार्मिक, उन्नत उपदेशक, सच्चरित्र साधु, सच्चे सहृदय, बहुश्रुत विद्वान्, सिद्ध दार्शनिक और पाखंड से परे अनन्य भक्त थे। वह अपने युग के एक अद्वितीय नर-रत्न थे। रामचरित-मानस ही एक ऐसा स्वच्छ दर्पण है, जिसमें उनके ये सभी रूप स्पष्ट देख पड़ते हैं। तुलसीदासजी क्या थे, यह बताने के लिये बहुत अधिक स्थान, समय और योग्यता की आवश्यकता है। इस क्षुद्र नोट में हम-जैसे क्षुद्र व्यक्ति गोस्वामीजी की विशेषताओं का विश्लेषण नहीं कर सकते। माधुरी की इस संख्या में प्रकाशित भिन्न-भिन्न विद्वान् लेखकों के लिखे लेखों को पढ़कर पाठक गोसाईंजी के गौरव का कुछ परिचय पा सकेंगे। हमारा ख़याल है कि गोस्वामीजी के गौरव और गुणों का पूर्ण परिचय अभी तक—तीन सौ वर्ष बीत जाने पर भी—हम लोग नहीं पा सके। यदि ऐसा न होता, तो हम देश-भर में स्थान-स्थान पर एकत्र होकर प्रतिवर्ष इन कवि-शिरोमणि महापुरुष का स्मृति-दिवस अवश्य मनाते ; इनकी आदर्श भक्ति, इनकी सम-दर्शिता इनके ईश्वर-विश्वास और परोपकार आदि गुणों का स्मरण कर इनका अनुसरण अवश्य करते। प्रसन्नता की बात है कि अब लोगों का ध्यान अपनी इस त्रुटि पर पहुँचा है। इस बार काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने लोगों को गोस्वामीजी की त्रिशत-वार्षिक जयंती मनाने के लिये आदेश दिया है। किंतु हमारी प्रार्थना है कि यह त्रिशत-वार्षिक जयंती मनाने के अतिरिक्त प्रतिवर्ष गोस्वामीजी के मृत्यु-दिवस पर (क्योंकि जन्म-दिवस निश्चित नहीं है) उत्साह और भक्ति के साथ भारत के सभी नगरों और ग्रामों में—ख़ासकर युक्त-प्रांत, मध्य-प्रांत, पंजाब, बिहार आदि में तो अवश्य ही—व्यापक रूप से गोस्वामीजी के स्मृति-दिवस का उत्सव मनाया जाय। हिंदी-पत्रों और हिंदी-सभाओं को इसके लिये विशेष उद्योग करना होगा। हम लोगों ने माधुरी के जन्म-काल से ही गोस्वामीजी का संवत् छापकर कर्तव्य-पालन की चेष्टा की है। इस अवसर पर पुष्पांजलि-स्वरूप इस तुलसी-संख्या—विशेष संख्या—को हम भक्ति-पूर्वक श्रीगोस्वामीजी के श्रीचरणों में अर्पण करते हैं।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. रामचरित-मानस की उपयोगिता

यों तो राम-चरित्र के वर्णन से युक्त अनेक ग्रंथ और रामायणें हैं, किंतु सर्व-साधारण में जितना प्रचार और आदर रामचरित-मानस का है, उतना और किसी का नहीं। तुलसी-कृत रामायण की लाखों प्रतियाँ और हज़ारों संस्करण खप चुके; परंतु फिर भी नए-नए संस्करण निकलते जा रहे हैं। यह सौभाग्य हिंदी ही की नहीं, किसी भी भाषा की अन्य पुस्तक को नहीं प्राप्त हुआ। इसके सिवा जितनी भाषाओं में तुलसी-कृत रामायण के अनुवाद निकले हैं, उतनी भाषाओं में एक बाइबिल को छोड़कर अन्य किसी भी पुस्तक के अनुवाद नहीं हुए। इस आदर और प्रचार का कारण क्या है? इस लोक-प्रियता का बीज क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर में निःसंकोच कहा जा सकता है कि वह कारण और बीज है रामचरित-मानस की उपयोगिता। तुलसी-कृत रामायण ऐसी सहज, सरल, मधुर, सार्वजनिक भाषा में लिखी गई है कि निरक्षर पुरुष और अपढ़ स्त्रियाँ तक उसे अनायास समझ लेती हैं। उसकी बातें, उसकी शिक्षा सहज ही पाठक और श्रोता के हृदय में घर कर लेती है। यह रामायण एक ओर इतनी सरल भाषा में लिखी गई है, तो दूसरी ओर इसमें यावत् धर्म-शास्त्र और नीति के ग्रंथों का सार खींचकर रख दिया गया है। इसकी अनेक चौपाइयों में संसार का सच्चा अनुभव भरा पड़ा है। समाज-नीति, धर्म-नीति, पारिवारिक नीति, अर्थ-नीति, ऐहिक और पारलौकिक तत्त्व, वर्णाश्रम-धर्म का सारांश आदि सब कुछ इसमें है। संसार की कुटिल नीति और साधुओं के सरल जीवन के आदर्श का इसमें सजीव चित्र अंकित है। यही कारण है कि धुरंधर पंडित से लेकर निरक्षर किसान तक इसका समान आदर करते हैं। यह हिंदू-जाति का धर्म-ग्रंथ हो रही है। एक इस रामायण को पढ़कर ही मनुष्य संसार के दुर्गम मार्ग में आँखें मूँदकर चला जा सकता है। उसे ठोकर खाने का डर नहीं है। यही रामायण की उपयोगिता है। इसी उपयोगिता के कारण इसका घर-घर प्रचार और आदर है। इसी उपयोगिता ने अनेक विधर्मी विदेशियों तक को इसका भक्त बना लिया है। इसी उपयोगिता और सरलता के अभाव से रामचरित-संबंधी अन्य ग्रंथों का इतना प्रचार और आदर नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि एक रामचरित-मानस ही के कारण हिंदी-साहित्य अन्य उन्नत साहित्यों के आगे गर्व से सिर ऊँचा कर सकता है; इसी एक रामायण को अपनी संपत्ति कहकर हिंदू-जाति, अन्य जातियों के आगे अपने गौरव की घोषणा कर सकती है।

× × ×

३. तुलसीदास का चरित्र-चित्रण

अनेक हिंदू-लेखक भी प्रायः लिखते हैं कि तुलसीदासजी ने बहुत अच्छा चरित्र-चित्रण किया है। हमारी समझ में यह बात नहीं आती। कवि या लेखक के चरित्र-चित्रण की तारीफ़ या निंदा तो उसके कल्पित चरित्रों के चित्रण में की जा सकती है। जहाँ कवि ने वास्तविक पात्रों को लेकर रचना की है, उनके यथार्थ गुणों या दोषों का उल्लेख किया है, वहाँ उसके चरित्र-चित्रण में निंदा या स्तुति हो ही नहीं सकती। वह तो उन पात्रों के स्वभाव को वैसा ही अंकित कर रहा है, जैसा कि वह था। तुलसीदासजी के पात्र राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सीता, हनुमान्, रावण, विभीषण, सुग्रीव आदि को हम हिंदू कदापि कवि-कल्पना मानने के लिये तैयार नहीं हैं। विदेशी, विधर्मी विद्वान् भले ही यह कहें कि कृष्ण और राम या कौरव और पांडव इस पृथ्वी पर उत्पन्न नहीं हुए, या उत्पन्न हुए भी हों, तो उनके चरित्र वैसे नहीं थे, जैसे कि रामायण, भागवत, महाभारत आदि में उन ग्रंथों के प्रणेताओं ने लिखे हैं, यह सब कवि-कल्पना है; किंतु हम सब आस्तिक हिंदू (उन्हें अवतार चाहे कोई न भी माने) यही मानते हैं कि ये सब ऐतिहासिक व्यक्ति हैं; पृथ्वी पर इनका अस्तित्व किसी समय हम लोगों के ही समान था; इन्होंने वे सभी कार्य किए हैं, जिनका उल्लेख हमारी ऐतिहासिक पुस्तकों में है। ऐसी स्थिति में यह कहना कि तुलसीदास या व्यास ने अपने पात्रों का अच्छा या बुरा चरित्र-चित्रण किया है, एक प्रकार से राम-कृष्णादि ऐतिहासिक महापुरुषों के अस्तित्व पर कुठाराघात करना है। इसलिये हिंदू-लेखकों से हमारी प्रार्थना है कि वे कवि की प्रशंसा यह कहकर करें कि अमुक कवि ने अमुक पात्र का चरित्र ऐसी सजीव भाषा में व्यक्त किया है कि वह पात्र आँखों के आगे उपस्थित हो जाता है। वे लोग यह न लिखें कि अमुक कवि ने राम या कृष्ण का बहुत अच्छा चरित्र-चित्रण किया है। आशा है, हमारी इस प्रार्थना पर विचार किया जायगा।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. हिंदी के नए पत्र और पत्रिकाएँ

हम देखते हैं, आजकल हिंदी-जगत् में नए पत्रों और पत्रिकाओं की बाढ़-सी आ गई है। कोई महीना ऐसा नहीं जाता, जिसमें दो-चार नए पत्र जन्म न लेते हों। यह आशा-जनक है। इससे जान पड़ता है, पढ़े-लिखे लोगों में देश-सेवा का, मातृ-भाषा की सेवा का भाव बढ़ता जाता है। एक दिन हमने अपने एक मित्र से इसी विषय की चर्चा में नवीन पत्र-पत्रिकाओं की अधिकता का उल्लेख कर हर्ष प्रकट किया। हमारे हर्ष का विरोध कर जो बात उन्होंने कही, उसे सुनकर हमारा भी हर्ष चिंता के रूप में बदल गया। हमारे मित्र ने कहा—"आप हर्ष प्रकट कर रहे हैं, पर मुझे देश की इस दुरवस्था पर तरस आ रहा है। आप क्या समझते हैं कि ये दर्जनों पत्र देश और हिंदी की सेवा के भाव से निकाले जा रहे हैं? कदापि नहीं। वस्तु-स्थिति यह है कि आज देश के नेतृ-मंडल में अराजकता-सी छाई हुई है। लीडरी की लालसा ने ऐसा ज़ोर पकड़ा है कि आज कोई अनुगामी बनकर कोई काम करना नहीं चाहता। जिसे देखो, वही लेक्चर फटकारकर लीडरी के सिंहासन पर पैर बढ़ा रहा है। उसी प्रवृत्ति का यह भी एक रूप है कि देश में यत्र-तत्र नए पत्र निकल रहे हैं। पत्र का निकालना और संपादन करना मुशकिल ही क्या रह गया है। आप देखेंगे, प्रायः अधिकांश पत्रों में वैचित्र्य या विशेषता का नाम नहीं है। वही एक ही ढंग! इसका कारण यही है कि लेख, समाचार आदि अन्य प्रतिष्ठित पत्रों से लेकर रख दिए। रह गया अग्र-लेख, सो वह भी अन्य बड़े पत्रों से पैरे-के-पैरे चुराकर तैयार कर दिया। बहुत हुआ, तो भाषा में, शब्दों में, हेर-फेर कर दिया। पत्र-संपादक होने पर सभा-समितियों में पूछ होगी, व्याख्यानबाज़ी का मौक़ा मिलेगा। कुछ दिन में पक्के लीडर हो जायँगे। अब आप ही बताइए, यह हर्ष की बात है, या चिंता की?" हम चुप हो रहे। हमारे मित्र फिर कहने लगे—"हिंदी में कुछ ऐसे भी नए पत्र निकले हैं, जो सर्वांग-सुंदर और सुसंपादित हैं, जिनसे देश और जाति को यथेष्ट लाभ पहुँच रहा है। उदाहरण-स्वरूप प्रणवीर (नागपुर), स्वतंत्र (कलकत्ता), अर्जुन (दिल्ली) इत्यादि के नाम लिए जा सकते हैं। परंतु जैसे थोड़ी भूमि में बहुत पेड़ उग आने पर उन्हें फैलने और सबल होने का मौक़ा नहीं मिलता, वैसे ही पत्रों की बढ़ती हुई बाढ़ में इन पत्रों को भी यथेष्ट ग्राहक नहीं मिलने पाते।" हमने अंत को यह कहकर मित्र को धैर्य दिया कि "ऐसे अयोग्य पत्र आप ही योग्यों को स्थान देकर चल बसेंगे।" जाते-जाते मित्र ने कहा—"पर उसका प्रभाव भी तो अच्छा नहीं पड़ेगा!"

× × ×

५. सुयोग्य संपादक का स्वर्ग-वास

कलकत्ते से जो व्यापार-विषयक 'कैपिटल' नाम का सुप्रसिद्ध अँगरेज़ी-साप्ताहिक पत्र निकलता है, उससे हमारे बहुत-से पाठक पूर्ण परिचित होंगे। शोक है कि गत ७ जुलाई को उसके संस्थापक और भूतपूर्व सुयोग्य संपादक मिस्टर शर्ली ट्रिमियर्न की, बँगलोर में, मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय यह कुछ कम ७५ वर्ष के थे। यह स्कॉटलैंड के रहनेवाले थे। इन्हें शिक्षा बहुत कम मिली थी। कारण, इनके मा-बाप की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। किंतु इन्होंने अपने देश की स्वाभाविक व्यापार-निपुणता की बदौलत यथेष्ट धन कमाया, और नाम भी अच्छा पैदा किया। यह सन् १८७० में कलकत्ते आए थे। उस समय इनकी अवस्था केवल २२ ही वर्ष की थी। आते ही यह ८०) रु० मासिक पर नौकर हो गए। इन्हें एकाउंटेंट जेनरल के दफ़्तर में एग्ज़ामिनर का पद मिला, और यह रंगून भेज दिए गए। रंगून से बदली होने पर कलकत्ते के करेंसी-ऑफ़िस में आए। कलकत्ते में क्रमशः कई महकमों में काम किया। उस समय यह स्टेट्समैन, पायोनियर और एक-आध विलायत के पत्र में व्यापारिक लेख भी लिखा करते थे। मगर व्यापारी बच्चा नौकरी में कैसे समयातिपात कर सकता था? सन् १८८८ में ट्रिमियर्न ने एक और योरपियन के साझे में साप्ताहिक कैपिटल पत्र निकाला। सन् १९१२ तक इन्होंने ख़ुद बड़ी योग्यता के साथ उसका संपादन और संचालन किया। सन् १८९६ में इनके साझीदार मर गए, और तब से यही उसके एक-मात्र स्वत्वाधिकारी हुए। सन् १९०६ में लिमिटेड कंपनी स्थापित कर ट्रिमियर्न ने कैपिटल को उसके हाथ में दे दिया। कैपिटल के समान उन्नत, सुसंचालित और सुसंपादित व्यापार-संबंधी पत्र भारत-भर में, किसी भी भाषा में, दूसरा नहीं है। इसमें प्रति सप्ताह १८×२२ साइज़ के ६०-७० पृष्ठ रहते हैं। वार्षिक मूल्य २४) रु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसमें खेती, कारीगरी और व्यापार आदि के लेख बड़े मार्के के निकलते रहते हैं, और सुशिक्षित व्यापारियों में इसका प्रचार भी ख़ूब है। इसके नोट खरे, मार्के के और कभी-कभी व्यंग्य-विनोद-पूर्ण हुआ करते हैं। साप्ताहिक होने पर भी इसका मूल्य अनेक अच्छे दैनिकों के बराबर है।

ट्रिमियर्न साहब भारतवासियों से सहानुभूति रखते थे उनकी स्वाधीनता की आकांक्षा को उचित समझते थे। इनकी राय थी कि शिक्षा-प्रचार से ही सब प्रकार की उन्नति हो सकती है। घमंडी और भारतियों को घृणा की दृष्टि से देखनेवाले ऐंग्लो इंडियनों के वह शत्रु थे। उन पर करारी चोटें किया करते थे। ऐसे शुद्ध हृदय के न्याय-प्रिय निष्पक्ष योरपियन अब भारत में कम आते हैं। यह किसी समय ३० कंपनियों के डाइरेक्टर थे, और १८ वर्ष तक योरपियन व्यापारियों के प्रतिनिधि की हैसियत से कलकत्ता-म्युनिसिपलिटी के मेंबर रहे। इस प्रकार इनकी आयु के ५२ वर्ष भारत में बीते—उनमें ४६ वर्ष कलकत्ते में ही। सब तरह से इनका जीवन आदर्श और अनुकरणीय था। हम इनकी आत्मा की सद्गति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

× × ×

६. क्या यह सच है ?

पिछले दिनों पार्लियामेंट की कामंस-सभा में भारत के बढ़े हुए नमक-कर का समर्थन करते समय भारत-सचिव के सुयोग्य सहकारी अर्ल विंटर्टन महाशय ने सभासदों के आगे एक अजीब बात कह डाली। आपने फ़रमाया कि भारत में दो साल पहले खाने की चीज़ों का जो भाव था, उसके हिसाब से पाँच मनुष्यों के एक परिवार में मासिक दस रुपए का अन्न ख़र्च होता है, और परसाल जो भाव था, उसके हिसाब से तो सिर्फ़ पाँच ही रुपए का अन्न उसके लिये काफ़ी है। आपने यह भी बताया कि भारत-सरकार के तार से आपको यह हिसाब प्राप्त हुआ है। हमारी तो अक़्ल काम नहीं देती! यह हिसाब भारत के किस प्रांत का है? भारत के किस स्थान में रहनेवाला आदमी २) रु० महीने के अन्न में—दो रुपए क्यों, एक ही रुपए महीने के अन्न में—पेट भर लेता है? अगर हम अनुमान करें कि शिमले या दिल्ली के अन्न-ख़र्च का यह हिसाब है (क्योंकि हम वहाँ कभी गए नहीं हैं, इससे अनुमान ही करना पड़ता है), तो फिर अन्य प्रांतों में तो उस हिसाब से ॥) महीने का अन्न ही एक आदमी के लिये काफ़ी होना चाहिए था। पर बात तो ऐसी नहीं देखी जाती! मोटे-से-मोटा अन्न आधे पेट खानेवाले को भी महीने में ५) रु० चाहिए। इसी से पूछना पड़ता है कि क्या यह सच है? या भारत की स्थिति से अनभिज्ञ स्वदेशवासियों से नमक-कर की वृद्धि का समर्थन कराने की एक 'पालिसी' है?

× × ×

७. एक उन्नति-शील देसी राज्य

भावनगर-राज्य काठियावाड़ में एक बड़ा और प्रथम श्रेणी का राज्य है। उसकी सन् १९२२-२३ की वार्षिक रिपोर्ट पढ़ने से मालूम हुआ कि राज्य दिन-दिन उन्नति करता जा रहा है। इस राज्य में पंचायतों का प्रचार विशेष रूप से किया जा रहा है। एक अनुकरणीय क़ानून यह बनाया गया है कि शराब मँगानेवाला और उसे रखनेवाला, दोनों दंड पावेंगे। क्या भारत-सरकार अपने इस छोटे-से मित्र से इस विषय में कुछ शिक्षा न लेगी? अब तो पृथ्वी के प्रायः सभी देशों में शराब का प्रचार रोकने का थोड़ा-बहुत प्रयत्न हो रहा है। क्या भारत—सदा से मद्य-पान का विरोधी भारत—ही शराब का शौक़ीन बनने को बाध्य होता रहेगा? राज्य में एक प्रतिनिधि-सभा भी है। पर अभी एक भारी कमी यह है कि प्रतिनिधियों का चुनाव ख़ुद राजा साहब करते हैं। चुनाव का अधिकार प्रजा को शीघ्र मिलना चाहिए। शिक्षा के प्रचार में भी कुछ उन्नति हुई है। गत वर्ष १२ लड़कों के और २ लड़कियों के लिये नए स्कूल खुले हैं। अंत्यजों में भी शिक्षा का प्रचार बढ़ाया जा रहा है। शिक्षा-प्रचार का ख़र्च गत वर्ष से १७ फ़ी-सदी बढ़ गया है। म्युनिसिपलिटियों का ख़र्च भी बढ़ा है। इस साल राज्य की आमदनी ७०,७४,६२०) रु० हुई। ख़र्च ६०,६७,४६५) रु० हुआ। लगभग १० लाख रुपए राज्य को बचे। फ़ौज का ख़र्च घटाया गया है। मगर पुलीस का ख़र्च बढ़ा है। हम आशा करते हैं, समय की गति को देखकर इसी तरह सब देसी रजवाड़े अपनी उन्नति करते हुए प्रजा से अधिकाधिक सहयोग करेंगे। इसमें प्रजा का और उनका भी कल्याण है।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. भारत में विदेसी काग़ज़ की आमदनी

दिन-दिन संसार में काग़ज़ का ख़र्च बढ़ता ही जा रहा है। भारत में भी पत्रों और पुस्तकों के प्रचार की अधिकता के साथ ही काग़ज़ का ख़र्च बढ़ रहा है। अब तक अंतर यही था कि अन्य देशों में अधिकांश काग़ज़ अपने यहाँ बना लिया जाता था; पर भारत में अधिकतर काग़ज़ बाहर से ही आता था। मगर जब से टीटागढ़-पेपर-मिल, बंगाल पेपर-मिल, अपर इंडिया पेपर-मिल आदि ने काफ़ी काग़ज़ बनाना शुरू किया है, तब से भारत में विदेसी काग़ज़ की आमदनी घटती ही जा रही है। सन् १९२०-२१ में यहाँ बाहर से २८,००० टन काग़ज़ आया; जिसका मूल्य दो करोड़ पचासी लाख रुपए था। सन् १९२१-२२ में केवल ७३$\frac{1}{4}$ लाख रुपए का ११,००० टन ही आया। पैकिंग-पेपर और पोस्ट-बोर्डों की आमदनी में तो बहुत अधिक कमी हो गई है। गत वर्ष भारत की पेपर-मिलों ने २८,००० टन काग़ज़ बनाया था। भारत का काग़ज़ बनने भी अच्छा लगा है। किंतु यहाँ की मिलें अपने काग़ज़ के दाम बहुत अधिक रक्खे हुए हैं। १५) फ़ी-सैकड़े सरकारी चुंगी देकर भी नार्वे, जर्मनी, अमेरिका और ब्रिटन की मिलों का काग़ज़ देसी मिलों के काग़ज़ से सस्ता पड़ता है। देसी मिलों के मालिकों को इधर ध्यान देना चाहिए।

× × ×

९. देसी मिलों का कपड़ा और सूत

इस समय यहाँ की मिलों में कपड़े की २ लाख गाँठें और सूत की ३३ हज़ार गाँठें ख़रीदारों के अभाव से पड़ी हुई हैं। इसका कारण एक इस विषय के विशेषज्ञ व्यक्ति ने यह बतलाया है कि जिन लोगों में इस कपड़े की खपत होती थी, उनके पास खाने-पीने के ख़र्च से इतना रुपया नहीं बचता कि वे वस्त्र ख़रीदें। उक्त सज्जन ने एक पत्र-प्रतिनिधि से कहा है कि जिन लोगों में इन कपड़ों की खपत होती थी, उनकी ख़रीदने की शक्ति कम हो गई है। अब वे कम कपड़ा ख़रीदते हैं। इस कमी का कारण है अधिक टैक्स और वर्तमान करेंसी की नीति। गत वर्ष भारत के टैक्स ५० करोड़ रुपए के बढ़ गए हैं, और प्रांतीय तथा म्युनिसिपल-टैक्स १५ करोड़ से बढ़कर २० करोड़ रुपए के हो गए हैं। रुपए का मूल्य, उसकी क्रय-शक्ति की दृष्टि से, आधा रह गया है। मैं इस कथन को, सन् १८७३ में खाद्य पदार्थों के मूल्य की दर को १०० मानकर, उसकी निरंतर बढ़ती को नीचे के अंकों से स्पष्ट करके, प्रमाणित करूँगा।

सन्	खाद्य पदार्थों का मूल्य	
१८७३	१००	
१८९४	११४	
१९०४	११७	
१९१०	१६८	
१९११	१५१	
१९१२	१८९	
१९१३	१९९	
१९१४	२२०	
१९१९	३९८	युद्ध के बाद अनेक कारणों से इतनी वृद्धि हुई है।
१९२०	३५८	
१९२१	३८८	
१९२२	३२७	

अब १९०४ और १९२२ के अंकों की तुलना करके देखिए।

इसी विषय के कुछ जानने योग्य अंक ये हैं—

भारत की सन् १९११ की उन्नति-रिपोर्ट में लिखा है कि भारत में, सन् १९१० में, ७$\frac{1}{2}$ करोड़ कपड़ा बुननेवाले थे। सन् १९२२ में, मिलों में काम करनेवालों की संख्या, समग्र भारत में ३,४४,००० और सिर्फ़ बंबई में १,४९,२२४ थी। बंबई की मिलों में ६५,५०० और सारे भारत में १,३४,६०० करघे थे। सन् १९२२ में ६९,२३,००,००० पौंड सूत और ४०,३४,००,००० पौंड कपड़ा तैयार हुआ। इसकी तैयारी में ३६ करोड़ पौंड सूत ख़र्च हुआ। ८ करोड़ १० लाख पौंड सूत विदेश भेजा गया। २५ करोड़ पौंड सूत खद्दर में खपा।

× × ×

१०. कुछ जानने लायक बातें

१—अंतर-राष्ट्रीय मज़दूर-सभा ने गत महायुद्ध की जन-हानि का एक लेखा तैयार किया है। उसके अनुसार युद्ध से एक करोड़ आदमी अंग-भंग हो जाने के कारण बेकाम हो गए हैं। उनमें से ७१ लाख २४ हज़ार को भिन्न-भिन्न राष्ट्र पेंशन दे रहे हैं। उसका ब्योरा यह है—जर्मनी में १५,३७,०००, फ़्रांस में १५,००,०००, इँगलैंड में ११,७०,०००, इटली में ८,००,०००, रूस में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वन-लता

[बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा की बहन द्वारा चित्रित]

मोहित मन-मधुकर करे, फूली, फली, विचित्र ;
यह उपवन में वन-लता, चलती-फिरती मित्र !

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७,७५,०००, बेलजियम में ११,०००, युक्त-राज्य (अमेरिका) में १,५७,०००, कनाडा में ४५,०००, न्यूज़ीलैंड में २०,००० और आस्ट्रेलिया में १६,००० ऐसे पेंशन पानेवाले हैं।

२—गत सन् १९१२-१३ से सन् १९२१-२२ तक भारत में सैनिक ख़र्च का ब्योरा इस प्रकार है—

सन्		रुपए
१९१२-१३	...	२६,३५,००,०००)
१९१३-१४	...	२६,८४,००,०००)
१९१४-१५	...	३०,६५,००,०००)
१९१५-१६	...	३३,३९,००,०००)
१९१६-१७	...	३७,४९,००,०००)
१९१७-१८	...	४३,५८,००,०००)
१९१८-१९	...	६६,७२,००,०००)
१९१९-२०	...	८८,९८,००,०००)
१९२०-२१	...	८७,३८,००,०००)
१९२१-२२	...	६,९८,१०,०००)

३—इस समय भिन्न-भिन्न बड़े राष्ट्रों के पास जो छोटे जंगी जहाज़, पनडुब्बियाँ और बड़े जंगी जहाज़ हैं, उनका लेखा एक पत्र में प्रकाशित हुआ है। यथा—

देश	छोटे जहाज़		पनडुब्बी		बड़े जंगी जहाज़	
	तैयार	बन रहे	तैयार	बन रहे	तैयार	बन रहे
ब्रिटन	१८४	४	६६	८	१८	२
अमेरिका	३१८	...	१०४	२७	३१	९
जापान	७२	३८	४०	११	११	२
फ़्रांस	५०	१२	४७	१३	९	...
इटली	५२	४	४३	४	१२	...
रूस	१६	२६	१७	३	४	१
जर्मनी	...	...	...	...	८	...

४—अमेरिका में एक ऐसा वैज्ञानिक आविष्कार हुआ है, जिससे एक ही फल में आधा मीठा और आधा खट्टा होता है।

५—भारत में १६ लाख पुरोहित, ७० लाख भिक्षुक और ६ लाख पुजारी हैं।

६—अमेरिका में काग़ज़ के भी कपड़े बनते हैं। उनमें आधा सूत मिला रहता है। सूत की जगह ऊन का मेल देने से और भी बढ़िया कपड़ा बनता है। ये कपड़े अधिक टिकाऊ न होने पर भी सस्ते होते हैं। सफ़ाई भी ख़ूब होती है। मज़े में धोए भी जा सकते हैं।

७—ऐसी मशीन बन रही है, जिसमें एकसाथ ३५० कुर्ते या कमीज़ें धुल सकेंगी।

८—कनाडा में एक गऊ ३ लाख २८ हज़ार रुपए मूल्य की है। वह साल-भर में २१ मन घी अथवा ३८६ मन दूध देती है। उसका एक दिन का दूध ३०० आदमियों के लिये काफ़ी हुआ था। वह सीधी बेहद है। दस साल की लड़की उसे चाहे जहाँ ले जाती है।

९—संसार-भर में बेलजियम की रेलवे का किराया बहुत कम है। ४०) रु० ख़र्च कर सारे बेलजियम में घूमा जा सकता है।

१०—न्यूज़ीलैंड में एक वृक्ष है, जो संसार में सबसे अधिक ऊँचा है। उसके तने का घेरा ६६ फ़ीट है। उसकी आयु २००० वर्ष की बतलाई जाती है।

११—आस्ट्रेलिया में एक किसान के यहाँ अद्भुत सुअर का बच्चा है। उसका वज़न १४ मन, लंबाई ८$\frac{१}{४}$ फ़ीट, और उँचाई ३$\frac{३}{४}$ फ़ीट है।

१२—संसार में सबसे बड़ी दूरबीन केलीफ़ोर्निया (अमेरिका) में है। उससे हरएक चीज़ ढाई लाख-गुनी बड़ी देख पड़ती है।

१३—दक्षिण-अमेरिका में एक ऐसी बड़ी चींटी होती है, जो रुपए को अपने शरीर से ढक लेगी।

१४—चीन का फ़ेचोफ़ू-शहर संसार में सबसे पुराना शहर है। वह ईसवी सन् के आरंभ से २,२०५ वर्ष पहले आबाद था।

१५—चीनी-भाषा में अक्षर नहीं हैं। हरएक शब्द के लिये एक ख़ास शब्द-चिह्न है। ये चिह्न सब मिलाकर, भाषा-भर में, केवल २१४ हैं। कुछ हेर-फेर करके इन्हीं से ज़रूरत के माफ़िक नए-नए शब्द गढ़ लिए जाते हैं।

१६—सन् १८६५ में चीन-देश में केवल १९ अख़बार निकलते थे। अब वहाँ ३,००० से ऊपर अख़बारों की संख्या है।

१७—खेलने के ताशों की कल्पना सर्व-प्रथम फ़्रांस में हुई थी। यह कई शताब्दी पहले की बात है। 'हुकुम' का चिह्न पादरियों का सूचक है। इसमें पहले एक टोप का आकार होता था। 'चिड़ीतंग' उस समय के अमीरों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिपाहियों का चिह्न है। इसका आकार फ़ावड़े का था। 'ईंट' शिल्पियों का और 'पान' किसानों का चिह्न है। चारो 'बादशाह' डेविड, सिकंदर, सीज़र और शार्लमन हैं। चारो 'बेगमें' अर्जीन, जुडिक, एस्थर और पालस हैं। 'ग़ुलाम' अमीर या उनके दास हैं।

१८—फ़्रांस में २ करोड़, इँगलैंड में ५ करोड़ ४० लाख और योरप के अन्य देशों में १ करोड़ अलपीनें रोज़ाना बनती हैं। इस प्रकार सारे योरप में नित्य तैयार होनेवाली अलपीनों की संख्या ८ करोड़ ४० लाख होती है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि योरप में एक आदमी नित्य ३ पिनें नष्ट करता है।

१९—अटलांटिक महासागर में अभी ७० हाथ लंबी एक ह्वेल-मछली पकड़ी गई है।

२०—मो० बेलिन नाम के एक फ़्रेंच वैज्ञानिक ने नए ढंग से तार भेजने की एक तरकीब निकाली है। इसके अनुसार भेजनेवाले के हाथ के लिखे तार का फ़ोटो तार के द्वारा पानेवाले के पास पहुँच जाता है। इस रीति से मकानों और क़िलों आदि के नक़्शे भी मज़े में भेजे जा सकेंगे।

२१—जिस आदमी का सिर मस्तक के ठीक ऊपर अधिक ऊँचा होता है, वह सद्गुण-संपन्न होता है। कानों के ऊपर मध्य-भाग जिसका अधिक ऊँचा होता है, वह आत्म-सम्मान का पक्षपाती, धनी और ईश्वर-भक्त होता है। जिसका सिर पीछे की ओर अधिक ऊँचा होता है, वह घमंडी और अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करनेवाला होता है। जिसके सिर का पिछला भाग पीछे को निकला रहता है, वह पशु-प्रवृत्ति, पापी होता है। जिसके सिर का पिछला भाग कुछ चिपटा रहता है, उसका स्वभाव शांत और गंभीर होता है। यह सब वैज्ञानिक जाँच और अर्से के अनुभव से जाना गया है।

२२—अमेरिका के प्रोफ़ेसर मि० मिचल ने विज्ञान के द्वारा सबसे बड़ी और सबसे छोटी चीज़ का अनुमान कर सकने के दो उदाहरण अपने व्याख्यान में बतलाए हैं। यथा—डॉ० हार्लो शैपले ने कुल ब्रह्मांड के व्यास की नाप १२,००,००,००,००,००,००,००० मील अंदाज़ी है। इसके विपरीत अणु की जाँच से प्रमाणित हुआ है कि जिन अणुओं से यह ब्रह्मांड बना है, उनका व्यास एक इंच का .००,००,००,००,००,०० १६वाँ भाग है!

× × ×

११. स्वर्गीय पं० रामभजदत्त चौधरी

भारत के दुर्भाग्य से दिन-दिन यहाँ के प्रभाव-शाली पुरुषों का दुःखदायक वियोग होता जा रहा है। रोना तो यह है कि जो स्थान ख़ाली होते जाते हैं, उनकी पूर्ति करनेवाला एक भी आदमी नहीं नज़र आता। बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि पंजाब के प्रभाव-शाली प्रजा-प्रिय नेता उदारचेता पंडित रामभजदत्त चौधरी महाशय अब इस संसार में नहीं हैं। गत ६ अगस्त को, सबेरे, मंसूरी में उनका स्वर्गवास हो गया। इधर कुछ समय से आप बीमार थे। पीठ पर कारबंकल (उलटा फोड़ा) हो गया था। ज्वर भी आता था। इसी में आपके प्राण गए। आपकी धर्म-पत्नी, बंगाल के स्त्री-समाज की शिरोमणि, श्रीमती सरला देवी कुछ समय से वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर हृषीकेश में रहने लगी थीं। वह भी पति की सेवा के लिये मंसूरी पहुँच गई थीं। उन्होंने सब कुछ यत्न और सेवा की; बड़े-बड़े डॉक्टरों ने चिकित्सा की; पर काल के आगे कुछ नहीं चली। एकाएक हृदय-स्पंदन रुक जाने से पंडितजी की मृत्यु हो गई।

पंडितजी का जन्म सन् १८६६ ई० में हुआ था। उच्च शिक्षा समाप्त कर सन् १८९६ में आप वकालत करने लगे। सन् १९०५ में श्रीसरलादेवी से विवाह किया। तदनंतर कई साल तक आप उर्दू के नामी दैनिक पत्र 'हिंदोस्तान' के संचालक रहे। राजनीतिक अपराध के लिये आप पकड़े गए, और १४ एप्रिल, १९१९, को 'डेरा-ग़ाज़ीख़ाँ'-स्थान को निर्वासित कर दिए गए। पर कुछ ही दिन में छूट गए। इसी सन् में ६ मई के दिन ताज़ी-रात-हिंद की १२४ ए० दफ़ा के अनुसार राजद्रोह के अपराध में फिर पकड़ लिए गए। यह समय पंजाब में मार्शल ला का था। मार्शल ला की कमीशन ने आपको जन्म-भर के लिये कालेपानी की सज़ा दी। जायदाद भी ज़ब्त कर ली गई। इसी सन् में बड़े दिन के अवसर पर सम्राट् की घोषणा के अनुसार आप फिर छूट गए। इस प्रकार बार-बार विपत्ति में पड़कर भी, कष्ट झेलकर भी, आप अपने विचारों पर अटल रहे। कोई सज़ा आपको कर्तव्य से विचलित नहीं कर सकी।

पंजाब में नई जान डालनेवाले सज्जनों में पंडितजी का स्थान बहुत ऊँचा था। आप विद्वान्, बुद्धिमान्, समाज-सुधारक, कट्टर असहयोगी, कट्टर आर्यसमाजी, हिंदू-मुस्लिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकता के समर्थक और देश-भक्त थे। आपने वर्तमान आंदोलन में बहुत कुछ काम किया है। आप निडर वक्ता थे। आपकी आवाज़ बलंद थी। विचार परिमार्जित और ओजस्वी रहते थे। आपकी मृत्यु से सारे भारत को दुःख हुआ है। हम आपकी धर्म-पत्नी, पुत्र और परिवार से सहानुभूति प्रकट करते हुए आपकी आत्मा की शांति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। अगली संख्या में आपका चित्र दिया जायगा।

× × ×

१२. फ्रांस की भीषण प्रतिहिंसा

जर्मनी के रूर-प्रदेश में, जहाँ फ्रांस ने ६ महीने से ज़बरदस्ती घुसकर अपना अधिकार कर लिया है, इस समय ८७,००० फ्रांस की और ७,००० बेलजियम की सेना है। इसके अलावा वहाँ अधिकृत प्रदेश राइनलैंड के भिन्न-भिन्न भागों में ९६,००० फ्रांस की और १७,००० बेलजियम की सेना है। जुलाई के आरंभ तक वहाँ ९३ जर्मनों की हत्याएँ हो चुकी थीं। ६ आदमियों को फ़ौजी अदालत से मृत्यु-दंड दिया जा चुका था। वहाँ फ्रांस और बेलजियम की ओर से जर्मनों को जो क़ैद की सज़ा दी जा चुकी है, वह सब मिलाकर १,००० साल की है। उसमें ६६७ वर्ष, ७ महीने और २३ दिन की सख़्त क़ैद की सज़ा है। दो आदमियों को जन्म-क़ैद का कठोर दंड मिला है। जर्मनों को सब मिलाकर १६ अरब ४० करोड़ मार्क और १,०८,००० फ्रैंक अर्थ-दंड दिया जा चुका है। ७५,७१४ आदमियों को देश-निकाले की सज़ा मिली है। उनमें ७१,१४५ आदमी अन्य देशों को भेज दिए गए हैं। वहाँ के एक ज़िले में १६६ स्कूल बंद कर दिए गए हैं; जिनमें ५० हज़ार विद्यार्थी पढ़ते थे। इधर ४ अगस्त को ३ जर्मनों को फाँसी और ५ को २० से लेकर ३ वर्ष तक क़ैद की सज़ा मिली है। इन पर डुइसबर्ग के पास बेलजियम के एक लेफ़्टिनेंट की हत्या का अपराध लगाया गया था। जर्मनी के भिन्न-भिन्न विभागों और प्रांतों पर फ्रांस के अत्याचार का ब्योरा इस प्रकार है—

रेल-विभाग—इस विभाग के मुख्य-मुख्य कर्मचारी छाँटकर जेल भेजे गए हैं। उनकी सज़ा का टोटल २५४ वर्ष ८ महीने है। १७,७८,१८,००० मार्क और २५० फ्रैंक जुर्माना भी हुआ है। २७,४५१ आदमी देश से निकाले गए हैं।

डाक-विभाग—इस विभाग के लोगों को कुल ७५ वर्ष ८ महीने २३ दिन की सज़ा दी गई है। नक़द १४,०५,८१,००० मार्क और २,१५० फ्रैंक जुर्माना वसूल किया गया है। ५५२ को देश-निकाले की सज़ा मिली है।

कोष-विभाग—इस विभाग में ७६ वर्ष ६ महीने ३ दिन की सज़ा, २१,५६,६०,००० मार्क और १०० फ्रैंक जुर्माना तथा ५,४६३ मनुष्यों को देश-निकाला हुआ है।

प्रुशिया—इस प्रदेश के शासन-विभाग के कर्मचारियों को कुल २४८ वर्ष ८ महीने २७ दिन की क़ैद, १,१०,६८,७५,०००मार्क का जुर्माना और १०,८७८ को देश-निकाला।

बवेरिया—यहाँ के शासन-विभाग के कर्मचारियों को कुल २५ वर्ष की क़ैद, २,५०,००,००० मार्क जुर्माना और ३१५ को देश-निकाला।

बाडन—यहाँ के शासन-विभाग के कर्मचारियों को कुल ५ वर्ष ६ महीने की क़ैद, ३,७०,००,००० मार्क जुर्माना तथा १२६ नर-नारियों को देश-निकाला।

एसेन—यहाँ के कर्मचारियों को ५ वर्ष ६ महीने की क़ैद, ५,५८,०५,००० मार्क और ५०० फ्रैंक जुर्माना तथा २०३ को देश-निकाला।

बेल्डनबर्ग—यहाँ के कर्मचारियों को २ महीने २१ दिन की क़ैद हुई है। ३३ को देश-निकाला हुआ है।

इनके अलावा ग़ैर सरकारी आदमियों को कुल २७६ वर्ष ८ महीने, ३ दिन की क़ैद, १६,४०,६६,८५,७६,००० मार्क और १,०५,०६६ फ्रैंक जुर्माना तथा ८,००० को देश-निकाला हुआ है।

जर्मनों ने एक-एक दिन के अत्याचार का ब्योरा लिख रक्खा है। इससे यह स्पष्ट है कि वे इस समय भले ही निःशस्त्र सत्याग्रह करके चुप हों, लेकिन इन अत्याचारों को भूल नहीं सकते। वे मौक़ा मिलते ही इसका मय सूद बदला चुकावेंगे ही। मगर अपनी वर्तमान शक्ति के मद में अंधा फ्रांस इसका ख़याल नहीं करता कि वह अपने लिये गढ़ा खोद रहा है। सब-के सब दिन समान नहीं जाते, यह प्रवाद अथवा ऐतिहासिक सत्य भी उसे भूल-सा गया है। परंतु एक दिन उसे अपनी करनी पर पछताना ही पड़ेगा। जर्मनी सदा सात्त्विक सत्याग्रह का आश्रय नहीं ले सकता। उसका यह सत्याग्रह तो शक्ति-संचय के लिये है।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३. आवाज़, हाथ-पैर और उँगलियों का बीमा

लाइफ़-इंश्योर अर्थात् जीवन का बीमा कराना तो इस समय भारत के सभी प्रांतों में प्रचलित है। मामूली क्लर्क से लेकर लखपती महाजन तक अनेक देसी-विदेसी बीमा-कंपनियों के यहाँ अपने जीवन का बीमा कराते हैं। आग लगने, जहाज़ डूबने आदि की दुर्घटनाओं की क्षति से बचने के लिये भी लोग यहाँ अपनी दूकानों, मकानों, गोदामों और जहाज़ में भेजे या मँगाए गए माल का बीमा कराते हैं। मगर हाथ की उँगली, पैर के अँगूठे या गले की आवाज़ का बीमा करने-कराने का ख़याल भी यहाँ किसी के मन में न आता होगा। पाठकों को सुनकर अवश्य आश्चर्य होगा। मगर बात सोलहो आने सच्ची है। योरप और अमेरिका की अमीर इंश्योरेंस-कंपनियाँ गवैयों की आवाज़ तक का बीमा करती हैं। कुछ उदाहरण सुनिए। सुप्रसिद्ध नर्तकी आना पैवलोवा ने अपने पैर के अँगूठे का, जिस पर ज़ोर देकर वह नाचती है, बीमा ६० हज़ार रुपए का कराया है! नेपियर स्कोवास्का नाम की एक और नर्तकी है। उसके दोनों पैरों का बीमा १ लाख ८० हज़ार रुपए का हुआ है! एक गाने-बजाने के उस्ताद पैडेरिस्की के हाथ का बीमा १ लाख ८० हज़ार रुपए का हुआ था। उन्हें साल में १२,०००) रुपए उसका प्रीमियम देना पड़ता था। हाथ के अलावा उनकी उँगली, हाथ के अँगूठे, पैर के अँगूठे, आँख आदि का अलग-अलग बीमा हुआ था। यह महाशय एक बार एक नाख़ून में चोट लग जाने के कारण एक कंसर्ट-पार्टी में शामिल नहीं हो सके। बस, बीमा-कंपनी से इसी के लिये १५,०००) रुपए वसूल कर लिए। योरप-खंड की श्रेष्ठ गायिका पैटी ने अपने गले (आवाज़) का बीमा कराया था। यह बीमा १५,०००) का हुआ था। प्रोफ़ेसर हक्सली ने अपनी दृष्टि का ७५,०००) का बीमा कराया था। दृष्टि-शक्ति अवधि के बीच में नष्ट हो जाती, तो वह तभी रुपए वसूल कर लेते। सर हर्बर्ट बार्कर के दोनों हाथ भारी रक़म के लिये बीमा किए हुए हैं। मि० कुबेलिक एक कारीगर हैं। उनके एक हाथ का बीमा १½ लाख रुपए का है। इसी तरह योरप और अमेरिका के लोग मामूली अंग-प्रत्यंगों तक का बीमा कराते हैं। सब दौलत के चोंचले हैं। हमारे देश में न इतना धन है, और न इस तरह बीमा कराया जाता है।

× × ×

१४. हमारे बहु-मूल्य प्राचीन ग्रंथ

इस बात का साक्षी इतिहास है कि हमारे अधिकांश बहु-मूल्य प्राचीन ग्रंथ जला-जलाकर हम्माम गरम किए गए हैं। एक बार नहीं, अनेक बार हमारे पूर्वजों की कीर्ति और उनकी प्रतिभा का प्रमाण साहित्य नष्ट-भ्रष्ट कर डाला गया है। जो कुछ ग्रंथ भी बच रहे, तो उन्हें विदेशी विद्वान् कौड़ियों के मोल अपने देशों को ले गए। यही कारण है कि जब विदेशी जातियों के घमंडी लोग हमें असभ्य और आविष्कार की शक्ति से रहित कहकर हमारा उपहास करते हैं, तब हम उनको मुँह-तोड़ जवाब देने लायक़ कुछ प्रमाण अपने पास न पाकर चुप रह जाते हैं। विदेशियों की बात जाने दीजिए, नई शिक्षा-दीक्षा पाए हुए अधिकांश आधुनिक हमारे देसी भाई भी यह विश्वास करते और कहते हैं कि भारत में पारलौकिक उन्नति चाहे जितनी हुई हो, पर आजकल के योरप और अमेरिका में जो नवीन-नवीन आविष्कार हुए और हो रहे हैं, वैसे आविष्कार हमारे यहाँ कभी नहीं हुए। मगर असल में बात ऐसी नहीं है। यहाँ पहले ज़माने में जितने और जैसे आविष्कार हो चुके हैं, उतने और वैसे आविष्कार पाश्चात्य-जगत् में इस समय भी नहीं हो सके हैं। हमारे यहाँ बहुत समय पहले वायु-यान, बेतार के तार और अद्भुत अस्त्र-शस्त्र आदि का आविष्कार और प्रचार हो चुका था।

एक प्राचीन पुस्तकालय में, भारत में ही, ऐसे प्राचीन हस्त-लिखित ग्रंथ अब तक सुरक्षित हैं, जिनसे हमारे इस कथन की सत्यता सिद्ध होती है। कलकत्ते की अमृत-बाज़ार-पत्रिका ने उसके संबंध में जो कुछ प्रकाशित किया है, उसका सारांश यहाँ पर दिया जाता है। निज़ाम के राज्य (हैदराबाद-दक्खिन) में पत्थरघाटी नाम का एक स्थान है। वहाँ के जागीरदार डॉक्टर सैयद महम्मद क़ासिम के यहाँ एक बहुत प्राचीन पुस्तकालय है। डॉक्टर एस्० वेंकोबारावजी ने पत्रिका में उक्त पुस्तकालय का संक्षिप्त परिचय छपाया है। यह पुस्तकालय उस समय से स्थापित है, जब बीजापुर-साम्राज्य का आरंभ भी नहीं हुआ था। सैयद साहब के पूर्व-पुरुष बीजापुर के राज-घराने के मान्य पुरोहित रहे हैं। सेना में भी उन्हें ऊँचे पद मिलते थे। वे लोग ही इस पुस्तकालय के स्वामी, संस्थापक और संरक्षक थे। समय-समय पर अप्राप्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन पुस्तकें इसमें एकत्र की गई हैं। डॉक्टर साहब स्वयं एक बड़े भारी विद्वान् हैं। कई देशों की यात्रा और सैर कर आए हैं। इन्होंने भी पुस्तकालय में बहुत-सी दुर्लभ प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकें लाकर जमा की हैं। पुस्तकालय में धर्म, दर्शन, कला-कौशल, विज्ञान, इतिहास, ज्योतिष, सामुद्रिक-शास्त्र, वैद्यक, रसायन आदि की अनेक इतनी प्राचीन पुस्तकें हैं जो ताड़ के पत्तों पर लिखी हुई हैं, अर्थात् जब काग़ज़ का आविष्कार नहीं हुआ था, तब की लिखी हुई हैं। भारत में प्रचलित प्रधान-प्रधान सभी भाषाओं की पुस्तकों का संग्रह है। कुछ पुस्तकें तो बहुत ही प्राचीन—वैदिक--युग की समझी जाती हैं। भारत के और किसी पुस्तकालय में ऐसी प्राचीन और अद्भुत पुस्तकें नहीं हैं। कुछ पुस्तकों के विषय तो आश्चर्य में डाल देनेवाले हैं। यथा—(१) मृतक शरीर को हज़ारों वर्ष तक अविकृत अवस्था में रखने का मसाला। इसका पूर्ण वर्णन है। शायद भारत से ही मिसर ने 'मर्मी' की प्रक्रिया सीखी होगी। (२) बेतार का तार। पुस्तक में लिखी तरकीब से पत्थर की दो शिलाएँ बनाकर चाहे जितनी दूर पर रखकर उनके द्वारा बात-चीत की जा सकती है। लिखा है, इस उपाय से हज़ारों कोस के फ़ासले पर वार्तालाप किया जा सकता है। (३) इच्छानुसार पेड़ से रंगीन रुई पैदा करना। (४) भू-गर्भ का ज्ञान। इस विषय की पुस्तक में पृथ्वी के भीतर स्थित मोती, धातु या प्राचीन गड़े हुए धन आदि का पता लगाकर उन्हें निकाला जा सकता है। (५) विचित्र शीशा बनाने की विधि; जिसके द्वारा देखने से पानी के भीतर की सब चीज़ें स्पष्ट दिखाई देती हैं। (६) बर्फ़ बरसाने की प्रक्रिया। इसके अनुसार गरमियों में बर्फ़ बरसाई और सरदियों में गिरती हुई बर्फ़ बंद की जा सकती है। (७) पहाड़ों को ज़मींदोज़ करने की विधि। (८) नीचे से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर पानी पहुँचाने के उपाय। (९) लोहा गलाना। (१०) हज़ारों साल तक बराबर पानी को एक-सा गरम रखना। (११) मोती आदि रत्नों को गलाकर चाहे जिस आकार का बना लेना। (१२) मनुष्य की १००० वर्ष की आयु कर देना। (१३) अन्न को हज़ारों वर्ष तक सुरक्षित रखना। (१४) छः महीने तक कुछ न खा-पीकर स्वस्थ और शक्ति-शाली बने रहना। (१५) बेशुमार आहार करने पर भी अजीर्ण न होना। (१६) प्राचीन दुर्बोध भाषाओं को पढ़ना और उनका अर्थ समझ सकना। (१७) पत्थर, हड्डी और लोहे पर वैसी ही चिरस्थायी पालिश करना, जैसी कि सारनाथ में निकले हुए एक खंभे पर है।

इस प्रकार की अनेकों अद्भुत प्रक्रियाओं और कला-कौशलों की बातें उन पुस्तकों में विधि-सहित लिखी हुई हैं। पुस्तकालय में प्राचीन काल की सोने, चाँदी और ताँबे की मुद्राओं और रंग-रंग के ऐतिहासिक पत्थरों का भी अच्छा संग्रह है। एक औषध-कोष भी ४० भाषाओं में है; जो हैदराबाद के निज़ाम को समर्पित है।

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को उचित है कि वह अभी अपने किसी प्रतिनिधि को इस पुस्तकालय के निरीक्षण के लिये भेजकर उसके द्वारा इन अद्भुत पुस्तकों की ऐसी एक सूची तैयार करावे, जिसमें ग्रंथ और ग्रंथकर्ता या संग्रहकर्ता का नाम, भाषा, विषय और पृष्ठ-संख्या लिख ली जाय। उसके बाद संग्रहालय की स्थापना होने पर उन ग्रंथों की नक़ल कराने का उद्योग भी किया जाय। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा को भी सुविधा होगी। आशा है, हमारी प्रार्थना के अनुसार शीघ्र कुछ आयोजन होगा।

× × ×

१५. खाने-पीने की चीज़ों में मिलावट

यह बात हमारे यहाँ ग़रीब से लेकर अमीर तक को अच्छी तरह मालूम हो गई है कि लालची व्यापारी धर्माधर्म और कर्तव्याकर्तव्य का कुछ भी ख़याल न कर खाने-पीने की चीज़ों में ऐसी चीज़ों का मेल करने लगे हैं, जिन-से धर्म का नाश तो होता ही है, स्वास्थ्य को भी भारी हानि पहुँचती है। घी-जैसे आवश्यक पदार्थ में मूँगफली या रेंड़ी का तेल ही नहीं, चरबी—सुअर और साँप तक की चरबी!—मिलाई जाती है! अभी हाल में अख़बारों में देखा था कि एक ठेकेदार ने विदेसी नक़ली (एक वनस्पति से बना हुआ) घी देकर सरकार को ठगा है। मालूम होने पर उसे सज़ा दी गई। सरकार ने तो सज़ा दे दी, रुपए भी शायद वसूल कर लिए होंगे; पर साधारण प्रजा क्या करे? उसके हाथ में ऐसे अन्यायों को रोकने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का क्या उपाय है ! गेहूँ के आटे में आधे जव, चावल के कँन या जुनार मिला देना मामूली बात है। कोई मिट्टी तक मिला देते हैं। दूध तो ख़ालिस मिलता ही नहीं, चाहे तीन सेर का लीजिए। मलाई में आरारोट डाला जाता है। शुद्ध देसी शक्कर भी दुर्लभ है। कच्ची शक्कर (यह शरबत बनाने के काम आती थी) तो बाज़ार में देख ही नहीं पड़ती। कहाँ तक गिनावें, केवल मनुष्यों को छोड़कर और सभी खाने-पीने की चीज़ों में 'मेल' मौजूद है। एक-दो हेल्थ-ऑफ़िसर कहाँ तक जाँच कर इन अर्थ-पिशाचों को दंड दिला सकते हैं ? इसका व्यापक प्रतिकार होना चाहिए। कई महीने हुए, बंबई-सरकार ने एक क़ानून का मसविदा प्रकाशित किया था ; जो कि इँगलैंड के खाद्य पदार्थ और औषधों के ऐक्ट के आधार पर तैयार किया गया था। वह क़ानून, पास हो जाने पर, पहले बंबई-नगर में जारी किया जायगा। उसके अनुसार कुछ लोग ख़ास इसी काम के लिये मुक़र्रर होंगे कि वे घूम-फिरकर मिलावटी चीज़ों की जाँच करें, और दोषियों को दंड दिलावें। हमारी राय में प्रांतीय सरकारों को अपने-अपने प्रांत में प्रजा-पक्ष के प्रतिष्ठित लोगों में से कुछ आदमी चुनकर उन्हें यह काम सौंप देना चाहिए। प्रत्येक नगर में ऐसे दस-पाँच आदमी मुक़र्रर हों। वे लोक-हित के ख़याल से यह काम ऑनरेरी करें। सरकार उन्हें यह अधिकार दे दे कि वे मिलावट करने के अपराधी को गिरफ़्तार करके उस पर मुक़द्दमा चला सकें। ऐसे अपराधियों को कठिन-से-कठिन दंड भी मिलना चाहिए। केवल अर्थ-दंड ही नहीं, कारावास का दंड भी दिया जाय। तभी कुछ प्रतिकार हो सकता है। नहीं तो, जिस द्रुत गति से यह अपराध भारत के प्रत्येक स्थान में फैल रहा है, उसे देखकर यह अनुमान असंगत न होगा कि कुछ समय में भारत में घी, दूध आदि पौष्टिक पदार्थ दवा के रूप में व्यवहृत होने लगेंगे।

× × ×

१६. गत महायुद्ध में इँगलैंड का व्यय

गत महायुद्ध में संसार का कितना धन स्वाहा हुआ, कितने जीवन नष्ट हुए, इसका अनुमान करना भी कठिन है। यहाँ केवल इँगलैंड के व्यय का ब्योरा दिया जाता है। उसी से हमारे पाठक उस विराट् व्यय का कुछ अंदाज़ लगा सकेंगे।

सन् १९१४ के १ एप्रिल से १९१९ के ३१ मार्च तक इँगलैंड को ९ अरब ५९ करोड़ पौंड ख़र्च करने पड़े। इस रक़म में १ अरब ८२ करोड़ प्रत्यक्ष टैक्स से, ९१ करोड़ अप्रत्यक्ष टैक्स से, ५ अरब ५० करोड़ इँगलैंड में और १ अरब ३६ करोड़ इँगलैंड के बाहर उप-निवेशों से युद्ध-ऋण लेकर प्राप्त किए गए। मित्र-राष्ट्रों और उपनिवेशों को निम्न-लिखित ऋण दिया गया (इस-में १९२२ के ३१ मार्च तक का वह सूद भी शामिल है, जो वसूल नहीं किया जा सका)—

फ़्रांस को ५८ करोड़ ४० लाख पौंड, इटली को ५० करोड़ ३० लाख पौंड, अन्य मित्रों को ८४ करोड़ १० लाख पौंड, उपनिवेशों को १५ करोड़ पौंड। कुल हुआ २ अरब ७ करोड़ ८० लाख पौंड। युद्ध के योद्धाओं को सन् १९२३ के ३१ मार्च तक पेंशन देने में ४७ करोड़ पौंड ख़र्च हुए। इधर १ एप्रिल से इस मद के लिये ८३ करोड़ २० लाख पौंड की पूँजी कूती गई है। १ एप्रिल सन् १९१९ से ३१ मार्च १९२३ तक अधिकृत प्रांतों (मांडेटेड टेरिटोरीज़) के ऊपर १५ करोड़ ३० लाख पौंड ख़र्च किए गए हैं।

इसके सिवा १ एप्रिल १९१९ से ३१ मार्च १९२३ तक भिन्न-भिन्न मदों में इस प्रकार ख़र्च हुआ है—

बेकारों के पालन में १० करोड़ पौंड, घर बनवाने में २२ करोड़ ५० लाख पौंड, रेल और नहर से संबंध रखनेवाली प्रतिज्ञाएँ पूरी करने में २० करोड़ ३० लाख पौंड, युद्ध-सामग्री-संग्रह-विभाग के वेतन आदि में ३ करोड़ ६५ लाख पौंड, शत्रुओं के द्वारा की गई क्षति की पूर्ति करने में ५० लाख पौंड, कोयलों की खानों के घाटे में ४ करोड़ ८० लाख पौंड, भोजन के लिये भत्ता देने में १० करोड़ १५ लाख पौंड, सहायता और पुनः संगठन के लिये ऋण देने में ३ करोड़ ३० लाख पौंड और कुस्तुंतुनियाँ पर अधिकार बनाए रखने में २ करोड़ पौंड।

युद्ध के लिये ग्रेट ब्रिटन, आयर्लैंड और अन्य उपनि-वेशों में कुल ९४ लाख ९६ हज़ार ३७० मनुष्य सेना में भरती किए गए। उनमें ९ लाख ४६ हज़ार मर गए, और २१ लाख २१ हज़ार ९०६ ज़ख़्मी हुए। केवल यूनाइटेड-किंगडम में ६२,११,४२७ आदमी सेना में भरती किए गए। उनमें ७४,३०२ मरे, और १६,९२,२६२ ज़ख़्मी हुए। शत्रुओं के द्वारा समुद्र में जो धन-जन-हानि हुई, उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान ७५ करोड़ पौंड और २२,००० आदमियों की मृत्यु है।

× × ×

१७. टापुओं का खिसकना

जर्मनी के डॉक्टर वैजेनर भू-शास्त्र के प्रसिद्ध और प्रकांड विद्वान् हैं। उन्होंने अपना एक विचित्र अनुमान प्रकाशित किया है। उनका कहना है कि अब से एक करोड़ वर्ष पहले अमेरिका, एशिया और योरप के भू-खंड एक में मिले हुए थे। उसके बाद वे समय-समय पर एक दूसरे से अलग होते गए हैं। बीच में समुद्र आ गए, और खिसकते-खिसकते ये भू-खंड या टापू परस्पर दूर हट गए। इन महाशय ने अपनी इस निराली कल्पना का समर्थन करते हुए यह भी लिखा है कि ग्रीनलैंड का टापू सन् १८७४ में जिस जगह पर था, वहाँ से अब हट गया है। इसकी गति का हिसाब भी आपने लगाया है। आप कहते हैं, यह टापू साल-भर में १२ गज़ के हिसाब से हटता गया है। भू-शास्त्र के ज्ञाता अन्य वैज्ञानिक पंडित अभी आपकी इस कल्पना से सहमत नहीं हैं कि टापू चलते या हटते हैं। डॉ० वैजेनर भी अभी टापुओं को चलानेवाली शक्ति का पता नहीं लगा सके हैं।

× × ×

१८. भारत की रेलवे

भारत में रेलों का जाल सर्वत्र फैल गया है। अभी दिन-दिन अधिकाधिक फैलता ही जा रहा है। रेलवे की उन्नति के लिये अभी भारत-सरकार ने इँगलैंड में ऋण भी लिया है। यहाँ की प्रायः प्रसिद्ध और बड़ी रेल-लाइनें सरकारी हो चुकी हैं, और होती जा रही हैं। रेल-लाइन के विस्तार से भारत को लाभ भी हुआ है और हानि भी। इस नोट में हम उस लाभ-हानि का हिसाब लगाने नहीं बैठे हैं। हम भारत की रेल-लाइनों के संबंध के कुछ ख़ास-ख़ास अंक पाठकों के सामने उपस्थित करना चाहते हैं। उनसे मनोरंजन के साथ ही उनकी जानकारी भी बढ़ेगी। सन् १९२१ में भारत की सब रेल-लाइनों की लंबाई ३७,०२९ मील थी। इन लाइनों में ६ अरब २६ करोड़ ४० लाख ९३ हज़ार रुपए की पूँजी लगी हुई थी। सन् १९२१ में सब लाइनों से ९१ करोड़ ९८ लाख ७६ हज़ार रुपए की आमदनी हुई; जिसका औसत फ़ी-मील २४,८४२) पड़ा। इस साल कुल ख़र्च ६० करोड़ २९ लाख ४ हज़ार रुपए हुआ। इस प्रकार इस वर्ष रेलवे-कंपनियों और सरकार के रेलवे-विभाग को ३१ करोड़ ६९ लाख ७२ हज़ार रुपए का मुनाफ़ा हुआ। इस बचत में प्रांतिक सरकारों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और देसी रियासतों आदि के अलग-अलग हिस्से होते हैं। सन् १९२१-२२ में ५६ करोड़ १३ लाख २९ हज़ार मुसाफ़िरों ने रेल की सवारी में यात्रा की। रेल लड़ जाने की दुर्घटनाओं में ३,१२१ मृत्युएँ हुईं (इसके पिछले साल ऐसी मृत्युओं की संख्या ३,०३९ थी); २,०६७ आदमी घायल हुए। चलती गाड़ी से उतरने या कूदने की चेष्टा में २८० मौतें हुईं। रेलवे-लाइन को क्रास करते समय १,६७६ आदमी कट मरे। सन् १९२२ के अंतिम दिन अर्थात् ३१ मार्च को रेलवे-डिपार्ट के मुलाज़िमों की संख्या ७ लाख ५४ हज़ार ४७८ थी। इनमें ६,८५८ योरपियन, ११,८३१ ऐंग्लो-इंडियन और शेष ७ लाख ३५ हज़ार ७८९ भारतीय थे। नीचे दिए गए पिछले पचास वर्षों के हिसाब को देखने से जान पड़ता है कि रेल-यात्रियों की संख्या दिन-दिन बढ़ती ही जाती है—

सन्	संख्या
१८७२	२,०८,४७,०००
१८८२	५,८८,७६,०००
१८९२	१२,७४,२०,०००
१९०२	१९,६६,४८,०००
१९१२	४१,७२,२९,०००
१९२२	५६,१३,२९,०००

पुराने लोग लखनऊ से कानपुर तक जाने के लिये भी सवारी की आवश्यकता नहीं समझते थे; पर आज-कल कुलियों और किसानों को भी अगर एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन के फ़ासले पर जाना होता है, तो वे ट्रेन मिस होने पर ४-५ घंटे या २४ घंटे तक उसकी प्रतीक्षा में पड़े रहते हैं; पर पैदल नहीं चलते! रेलवे के प्रचार से हमारी सबसे बड़ी हानि यह सुस्ती या विलासिता ही हुई है।

× × ×

१९. सिंचाई का नया तरीक़ा

अमेरिका में सभी काम विज्ञान की सहायता से सहज बना लिए गए हैं। वहाँ खेती के कामों में विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वैज्ञानिक यंत्रों से कितनी सहायता ली जाती है, यह अब भारतवासियों से भी छिपा नहीं है। वहाँ इन नए तरीक़ों से दस दिन का काम दस घंटे में किया जाता है ; दस आदमियों का काम एक ही आदमी अनायास कर डालता है। अमेरिका में सिंचाई का भी एक नया तरीक़ा निकाला गया और अभी हाल ही में पेटेंट हुआ है। इन नए तरीक़े से कुएँ, नहर या तालाब की ज़रूरत ही नहीं रहेगी। एक ऐसी मशीन बनाई गई है, जिसका आकार ठेले का-सा है। वह पहियों की सहायता से पौदों के ऊपर उनकी जड़ के पास घूम सकती है। मशीन के एक हिस्से में एक पानी की टंकी रहती है। मशीन के आगे बढ़ते ही एक रिफ़्रीगेटिंग यंत्र के द्वारा पानी जमकर गोलियों के रूप में एक नली में आने लगता है। वह नली बंदूक़ की तरह लगाई गई है। गोलियाँ जब नली में आती हैं, तो एक शब्द होता है, और गोलियाँ निकल-निकलकर पौदों की जड़ों में घुसती चली जाती हैं। वे गोलियाँ गलकर सिंचाई का काम अनायास कर देती हैं। भारत में कुएँ, तालाब अथवा नहरें कम हैं। उनके खुदवाने में लाखों का ख़र्च होता है। अगर अमेरिका की ये नई मशीनें मँगाकर यहाँ भी जारी की जायँगी, तो यहाँ की खेती को बड़ा लाभ होगा।

× × ×

२०. बर्मा की जन-संख्या

बर्मा भी भारत-सरकार के अधीन है। वहाँ की कुल जन-संख्या १,३१,६६,०६६ है। उनमें ६७,३५,५१६ मर्द और ६४,३३,५८३ औरतें हैं। वहाँ बर्मी लोगों की संख्या ८६,८३,०३५ है। उनमें ४२,५०,५८३ मर्द और ४४,३२,४५२ औरतें हैं। बर्मियों के अलावा हिंदुस्तानी, स्यामी, मंगोल, चीनी, योरपियन, ऐंग्लो इंडियन, जापानी, यहूदी, सिंहली, नीग्रो, तुर्क और फ़िलीपाइनीज़ आदि भी रहते हैं। ये सब मिलाकर ४४,८६,०६४ हैं। बर्मियों में फ़ी-सैकड़े ६० आदमियों का धर्म बौद्ध है। हिंदुस्तानियों में मर्द औरतों से तिगने और चीनियों में दुगने से अधिक हैं। कच्चा माल पैदा करनेवाले (किसान) ६६,७५,०६७, बैपारी २३,२१,६१६ और नौकरी-पेशा लोग ४,६२,००७ हैं। बर्मा में १७६ भाषाएँ प्रचलित हैं। उनमें १३४ बर्मी, स्यामी और चीनी भाषाओं के भेद हैं। २५ भिन्न-भिन्न हिंदुस्तानी भाषाएँ हैं। १३ योरप की भाषाएँ हैं। शेष ७ आर्मेनियन, सिंहली, तुर्की, जापानी, हिब्रू, तैलंगी और निकोबारी हैं।

× × ×

२१. भारत से इँगलैंड को लाभ

वास्तव में इँगलैंड का सारा ठाट-बाट और शान भारत की बदौलत है। भारत की आमदनी से ही इँगलैंड आज योरप में सबसे अधिक धनी समझा जाता है, और उसकी इतनी साख है। इसके प्रमाण-स्वरूप हम इस नोट में एकानोमिस्ट-पत्र के एक लेख का सारांश देते हैं। उससे विदित हो जायगा कि इँगलैंड की वास्तविक स्थिति क्या है, और बाहरी आमदनी पर उसका ठाट-बाट ही नहीं, जीवन भी निर्भर है। सन् १६१३ में इँगलैंड को तैयार माल की रफ़्तनी से १४,५०,००,००० पौंड की आमदनी हुई। सन् १६२१ में २६,३०,००,००० पौंड और १६२२ में १६,६०,००,००० पौंड की आमदनी उसी मद से हुई। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रतिवर्ष २५० करोड़ रुपए बाहर से आए विना इँगलैंड का काम नहीं चल सकता। इस रक़म में भारत से कितना रुपया जाता है, इसका पता लगाने से मालूम हो जायगा कि भारत इँगलैंड के लिये कामधेनु से कम नहीं है। भारत को अपने अधीन रखने में अँगरेज़ों का बहुत बड़ा स्वार्थ है। वे और सब कुछ छोड़ सकते हैं, पर यथाशक्ति भारत को अपने हाथ से नहीं जाने दे सकते। आजकल हर साल केवल सिविल सर्विस के अफ़सरों की तनख़्वाह के रूप में १४ करोड़, अँगरेज़ी पल्टनों के व्यय में २७ करोड़, और ट्रेड-बैलेंस के रूप में ६० करोड़ रुपए भारत इँगलैंड को देता है। जहाज़ के महसूल और बीमे आदि की और कुछ रक़में अलग हैं। इस पर अधिक लिखना बेकार है।

× × ×

२२. विद्यासागर का घर

गत ज्येष्ठ-मास की संख्या में हम प्रातःस्मरणीय ईश्वरचंद्र विद्यासागर के भवन की बिक्री का समाचार दे चुके हैं। अब मालूम हुआ है कि हिंदुस्तान-इंश्योरेंस-कंपनी ने नीलाम में ७२,०००) का वह मकान ख़रीद लिया है। उसे वंगीय नारी-शिक्षा-समिति अपने लिये ख़रीदने की कोशिश कर रही है। श्रीमती अमला वसु इस समिति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचालन करती हैं। उनका यह उद्योग प्रशंसनीय है। आशा है, उक्त कंपनी यह पवित्र भवन इस पुनीत कार्य के लिये सहर्ष दे देगी। स्त्री-जाति के आजन्म शुभ-चिंतक पुण्यात्मा विद्यासागर महाशय के घर में यदि उसी स्त्री-जाति की उन्नति का कार्य किया जायगा, नारी-आश्रम की स्थापना होगी, तो अवश्य उनकी आत्मा को संतोष होगा, इसमें संदेह नहीं।

× × ×

२३. भारत की मर्दुम-शुमारी के कुछ अंक

मर्दुम-शुमारी (१९२१) की रिपोर्ट में बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिन पर हरएक दूरदर्शी देश-भक्त को ध्यान देना चाहिए। इंफ्लुएंज़ा ने भारत में भयानक जन-संहार कर डाला है। अधिकांश प्रांतों की आबादी उसने घटा दी है। उसने भारत के ६० लाख जीवन नष्ट कर दिए, ऐसा रिपोर्ट में लिखा है। परंतु एक अँगरेज़ मि० मार्टन ने विलायत में इसी विषय पर व्याख्यान देते समय कहा है कि यह संख्या ठीक नहीं है। इंफ्लुएंज़ा से सवा करोड़ आदमी मरे हैं! मि० मार्टन सेंसस कमिश्नर हैं। इनके पूर्ववर्ती कमिश्नर सर एडवर्ड गेट ने इनके इस कथन का समर्थन किया है। मध्य-प्रांत में तो इस ज्वर ने गाँव-के-गाँव उजाड़ दिए। उस प्रांत की जनता का दसवाँ हिस्सा इस ज्वर का शिकार हो गया। यह महामारी ऐसी विकराल थी कि मृतकों को जलाने या उठानेवाले ही नहीं मिलते थे। उस समय अन्न और वस्त्र भी बेहद महँगा था। लोग न पेट-भर खाते थे, और न कपड़ों से शरीर ढककर उसे गरम रख सकते थे।

पिछले वर्षों में उद्योग-धंधे बढ़ाए जाने से शहरों की आबादी १० फ़ी-सदी के लगभग बढ़ गई है। उदाहरणार्थ जमशेदपुर में पहले ६,००० आदमी बसते थे, मगर इधर १० वर्ष में कारख़ानों की वृद्धि के साथ-साथ ५७,००० की बस्ती हो गई। कलकत्ते की आबादी में ४ फ़ी-सदी की बढ़ती हुई है। बंबई की जन-संख्या २० फ़ी-सदी के हिसाब से बढ़ी है। बंबई-शहर रुई का भारी केंद्र है, और भारत का मैंचेस्टर कहा जा सकता है। अहमदाबाद की भी जन-संख्या इसी के लगभग बढ़ी है। लखनऊ का नंबर अब तक भारत के नगरों में, जन-संख्या के लिहाज से, चौथा था; मगर अब दिल्ली, लाहौर और अहमदाबाद उससे बढ़ गए हैं।

बर्मा में पुरुष आधे से अधिक पढ़े-लिखे हैं। मगर बंगाल और मदरास के पुरुषों का एक-पंचमांश ही पढ़ा-लिखा है। बंबई में तो इससे भी कम मर्द पढ़े-लिखे हैं। कारण, वहाँ कुली-मज़दूरों की संख्या अधिक है, जो अधिकतर अपढ़ ही होते हैं। इस सदी के आरंभ में, भारत में, प्रत्येक मील में, पढ़े-लिखे मनुष्यों का औसत १२६ होता था। सन् १९११ में १४० हो गया। इस मर्दुम-शुमारी से मालूम हुआ कि अब वह संख्या बढ़कर १६१ हो गई है। सन् १९११ की मनुष्य-गणना में पठित ईसाइयों की संख्या फ़ी-मील २५३ थी; अब २८५ है। हिंदुओं में पहले फ़ी-मील ६४ पढ़े-लिखे थे; अब ७१ हैं। मुसलमानों ने ४४ से तरक़्क़ी करके ५४ की संख्या प्राप्त कर ली है। सिखों में पढ़े-लिखे घट गए हैं। पहले फ़ी-मील ७७ का औसत था; अब ६८ ही है।

इस समय भारत में कोढ़ियों का औसत फ़ी-मील ३५ है, पर १८८२ में ५७ था। यह रोग धीरे-धीरे घटता जाता है। १९११ की गणना में प्रति-सहस्र मनुष्यों में ५-६ रुपए ख़र्च हुए थे; अब की १०-१२ हुए। इँगलैंड और वेल्स की गणना में प्रति-सहस्र मनुष्यों में ८१-८२ रुपए ख़र्च हुए थे। मनुष्य-गणना की रिपोर्ट की और ख़ास-ख़ास बातें फिर दी जायँगी।

× × ×

२४. विहारी-सतसई की रत्नाकर-कृत विहारी-रत्नाकर टीका

व्रज-भाषा के वर्तमान सर्वश्रेष्ठ कवि और मर्मज्ञ विद्वान् बाबू जगन्नाथदासजी बी० ए० "रत्नाकर" जो बहुत दिनों से सतसई की सर्वांग-सुंदर टीका लिख रहे थे, वह अब शीघ्र छपेगी। उस टीका का कुछ अंश माधुरी की पिछली दो संख्याओं में निकल चुका है। रसिक पाठक उतने ही से समझ गए होंगे कि उसमें बाबू साहब ने कितनी खोज की है, कितना परिश्रम किया है। सतसई की निम्न-लिखित टीकाएँ बाबूजी ने देखी हैं, और उनकी सहायता से बहुत-सी बातों की खोज भी की है। वे टीकाएँ ये हैं—१. मानसिंह की टीका (गद्य में), २. अनवर-चंद्रिका, ३ कृष्ण-कवि की (पद्य में), ४. अमर-चंद्रिका, ५. रस-चंद्रिका (ईसवी ख़ाँ-कृत), ६. प्रताप-चंद्रिका, ७. हरिप्रकाश-टीका, ८. संस्कृत-गद्य-मय टीका (खंडित), ९. भाषा-गद्य-मय टीका (खंडित),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०

१०. लाल-चंद्रिका, ११. नवाब-ज़ुलफ़कार ख़ाँ की कुंडलिया, १२. पं० परमानंद-कृत संस्कृत-टीका, १३. पं० अंबिकादत्त व्यास-कृत विहारी-विहार (कुंडलिया), १४. प्रभुदयाल पांडेय की टीका, १५. पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत टीका, १६ बिहारी-बोधिनी, १७. पं० पद्मसिंह शर्मा का संजीवन भाष्य (अपूर्ण)। रत्नाकरजी अभी तीन और टीकाओं की तलाश में हैं। वे टीकाएँ हैं—१. सरदार कवि-कृत टीका, २. साहित्य-चंद्रिका, और ३. आर्या-गुंफ (संस्कृत)। जिन महाशयों के पास इनमें से कोई भी टीका हो, वे कृपाकर माधुरी-कार्यालय में हमको, या निम्न-लिखित पते पर सूचना दें। पता—बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए० प्राइवेट सेक्रेटरी टू महारानी साहबा अयोध्या, फ़ैज़ाबाद। टीकाओं की प्रतियाँ सुरक्षित रहेंगी। उनकी नक़ल करा ली जायगी। भेजनेवाले सज्जनों को उपहार-स्वरूप विहारी-रत्नाकर की एक प्रति, छपने पर, भेज दी जायगी, और बाबू साहब उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे। टीका की प्रेसकॉपी तैयार हो चुकी है; शीघ्र छपना शुरू होगा। प्रकाशन सर्वांग-सुंदर होगा। यह टीका स्थायी साहित्य में एक रत्न होगी। आशा है, पूर्वोक्त तीनों टीकाओं में से कोई भी टीका जिनके पास होगी, वे शीघ्र अपनी कृपा से हमें अनुगृहीत करेंगे। इन सब टीकाओं के अलावा अन्य कोई टीका यदि किसी महाशय के पास हो, तो हमें उसकी सूचना दें, अथवा उसे हमारे पास भेज दें। वह काम हो जाने पर लौटा दी जायगी।

× × ×

२५. आजकल की हिंदी-कविताएँ और उनके कवि

हिंदी-संसार में इधर कवियों की बाढ़-सी आ गई है। पत्र-पत्रिकाओं में जितने कवियों का अस्तित्व देख पड़ता है, उनकी सूची बनाने से कम-से-कम एक "कवि-सहस्र नाम" तैयार हो सकता है। यह स्थिति अवश्य ही हिंदी के लिये गर्व और गौरव का कारण होती, अगर इस कवि-मंडली में कवि-नाम के अधिकारी आधे भी होते। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इन उदीयमान कवि-पुंगवों में फ़ी-सदी दस भी ऐसे नहीं हैं, जिनकी रचना कविता कही जा सके। हमें बड़ा ही कटु अनुभव यह हुआ है कि आजकल के कवि न तो पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं को पढ़ते हैं, न उन ख़ूबियों को समझने की चेष्टा करते हैं, जिनसे कोई रचना कविता कही जा सकती है, न अलंकार-शास्त्र के पास फटकते हैं, और न गुरु-मुख से दशांग साहित्य का अध्ययन और अनुशीलन करते हैं। उनमें न तो प्रतिभा है, न सूझ है, न प्रकृति-पर्यवेक्षण की शक्ति है, न उपज है। वे न अच्छे नए भाव सोच सकते हैं, न अपनी उक्ति को भव्य भाषा की पोशाक़ पहना सकते हैं। अधिकांश को तो यह भी तमीज़ नहीं होती कि किस छंद में कहाँ यति है, कहाँ विराम है, कितने अक्षर या मात्राएँ होती हैं, कौन छंद वर्णात्मक है और कौन छंद मात्रिक, ध्वनि क्या बला है, व्यंग्य कौन चिड़िया है, अनुभाव-विभाव आदि किसे कहते हैं। इधर जब से राजनीतिक हलचल ने ज़ोर पकड़ा है, तब से तो और भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंधाधुंध मच गई है। स्वराज्य, स्वदेश, राष्ट्र, स्वतंत्रता, सत्याग्रह, चर्खा आदि कुछ ख़ास शब्द ठूँस दिए, बस, कविता बन गई। राजनीतिक रचनाएँ भी कवित्व-पूर्ण हो सकती हैं, और इसका प्रमाण उर्दू प्रताप, वंदेमातरम् आदि उर्दू के पत्रों में निकलनेवाली या त्रिशूल कवि की कविताएँ हैं। कुछ बहादुर और अशंक कवि तो कमाल ही करते हैं। वे प्रति सप्ताह, प्रति मास दर्जनों पत्रों को प्रायः एक ही विषय की कविताएँ सप्लाई किया करते हैं। धन्य है उनकी रचना-शक्ति ! उधर पत्र-संपादकों की अजब हालत है। हिंदी के अधिकांश संपादक तो काव्य-कला से कोरे ही हैं। उन्हें तो कविता छापने से मतलब। जो रचना मिल गई, उसे वैसे ही अविकल छाप दिया। रह गए वे संपादक, जो काव्य-मर्मज्ञ या स्वयं पद्य-रचना करनेवाले हैं। वे देखते हैं, अच्छे पद्य लिखनेवाले तो इस समय हिंदी में पूरे एक दर्जन भी नहीं हैं। जो इने-गिने हैं, उनके ग्राहक सभी हैं। उनकी ख़ुशामद करके किसी तरह कुछ लिखवा सके भी, तो वह "To order" कविता उनके नाम के अनुरूप उत्कृष्ट नहीं होती। इधर पत्र में कविताओं का रहना भी ज़रूरी ठहरा। लाचार होकर वे संपादक भी अपेक्षा-कृत परिमार्जित रचना छाँटकर छाप दिया करते हैं। फिर क्या पूछना है, जिस नए कवि की रचना ऐसे किसी प्रथम श्रेणी के पत्र में छप गई कि बस वह कवि-रत्न, साहित्य-भूषण, कवि-सम्राट् आदि उपाधियों से भूषित सनद-याफ़्ता कवि हो गया। ऐसे कवि-कल्प-तरुओं की कविता-वृष्टि से हम भी तंग आ गए हैं। नित्य डाक खोलते ही दो-चार कविताएँ मौजूद ! साथ ही पत्र में यह ताकीद कि कविता पसंद है या नापसंद, इसकी सूचना दीजिएगा। पसंद और स्वीकृत हो, तो किस संख्या में छपेगी, यह भी लिखिए। नापसंद हो, तो लौटा दीजिए। ऐसे कवियों में अधिक संख्या स्कूल-कॉलेजों के विद्यार्थियों की ही पाई जाती है। जिन्हें संसार का कुछ भी अनुभव नहीं है, जिनका ज्ञान अपक्व और अपूर्ण है, वे औरों को शिक्षा देना चाहते हैं, यह जैसे हास्यास्पद है वैसा ही खेद-जनक भी। हम स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि वे पूर्ण भ्रम में हैं। अपनी शिक्षा में मन न लगाकर कवि कहलाने के फेर में पड़कर वे अपनी और मातृ-भाषा के साहित्य की हानि ही करते हैं। अधूरी शिक्षा की पूँजी लेकर कविता का कारोबार करने में घाटे के सिवा नफ़ा नहीं है। हम जानते हैं कि विद्यार्थी-जीवन से ही सफलता के साथ कविता करके यशस्वी होनेवाले भी कुछ हो गए हैं, और अब भी हो सकते हैं। पर उन्हें अपवाद समझना चाहिए। जिनमें स्वाभाविक कवित्व-शक्ति है, प्रतिभा है, वे दो-चार विशेष व्यक्ति सर्व-साधारण के लिये आदर्श नहीं हो सकते। हमारे यहाँ कालिदास, शेक्सपीयर, रवींद्र या तुलसीदास, सूरदास, देव आदि का अब फिर जन्म लेना तो दुर्घट ही जान पड़ता है, पूर्ण, सत्यनारायण, अथवा श्रीधर, नाथूरामशंकर, अयोध्यासिंह रत्नाकर, मैथिलीशरण आदि के जोड़ भी जन्म लेते नहीं देख पड़ते। यह कितने खेद की बात है। हिंदी का वर्तमान कविता-क्षेत्र बहुत ही निराशा-जनक है। हमारे एक भिन्न भाषा-भाषी विद्वान् मित्र ने एक दिन हमसे कहा—"आपके यहाँ तुलसी, सूर आदि महाकवि हो गए हैं, और उनकी बराबरी करनेवाला कवि अन्य भारतीय भाषा में नहीं मिलता, यह सब मैं माने लेता हूँ, मगर कृपाकर यह तो बताइए, इस समय आपके यहाँ मधुसूदन, रवींद्र, द्विजेंद्र, नवीनचंद्र, रजनीकांत आदि के जोड़ के कितने कवि हैं ? अथवा सुकवियों ही की संख्या कितनी है ?" हम चुप रहे। कुछ कहते नहीं बना। हम कविता-क्षेत्र के नायकों से साग्रह यह अनुरोध करते हैं कि बहुत उपेक्षा हो चुकी, अब कुछ ऐसा यत्न कीजिए कि क्लिष्ट कल्पना करके कवि-पद की प्राप्ति के प्रयासी और भद्दी भाषा में रद्दी रचना करनेवाले नक़ली कविरत्न कवियों की गद्दी पर पैर न रख सकें। सच्चे समालोचकों को आगे आकर योग्य को पुरस्कृत और अयोग्य को तिरस्कृत करना चाहिए। उनका कर्तव्य है कि कविता-क्षेत्र का घास-फूस उखाड़कर उपयोगी पौदों को अंकुरित, पल्लवित तथा विकसित होने का अवसर दें।

× × ×

२६. हिंदी के मौलिक लेखक

किसी भी भाषा का यथार्थ गौरव उसके मौलिक ग्रंथों से ही होता है। हम अनुवाद को बुरी दृष्टि से नहीं देखते। अनुवाद से जिस अभाव की पूर्ति होती है, उसे मौलिक साहित्य दूर नहीं कर सकता ; किंतु अनुवाद किसी अंश में ही उस अभाव की पूर्ति कर सकता है, जिसकी पूर्ति मौलिक रचना से हुआ करती है। कहने का मतलब यह कि जिस भाषा में जब जिस विषय के मौलिक लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होते, तब उस विषय के अनुवाद-ग्रंथों से काम चलाया जा सकता है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उस विषय के मौलिक लेखक पैदा करने की फिर ज़रूरत ही नहीं रहती। नहीं, वह तो केवल काम चलाने का उपाय-मात्र है, वास्तविक पूर्ति तो मौलिक रचना से ही होगी। हमारे यहाँ यद्यपि मौलिक रचना की आवश्यकता बताकर अनुवाद से नफ़रत ज़ाहिर करनेवाले सभी देख पड़ते हैं, पर छोटे से लेकर बड़े-से-बड़े लेखक तक मौलिक ग्रंथ लिखने की ओर अग्रसर नहीं होते, यदा-कदा कुछ लिखते हैं, तो अनुवादों से ही मातृ-भाषा के भांडार को भरते हैं। इधर कुछ किताबें मौलिक के नाम से प्रकाशित हुई देख पड़ती हैं। पर खेद और लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि उनमें कुछ तो बिलकुल खिलवाड़ ही हैं; न उनमें कुछ महत्त्व ही है, न कुछ उपयोगिता। उन मौलिक रचनाओं के लिये हमारी भाषा गर्व नहीं कर सकती। ये ग्रंथ अधिकांश उपन्यास और नाम-मात्र के नाटक ही हैं। कुछ ऐसे भी ग्रंथ निकले हैं, जिनके टाइटिल पर मौलिकता की घोषणा छपी रहने पर भी वे अनुवाद-मात्र हैं। उदाहरण-स्वरूप हम कलकत्ते से प्रकाशित एक पुस्तक पेश करते हैं। उसका नाम है—सुनहरा साँप। वह हेमेंद्रकुमार राय की 'चीनेर ड्रागन' पुस्तक का शब्दशः अनुवाद है। केवल नाम और स्थान बदल दिए गए हैं, और ड्रागन का स्थान साँप ने ले लिया है। हेमेंद्र बाबू ने भी अँगरेज़ी से अनुवाद करके उसका उल्लेख नहीं किया है। इसी से शायद हिंदी-अनुवादक ने भी 'महाजनो येन गतः स पंथाः' का अनुसरण किया है। इस तरह मातृ-भाषा के नैवेद्य के लिये विशुद्ध मौलिक के नाम से जूठन-दर-जूठन का प्रबंध हुआ है। यह घृणित प्रवृत्ति पुस्तकों तक ही परिमित नहीं है, हिंदी-पत्रों में अन्य भाषाओं के लेख भी अनुवाद करके मौलिक के नाम से छपवाए जाते हैं। इस मास के 'भ्रमर' में 'क्या सत्यनारायण मुसलमानों के देवता हैं?' इस शीर्षक से एक लेख निकला है। वह भारतवर्ष (बँगला) में प्रकाशित एक लेख का अनुवाद है। पर इसका उल्लेख न करके अनुवादक ने मौलिक लेखक बनना चाहा है। विस्तार-भय से केवल दो ही उदाहरण दिए गए हैं। एक प्रकार के और मौलिकता के दावेदार देख पड़ते हैं। वे कुछ चालाक हैं। वे 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा' लगाकर 'भानमती का कुनबा जोड़ते' हैं, और बीच-बीच में कुछ पैरे अपने 'गारे' के तौर पर बिछा देते हैं। उनकी ऐसी इमारत कभी मातृ-भाषा के पवित्र मंदिर का मौलिक अंश नहीं हो सकती। इस अभियोग में अभियुक्त महापुरुष साधारण लेखक नहीं, ख्यातनामा लेखकाचार्य तक होते हैं। ये चालाक गिरह-कट अपनी बचत के लिये १०-२० पुस्तकों के नाम लिख देते हैं कि इन्हें पढ़कर, इनकी सहायता से, यह पुस्तक लिखी गई है। पर असल में वे उन पुस्तकों में से २-३ ही के ऋणी होते हैं। उनके पैरे-के-पैरे, सफ़े-के-सफ़े उठाकर, विषय उलट-पुलटकर, क्रम आगे-पीछे कर, अपना कुछ नमक-मिर्च मिलाकर, वे अपनी पुस्तक तैयार करते हैं। आजकल हिंदी-साहित्य के बीच ऐसा ही अंधेर मचा हुआ है। कारण इसका यही है कि हिंदी में कोई बहुज्ञ लेखक या निष्पक्ष पत्र कड़ी समालोचना करनेवाला नज़र नहीं आता। पुराने लेखकों में कुछ स्वर्गवासी हो चुके हैं, और जो शेष हैं, वे लेखनी रखकर संन्यास ले बैठे हैं। रह गए नए लेखक, वे ऐसे ग्रंथकारों को अपना पथ-प्रदर्शक, आदर्श या गुरु मानते हैं, और उनमें इतनी योग्यता, ज्ञान या साहस भी नहीं है कि वे ऐसी चोरियों को पकड़ें, और उस पर टीका-टिप्पणी करें। कुछ मध्य-काल के लेखक इतनी योग्यता, ज्ञान और साहस रखने पर भी आलस्य-वश या वैर-विरोध के भय से अथवा आप भी उसी दोष के दोषी होने से चुप हैं—चूँ नहीं करते। हिंदी की यह दशा वास्तव में शोचनीय है, राष्ट्र-भाषा-पद के महत्त्व को मिटानेवाली है, अन्य भाषा-भाषियों के आगे सिर न उठाने देनेवाली है। इसका कुछ प्रतिकार पूर्ण रूप से होना चाहिए, जिसमें हिंदी के लेखकों में यह घृणित प्रवृत्ति जड़ न जमाने पावे। हम अनायास पराए परिश्रम का पुरस्कार प्राप्त करने का प्रयत्न छोड़कर वास्तव में कुछ ऐसा काम करें, जिसके आगे 'नाम' और 'दाम' (धन) हाथ बाँधे, दास की तरह, उपस्थित रहें।

× × ×

२७. प्रेसिडेंट हार्डिंज का स्वर्गवास

संसार का एक और बड़ा आदमी चल बसा। संयुक्त-राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति अर्थात् प्रेसिडेंट हार्डिंज की मृत्यु गत ३ अगस्त की शाम को एकाएक हो गई। कुछ समय से यह अस्वस्थ थे; पर रोग सांघातिक नहीं समझा जाता था! बल्कि इधर कुछ चंगे हो चले थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका पूरा नाम मिस्टर वारेन गैमेल हार्डिंज था। श्रोहियो-प्रांत में ज़िला मौरो के अंतर्गत ब्लूमिंग गौर्स-ग्राम में, सन् १८६५ ई० में, २ नवंबर के दिन यह पैदा हुए थे। इनके पिता दिहात के डॉक्टर थे। बाप स्कॉट्लैंड के और मा हालैंड की थीं। पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। हार्डिंज ने आप मजूरी तक करके शिक्षा का ख़र्च चलाया। कॉलेज की शिक्षा समाप्त कर इन्होंने संपादन-कला सीखी, और फिर एक पत्र के संपादक हो गए। उसे दैनिक बनाकर थोड़ी आमदनी को क्रमशः खूब बढ़ा लेना कोई साधारण बात न थी। ३६ वर्ष की आयु में यह प्रांतिक व्यवस्था-पक सभा के मेंबर और फिर वहीं के गवर्नर हुए। सन् १९१४ में यह युक्त-राज्य की 'सिनेट' (राष्ट्रीय सभा) के सदस्य चुने गए। सन् १९२० में, प्रे० विल्सन के पतन पर, यही प्रेसिडेंट चुने गए। इनके प्रभाव का पता इसी से लगेगा कि चुनाव में इन्हें ४०४ और इनके प्रति-पक्षी को १२७ वोट मिले। मार्च, १९२१ में यह



संयुक्त-राज्य के राष्ट्र-पति मि० हार्डिंज

प्रेसिडेंट के पद पर विराजमान हुए, और आगामी १९२५ के मार्च तक इनकी अवधि थी। अब इनकी जगह इनके पूर्व-सहकारी मि० काल्विन कूलिज़ को मिली है। स्वतंत्र अमेरिका में अब तक २९ प्रेसिडेंट हो चुके हैं। उनमें हार्डिंज-समेत ६ प्रेसिडेंट अवधि के पहले ही मृत्यु को प्राप्त हुए।

मि० हार्डिंज बड़े सुशील थे। राजनीति में यथासंभव कोई गुत्थी न पड़ने देना, और पड़ जाने पर होशियारी से उसे सुलझा देना इनके लिये आसान था। संगठन करने की शक्ति इनमें अच्छी थी। योरप की आर्थिक स्थिति और मज़दूर-आंदोलन का इन्हें अच्छा ज्ञान था। महायुद्ध के समय अमेरिका के निरपेक्ष रहने का इन्होंने विरोध किया था। यह प्रजातंत्र के कट्टर समर्थक थे। प्रेसिडेंट का पद पाते ही इन्होंने वाशिंगटन में सब राष्ट्रों की एक कानफ़्रेंस की; जिसमें अस्त्र-शस्त्र, सेना, जहाज़ आदि घटाने का प्रस्ताव सब राष्ट्रों के आगे रक्खा, और पास करा लिया। इनकी इच्छा नहीं थी कि अमेरिका राष्ट्र-संघ में शामिल हो। क्योंकि मित्र-राष्ट्रों की चालाकी इनकी समझ में आ गई थी। इनकी तीक्ष्ण बुद्धि से यह रहस्य छिपा नहीं रहा कि राष्ट्र-संघ केवल मित्र-राष्ट्रों का ढोंग और स्वार्थ-साधन की सामग्री है। इन्हीं के शासन-काल में अमेरिका में मद्य-प्रचार के निषेध का क़ानून पास हुआ। अभी यह कनाडा गए थे। वहाँ से लौटते समय किसी प्रकार का विष इनके शरीर पर अपना असर कर गया, और उसी में इनके प्राण गए। अमेरिका के आगे कई जटिल राजनीतिक समस्याएँ उपस्थित हैं। ऐसे समय इतने चतुर राष्ट्र-पति की मृत्यु से सचमुच अमेरिका की बड़ी हानि हुई है। वहाँ की प्रजा ने बड़ी श्रद्धा के साथ आपका शोक मनाया।

× × ×

२८. दस हज़ार वर्ष के पुराने पेड़

अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में एक होटल के लिये नींव खुद रही थी। खोदते-खोदते नीचे की सतह में चार पेड़ों के ठूँठ निकल आए। ज़मीन में ४० फ़ीट नीचे पर ये गड़े थे। इनकी मोटाई क़रीब १४ फ़ीट और गुलाई ४४ फ़ीट थी। इस समय संसार में शायद ही कहीं ४४ फ़ीट मोटा वृक्ष पाया जाता हो। पेड़ों की लकड़ी सब गली हुई थी, केवल जड़ के पास कुछ हिस्सा नहीं गला था। ये ठूँठ १०,००० वर्ष के पुराने अंदाज़े जाते हैं।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०. कुछ देशों की पशु-संख्या

भारत में दिन-दिन मनुष्योपयोगी पशुओं का—ख़ासकर दूध-घी देनेवाली गऊ, भैंस आदि का—ह्रास होता जा रहा है। इसका कारण कुछ तो उनकी हत्या नित्य होना है, और कुछ उनके लिये चारे की कमी, महँगी और रोगादि का आक्रमण भी है। गत सन् १९२० में कई देशों की पशु-संख्या यह थी —

देश	पशु	जन-संख्या	१०० मनुष्यों के पीछे पशुओं का औसत
ब्रिटिश भारत	१४,१३,३६,०००	२४,४२,६७,५४२	६१
डेनमार्क	१८,४०,५००	२५,००,०००	१४
अमेरिका	७,२५,३४,०००	९,२०,००,०००	७९
कनाडा	५५,७६,५००	३२,५०,०००	८०
केपकैलोनी	१२,७०,०००	११,००,०००	१२०
न्यूज़ीलैंड	१८,१६,०००	१२,००,०००	१५०
आस्ट्रेलिया	१.१९,५६,०२४	५५,००,०००	२५९
अरजेंटाइन	२,५८,४४,८००	८०,००,०००	३२३
अरगुए	६८,३०,०००	१४,००,०००	५००

इस औसत को देखकर ही आप समझ सकते हैं कि भारत में घी-दूध क्यों दुर्लभ हो रहा है, या बैलों की क़ीमत क्यों चौगुनी-अठगुनी हो गई है, और निवासियों में शक्ति की कमी या नए-नए रोगों का प्रचार क्यों है !

× × ×

३०. बोल्शेविज़्म के कारण अन्य राष्ट्रों के मालदारों की हानि

रूस में कई राष्ट्रों के मालदार पूँजीपति कारबार खोले हुए थे। जब वहाँ ज़ारशाही का पतन और बोल्शेविकों की सरकार स्थापित हुई, तो उसने अन्य राष्ट्रों के पूँजी-पतियों के कारबार भी ज़ब्त कर लिए। किस देश की कितनी पूँजी वहाँ लगी थी, और कितनी ज़ब्त हो गई, यह जानने के लिये नीचे उसका हिसाब दिया जाता है—

देश	कितनी पूँजी थी	ज़ब्त की गई रक़म
फ़्रांस	१३,१७,४५,६०० रबल	६४,८०,८९,७०० रबल
इँगलैंड	५०,७४,७९,८०० ,,	५०,०५,६३,५०० ,,
जर्मनी	४४,१५,९३,२०० ,,	३१,७४,१५,५०० ,,
बेलजियम	३२,१६,०२,५०० ,,	३१,१८,१२,५०० ,,
अमेरिका	११,७७,५०,००० ,,	११,१७,५०,००० ,,
हालैंड	३,५४,८६,७०० रबर	३,०४,५६,७०० रबर
स्वीज़रलैंड	३,३४,८९,२०० ,,	३,१६,०६,७०० ,,
स्वीडन	२,३७,७९,३०० ,,	१,६६,४७,७०० ,,
डेनमार्क	१,४७,३७,७०० ,,	१,४५,३७,७०० ,,
आस्ट्रिया	७५,५०,००० ,,	५९,००,००० ,,
नार्वे	२३,००,००० ,,	२३,००,००० ,,

रबल रूस का सोने का सिक्का है। उसका मूल्य दो रुपए के लगभग होता है। ऊपर-लिखे देशों के अलावा इटली और फ़िनलैंड के भी २०-२० लाख रबल थे, और सब-के-सब हज़म कर लिए गए।

× × ×

३१. आफ़्रिका का स्वर्ग

सर चार्ल्स रोस नाम के एक सज्जन घूम-फिरकर सैर करने के शौक़ीन और धनी हैं। अभी हाल में आपने मध्य-आफ़्रिका में एक पहाड़ देखा है। उसमें ज्वालामुखी का बुझा हुआ एक गढ़ा है। वह १०० मील लंबा और ४० मील चौड़ा है। उस गढ़े में शेर, चीते, गुरिला आदि सैकड़ों तरह के जानवर हैं। फूल भी बड़े सुंदर-सुंदर हैं। उस स्थान के आस-पास रहनेवाले जंगलियों को विश्वास है कि वह पहाड़ दैवी शक्ति-संपन्न है। वे उसे भगवान् का पहाड़ कहते हैं, और कोई उस पर चढ़ने की हिम्मत नहीं करता। अँगरेज़ शिकारी और वनस्पति-शास्त्र के पंडित इस ख़बर से बड़े ख़ुश हुए हैं। अब उनके झुंड-के-झुंड उधर पहुँचेंगे, और वहाँ के पशु-पक्षियों और निवासियों को कष्ट पहुँचावेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. रंगीन चित्र

पहला रंगीन चित्र महाकवि तुलसीदासजी का है। आप कुछ दिनों तक काशी के प्रह्लादघाट पर, एक ज्योतिषीजी के यहाँ, रहे थे। उनके लिये ही उन्होंने "रामाज्ञा-प्रश्न" नाम की पुस्तक लिखी थी। इन्हीं ज्योतिषीजी के वंशजों के पास गोस्वामीजी का एक चित्र है। उनका कहना है कि वह गोस्वामीजी के जीवन-काल में ही बना था। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने, उसे प्रामाणिक मानकर, उसकी नक़ल करा ली है। उसी नक़ल का प्रतिबिंब इस संख्या में प्रकाशित यह चित्र है। अपनी नक़ल का उपयोग करने देने के लिये हम सभा के कृतज्ञ हैं।

दूसरा रंगीन चित्र फ़ारस के महाकवि उमर ख़य्याम का है। उमर ख़य्याम के नाम से समस्त पाठक परिचित होंगे। आप पहले ज्योतिषी थे, बाद को कवि हुए। आपकी कविता का पाश्चत्य जगत् में अच्छा आदर है। बहुतेरे चित्रकारों ने तो आपकी रुबाइयों पर अनेक चित्र चित्रित किए हैं। इधर भारतीय चित्रकारों ने भी अनेक चित्र बनाए हैं। यह चित्र माधुरी के पाठकों के चिरपरिचित, कुशल चित्रकार श्रीयुत रामेश्वरप्रसादजी वर्मा के उमर ख़य्याम पर बनाए हुए अनेक चित्रों में से एक है। चित्र के दोनों ओर कवि की कविता भी अंकित है। वर्माजी ने यह चित्र फ़ारस की शैली Persian style पर बनाया है। यह इसकी विशेषता है। उमर ख़य्याम फ़ारस (पराशिया) के कवि थे, अतएव उनका चित्र परशियन स्टाइल में बनना ही चाहिए।

तीसरा रंगीन चित्र "प्रदीप" है। इसके चित्रकार श्रीयुत रामप्रसाद हैं। आपका यह चित्र कितना भावमय है, यह श्रीयुत राय कृष्णदासजी की कविता से पूर्णतया स्पष्ट है। आप ही की कृपा से हमें यह चित्र प्राप्त हुआ है। इसके लिये हम आपके कृतज्ञ हैं।

चौथे से नवें चित्र तक ६ चित्र रंगीन छाया-चित्रण-नामक लेख-विषयक हैं। लेख के अध्ययन से पाठकों को उनका परिचय मिल जायगा।

दसवाँ एकरंगा चित्र भी गोस्वामी तुलसीदासजी का है। चित्र में गोस्वामीजी भगवान् रामचंद्रजी की कर-बद्ध वंदना कर रहे हैं। बहुत दिन हुए ग्रियर्सन साहब ने बाँकीपुर के खड्गविलास-प्रेस से एक रामायण प्रकाशित कराई थी। उसमें उन्होंने बड़ी खोज करके गोस्वामीजी का एक चित्र प्रकाशित किया था। यह वही चित्र है, और वास्तव में विश्वसनीय और प्रामाणिक है।

ग्यारहवाँ चित्र राधा-माधव का है। भगवान् कृष्ण अपनी मुरलिका की माधुरी तान से सर्वदा गोपियों को संतुष्ट एवं तृप्त करते रहते हैं, परंतु राधा-रानी लज्जा-वश वंशी-ध्वनि-श्रवण का मनस्तुष्टिकारी आनंद पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त कर पातीं। अतएव आत्म-संवरण न कर एक दिन वह कृष्ण से एकांत-स्थल में वंशी-तान सुनाने के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग्रह करती हैं। चित्र में देखिए, भगवान् कृष्ण एक शिला-खंड पर बैठकर उनकी इच्छा पूरी कर रहे हैं। राधा-रानी उनके अत्यंत निकट, उनकी जंघा पर हाथ टेके, वंशी-ध्वनि में ध्यान लगाए, मंत्र-मुग्ध-सी, बैठी हुई हैं। माधुरी के लब्ध-प्रतिष्ठ चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू ने इस चित्र में इसी दृश्य का सुंदर चित्रांकण किया है।

बारहवाँ एकरंगा चित्र वन-लता का है। संपूर्ण वन-श्री ही मानों वन-लता के रूप में यत्र-तत्र विचरण कर रही है। यही इस चित्र का भाव है। यह श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद-जी वर्मा की बहन के चित्र-कला-प्रेम तथा नवोत्साह का नमूना है। इस चित्र को माधुरी में प्रकाशित करने का एक विशेष कारण यह है कि इसे देखकर हमारे प्रांतों की स्त्रियाँ भी, वंग-महिलाओं की तरह, चित्र-चित्रण की ओर आकृष्ट हों।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला शराबी-नामक व्यंग्य-चित्र उन दुश्चरित्र शराबियों पर है, जो शराब पीने की बान की बदौलत अपना सर्वस्व स्वाहा कर बैठते हैं। बाबू रामेश्वर-प्रसाद वर्मा ने इसमें शराबियों की ६ अवस्थाओं का चित्रण बड़ी खूबी के साथ किया है।

दूसरा व्यंग्य-चित्र उन स्वयंसिद्ध संपादकों पर है, जो केवल विभिन्न पत्रों से लेख तथा टिप्पणी उड़ाकर अपने पत्र के कॉलम रँगते हैं, और वायु की गति के अनुसार प्रवाहित होकर अपने आत्म-विश्वासों की भी हत्या कर डालते हैं। चतुर चित्रकार ने इस भाव का चित्रांकण वास्तव में यथार्थ किया है।

बाबू कुँवर सिंह

जगदीशपुर-निवासी उज्जन-क्षत्रियकुलतिलक बाबू कुँवर सिंहकी यह सुविस्तृत जीवनी है। इस पुस्तकमें महाराजा विक्रमादित्यसे लेकर सन् १८५७के गदर और बाबू अमर सिंहके देहान्त-कालतकका इतिहास है। ऐतिहासिक पुस्तकोंके सिवा हफ्तों बाबू साहबकी जन्मभूमिमें रह कर इसका सामग्री-संग्रह किया गया है। इसमें दस रङ्गबिरङ्गे चित्र दिये गये हैं। बाबू साहबका प्रसिद्ध तिनरङ्गा शिकारी चित्र भी जिल्द पर है। बाबू कुँवर सिंहके जिस असली चित्रका दर्शन किसी भी ऐतिहासिकको नहीं हुआ था, वह भी बड़े परिश्रम और व्ययसे प्राप्त कर इस पुस्तकमें दे दिया गया है। इसके सिवा रेशमी जिल्दपर दुरङ्गा रैपर और बुक-मार्क भी दिये गये हैं। आज तक हिन्दीकी किसी भी पुस्तककी ऐसी सजावट नहीं हुई है। सचमुच इससे आपकी लाइब्रेरी जगमगा उठेगी। आज ही आर्डर दीजिये, नहीं तो दूसरे संस्करण तक पछताना पड़ेगा। इसके भूमिका-लेखक हैं आल इण्डिया कांग्रेस कमिटीके जेनरल सेक्रेटरी बाबू राजेन्द्रप्रसादजी एम० ए०,एम० एल०। केवल लागत भर मूल्य २॥) है।

मैनेजर, भारतीपुस्तकमाला, २२, सरकार लेन, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)

छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुंदर गुच्छेदार चमकीले बाल



कामिनिया ऑइल

हरएक स्त्री की शोभा बढ़ाकर, उसकी क़ुदरती सुंदरता को दुगुना बढ़ाता है। क्या आप ऐसा नहीं चाहते कि अपने और अपनी स्त्री तथा बच्चों के बाल घने, लंबे, काले, चमकीले और रेशम के तुल्य मुलायम हों? यदि चाहते हों, तो दुनिया में मशहूर रजिस्टर्ड "कामिनिया ऑइल" का व्यवहार करें। 'कामिनिया ऑइल' एक सच्चा वनस्पति-मिश्रित सुगंधित द्रव्यों से बनाया हुआ नुमाइशी सुगंधित तेल है। दाम प्रति-शीशी १) रु०। डाक-म० ।=), ३ शीशी २॥=) डा०-म० ॥)

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)



ओटो दिलबहार को सेंट कहो, चाहे इत्र कहो। क्योंकि इसमें स्पिरिट का नाम तक नहीं है। इस "ओटो दिलबहार सेंट" का कपड़े पर दाग़ नहीं पड़ता। यह सेंट कई क़िस्म के नए-नए फूलों के अर्क़ से बनाया गया है। इसके दो या चार बूँद कपड़े पर डालने से कपड़े की सुगंधि कई दिन तक क़ायम रहती है।

दाम छोटी शीशी ॥), मँझली ॥।), आध औंस २) डा०-म० अलग।

नमूना देखना हो, तो पहले "ओटो दिलबहार का सुगंधित कार्ड" एक आने का टिकट भेजकर मँगाइए।

सोल एजेंट्स—

दि ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी,

१५५, जुम्मामसजिद—बंबई

६
७४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लेख-सूची

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी-साहित्य में एक अनूठा रत्न

ज्ञानोदय-ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प

कालिदास और शेक्सपियर

साहित्य-संसार में भला ऐसा कौन होगा, जिसने कालिदास और शेक्सपियर का नाम न सुना हो। कौन ऐसा साहित्य-सेवी होगा, जो इनकी सुमधुर और चमत्कारिणी लेखनी से प्रभावित न हुआ हो। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं दोनों कवि-सम्राटों की प्रतिभाओं का दिग्दर्शन कराया गया है। यदि आपको प्राच्य और पाश्चात्य प्रतिभाओं का कौतुक देखना है, यदि आप प्रकृति के सौंदर्य का पूर्ण रस-स्वादन करना चाहते हैं, यदि आप मनुष्य-प्रकृति से पूर्णतया परिचित होना चाहते हैं, यदि आप अंतर्जगत् और बहिर्जगत् का समुचित ज्ञान संपादन करना चाहते हैं, यदि आप इन दोनों कवि-कुल-गुरुओं के भाव, भाषा और काव्य के संबंध में कुछ भी जानने की इच्छा रखते हैं और यदि आप इनकी आनंदोत्पादिनी तथा चमत्कारिणी उक्तियों तथा युक्तियों से लाभ उठाना चाहते हैं, तो शीघ्र लौटती डाक से आर्डर भेजिए। मूल्य २)

नोट—"श्रीयुत रामदासजी गौड़ एम्० ए०, श्रीयुत पं० कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए० एल्-एल्० बी० प्रभृति लोगों ने इस पुस्तक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।"

आलम-केलि—(खंड-काव्य) सुप्रसिद्ध आलम और शेख़ का यह वही ग्रंथ है, जिसके लिये सवा दो सौ वर्ष से काव्य-रसिक लालायित हो रहे थे। यदि आपको काव्य से कुछ भी प्रेम है और कविता-कानन की सैर करना चाहते हैं, तो आप ला० भगवानदीन द्वारा संपादित इस आलम-केलि को अवश्य मँगाइए। टिप्पणी देने से ग्रंथ और भी सुगम और सरल हो गया है। दाम भी केवल १) है।

पताः—ज्ञानोदय-ग्रंथमाला कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ

हिंदी-संसार में एकदम नई चीज़—

सचित्र

आरब्य उपन्यास

अलिफ़लैला की कहानियाँ—भाव में, भाषा में, घटनाओं में, चरित्र-चित्रण में, उपदेश में, मनोरंजन में—सभी साहित्यिक विषयों में अद्वितीय हैं। इसलिये, संसार की समस्त सभ्य भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद मौजूद है। हिंदी में इसका कोई भी सर्वांग-सुंदर अनुवाद न था; इसीलिये यह पुस्तक बड़ी सज-धज से खंड-खंडकर प्रकाशित हो रही है। प्रत्येक खंड लगभग ८० पृष्ठों का और कहानी समाप्त ही है। साथ ही उसमें कई एकरंगे तथा बहुरंगे चित्र भी दिए गए हैं। अनुवाद बड़ा ही सरल, सरस तथा सुंदर हो रहा है। पाठकों के सुबीते के लिये मूल्य भी बहुत कम रक्खा गया है अर्थात् ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखा लेने पर प्रत्येक खंड डाक-खर्च सहित ॥) की वी०पी० से भेजा जाता है। काग़ज़ की इस महँगी में इतनी सस्ती और ऐसी सचित्र पुस्तक दूसरी नहीं है।

हिंदी-पाठकों और पुस्तकालयवालों को यह सुअवसर कदापि न त्यागना चाहिए।

पता—लक्ष्मीविलास-प्रेस,

नं० १४, जगन्नाथदत्त लेन, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची

(क) रंगीन

(ख) व्यंग्य

(ग) सादे

वारांगना-रहस्य

इसमें वेश्याओं के समस्त भेद, उनकी पुरुषों को फँसाने की समस्त चालें, किस समय वे कैसा भाव बनाती हैं, महफ़िल से किस तरह प्रेमियों को फँसा लाती हैं, उन्हें आरंभ से कैसी शिक्षा दी जाती है, आँखों का कटाक्ष, भावों का परिवर्तन—किस समय किस ढंग से उन्हें काम करना पड़ता है ; दो प्रेमियों के एकसाथ उपस्थित रहने पर वे क्या करती हैं, नौकर तथा स्वतंत्र वेश्याओं के कार्यों का भेद, धूर्त पुरुष किस तरह वेश्याओं के जाल में न फँसकर उन्हें ही फँसा लेते हैं, वेश्याओं की जवानी से लेकर बुढ़ापे तक के सभी कार्य, अनेक षड्यंत्र कितने ही वे प्रपंच जो नित्य होते हैं, लिखे हैं। साथ ही वेश्यासक्त स्वामी की सती, साध्वी, सुशीला का अद्भुत चरित्र देखकर आप दंग रह जायँगे। बड़ी ही उपदेश-प्रद और चित्ताकर्षक पुस्तक है। जितने प्रकार की वेश्याएँ होती हैं—सबका पूरा-पूरा हाल इसमें मिलेगा। मूल्य ६ भागों का ४॥) सजिल्द ५)

अन्य पुस्तकें—भीमसिंह सचित्र १॥), पृथ्वीराज १), सिकंदरशाह १॥=), ध्रुव-चरित्र।=), महात्मा गांधी १)

पता—पाठक ऐंड कंपनी, नं० ५७ वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन का आनंद

बिना औषधि-सेवन के स्तम्भन-शक्ति प्राप्त करो

बादशाह, नवाब, राजा, महाराजा और धनी-मानी लोगों ने ऐसी चीज़ों के लिये सारी दुनिया छान डाली, पर सफल न हुए। जीवन पर्यंत अध्ययन और खोज के अनंतर स्खलित होने से अपनी इच्छानुसार रुकावट के लिये, मैंने एक साधारण, सरल और व्यावहारिक यौगिक (वैज्ञानिक) युक्ति निकाली है; जोकि पाँच मिनिट के अंदर, एक बार ही पढ़ लेने से, सीखी जा सकती है और तत्काल, फ़ौरन ही काम में लाई जा सकती है।

आनंद लूटो

किसी भी मूल्य पर सस्ता है। मूल्य १०००) लेकिन यदि आप इस पत्रिका का हवाला देते हुए, इसके भेद को गुप्त रखने के लिये अपने हस्ताक्षरों में "सादर वचन" देंगे और इसके लिये लिखेंगे, तो—

आज एक सौ रुपया **मात्र**

विदेशों के लिये १० गिनी

अचूक अवसर सामने है। इसे जाने न दीजिए और लूटिए

जीवन का आनंद

अभी मूल्य भेजकर पत्र लिखिएः—

Dr. G. S. D. Sharman, G.Sc., N.Y. (U.S.A.), Ps.D., Ph.D. (Ary.) D. Ped; Vidya Bhushan Yogvidya Maharnawa, etc:
Specialist in Drugless Healing
Dept., L.M., Success House,
Fatehpur Sikri, Agra, India.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लाजवती

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

सहज सकुच-सुषमा-सहित सोहत रूप अनूप ;
लाजवती ललना लता लाजवती-अनुरूप ।

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible] आयुर्वेदिक औषधालय तथा चिकित्सालय अजमेर

[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लाजवती

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

सदल सकुच-सुषमा-लसित सोहत रूप अनूप ।
लाजवती ललना यथा लाजवती-अनुरूप ।

K. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामदयालु आयुर्वेदोक्त औषधालय तथा चिकित्सालय अजमेर

वर्तमान विज्ञापनबाज़ी के युग में जब कि वैद्यक-शास्त्र से अनभिज्ञ अनेक व्यक्ति नाना प्रकार के चटकीले, भड़कीले एवं मनोरंजन करानेवाले विज्ञापनों के द्वारा आयुर्वेद से सर्व-साधारण का विश्वास उठा रहे हैं, ऐसे समय में २५ वर्ष से अधिक समय हुआ इस औषधालय की शास्त्रोक्त रीति से बनाई हुई विशुद्ध, पवित्र और गुणकारक औषधियों से अब तक अनुमान, ९००००० (नव लक्ष) रोगी लाभ उठा चुके हैं, तो भी इस औषधालय के अध्यक्ष ने विज्ञापन प्रकाशित कराने तक का विचार नहीं किया। विना ही विज्ञापन के इस औषधालय की उन्नति दिन-दूनी और रात-चौगुनी होती रही और आज सर्व-साधारण ही नहीं; किंतु राजस्थान तथा अन्य प्रांतों के राजा-महाराजा, सरदार, जागीरदार और धनाढ्य आदि सभी इस औषधालय से लाभ उठा रहे हैं।

देश-पूज्य माननीय मालवीयजी जैसे नेता, सरस्वती के संपादक श्रद्धेय पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी-जैसे विद्वानों, राजपूताना के चीफ़ मेडिकल ऑफ़ीसर एवं बंगाल के सर्जन जनरल आदि बड़े-बड़े सर्जनों ने इस संस्था की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। अस्तु, अनेक मित्रों के वारंवार के आग्रह पर हम इस औषधालय का परिचय सर्व-साधारण को कराते हैं। इसमें सब प्रकार की शोधित, मारित और जारित रस, धातु, उपधातु तथा रत्न आदिक से बनी हुई औषधियाँ एवं आसव, अरिष्ट, अवलेह, क्राथ, चूर्ण, गुटिका, तैल, घृत, मुरब्बे, मा'जून, ख़मीरे, पाक, शर्बत, अर्क़, जवाहिर मोहरा, दिवाल मुश्क आदि आयुर्वेदीय एवं यूनानी औषधियाँ शास्त्रोक्त विधि से बड़ी सावधानी एवं स्वच्छता-पूर्वक तैयार की जाती हैं। हीनवीर्य औषधियाँ कभी काम में नहीं लाई जातीं। बाहर के रोगियों के पत्रों पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाकर रोग के अनुसार औषधियों की योजना करके वे बाहर भिजवाई जाती हैं।

जनता की जानकारी के लिये सहस्रों प्रशंसा-पत्रों में से केवल दो-चार की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं। आशा है, वे ही पर्याप्त होंगी :—

देश के पूज्य नेता पं० मदनमोहन मालवीयजी लिखते हैं—"इस औषधालय की प्रशंसा में जितने सज्जनों ने जो कुछ लिखा है, मैं उन सबका पूर्णतया समर्थन करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि उत्तर-भारत के वैद्यगण आपके उदाहरण पर चलें"।

एच० बी०—राबिन्सन्, आई० एम्० एस्० लेफ़्टिनेंट कर्नल, चीफ़ मेडिकल ऑफ़िसर, राजपूताना, तथा सर्जन जनरल, गवर्नमेंट ऑफ़ बंगाल, लिखते हैं—"मैं चाहता हूँ कि मेरे स्टाफ़ के कई डॉक्टर अपने अस्पतालों को इतनी उत्तमता से रक्खें"।

डी० एफ़० एफ़० मलन, लेफ़्टिनेंट कर्नल, आई० एम्० एस्०, चीफ़ मेडिकल ऑफ़िसर, राजपूताना, लिखते हैं—"प्रयोजन के लिये कोई भी अँगरेज़ी अस्पताल इस औषधालय से अच्छा नहीं हो सकता"।

डबल्यू० वॉट्सन० लेफ़्टिनेंट कर्नल, आई० एम्० एस्०, सी० आई० ई०, चीफ़ मेडिकल ऑफ़िसर, राजपूताना, लिखते हैं—"यह आदर्श औषधालय जितना अधिक लोक-प्रिय है, उसके लिये यह सर्वथा योग्य है। मैंने आयुर्वेदीय औषधियाँ और उनके बनाने का तरीक़ा स्वयं देखा है, और जिस उत्तमता के साथ प्रत्येक औषधि तैयार की जाती है उससे मैं अत्यंत प्रभावित हुआ हूँ। वैद्यराज अपनी चिकित्सा और शुद्धता के लिये राजस्थान-भर में प्रसिद्ध हैं"।

कलियुगी भीम, प्रॉफ़ेसर राममूर्ति लिखते हैं—"यह औषधालय सब प्रकार से लंडन, पैरिस और बर्लिन की विख्यात और बड़ी मेडिकल संस्थाओं की बराबरी का है"।

विशेष विवरण जानने के लिये यहाँ का बड़ा सूचीपत्र मँगवाइए, जो विना मूल्य ही भेजा जाता है।

च्यवनप्राश अवलेह—यह आयुर्वेद की परम प्रसिद्ध महौषधि है, जिसके सेवन से कास, श्वास, रक्तपित्त, क्षय आदि में अपूर्व लाभ होता है। मस्तिष्क-शक्ति को बढ़ाने में एवं राजयक्ष्मा-जैसे भयंकर रोग में, जब धातुओं का निरंतर क्षय होता रहता है, च्यवनप्राश अपना चमत्कार अवश्य दिखाता है। शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने में यह रसायन "डॉक्टरी काडलिवर ऑइल" से कहीं अधिक गुणकारी है। हम ज़ोर देकर कहते हैं कि इससे अच्छा च्यवनप्राश आपको अन्यत्र नहीं मिलेगा। २० तोले की ४० मात्रा का मूल्य ४)

अग्निसंदीपन चूर्ण—मंदाग्नि को नाश करके पाचन-शक्ति बढ़ाने में अद्वितीय है, और बहुत ही स्वादिष्ट है। १० तोले का मूल्य ॥।)

सरस्वती पाक—उन्माद, मूर्च्छा और दिमाग़ की बीमारियों को दूर करता है। मूल्य २) सेर।

ब्राह्मी शर्बत—मस्तिष्क-पोषक और स्मृति-वर्द्धक होने से विद्यार्थी, वकील, बैरिस्टर आदि को अत्यंत उपकारी है। बड़ी बोतल का मूल्य ३)

पत्र-व्यवहार इस पते से करें:—

मैनेजर, श्रीरामदयालु आयुर्वेदोक्त औषधालय, अजमेर (राजपूताना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें आवश्यकता है

(१) सर्व-श्रेष्ठ मासिक पत्रिका माधुरी का और अद्वितीय गंगा-पुस्तकमाला की सर्वोत्कृष्ट पुस्तकों का और भी अधिक प्रचार करने के लिये ५०० स्थायी और २५ ट्रैवलिंग एजेंटों की। हमारे एजेंट १००)-२००) तक कमा रहे हैं। कारण, हमारी पत्रिका और किताबें हिंदुस्थान-भर में खूब मशहूर हो चुकी हैं। लाखों मनुष्य उन्हें पढ़ रहे हैं। अतएव उनकी खपत एजेंट लोग आसानी के साथ—थोड़े-से परिश्रम से ही—अन्य मासिक पत्रिकाओं और पुस्तकों की अपेक्षा कहीं अधिक, कर लेते हैं। दिखलाते ही लोग उनके ग्राहक बन जाते हैं। फिर बाहरी—हिंदुस्थान-भर के प्रकाशकों की—हिंदी-पुस्तकें भी भरपूर कमीशन पर हम उनको बेचने के लिये देते हैं। क्या ये सब सुविधाएँ और कहीं उन्हें मिल सकती हैं? लेकिन १००) की ज़मानत ज़रूरी है। जो सज्जन ज़मानत जमा करके हमारे स्थायी या ट्रैवलिंग एजेंट बनना चाहें, वे कृपा करके हमसे "एजेंटों के लिये नियम" मँगा लें, और फ़ौरन् एजेंट बनकर हिंदी-सेवा के पुनीत कार्य में हमारा हाथ बटाएँ, और खुद भी खूब रुपया कमाएँ। इस समय हमारी पत्रिका और पुस्तकों की चारों ओर धूम मची हुई है। अतएव हिंदी-प्रेमी एजेंटों के लिये हिंदी-सेवा करने, आर्थिक लाभ उठाने और प्रचार-कार्य में अपना अनुभव और अभ्यास बढ़ाने के लिये यही सबसे उपयुक्त समय है। १० ट्रैवलिंग एजेंट और ५६ स्थायी एजेंट नियत हो चुके हैं। शीघ्रता कीजिए।

(२) गंगा-पुस्तकमाला के लिये एक सहकारी संपादक की। संपादन-कार्य का अनुभव आवश्यक है। वह पढ़े-लिखे विशेष न भी हों, पर हिंदी-भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार हो, और प्रूफ़-रीडिंग के कार्य में वह पूर्ण रूप से पटु हों। वेतन योग्यतानुसार ६०) से ८०) तक।

(३) नवलकिशोर-प्रेस के लिये २५-३० तेज़ कंपोज़ीटरों की। वेतन योग्यतानुसार १५) से ३०) तक

संचालक गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय

२९-३० अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी की ग्राहक-संख्या

आज ६४६८ हो चुकी है !

अतएव, हमारे अनुमान के अनुसार, इसने लेख, चित्र, छपाई-सफ़ाई आदि की तरह प्रचार में भी हिंदी का आज तक का Record beat down कर दिया ! और वह भी एक साल के अंदर ही !! इतनी जल्दी इतने ग्राहक हो जाना माधुरी की सर्वोत्कृष्टता और लोकप्रियता का बहुत भारी प्रमाण है।

हिंदुस्थान-भर में अब केवल बँगला की एक मासिक पत्रिका के माधुरी से अधिक ग्राहक हैं, लेकिन हमारा विश्वास है कि हिंदी-प्रेमियों की गुण-ग्राहकता और सहायता से बहुत शीघ्र ही माधुरी की

ग्राहक-संख्या १०,००० तक पहुँचेगी !!

और इसका प्रचार उक्त बँगला-पत्रिका से भी अधिक हो जायगा।

माधुरी की पिछली संख्याएँ

पहली ६ संख्याएँ—ये संख्याएँ महीनों से अप्राप्त हैं। हम इनके कोई २००० ऑर्डर ख़ारिज कर चुके हैं ; लेकिन, फिर भी, ऑर्डर आने बंद नहीं हुए हैं। लोग इन संख्याओं के सेटों को २५) २५) तक में लेने को तैयार हैं। विवश होकर हमने पुराने ग्राहकों से इन संख्याओं को तिगने-चौगने मूल्य पर लेकर उनकी बहुत सुंदर जिल्दें बँधवा ली हैं। ऐसे हमारे पास कोई २५ सेट हैं। एक सेट का मूल्य रक्खा गया है २०)। जो लोग चाहें, २०) मनी ऑर्डर से भेजकर १ सेट मँगा लें।

७वीं और ८वीं संख्याएँ—इन संख्याओं की केवल १००-१०० प्रतियाँ रह गई हैं। वे केवल उन्हें ही दी जाती हैं, जो खुद माधुरी के ग्राहक हैं या बन जाते हैं, साथ अपने किसी मित्र को भी उसका ग्राहक बनाते हैं। शीघ्र इन प्रतियों को मँगा लीजिए। नहीं तो प्रथम ६ संख्याओं की तरह इनके लिये भी पछताना पड़ेगा।

९वीं, १०वीं, ११वीं और १२वीं संख्याएँ—माधुरी के नए ग्राहक अभी ९वीं अर्थात् "सम्मेलन-संख्या" से बन रहे हैं। कारण, ९वीं, १०वीं, ११वीं और १२वीं संख्याएँ माधुरी की गत वर्ष की संख्याओं में सबसे अच्छी गिनी जाती हैं। इनमें बड़े ही मनोमोहक, नेत्ररंजक, सुंदर चित्र दिए गए हैं। अतएव नए ग्राहक बननेवालों को चाहिए कि ९वीं संख्या से ही ग्राहक बनें। जो नए ग्राहक गत तुलसी-संख्या से ग्राहक बन चुके हैं, ख़ैर उन्हें भी ये चार संख्याएँ २) में ही मिल जायँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥),छः मास का ३॥) और प्रति संख्या का ॥।) है। वी०पी० से मँगाने में ≈) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनी-ऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छः महीने का ४॥) और प्रति संख्या का ॥।≈) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है, और प्रति मास शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्य संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो अगले महीने के कृष्ण-पक्ष की सप्तमी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन उक्त तिथि के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ॥।−) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना संचालक गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ या मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १ महीने पेश्तर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाश करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का, तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापिस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को करना चाहिए। चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

पं० दुलारेलाल भार्गव
गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय
२६-३० अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	... ... २०)	प्रति मास
½ ,, या १ ,, ,, ,,	... ... ११)	,, ,,
¼ ,, या ½ ,, ,, ,,	... ... ६)	,, ,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,, ,,	... ... ४)	,, ,,

कम-से-कम आधा कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल-भर के विज्ञापनों पर पूरी छपाई पेशगी देने से ≈) रुपया कमीशन दे दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम २,००,००० पढ़े-लिखे, धनी-मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्व-श्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। फिर प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-४० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से हमने अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा कीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मैनेजर माधुरी, लखनऊ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञापन-दाताओं के लिये

अचूक अवसर आ गया

"माधुरी" में

विज्ञापन छपाइए !

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन अब कम-से-कम दो लाख पढ़े-लिखे, धनी-मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार खूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। फिर प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-४० तक पहुँच जाती है।

अब माधुरी की ८००० प्रतियाँ छपती हैं। इसीलिये १४) प्रति पृष्ठ हमारी लागत बैठती है। अतएव हम १६) प्रति पृष्ठ की जगह २०) प्रति पृष्ठ चार्ज करते हैं। हाँ, जिन्होंने पहले से ही विज्ञापन की छपाई भेजकर पृष्ठ रिज़र्व करवा लिए हैं, उनसे वही पुराना रेट चार्ज किया जायगा। तो भी हमारे रेट, अब भी, और पत्रिकाओं से, जो २००० भी ग्राहक नहीं रखतीं और १६) प्रति पृष्ठ चार्ज कर रही हैं, कहीं कम हैं।

(१) विज्ञापन-छपाई की वर्तमान दर

"माधुरी" में विज्ञापन-छपाई अब निम्न-लिखित हिसाब से ली जाती है—

	प्रतिमास
१ पेज या २ कालम	२०)
½ ,, या १ ,,	११)
¼ ,, या ½ ,,	६)
⅙ ,, या ⅓ ,,	४)
टाइटल का दूसरा पेज	३५)
,, ,, तीसरा ,,	३०)
,, ,, चौथा ,,	४०)
टाइटल के दूसरे पेज के सामने का पृष्ठ	३०)
पाठ्य विषय के पहले और बाद के पृष्ठ	३०)

(२) विज्ञापन-छपाई के नियम

"माधुरी" के विज्ञापन-दाताओं को चाहिए कि—

(१) प्रथम पत्र के साथ ही वह विज्ञापन भेज दें, जिसे छपाना चाहें।

(२) यह लिखें कि वह विज्ञापन कितने समय तक छपेगा।

(३) किसी संख्या में विज्ञापन बदलवाना या बंद कराना हो, तो उसके निकलने के १ मास पहले ही सूचना दें।

(४) विज्ञापन-छपाई पेशगी भेज दें, क्योंकि पेशगी लेने का ही नियम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छपकर तैयार है!

शीघ्र मँगाइए, संभव है, फिर आपको किसी भी मूल्य में न मिल सके।

शीघ्र मँगाइए!

पंजाब-केसरी, लाला लाजपतरायजी-रचित

भारत का प्राचीन इतिहास

[HISTORY OF INDIA]

(जो उन्होंने अभी लिखकर भेजा है)

कई वर्षों से श्रीयुत लालाजी भारत का प्राचीन इतिहास लिखने की चेष्टा कर रहे थे। परंतु देश-सेवा के कार्य में संलग्न रहने के कारण वे इस अत्यंत आवश्यक कार्य को पूरा न कर सके। परमात्मा की कृपा से इधर आपको कुछ समय मिला। इतने ही में आपने आर्य-जाति के मुख उज्ज्वल करने और भारत के गौरव को बढ़ाने के लिये "भारत का प्राचीन इतिहास" लिखकर उस कमी को पूरा कर दिया, जिसका भारतीय नेता-गण वर्षों से अनुभव कर रहे थे। इसके पूर्व जितने भी भारत के इतिहास लिखे गए हैं, यह उन सबमें प्रामाणिक तथा "Up to date" है। यह ग्रंथ लालाजी के वर्षों के परिश्रम तथा सैकड़ों पुस्तकों के विवेचन का फल है। अतः प्रत्येक भारतवासी को—एक बार इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। कलकत्ते के एक बड़े प्रेस में सचित्र छपा है। पहले संस्करण के अधिक भाग के ऑर्डर आ चुके हैं। इसलिये आज ही पत्र लिखिए अन्यथा दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मूल्य २)

पंजाब-रत्न डॉ० सत्यपालजी की नई पुस्तक

पंजाब-बीती—इस पुस्तक में डॉक्टरजी ने पंजाब पर किए गए अत्याचारों को छोटी-छोटी अत्यंत मनोरंजक कहानियों में वर्णन किया है। पुस्तक बड़ी रोचक और प्रभावशाली है। मूल्य १)

हिंदी-साहित्य में अपूर्व ग्रंथ

आत्म-दर्शन

भारत-मीमांसा—विद्वानों के लिये एक अपूर्व ग्रंथ। मूल्य ४)

हिंदी में ही क्या, किसी दूसरी भाषा में भी ऐसी "up to date" पुस्तक आत्मा के विषय में आज तक नहीं लिखी गई। पूर्व और पश्चिम के आज तक जितने विद्वान् और तत्त्ववेत्ता हो गए हैं, उनका और वेद-शास्त्रों का मत देकर इसकी विवेचना की गई है। पुस्तक सर्वतोभावेन पढ़ने योग्य है। मूल्य १॥)

भारत का सच्चा इतिहास—जिसके लिये जनता तरस रही थी, वह छपकर तैयार है। मूल्य २॥)

गीतामृत—मृत्यु के साक्षात् दर्शन करने के पश्चात् इस पुस्तक में जीवन और मृत्यु के रहस्य को खोला गया है। गीता के १८ अध्यायों की व्याख्या, श्लोक और अर्थ भी दिए गए हैं। मूल्य २)

कालेपानी की कारावास-कहानी—कालेपानी में भारतवासियों के साथ जो निर्दयता का व्यवहार किया जाता है, उसको पढ़कर हृदय विदीर्ण हो जाता है। इसका पूर्णतः वृत्तांत इस पुस्तक में आपको मिलेगा। इसका इतना मान हुआ है कि प्रत्येक भाषा में इसका अनुवाद हो गया है। मूल्य १॥)

भारत-माता का संदेश—भारत-माता इस समय अपने बच्चों से क्या चाहती है, इत्यादि वर्तमान अवस्था पर यह एक अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ॥)

देश-पूजा में आत्म-बलिदान—देश-सेवा की यज्ञ में जिन वीर देवियों और पुरुषों ने प्राण-आहुतियाँ दी हैं, उनका वर्णन बड़े हृदय-द्रावक शब्दों में किया गया है। अंत में देश की वर्तमान अवस्था का चित्र देकर देश-वासियों से अपील की गई है। मूल्य १॥)

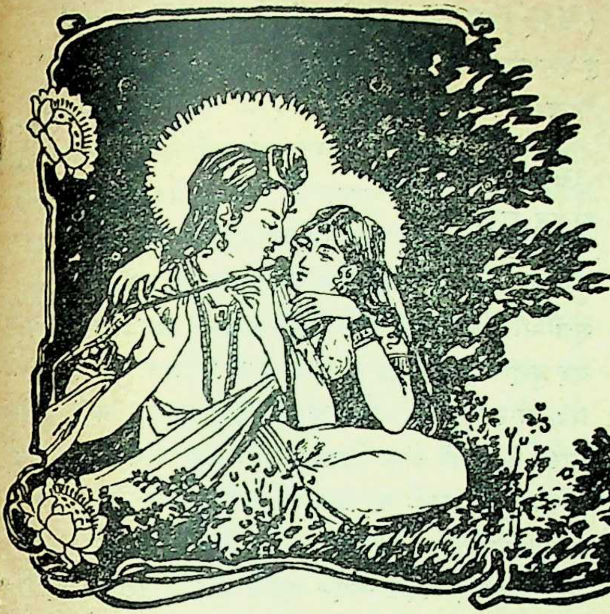
वीरांगना (सचित्र)—सर्वथा नवीन पुस्तक कन्याओं और देवियों के लिये। मूल्य ॥)

गीता (गुटका)—गीता के संपूर्ण अध्याय, उनके श्लोक तथा अर्थ-सहित सजिल्द मूल्य ॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मिलने का पता—राजपाल, मैनेजर सरस्वती-आश्रम, लाहौर।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



माधुरी

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र, मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रस-मयी अनन्य !

वर्ष २ खंड १	भाद्रपद-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८० वि०)— १७ सितंबर, १९२३ ई०	संख्या २ पूर्ण संख्या १४

जयजयकार

जयति-जय जन्म-भूमि, जननी !
तेरे पद-नख-चारु-चंद्रमणि-मंडित मौलि जलेश्वर का ;
तेरे काशमीर-कुंकुम-कण-अंकित अंग महेश्वर का ।
धन्य धन-धुरी धर्म-धमनी ॥ जयति-जय० ॥
श्यामल मलय-विचल अंचल तुव, मचले श्याम गहे कर में ;
पुण्य-पयोधर-पय-पियूष से पला प्रेम मानस-सर में ।
कथित कमनीय कीर्ति-करनी ॥ जयति-जय० ॥
तेरे मानस विकच कमल में कांतिमयी कमला सजती ;
तेरी कोमल कुंज-कुटी में कविता की वीणा बजती ।
अखिल अवतारों की अवनी ॥ जयति-जय० ॥
तेरे गुहा-मुखों में ब्राह्मण ब्रह्म-नाद को करें ध्वनित ;
तेरे सुख-सौभाग्य-गगन में सत्य-सूर्य हो शीघ्र उदित ।
द्वेष-दुख-दंभ-दुरित-दलनी ॥ जयति-जय० ॥

चंडीप्रसाद "हृदयेश"

संस्कृत की कोश-विद्या



स्कृत का साहित्य बहु-विस्तृत है । उसके छपे हुए ग्रंथों की सूचियाँ बहुत हैं । उनमें से कई तो बहुत ही बड़ी—५०० या इससे भी अधिक पृष्ठ की—हैं । जैसे—इंडिया-ऑफ़िस की छपी हुई पुस्तकों की सूचियाँ । भारत और योरप के कई पुस्तकालयों की पुस्तकों की मुद्रित सूचियाँ तो कई हज़ार पृष्ठ से भी अधिक हैं । जैसे—ऑफ़्रेक्ट महाशय का कैटेलोगस कैटेलेगोरम तथा बॉडलीयन और बर्लिन के पुस्तकालयों की सूचियाँ । इन सूचियों के अतिरिक्त सार्वजनिक या राजकीय पुस्तकालयों की सूचियाँ तथा काश्मीर, नेपाल और राजपूताने आदि से संगृहीत पुस्तकों की छपी हुई रिपोर्टें भी हैं । प्राच्य-विद्या-प्रेमियों को अवश्य इन सबका अध्ययन करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए ; क्योंकि यह एक विशेष विषय है। इसे पुस्तक-विज्ञान कहते हैं। इस विस्तृत संस्कृत-साहित्य का एक मुख्य भाग कोश-विद्या है। पुरुषोत्तम देव के 'त्रिकांड-शेष' की सिंहलीय संस्कृत-टीका में प्रायः २०० संस्कृत-कोशों और कोशकारों के नाम हैं। योरप की बड़ी सूचियों से तो प्रायः १००० कोश या कोशकारों के नामों का संग्रह करना कुछ कठिन ही नहीं। किंतु प्रचलित संस्कृत-कोश, बड़े या छोटे, १०० से अधिक नहीं हैं। उनमें भी संस्कृत-पाठकों को विशेष लाभ-दायक ३० से अधिक नहीं हैं। कई प्रधान कोशों के नाम ये हैं—

१—समाम्नाय। ग्रंथकर्ता, अज्ञात। यह देवराज-कृत टीका और यास्क-कृत निरुक्त-सहित है (एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल)।

२—नाम-लिंगानुशासन। अमरसिंह-कृत। रामाश्रम-कृत टीका (बंबई), सर्वानंद-कृत टीका (ट्रावंकोर), क्षीरस्वामी-कृत टीका (पूना)।

३—वैजयंती। यादव-कृत (मदरास)।

४—अभिधान-रत्न-माला। हलायुध-कृत। ऑफ़्रेक्ट द्वारा संपादित।

५—अभिधान-चिंतामणि। हेमचंद्र-कृत। ग्रंथकर्ता ने ही टीका भी की है। (भावनगर)

६—कल्पद्रु। केशव-कृत। (लिखित)

७—त्रिकांड-शेष। पुरुषोत्तमदेव-कृत (बंबई)।

८—धन्वंतरि-निघंटु (पूना)।

९—मदनपाल-निघंटु। (कलकत्ता)।

१०—राज-निघंटु। (पूना)।

११—कैयदेव-निघंटु। (लिखित)

१२—रुद्र-कोश। (लिखित)

१३—नाम-माला। अमरदत्त-कृत। (लिखित)

१४—रभस-कोश। रभसपाल-कृत। (लिखित)

१५—मंख-कोश। ज़करिया ने संपादन किया है।

१६—विश्व-कोश। (चौखंभा-ग्रंथमाला, बनारस)।

१७—नानार्थार्णव-संक्षेप। केशव स्वामी-कृत (ट्रावंकोर)।

१८—हैमानेकार्थ। ग्रंथकर्ता ने ही इसकी 'अनेकार्थ-कैरवाकरकौमुदी' टीका की है। ज़करिया द्वारा संपादित।

१९—मेदिनी (कलकत्ता)।

छपे हुए कोश-संग्रह तीन हैं—(१) अभिधान-संग्रह (बंबई), (२) षट्-कोश-संग्रह (काशी), तथा (३) द्वादश-कोश संग्रह (काशी)।

विक्रम से पूर्व पंचम या षष्ठ शतक

समाम्नाय, जो प्रायः निघंटु के नाम से प्रसिद्ध है, उपलब्ध संस्कृत-कोशों में सबसे पुराना है। इसमें वेद की संहिताओं से—विशेषकर ऋग्वेद से—चुने हुए मुख्य पर्यायों का संग्रह है। देवता-वाचक आदि शब्दों की सूची भी ग्रंथ में अलग दी हुई है। संपूर्ण ग्रंथ गद्य में है *। यह बुद्ध-काल से पहले का है। उस समय वेद के अति-रिक्त और कोई भी मौलिक साहित्य प्रायः नहीं था। यास्क ने इसकी टीका लिखी है ; जिसका नाम निरुक्त † है। इसमें मुख्य शब्दों पर टिप्पणियाँ हैं, और वेद से उनके उदाहरण उद्धृत हुए हैं। अर्वाचीन-काल में—प्रायः ५-६ शताब्दी पहले—एक दूसरी टीका ‡ लिखी गई है ; जिसमें समाम्नाय के प्रत्येक शब्द का अर्थ क्रम से लिखा हुआ है। प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनिजी ने यास्क शब्द को अपने 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' (२-४-६) सूत्र से सिद्ध किया है, और यही देखकर बहुत लोग अनुमान करते हैं कि यास्क पाणिनि के पहले हुए हैं। पुराने युग में, जब समाम्नाय की रचना हुई, बहुत थोड़े ही शब्द ऐसे कठिन या दुर्बोध समझे गए, जिनको कि कोश में स्थान मिला। पर जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे बहुत-से शब्द तथा समस्त पद, जिनका अर्थ पहले सुगम था, अव्यवहृत और आर्ष होने लगे। उस समय वेद-पाठी लोग एक बृहत्कोश के अभाव का अनुभव अवश्य करने लगे होंगे; पर किसी भारतीय पंडित ने अब तक उस अभाव को दूर नहीं किया। हमें कृतज्ञता-पूर्वक धन्यवाद देना चाहिए उन जर्मन-पंडितों को, जिन्होंने बड़े परिश्रम से एक विदेसी प्राचीन भाषा के साहित्य से बृहत्कोश का अभाव दूर कर दिया।

* भास्करराय ने अपने वैदिक निघंटु (गोडबोले द्वारा संपादित, बंबई) में, १८वें शतक में, गद्य-ग्रंथ को पद्य में परिवर्तित किया।

† निरुक्त ६ वेदांगों में से एक है। यास्क के निरुक्त के अतिरिक्त और भी निरुक्त हैं। यास्क ने अपने ग्रंथ में उनका उल्लेख किया है।

‡ इसमें और टीकाओं के भी नाम आए हैं, विशेष-कर स्कंद स्वामी की टीका का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ तो बौद्धों के प्रभाव से और कुछ अन्य कारणों से क्रमशः वेदों का पठन-पाठन घटता गया। मौर्य-काल से लौकिक साहित्य की वृद्धि शुरू हुई—वह आगे बढ़ता ही गया, और समालोचक, वैयाकरण तथा शब्द-शास्त्रकर्ताओं पर इस लौकिक साहित्य का अधिक प्रभाव पड़ा। पाणिनि, कात्यायन, व्याडि और पतंजलि आदि पुराने ग्रंथकारों ने विशेषकर लौकिक साहित्य के अध्ययन की सहायता के लिये ही ग्रंथों की रचना की। किंतु उन्होंने वेदों * को एकदम भुला ही नहीं दिया ; उनका ध्यान भी अवश्य रक्खा।

पतंजलि के बाद, और कुछ पहले से भी, वैदिक विधि और वेदाध्ययन की अवनति होती गई। पौराणिक और काव्य-साहित्य ही व्यापक होता चला। कालिदास-जैसे हिंदू-लेखक भी वैदिक विधि की निर्दयता पर यह श्लोक लिखने में ज़रा न हिचके कि "पशुमारणकर्मदारुणःअनुकंपामृदुलोऽपि श्रोत्रियः।†" अर्थात्—दयालु भी श्रोत्रिय यज्ञ के पशु को मारने में निर्दय होता है।

वैयाकरण तथा कोशकार ‡ अमरसिंह पतंजलि के बाद हुए हैं। कहा जाता है, इन्होंने एक बृहत् अमर-कोश-नामक कोश लिखा था। पर, संभवतः ऐसे किसी कोश की रचना नहीं हुई। अमरसिंह का वर्तमान ग्रंथ केवल नाम-लिंगानुशासन ही अमर-कोश है। यह कोश भर्तृहरि और कालिदास के ग्रंथ पढ़नेवालों के लिये बहुत उपयोगी है ; कालिदास से पहले के अथवा उनके बाद के (उद्धृत लेखकों के) साहित्य के अध्ययन में वैसा उपयोगी नहीं है। इस कोश में वैदिक शब्दों का उल्लेख नहीं है, और अश्लील, प्रांतीय तथा शास्त्रीय शब्द बहुत कम हैं। इसमें शब्दों के साधारण अर्थ दिए गए हैं। पर यह कहना ही पड़ता है कि १०००० शब्दों का यह संक्षिप्त कोश अतीव अद्भुत है। यह 'समाम्नाय' की तरह गद्य में नहीं, पद्य में है, और आद्यंत अनुष्टुप्-छंद में लिखा है। इस पर कई टीकाएँ हैं। उनमें क्षीरस्वामी, सर्वानंद, राजमुकुट और रामाश्रम की टीकाएँ प्रधान हैं।

विक्रम के बाद षष्ठ या सप्तम शतक

कालिदास के समय का सरलता-सहित लालित्य बहुत दिनों तक न रह सका। सुबंधु, भारवि, माघ, बाण, भवभूति, रत्नाकर, राजशेखर आदि कवियों ने, जो स्वभावतः समीचीनता और नवीनता के प्रेमी थे, संस्कृत-शब्द-माला को आर्ष और धर्म-शास्त्र, नीति, दर्शन, आयुर्वेद आदि के शास्त्रीय शब्दों से और कभी-कभी समस्त पद और शब्दों की नई रचना से बढ़ाया। इन शब्दों के लिये कोशों की अपेक्षा हुई। उधर दाक्षिणात्यों में वैदिक अध्ययन की पुनर्जागृति भी हुई। इन्हीं कारणों से अमर-कोश को बढ़ाने के कई प्रयत्न हुए।

विशिष्टाद्वैत-संप्रदाय के आचार्य श्रीरामानुज के गुरु, गंभीर विद्वान् श्रीभगवद्यादवप्रकाश ने वैजयंती-कोश की रचना की। यह अमर-कोश से कहीं बड़ा और बड़ी विद्वत्ता * का ग्रंथ है। वैदिक-काल से काव्य-काल तक विस्तृत भारतीय साहित्य का कोई विभाग यादव से नहीं छूटा। अमरसिंह के समान यादव ने भी अपने से पहले के कोशकारों के नाम नहीं लिए ; पर हेमचंद्र, मेदिनी, दोनों केशव तथा दूसरे ग्रंथों के उल्लेखों से मालूम पड़ता है, अमर और यादव, इन दोनों कोशकारों के पहले और भी कोशकार थे। इस कोश के विषय में दो बातें बड़ी शोचनीय हैं। अमर-कोश की, हेमचंद्र के कई ग्रंथों के समान, ग्रंथकर्ता की बनाई कोई टीका नहीं है। और दूसरे कई बड़े प्राचीन विद्वानों की टीकाएँ अवश्य हैं।

विक्रम के बाद द्वादश शतक

* यदि हेमचंद्र के अभिधान-चिंतामणि की टीका में उल्लिखित व्याडि तथा पतंजलि के भाष्य में उल्लिखित संग्रह-ग्रंथ के कर्ता व्याडि दोनों एक ही व्यक्ति हैं, तो संभवतः व्याडि महाशय पाणिनि तथा पतंजलि के सम-सामयिक कोशकार होंगे।

† शाकुंतलम्।

‡ काव्यकल्पलता और बालभारत के ग्रंथकर्ता जैन अमरचंद सूरि और कोशकर्ता बौद्ध अमरसिंह भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। इनका नाम आठ वैयाकरणों में आया है—"इंद्रश्चंद्रः काशिकृत्स्नः पिशली शाकटायनः। पाणिन्यमरजैनेंद्रा इत्यष्टौ शाब्दिका मताः।" (सारस्वत व्याकरण, टीका)

* इस ग्रंथ की प्रायः प्रति पंक्ति में कुछ नई बात अवश्य मिलती है। वर्ण, रस, अविवाह्य कन्या, संकर जाति आदि के वर्गों को देखिए। इसका दार्शनिक अंश जैसा होना चाहिए, वैसा परिपूर्ण नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैजयंती पर तो न ग्रंथकर्ता ही की कोई टीका है, और न आज तक कोई दूसरी ही टीका मिली। इसके अतिरिक्त हेमचंद्र, मेदिनी और कल्पद्रु के रचयिताओं के लेखों से ज्ञात होता है कि उन लोगों को भी वैजयंती की पूरी प्रति नहीं मिली थी कि वे लोग उसका पूरा उपयोग कर सकते। केवल नानार्थार्णव-संक्षेप के रचयिता केशव स्वामी ने इसका पूरा उपयोग किया है। पर उन्होंने केवल अनेकार्थ ही पर लिखा है। वह वैजयंती के प्रधानांश पर्याय-भाग को उपयोग में नहीं लाए। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय लौकिक साहित्य के समय का सबसे बड़ा कोश वैजयंती है *। इसके पर्याय-भाग को देखने ही से जान पड़ता है कि ग्रंथकर्ता ने कितना अद्भुत परिश्रम और अन्वेषण किया है, और संस्कृत-साहित्य के वह कैसे प्रवीण पंडित थे। किंतु अमर या वैजयंती, किसी में भी नानार्थ-वर्ग पूर्ण विस्तृत रूप में नहीं है। अमर में तो इस वर्ग में केवल ३०० से कम श्लोक हैं, और वैजयंती में लगभग इसके दूने। दोनों कोशकारों को यह विभाग, अर्थात् नानार्थ-वर्ग, और विस्तृत रूप में लिखना चाहिए था; क्योंकि यह विषय स्वतंत्र है।

मंख और महेश्वर, इन दो बड़े कोशकारों ने नानार्थ-विभाग पर विशेष ध्यान दिया है। ये दोनों दो प्रणाली

विक्रम के बाद दशम और एकादश शतक

के थे। मंख काश्मीर के थे; जहाँ का साहित्य अपने ढंग का निराला ही हुआ, और जिसके लिये पृथक् कोश की अपेक्षा हुई। मंख के कोश ने इस अभाव को पूर्ण किया। महेश्वर का विश्व-प्रकाश कोश और भी विस्तृत रूप में है, और सभी विद्याभ्यासियों के काम का है। दोनों ही कोश संस्कृत-साहित्य-सेवी के लिये परमावश्यक हैं। कारण, एक दूसरे की त्रुटियों को पूर्ण करता है †। मंख की एक अच्छी टीका है; पर विश्व की टीका नहीं है। मंख से अर्वाचीन कोशकारों ने मंख का पूरा उपयोग नहीं किया; किंतु कोशकार तथा मल्लिनाथ और भानुजी दीक्षित-जैसे टीकाकारों ने विश्व का पूरा उपयोग किया है।

* अमरदत्त की नाममाला और रभस-कोश सर्व-साधारण को अप्राप्य हैं।

† एक ही उदाहरण से ज्ञात होगा कि यह कितना आवश्यक है। स्तुति-कुसुमांजलि में 'नासीर' कर्पूर के अर्थ में आया है; जिसे मंख के अतिरिक्त और किसी कोशकार ने अपने कोश में नहीं लिखा।

मेदिनीकर का मेदिनी-कोश विश्व-प्रकाश का केवल नूतन संस्करण है, यद्यपि मेदिनीकर निंदा करते हैं कि विश्व में बहुत-से दोष हैं। मेदिनी में ३० भूत-पूर्व कोशकारों के नाम हैं *।

कलिकाल-सर्वज्ञ जैन हेमचंद्र ही एक ऐसे कोशकार हैं, जिन्होंने पृथक् दो कोश बनाए—(१) अभिधान-चिंतामणि—

विक्रम के बाद द्वादश तथा त्रयोदश शतक

पर्याय शब्दों का और (२) अनेकार्थ-कोश—अनेकार्थ शब्दों का। दोनों आज भी सुलभ हैं, और दोनों की टीका ग्रंथकार की बनाई हुई है †; जिससे संस्कृत-पाठकों को बहुत लाभ है। हेमचंद्र का दूसरा प्रधान ग्रंथ निघंटुशेष है; जिसमें वनस्पति और औषधों के नाम आदि वर्ग-क्रम से हैं। किंतु वनस्पति और औषधों का प्राचीन कोश धन्वंतरि-निघंटु है। और, आधुनिक समय में, नरहरि-कृत राज-निघंटु इस विषय का विस्तृत, पूर्ण और विशेष ग्रंथ है। हेमचंद्र ने

* उत्पलिनी-शब्दार्णव-संसारावर्तनाम-मालाख्यान्।
भागुरिवररुचिशाश्वतवोपालितरंतिदेवहरकोषान्॥
अमरशुभांकहलायुधगोवर्द्धनरभसपालकृतकोषान्।
रुद्रामरदत्ताजयगंगाधरधरणिकोषांश्च।
हारावल्यभिधानं त्रिकांडशेषं च रत्नमालां च।
अपि बहुदोषं विश्वप्रकाशकोषं च सुविचार्य।
वाग्भटमाधववाचस्पतिधर्मव्याडितारपालाख्यान्।
अपि विश्वरूपविक्रमादित्यनामलिंगानि सुविचार्य।
कात्यायनवामनचंद्रगोमिरचितानि लिंगशास्त्राणि।
पाणिनिपदानुशासनपुराणकाव्यादिकं च सुनिरूप्य।
षट्शतगाथाकोषप्रणयनविख्यातकौशलेनाथ।
मेदिनिकरेण कोषः प्राणकरसूनुना रचितः।

† ज़करिया महाशय का यह समझना कि 'टीका महेंद्र सूरि की बनाई हुई है' केवल भूल है।
प्रामाण्यं वासुकेर्व्याडेर्व्युत्पत्तिर्धनपालतः।
प्रपंचश्च वाचस्पतिप्रभृतेरिह लक्ष्यताम्। (अभि० चि० टी०)
विश्वप्रकाशशाश्वतरभसामरसिंहमंखदुग्गानाम्।
व्याडिधनपालभागुरिवाचस्पतियादवादीनाम्। (अनेकार्थ० टी० १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः १५ कोशकारों के नाम लिए हैं, और यह चौलुक्य-कुमारपाल के समय में वर्तमान थे ।

राजराज चोल के समय में केशव स्वामी ने नानार्थार्णव-संक्षेप लिखा था । अनेकार्थ-कोशों में यह सर्वोत्तम कोश है, और इसमें बहुत-सी विशेषताएँ हैं। इसमें प्रायः ६००० श्लोक हैं । केवल यही एक

विक्रम के बाद त्रयोदश और चतुर्दश शतक

ऐसा कोश है, जिसमें भूत-पूर्व कोशकारों के नाम और उन पर समालोचना है, तथा कभी-कभी कठिनता को स्पष्ट करने के लिये मूल-ग्रंथ ही में, पद्य में, वैदिक और पौराणिक साहित्य से उदाहरण भी दिए गए हैं। और, केवल यही एक ज्ञात कोश है, जिसमें वर्णानुक्रम से * शब्द दिए गए हैं । इसमें वर्तमान समय की प्रणाली से थोड़ा ही अंतर है । वर्तमान अनेकार्थ-कोशों में केशव स्वामी का कोश सबसे बड़ा है । इसमें विशेषकर वैदिक तथा अवैदिक, सभी शब्द दिए गए हैं, और अपने पूर्ववर्ती कोशकारों अमरसिंह, अमरदत्त, रभस, यादव, अजय, शाश्वत, हर्षनंदी और दूसरे कई कोशकारों की त्रुटियों की पूर्ति की गई है। जो कोई संस्कृतज्ञ इस कोश को देखेगा, उसे इसी तरह के पर्याय-कोश का अभाव अवश्य खटकेगा ; पर दुःख है कि केशव स्वामी ने कोई ऐसा कोश नहीं बनाया। मगर इस अभाव की पूर्ति दूसरे कोशकार केशव के बनाए कल्पद्रु से हुई है । केशव स्वामी दक्षिण-भारत के थे। कल्पद्रु-रचयिता केशव भारत के किस भाग के थे, यह नहीं कहा जा सकता। केशव स्वामी के समान इन्होंने भी वैदिक शब्दों को अपने कोश में स्थान दिया है; पर उतनी सफलता के साथ नहीं। कल्पद्रु के आरंभ में नव कोशकारों के नाम हैं ; जिनमें अंतिम नाम हेमचंद्र का है † ।

ऊपर जितने कोश कहे गए हैं, उनसे विशेष विभागों

वैद्यक-निघंटु और दूसरे विशेष कोश

के शब्दों का—जैसे वनस्पति और ओषधि, अव्यय, एकाक्षर, द्विरूप तथा बहुरूप, गणित और तंत्र आदि के शब्दों का—पूर्ण अर्थ-ज्ञान नहीं होता । इन शब्दों के लिये विशेष कोश बने हैं । ऐसे विशेष कोशों में सबसे उपयोगी और मुख्य कोश वैद्यक-निघंटु हैं । इन निघंटुओं में भारतीय वनस्पति, ओषधि, और खनिज आदि के शब्दों के पर्याय तथा भिन्न-भिन्न अर्थ हैं, और प्रत्येक ओषधि आदि के गुण, उपयोग आदि भी दिए हैं । इन निघंटुओं में सबसे प्राचीन धन्वंतरि-निघंटु, अनुष्टुप्-छंद में, है। यह

विक्रम के बाद चतुर्थ शतक, धन्वंतरि-निघंटु

अमर-कोश के समय का है। धन्वंतरि और अमरसिंह, दोनों ही विक्रमादित्य के नवरत्नों में से कहे जाते हैं, और यह प्रायः सत्य जान पड़ता है । दूसरा मुख्य निघंटु मदन-

विक्रम के बाद चतुर्दश शतक, मदनपाल-निघंटु

पाल-निघंटु * है ; जो मदनपाल की संरक्षकता में बना था। किंतु सबसे बड़ा और सबसे अर्वाचीन वैद्यक-निघंटु नरहरि पंडित का राज-निघंटु है†। त्रिकांड-शेष, हलायुध की अभिधान-रत्न-माला और हेमचंद्र के अभिधान-चिंतामणि की तरह यह भी अनेक प्रकार के छंदों में लिखा हुआ है ।

दूसरे विशेष ग्रंथ एकाक्षर-कोश, मातृका-कोश, द्विरूप-कोश, और शब्द-भेद-कोश आदि हैं ।

प्रायः एक सौ वर्ष से अधिक काल से भारत और

विंश शतक वैक्रम, आधुनिक ग्रंथ

योरप में विचारों का अन्योन्य-विनिमय होता आ रहा है ; जिसका फल साहित्य के अन्य किसी विभाग से कहीं अधिक कोश-विभाग में संपन्न हुआ है । बीसवीं शताब्दी के आरंभ से योरपियन कोश और विश्व-कोश की प्रणाली पर कई भारतीय और योरपियन विद्वानों ने बड़े कोशों का निर्माण किया । साहित्य के दूसरे विभागों में, भारतीय विषयों पर, योरपियन और उनके शिष्य भारतीय विद्वानों ने

शब्दकल्पद्रुम १९१८। शब्दार्थ-चिंतामणि १९२१-१९४२। सेंटपीटर्सबर्ग १९१०-१९३३। वाचस्पत्य १९३१-१९४०

कई अनुवाद-रूप तथा मौलिक ग्रंथ लिखे हैं। पर पुराने ढंग के पंडितों पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । किंतु कोश-निर्माण में आंग्ल-भाषा या अन्य विदेशी भाषा से अनभिज्ञ पुराने ढंग के प्राच्य पंडितों ने भी पूरी सचेष्टता दिखलाई और योरपियन प्रणाली का पूरा अनुकरण किया । तीन मुख्य

---

* किंतु एक ही व्यंजन से आरब्ध शब्द प्रथम स्वर-वर्ण के अनुसार लिखे गए हैं । जैसे ज्यानि जिह्वा के पहले है ।

† कात्यवाचस्पतिव्याडिभागुर्यमरमंगलाः ;
साहसांकमहेशाद्या विजयंते जिनांतिमाः । (कल्पद्रु)

* कलकत्ते में छपा है ।

† आनंदाश्रम, पूना में धन्वंतरि-निघंटु के साथ छपा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय कोश शुद्ध संस्कृत में लिखे गए हैं। संन्यासी सुखानंद-कृत शब्दार्थ-चिंतामणि, सर राजा राधाकांत देव की संपादकता में कई विद्वानों द्वारा संकलित शब्दकल्प-द्रुम, और तारानाथ तर्कवाचस्पति-कृत वाचस्पत्य, ये कोश तथा दो शर्मण्य (जर्मन)-कोश इस समय में लिखे गए हैं। पूर्वोक्त तीन संस्कृत-कोशों में केवल शब्दार्थ ही नहीं हैं, ग्रंथकारों ने यथोपलब्ध संस्कृत-साहित्य से बहुत-से अंश भी उद्धृत किए हैं। इन तीनों संस्कृत-कोशों में वाचस्पत्य सबसे नवीन और बृहत् पाँच जिल्दों में है, और शेष दोनों से कहीं उत्तम है। दार्शनिक शब्दों के संबंध में—विशेषकर न्याय के पारिभाषिक शब्दों के संबंध में—यह भीमाचार्य झालकीकर के न्याय-कोश के अतिरिक्त अन्य संस्कृत तथा जर्मन-कोशों से कहीं श्रेष्ठ है। वाचस्पत्य ने वैदिक शब्दों के संग्रह का प्रयत्न किया है; पर इसमें सफलता नहीं पाई। बौटलिंक और रौथ के संपादित सात बड़ी-बड़ी जिल्दवाले तथा केवल बौटलिंक-संपादित सात छोटी जिल्दवाले सेंटपीटर्सबर्ग के छपे हुए जर्मन-कोशों में विशेष गुण यह है कि संस्कृत-साहित्य के वैदिक और अवैदिक, सभी शब्दों का तथा उनके अर्थ उदाहरण आदि का पूर्णतया और उचित रीति से संग्रह, जहाँ तक उनके समय में हो सकता था, हुआ है। बौटलिंक और रौथ-संपादित कोश में उदाहरण और प्रमाणों का पूर्ण उल्लेख है; पर केवल बौटलिंक-संपादित दूसरे कोश में उल्लेख आदि बहुत कम हैं। इन दोनों कोशों में मुख्य दोष यह है कि शब्दों या उल्लेखों के चुनाव पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया। हज़ारों व्यर्थ के समस्त पद और अनपेक्षित उदाहरण आदि मूल-ग्रंथ में हैं; जिनके कारण पुस्तक बहुत बड़ी और बोझदार हो गई है। इन शर्मण्य-कोशों के दो संक्षेप रूप हैं—एक कैपेलर-कृत, और दूसरा सर मौनियर विलियम्स-कृत। इनमें भी शब्दों के चुनाव पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया। और, उल्लेख तो बिलकुल ही नहीं हैं; जिसके कारण ये वास्तविक संस्कृत-पाठकों के लिये बहुत कम उपयोगी हैं।

कल्पद्रु-कोश के कुछ श्लोक यहाँ दिए जाते हैं—

गुरुं श्रीदक्षिणामूर्तिं विभुं विश्वेश्वरं परम्;
सर्वज्ञं तमनाद्यंतं रात्रिंदिवमुपास्महे ॥ १ ॥
काव्यवाचस्पतिव्याडिभागुर्यमरमंगलाः ;
साहसांकमहेशाद्या विजयंते जिनांतिमाः ॥ २ ॥
समालोक्य मतान्येषां कल्पद्रुरखिलार्थदः ;
क्रियते केशवेनायं नामप्रकृतिबोधनः ॥ ३ ॥
रूपांकत्या साहचर्याद्वा विशेषविधितः क्वचित् ;
स्त्रीपुंक्लीबप्रकृतयो ज्ञेयास्तत्र स्त्रियां स्त्रियः ॥ ४ ॥
स्त्रीपुंसि नानादिपुमान् पुंक्लीबे पणनपुंसकम् ;
युग्मं द्व्यर्थास्त्रिप्रकृतौ त्रिषु शेषार्थवाचकम् ॥ ५ ॥
निषेधे त्वादिमग्राहि स्वार्थानामंतगामिनाम् ;
अथारंभेऽथ पर्यायपरिवृत्तिप्रसंगतः ॥ ६ ॥
प्रत्ययार्थैः प्रकृतयस्तदुत्पत्तिप्रसंगतः ;
पर्यायिपदमारभ्य ज्ञेयं नामात्र सर्वतः ॥ ७ ॥
समस्तपदपर्यायपरिवर्तनमत्र तु ;
आलंकारिकसिद्धांतसह्यत्वेऽपि विलोक्यताम् ॥ ८ ॥
येषां नातिप्रसिद्धानां शब्दानामिह संग्रहः ;
तेषां महाकविग्रंथैः संवादो नु विधीयताम् ॥ ९ ॥

× × ×

विनायकः पृश्निशृंगो गास्त्रिधातुश्च तुंदिलः ;
द्वैमातुरः स्याद्धेरंबो विघ्नो लंबोदरार्थकः ॥ १० ॥
एकार्थाद्रदपर्याय ईशार्थो गणविघ्नयोः ;
मूषवाहनपर्यायो हस्तिनोर्थान्मुखार्थिकः ॥ ११ ॥
अपि वल्लभपर्यायः सिंदूरमोदकार्थयोः ;
वक्त्रपर्यायशुंडार्थः षण्मुखार्थाग्रजार्थकः ॥ १२ ॥
वक्त्रार्थात्पादभुजयोः पर्यायश्च सदामदः ;
शिवपर्यायपुत्रार्थश्चतुःपंचभुजार्थकः ॥ १३ ॥
स्त्रियां गौर्धरणी धात्री भूर्धरेडावनी स्थिरा ;
धरित्री भूतधात्र्युर्वी क्षमावनिर्ज्या मही क्षमा ॥ १४ ॥
धरणी काश्यपी राकुर्मेदिनी वसुधा पुनः ;
रत्नपर्यायगर्भार्थाऽचलानंतापि च क्षितिः ॥ १५ ॥
विश्वंभराद्या जगती गोत्रा पृथ्वी रसा पुनः ;
क्षोणी सर्वंसहा क्षोणिः कुंभिन्यपि च निर्ऋतिः ॥ १६ ॥
वसुंधरा वसुमती ग्मा ज्मा भूमिश्च माधवी ;
स्त्रियां पूषा क्रोडकांता पृथिवी महिरित्यपि ॥ १७ ॥
हाहादितिर्निश्चला स्यादब्जिपर्यायसूरपि ;
अब्धिपर्यायवस्त्रार्था श्यामा भूतार्थमातृका ॥ १८ ॥
भूरलिंगं च पृथिवी भूमी स्याद्वसुधारिणी ;
शैलाधारा गंधमाता सुधा विश्वा च गह्वरी ॥ १९ ॥
स्यादिला पर्वतार्थेभ्यः कीलार्था गातुरित्यपि ;
उर्बरा सर्वसस्याढ्या मृदा मृन्मृत्तिकासमा ॥ २० ॥
मृत्स्ना मृत्सा प्रशस्ता स्यात्पुंस्युषः क्षारमृत्तिका ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्र्युषाप्यथ भुवः त्वांतमव्ययं द्यौः दिवौ स्त्रियौ ॥ २१ ॥
पुंस्याकाशः क्लीवपुंसो विहायाः पवनभोंबरम् ;
पुष्करव्योमगगनमनंतं खं दिवं वियत् ॥ २२ ॥
अंतरित्तं चांतरीत्तं स्याद्विष्णवर्थपदार्थकम् ;
देवपत्नीषु वाय्वर्कचंद्रनक्षत्रयोगिनाम् ॥ २३ ॥
पर्यायान्मार्गपर्याया दिगवस्थानामित्यपि ;
सुखपर्यायलोकार्थो नाकः स्वर्गः स्वरव्ययम् ॥ २४ ॥
देवपर्यायसद्मार्थं द्योदिवौ द्वे स्त्रियाविमे ;
त्रिदिवेपि च मेर्वर्थाच्छृंगार्थं षट्त्रिविष्टपम् ॥ २५ ॥
स्त्रियां बृहत्यौ रोदस्यौ बृहती रोदसी च ते ;
धृतवत्यौ च रोधस्यावपारं रोधसी अपि ॥ २६ ॥
द्यावाभूमी धृतवती द्यावापृथिवी इत्यपि ;
दिवस्पृथिव्यौ च द्यावापृथिव्यावेकवाक्यतः ॥ २७ ॥
स्यात्स्त्रियां जगती क्लीवे जगद्विष्टपपिष्टपौ ;
अस्त्रियौ भुवनं क्लीवे लोकः स्यात्पुंसि चाप्यथ ॥ २८ ॥
कल्पद्रौ केशवकृते भूमिस्कंधे शुभोत्तरे ;
इत्ययं प्रथमो वृत्तः कल्पद्रोरंकुरोद्गमः ॥ २९ ॥
भूर्भुवः स्वरंकुरोद्भेदः ।

× × ×

नीवृज्जनपदो जानपदश्च विषमः पुमान् ;
देशः प्रदेशो स्त्री राष्ट्रं स्त्री स्थितिश्चावक शकः ॥ ३० ॥
पदोपवर्तने स्थानं षडयं त्रिविधः क्रमात् ;
नानाद्रुमलतावीरुन्निर्झरप्रांतशीतलैः ॥ ३१ ॥
सुमृगैः कुररार्द्यैश्च पक्षिव्रातसमन्वितैः ;
वनैर्व्याप्तं ताम्रभुवं सस्यैर्व्रीहियवादिभिः ॥ ३२ ॥
क्लीवेनूपं पुंसि कच्छः स्यादथास्य विपर्ययैः ;
नैवरल्पतृणैर्व्याप्ता धूसरा भूः फलाधिका ॥ ३३ ॥
यत्र प्रदीप्तार्ककैर्गावोजा भूरिदुग्धदाः ;
नीरुजः प्राणिनः कूपजलपाः जांगलः स च ॥ ३४ ॥
यत्र युक्तं द्वयोर्लक्ष्म गोधूमचणकावृतम् ;
यावनालामाषयवैर्व्याप्तं साधारणं त्रिषु ॥ ३५ ॥
देशः प्राग्दक्षिणः प्राच्य उदीच्यः पश्चिमोत्तरः ;
हिमवद्विंध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ॥ ३६ ॥
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः स मध्यमः ;
प्रत्यंचोनार्यदेशः स्यान्मध्यं विंध्यहिमागयोः ॥ ३७ ॥
पूर्वपाश्चात्ययोरब्ध्योर्नदी यावच्छरावती ;
आर्यपर्यायतः स्थानमावर्तमपि वाच्यवन् ॥ ३८ ॥
स्त्रियामाचारवेदी स्यात् सर्वं [illegible]

गंगायमुनयोर्मध्यमंतर्वेदि शमस्थली ॥ ३९ ॥
ब्रह्मावर्तः सरस्वत्या दृषद्वत्यश्च मध्यभूः ;
ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पंचरामह्रदांतरा ॥ ४० ॥
धर्मक्षेत्रं विशसनं कुरुजांगलमित्यपि ;
पांडूदक्कृष्णोभूनपांडूदक्कृष्णभूमके ॥ ४१ ॥
कुमुद्वान् कुमुदप्रायो वेतस्वान्बहुवेतसः ;
नडकीयो नडप्रायः स्यान्नड्वान्नड्वलश्च सः ॥ ४२ ॥
शाद्वलः शादहरितः सजंबालोऽतिपंकिलः ;
अपि नद्यंबुवृष्ट्यंबुसंपन्नव्रीहिपालितः ॥ ४३ ॥
नदीदेवार्थय मातृकार्थकः स्यादनुक्रमात् ;
नदीवृष्ट्यंबुजैः शस्यैर्युक्तो द्वैमातृकश्च सः ॥ ४४ ॥
ऊषरस्तूषवानूषो ह्रस्वादिरपि कीर्तितः ;
स्त्री शर्करा नु वा भूम्नि देशे शार्करिलास्त्रिषु ॥ ४५ ॥
शार्करः शर्करावांश्च देशे चान्यत्र च त्रिषु ;
सिकता स्त्री बहुत्वे वा देशे सिकतिलस्त्रिषु ॥ ४६ ॥
सैकतः सिकतायां च देशे चान्यत्र च त्रिषु ;
स्त्रियां वा भूम्नि सिकता बालुका वालिकापि च ॥ ४७ ॥
पांडुभूमप्रभृतयश्चान्यालिंगाः स्थलीनता ;
सुराज्ञि देशे राजन्वान् कुराजनि तु राजवान् ॥ ४८ ॥
कुमुद्वदाद्यास्त्रिष्वेत इतः पुंभूम्नि चैकवत् ;
स्याद्वह्लिकस्तु वह्लीको वाल्हीको वाल्हिकोपि च ॥ ४९ ॥
चोलश्चोडोथ यवनो जवनः पारसीककः ;
स च पारसिकोपि स्यात् वातायुस्तु च वावकः ॥ ५० ॥
दरत्स्त्रियां च दरदा कन्यकुब्जः कुशस्थलम् ;
कन्याकुब्जः कान्यकुब्जः कोशलः कोसलोपि च ॥ ५१ ॥
तीरभुक्तिस्तीरभुक्तो विदेहो मिथिलः समाः ;
चेदिश्चैद्योडाहलस्तु डाहालो डाहलश्च सः ॥ ५२ ॥
देशे तु पुंसि काशिः स्याद्वाराणसवराणसौ ;
शुक्तिकः सुक्तिकस्तुल्यौ समौ कौंकणकोंकणौ ॥ ५३ ॥
कंपिल्लोपि च कापिल्लः कांपिल्योपि निगद्यते ;
अपि कौपिल्लकौपिल्यौ कस्मरूपस्तु कामरूः ॥ ५४ ॥
श्रीहट्टो हरिकेलिः स्याच्छ्रीहट्टापि क्वचिद्भवेत् ;
ब्राह्मं क्षात्रं च वैश्यं शौद्रं क्षेत्रं चतुर्विधम् ॥ ५५ ॥
क्षेत्रं ब्राह्मं जलकुशमृगपक्षिगणावृतम् ;
सद्वृक्षैः फलैर्युक्तं श्वेतमृत् वैधमित्यथ ॥ ५६ ॥
क्षात्रं क्रूरमृगव्यालघोषघोषिगणावृतम् ;
आरक्तभूमिकं वृक्षैः कंटकाढ्यैर्विराजितम् ॥ ५७ ॥
[illegible] चाथ वैश्यं तु निधानवत् ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धकिंनरगंधर्वदेवतौघविराजितम् ॥ ५८ ॥
कौबेरं पीतमृत्कं तदथ शौद्रं तु कृष्णमृत् ;
सर्वकर्षुकलाहानां कर्षकं बहुसस्यदम् ॥ ५९ ॥
क्रूराक्रूरमृगोपेतबर्बूरखदिरावृतम् ;
तद्भौमं स्यादथ क्षेत्रे तत्तद्वस्तूद्भवोचिते ॥ ६० ॥
गव्यं यवक्यं यवेयं शाष्टिकं त्रैहिकं च तत् ;
त्रैहेयमाडवीनं स्यादाणवं शाकशाकटम् ॥ ६१ ॥
शाकशाकटिनं तिल्यं तौलीनं मष्यमित्यपि ;
माषीनमुम्यमौमीनमौमं मौद्गीनमित्यपि ॥ ६२ ॥
मौद्गं भंग्यं च भांगीनं भांगं स्यात्कोद्रवीणकम् ;
बीजाकृतं तुप्तकृष्टं सीतं हल्यं हलेकृतम् ॥ ६३ ॥
त्रिगुणाकृतं त्रिहल्यं च त्रिसीसं द्विगुणाकृतम् ;
द्विहल्यं चैकहल्यादि ज्ञेयं शंबाकृतं च तत् ॥ ६४ ॥
द्रोणाकाढकवापादौ द्रौणिकाढकिकादिकम् ;
खारीवापे तु खारीकमस्त्रियां वप्र इत्यपि ॥ ६५ ॥
केदारश्च पुनर्वांट एषां कैदारकं गणे ;
एषूद्भूतं वस्तुजातं त्रिषु स्यादकृते खिलम् ॥ ६६ ॥
तथा चाप्रहतं क्लीबे मरुर्धन्वानुभौवरि ;
गोष्ठं गोस्थानकं क्लीबे गौष्ठीनं भूतपूर्वकम् ॥ ६७ ॥
तदाशितं गवीनं स्याद्गावो यत्राशिताः पुरा ;
कल्पद्रौ केशवकृते भूमिस्कंधप्ररोहके ॥ ६८ ॥
देशप्रकांडः प्रथमः सांगोयं सिद्धिमागतः ;

× × ×

क्लीबेतिलंबे स्थानीयं मुद्गं गोविवशः पुमान् ॥ ६९ ॥
नमंहैर्ग्रामभिश्चाणमुखं कर्वटखर्वटौ ;
अस्त्रियां नर्मवैश्चापि नर्मखैः पुरमस्त्रियाम् ॥ ७० ॥
तदर्द्धमस्त्रियां खेटस्तस्यार्द्धं पत्तनोऽस्त्रियाम् ;
तदर्द्धं निगमः पुंसि तदर्द्धं तु निवेशनम् ॥ ७१ ॥
स्त्रियां पुरी पूः पुरयः पुरं वा नगरं च वा ॥ ७२ ॥
वा मंदिरं पत्तनं स्यात्पट्टनं कटकोऽस्त्रियाम् ;
स्यादभिष्यंदि वमनमुपपर्यायतः पुरम् ॥ ७३ ॥
शाखानगरपर्यायं ग्रामः कर्षुकवासभूः ;
अथासंनिपर्युपेभ्यः परः स्याद्वसथः पुमान् ॥ ७४ ॥
अन्यं तु ग्रामपर्यायमुखपर्यायमित्यपि ;
पाठकस्तु तद्बहिः स्यादाघाटस्तु घटोवधिः ॥ ७५ ॥
अंतोवसानं स्त्री सीमा मर्यादापि च सीमनि ;
ग्रामसीमा तूपशल्यं नाकंठः कंठकश्च सः ॥ ७६ ॥
पुंसि क्लीबे तु मालः स्याद् ग्रामग्रामांतराटवी ;
पर्यंतभूः परिसरः स्यात्कर्मांतस्तु कर्मभूः ॥ ७७ ॥
आभीरपल्ली घोषः स्याद्व्रजोनीशो वनांतरा ;
वाटोल्पके तु पल्ली स्त्री पल्लिरप्यथ न स्त्रियाम् ॥ ७८ ॥
पकणः शबरावासे वेश्याजनसमाश्रये ;
वेशः पुंसि स्त्रियां वेश्याप्यथ पुंसि द्विजन्मनाम् ॥ ७९ ॥
अग्रहारोप्यथ ग्रामेल्पके ग्रामटिका स्त्रियाम् ;
एको ग्रामपतिर्यत्र सभृत्यपरिचारकः ॥ ८० ॥
कुटिका सैकभोगोसावप्यथो विपणिः स्त्रियाम् ;
पण्यवीथी च वीथ्यर्थाश्चतुर्हस्तश्च न स्त्रियाम् ॥ ८१ ॥

रामावतार पांडेय

अनहिलवाड़े के सोलंकियों का इतिहास

(वर्ष १, खंड १, संख्या ६ से सम्मिलित)

चामुंडराज



लराज के पुत्र और उत्तराधिकारी चामुंडराज के विरुद 'परम भट्टारक', 'महाराजाधिराज', और 'परमेश्वर' मिलते हैं।

जयसिंह सूरि ने अपने 'कुमारपाल-चरित' में लिखा है—"चामुंडा के वर से प्रबल होकर चामुंडराज ने मदोन्मत्त हाथी-जैसे सिंधुराज को युद्ध में मारा।" सिंधुराज मालवे के प्रसिद्ध विद्यानुरागी परमार-वंशी राजा भोज का पिता तथा मुंज (वाक्पतिराज, अमोघवर्ष) का छोटा भाई और उत्तराधिकारी था। यद्यपि

---

१. रेजे चामुंडराजोऽथ यश्चामुंडावरोद्धुरः ।
सिंधुरद्रामिवोन्मत्तं सिंधुराजं मृधेऽवधीत् ॥
(कुमारपाल-चरित, १।३१)

२. चामुंडराज के राजत्व-काल में मालवे के परमार राजा सिंधुराज के सिवा गुजरात के निकटवर्ती देशों में उक्त नाम का कोई दूसरा राजा नहीं हुआ। मालवे के राजों के शिला-लेखों तथा ऐतिहासिक पुस्तकों में उक्त घटना का उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यही है कि विशेष प्रसंग को छोड़कर ऐसी घटनाओं का उल्लेख बहुधा नहीं किया जाता। राजा युद्ध में जीतता हुआ वीर-गति पावे, या असाधारण रीति पर देह छोड़े, तो वह बात कही जाती है। परंतु जब कभी कोई राजा शत्रु के हाथ युद्ध-क्षेत्र में मारा जाता, हार जाता अथवा कैद हो जाता है, तब उसके वंश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजरात के प्राचीन इतिहास-लेखकों में से किसी अन्य ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया, तो भी इसकी सत्यता में संदेह नहीं; क्योंकि बड़नगर से मिली हुई गुजरात के सोलंकी-राजा कुमारपाल की प्रशस्ति में, जो वि० सं० १२०८, आश्विन-शुक्ल ५, गुरुवार की है, लिखा है कि "उस (मूलराज) का पुत्र, राजों का शिरोमणि चामुंडराज हुआ; जिसके मस्त हाथियों के मद-गंध की हवा के सूँघने-मात्र से, दूर से ही, मद-रहित होकर भागते हुए अपने हाथियों के साथ-ही-साथ राजा सिंधुराज इस तरह नष्ट[1] हुआ कि उसके यश की गंध तक न रही[2]"।

हेमचंद्र (हेमाचार्य) ने अपने 'द्व्याश्रय-काव्य' में लिखा है कि "चामुंडराज बड़ा गुणवान्, निश्चल वृत्तिवाला, निरंतर कीर्ति की इच्छा रखनेवाला, शत्रु-संहारक, परोपकारी, और दानी था। दानी लोग अब तक उसकी उज्ज्वल सत्कथा का स्मरण करते हैं। उसके तीन पुत्र—वल्लभराज, दुर्लभराज और नागराज—हुए। वल्लभराज ने मालवे पर चढ़ाई की। परंतु वह बीमार होकर वहीं मर गया; जिससे उसका सेनापति सैन्य के साथ लौट आया। वल्लभराज की मृत्यु से राजा (चामुंडराज) को बड़ा शोक हुआ; जिससे वह धर्मोपदेशक ऋषियों का समागम करने लगा, और दुर्लभराज को राज्य-सिंहासन पर बिठाकर, नर्मदा के तट पर, शुक्ल-तीर्थ में रहकर आत्म-ध्यान में प्रवृत्त हुआ[1]।"

हेमचंद्र ने चामुंडराज का पुत्र-शोक के कारण राज्य-छोड़ना लिखा है; परंतु 'द्व्याश्रय-काव्य' का टीकाकार अभयतिलकगणि[2] उसके विरुद्ध यह कहता है कि "चामुंडराज बड़ा कामी था, इसलिये उसकी बहन चाचिणी-देवी[3] ने

इतिहास-लेखक तो उस घटना का अपलाप या गोपन करते हैं, किंतु विपक्ष के लोग, अपने वंश का उत्कर्ष प्रकट करने के लिये, कभी-कभी, बहुत बढ़ा-चढ़ाकर, उसका उल्लेख अवश्य करते हैं।

१. मूल में पाठ 'नष्टः' है; जिसका अर्थ 'भागा' और 'मारा गया', दोनों ही हो सकते हैं। किंतु 'कुमारपाल-चरित' में 'अवधीत्' पाठ है; जिसका अर्थ 'मारा' ही होता है। अतएव बड़नगर की प्रशस्ति के 'नष्टः' शब्द का अर्थ 'मारा गया' ही समीचीन है।

२. सूनुस्तस्य बभूव भूपतिलकश्चामुंडराजाह्वयो
यद्गंधद्विपदानगंधपवनघ्राणेन दूरादपि ;
विभ्रश्यन्मदगंधभग्नकरिभिः श्रीसिंधुराजस्तथा
नष्टः क्षोणिपतिर्यथास्य यशसां गंधोपि निर्णाशितः।
(एपिग्राफ़िया इंडिका, जि० १, पृ० २९७)

इस श्लोक में 'सिंधुराजः क्षोणिपतिः' पाठ है; जिसका अर्थ 'राजा सिंधुराज' या 'सिंधुराज नाम का राजा' होता है। यदि सिंधुराज का विशेषण 'क्षोणिपतिः' न होता, तो उक्त शब्द का अर्थ 'सिंधुदेश का राजा' या 'सिंधुराज-नामक राजा' हो सकता। डॉ० बूलर ने उक्त प्रशस्ति का संपादन करते समय, भ्रम में पड़कर, सिंधुराज का अर्थ 'सिंधु (सिंध)-देश का राजा' किया, और उसके साथ 'क्षोणिपतिः (भूपति=राजा)'-शब्द का मेल न मिलता देखकर टिप्पण में 'क्षोणिपतिर्यस्य' की जगह 'क्षोणिपतेर्यस्य' पाठ सुधारकर यह अर्थ किया कि 'जिस राजा के (यश का गंध) इत्यादि'। परंतु जब मूल में प्रत्यक्ष 'क्षोणिपतिर्यस्य' पाठ है, और वह शुद्ध है, तब उसके बदलने की क्या आवश्यकता है? अतएव यह निश्चित है कि चामुंडराज के हाथ से सिंधुराज-नामक राजा ही मारा गया, सिंध-देश का राजा नहीं। यह घटना किस वर्ष में हुई, यह तो निश्चित नहीं, परंतु वि० सं० १०६६ से कुछ ही पूर्व होनी चाहिए। कारण, वि० सं० १०५० में अमितगणि ने 'सुभाषित-रत्न-संदोह' की रचना की थी; और उस समय मालवे का राजा मुंज था। उसके पीछे चार वर्ष के भीतर ही वह कल्याण के सोलंकी-राजा तैलप के हाथों परास्त हुआ, और क़ैद होकर शत्रु के यहाँ मारा गया। तैलप का देहांत वि० सं० १०५४ में हुआ। इसलिये मुंज की मृत्यु वि० सं० १०५० और १०५४ के बीच किसी वर्ष हुई होगी। मुंज के पीछे उसका छोटा भाई सिंधुराज मालवे का स्वामी हुआ। उसने भी कुछ वर्षों तक राज्य किया। चामुंडराज का देहांत वि० सं० १०६६ में हुआ। इसलिये वि० सं० १०५० के पीछे, और १०६६ के कुछ पहले, सिंधुराज का मारा जाना माना जा सकता है।

१. द्व्याश्रय-काव्य, सर्ग ७, श्लोक १-५८।

२. अभयतिलकगणि जिनेश्वर सूरि का शिष्य था। उसने वि० सं० १३१२ में हेमचंद्र के 'द्व्याश्रय-काव्य' की टीका बनाई है।

३. चाचिणी-देवी के स्थान पर वाचिणी-देवी पाठ भी हस्त-लिखित पुस्तकों में मिलता है। मेरुतुंग ने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको राज्य-सिंहासन से उतारकर उसके पुत्र वल्लभराज को गद्दी पर बिठलाया। इससे विरक्त होकर चामुंडराज काशी को चला। परंतु मार्ग में मालवे के लोगों से लुट जाने पर वह लौट आया, और अपने पुत्र वल्लभराज को मालवे के राजा को दंड देने की आज्ञा दी[२]"।

अभयतिलकगणि के इस कथन में सत्यता होने की संभावना है; क्योंकि आगे भीमदेव (प्रथम) के वृत्तांत में फ़ारसी-तवारीख़ों से उद्धृत किए जानेवाले दाबशिलीम के हाल से भी कुछ-कुछ ऐसा ही अनुमान होता है।

रत्नमालाकार लिखता है कि "चामुंडराज का शरीर पीले रंग का और कृश था। उसको खाने-पीने तथा शरीर-संस्कार में अधिक रुचि थी। उसने बाग़ में अच्छे-अच्छे वृक्ष लगाए तथा वापी और तालाब बनवाए थे। उसका सुयश उसके पिता से अधिक बढ़ा। यवनों के सिवा उसका कोई शत्रु न था, और (उसके मरने के बाद) प्रजा में बहुत काल पर्यंत उसका स्मरण बना रहा था[३]।"

चामुंडराज ने अनहिलवाड़े में चंद्रनाथ और चाचिणेश्वर के मंदिर बनवाएँ, और वि० सं० १०५३ से १०६६ तक अनुमानतः १४ वर्ष राज्य किया।

वल्लभराज

चामुंडराज का उत्तराधिकारी, उसका ज्येष्ठ पुत्र, वल्लभराज हुआ। उसके विरुद 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'परम भट्टारक[१]', 'राजमदनशंकर[२]', और 'जगज्झंपन[३]' (जगत्कंपन) मिलते हैं।

चामुंडराज के राज्य-च्युत होने अथवा राज्य छोड़ने पर वल्लभराज ने, राज्य-सिंहासन पर बैठते ही, अपने पिता के अपमान का बदला लेने की इच्छा से, मालवे पर चढ़ाई कर दी। किंतु धारा-नगरी को घेरते समय, शीतला की बीमारी से, उसका देहांत हो गया[४]। इस चढ़ाई का उल्लेख 'सुकृत-संकीर्तन' और 'कीर्ति-कौमुदी'

'प्रबंध-चिंतामणि'-पुस्तक में लिखा है कि "चामुंडराज ने श्री-पत्तन (पाटण, अनहिलवाड़ा) में चाचिणेश्वर का मंदिर बनवाया था।" अतएव चाचिणी-देवी नाम ही ठीक होना चाहिए।

१. फ़ार्ब्स ने अपनी 'रासमाला' में लिखा है कि "एक समय चामुंडराज ने काम-वश होकर अपनी बहन चाचिणी-देवी से भोग किया। इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये वह वल्लभराज को गद्दी पर बिठलाकर काशी की यात्रा को गया।" गुजरात के इतिहास से संबंध रखनेवाली प्राचीन पुस्तकों में से किसी में भी इस घृणित कृत्य का उल्लेख नहीं मिलता। अतएव अनुमान होता है कि फ़ार्ब्स ने अभयतिलक-गणि के उस स्थल के कथन का आशय ठीक-ठीक न समझने के कारण, अथवा भ्रम से, वैसा लिख दिया होगा। संस्कृत न जानने-वाले योरपियन लेखक ऐसी भद्दी ग़लतियाँ बहुधा किया करते हैं।

२. द्वयाश्रय-काव्य, सर्ग ७, ३१वें श्लोक की टीका।

३. रत्नमाला, रत्न २, पृ० ३१।

४. "अनेन श्रीपत्तने चंद्रनाथदेवचाचिणेश्वरदेवप्रासादौ कारितौ।" (प्रबंध-चिंतामणि, पृ० ४८)

५. आचार्य मेरुतुंग ने 'प्रबंध-चिंतामणि' में लिखा है कि "चामुंडराज ने १३ वर्ष, १ मास, २४ दिन तक, और वल्लभराज ने ५ मास, २९ दिन तक, तथा दुर्लभराज ने १२ वर्ष तक राज्य किया।" (प्रबंध चिंतामणि, पृ० ४९) परंतु उसी आचार्य ने पीछे से अपनी 'विचारश्रेणी'-नामक पुस्तक में मूलराज के पीछे उसके पुत्र वल्लभराज का १४ वर्ष तक, और उसके बाद उसके भाई दुर्लभराज का १२ वर्ष तक राज्य करना लिखा है। इस विरोध का कारण लेखक के दोष अथवा भूल से चामुंडराज के स्थान पर वल्लभराज लिखा जाना अनुमान किया जा सकता है। कारण, न तो वल्लभराज मूलराज का पुत्र था, और न उसने पूरे एक वर्ष भी राज्य किया। मूलराज के पीछे चामुंडराज का राजा होना तो गुजरात के इतिहास के संबंध की सभी प्राचीन पुस्तकों तथा ताम्र-पत्रों से सिद्ध है। यदि विवाद है, तो वल्लभराज के विषय में; जिसका नाम किसी ने राजों की नामावली में दर्ज किया और किसी ने छोड़ दिया है। मूलराज का पुत्र चामुंडराज ही था। अतएव उसी का १४ वर्ष राज्य करना निश्चित है।

१. 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर' और 'परम भट्टारक', ये तीन विरुद तो इन सोलंकियों के कितने ही दान-पत्रों में मिलते हैं।

२. 'राजमदनशंकर'=राजा-रूपी कामदेव के लिये शंकर के समान। अर्थात् शत्रु राजों का नष्ट करनेवाला। यह विरुद 'प्रबंध-चिंतामणि' में मिलता है।

३. 'प्रबंध-चिंतामणि' और 'सुकृत-संकीर्तन' में 'जगज्झंपन' पाठ मिलता है; परंतु 'कीर्ति कौमुदी' में 'जगत्कंपन' है। 'जगज्झंपन' का अर्थ 'जगत् में कूद पड़नेवाला' और 'जगत्कंपन' का अर्थ 'जगत् को कंपायमान करनेवाला' है। अतएव 'जगत्कंपन'-पाठ ही ठीक प्रतीत होता है।

४. प्रबंध-चिंतामणि, पृ० ४९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि में भी मिलता है, जहाँ मालवेवालों का हार खाना या भय-भीत होना लिखा है[1]। परंतु वल्लभराज की मृत्यु होने पर उसकी सेना को लौटना पड़ा, जिससे गुजरात की सेना को विजय प्राप्त हुई हो, ऐसा नहीं पाया जाता। उस समय मालवे का राजा भोज था[2]।

छः मास राज्य कर वि० सं० १०६६ में ही वल्लभराज का परलोक-वास हो जाने से उसका छोटा भाई दुर्लभराज गुजरात का स्वामी हुआ।

दुर्लभराज

इस राजा के विरुद 'परम भट्टारक', 'महाराजाधिराज', और 'परमेश्वर' मिलते हैं।

द्व्याश्रयकार लिखता है—"दुर्लभराज के पास राजा महेंद्र की बहन दुर्लभ-देवी के स्वयंवर का निमंत्रण पहुँचा; जिससे वह अपने भाई नागराज के सहित स्वयंवर में उपस्थित हुआ। वहाँ अंगराज, काशी-नरेश, अवंतीश, चेदीश्वर, कुरु-राज, हूणाधिप, मथुरेश, विंध्य-देशाधिपति, आंध्र-नरेंद्र आदि राजे एकत्र हुए थे। परंतु दुर्लभ-देवी ने वर-माला दुर्लभराज को ही पहनाई। फिर महेंद्र ने अपनी दूसरी बहन लक्ष्मी का विवाह नागराज के साथ कर दिया। वहाँ से लौटते समय ऊपर कहे हुए राजों से युद्ध हुआ, और उसमें उन सबको परास्त कर दोनों भाई अपनी स्त्रियों सहित अपने नगर (अनहिलवाड़े) में पहुँचे[1]।"

स्वयंवर की इस कथा की सत्यता में संदेह है। अनुमान होता है कि कालिदास ने 'रघुवंश' में इंदुमती के स्वयंवर का जो वर्णन किया है, उसी का अनुकरण कर हेमचंद्र ने, अपने काव्य को मनोहर बनाने की इच्छा से, दुर्लभराज के विवाह-प्रसंग का वैसा ही वर्णन किया होगा। अंगराज आदि राजों का वहाँ उपस्थित होना और उनको जीतने का वृत्तांत कवि-कल्पना-मात्र ही है। तो भी उसमें इतनी सत्यता का होना संभव है कि दुर्लभराज का विवाह अपने पड़ोसी राजा महेंद्र की बहन से हुआ हो। महेंद्र कहाँ का राजा था, इसका स्पष्टीकरण हेमचंद्र ने नहीं किया। परंतु 'द्व्याश्रय-काव्य' का टीकाकार उसको मारवाड़ का राजा बतलाता है, और यह ठीक है। उस समय मारवाड़ में मुख्य राज्य नाडौल के चौहानों का

---

१. कच्चिन्न भंगोऽस्य भविष्यतीति
भाले लिपिं मालवभूमिभर्तुः ;
आरुह्य चूडामणिबिंबदंभा-
ल्लुलोप कोपी यदसिर्जलाढ्यः ॥ १३ ॥
(सुकृत-संकीर्तन, सर्ग २)
संभूतकंपसंपत्तेर्यदातंकेन केनचित् ;
जगाल मालवेशस्य करवालः करादपि ॥ १० ॥
(कीर्ति-कौमुदी, सर्ग २)

२. 'सुकृत-संकीर्तन' और 'कीर्ति-कौमुदी' में मालवे के राजा का नाम नहीं दिया। परंतु हमारे पास की 'कुमारपाल-चरित' की हस्त-लिखित प्रति में उसका नाम मुंज लिखा है। यथा—
तस्माद्वल्लभराजोऽभूद्यत्प्रतापातितापितः ;
मुंजोऽवंतीश्वरो धारायंत्रेऽपि न धृतिं दधौ ।
(३२ श्लो०, सर्ग १)

परंतु वल्लभराज के सिंहासन पर बैठने के पहले ही मुंज एवं उसका छोटा भाई और उत्तराधिकारी सिंधुराज, दोनों मर चुके थे। अतएव या तो उक्त पुस्तक में 'भोजोऽवंतीश्वरो' के स्थान में अशुद्ध पाठ 'मुंजोऽवंतीश्वरो' दर्ज हो गया होगा, अथवा जयसिंह सूरि ने भ्रम-पूर्ण प्रचलित जन-श्रुति पर विश्वास कर सिंधुराज के पीछे मुंज का होना मान लिया, और वल्लभराज के समय उसको मालवे का राजा लिख दिया होगा। बल्लाल पंडित के 'भोज-प्रबंध' में सिंधुराज (सिंधुल) का अपने छोटे भाई मुंज को राज्य देना और अपने बालक पुत्र भोज को उसे सौंपना लिखा है। यह इतिहास के अंधकार की दशा में लिखा गया है, और भ्रम ही है। वास्तव में मुंज के मारे जाने के बाद सिंधुराज मालवे का राजा हुआ; जिसका पुत्र भोज था। मेरा लिखा हुआ 'सोलंकियों का प्राचीन इतिहास', प्रथम भाग, पृ० ८८-८९ का टिप्पण देखो।

१. 'द्व्याश्रय-काव्य', सर्ग ७, श्लोक ६६-१४२। फ़ार्ब्स ने अपनी संपादित 'रासमाला' में लिखा है कि "दुर्लभराज ने अपनी बहन के लिये स्वयंवर का प्रबंध किया। उसमें उसकी बहन ने मारवाड़ के राजा महेंद्र को पसंद कर उससे विवाह किया।" गुजरात के प्राचीन इतिहास से संबंध रखनेवाले किसी ग्रंथ में यह कथन नहीं मिलता। अनुमान होता है कि फ़ार्ब्स ने 'द्व्याश्रय-काव्य' के (ऊपर उद्धृत किए हुए) महेंद्र की बहन के स्वयंवर के वृत्तांत को समझने में भूल की है, जैसा कि चामुंडी-देवी के संबंध में ऊपर बतलाया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। और, महेंद्र नाडौल पर चौहानों का राज्य स्थापित करनेवाले लक्ष्मण (राव लाखणसी) के छोटे पुत्र विग्रहपाल का बेटा था, ऐसा नाडौल के चौहानों के दान-पत्रों में पाया जाता है।

जयसिंह सूरि लिखता है—"न्यायी दुर्लभराज ने 'लाट' के राजा को हराकर उसकी राज्य-लक्ष्मी और पृथ्वी छीन[1] ली।" दुर्लभराज के समय लाट-देश का राजा उपर्युक्त सोलंकी बारप का पौत्र कीर्तिराज था, और उसके पीछे भी उसके पौत्र त्रिलोचनपाल तक, जिसके समय का एक दान-पत्र शक-संवत् ६४० (वि०सं०१०७५) का मिल चुका है, लाट पर बारप के वंशजों का स्वतंत्र राज्य होना निश्चित है। ऐसी दशा में यदि दुर्लभराज ने लाट के उक्त राजा को हराया हो, तो अनहिलवाड़े के राज्य से मिला हुआ लाट का कुछ उत्तरी अंश ही वह अपने अधीन कर सका होगा, न कि सारा लाट-देश।

सोमेश्वर दुर्लभराज को अपने राज्य का रक्षक, तथा पर-स्त्री और द्विज-धन की ओर दृष्टि न देनेवाला बतलाता है[2]। ऐसे ही सुकृत-संकीर्तनकार उसको न्यायी तथा पर-स्त्री-संग का विरोधी प्रकट करता है[3]। इससे उसका न्यायी, सदाचारी, धर्म-परायण और राज्य-रक्षक होना पाया जाता है।

रत्नमालाकार का कथन है कि "दुर्लभराज का क़द लंबा था। वह विरक्त, शिव-भक्त, ज्ञानवान् और गर्व-रहित था। उसको तपस्वी-संग, स्नान, दान तथा गंगा-तट से प्रीति थी, और युद्ध की लालसा न थी[1]।"

हेमचंद्र ने यह भी लिखा है कि "तत्त्वज्ञानी[2] दुर्लभराज ने एकांत-वाद[3] को अत्यंत निर्मूल ठहराकर शुद्धता ग्रहण[4] की"; अर्थात् अनेकांत-वाद (जैनियों के स्याद्वाद) को स्वीकार किया था। यदि हेमचंद्र का यह कथन धर्म-संबंधी पक्षपात से रहित हो, तो उस दुर्लभराज की जैन-धर्म की ओर भी आस्था होना मानना पड़ता है।

'प्रबंध-चिंतामणि' में लिखा है कि "दुर्लभराज अपने भाई (नागराज) के पुत्र भीम को राज्य-सिंहासन पर बिठाकर यात्रा की इच्छा से काशी को चला। मालवे में पहुँचने पर वहाँ के राजा मुंज ने उससे कहा कि 'या तो छत्र-चामरादि राज-चिह्न छोड़कर यात्री के वेष में जाओ, या मुझसे युद्ध करो।' इस प्रकार धर्म-कार्य में विघ्न पड़ते देखकर उसने सारा हाल भीम को कहला भेजा, और यात्री के वेष से तीर्थ में पहुँचकर पर-लोक-साधन किया। उसी समय से मालवे और गुजरात के राजों के बीच शत्रुता की जड़ जमी[5]।" मेरुतुंग का यह सारा कथन भ्रम-पूर्ण है। कारण, एक तो द्व्याश्रय के टीकाकार ने जो बात चामुंडराज के संबंध में लिखी थी, उसी को उसने दुर्लभराज के साथ जोड़ दिया। दूसरे, दुर्लभराज के राज्य छोड़ने के समय मालवे का राजा मुंज नहीं, भोज था। दुर्लभराज का राज्यारोहण वि० सं० १०६६ में हुआ, और मुंज का देहांत वि० सं० १०५० और १०५४ के बीच हो चुका था; जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। तीसरे, भ्रम की बात यह है कि मालवे के परमारों और गुजरात के सोलंकियों के बीच वंशपरंपरा-गत वैर का प्रारंभ दुर्लभराज के समय से नहीं, चामुंडराज के समय से हो चुका था। चामुंडराज ने सिंधुराज को मारा, और मालववालों ने चामुंडराज को काशी जाते समय लूटा; अर्थात् उसके

---

१. आधाद्दुर्लभराजस्तद्राज्यं न्यायवनांबुदः ;
निर्मथ्य लाटनाथं यस्तद्रमां सद्मगां ललौ ॥३३॥
(कुमारपाल-चरित, सर्ग १)

२. श्रीमद्दुर्लभराजाख्यः सुदुर्लभयशाः परैः ॥१२॥
कालेन करवालेन भोगिनेवाभिरक्षितम् ;
निधानमिव यद्राज्यमनाहार्यं परैरभूत् ॥१३॥
सर्वथानुपभोग्येषु यस्य सौभाग्यभासिनः ;
न करः परदारेषु द्विजसारेषु चापतत् ॥१४॥
(कीर्ति-कौमुदी, सर्ग २)

३. अभूदथ न्यायपरः परस्त्री-
सुदुर्लभो दुर्लभराजराजः ;
यः कृष्णसाम्ये कथितः कवींद्रै-
र्विचिंत्य गोपीचरितं ललज्जे ॥ १५ ॥
(सुकृत-संकीर्तन, सर्ग २)

---

१. रत्नमाला, रत्न २, पृ० ३२।

२. तत्त्व-ज्ञानी=जैन-शास्त्रोक्त तत्त्वों (जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष) का ज्ञाता।

३. एकांत-वाद=एक ही निश्चयवाला मत ; अर्थात् जैनों के स्याद्वाद (अनेकांत-वाद) का विरोधी मत।

४. द्व्याश्रय-काव्य, सर्ग ७, श्लो० ६४।

५. प्रबंध-चिंतामणि, पृ० ४९-५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छत्र-चामरादि राज-चिह्न छीन लिए। वल्लभराज ने फिर मालवे पर चढ़ाई की, और वहीं उसका शरीरांत हुआ। इस प्रकार चामुंडराज के समय से इनमें वैर उत्पन्न हुआ, और वह इन दोनों राज्यों के अंत तक बना रहा; जैसा कि आगे जगह-जगह बतलाया जायगा।

हेमचंद्र ने दुर्लभराज के राज्य छोड़ने के संबंध में लिखा है कि "दुर्लभराज को तीर्थ में रहकर तप करने की इच्छा रहने के कारण उसने अपने छोटे भाई नागराज के पुत्र भीम को राज्य-सिंहासन पर बिठाना चाहा; परंतु उसने उसे स्वीकार न कर निवेदन किया कि 'आपके भाई विद्यमान हैं, अतएव मुझको राज्य-भार सौंपना अनुचित है।' इस पर राजा ने नागराज को राज्य देना चाहा; परंतु उसने भी उसे स्वीकार न किया। अंत को दुर्लभराज और नागराज, दोनों ने भीम को समझाकर राज्य-सिंहासन पर बिठाया, और उसका अभिषेक कर दिया। फिर दोनों भाइयों ने स्वर्ग का मार्ग लिया[1]।" हेमचंद्र का यह कथन कहाँ तक ठीक है, सो हम नहीं कह सकते। परंतु दुर्लभराज और नागराज, दोनों को राज्य की अनिच्छा होना, और भीम (भीमदेव) के गद्दी पर बैठते ही उनका एकसाथ ही स्वर्ग-वास होना—यह कथन ही संशय उत्पन्न कराता है। संभव है, दुर्लभराज ने अपनी इच्छा से राज्य न छोड़ा हो; किंतु भीमदेव ने उससे राज्य छीन लिया हो। ऐसा ही कितने ही विद्वानों का अनुमान है। हेमचंद्र ने तो चामुंडराज के राज्य-परित्याग के विषय में भी ऐसा ही लिखा है। परंतु द्व्याश्रय के टीकाकार के कथन से ही पाया गया कि वह राज्य-च्युत किया गया था।

दुर्लभराज ने श्रीपत्तन (पाटण, अनहिलवाड़ा) में व्ययकरण[2], हस्तिशाला, घटिकागृह[3]-सहित सप्त भूमि (सात मंज़िल)-वाला धवलगृह[4], अपने भाई के लिये मदनशंकर-प्रासाद (देवालय) और दुर्लभसर-नामक तालाब बनवाया था।

१. द्व्याश्रय-काव्य, सर्ग ८, श्लो० १५-२२।

२. व्ययकरण=दान-शाला।

३. घटिका-गृह=वह भवन या स्थान, जहाँ घड़ी बजा करे।

४. धवलगृह=उक्त नाम का भवन।

वि० सं० १०६६ से १०७८ तक दुर्लभराज ने राज्य किया।

(क्रमशः)

गौरीशंकर-हीराचंद ओझा

प्रायश्चित्त

(१)



कलकत्ते की एक तंग गली में एक मैला-सा घर है। इसकी कोठरियों में दो-तीन ग़रीब क्लर्क रहते हैं। दिन-भर अपने-अपने दफ़्तर में काम करके शाम को किसी हिंदू-होटल में भात और 'झोल' से अपनी भूख मिटाकर सस्ती बीड़ी पीते हुए ये अपनी कोठरी में पधारते, बरामदे में बैठकर बात-चीत करते या ताश खेलते हुए अपना मन बहलाते और ६ बजते-बजते सो जाया करते हैं। दफ़्तर के बड़े अधिकारियों की तीव्र समालोचना या असहयोगियों के जेल जाने की ख़बर ही इनकी बात-चीत का विषय हुआ करता है। ये प्रायः सभी तरुण हैं, और इनके घर बंगाल के भिन्न-भिन्न ज़िलों में हैं। अपनी ग़रीबी के कारण ये लोग अपने बाल-बच्चों को साथ नहीं रख सकते।

आज इसी घर की एक कोठरी में एक नवागत युवक आकर ठहरा है। मालिक-मकान को उसने अपना नाम विभूतिभूषण सान्याल बतलाया है। देखने में वह भद्र-श्रेणी का मालूम होता है; पर एकांत-वास का बड़ा प्रेमी है। जब से आया है, अपनी कोठरी से बाहर नहीं निकला। हाँ, शाम को अँधेरा हो जाने पर एक घंटे के

१. मेरुतुंगाचार्य ने 'प्रबंध-चिंतामणि' में वि० सं० १०६५, चैत्र-शुक्ला ६, को दुर्लभराज का राज्याभिषेक होना तथा वि० सं० १०७७, ज्येष्ठ-सुदी १२, को उसका अपने भतीजे भीम को राज्य देना लिखा है। परंतु पीछे से उसी आचार्य ने अपनी 'विचारश्रेणी' में उसका वि० सं० १०६६ से १०७८ तक राज्य करना माना है। संवतों के विषय में 'प्रबंध-चिंतामणि' की अपेक्षा 'विचारश्रेणी' अधिक प्रामाणिक होने से ही हमने 'विचारश्रेणी' के संवत् यहाँ ग्रहण किए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये पास ही के एक होटल में खाना खाने गया था, और अब ब्राह्म-समाज की विधि के अनुसार प्रार्थना करके चुप-चाप बैठा है। उसके मुख-मंडल पर विलक्षण लालसा और उदासी झलक रही है। मालूम होता है, वह किसी आपत्ति में पड़कर हाल ही में छूटा है। रह-रहकर उसके मुँह से एक गहरी आह निकलती है। वह मन-ही-मन कह रहा है—

"प्यारी सोमू! क्या यह संभव है कि इन दो वर्षों में तुम भी अपने विभू को भूल गईं? जिस प्रकार अच्छे दिनों के झूठे मित्रों ने, झूठा प्रेम दिखलानेवाले संबंधियों ने, बल्कि कहना चाहिए कि सारे संसार ने, मेरी याद भुला दी, उसी प्रकार क्या तुम्हारे कोमल हृदय-पटल से तुम्हारे परम प्रिय विभू की प्रतिमा भी तिरोहित हो गई? क्या यह आपत्ति-ग्रस्त विभू अब तुम्हारा वैसा ही आराध्य-देव, हृदयेश्वर नहीं रहा, जैसा तुम कहा करती थीं? रे क्षुद्र मन! तू ऐसा संदेह क्यों करता है? सावित्री को ऐसा घोर कलंक क्यों लगाता है? यह वही भारतीय रमणी है, जिसने तेरे जेल जाने तक तुझे निरपराध ही समझा, और अंतिम भेंट के समय तक यही कहा कि प्यारे विभू, तुम्हें यह जो कष्ट मिल रहा है, सो किसी दूसरे अपराधी के दुष्कर्म का प्रायश्चित्त है, जो तुम करनेवाले हो। यह तुम्हारी परीक्षा-मात्र है। साहस मत छोड़ना। एक दिन आवेगा, जब सच्चा चोर पकड़ा जायगा। इस कष्ट-रूपी अग्नि में संतप्त होकर तुम्हारा स्वर्ण-सा चरित्र अधिक कांतिमय देख पड़ने लगेगा। हम दोनों के परम सुख का समय फिर आवेगा, अवश्य आवेगा। जब तुम निर्दोष हो, तो क्या न्याय-मूर्ति भगवान् तुमको भूल सकते हैं? यदि तुमने यह अपराध किया होता, बैंक के दस हज़ार रुपए चुराकर जाली काग़ज़ बनाए होते, तो अवश्य ही बड़े दुःख की बात थी; पर जब तुम्हारा अंतरात्मा तुम्हें निर्दोष मान रहा है, और मुझे तुम्हारी सच्चरित्रता में अटल विश्वास है, तो इस दो वर्ष के विछोह से इतना क्यों घबराते हो?"

"आहा! उस समय सोमू के इन अमृत-रूपी वचनों ने मेरे मुरझाए हुए हृदय को क्षण-भर के लिये कैसा हरा-भरा कर दिया था! उसने जब कहा कि मैं समय-समय पर आकर तुम्हें देख जाया करूँगी, तब तो मैंने ही अपनी शपथ देकर उसे रोका था; क्योंकि मैं जानता था कि इस क्षणिक सम्मिलन से जो सुख होगा, उसकी अपेक्षा वियोग-जनित दुःख कई दिनों के लिये असह्य हो जायगा। उसी के अटल विश्वास को देखकर मैंने ये दो वर्ष व्यतीत किए। पर समझ में नहीं आता कि मेरे छूटने पर वह मुझसे क्यों नहीं मिली? क्या संभव है कि वह छूटने की तिथि भूल गई हो? कदापि नहीं। जिस तरह मैं दिन गिनता रहा, उसी तरह वह भी गिनती रही होगी। फिर क्या बात है, जो ऐसे समय जेल के फाटक पर ही उसके दर्शन नहीं हुए? मैं आज तीन दिन से बराबर उसकी खोज कर रहा हूँ; पर कहीं उसका पता नहीं। रे पापी मन, ऐसा संदेह क्यों करता है? इस जन्म में मेरी सोमलता अविश्वासिनी नहीं बनेगी। वह दूसरे को पति स्वीकार कर इस अभागे को दुःख-सागर में न डुबावेगी। मेरा मन कहता है कि इसका भी कोई कारण है, जो वह मुझसे नहीं मिली। प्रेम के मार्ग में काँटे कब नहीं बोए गए? पर सच्चे प्रेमी उनकी पर्वा कब करते हैं।—जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलै न कछु संदेहू।"

ऐसा सोच-विचार करते-करते बहुत रात बीत गई। पास के किसी घर से टन-टन शब्द सुनाई दिया। दो बजे जानकर विभूति बाबू ज़मीन पर कंबल बिछाकर और कपड़ों का तकिया बनाकर सो रहे। सोते में भी उन्हें सोमलता के विषय में विचित्र-विचित्र स्वप्न दिखाई पड़ने लगे। कभी देखते हैं, वह एक अथाह गहरी नदी के उस पार खड़ी उनका नाम ले-लेकर पुकार रही है। कभी देखते हैं, एक राक्षस वन में उसका मार्ग रोके खड़ा हुआ है, और कहता है कि उस पापी विभूति को भूल जा, और वह कहती है कि बहुत करोगे, मार डालोगे; पर यह नहीं होने का। उसे भूलना मेरी शक्ति के बाहर है।

(२)

ऐसा स्वप्न देखते-देखते विभूति बाबू बहुत घबरा उठे। उस राक्षस का चेहरा तो वह न देख सके, पर उन्हें निश्चय हो गया कि वह जान-पहचान का मनुष्य है। इसी घबराहट में आँख खुल गई, तो देखते क्या हैं कि उनका पुराना मित्र त्रिभुवन भट्टाचार्य उनके समीप बैठा उनका माथा पोंछ रहा है। ये दोनों एक ही बैंक में बाबू थे, और दफ़्तर में पास-ही-पास बैठते थे। इन दोनों के बीच बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहरी मित्रता थी। विभूति पर आपत्ति आने के समय त्रिभुवन बाबू ने बड़ी समवेदना दिखाई थी। उसी समय से सोमलता भी उन्हें अपना हित-चिंतक समझने लगी थी।

निदान कुछ सेकिंडों तक विभूति बाबू उनके मुख की ओर एकटक देखते रहे। त्रिभुवन उनसे न-जाने क्यों नज़र न मिला सके, और आँखें नीची किए हुए बोले— भाई विभूति, बहुत अच्छा हुआ कि तुम जीते-जागते उस काल-कोठरी से निकल आए। सच मानो, मेरे ये दो वर्ष तुम्हारी ही चिंता में बीते हैं। तुमने सोचा होगा कि मैं तुमको भूल गया, इसी से न तो पत्र लिखता और न कभी मुलाक़ात को आता हूँ। पर, सच मानो, मैंने यही ठीक समझा कि बार-बार जाकर तुमको आपत्ति की याद न दिलाऊँ, नहीं तो सिवा दुःख के और क्या हो सकता था? तुम मुझसे किसी का हाल पूछते और मैं सच-सच कह देता, संसार के झूठे प्रेम का हाल बतलाता, तो तुम्हें क्या लाभ होता? 'सब ते भले हैं मूढ़, जिनहिं न व्यापत जगत-गति', अर्थात् Where ignorance is bliss, it is folly to be wise. भला ये दो वर्ष तो नया सदमा उठाने से बचे।

विभूति—क्यों भाई त्रिभुवन, साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते? बात क्या है? क्या पहेली बुझाते हो? क्या यह समय ऐसी बातों का है? शीघ्र बतलाओ, सोमलता कुशल से—

त्रिभुवन—(बात काटकर) भाई, अभी दुनिया-भर की चिंता करने का समय नहीं है। पहले अपनी चिंता करो। तुम कितने ही निरपराध क्यों न हो, पर क्या मेरे सिवा तुम्हारे गाढ़े-से-गाढ़े मित्र भी इस बात पर विश्वास करेंगे कि तुम निर्दोष हो? यार, दुनिया बावली होती है, ख़ासी भेड़ियाधसान! एक सियार ने हुआ-हुआ किया कि और सब उसका अनुकरण करने लगते हैं। कोई सोचता-समझता नहीं कि अमुक पुरुष से ऐसा काम कैसे हो सका होगा। बस, जिसने जो कहा, उसी पर विश्वास कर लिया। ऐसे मौक़ों पर शत्रुओं की बन पड़ती है। वे घर-घर जाकर धज्जी का साँप बनाते हैं। फिर तुमको तो अदालत से दंड मिला है। काग़ज़ात से, गवाहों के इज़हारों से, सब तरह से, तुम अपराधी साबित हुए हो। ऐसी स्थिति में कैसे विश्वास दिला सकते हो कि तुम निर्दोष हो?

विभूति—(कुछ क्रोध से) क्या तुम भी मानते हो कि मैंने अपराध किया है, बैंक के दस हज़ार रुपए उड़ा दिए हैं? क्या सोमलता भी ऐसा मानती है?

त्रिभुवन—भाई, मेरी बात और है! मैं तुम्हें बचपन से जानता हूँ। हम दोनों लँगोटिया यार रहे हैं। मेरी बात छोड़ो। पर मेरा विश्वास करना या न करना तुम्हारे किस काम का? मैं विश्वास न करता, तो तुम्हारे पास आता ही क्यों? जानते हो, आज तीन दिनों से तुम्हारा पता लगाते-लगाते मैंने ज़मीन और आसमान एक कर डाले हैं। आज जाकर, पुलिस की मुट्ठी गरम करने पर, पता लगा है।

विभूति—तुम सोमलता का हाल क्यों नहीं बतलाते? देखो भाई, मैं बहुत व्याकुल हो रहा हूँ। पहले उसका हाल और पता बतलाओ, फिर और कुछ कहना। मैं प्रार्थना करता हूँ।

त्रिभुवन—भाई विभू, तुम्हारी यह दशा देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है। तुम पहले मेरी सब बातें सुन लो। फिर मैं उसका हाल भी बतलाऊँगा।

विभूति—तो क्या उसे कुछ हो गया है?

त्रिभुवन—नहीं-नहीं, वह बहुत अच्छी तरह है, ख़ूब सुख से है। उसकी चिंता मत करो।

विभूति—परमात्मा को धन्यवाद। अच्छा, कहो, क्या कहते हो। पर यदि सोमू का सब हाल पहले बतला देते, तो बहुत अच्छा होता। ख़ैर, कहो।

त्रिभुवन—कहना केवल इतना ही है कि यहाँ रहकर तुम कोई काम नहीं कर सकते। तुम्हें बहुत दिनों तक इस नगर में कोई काम नहीं मिलेगा। तुम भी इस बात को समझ सकते हो। भाई, ईश्वर की दया से इन दो वर्षों में मैं इस लायक़ हो गया हूँ कि रुपए-पैसे से अपने किसी अभागे मित्र की सहायता कर सकूँ। यदि तुम यहाँ निठल्ले बैठे रहोगे, तो भी मुझे ही सहायता करनी पड़ेगी। इसलिये मैं यही उचित समझता हूँ कि तुम, कम-से-कम कुछ वर्षों के लिये, विदेश चले जाओ। तुम्हें वहाँ बहुत काम मिलेगा; क्योंकि तुम सब तरह से योग्य हो। जब तुम्हारे पास इतना धन हो जाय कि तुम यहाँ आकर कोई बनिज कर सको, तब चले आना, और मेरे साथ रोज़गार करना।

विभूति—विदेश जाऊँ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिभुवन—हाँ, कल ही सुबह चले जाओ। यह लो, मैं हज़ार-हज़ार के दो नोट लेता आया हूँ। कल ८ बजे एक जहाज़ रंगून को जानेवाला है। उसी से जाना।

विभूति—भाई त्रिभुवन, न-जाने तुम इतनी जल्दी क्यों करते हो। मेरा पहला काम यह है कि मैं सोमलता से भेंट करूँ, और दूसरा यह कि उस पापी का पता लगाऊँ, जिसने बैंक के रुपए हज़म करके मुझ पर यह अपराध लगाया है। विना ये दो काम किए मैं कहीं नहीं जाऊँगा।

त्रिभुवन—यदि उस दुष्ट का पता लग गया, और उस पर अपराध प्रमाणित हो गया, तो फिर तुम्हारे जाने की ज़रूरत ही क्या होगी? पर, जानते हो यह काम कितना कठिन है, और इसके करने में कितना समय लगेगा? शायद बरसों लग जायँ, तो भी सफलता न मिले। और, सोमलता से भेंट? सो वह न हो, यही अच्छा। अपने कोमल हृदय को विदीर्ण क्यों करना चाहते हो? स्त्रियों का कुछ ठिकाना नहीं! 'आँखों देखे चेतना, मुँह देखे ब्यौहार'-वाली कहावत सोलहो आने ठीक है।

विभूति—ख़बरदार, तुम मेरे पुराने मित्र हो सही, पर तुम्हारे मुँह से भी मैं सोमू की बुराई नहीं सुन सकता। वह मुझे धोखा कभी नहीं दे सकती।

त्रिभुवन—अच्छा तो तुम जानो। मगर सोचो तो सही, यदि वह अब भी तुम्हें चाहती होती, तो क्या तुम्हारे छूटने पर चार दिनों तक तुम्हारे पास न पहुँचती? इसी से समझ लो।

विभूति—पता न लगा होगा।

त्रिभुवन—पता लगावे, तब तो लगे। वह इस बात से डर रही है कि कहीं भेंट हो जाने से तुम कुछ ऐसी बेतुकी न कह बैठो कि उसके नए प्रेमी को संदेह हो जाय, और उसका सब काम मिट्टी में मिल जाय। इधर तुम भेंट-भेंट चिल्ला रहे हो। आज ही सुबह को आकर उसने मुझसे कहा कि 'यदि आपको विभूति बाबू मिलें, तो उन्हें समझा दीजिएगा कि वह मुझे भूल जायँ। मैं बड़े कमज़ोर दिल की निकली। मगर सच कहती हूँ, अब मेरे हृदय में एक दूसरे ने ही स्थान पाया है। इसलिये यदि विभूति बाबू का प्रेम मुझ पर सच्चा है, तो वह इसी समय उसे प्रमाणित करें। यदि वह मुझे बिलकुल भूल जायँगे, तो मैं समझूँगी कि वह प्रेम सच्चा था। यदि उन्होंने गड़बड़ मचाई, तो मैं जन्म-भर दुःख भोगूँगी. और इसका कारण वही होंगे।' उसने तुम्हारी दी हुई अँगूठी भी लौटा दी है। यह लो।

अँगूठी देखकर विभूति के पैरों के नीचे से मानों धरती खिसक गई। उन्हें विश्वास-सा होने लगा कि सोमलता का प्रेम भी कच्चा धागा ही निकला। इससे उनके हृदय को जो आघात पहुँचा, उससे वह व्याकुल हो उठे। उन्हें इस बात की सुध ही न रही कि मेरे समीप कोई बैठा है।

थोड़ी देर के बाद त्रिभुवन ने कहा—क्यों, अब भी मेरा कहना न मानोगे?

विभूति—अवश्य मानूँगा। पर मुझे रुपए न चाहिए। किसी जहाज़ में ख़लासी बनकर मैं केनिया चला जाऊँगा। अब मुझे सुख-दुःख, देश-विदेश, किसी से कुछ मतलब नहीं। आप जाइए, मैं कल ही चले जाने का प्रयत्न करूँगा। अब मुझे न तो किसी से भेंट करने की ज़रूरत है, और न अपने को निरपराध प्रमाणित करने की।

त्रिभुवन—ठीक है भाई, इसी से मैं यह वज्र तुम्हारे कोमल हृदय पर नहीं पटकना चाहता था। पर तुम्हारे इतना आग्रह करने पर कहना ही पड़ा। रही निरपराध होने की बात, सो यह साबित करना मेरा कर्तव्य है। भला तुम समझते हो कि तुम्हारे उज्ज्वल चरित्र में यह कलंक रहते मैं शांति से बैठूँगा? विदेश में रहने से तुम्हें यह नया दुःख भूल जायगा। इधर तुम्हारा यह दाग़ मैं धोऊँगा। मेरी बात सच मानो। क्यों, अब तो सोमलता के पीछे न पड़ोगे?

विभूति—नहीं।

त्रिभुवन—और केनिया ज़रूर जाओगे?

विभूति—जितनी जल्दी हो सकेगा।

त्रिभुवन—तो कुछ रुपए तो रख लो।

विभूति—अच्छा इस अँगूठी के दाम दे दो। २००) में हैमिल्टन की दूकान से ली थी।

त्रिभुवन—मेरे पास २००) का नोट नहीं, ५००) का है। इसे ले लो। तुमने मुझे, आपत्ति आने के कुछ पहले, ३००) शेयर ख़रीदने को दिए थे। इस तरह हिसाब ठीक हो गया। पर, भाई विदेश का मामला है, दो नोट क्यों नहीं ले लेते?

विभूति—नहीं।

त्रिभुवन—क्यों? क्या भेद-भाव मानते हो? जो मेरा सो तुम्हारा।

विभूति—ज़रूरत ही नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

विभूति बाबू के मन की दशा वह खुद ही जानते हैं, या अंतर्यामी परमात्मा। वह निराशा के गर्त में पड़े हुए मन-ही-मन सोमलता के प्रेम की लीला तथा अपने में अटल विश्वास की एक-एक बात स्मरण करके गहरी साँसें ले रहे हैं। न-जाने क्यों उनको त्रिभुवन के कथन पर विश्वास नहीं होता। अपनी दी हुई वाग्दान की मुद्रिका को वापस पाकर भी उनको वह घटना स्वप्न-सी प्रतीत होती है। वह सोचते हैं कि आश्चर्य नहीं, लोगों के दबाव डालने पर और बराबर दो वर्ष तक मेरे विरुद्ध कान भरे जाने पर उसका मन मुझसे फिर गया हो। फिर वह अपने को धिक्कारते हैं कि सोमलता के विषय में ऐसा सोचना महापाप है। दो वर्ष क्या, दो कल्प तक बहकाने पर भी वह किसी की नहीं सुननेवाली। इसमें कोई बड़ा भेद अवश्य है। ऐसा तो नहीं है कि त्रिभुवन ने ही यह जाल रचा हो। वह मुझसे विदेश जाने और सोमलता से न मिलने के लिये इतना आग्रह क्यों करता है? फिर वह इस संदेह को भी क्षुद्र समझकर अपने हृदय में स्थान नहीं देते। निदान उन्हें अंत को विश्वास-सा हो गया कि हो-न-हो, माता-पिता के समझाने, और आश्चर्य नहीं कि धमकाने, पर सोमलता ने इस कष्ट से अपने को बचाने के उद्देश्य से उन सबका कहना मानकर संबंध तोड़ दिया हो। उसने यह भी सोचा होगा कि इस दरिद्र दशा में गृहस्थी का भार मैं कैसे उठाऊँगा। उसने केवल मेरे हित के लिये अपनी छाती कड़ी करके यह सब किया होगा। ऐसा सोचते ही उनके नेत्र डबडबा आए, और वह मन-ही-मन सोमलता के इस अपूर्व त्याग की प्रशंसा करने लगे। उन्होंने सोचा, यदि एक बार भेंट हो गई होती, तो उत्तम था। पर शीघ्र ही उन्होंने इस इच्छा को भी हृदय से निकाल दिया। बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने यह संकल्प किया कि जब तक संसार मुझे अपराधी समझता है, तब तक मैं सोमलता से विवाह करने का विचार न करूँगा; उस बेचारी के प्रेम की इतनी कड़ी परीक्षा न लूँगा। क्या मैं उसे एक चोर की स्त्री बनाऊँगा? क्या इसी का नाम प्रेम है? यह प्रेम नहीं, निरा स्वार्थ है।—चोर? क्या मैं चोर हूँ? कदापि नहीं। पर जन-समाज तो मुझे चोर ही समझता है। अतएव मेरी पत्नी होने पर वह अपमान से नहीं बच सकती। पहले मैं अपने को निरपराध प्रमाणित करूँ; फिर यदि त्रिभुवन का कथन भ्रमात्मक निकला, तो विवाह की देखी जायगी, और यदि सत्य निकला, तो फिर इस जन्म में विवाह कहाँ।

इसी उधेड़-बुन में पड़े-पड़े विभूति ने सारा दिन व्यतीत कर दिया। उन्हें भूख-प्यास की भी सुध न रही। निदान अँधेरा होने पर वह कोठरी से बाहर निकले। होटल में जाकर कुछ खाया-पिया। फिर नगर की सड़कों पर घूमने लगे। एक नाटक-घर के समीप पहुँचने पर उन्होंने देखा कि लोग नाटक समाप्त होने पर बाहर निकल-निकलकर घर जा रहे हैं। एक मोटर के पास उन्होंने एक युवती को किसी पुरुष से बात-चीत करते देखा। उस युवती का डील-डौल देख विभूति का हृदय उछलने लगा। इतने में युवती उस पुरुष से कुछ कहकर मोटर में बैठ गई। एक क्षण के लिये उसके दिव्य मुख-मंडल पर विभूति की दृष्टि पड़ी, और वह सोम-सोम चिल्लाता हुआ उस मोटर-गाड़ी की ओर बढ़ा; पर इतने में, सड़क के मोड़ में, वह गाड़ी अदृश्य हो गई। विभूति दौड़कर मोड़ पर पहुँचे; पर गाड़ी का कहीं पता नहीं। उन्हें निश्चय हो गया कि वह युवती और कोई नहीं, मेरी हृदयेश्वरी सोमलता ही है। उनका शोक जब कुछ कम हुआ, तो उन्हें स्मरण हो आया कि वह पुरुष, जिससे वह बात कर रही थी, अवश्य ही त्रिभुवन था, जो मुझे देखते ही न-जाने किस ओर चला गया। उसने मुझे पहचाना तो अवश्य ही होगा; पर न-जाने क्यों अपने को छिपाना चाहा। तो क्या त्रिभुवन ही सोमलता का नया प्रेमी है? यह बात ध्यान में आते ही विभूति के हृदय में तरह-तरह के संदेह उठने लगे।

विभूति नीचा सिर किए हुए, इन्हीं संदेहों का शिकार बने हुए, अपने डेरे की ओर धीरे-धीरे चलने लगे। वह विचारों में ऐसे मग्न थे कि मोटर आदि गाड़ियों से बचकर चलने की उन्हें सुध तक न थी। अपने भाग्य से ही वह सकुशल अपने घर तक पहुँचे। वहाँ अपनी कोठरी के भीतर का दृश्य देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने देखा, जँगले पर एक मोमबत्ती जल रही है। उसी के समीप एक तमंचा रक्खा हुआ है। एक आदमी दरवाज़े की ओर पीठ किए बैठा कुछ बड़बड़ा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह बड़बड़ानेवाला अपने आपे में नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभूति कान लगाकर सुनने लगा कि वह क्या कह रहा है । त्रिभुवन का नाम सुनकर विभूति चौंक पड़ा । पागल कह रहा था—"इस विश्वास-घाती बगला-भगत त्रिभुवन का रक्त जब तक मेरी गोलियाँ न पी लेंगी, तब तक मुझे शांति कहाँ । आज ही रात को मैं त्रिभुवन बाबू को यम-सदन का अतिथि बनाऊँगा, अवश्य बनाऊँगा । अब मैं अकेला ही इस काम को करूँगा । पता लगा था कि उस नर-पिशाच का शिकार विभूति जेल से छूटकर इसी कोठरी में आकर ठहरा है । इसी से मैं शाम से यहाँ बैठा हूँ । पर वह अभी तक लौटा ही नहीं । न सही, मैं उस दुष्ट को उचित दंड देने के लिये अकेला ही बहुत हूँ । पर अब विभूति को निरपराध कौन प्रमाणित करेगा ? मैं एक गोली से उसका और दूसरी से अपना सिर उड़ा दूँगा । फिर विभूति को कौन बतलावेगा कि बैंक की चोरी इसी पाखंडी त्रिभुवन ने मेरी सहायता से की, और उस बेचारे निरपराध को फँसाया । ऐसा करने से एक तो उसके हाथ रुपया लगा, दूसरे सोमलता को अकेली पाकर अपने वश में करने का मौक़ा मिला । वह कैसा नीच है । अपनी प्रेयसी की अँगूठी चुराने में भी उसे शरम न आई । या शायद विभूति को धोका देने के लिये उसने अँगूठी चुराई हो । मुझे भी उसने कैसा उल्लू बनाया ! मैं भी मारे डर के पागल बन गया हूँ । उसने मेरा और न-जाने कितनों का सर्वनाश कर डाला । पर वाह री सोमलता, तू ही उसके झाँसे में अब तक न आई । वाह, मैं भी कैसा उल्लू हूँ । इतना बड़ा काम करना है, २० मील जाना है, पर मैं बैठा-बैठा इस कोठरी में बड़बड़ा रहा हूँ । ना भैया, इस तरह काम न होगा ।"

इतना कह उस पागल ने तमंचा पाकेट में रख लिया, और जँगला फाँदकर बाहर जा पहुँचा । विभूति को उसने देखा ही नहीं । यहाँ विभूति काठ के मारे-से खड़े रह गए । अकस्मात् एक क्षण में उनके सब संदेह दूर हो गए । इस पागल को वह ख़ूब पहचानते थे । बैंक में यह उनके साथ काम करता था । विभूति ने देखा, अपराधी भी मालूम हो गया, और सोमलता के विषय में त्रिभुवन ने जो कहा था, वह बिलकुल असत्य निकला । वह अब भी मेरी ही बनी हुई है । यह सब सोचते ही विभूति का हृदय खिल उठा । पर उन्हें सहसा स्मरण आया कि इस पागल और त्रिभुवन के गोली खाकर मर जाने पर मेरा निर्दोष होना कैसे साबित हो सकेगा ? फिर उन्होंने सोचा कि त्रिभुवन महापापी तो अवश्य है, पर जान-बूझकर उसे इस पागल का शिकार बनने देना मानों शत्रु के साथ भयंकर बदला लेना है । यह सोचते ही विभूति भी एक दूसरे रास्ते से चोरबाग़ान की ओर दौड़े । भाग्य से एक किराए की मोटर-गाड़ी भी मिल गई । विभूति ने त्रिभुवन के बँगले की ओर ले चलने के लिये शोफ़र को आज्ञा दी । आध घंटे में गाड़ी निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गई । विभूति शीघ्र उतरे, और शोफ़र को १०) का नोट देकर बँगले में गए । द्वार खुला था । त्रिभुवन बैठकख़ाने के एक कोच पर लेटा था । विभूति को देखकर उसने कहा—अच्छे मौक़े पर पहुँचे, भाई विभूति ! क्षमा करना यार । सोमलता के प्रेम ने ही मुझे इस दशा को पहुँचाया है । यह अनुचित प्रेम था । मित्र को फँसाकर उसकी प्रियतमा को अपने वश में लाने की चेष्टा उचित नहीं कहला सकती । लोग भले ही कहें, पर यह आर्य-ध्येय नहीं है । इसी पाप का फल मुझे, इसी जन्म में, हाथो-हाथ मिल रहा है । भाई विभूति, मैं अब कुछ ही मिनटों का मेहमान हूँ । आज सोमलता ने मुझे अँगूठी चुराने के लिये बहुत धिक्कारा, और मुझे मालूम हो गया कि वह अब मेरा काला मुँह देखना न चाहेगी । जिसका प्रेमोपहार पाने की लालसा से मैंने दूसरों के गले काटकर धन बटोरना चाहा, वह उपहार तथा शेयर-बाज़ार में वह सब धन खो बैठने से मुझे अब इस कलुषित जीवन में कोई आनंद नहीं रहा । इसीलिये विष-पान करके यह जीवन-यात्रा यहीं समाप्त कर रहा हूँ । भाई, तुम्हारे साथ मैंने भयानक विश्वास-घात अवश्य किया है, पर उसका घोर "प्रायश्चित्त" भी तो कर रहा हूँ । मेज़ की उस दराज़ में जो लिफ़ाफ़ा है, उसमें तुम्हारे निरपराध होने की काग़ज़ात मिलेंगे । बस भाई, अब अधिक बोलने की शक्ति नहीं है । आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है । अंत-काल समीप है । क्षमा करो, तो संतोष से मरूँ ।

विभूति—त्रिभुवन, मैं तुम्हें सच्चे हृदय से क्षमा करता हूँ । कहो, तो डॉक्टर को ले आऊँ ।

त्रिभुवन—नहीं, मेरा हाथ पकड़े रहो, अब देर नहीं है ।

विभूति त्रिभुवन का हाथ पकड़े उसकी ओर देख रहे हैं । वह इस समय अपने मित्र के सब अपराध भूल गए हैं । मन-ही-मन सोचते हैं कि इस तरह प्रायश्चित्त करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर तो दयालु पिता इस निर्बल प्राणी के अपराध अवश्य क्षमा कर देंगे। इतने में त्रिभुवन का सारा शरीर काँप उठा, और 'सोम' कहकर उसने प्राण त्याग दिए। साथ ही धड़-से आवाज़ आई, और मृत त्रिभुवन का ब्रह्मांड गोली से विदीर्ण हो गया। धुआँ निकलते हुए तमंचे को मुँह में लेकर उस पागल ने फिर घोड़ा गिरा दिया, और तत्क्षण वह भी ढेर हो गया।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी

मयंक-महिमा

(गत आषाढ़ की संख्या से आगे)

कहीं लता-मंदिर सुंदर में बैठा बीन बजाता था;
लाल सारदा, नारद की-सी रंगत मन में लाता था।
किसी कुंज में मंजु तराना तूती परी सुनाती थी;
छिपी अलग अलबेली बन मानों बायला बजाती थी।
खड़काता था चंग कहीं चंडूल लावनी-सा गाता;
सुनता था चुप-चाप चतुर चातक मयूर-सा चकराता।
गाती थी फिरकी, फुदकी, कृष्णा औ श्रीरामी मिलकर;
कोरस का रस देती वृक्ष-पुंज-रंग-स्थल में सुंदर।
कहीं मंडली भाँड़ों की अपना ही रंग जमाए थी;
रूपक सह संगीत हास्य-रस के सब साज सजाए थी।
ढोटा धौरा सुढँग नाचता, बाँकी ठुमरी गाता था;
सनद 'सनद' की लिए 'क़द्र' की मानों क़द्र कराता था।
भाव, रस-भरे करता लोचन चंचल चारु घुमा करके;
सुंदर ग्रीव सिकोड़, मरोड़, सिकुड़ इठलाता मन हरके।
देते-से करताल साथ सुर भरते थे पीछे जिसके:
नीलग्रीव, चटक, पिंडुक, चर, दारु-विदारक जो तिसके।
बने विदूषक तीतर, धनुष, बटेर, छेमकर, खूसट थे;
बक, बत्तक, महोख, टिट्टिभ, उल्लूक हँसाते चटपट थे।
इतने ही में काले सूट पहननेवालों का आया;
काकावलि का स्वाँग कि जिसने महाहास्य-रस बरसाया।
कोलाहल बहु बढ़ा कि जिसका कुछ भी वारापार नहीं;
हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए, रहे जो लोग जहीं।
इधर देखिए, तो महफ़िल में नई छटा छहराती थी;
जैसे कोई सुंदरी युवती होकर चित्त चुराती थी।
था मुजरा हो चुका कभी कल्यान, कान्हरा, विहाग का;
परज, कलिंगरा, भैरव, मालकौस आदिक सब सुराग का।
अरुन भैरवी का आरंभ हुआ था अत्र सब साज सजा;
ठाट-बाट से अपने देता था सा इंद्र-समाज लजा।
जिसमें सब संगीत-अंग एकरंग सुहाते थे भाते;
रंग-स्थल में मंगल-मय आनंद-सिंधु-से लहराते।
रंग-बिरंगी चारु चमत्कृत रुचिर तितलियों की अवली;
सजित विचित्र सुंदरी परी-पंक्ति-सी थी नाचती भली।
चित्र-लिखित-सा दर्शक-दल तन्मय-सा देखा जाता था;
अनुभव कर आनंद-ब्रह्म अपने में आप समाता था।
चहल-पहल, कलरव, कोलाहल सुनकर चित ललचाया-सा;
सबको बेसुध जान हुआ आनंद-मग्न मनभाया-सा।
धन्य सुअवसर जान क्रूर-मति, कूट नीति का अनुगामी,
पहुँचा लेकर सैन्य सुसज्जित संग सेन-भट संग्रामी।
लगा अमित उत्पात मचाने द्विज-दल को दलने-मलने;
निबल जानकर चंगुल में कस, उर विदार, शोणित चखने।
सेना जो बहरी, जुर्रे, शिकरे, सैनिक मिल टूट पड़े;
डपट-डपटकर दीन खगों को निपट निडर, निर्दयी बड़े,
पकड़ मारने नोच-नोचकर लगे चाभने चाव-भरे।
देख दुर्दशा यह विहंग-कुल सब व्याकुल हो उठे, डरे।
बेचारे बहुतेरे दब, छिप गए, शेष उड़ भाग चले;
चिल्लाते, निज प्राण बचाते हुए वहाँ भय देख टले।
चला वेग से अनिल वहाँ से ऊब, अनीति न देख सका;
कंपित हुआ सदय तरु का दल हिला-हिलाकर कर दल का।
उठकर मैं भी चला वहाँ से, सीधा रमने में आया;
देखा, तो सब ओर अनोखा फीकापन फैला पाया।

(अपूर्ण)

(स्वर्गीय) उपाध्याय श्रीबदरीनारायण
चौधरी "प्रेमघन"

अमेरिका का वेल-विश्वविद्यालय

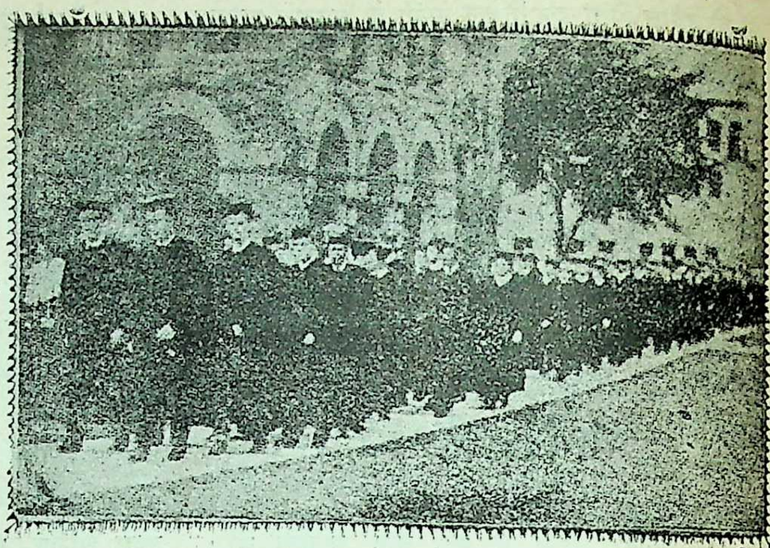


हेवन्' (New Haven) को अमेरिका के कानेक्टिकट-प्रदेश का प्रधान नगर कहना चाहिए। इसी शहर में प्रसिद्ध वेल-विश्वविद्यालय और कानेक्टिकट का कृषि-परीक्षा-क्षेत्र है। मैं न्यूयार्क के सिराक्युस-विश्वविद्यालय की सैर करके सीधा न्यू हेवन् पहुँचा। सिराक्युस-विश्वविद्यालय

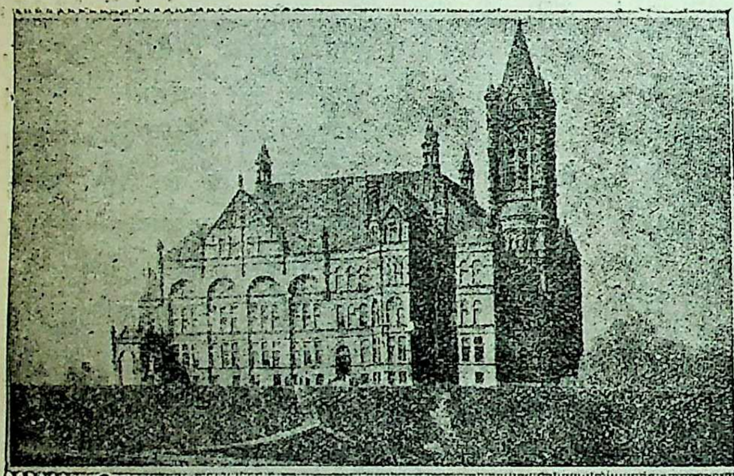
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कला-शिक्षा-विभाग बहुत उन्नत है। उसकी इमारत भी दर्शनीय है। खैर, न्यू हेवन् में पहुँचने के कुछ दिन बाद ही मुझे एक परिचित छात्र बंधु के पास जाना पड़ा। सात-आठ दिन बाद ही उसे येल-विश्वविद्यालय की पी-एच्० डी०-परीक्षा देनी थी। लौकिकता कहो चाहे शिष्टाचार, उसी के अनुसार उसने एक पात्र में मदिरा भरकर मुझे दी। मगर मैंने धन्यवाद-सहित उसे ग्रहण करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। वह मेरा मित्र विदेशी था। मैंने उससे कहा कि भारत के छात्र-समाज में मद्य-पान का चलन बिलकुल ही नहीं है, यह कहना कुछ झूठ न होगा। मित्र ने विस्मय-पूर्ण दृष्टि मेरे मुख पर स्थापित करके कहा—मेरी समझ में ही नहीं आता कि भारत-जैसे गरम देश में तुम लोग मदिरा पिए बिना कैसे रह सकते हो? हम लोग इस देश में मदिरा पीकर गरमियों में ठंडे और जाड़ों में गरम होते हैं। अंत को लाचार होकर उस बेचारे ने आप ही मेरे स्वास्थ्य के लिये एक प्याला और पी लिया—मुझसे फिर पीने का अनुरोध नहीं किया। परंतु उसके मन में यह विश्वास जम गया कि भारत एक विचित्र देश है, और वहाँ की सभी बातें अद्भुत हैं।

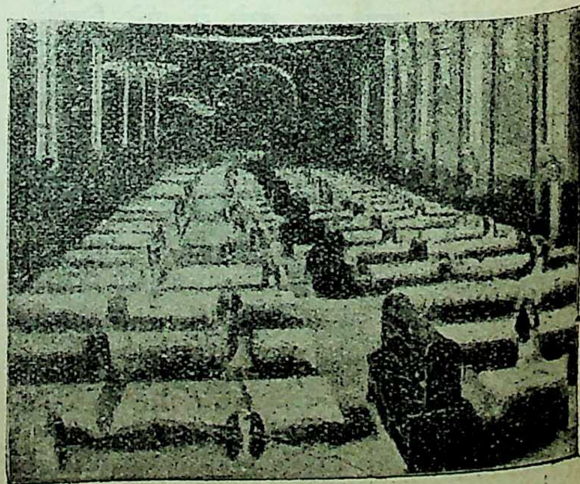


डिगरी पाए हुए छात्रों का जलूस, कार्नेल-विश्वविद्यालय



कला-शिक्षागार सिराक्युस-विश्वविद्यालय, न्यूयार्क

येल-ग्रेजुएट-क्लब में मुझे और एक दिन इससे भी अधिक मुशकिल में पड़ना पड़ा। इस क्लब के सभी सभ्य ग्रेजुएट हैं, और उनमें प्रायः इस विश्वविद्यालय के अध्यापक या उपाधिधारी भूतपूर्व तथा वर्तमान छात्र ही हैं। कृषि-परीक्षा-क्षेत्र के अध्यक्ष डॉक्टर जेंकिंस (Dr. Jenkins) ने एक दिन शाम को मुझे साथ ले जाकर इस क्लब के मेंबरों से मेरा परिचय करा दिया। उन लोगों के साथ भारत के बारे में, भारत के विभिन्न विषयों पर, बात-चीत होने लगी। डॉक्टर जेंकिंस ने पूछा—आपके लिये पीने को क्या मँगाया जाय? मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। मुझे ख़बर



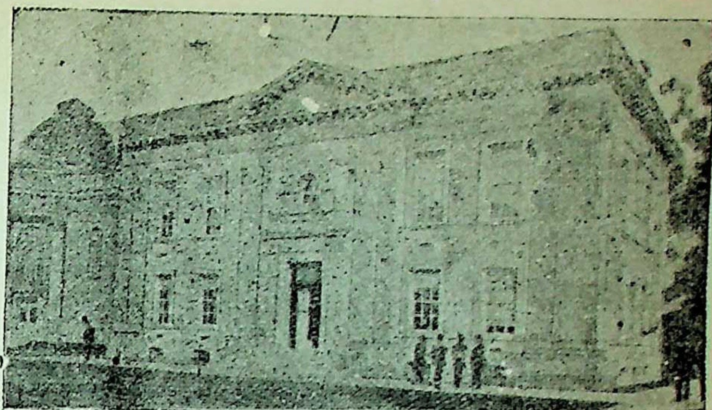
येल-विश्वविद्यालय का भोजन-भवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न थीं कि वहाँ नशीले पेय पदार्थों के अलावा सोडा, लेमोनेड वग़ैरह का भी प्रबंध है या नहीं। कुछ न पीने की इच्छा प्रकट करना भी अशिष्टता में शुमार किया जाता। मुझे दुवधा में पड़ा देखकर डॉक्टर जेंकिंस ने ऐसे कुछ पेय पदार्थों के नाम गिनाए, जो नशीले न थे। उनमें जिंजरेड का भी नाम सुन पड़ा। मुझे बड़ी खुशी हुई। डूब रहा आदमी जैसे हाथ के पास जो कुछ पाता है, वही पकड़कर बचाव की कोशिश करता है, वैसे ही मैंने भी जिंजरेड के लिये ऐसा आग्रह प्रकट किया, मानो वही मेरा नित्य का पेय पदार्थ है। परंतु नसीबराम ने फिर भी धोखा ही दिया। बोतल देखी, तो उसके लेबिल पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"जिंजरेल।" मुझे मालूम था कि एल (Ale) एक तरह की शराब है। इसी से समझ लिया कि वह भी निर्दोष पदार्थ नहीं है। मैंने उसे छुआ ही नहीं। जेंकिंस साहब ने दो-एक बार मुझसे पीने के लिये अनुरोध भी किया, लेकिन मैंने उसे बात-चीत में ही टाल दिया। कुछ दिन अमेरिका में रहने पर मुझे मालूम हुआ कि Ale यद्यपि 'बियर' का ही एक भेद है, तथापि जिंजरेल और जिंजर-बियर में कोई नशे की चीज़ नहीं होती। इस प्रकार के पेय पदार्थों को फिर तो कई बार पिया, मगर उस दिन येल-ग्रेजुएट-क्लब में जो बेवकूफ़ी बन पड़ी थी, वह आज तक नहीं भूली।

उक्त क्लब में एक बात मुझे यह देख पड़ी कि अमेरिकन लोग और-और बातों में जैसे उदार हैं, वैसे ही खाने-पीने में भी। देसी-विदेसी नशीले या सादे पीने के पदार्थों को वे समान रूप से व्यवहार में लाते हैं। क्लब में देखा, सभी तरह की शराब का चलन है। एक सभ्य ने हुक्म दिया काक्टेल (Cocktail), दूसरे ने माँगा हाईबाल (Highball), तीसरे ने आर्डर दिया बियर (Beer); इस तरह हरएक आदमी अपनी रुचि के अनुसार पान करने लगा। अमेरिकनों में योरप की भिन्न-भिन्न कई जातियों के रक्त का मिश्रण है। इस सत्य का सबसे बड़ा प्रमाण क्लब आदि में सुरा-पान के संबंध में उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की रुचि ही है। फ्रेंच लोग प्रायः ख़ालिस शराब पीते हैं। जर्मन



ऊड ब्रिज हाल, येल-विश्वविद्यालय

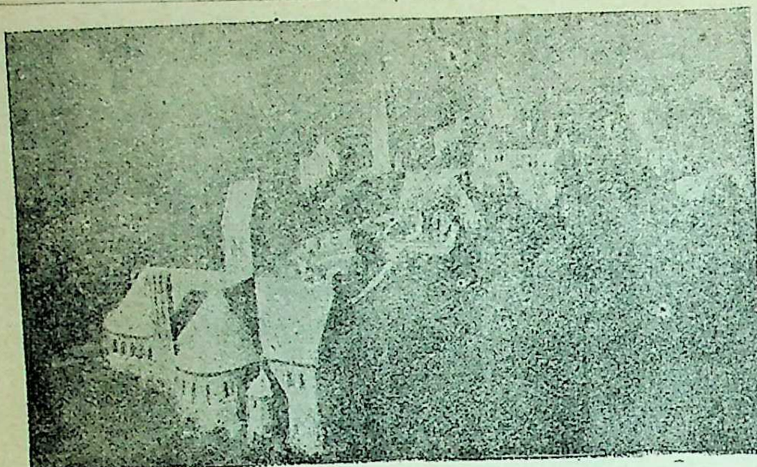
लोग बियर के प्रेमी होते हैं। अँगरेज़ लोग आधा शराब और आधा सोडा आदि मिलाकर पीना पसंद करते हैं। आयरिश लोग ह्विस्की के भक्त हैं। और, अमेरिकनों में ये सभी रुचियाँ देख पड़ती हैं। मगर यह पुरानी बात है। अब तो अमेरिका में मदिरा का प्रचार एक प्रकार से बिलकुल बंद ही हो गया है।

येल के प्रीचर एक डॉक्टर विंटन (Dr. Winton) भी वहाँ थे। उन्होंने जब देखा कि मुझे किसी नशीली चीज़ के खाने-पीने का अभ्यास नहीं है, तब कुछ लज्जित होकर कहा—हमारे देश में लोग थोड़ी-सी मदिरा अवश्य पीते हैं, पर अधिक मात्रा में पीकर मतवाले कभी नहीं बनते। यहाँ शराबी मतवाले से लोग बड़ी नफ़रत करते हैं।

अमेरिका में रहकर मुझे इसका पूरा अनुभव हुआ कि इन सज्जन का यह कथन सच था। इँगलैंड में अधिक मद्य-पान करके मतवाले होनेवालों की संख्या जितनी देख पड़ती है, उसका शतांश भी अमेरिका में नहीं नज़र आती। जो दो-चार शराबी मैंने देखे भी, वे या तो नीग्रो थे, या बहुत ही निम्न श्रेणी के गोरे। वहाँ के लोग इन इतर श्रेणी के गोरों को घृणा के साथ White Trash (गोरों का कूड़ा) कहते हैं। असल में अमेरिका का जल-वायु ही ऐसा है कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये कुछ मद्य-पान आवश्यक समझा जाता है। जाड़ों में वहाँ बड़ी ही ठंड रहती है, वैसे ही गरमियों में करारी गरमी होती है। मेरे एक दार्शनिक मित्र की सम्मति के अनुसार ऐसे अति शीतोष्ण-देश में कुछ सुरा-पान करना गरमियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

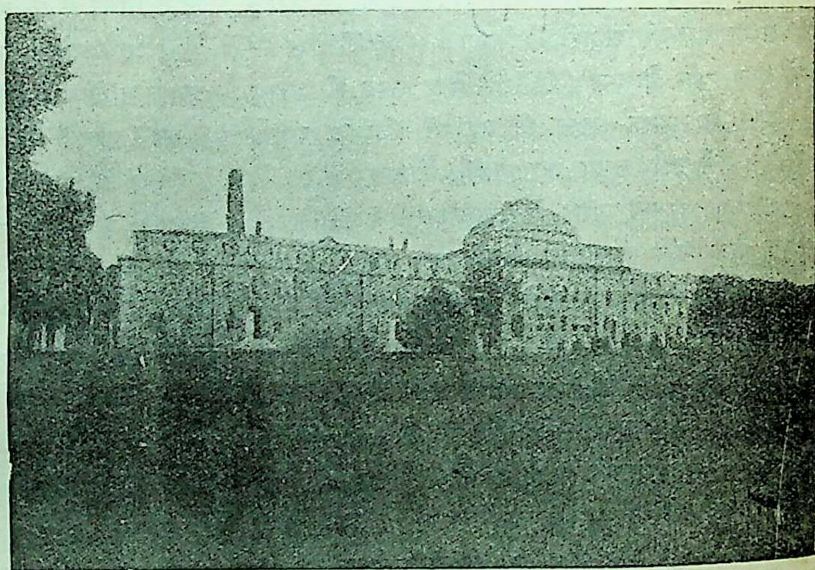


कार्नल-विश्वविद्यालय का दृश्य (उत्तरांश)

में बिजली के पंखे का और सरदियों में आग तापने का काम देता है।

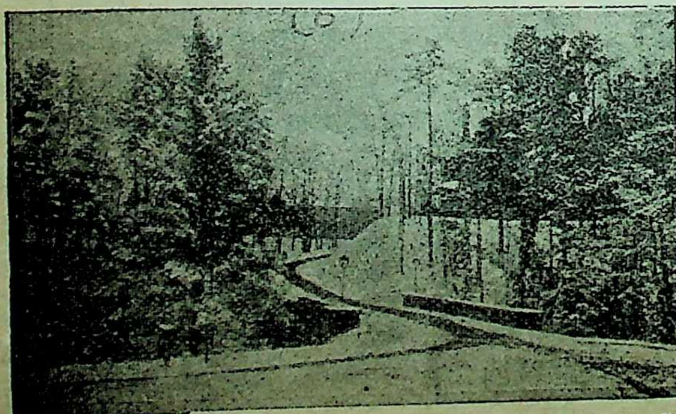
वेल-ग्रेजुएट-क्लब का प्रसंग समाप्त करने के पहले उन मेंबरों के अथाह ज्ञान के बारे में कुछ कहना ज़रूरी जान पड़ता है, जिनसे मेरा परिचय और बातचीत हुई थी। उन्होंने भारत के संबंध में मुझसे जो तरह-तरह के प्रश्न किए, उन्हें सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे लोग हमारे देश का बहुत कुछ हाल जानते हैं। भारत-निवासी होकर भी जिन बातों की ख़बर मैं नहीं रखता, उन बातों को विदेशी होकर भी वे बहुत अच्छी तरह जानते हैं। भारत की जन-संख्या, धर्म-तत्त्व, जाति-भेद, भाषा, कृषि, शिल्प, खानें, दुर्भिक्ष आदि के संबंध में अनेक ऐसी बातें उन्होंने कहीं, जिनकी मुझे ख़बर ही न थी। वे लोग एक-एक विषय को लेकर तरह-तरह के प्रश्न करने लगे।

जो महाशय उद्भिद्-विद्या के विशेषज्ञ थे, उनकी जानकारी भारत के पेड़ों-पौदों-लताओं तक ही नहीं थी, उन्हें यह भी मालूम था कि भारत में हर साल साँप के काटने से कितने आदमी मरते हैं। रसायन-



कार्नल-विश्वविद्यालय का इंजीनियरिंग-कॉलेज

शास्त्र के विद्वान् को देखा, उन्हें भाषा-तत्त्व का भी अच्छा ज्ञान था। उन्होंने मुझसे 'हिंदुस्थान'-शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई, यह प्रश्न किया, और फिर वह आप ही कहने लगे—'स्थान'-शब्द की संस्कृत-धातु लैटिन 'स्टो' (Sto, to Stand, अर्थात् खड़े होना)-धातु के अनुरूप है। मुझे जान पड़ा, वहाँ का हरएक सभ्य जैसे ज्ञान का सागर है। तब आप ही मेरे मन में यह ख़याल पैदा हुआ कि ये लोग विदेश—भारत—के बारे में जब इतनी जानकारी रखते हैं, तो अपने देश



शीत-काल में कार्नल-विश्वविद्यालय में प्रवेश करने का मार्ग

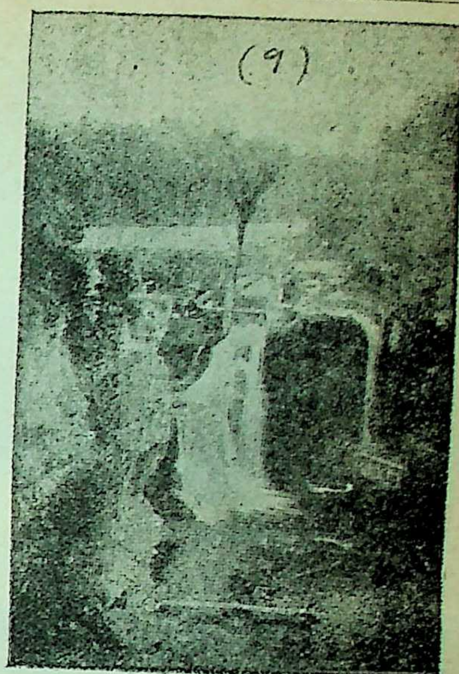
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

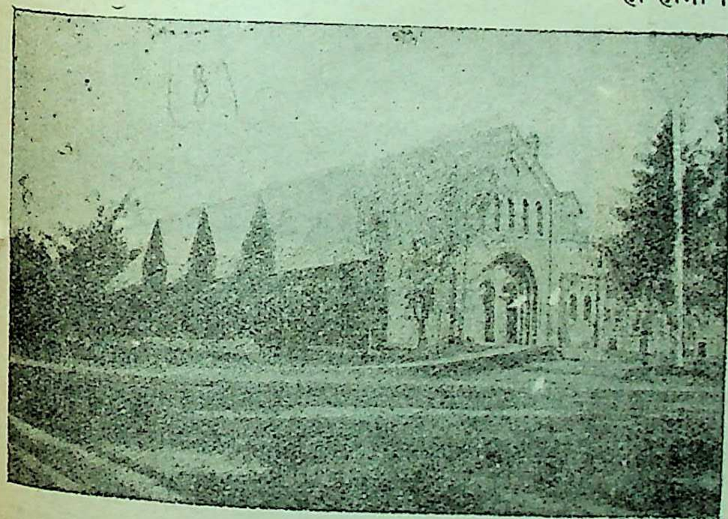
के संबंध में तो इनके ज्ञान की कोई हद ही न होगी।

मैंने दूसरे दिन सबेरे ही विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में जाकर इंसाइक्लोपीडिया तथा अन्य कई एक भारत-संबंधी पुस्तकें देखीं, और उनसे स्वदेश की अनेक ज्ञातव्य बातें नोट कर लीं; जिसमें भविष्य में कभी भारत का प्रसंग उठने पर मुझे लज्जित या कुंठित न होना पड़े।

भारत के संबंध में चर्चा चलते समय वहाँ के लोग प्रायः लार्ड कर्ज़न और उनकी पत्नी के संबंध में मुझसे पूछा करते थे। प्रश्न का रूप प्रायः यही होता था कि उक्त लाट साहब और उनकी लेडी को भारत के लोग कैसा समझते थे। मैं लाट साहब के बारे में तो गोल-मोल उत्तर दे दिया करता था, मगर उनकी लेडी साहबा की अवश्य जी खोलकर प्रशंसा करता था कि वह जैसी सुंदरी हैं, वैसी ही उनकी प्रकृति भी है—इत्यादि। सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न होते थे। एक साहब ने तो गर्व के साथ कहा—आप जानते हैं, लेडी कर्ज़न अमेरिकन महिला थीं। मैंने कहा—जी हाँ।



वेबी-झील और जल-प्रपात



कार्नेल-विश्वविद्यालय का व्यायाम-गृह

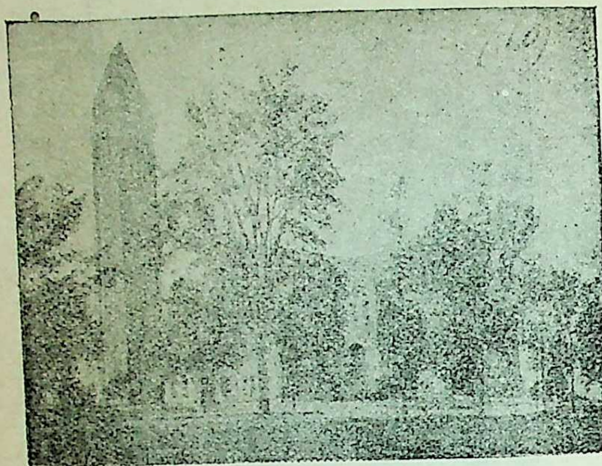
एक महाशय ने कहा—महाशय, (लार्ड कर्ज़न के समय में) भारत में जो दिल्ली-दरबार हुआ था, उसका कुछ हाल सुनाइए। उस दरबार में तो हमारे देश के भी कुछ सज्जन उपस्थित थे। मैंने दरबार की मामूली बातें कहकर इन्हें भी टाला। एक साहब ने पूछा—भारत में क्या अमेरिका के बहुत आदमी हैं? मैंने कहा—मैं ठीक संख्या तो नहीं बता सकता, मगर, हाँ, अमेरिकनों की संख्या भी यथेष्ट ही होगी।

न्यू हेवन् के यंकी (Yankee) लोग मुझसे फ़ारस के कवि उमर ख़य्याम और अँगरेज़-कवि रडियार्ड किप्लिंग (Rudyard Kipling) के बारे में भी बहुत-सी बातें पूछा करते थे। कानेक्टिकट-प्रदेश के निवासी वहाँ यंकी-नाम से ही परिचित हैं। डॉक्टर विंटन से मालूम हुआ कि यद्यपि विदेशी लोग समग्र संयुक्त-राज्य के आदमियों को यंकी ही कहते हैं, किंतु असल में केवल न्यू इँगलैंड (New England) अर्थात् मासेचूसेट्स (Massachusetts), रोड आईलैंड (Rhode Island) और कानेक्टिकट आदि कुछ प्रदेशों के निवासियों के लिये ही वहाँ इस नाम का प्रयोग होता है। उसमें भी न्यू इँगलैंड के आदमी कानेक्टिकट-प्रदेश के निवासियों के लिये ही ख़ास तौर से इस नाम का प्रयोग करते हैं। यंकी-शब्द की उत्पत्ति के संबंध में मत-भेद है। मुझे तो यह 'इँगलिश' शब्द का अपभ्रंश ही जान पड़ता है। गोरे लोगों ने जब अमेरिका में जाकर उपनिवेश की स्थापना की थी, तब

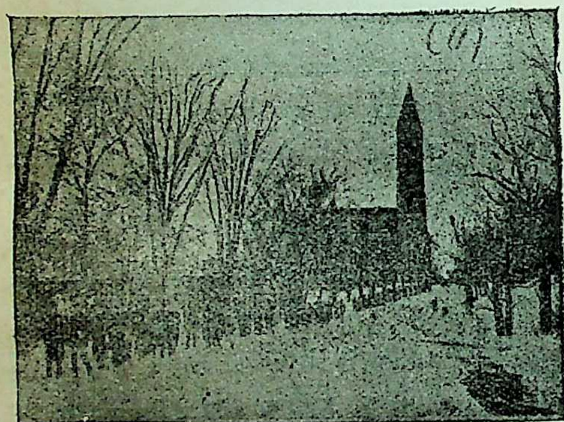
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

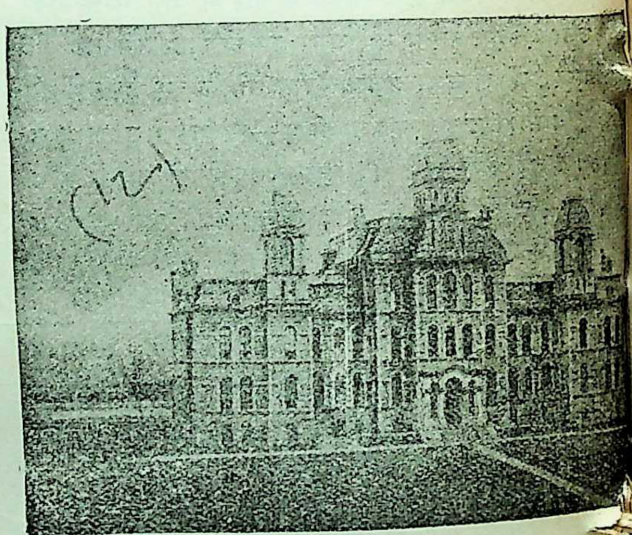
और फ़िर्दौसी ही भारत में सुपरिचित थे। मगर अमेरिका में, उस ज़माने में, उमर ख़य्याम की रचनाओं का अँगरेज़ी-अनुवाद बहुत पढ़ा जाता था। भारत और फ़ारस, दोनों ही पूर्व के देश ठहरे। दोनों के बीच में फ़ासला भी कुछ बहुत अधिक नहीं है। इसी कारण अमेरिका के अधिकांश छात्र उमर ख़य्याम की चर्चा मेरे आगे करते थे। बंगाल के कवि-शिरोमणि रवींद्र बाबू की गीतांजलि उस समय अमेरिका तक नहीं पहुँची थी। किप्लिंग का ही नाम वहाँ सुप्रसिद्ध और सुपरिचित हो रहा था। क्या छात्र और क्या अध्यापक, सभी ने किप्लिंग की रचना का पारायण कर डाला



कार्नल-विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी



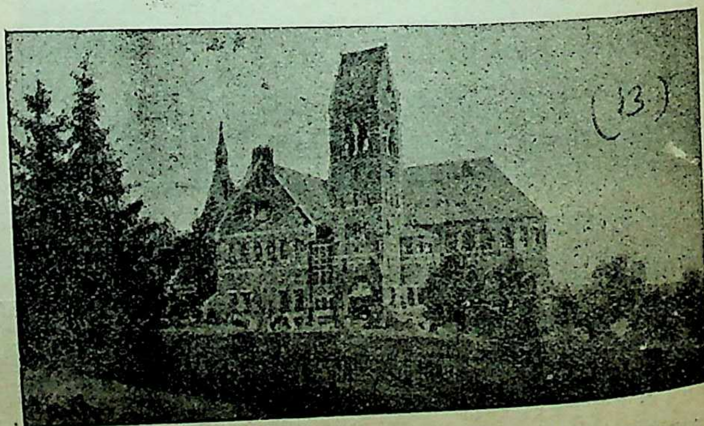
शीत-ऋतु में बर्फ़ से ढकी सेंट्रल एविन्यू



भाषा-शिक्षागार, सिराक्युस-विश्वविद्यालय

वहाँ के आदिम अधिवासी रेड इंडियनों ने उन्हें यंकी-नाम से ही पुकारना शुरू किया था। मेक्सिको से लौटे हुए एक अमेरिकन के मुँह से सुना कि मेक्सिकन लोग अँगरेज़ी के y अक्षर का उच्चारण नहीं कर सकते, इसी से वे संयुक्त-राज्य के आदमियों को 'यंकी' की जगह 'गिंगो' कहते हैं।

हाँ, उमर ख़य्याम और किप्लिंग की बात कह रहा था। फ़ारस के कवि उमर ख़य्याम उन दिनों भारत में इतने परिचित नहीं थे, जितने कि अब हैं। उस ज़माने में फ़ारस के कवियों में शेख़ सादी



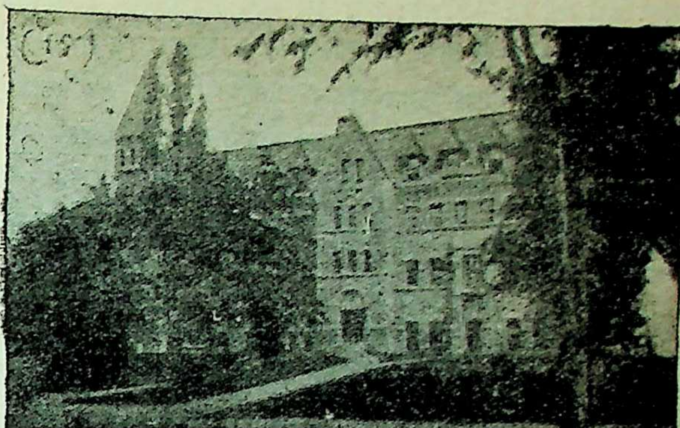
बार्नस् हाल, कार्नल-विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उस रचना को पढ़कर भारत के संबंध में उनकी तरह-तरह की धारणाएँ हो रही थीं। नमूने के तौर पर यहाँ कुछ का उल्लेख करता हूँ—

एक दिन मैं कई ग्रेजुएटों के साथ वेल-विश्वविद्यालय के भोजन-भवन में बैठा था। जिस टेबिल पर मैं था, उस पर ५-६ ग्रेजुएट और भी थे। उनमें से एक ग्रेजुएट ने, जो कि दार्शनिक था, मुझसे यों बात-चीत शुरू की—महाशय, मेरा तो अक्सर यही जी चाहता है कि भारत जाकर वहाँ के साधु-संन्यासियों की तरह किसी पीपल के पेड़ के



फ्रैंकलिन हाल, कार्नल-विश्वविद्यालय



कार्नल-विश्वविद्यालय के सहन का कुछ अंश

तले बैठकर भगवद्भजन करूँ। हम अमेरिकनों में से अधिकांश आदमी किप्लिंग की रचनावली पढ़कर भारत के संबंध में ज्ञान प्राप्त करते हैं। आपने क्या उनकी Kim नाम की पुस्तक पढ़ी है? उसमें वह लामा का हाल कैसा करुण-रस-पूर्ण है! लामा अपने धर्म-शास्त्र में वर्णित एक नदी की खोज रहा था। उस नदी में नहाते ही सब पाप धुल जाते हैं, और मुक्ति मिलने में कुछ भी संशय नहीं रहता। क्यों महाशय, आप क्या समझते हैं? यह सब वर्णन क्या मिथ्या है? या अस्वाभाविक है?

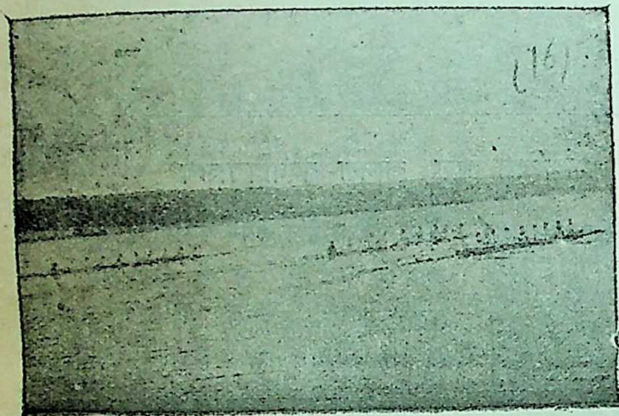
इसी तरह दूसरे एक छात्र ने कहा—महाशय, आपने किप्लिंग की रचनाएँ तो पढ़ी ही होंगी। उन्होंने अपने 'प्राच्य और पाश्चात्य की गाथा' (Ballad of the East and West)-काव्य में एक जगह लिखा है—पश्चिम पश्चिम में ही रहेगा, और पूर्व पूर्व में ही। इन दोनों का सम्मिलन सदैव असंभव है। जिस दिन स्वर्ग और पृथ्वी का मिलन होगा, उसी दिन इनका भी अंतर मिट सकता है। आप क्या इस उक्ति को ठीक समझते हैं? इसके बाद वह फिर कहने लगा—महाशय, मैंने अभी हाल ही में किप्लिंग का 'नौलखा'-उपन्यास पढ़ा है। अच्छा, भारतवासी क्या अफ़ीमी ही होते हैं? थोड़ी देर बाद एक और ग्रेजुएट ने प्रश्न किया—मेरी सदा से धारणा थी कि भारत की स्त्रियाँ अंतःपुर में खूब कड़े पहरे में रहती हैं। अच्छा, आपके यहाँ रानी सीता का चरित्र कवि ने क्या बहुत बढ़ा-चढ़ाकर नहीं अंकित किया है?

यथासंभव सब प्रश्नों के उत्तर देकर मैं भोजन करने लगा। इस समय अन्य एक छात्र ने बातें शुरू कर दीं। वह बड़ा बातूनी था। उसमें मुझे तेज़ी की भी मात्रा अधिक देख पड़ी। वह कहने लगा—मैं भारत के बारे में जो पुस्तक पाता हूँ, वही पढ़ डालता हूँ। किप्लिंग की रचनाओं का मैं बड़ा भक्त हूँ। उनकी Barrack-Room-Ballads-रचना मुझे बहुत अच्छी लगती है। इन गीतों को मैं अक्सर गाया या गुनगुनाया करता हूँ। इतना कहकर वह 'मंडाले'-संगीत का एक अंश गुनगुनाने लगा; जिसका भाव यह था कि 'मैंने सुंदरी को चुरुट का धुआँ पीते देखा। वह क्रस्तानी चुंबन वृथा ही मूर्ति के पैरों में अर्पण कर रही है।' फिर उसने पूछा—आपके देश की औरतें क्या धूम-पान करती हैं? आप क्या कभी बर्मा गए हैं? वहाँ की औरतें क्या बड़ी खूबसूरत होती हैं? मेरा उत्तर सुनकर फिर एक अंश को गुनगुनाने लगा;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

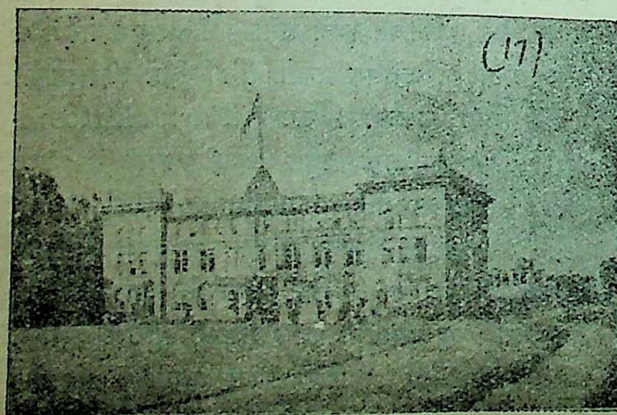
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका अर्थ यह था—'उसका हाथ मेरे कंधे के ऊपर है, कपोल से कपोल छू जाता है। हम दोनों ने मिलकर जहाज़ देखा। वहाँ हाथी सेगुन-काठ की 'टाल' पर काम करते देखे।' फिर उसने पूछा—क्या भारत में हाथियों से लकड़ियाँ ढुआई जाती हैं? भारत के लोग क्या लहसुन बहुत खाते हैं? उसको उत्तर देकर संतुष्ट किया।



केयूगा-झील में कार्नेल-विश्वविद्यालय के छात्र नौ-प्रतियोगिता कर रहे हैं

एक और छात्र ने कहा—मैं किप्लिंग की भारत-संबंधी रचनाएँ बड़े आग्रह से पढ़ता हूँ। अभी हाल में मैंने उनकी Jungle Book और Plain Tales from the Hills नाम की दो पुस्तकें पढ़कर समाप्त की हैं।



पशु-चिकित्सा-कॉलेज, कार्नेल-विश्वविद्यालय

किप्लिंग से तो मेरा जी ऊब चुका था। उसका वक्तव्य समाप्त होने के पहले ही मेरा भोजन समाप्त हो गया। मैं गुडबाई करके चटपट चल खड़ा हुआ। कुछ दिन यहाँ रहकर मैं कार्नेल-विश्वविद्यालय पहुँचा। वहाँ का वृत्तांत माधुरी की तीसरी संख्या में लिख चुका हूँ। कार्नेल-विश्वविद्यालय के कुछ ख़ास-ख़ास और सुंदर स्थानों तथा दृश्यों के चित्र इस लेख में भी दिए जाते हैं। आगे का हाल फिर किसी संख्या में दिया जायगा।

वसंतलाल

वर्षा की वियोगिनी

[१]

सुंदरी सिंगार करि सेंदुर सँवारी माँग,
मोतिन सों पूरी, पूरी परी-सी लखाति है;
चलै चंचला-सी, मुख चंद अकलंक ऐसो,
परी परजंक पर, लंक बल खाति है।
पाती लिखि लिखै चित्र, छाती सों लगावै, धावै,
लखै उठि लाख बार, बार न लगाति है;
झाँकि-झाँकि भागै, आँखि लगति न, रोवै लागै,
सारी भीजै सारी, प्यारी परी बिलखाति है।

[२]

ज्यों-ज्यों बारि बरसत, बहत बयारि बाँकी,
झाँकि-झाँकि इत-उत प्यारी को उर दहै;
ऐसी यामिनी में सब कामिनी पिया के संग
करत कलोल, हिय सबके हुलास है।
दामिनी दमकै, घन गोलो लौं गमकै उठि,
सेज मों हुमकै स्यानी, सूल ऐसो को सहै?
बार-बार हूलै, पै न बारि भूलै बार एक,
बार हू हजार हेरै, तकियै लहै गहै।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल के ग्रेजुएट

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महतो]



सूट, बूट, टाई, चश्मे पर डिगरी की दुम लगी हुई ;
बच्चों के भी बाप बन चुके, क़िस्मत ऐसी जगी हुई ।
मगर कमर टूटी जाती है, आगे का यों कोर्स लदा ;
उस पर बीबी-बच्चों का भी बोझ बड़ा बेतरह सदा ।
यही हाल इन दिनों ग्रेजुएट लोगों का है भारत में ;
बिलकुल बैल बने बेचारे दीन दशा की दिक़्क़त में ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यालोचना का उत्तर



गत वर्ष, सरस्वती के विशेषांक में, कवि 'शंकर की कविता के कुछ अनौचित्य'-शीर्षक एक लेख मैंने लिखा था। इस लेख के प्रतिवाद में, वैशाख की माधुरी में, एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें यह सिद्ध किया गया है कि मैंने जो अनौचित्य दिखलाए हैं, वे ठीक नहीं, तथा शंकरजी की कविता सारे साहित्यिक दोषों से मुक्त है। मुझे बड़ा ही हर्ष होता, यदि माधुरी में प्रकाशित लेख को पढ़ने के बाद मुझे शंकरजी की कविता सर्वथा निर्दोष दिखलाई पड़ती। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि उक्त लेख को पढ़कर शंकरजी की कविता के अनौचित्यों पर जब मैंने फिर से विचार किया, तो मुझे अपना पूर्व मत ही ठीक जचा। फिर भी पहले मेरा यह इरादा न था कि मैं अपने पूर्व मत के समर्थन में कोई लेख लिखूँ; पर बाद को मैंने यह इरादा बदल दिया। माधुरी में प्रकाशित 'आलोचना का उत्तर'-लेख बड़ी ही सौम्य भाषा में लिखा गया है। एतदर्थ उसके लेखकों को मैं बधाई देता हूँ। अपने लेख के ऐसे सज्जन समीक्षकों से ज्ञान-वृद्धि के लिये विवाद करना सौभाग्य की बात है। माधुरी में प्रकाशित लेख का उत्तर लिखने की प्रवृत्ति सबसे अधिक तो इसी कारण से हुई है। दूसरा बड़ा कारण इस लेख के लिखने का यह है कि शंकरजी की कविता के संबंध में लेखक-द्वय के और मेरे मत में बड़ा अंतर है। मैं शंकरजी को सुकवि स्वीकार करता हूँ; परंतु उसके साथ ही उनके काव्य में साहित्यिक अनौचित्यों की भरमार भी मुझे दिखलाई पड़ती है। उधर लेखक-द्वय का कहना है कि "वस्तुतः उनकी (शंकर-जी की) कविता रसवती और सब प्रकार के काव्य-दोषों से मुक्त है।" जब मत-भेद इतना गहरा है, तो मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने कथन की सत्यता को अधिक-से-अधिक स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करूँ। तीसरा कारण इस लेख के लिखने का मेरा यह सच्चा विश्वास है कि 'आलोचना का उत्तर'-शीर्षक लेख में बहुत-सी दलीलें जान-बूझकर भ्रम उत्पन्न करानेवाली दी गई हैं। चौथा कारण यह है कि सरस्वती में मैंने जो लेख भेजा था, उसमें संपादकों ने कुछ फेर-फार कर दिया है; जिसे प्रकट कर देना मेरा कर्तव्य है। बस, इन्हीं कारणों से और शुद्ध साहित्यिक सेवा के भाव से मैं यह लेख पाठकों के कर-कमलों में समर्पित करता हूँ। इस बात का निर्णय करने का उनको पूर्ण अधिकार है कि मेरा पक्ष निर्बल है, या 'आलोचना का उत्तर'-लेख के लेखकों का।

सरस्वती को मैंने जो लेख भेजा था, उसमें यह स्पष्ट लिख दिया था कि किन कारणों से गुण-प्रदर्शन के पूर्व ही मैं शंकरजी की कविता में पाए जानेवाले दोषों का उल्लेख करता हूँ। मैंने उस लेख में यह भी सूचना दी थी कि शंकरजी की कविता के गुण भी लिखे जायँगे। मैंने उद्वेग-जनक उक्तियों के स्पष्ट उदाहरण भी दे दिए थे। खेद है, संपादकों ने इतने अंश को मुद्रित लेख में स्थान नहीं दिया। एक-आध स्थान पर और भी गड़बड़ी हुई है। यह गड़बड़ी या तो प्रेस के कंपोज़ीटरों की कृपा का फल है, या हमारे लेखक महोदय की असावधानी का परिणाम। सौभाग्य से सरस्वतीवाले लेख की पांडु-लिपि मेरे पास मौजूद है।

मेरे सरस्वतीवाले लेख को पढ़कर सुकवि शंकरजी मुझसे अप्रसन्न हो गए हैं, यह तो स्पष्ट ही है; क्योंकि उनकी भूलें दिखलाने से मैं 'साहित्य-हत्या-हीन'[1] नहीं रहा हूँ, ऐसा उनका मत है। मैं तो समझता हूँ कि शंकर की कृति के एक अंश की समालोचना करके मैंने कोई अनुचित काम नहीं किया। इसलिये मुझको अपने कृत्य पर किसी प्रकार का पश्चात्ताप नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में मत-प्रदर्शन का स्वातंत्र्य रहना चाहिए। दूसरी उल्लेख-योग्य बात यह है कि महाकवि देवजी शंकरजी के अनौचित्यों के समाधान में व्यर्थ ही घसीटे गए हैं। क्या देवजी के दोषों की ओर अंगुलि-निर्देश कर देने से शंकरजी के अनौचित्य छू-मंतर हो जायँगे[2]?

---

१. "मिश्रजी **साहित्य-हत्या-हीन** हो गए, तो फिर
शंकर पै भारी भार भूलों का धरेगा कौन ?"

२. मुझ पर यह अभियोग लगाया गया है कि मैं हिंदी के सभी कवियों से—तुलसी और सूर से भी—देव को उत्कृष्ट कवि मानता हूँ। यह कथन ठीक नहीं है। हाँ, केशव और बिहारी से निश्चय ही देव को मैं उच्च आसन देता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हो, मैं अत्यंत शुद्ध भाव से शंकरजी की कृति की आलोचना करते हुए भी उनको पूर्ण आदर की दृष्टि से देखता हूँ। आगे मैं क्रम-क्रम से प्रत्येक अनौचित्य के संबंध में अपने स्पष्ट विचार प्रकट करता हूँ।

(१) भाषा

सरस्वती में मैंने शंकरजी की भाषा को ठीक नहीं बतलाया है। माधुरी में इसके उत्तर में जो कुछ लिखा गया है, उसको पढ़कर भी मैं अपने पूर्व मत पर ही स्थिर हूँ। मेरी राय अब भी यही है कि उसका पद्य-प्रवाह बेढंगा है, और वह उखड़ती-सी जान पड़ती है। उसमें रूखापन है, वह लचकीली नहीं है। प्रसंगानुकूल भाषा भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती है; पर शंकरजी ने प्रसंगानुकूल भाषा लिखने का विशेष उद्योग नहीं किया। 'गर्भरंडा-रहस्य' के उद्घाटन में अथवा 'हिजड़ों की मजलिस' या 'भारत-भट्ट-भर्णत' में, सभी जगह—स्थल-स्थल पर—भाषा में वही विकट रूक्षता दृष्टिगत होती है। सुकुमारी कमला का भाषण इतना कर्कश है कि उसमें नारी-सुलभ कोमलता का संपूर्ण लोप हो गया है। किरातार्जुनीय-महाकाव्य में महाकवि भारवि ने द्रौपदी की रोष-भरी बात-चीत दिखलाई है, और उद्धत भीम का कठोर भाषण भी सुनाया है। द्रौपदी के अभिभाषण में रोष की सारी सामग्री मौजूद है; फिर भी, क्रोधावेश में भी, द्रौपदी द्रौपदी ही रहती है। भीम की और उसकी भाषा में स्पष्ट पार्थक्य है। महाकवि कालिदास ने भी निर्वासन के अवसर पर सीताजी से लक्ष्मण के प्रति जो बातें कहलाई हैं, उनमें सीता के नारी-भाव की संपूर्ण रक्षा हुई है। सीता की भाषा में स्त्री-सुलभ मृदुल भावों की स्पष्ट प्रतिध्वनि मौजूद है। कमला की भाषा और किसी कर्कश-से-कर्कश उद्धत पुरुष के परुष भाषण में किसी प्रकार का भेद नहीं उपस्थित किया जा सकता। इसलिये प्रसंगानुकूल भाषा लिखने की दुहाई देना व्यर्थ है। शंकरजी के कई छंद उद्धृत करके यह दिखलाया गया है कि उनकी भाषा बड़ी ही मधुर और सरस है। मुझे यहाँ पर उन छंदों की समालोचना नहीं करनी है। पर शंकरजी की भाषा पर मेरा जो आक्षेप है, वह उनकी अधिकांश कविता पर अवश्य लगाया जा सकता है, और उसे मैं वापस लेने के लिये तैयार नहीं हूँ। पाठकगण शंकरजी के ग्रंथ पढ़कर इसका अनुभव सहज में ही कर सकते हैं। कुछ उदाहरण और लीजिए—

१. "पुड़िया पटकी फाड़, टाँड़ पै गुड़िया धर दी ;
इस प्रकार से राँड़ उदर ही में मैं कर दी।"

२. "हा! कुछ भी गौरव-कंज का, सौरभ उड़ा न चूक है ;
विद्रूप हरदुआगंज का, शंकर शठ मंडूक है।"

३. "ऊले प्रामादिक-हुरदंग, बरसे दुर्व्यसनों का रंग ;
उमगी भूमें भ्रम की भंग, लीला पैंठ दिखाती अड़की।"

४. "गंदी तुकबंदी छुरी, मार खटाखट-खट्ट ;
काटे कविता का गला, तुक्कड़ भारत-भट्ट।"

५. "ऊँचा न चढ़ाते हैं चबोर चोर चूतियों को ,
ठीकरी भी ठल्लू ठगियों को न ठगाते हैं।
खोल-खोल पोल खलोंपाड़ खोटे खद्कों की,
भीरुता भसको भूल भुग्गों की भगाते हैं।"

'ऊल' और 'ऊत'-शब्दों को मैंने अप्रचलित बतलाया है, और वही बात अब भी कहने को तैयार हूँ। जिस शब्द का व्यवहार बहुत कम होता है, जिसे इने-गिने लोग ही काम में लाते हैं, उसी को मैं अप्रचलित शब्द कहता हूँ। 'ऊल' और 'ऊत' ऐसे ही शब्द हैं। 'ऊल'-शब्द को तो हिंदी के कई प्रचलित बड़े शब्द-कोशों में भी स्थान नहीं मिला। दो-एक उदाहरण दे देने से अप्रचलित शब्द प्रचलित नहीं कहा जा सकता। प्रचलित शब्दों के प्रयोग साधारण पाठक को विशेष सुविधा-जनक होते हैं। अप्रचलित शब्दों में इस सुविधा का अभाव रहता है। इसीलिये प्रचलित शब्दों का ही विशेष आदर है। शंकरजी की कविता में अप्रचलित, प्रांतीय एवं अशिष्ट शब्दों की भरमार रहती है। यदि आवश्यकता होगी, तो ऐसे सैकड़ों शब्दों की एक सूची मैं प्रकाशित कर दूँगा। 'छूत'-शब्द के प्रचलित अर्थ में अपवित्रता और अशुद्धता का भाव है। 'छूत' का एक अर्थ 'स्पर्श' भी है; पर वह अप्रचलित है। इसलिये "मारुत से छूत शब्द अंबर से पाते हैं", इस पद्यांश में 'छूत'-शब्द द्वारा अप्रचलित अर्थ प्रकट करने का जो मेरा आक्षेप है, वह बिलकुल ठीक है। सटक-शब्द प्रांतीय है। यद्यपि व्रज में उसका प्रयोग लाठी के अर्थ में होता है, पर साधारणतः अन्य कई प्रांतों में वह हुक़े की नली या नरचे का बोध कराता है। 'सटकपन' का अर्थ यदि 'लाठीपन' माना जाय, तो भी उससे 'लाठी के सहारे डगमगाकर चलना'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ लगाने में बहुत कुछ अपनी ओर से मिलाना पड़ता है। स्वयं शंकरजी को इस बात का भय था कि हमारे इस अर्थ को पाठकगण समझ न सकेंगे, इसीलिये उन्होंने फुट-नोट में अपना अभिप्राय समझाया है। मेरी अब भी यही राय है कि 'सटकापन' से शंकरजी ने मन-माना अर्थ निकाला है। यह शब्द प्रांतीय, अप्रचलित, असमर्थ, गढ़ा हुआ एवं अशिष्ट है, और 'अटका', 'लटका' की तुक भिड़ाने के लिये जुटाया गया है। 'अकड़' कृत्रिम और विकार-जन्य होती है। अहंभाव के आवेश में अभिमान-प्रदर्शनार्थ शरीर के अंगों को कड़ा और टेढ़ा करना 'अकड़' है। किसी रोग के कारण या शीत आदि के लगने से जब रक्त-प्रवाह बंद हो जाता है, तो अंग-विशेष की संकुचित और विस्तृत होने की क्रिया बंद हो जाती है। इसे भी अकड़ कहते हैं। यौवनागम के साथ-साथ शरीर के अंग-प्रत्यंग सुदृढ़ और सुसंगठित हो जाते हैं। शंकरजी ने शरीर की ऐसी ही दृढ़ता का बोध 'अकड़'-शब्द के द्वारा[1] कराया है। मेरी राय है कि ऐसे स्थलों पर 'अकड़' का प्रयोग मुहाविरे के विरुद्ध है। उसका प्रयोग प्रथम दो अवस्थाओं में ही होना चाहिए।

(२) सांप्रदायिकता की छाप

मेरी राय में शंकरजी की कविता में सांप्रदायिकता की छाप है, और वह अनुचित भी है। आर्यसमाज को मैंने कभी हौआ नहीं समझा। मेरी शुद्ध सम्मति है कि भारत की वर्तमान जागृति से आर्यसमाज का बहुत बड़ा संबंध है। आर्यसमाज के कई काम अनुकरणीय हैं। इतना सब होते हुए भी मैं आर्यसमाज की उस नीति से सहमत नहीं हूँ, जिसके सहारे वह अन्य धर्मों पर कठोर एवं कभी-कभी अनुचित खंडनात्मक आक्षेप करता है। इससे कलह की वृद्धि होती है। खेद है, शंकरजी की कविता में ऐसे आक्षेप-पूर्ण व्यंग्य बहुत-से पाए जाते हैं। धार्मिक वाद-विवाद में खंडन-मंडन की नीति चाहे क्षम्य भी मानी जाय, पर कविता में तो आनंद के स्थान में कभी-कभी उससे रस-भंग ही हो जाता है। यह निश्चित बात है कि ऐसे काव्य को आर्यसमाजी अवश्य, कवित्व-गुण न होने पर भी, चाव से पढ़ेंगे; पर विरोधी पक्ष कभी-कभी, पक्षपात से विवश होकर, यथार्थ कवित्व में भी पर्याप्त आनंद और संतोष न पा सकेगा। देखिए, शंकरजी ब्रज-मंडल के मंदिरों में स्थापित मूर्तियों के लिये क्या कहते हैं—

"सबमें ठाकुर ठोस चेतना-रहित निहारे।"

विश्वनाथ-पुरी काशी के विश्वनाथजी के प्रति शंकर की उक्ति है—

"निरखे गोल-मठोल विश्वनायक अविनाशी।"

गयाजी में पिंड-दान को लक्ष्य करके शंकरजी का उद्गार है—

"गूँद-गूँदकर भात-पिंड लुड़काए फल-से।"

हरद्वार के कुंभ-मेले को लेकर शंकरजी कहते हैं—

"धींग सनातन-धर्म खेल जिसमें खुल खेला।"

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसी आक्षेपमयी पंक्तियों में अनुचित सांप्रदायिकता की छाप अवश्य है। राम-कृष्ण आदि की भक्ति से संबंध रखनेवाली सूर और तुलसी की कविता पर इस प्रकार की अनुचित सांप्रदायिकता का दोष नहीं लगाया जा सकता। शंकरजी की कविता के प्रति मैंने सांप्रदायिकता का जो उलहना दिया है, वह वैसी ही पंक्तियों से संबंध रखता है, जैसी ऊपर उद्धृत हैं। एक बात और है। इन पंक्तियों में कवित्व-गुण बहुत कम है, और ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

(३) उद्वेग-जनक उक्तियाँ

सरस्वतीवाले लेख में मैंने उद्वेग-जनक उक्तियों के कुछ उदाहरण दे दिए थे; परंतु उक्त पत्रिका के संपादक महोदय ने उनको प्रकाशित नहीं किया। यहाँ पर इस प्रकार के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

१. "मल गोबर के ग्रास पाय गप-गप खाते हैं;
गढ़-गढ़ गोले गोल लुढ़कते, लुढ़काते हैं।
गुबरीले इस भाँति क्रिया-विधि जो न जनाते,
तो वटिका कविराज कहो, किस भाँति बनाते?"

२. "अटके श्वान अनेक, मदन की मार पड़ी थी;
कुतिया पूँछ दबाय, अकेली विकल खड़ी थी।
मानों प्रकृति विहार-विडंबन दिखलाती थी;
नर-नारी बिन जोड़ बुरे, यह सिखलाती थी।"

३. "आपस में सब श्वान अकड़ते हैं, लड़ते हैं;
कुतियों को कर तंग उलझने को अड़ते हैं।"

४. "झोंझ बया के-से कुच झूले, फाड़ मदन का डेरा;
अब तो पास न झाँके कोई रसिया रस का चेरा।"

१. "परखी सब कोमल अंगों में अकड़ टटोल-टटोल।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. "ऊँचा न चढ़ाते हैं चबोर, चोर चूतियों को,
ठीकरी भी ठल्लू ठगियों को न ठगाते हैं।"

उपर्युक्त पंक्तियों में (१) कविराज लोगों की वटिका-निर्माण-चातुरी का श्रेय गुबरीलों की विष्ठा-गोलियों के अनुकरण पर अवलंबित किया गया है, (२),(३) कुतियों के छिनाले का निदर्शन कराया गया है, (४) मदन का डेरा फाड़कर बया के झोंझ के समान कुच झुलाए गए हैं, एवं (५) साधु तथा साहित्यिक भाषा में भी 'चूतिया'-शब्द का प्रयोग किया गया है। मेरी राय में कवि विष्ठा की गोलियों की याद दिलाए विना भी वटिका-निर्माण की ओर अंगुलि-निर्देश कर सकता था, कुतिया के छिनाले का वर्णन किए विना भी अनुचित कामांधता दिखलाई जा सकती थी, गलित-यौवना का चित्र मदन का डेरा फड़वाए विना और झोंझ के समान कुचों को झुलाए विना भी अंकित हो सकता था, और दुर्जन का उल्लेख 'चूतिया'-जैसे अशिष्ट-शब्द के प्रयोग के विना भी हो सकता था। फिर भी कवि ने विना किसी प्रकार के संकोच के ऐसे अनेकों प्रयोग किए हैं। मैं ऐसी उक्तियों को अवश्य ही उद्वेग-जनक मानता हूँ। पाठकगण भी इन पर यथारुचि अपना मत स्थिर करने को स्वतंत्र हैं। दो उदाहरण मैं और भी दिए देता हूँ; पर उन पर कुछ लिखना नहीं चाहता—

१. "काम देवता के अंकुश में लोह-कड़ा लटका लो;
नंग-नाच रच लो बाबाजी, चिमटे को चटका लो।"

२. "हम दोनों पर प्यार एक मन से करता था;
युगल तुंबियाँ बाँध धर्म-सरिता तरता था।"

(४) अंगराग और उबटन

संस्कृत का उद्वर्तन-शब्द प्राकृत में उव्वट्टन और हिंदी में उबटन या उपटन हो गया है। अभ्यंग के बाद मैल दूर करने के लिये शरीर में जो चूर्ण-रूप पदार्थ लगाया जाता है, उसे उबटन[1] कहते हैं। भाव मिश्र ने अपने भाव-प्रकाश में उबटन के बाद स्नान, तदनंतर वस्त्र-धारण और फिर प्रलेप या अंगराग की व्यवस्था की है। महेशदत्त शुक्ल-कृत अमरकोश के अनुवाद में (तथा मनुस्मृति की टीका, उमराव-कोश और आप्टे की डिक्शनरी में भी) उद्वर्तन का अर्थ उबटन या बुकवा किया है। उबटन सरसों, तिल, चिरौंजी आदि के चूर्ण से बनाया जाता है[2]। इसमें सुगंधित पदार्थ भी मिलाए जाते हैं। इसको शरीर में मलकर घर्षण करते हैं, और बत्तियों के रूप में छुड़ा डालते हैं। उबटन शरीर में बहुत थोड़ी देर लगा रहता है। इसे छुड़ा डालने के बाद स्नान किया जाता है। उबटन को संस्कृत में उद्वर्तन और उत्सादन कहते हैं। उबटन लगाने का मुख्य हेतु मैल छुड़ाना है।

अंगराग[3] उबटन से भिन्न पदार्थ है। अंगराग और उबटन पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। शरीर का श्रृंगार करने के उद्देश्य से वह कई सुगंधित द्रव्यों के द्रव से रंजित किया जाता है[4]। इस प्रकार के रंजन-कार्य को

"१. मैल के दूर करने के लिये शरीर में चूर्ण पदार्थ (उबटन) मलने से कफ और मेदा नष्ट होती है।"
(लाला शालग्राम-रचित भाव-प्रकाश की टीका, पृष्ठ ८५)

१. "**उद्वर्तनोत्सादने** द्वे समे।" उबटन वा बुकवा के नाम—उद्वर्तन १, उत्सादन २।
(अमरकोश सटीक, पं० महेशदत्त शुक्ल-कृत, नवलकिशोर-प्रेस, सन् १८७५ ई० की छपी।)

"**उद्वर्तन** भाषत बुधि धाम; **उत्सादन, उबटन** त्रै नाम।"
(उमराव-कोश। अमरकोश का पद्य-बद्ध अनुवाद, श्रीयुत सुवंश शुक्ल-विरचित, रचना-काल सं० १८६२)

"**उद्वर्तन**मयस्नानं विएमूत्रे रक्तमेव च।" 'उद्वर्तनमभ्यंगमला-पकर्षणपिष्टकादि।
(मनुस्मृति, अध्याय ४, श्लोक १३२, कुल्लूक भट्ट-कृत टीका)

उद्वर्तन—"*Rubbing and cleaning the body with perfumes or fragrant ingredients, or the ingredients used for this purpose or to relieve pain. Apate's Dictionary, Page 277.*"

२. "उबटन—संज्ञा पुं० [सं० उद्वर्तन, प्रा० उव्वट्टन] शरीर पर मलने के लिये सरसों, तिल और चिरौंजी आदि का लेप।"
(हिंदी-शब्द-सागर, पृष्ठ ३५४)

३. "अंगरागः—पुं०—अंग-लेपनद्रव्ये। यथा कुंकुमादि अनु-लेपनद्रव्ये।"
(शब्द-सिंधु)

४. "अंगरागः (अंग रज्यते अनेक करणे घञ्)।"
A scented cosmetic, application of perfumed ingredients to the body, fragrant ingredients.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ही अंगराग लगाना कहते हैं। स्नान करने के अनंतर सुंदर वस्त्र धारण करने के बाद ही अंगराग लगाया जाता है। रात्रि में शयन के समय भी अंगराग लगा रहता है[1]। अंगराग लगाकर राज-समाज में बैठा जाता है[2]। स्नान के अनंतर जो अंगराग लगाया जाता है, वह दूसरे दिन के स्नान के समय ही धुलता है। उबटन थोड़े समय के लिये लगाया जाता है ; पर अंगराग दिन-रात लगा रह सकता और स्नान करने पर ही धुल सकता है। कवियों ने स्नान के अनंतर ही अंगराग लगाने के वर्णन किए हैं[3]। उबटन अंगराग का न तो पर्याय है, न रूपांतर। दोनों ही वस्तुएँ बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं। अंगराग को प्रलेपन-द्रव्य भी कहते हैं। वैद्यक-शास्त्र में कई प्रकार के प्रलेपों का वर्णन है। काम-शास्त्र में चौंसठ कलाओं का वर्णन है[1]। उनमें से अंगराग भी एक है। यह उद्दीपक पदार्थ है। विविध प्रकार के शृंगारोपादान के अंतर्गत भी अंगराग का उल्लेख है[2]। इन सभी स्थलों पर किए गए अंगराग के वर्णन से यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि वह उबटन से भिन्न है, और उसका उपयोग स्नान के बाद किया जाता है। शंकरजी की कविता में स्नान के पूर्व अंगराग लगवाने को मैंने एक अनौचित्य बतलाया है। मेरे इस कथन के विपरीत जो कुछ लिखा गया है, उसको मैंने पढ़ लिया है। मुझे इसके प्रत्युत्तर में जो कुछ कहना है, वह मैं ऊपर लिख चुका हूँ। नीचे फुट-नोट में प्रमाण भी दिए हैं। पाठकगण दोनों पक्ष की दलीलें देख लें, और तब निर्णय करें कि मेरा 'एतराज़' कहाँ तक न्याय-संगत है।

(५) ' न्हाते शुद्ध सुशील सलिल से '

न्हा ले के स्थान में ' न्हाते ' छप गया है। यह पाठ ठीक नहीं है। उपर्युक्त पंक्ति का कुछ लोग यह अर्थ करते हैं कि ' ऐ सुशील, शुद्ध सलिल में स्नान कर ले '। इस अर्थ में सुशील संबोधन है। यह अर्थ आपत्ति-जनक नहीं है। 'गौरव-अंगराग मलवा ले' आदि चारों पंक्तियों में कवि ने किसी को संबोधित करके यह उक्ति कही है। जिसके प्रति यह कथन है, उसको संबोधन-कारक में, संज्ञा या सर्वनाम-रूप में, इन पंक्तियों में अलग रखना चाहिए था। 'सुशील' को यदि संबोधन मान लें, तो यह कमी पूरी हो जाती है। उधर सुशील और सलिल में रूपक भी है। ऐसी दशा में सुशील 'शुद्ध' का विशेष्य है। सो इन पंक्तियों में सुशील की स्थिति दो प्रकार से समझाई

---

१. "तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं
शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागम्।" (कालिदास)
"गतवति नखलेखा लक्ष्यतामंगरागे
× × ×
हृदयमवललंबे रात्रिसंभोगलक्ष्मीः।"
(भारवि)

२. "गइंददसणसिरिद्धसलाआ सहस्सरस्सिम्मिहेसु मंचएसु आसीणा इमे कुंकुमकअंगराआ राआणो अमलफडिअयासा असिहरा संगिणा कणआसिंहा विव रेहंति।"
संस्कृत—"इमे कुंकुमकृतांगरागा राजानो"—इत्यादि।
(जयदेव)

"अंगराग-रंजित रुचिर, भूषण-भूषित देह ;
कहत बिदूषक सों कछू सो पुनि को नृप येह ?"
(केशव)

३. "लैकरि सुबास बारि बिमल सुबासित कै,
मज्जन कियो है तन अधिक उमाहे तैं ;
केसरि, कपूर, कसतूरी औ अतर लैकै,
अंगराग अंगनि लगायो चित चाहे तैं।
कहै परताप, साजि सकल सिंगार तन,
भूषन बिभूषन सकल अवगाहे तैं ;
कब की निहारति हौं नैननि सों कंज-नैनि,
बेसरि बनै न आजु पहिरत काहे तैं ?"
(प्रताप)

१. "दशनवसनांगरागः।
रागः शब्दः प्रत्येकं योज्यते। तत्रांगरागोंगमार्ष्टिः कुंकुमादिना। रंजनविधिरिति वक्तव्य × × ×"
(श्रीवात्स्यायनीय कामसूत्र)

२. "प्रथम सकल सुचि मज्जन, अमल बास,
जावक सुदेस केस-पास को सँभारिबो ;
अंगराग भूषन बिबिध, मुख-बास, राग,
कज्जल-कलित लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि, हँसनि, मृदु चलनि, चितौनि चारु,
पल-पल प्रति पतिव्रत परिपारिबो ;
केसोदास सो बिलास करहु कुँवरि राधे,
इहि बिधि सोरह सिंगारन सिंगारिबो।"
(केशव)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकती है—एक तो संबोधन-कारक, और दूसरे शुद्ध का विशेष्य। इन दोनों स्थितियों में सुशील की कौन-सी स्थिति समीचीन है, इसी को मैंने यों ही प्रश्न-रूप में पूछा था। मेरी पांडु-लिपि में जो वाक्य इस संबंध में दिया है, वह इस प्रकार है—"सुशील संबोधन है, या शुद्ध का विशेष्य ?" किसी कारण से यह वाक्य सरस्वती में इस प्रकार छप गया है—"सुशील संबोधन है, या सलिल का विशेषण ?" छापे की अशुद्धि से मेरे कई आलोचकों ने मुझ पर अर्थ न समझने का अभियोग लगाया है; पर यथार्थ बात जो थी, सो मैंने ऊपर लिख दी है।

(६) "कपट-कंज-मकरंद हैं"

मैंने शंकरजी के कपट-कंज-मकरंद के रूपक को अशुद्ध नहीं बतलाया है। हाँ, यह अवश्य लिखा है कि ऐसे रूपक को देखकर आश्चर्य होता है, अर्थात् वह असाधारण है। मेरा यह मत अब भी वैसा ही बना है। बात यह है कि उपमान और उपमेय का संबंध किसी एक विश्रुत साधारण धर्म को ही लेकर होता है। वह साधारण धर्म लुप्त हो या प्रकट, पर उपमान और उपमेय में समान रूप से पाया जाता है। कपट और कंज-मकरंद में कोई ऐसा विश्रुत समान धर्म नहीं है, जिस पर तत्काल ध्यान आकृष्ट हो सके। यदि घोर कष्ट-कल्पना करके कोई ऐसा धर्म ढूँढ़ा भी जाय, तो उसका काम या तो अकेले मकरंद से निकल जायगा, या कंज से। कंज और मकरंद दोनों की ही साथ-साथ कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इन्हीं सब बातों को विचारकर मैंने 'कपट-कंज-मकरंद' के रूपक को आश्चर्य की दृष्टि से देखा था। अब मैं स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि यह रूपक अच्छा नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भूमि में बीज वपन कराया है। उसके अंकुरित होने के लिये जल की आवश्यकता है। तदनुसार उनके रूपक में विपत्ति-बीज कपट-जल के सहारे उगता है। जल के आश्रय से बीज का उगना प्रसिद्ध है। बीज की स्थिति में ऐसा परिवर्तन करा सकना जल का विश्रुत धर्म है। कपट द्वारा भी स्थिति में ऐसा परिवर्तन उपस्थित होता है। सो जल और कपट दोनों में स्थिति-परिवर्तनकारी समान धर्म मौजूद है। इसलिये 'कपट-जल' का रूपक परम सुंदर है। कितनी सुंदर पंक्तियाँ हैं—

विपति-बीज, बरषा ऋतु चेरी; भुइँ भइ विपति कैकई केरी।
पाय कपट-जल अंकुर जामा; बर दोउ दल, दुख फल-परिनामा।

क्या ऐसी दलीलों का उत्तर देना भी आवश्यक है कि जब कपट की जल से उपमा दी जा सकती है, तो जलज से क्यों नहीं दी जा सकती? क्या जिस वस्तु का साम्य हम उर के साथ करें, उसी की सदृशता उरोज के साथ भी करने की हमको स्वतंत्रता है? खेद है, ऐसी दलीलों पर मैं अपना समय नष्ट नहीं करना चाहता। इसी प्रकार गोस्वामीजी का 'प्रेम-पंक' का रूपक भी सराहनीय है। पंक का मुख्य अर्थ कीचड़ है; पर इसी अर्थ को लेकर बाद को वह अधिक गाढ़े द्रव द्रव्य का भी बोध कराता है। जैसे पाटीर-पंक, चंदन-पंक, अथवा कृष्णागरु-पंक आदि। फिर पंक से दलदल का भी अर्थ लिया जाता है। दलदल का विश्रुत धर्म यह है कि जो कोई उसमें फँस जाता है, फिर उससे उसका निकलना कठिन हो जाता है। प्रेम में फँसे पुरुष का छुटकारा भी इसी भाँति दुस्साध्य हो जाता है। सो प्रेम और दलदल, दोनों में ही फँसाने और निकलने न देने का विश्रुत समान धर्म मौजूद है, और इसी कारण 'प्रेम-पंक' का रूपक नितांत मनोरम हुआ है। पंक[1] के कालुष्य-धर्म को ढूँढ़ना यहाँ पर व्यर्थ है।

(७) "ओमुद्भूत नाम शंकर का सकल कलाधर धन्य।"

उपर्युक्त पद्यांश में मैंने 'ओमुद्भूत'-शब्द में श्रुति-कटु-दोष बतलाया है। मेरी यह निश्चित सम्मति है कि 'ओमुद्भूत' अवश्य ही श्रुति-कटु-दोष से दूषित है, और इस बात को विना किसी प्रकार के संकोच के मैं फिर से दुहराता हूँ। यदि संस्कृत में 'सिद्ध्यै'[2]-शब्द श्रुति-कटु

---

१. पंकः—कं [पंच-विस्तारे कर्मणि करणे वा घञ् कुत्वम्] 1. Mud, hence 2. A thick mass, large quantity, 3. A slough, quagmire

(आपटे-कृत संस्कृत-अँगरेजी-कोश, पृष्ठ ५७७)

२. "तद्गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यम्।"

अत्र 'सिद्ध्यै' इति पदस्य अंशभूतः 'द्ध्यै' इति शब्दः कर्णकार्कश्यमवगमयतीति भावः।

(साहित्य-दर्पण, पृष्ठ ५६०, कलकतिया संस्करण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जा सकता है, तो खड़ी-बोली में 'ओमुद्भूत' को कर्ण-कटु कहना अनुचित नहीं है।

(८) यतिभंग-दोष

मैंने शंकरजी की कविता में यतिभंग-दोष के कुछ उदाहरण दिए हैं। इन दोषों के प्रतिवाद में अन्य कवियों की कविता में भी यतिभंग-दोष दिखलाए गए हैं। पर इससे शंकरजी यतिभंग-दोष से कैसे मुक्त हो सकते हैं? कालिदास की कविता में यतिभंग है, जगन्नाथ पंडितराज की कविता में यतिभंग है, जयदेवजी की कविता में यतिभंग है, कविवर केशवदास की कविता में यतिभंग है, तो क्या इससे शंकर की कविता में जो यतिभंग पाए जायँ, वे यतिभंग नहीं रह गए? यह तो कोई दलील नहीं है। अनेक साहित्याचार्यों ने कई कविता-दोषों के उद्धार किए हैं, उनकी सदोषता को क्षम्य कर दिया है; पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वे दोष दोष नहीं रह जाते। वे दोष बराबर रहते हैं, भेद इतना ही पड़ जाता है कि ऐसे दोषों के लिये कवि क्षमा-भिक्षा का अधिकारी हो जाता है। यतिभंग-दोष का भी कई दशाओं में उद्धार माना गया है। शंकर की कविता में जो यतिभंग-दोष हैं, वे क्षमा के योग्य हैं या नहीं, इस पर मैं एक लंबा लेख लिखूँगा। श्रीपति आदि हिंदी के कई आचार्यों ने इस विषय का विशद विवेचन किया है। मैं इन सबके मतों को उस लेख में यथास्थान प्रकट करूँगा। यहाँ पर मैं केवल इतना दुहरा देना चाहता हूँ कि 'कविराज', 'कविता-कामिनी-कांत' और 'भारत-प्रज्ञेंदु' श्रीयुत नाथूरामशंकर शर्माजी की कविता 'यतिभंग'-दोष से मुक्त नहीं है। यह भी स्मरण रहे कि साहित्याचार्यों ने जब 'हतवृत्त' और 'शिथिलबंध'-जैसे दोषों को मान रक्खा है, तब वे यतिभंग-दोष को सहज ही में क्षमा कर देंगे, इसकी आशा करना व्यर्थ है। 'यतिभंग'-दोष के संबंध में मैं यहाँ पर अधिक और कुछ भी लिखना नहीं चाहता।

(९) "कारंडव, कलहंस करें जल-केलि, न हारें।"

शंकरजी ने पावस-वर्णन में कारंडव और कलहंस की जल-केलि करवाई है। इस पर मैंने लिखा था कि ऐसा वर्णन कवि-संप्रदाय के विरुद्ध है। मेरे इस कथन के उत्तर में दो बातों पर बड़ा ज़ोर दिया गया है। एक तो यह कि 'कलहंस' हंस से भिन्न हैं, तथा वर्षा-ऋतु में इस देश में कहीं-न-कहीं कलहंस वर्तमान रहते हैं, और जल-बाहुल्य के कारण कलोलें किया करते हैं। मुझसे यह भी प्रश्न किया गया है कि क्या कलहंस भाड़ में चले जाते हैं? इस संबंध में मुझे जो कुछ निवेदन करना है, वह इस प्रकार है। कलहंस और हंस वस्तुतः एक ही जाति के पक्षी हैं। कलहंस, हंस और राजहंस[1] इन तीन शब्दों द्वारा हंस पक्षी का परिचय अत्यधिक दिया जाता है। कविवर जयदेव ने अपने 'प्रसन्नराघव'-नाटक में वृत्तांत-निरूपणार्थ एक कलहंस नियुक्त कराया है। पंचमांक[2] में इसकी बात-चीत कई पृष्ठों में वर्णित है। आरंभ में कलहंस कहकर फिर इसे हंस नाम से ही कवि ने पुकारा है, और अंत में जब वह विदा हुआ है, तो उसे हंस ही कहा है। इससे स्पष्ट है कि कवि ने कलहंस और हंस में कोई भेद नहीं माना। कविवर केशवदास ने दामोदर मिश्र-संपादित हनुमन्नाटक के एक श्लोक का अनुवाद किया है। श्लोक के 'राजहंस'-शब्द का अनुवाद केशवदास ने 'कलहंस'-शब्द द्वारा किया है।

---

१. "और चरन के बरन जहँ, और चरन सों लीन;
सो जति-भंग कबित्त कहि, केशवदास प्रवीन।
हरि हरि केशव मदन **मनमोहन** स्याम सुजान;
यों व्रजबासी **द्वारिकानाथ** रटत दिनमान।"
(कविप्रिया, केशव-कृत)

१. कलहंस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हंस। (२) राजहंस।
उदाहरण—सजि सी सिंगार कलहंस गती-सी;
चलि आइ राम-छबि मंडप दीसी।
(हिंदी-शब्द-सागर, पृष्ठ ४६३)

कलहंस—तत्० (पुं०) राजहंस।
(हिंदी-शब्दार्थ-पारिजात, पृष्ठ १२२)

कलहंसः—*A gander, a swan.*
(Apte's Sanskrit English Dictionary.)

२. "सरयूः—ततः परं तद्वृत्तांतनिरूपणाय निजजलकमलवनवासी कोऽपि कलहंसः प्रस्थापितो मया।
(प्रविश्य)
कलहंसः—देव्य इदं नमो वः
(हंसः प्रणम्य निष्क्रांतः)"
(प्रसन्न-राघव-नाटक, पृष्ठ ७२-७८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे बीसों उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनसे हंस और कलहंस की अभिन्नता सिद्ध होती है। कवि-संप्रदाय यह है कि वर्षा-काल में हंस मानसरोवर-झील को चले जाते हैं, और शरद्-ऋतु में फिर लौट आते हैं। वर्षा का गँदला पानी उन्हें पसंद नहीं है। यह बात मैंने सरस्वती में भी स्पष्ट शब्दों में लिख दी थी। फिर भी न-जाने क्यों उनके भाड़ में चले जाने का संदेह किया गया है। मानसरोवर-झील भारतवर्ष से बाहर तिब्बत-देश में स्थित है। आज भी उसमें लाखों हंसों को एकसाथ तैरते देखकर मनुष्य आश्चर्य से चकित हो जाता है। जिस प्रदेश में मानसरोवर स्थित है, वह नितांत शुष्क है, और वहाँ जल-वर्षण बहुत कम होता है। इसीलिये मानसरोवर का जल सदा शुद्ध और निर्मल रहता है, और वर्षा-जन्य जल-मलिनता का अनुभव बहुत कम होता है। शरद्-ऋतु में उस झील का जल जमने लगता है। तभी हंसगण वहाँ से उड़कर भारतवर्ष के जलाशयों में चले आते हैं। भारतवर्ष से मानसरोवर को अथवा मानसरोवर से भारतवर्ष को आने के संबंध में हंसों के विषय में कवि लोगों की निर्धारित समय-ख्याति[1] के विरुद्ध प्रकृति-निरीक्षक लोगों ने भी कोई बात नहीं कही है। ऐसी दशा में मैंने शंकरजी की कविता में कवि-संप्रदाय-विरोधी दोष को मानकर किसी प्रकार की भूल नहीं की है। मैं अपने 'एतराज़' को वापस लेने को तैयार नहीं हूँ।

मानसरोवर में वर्षा-काल बिताकर शरद्-ऋतु में हंस-मालाएँ भारतवर्ष के सरोवरों में किस प्रकार सुशोभित होती हैं, इसका वर्णन कवियों ने बड़े ही अच्छे ढंग से किया है[2]। शरद्-ऋतु की जिन विशेषताओं का कविगण वर्णन करते हैं, उनमें एक यह भी है कि वर्षा-ऋतु में जो सरोवर हंसों से शून्य रहते हैं, वे ही शरद् में उनसे परिपूर्ण हो जाते हैं[1]। महाकवि भारवि ने शरत्कालीन सुषमा से पूर्ण भूमि को कामिनी मानकर उसके लिये अपूर्व कर्धनी की कल्पना की है[2]। यह कर्धनी किसी बहु-मूल्य धातु या रत्नों से नहीं बनी है, वरन् मधुर कल-रव करनेवाले कलहंसों की मालाएँ ही इस प्राकृतिक कर्धनी का काम करती हैं। महाकवि राजशेखर[3] ने भी शरद्-ऋतु के पीछे-पीछे कादंब, कारंडव और चक्रवाकों के दर्शन किए हैं। वह स्पष्ट देखते हैं कि वर्षा-ऋतु के बाद सुंदरी शरद् एक बार कलहंस-समूह को साथ लेकर फिर उपस्थित होती है। इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं। मुझे इस बात में बिलकुल संदेह

---

१. "प्रफुलित नव नीरज रजनि, बासर कुमुद बिसाज ;
कोकिल सरद, मयूर मधु, बरषा मुदित मराज।"
(कविप्रिया, काल-विरुद्ध)

२. "येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयस्ते **राजहंसा** गताः।"
(दामोदर मिश्र)

"**कलहंस**, कलानिधि, खंजन, कंज कछू दिन केशव देखि जिए।"
(केशव)

"ज्योत्स्ना मया चकोरैः जलधरसमये मानसं यांति हंसाः।"
(विश्वनाथ)

To the South-east of Kashmir and to the North of the main chain or the Himalyas, lies the sacred Mansarowar lake, or collection of lakes, at an elevation of over 15,000 ft.
(Longman's Geographical Series. Book II. P. 108.)

The lake was celebrated in former times as the abode of Kumaras, and is said by poets to be the annual resort of swans at the approach of rains.
(Apte's Sanskrit English Dictionary. P. 1047.)

The Himalyas form a barrier to the South-west rain-bearing winds, and North of this mountain region lie the desert lands of Tibet and China.
(Longman's Geographical Series. Book II. P.70)

१. "सरोवर का जल नीला-नीला आँखों को क्या ही सुख देता है। वह देखिए, राजहंस, श्वेत, बिलकुल श्वेत, अपनी सुंदर पतली चोंचों से जल में क्रीड़ा कर रहे हैं। ×××××× इनके झुंड जल पर क्या मज़े में तैर रहे हैं।"
(सत्यदेव-कृत कैलाश-यात्रा, मानसरोवर-वर्णन)

२. "ततः स कूजत्कलहंसमेखलां सपाकसस्याहितपांडुतागुणाम् ;
उपाससादोपजनं जनप्रियः प्रियामिवासादितयौवनां भुवम्।"
(भारवि)

३. "कादंबकारंडवचक्रवाकसारसक्रौंचकुलानुयाता ;
उपानयंती कलहंसयूथमगस्त्यदृष्ट्या पुनती पयांसि।"
(राजशेखर, काव्य-मीमांसा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कि हंस और कलहंस एक ही जाति के पक्षी हैं। जो कुछ हंसों और राजहंसों की बाबत कहा जाता है, वही कलहंसों की बाबत भी कहा जाता है। वर्षा-ऋतु में प्रकृति-निरीक्षण तथा कवि-संप्रदाय के विचार से कलहंसों और कारंडवों का वर्णन न करना चाहिए। इस ऋतु में, कवि-समय-ख्याति के अनुसार, कलहंस मानसरोवर-झील को चले जाते हैं। पाठकगण यदि ध्यान से देखेंगे, तो उन्हें मालूम हो जायगा कि मैंने शंकरजी की कविता पर अनुचित आक्षेप नहीं किया है।

(१०) भावापहरण

माधुरी के पाठकों से मेरा अनुरोध है कि मैंने सरस्वती में, शंकरजी की कविता में भावापहरण के संबंध में, जो कुछ लिखा है, उसे वे कृपा करके एक बार अवश्य पढ़ लें, और तब उसके उत्तर में माधुरी में जो कुछ छपा है, उसे पढ़ डालें। मैं सभी अवस्थाओं में भावापहरण को बुरा नहीं समझता। वैशाख, १९७९ की 'मर्यादा' में, 'कविता में भाव-सादृश्य'-शीर्षक लेख में, मैंने इस विषय पर विस्तार के साथ विचार किया है। भावापहरण करके जब परवर्ती कवि पूर्ववर्ती कवि के भाव की रक्षा नहीं कर पाता, तभी उसकी कृति दूषित मानी जाती है, अन्यथा नहीं। सरस्वतीवाले अपने लेख में भी मैंने यह बात स्पष्ट रूप से लिखी है। अस्तु।

वसंत में शीत और निदाघ के अभाव का सद्भाव भले ही हो, पर उनका समता-सम्मिलन तो होता नहीं है। नकुल और भुजंग का एक दूसरे को भूल जाना तभी संभव है, जब उनका मस्तिष्क विकार-ग्रस्त हो जाय। ऐसी अवस्था उपस्थित होने पर इस कल्पना में बिलकुल चमत्कार नहीं रह जाता कि नकुल-भुजंग पास पड़े हैं, पर एक दूसरे से बोलते नहीं हैं। उनका बोलना तो तभी संभव है, जब उनको यह ज्ञान रहे कि हम नकुल हैं, और हम भुजंग हैं। महाकवि बिहारी के दोहे में कल्पना का यह चमत्कार मौजूद है। मोर सामने साँप को देखता है, और उसे पहचानता भी है—भूला नहीं है—फिर भी निदाघ की प्रचंडता के कारण आक्रमण नहीं कर सकता। बिहारीलाल ने हेतु उपस्थित करके फल का अभाव दिखला दिया है। शंकरजी की पंक्तियों में 'भूले'-शब्द ने हेतु को ही नष्ट कर दिया। जब नकुल और भुजंग एक दूसरे को भूल ही गए हैं, तो उनके पास-पास पड़े रहने से क्या होता है? यदि आक्रमण नहीं होता, तो आश्चर्य की कौन-सी बात है? इस अवैर में चमत्कार ही क्या है? 'सोते' का अर्थ 'सोते-से' नहीं हो सकता, और न मैं 'सोते' का अर्थ 'मूर्च्छित' मानने को तैयार हूँ। यदि शंकरजी का अभिप्राय 'मूर्च्छित' या 'सोते-से' प्रकट करने का था, और इसी को उन्होंने 'सोते'-शब्द से प्रकट किया है, तो वह अपने इस उद्योग में अकृत-कार्य रहे हैं। 'सोते'-शब्द उपर्युक्त भाव प्रकट करने में सर्वथा असमर्थ है। बिहारी के दोहे के सामने शंकर की पंक्तियाँ निष्प्रभ हैं।

पद्माकर और शंकर के जिन दो छंदों की मैंने तुलना की है, उनके विषय में मैंने सरस्वती में जो कुछ लिखा है, उसमें भी किसी प्रकार का परिवर्तन करने का मुझे कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता। संसार में लोगों की रुचि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। मुझे पद्माकर के छंद के सामने शंकर का छंद कुछ भी नहीं जँचता। पद्माकर के छंद में मुझे एक सहृदय और सहानुभूति-पूर्ण दूती की उक्ति पढ़ने को मिलती है। पद-पद पर वह उत्कृष्ट विरह-निवेदन-कला से परिचित दिखलाई पड़ती है। शंकर के छंद में, नहीं जानते, किसकी उक्ति किसके प्रति है। बहुत ही इतमीनान के साथ एक-एक करके, विस्तार के साथ, प्रलय का वर्णन छेड़ा जाता है। वर्णन करनेवाले की वियोगिनी के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति का इस छंद में कहीं पता नहीं है। हाँ, आपने पद्य-बद्ध गद्य में वैज्ञानिक रीति से प्रलय का वर्णन कर दिया है, और अंत में बहुत ही बेपरवाही के साथ "जो पै वा बियोगिनी की आह कढ़ जायगी" इतना और जोड़ दिया है। वर्णन करनेवाले की तटस्थता इस छंद में पूर्ण रीति से दिखलाई पड़ती है। जो दूती दूर से भीषण विरह-ताप-पीड़ित नायिका को देखकर आई है, उसके अंग-स्पर्श-मात्र से नायक के ताप चढ़ जाने का भय है—इस कथन द्वारा जैसी सुंदरता और विदग्धता से विरह-जन्य क्लेशाधिक्य का परिचय दिया गया है, वह अनुपम है। इसमें दूती, नायक और विरहिणी, तीनों के प्रति सहानुभूति के भाव भरे हैं। शंकर की उक्ति में यही संदेश लट्ठमार ढंग से दिया गया है। वह नितांत सहानुभूति-शून्य है। पद्माकर के छंद का मुख्य वर्ण्य विषय विरह-निवेदन है। औचित्य-पूर्ण ढंग से विरह-ताप की भीषणता का वर्णन वहीं तक किया गया है, जहाँ तक विरह-निवेदन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य में उससे सहायता लेना अभीष्ट है । शंकरजी का मुख्य वर्णनीय विषय तो प्रलय दिखलाई पड़ता है, यद्यपि अंत में "जो पै वा बियोगिनी की आह कढ़ जायगी" आ गया है । पद्माकरजी की भाषा व्रज-भाषा है । वह सरस, सालंकार और कोमल-कांत-पदावली से परिपूर्ण है। शंकरजी की भाषा को कुछ लोग 'व्रज-भाषा' बतलाते हैं; पर यदि व्रज-भाषा को साहित्य-संसार में अब इसी रूप में जीवित रहना है, तो वह जितनी जल्दी मृत हो जाय, उतना ही अच्छा। उसके माधुर्य का इस प्रकार से मूलोच्छेद कम-से-कम मुझे तो असह्य है। मैंने उक्त छंद की भाषा को खड़ी बोली माना है। भाषा की सबसे बड़ी और मुख्य पहचान उसकी क्रियाएँ हैं। जायगी, झरेंगे, जरेंगे और बचेगी आदि जिन क्रियाओं का उपयोग इस छंद में किया गया है, वे खड़ी बोली की हैं। इसीलिये यह छंद खड़ी बोली का है। पद्माकर और शंकर की कविता में बहुत बड़ा अंतर है।

शंकरजी की कविता से भावापहरण के कोड़ियों उदाहरण दिए जा सकते हैं। 'आलोचना का उत्तर'-लेख में उनकी कविता के गौरव-स्वरूप जो छंद उद्धृत किए गए हैं, उन्हीं में भावापहरण की प्रचुर सामग्री मौजूद है। पहले छंद का 'चाँदनी पै चंद चूर-चूर कर डारो है' भाव सेवक और पजनेस ने कहीं अच्छे ढंग से वर्णन किया है। पजनेसजी कहते हैं—

"आधो मुख मलत अबीर ते मुकेस साथ,
नख-रेख-चिह्नित उरोजन पै झरिगो।
मानो आधे चंद को प्रकास आधी चंदिका पै,
ह्वैकै चंद चूर चंदचूर पै बगरिगो।"

सेवकजी 'चंद्रचूर' होने का कारण यों बतलाते हैं—

"मानु भानुपूर कला आपनी को सूर मानि
ह्वैकै चंद चूर चंदचूर पै बगरिगो।"

दूसरा छंद भी केशव और पद्माकर के तादृश भावों को लक्ष्य में रखकर बनाया गया है । पर पूर्ववर्ती कवियों के छंदों में भाव-परिपोषक जो सामग्री है, वह शंकर के छंद में नहीं है। इसमें हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क से अधिक काम लिया गया है । शंकरजी की 'हंसन की हाँसी-सी करति जाति' और केशव का 'किधौं राज-हंसनि को लाज-सी लगति है' एक ही बात है। छंद का ढाँचा पद्माकर के दो छंदों को देखकर तैयार किया गया है। दो पंक्तियाँ देखिए—

"सजि व्रजचंद पै चली यों मुखचंद जाको
चंद-चाँदनी को मुख मंद सो करत जात।
× × ×
धरत जहाँई जहाँ पग है, सु प्यारी तहाँ
मंजुल मँजीठ ही की माठ-सी ढरत जात।"

तीसरे छंद के भाव भी शंकरजी के मस्तिष्क की उपज नहीं हैं—

"काली पाटियों के बीच मोहनी की माँग है, कि
ढाल पर खाँड़ा कामदेव का दुधारा है।"

इस छंद में उपर्युक्त पद ही सबसे अच्छा बन पड़ा है। पर इसमें जो कुछ चमत्कार है, उसे रसलीनजी बहुत पहले, बहुत ही अच्छे ढंग से, सहृदयों की भेंट कर चुके हैं। माधुरी के जो पाठक रसलीन के उस दोहे से अपरिचित हों, वे अब उसे याद कर लें। वह इस प्रकार है—

"अरुन माँग पटिया नहीं, मदन जगत को मारि,
असित फरी पै लै धरी रकत-भरी तरवारि।"

क्या इस बात के बतलाने की भी आवश्यकता है कि रसलीन के माँग-वर्णन के समक्ष शंकर का वर्णन बिलकुल साधारण है!

शंकरजी कहते हैं कि "कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है।" इसमें पूछना यह है कि 'दीप-शिखा' के सोने की अवस्था शंकरजी कैसी मानते हैं? अगर जगती दीप-शिखा का वर्णन किया जाय, तो वह किस अवस्था में समझी जाय? निद्रा-वश दीपक को तो संस्कृत के एक कवि ने 'घूर्णित' बतलाया है[1]। यदि जगती हुई दीप-शिखा को स्थिर और वायु के झोंकों से सुरक्षित और ऊँघती हुई दीप-ज्योति को वायु-विधूनित—झिलमिलाती हुई—मानें, तो सोती हुई दीप-शिखा को बुझी हुई मानने में क्या आपत्ति है? तब कज्जल के कूट पर दीप-शिखा के सोने में क्या चमत्कार रह जाता है? निदान शंकरजी की कविता में भावापहरण को लेकर मैंने जो कुछ एतराज़ किए हैं, उनमें फेर-फार करने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती।

'आलोचना का उत्तर'-लेख का एक हू-ब-हू प्रतिबिंब 'शंकर कवि और मिश्रजी'-शीर्षक से 'प्रभा' में

---

१. "गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव।" इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

निकला है। इन दोनों लेखों की दलीलें, लिखने का ढंग तथा उद्धृत उदाहरण तक प्रायः समान हैं। इसलिये इस लेख में जो कुछ लिखा गया है, उसे दोनों ही लेखों के लेखकों के प्रति मेरा विनम्र वक्तव्य समझना चाहिए।

विद्वान् आलोचकों ने अपने लेखों में महाकवि देव के काव्य में कुछ दोष दिखलाए हैं। इस लेख में उन पर मैं विचार नहीं करना चाहता। इस लेख का आलोच्य विषय शंकरजी की कविता है। उपयुक्त स्थान और अवसर पर मैं देव के दोषों की मीमांसा करूँगा। अभी तो उन पर किए गए आक्षेपों का संग्रह करता जाता हूँ।

(११) मेरी तुकबंदी

व्रज-भाषा की कविता में युगल, जुगल और जुगुल या किशोर और किसोर, ये सभी रूप व्यवहृत होते हैं। इसलिये यदि मैंने अपनी क्षुद्रातिक्षुद्र तुकबंदी में उन्हें युगल और किशोर के रूप में व्यवहृत किया है, तो कोई अनुचित काम नहीं किया। फिर भी यदि मुझ पर नियम-भंग का अपराध प्रमाणित होने से शंकरजी अनौचित्य-दोष से छुटकारा पाते हों, तो मैं निर्दोष होते हुए भी अपने को दोषी मानने को तैयार हूँ। अभी हाल ही में सूरसागर के दो संक्षिप्त संस्करण प्रयाग से निकले हैं। एक का संपादन वियोगी हरिजी ने किया है। विद्वद्वर पं० पद्मसिंह-जी शर्मा को इस वर्ष मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है। इस पारितोषिक-प्राप्ति का निर्णय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से नियुक्त एक कमेटी ने किया है। इस कमेटी के एक सदस्य वियोगी हरिजी भी थे। आपने जिस संक्षिप्त सूरसागर का संपादन किया है, उसकी भूमिका व्रज-भाषा-कविता के गौरव-स्वरूप पं० राधाचरणजी गोस्वामी ने लिखी है। इंडियन-प्रेसवाले सूरसागर के संपादक प्रोफ़ेसर वेणीप्रसादजी एम्० ए० हैं। स्वर्गीय बाबू राधाकृष्ण-दास ने अनेक प्रतियों से शुद्ध और संशोधित करके सूर-सागर छपाया था। प्रोफ़ेसर साहब ने अपने संक्षिप्त सूर-सागर में इस संस्करण से लाभ उठाया है। इसके अति-रिक्त आपने बनारस, जयपुर और जोधपुर में हस्त-लिखित प्रतियों से मिलान करके भी पाठ शुद्ध किया है। इतना लिखने का अभिप्राय यह है कि ये दोनों संस्करण महत्त्व-पूर्ण हैं। इन दोनों में युगल, जुगल, जुगुल, किशोर और किसोर-रूप पाए जाते हैं[1]। इस संबंध में मैं विशेष कुछ नहीं लिखना चाहता।

(१२) उपसंहार

शंकर की कविता के अनौचित्यों के संबंध में आरंभ में ही मैंने लिखा है कि मैं अपने पूर्व मत को, जिसको मैंने सरस्वती में प्रकट किया है, ठीक समझता हूँ। कारणों को यथासाध्य मैंने इस लेख में स्पष्ट कर दिया है। मेरा दावा है कि यदि कष्ट उठाकर शंकरजी की कविता पढ़ी जाय, तो ऐसे अनौचित्यों के सैकड़ों उदाहरण उपलब्ध हो सकते हैं। शंकरजी सुकवि हैं, पर उनकी कविता में विकटता, रूक्षता, कर्ण-कटुता, सांप्रदायिकता एवं स्थल-स्थल पर साहित्य में निर्धारित नियमों का उल्लंघन अवश्य पाया जाता है। 'आलोचना का उत्तर'-लेख के लेखक उनकी कविता को सब दोषों से मुक्त मानते हैं। यह उनकी सम्मति है। मैं माधुरी के पाठकों से उस पर गंभीरता-पूर्वक विचार करने का अनुरोध करता हूँ।

देव के दोषों पर इस लेख में मैं विचार नहीं करना चाहता, पर नमूने के तौर पर पाठकों को यह दिखला देना चाहता हूँ कि कैसे भावों से प्रेरित होकर देवजी पर आक्षेप किए गए हैं। देवजी के एक पद में छी-छी-शब्द आ गया है। यथा, "दूध सुधा दधि माखन छी-छी।" इस पर आक्षेप यह है कि देवजी ने छूने के लिये छी-छी लिखा है। पर यह कथन भ्रम-पूर्ण है। छी-छी छूने के अर्थ में नहीं आया है। यह भूल या तो अज्ञान-वश हुई है, या जान-बूझकर पाठकगण भ्रम में डाले गए हैं। 'शब्दार्थ-पारिजात' में चतुर्वेदी द्वारका-प्रसाद ने 'छी' का अर्थ कुत्सित और धिक्कारार्थक रक्खा है, और उसे अव्यय माना है। आपटे ने 'छिः' को स्त्री-लिंग मानकर उसका अर्थ abuse और reproach किया है। यही 'छिः' हिंदी में 'छी' हो गया है। हिंदी-शब्द-सागर में 'छी' का अर्थ घृणा सूचक माना है। छी-छी को महाविरा माना है, और उसका अर्थ घिनाना

१. "गए बन घन और नवल नँदनंद**किशोर**नवल राधा नए कुंज भारी।"
(संक्षिप्त सूरसागर, इंडियन प्रेस; पृष्ठ ७९)
"कुंज-पुंज झुलाय झुलवति सहचरी चहुँ ओर ;
मनो कुमुदिनि कमल फूले, निरखि **युगल किसोर**।"
(संक्षिप्त सूरसागर, वियोगी हरि-संपादित, पृष्ठ १७५)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। इस कोश में देवजी की उपर्युक्त पंक्तियाँ भी दी गई हैं। न-जाने 'आलोचना का उत्तर' लिखनेवालों ने 'छी-छी' का अर्थ छूना कहाँ से निकाला! कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसी भ्रामक बातें इस लेख में अनेक हैं।

अंत में विद्वान् पाठकों से मेरी विनीत प्रार्थना है कि वे मेरे दिखलाए अनौचित्यों पर विचार करें, और मेरी जो भूल हो, उसे मुझे सुझावें। मुझे अपने पक्ष का अनुचित रीति से समर्थन नहीं करना है। यदि मुझे अपनी भूल मालूम हो जायगी, तो उसे मैं अवश्य स्वीकार करके सुधार लूँगा।

कृष्णविहारी मिश्र

कविता पर परिस्थिति का प्रभाव

(१)



स के प्रसिद्ध साहित्य-समालोचक सांत बोव (Sainte Beuve) का यह सिद्धांत था कि समालोचक को अपने समालोच्य ग्रंथ के कर्ता के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेने पर ही उसकी समालोचना शुरू करनी चाहिए। वह स्वयं इस पद्धति के अनुसार कार्य करता था। ग्रंथकार की मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक बातों तक का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान प्राप्त हो जाने पर ही वह उसके ग्रंथ में हाथ लगाता था, और इन्हीं बातों के आधार पर वह एक ऐसा मनोहर चित्र खींच देता कि पढ़नेवाले के हृदय-पटल पर वह सदा के लिये अंकित हो जाता। और समालोचकों के विषय में चाहे यह बात बहुत ठीक हो या न हो, किंतु सांत बोव आज तक इस बात के लिये साहित्य-संसार में विख्यात है कि समालोचक जिस राह की ओर उँगली उठाता है, उसी ओर प्रत्येक पाठक को जाना पड़ता है। समालोचना एक प्रकार का चश्मा है, जिसके रंग के अनुसार ही सब कुछ दिखलाई दे सकता है। सांत बोव अपने नियम को 'ग्रंथकार के मानसिक विकास का प्राकृतिक इतिहास' कहा करता था। परंतु इससे उसका तात्पर्य यह नहीं था कि समालोचक अपने ग्रंथकार के जन्म से लेकर उसके मरण-पर्यंत की बातों का ब्योरेवार हाल जान लेने पर ही अपनी लेखनी उठावे, और न यही कि वह मनोविज्ञान के नियमों के अनुसार पहले उसके मस्तिष्क की जाँच कर ले, तत्पश्चात् उसके आधार पर उसके ग्रंथ के विषय में कुछ भला-बुरा कहने का साहस करे। वह स्वयं अपने समकालीन ग्रंथकारों की पुस्तकों का विवेचन करते समय उनके साथ-साथ भेजे हुए पत्रों में किए गए समाधानों की विशेष पर्वा नहीं करता था। उत्तर में बहुधा लिख देता था कि समालोचक को ग्रंथ से ही मतलब है, ग्रंथकार से नहीं। उसके लिये ग्रंथकर्ता अथवा उसकी परिस्थिति के विषय में केवल उतना ही ज्ञान आवश्यक है, जितना कि उस ग्रंथ-विशेष से संबंध रखता हो। "मनुष्य अपनी परिस्थिति का ही पुतला है", यह कहावत चाहे अक्षरशः ठीक न हो, किंतु इस बात से सभी सहमत होंगे कि हमारे प्रत्येक कार्य पर अपने प्राकृतिक अथवा सामाजिक परिवेष्टन का प्रभाव किसी-न-किसी प्रकार पड़े विना नहीं रह सकता। और, कवि अथवा लेखक इनसे दूर कभी रह नहीं सकता। इसी प्रकार oscar Wilde-नामक प्रसिद्ध लेखक और समालोचक पर अपना आलोचनात्मक निबंध लिखते हुए एक अँगरेज़-लेखक ने ग्रंथकार के कार्य को उस पिटारी के समान माना है, जिसकी ताली उसके मालिक के साथ ही खो गई हो, और, इसी कारण, जिसके खोलने के लिये अथवा जिसके भीतर की वस्तुओं को कम-से-कम थोड़ा-बहुत जानने के लिये केवल उस मालिक के छोड़ गए हुए संकेतों का अनुसरण करना पड़े। यही कारण है कि लेखकों के जीवन की घटनाएँ कभी-कभी बहुत रोचक हो जाया करती हैं प्राचीन लेखकों अथवा कवियों के विषय में इसीलिये बहुधा बड़े परिश्रम के साथ खोज की जाती है।

पर यह उपर्युक्त नियम साहित्य के सभी अंगों पर एक ही प्रकार से लागू नहीं हो सकता। दार्शनिक, ऐतिहासिक अथवा निबंध-विषयक ग्रंथों पर उनके लेखकों की परिस्थिति का प्रभाव उतना गहरा नहीं पड़ सकता, जितना कि काव्य-विषयक ग्रंथों पर। पहली श्रेणी की पुस्तकों का उद्देश्य प्राकृतिक वस्तु अथवा सत्य का स्पष्टीकरण या प्रतिपादन होता है। यहाँ पर भौतिक संसार के नियमों से इधर-उधर होना अपने मंतव्य के विपरीत कार्य करना है। किंतु दूसरी श्रेणी की पुस्तकों के विषय में यह बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। वहाँ पर तो एक नए संसार की ही रचना देखने को मिलती है। इस कारीगरी में कारीगर का प्रभाव पड़े विना नहीं रह सकता, और कारीगर स्वयं अपनी शक्ति के अनुकूल कार्य करता है। पहली रचना यदि स्वाभाविक कही जा सकती है, तो दूसरी कृत्रिम; क्योंकि इसका प्रत्येक विषय अधिकतर भावना-सृष्ट या काल्पनिक होगा। काव्य उस भावनामयी चमत्कार-पूर्ण रचना का नाम है, जिसके पढ़ते अथवा सुनते ही एक अलौकिक आनंद का अनुभव होने लगे, जिसकी भाषा मर्म की तह तक को छूनेवाली हो, और जिसके भावों का प्रभाव पाठक अथवा श्रोता की अंतरात्मा पर सदा के लिये पड़ जाय। कविता जैसे स्थान से उत्पन्न होती है, वैसे ही स्थानों पर जमना भी पसंद करती है। इतिहास इत्यादि के विषय में इन बातों की आवश्यकता नहीं। इतिहास का उद्देश्य, अरस्तू के शब्दों में, किसी व्यतीत घटना का हाल बतलाना है, और कविता का काम अघटित घटनाओं के साध्य होने अथवा न होने की ओर संकेत करना है। इसका क्षेत्र इतिहासवाले से कहीं बड़ा है। कविता इसी कारण सार्वलौकिक हुआ करती है। सच्ची कविता का देश, काल अथवा समाज कभी परिमित नहीं रह सकता। वह सबके लिये एक-सी होती है। परिस्थिति का प्रभाव काव्य के उस वास्तविक तत्त्व को छू तक नहीं सकता। यह वह शक्ति है, जिसका अधिकार दूसरों की आत्माओं में 'रस' उत्पन्न कर देता है। हमारे साहित्याचार्यों के कथनानुसार यदि भाषा कविता-कामिनी का शरीर है, और अलंकार आभूषण हैं, तो यह रसोत्पादक-शक्ति उसकी आत्मा है; जो सब कहीं एक ही होगी। परिस्थिति केवल उसके वस्त्र इत्यादि का काम देती है, और इसी कारण भिन्न-भिन्न देश, काल अथवा समाज के अनुसार वह सदा बदलती भी रहती है। कविता के तीनों मुख्य अवयवों (अर्थात् उसके विषय, ढंग और आनंदोत्पादक प्रभाव) पर यह अपना अधिकार जमाती है। दो देशों में विकास पाकर बढ़ी हुई भिन्न-भिन्न भाषाओं की कविताएँ अपनी-अपनी परिस्थिति के कारण कई प्रकार से भिन्न-भिन्न हो जाया करती हैं। आज से कई वर्ष पहले—संभवतः १९६७ विक्रमाब्द में—स्वर्गीय साहित्य-मर्मज्ञ पं० बालकृष्ण भट्ट ने प्रयाग की 'मर्यादा' के प्रथम अंक में "जुदी-जुदी भाषाओं की कविता के जुदे-जुदे ढंग"-शीर्षक एक छोटा-सा लेख लिखा था। उसमें आपने थोड़े ही शब्दों में कविताओं की इस भिन्नता पर बड़ा प्रकाश डाला था। वास्तव में यह एक कौतूहल की बात है कि मानव-प्रकृति के निसर्गतः एक होने पर भी लगभग एक ही भाव के प्रकट करने के लिये भिन्न-भिन्न कवियों को भिन्न-भिन्न बातों का आश्रय लेना पड़ता है। यही नहीं, वे उनसे इस प्रकार परिवेष्टित रहते हैं कि विना वैसा किए उनका काम ही नहीं चल सकता। न्याय के अनुसार कार्य करनेवाले विचार-शील समालोचक को इस बात का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए कि असली वस्तु परिस्थिति-विशेष के कारण भिन्न नहीं हो जाती; उसमें दिखलाई देनेवाली भिन्नता केवल बाहरी भिन्नता ही है। पाठकों के विनोदार्थ इस बात को नीचे लिखे कुछ उदाहरणों से स्पष्ट करने की चेष्टा की जाती है।

भिन्नता शायद कोई हमारी प्रांतिक भाषाओं की कविताओं में भी पा सकता है; किंतु उस दशा में कुछ सूक्ष्म रीति से विचार करने की आवश्यकता पड़ेगी। सुबीते के लिये यहाँ पर दो भिन्न-भिन्न देशों की भाषाओं के काव्यों की तुलना की जाती है। इनमें से एक शीत-प्रधान टापू है, जहाँ के कार्य-शील पुरुष आधुनिक सभ्यता के अनुयायी हैं, और दूसरा एक उष्ण-प्रधान प्रायद्वीप है, जहाँ के विचार-शील पुरुष एक प्राचीन सभ्यता के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं। पहले की भाषा का साहित्य दूसरे की भाषा के साहित्य से कहीं अधिक पूर्ण है; किंतु इस बात को ध्यान में न रखकर यहाँ पर केवल उनकी कविताओं की ही परिस्थिति के अनुसार, पारस्परिक तुलना की जायगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दोनों देश इँगलैंड और भारतवर्ष होंगे, और कविताएँ अँगरेज़ी और हिंदी की होंगी। परिस्थिति का मतलब देश, काल, समाज और कुछ अंशों में व्यक्तित्व भी होगा।

देश के अंतर्गत जल-वायु, प्राकृतिक दृश्य, फल-फूल, पशु-पक्षी इत्यादि कई विषय आते हैं। जल-वायु के संबंध में, उपर्युक्त कथन के अनुसार भारतवर्ष के ग्रीष्म-प्रधान होने के कारण, हिंदी-कवि सर्वदा गरमी की अपेक्षा शीतलता को ही रुचिकर समझता हुआ देख पड़ेगा। अपने प्रिय मित्र के साथ मिलने के आनंद को वह—

"कीजिय चंदन-लेप बरु हिम, कपूर सँग लाय;
हियो न तदपि जुड़ाय त्यों, ज्यों प्रिय अंक लगाय।"
(जयदेव)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर प्रकट करता है ; किंतु शीतलता की अपेक्षा गरमी को ही पसंद करनेवाला अँगरेज़ी-कवि कुछ वैसे ही आनंद को—

O, for that warmest heart of thine,
The form that tender lovely grace,
Thy hearty warming long embrace,
O, for the blissful days of mine.

(Anon)

कहकर स्मरण करता है । इसके सिवा पति-परायणा स्त्री का वर्णन करने में इसी के अनुसार हिंदी-कवि—

पाँव पखारि, बैठि तरु-छाँही ; करिहौं बायु मुदित मन माँही ।

(तुलसीदास)

अथवा—

छाकहु बैठि दुअरिया, मींजहु पाय ;
पिय-तन पेखि गरमियाँ बिजन डुलाय ।

(रहीम)

कहकर अपना भाव दरसाता है ; किंतु कुछ ऐसे ही आशय पर अँगरेज़ी-कवि—

For them no more the blazing hearth shall burn,
Or busy housewife ply her evening care:

(T. Gray.)

कहकर उसी भाव का स्मरण कराता है । यही नहीं, इस नियम के अनुसार ही हिंदी-कवि विरह की दशा वर्णन करते समय गरमी को दुःख-दायक समझता हुआ देख पड़ता है । जैसे —

बिरह-अगिनि तनु तूल समीरा ; स्वाँस जरै छन माँह सरीरा ।
नयन स्रवै जल निज हित लागी ; जरै न पाव देह बिरहागी ।

(तुलसीदास)

में कवि ने इस बात को प्रकट किया है : किंतु अँगरेज़ी-कवि को इसके विपरीत शीत से ही विरह का बोध कराना पड़ता है । अपने प्रिय मित्र को, विरह-कष्ट दिखलाता हुआ, एक कवि लिखता है—

Speak !—this soft warm heart, once free to hold
A thousand tender pleasures, thine and mine,
Be left more desolate, more dreary cold
Than a forsaken bird's nest fill'd with snow
'Mid its own bush of leafless eglantine.

(Wordsworth)

प्राकृतिक दृश्यों के विषय में भी यही हाल है । जो सामग्री कवि को अधिकता के साथ मिलेगी, उसी के आधार पर वह अपने मनोगत भाव प्रकट किया करेगा । इँगलैंड एक द्वीप है, इस कारण अँगरेज़ी-कविता में जितना समुद्र अथवा जहाज़ों का वर्णन देखने को मिलेगा, उतना भारतीय भाषा हिंदी की कविता में नहीं । अँगरेज़ी-भाषा के प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर के कई एक नाटकों तथा बायरन, शेली, कोलरिज इत्यादि के कुछ काव्यों में समुद्र को जितना महत्त्व-पूर्ण स्थान मिला है, उतना—

'जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर आवै ।'

कहनेवाले अथवा सेतुबंध का वर्णन करनेवाले हिंदी-कवि तक नहीं दे पाए हैं । समुद्र-विषयक बातों का उल्लेख हिंदी-कविता में विशेषकर नदियों के संबंध में अथवा कोई उपमा या रूपक बाँधने में आया है । सिंहल-द्वीप की कथा में भी उसको उचित स्थान नहीं मिला । हाँ, नदियों अथवा पर्वतों के वर्णन में हिंदी-कवि संभवतः अँगरेज़ी-कवियों से पीछे नहीं कहे जा सकते । वनों अथवा कुंजों के विषय में भी यही बात है । प्राचीन ऋषियों का स्थान होने के कारण जंगल बल्कि विशेष रूप से कविता में स्थान पाता आया है । उद्यान तथा तालाब का भी उल्लेख यहाँ पर अधिक मिलेगा । परंतु झीलों के विषय में यह बात पूर्ण रूप से नहीं कही जा सकती । अँगरेज़ी-कवियों ने इन्हें अधिक अपनाया है । वर्ड्सवर्थ इत्यादि दो-तीन कवि तो इसी के संबंध से Lake Poets (झील के कवि) तक कहलाने लगे । इसी प्रकार ढूँढ़ने से अन्य दृश्यों के विषय में भी कहा जा सकता है । किंतु उनकी ओर यहाँ पर संकेत करने अथवा उन सबके उदाहरण इत्यादि देने को यहाँ पर स्थान नहीं । इतना ही पर्याप्त है ।

फल-फूल इत्यादि का वर्णन भी प्राकृतिक दृश्यों के ही अंतर्गत हो सकता है । यों तो अँगरेज़ी-कवि ऐसे वर्णनों के लिये अधिक प्रसिद्ध समझा ही जाता है, किंतु हिंदी-कवियों ने भी, विशेषकर ऋतुओं का वर्णन करते समय, अपने फल-फूलों का विवरण बहुत ही उत्तम दिया है । यदि इसी एक विषय पर अँगरेज़ी-कवियों द्वारा की गई कविताओं की तुलना की जाय, तो भी उक्त विषय को स्पष्ट करने के लिये यथेष्ट सामग्री मिल जायगी । वसंत अथवा शरद्-ऋतुओं में जो-जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल इँगलैंड में देखने को मिलेंगे, वे उसी समय भारत-वर्ष में नहीं मिल सकते ; और जो यहाँ देख पड़ेंगे, उनका वहाँ बाहुल्य नहीं। वहाँ तो कई फूलों का विकास, वास्तव में, ग्रीष्म-ऋतु में ही हुआ करता है। उनके लिये मई का महीना एप्रिल से किसी प्रकार कम नहीं ; बल्कि कई बातों में बढ़कर ही कहा जा सकता है। अस्तु। अँगरेज़ी-कवि जिन फूलों का अधिक आश्रय लेता है, उनमें Daisy, Rose, Daffodil, Violet इत्यादि मुख्य कहे जा सकते हैं। Daisy का सौंदर्य अँगरेज़ी-कवियों को इतना रुचिकर जान पड़ा है कि उसके नाम की व्युत्पत्ति Day's eye (दिन की आँख) का अर्थ लगाकर किया करते हैं। आदि महा-कवि चासर से लेकर आज तक इस फूल का आदर होता आया है। प्रकृति के प्रसिद्ध पुजारी वर्ड्सवर्थ कवि ने इसे मित्र, Poet's darling, Nature's favourite इत्यादि कई नामों से पुकारा है, और इसकी प्रशंसा में कई एक पद्य लिख डाले हैं। स्कॉच कवि वर्न्स ने अपने हल से इसके कुचले जाने पर ऐसा शोक प्रकट किया था कि उसकी वह कविता सदा के लिये अमर हो गई। टेनिसन इत्यादि और कवियों ने भी इसको अपनाया है। यह फूल एक ही साथ सादगी, सौंदर्य, नम्रता तथा मिलनसारी का बोधक समझा जाता है। इसी प्रकार Rose अपने गुलाबी रंग के लिये, Daffodil सुनहलेपन के लिये, Violet अपने रंग तथा कोमलता के लिये, Little और Lesser Calendine अपने आनंद और धैर्य के लिये प्रसिद्ध हैं। हमारे हिंदी-कवियों के लिये सबसे प्रिय कमल का फूल है। इसके रंग पर वे इतने मुग्ध हैं कि एक ही साथ—

'नव कंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज-पद, कंजारुणम्।'

कह डाला है। यही नहीं, कभी-कभी इसके नीले होने पर भी इसे "नील-सरोरुह-श्याम" के नाते नहीं छोड़ते। अति प्राचीन संस्कृत साहित्य से ही इसका संसर्ग होता आया है। सूर्य के साथ लाकर इसे कभी-कभी मैत्री दरसाने के लिये, कभी-कभी चंद्रमा के साथ लाकर शत्रुत्व समझाने के लिये, अथवा कभी-कभी शरद्-ऋतु की छटा व्यक्त करने के लिये कमल का प्रयोग किया जाता है। इसके सिवा टेसू, पलास और कचनार अपने-अपने लाल रंगों के लिये, चंपक पीत वर्ण के लिये, कास और कपास श्वेत वर्ण के लिये, केतकी काँटों के लिये, आम की मंजरी कामोद्दीपन के लिये, मालती कुंजों के लिये, तथा कुमुद, कदंब, कनेर, इत्यादि अपने-अपने गुण-विशेष के कारण कविता में लाए जाते और कवियों के भावों को प्रकट किया करते हैं। फलों के वर्णन हिंदी-कविता में अँगरेज़ी-कविता से अधिक मिला करते हैं। यही दशा यहाँ के धान इत्यादि के खेतों की भी है। बड़े-बड़े वृक्षों का उल्लेख भी दोनों कविताओं में धीरता, महत्ता, दान-शीलता अथवा दयालुता तथा शांति-प्रियता इत्यादि गुणों को दिखाने के लिये बहुत किया गया है।

अँगरेज़ी-कवि पशुओं में से काइयाँपन के लिये जिस प्रकार लोमड़ी को चुनते हैं, उसी प्रकार हिंदी-कवि उस गुण के लिये गरम देशों में बहुतायत से पाए जानेवाले शृगाल को ही बहुत दिनों से उपयुक्त मानते आए हैं। शीत-प्रधान देशवाले अँगरेज़ी-कवियों ने भेड़ के बच्चे को ही निर्दोष अथवा निरुपद्रवी का बोधक समझा है, और भारतवर्ष के हिंदी-कवियों की दृष्टि में हिंदुओं की पूज्य गो-माता उस गुण से पूर्ण है। हिंदी-कवि के लिये स्वामि-भक्त होने पर भी अशुद्ध होने के कारण कुत्ता—

'खल परिहरिय श्वान की नाँई।'

जैसे स्थानों पर काम आता है; किंतु अँगरेज़ी-कवि अपने मित्र कुत्ते के मरने पर शोकाकुल होकर अपना उद्गार करुण-रस से भरी हुई उत्तम कविता में प्रकट करने लगता है। हाथी का वर्णन अँगरेज़ी-काव्य में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता ; किंतु हिंदी में इस पशु के ऐसे-ऐसे वर्णन विद्यमान हैं, जिनमें कवियों की विवरण-शक्ति पराकाष्ठा तक पहुँच गई है। मतवाले तथा दीर्घ-काय पुरुषों के वर्णन के समय इसका नाम बहुधा आया करता है। इसी प्रकार बैल अपने कंधे के लिये, सिंह अभिमान-भरी मस्तानी चाल के लिये, सिंहिनी अपनी कटि के लिये तथा मृग अपनी सुकुमारता तथा अपने बड़े-बड़े सुंदर नेत्रों के लिये प्रसिद्ध है। अँगरेज़ी-कवि सिंह को उसी प्रकार साहस का बोधक और भेड़िए को क्रूरता का द्योतक समझते हैं। बकरी के बच्चे को दीनता और बिल्ली के बच्चे को खेलाड़ीपन का चिह्न समझते हैं। इन सबके उदाहरण में कई कविताओं के उद्धृत करने के लिये यहाँ स्थान नहीं। पक्षियों के विषय में भी इसी प्रकार तुलना की जा सकती है। अँगरेज़ी-कवियों को Sky Lark नाम का पक्षी बहुत प्रिय है। शेली तथा वर्ड्सवर्थ ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर इतनी उत्तम कविता की है, जितनी वे कर सकते थे। इनमें से दूसरे ने यदि इस पक्षी को Ethereal minstrel (स्वर्गीय गवैया) तथा Pilgrim of the sky (आकाश का तीर्थ-यात्री) बतलाया है, तो पहले ने इसकी तुलना कवि, कुलीन युवती स्त्री, जुगनू तथा छिपे हुए प्रस्फुटित गुलाब के फूल से की है। उसके लिये इसका संगीत सभी मधुर शब्दों से कहीं बढ़कर है। Nightingale (बुलबुल) का इन कवियों ने विरहिणी के रूप में वर्णन किया है; जो—

xxx Philomel will deign a song
In her sweetest, saddest plight,
smoothing the nigged brow of night.
× × ×
xxx Sweet bird, that shunn'st the noise of folly,
most musical, most melancholy!
(J. Milton)

होती है। इस पक्षी के स्थान पर हिंदी-कवियों ने संभवतः पपीहे को रक्खा है; क्योंकि बहुधा विरहिणी नायिकाएँ इसी पक्षी की मधुर पुकार (पी कहाँ! पी कहाँ!) से और भी जल-भुन जाया करती हैं। इसी प्रकार बली पक्षी अँगरेज़ी-कवियों के यहाँ Eagle (उक़ाब) कहा जाता है; परंतु हिंदी-कवि के यहाँ गरुड़ से बली चिड़िया नहीं। उल्लू अँगरेज़ी-कवियों के यहाँ उतना अशुभ नहीं, जितना हिंदी-कवियों के यहाँ। इनके सिवा अँगरेज़ी में Swallow, Limset, Red-breast इत्यादि कई और छोटी-बड़ी चिड़ियों का नाम विशेष रूप से आता है। इसी प्रकार हिंदी में चकोर हठधर्मी प्रेमी के स्थान पर आता है। जैसे—

धन-धन सुगढ़ चकोर, तु खग-कुल-आगरिया;
पालै नियम कठोर, कि बंस-उजागरिया।
चंद तेरा चित-चोर, तु उस पर बावरिया;
लख-लख उसकी ओर, कि होय निछावरिया।
चुगती अग्नि-अँगार, कि दृढ़ पन रावरिया;
धन-धन प्रेम अपार, कि प्रेमिन नागरिया।
(श्रीधर पाठक)

तथा—

अधिक सनेह देह भइ भोरी;
शरद-शशिहि जनु चितव चकोरी।
(तुलसीदास)

वियोग का दुःख दिखलाने के लिये हिंदी-कवि बहुधा चक्रवाक का आश्रय लिया करते हैं। जैसे—

कानन रहेउ तड़ाग-इव, चक-चकई सिय-राम;
रावण निशि बिछुरन किए, दुख बीते चहुँ याम।
(तुलसीदास)

इसी प्रकार चातक को भिक्षुक के समान समझकर 'चातक रटत तृषा अति ओही' इत्यादि कहा करते हैं। दोनों भाषा के कवि लगभग एक ही प्रकार से कोयल को गानेवाली, कपोत को शांति-प्रिय तथा गौरैया को कूजने-वाली समझते हैं। देश-संबंधी इन कतिपय उपर्युक्त बातों का प्रभाव इतना गहरा है कि बहुत-से वर्ड्सवर्थ के समान कवि 'प्रकृति' को ही बहुत कुछ समझ बैठे हैं।

लेख बढ़ता जाता है। आज यहीं तक। अगली संख्या में हिंदी और अँगरेज़ी-कविताओं पर परिस्थिति के अन्य अंशों का प्रभाव दिखलाकर लेख समाप्त किया जायगा।

परशुराम चतुर्वेदी

रत्न और पाषाण

[पीयूष-छंद]

(१)

ज्ञात हमको है नहीं क्यों धूल पर
गिर पड़ा था 'रत्न' इक सुंदर महा;
यों उसे रज में पड़ा अवलोक कर,
एक दिन 'पाषाण' ने उससे कहा—

(२)

"रत्न! क्यों तू लोटकर यों धूल में
स्वीय गौरवमय गँवाता कांति है?
कंकड़ों के बीच बेसुध-सा पड़ा,
क्यों, बता, फैला रहा तू भ्रांति है?

(३)

निज अलौकिक सद्गुणों के पुंज का,
क्या नहीं तुझको ज़रा अभिमान है?
छोड़कर क्यों संग मणि-मुक्तादि का,
जो कराता आज निज अपमान है?

(४)

जा किसी धनवान ही के गेह में,
क्यों नहीं देता उसे यश-दान तू?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जटित या रानियों के हार में,
क्यों नहीं पाता अमित सम्मान तू ?

(५)

हो नृपति के सिर मुकुट पर सोहकर,
क्यों न दिखलाता वहाँ तू नृत्य है ?
देव-प्रतिमा या शिवालय में पहुँच
क्यों न तू होता अरे कृतकृत्य है ?"

(६)

उक्त प्रश्नों को सुहृद 'पाषाण' के
'रत्न' था एकाग्र मन से सुन रहा ;
जब उसे देखा, हुआ चुप, उस घड़ी,
सिर झुका आदर-सहित उसने कहा—

(७)

"ठीक है, पाषाण, कहना आपका,
किंतु इसमें भी छिपा कुछ भेद है।
इसलिये इस क्षुद्र-से अपमान का
अब नहीं होता मुझे कुछ खेद है।

(८)

'रत्न' हूँ मैं नाम से, तो क्या हुआ ?
पर असल में हूँ न क्या पत्थर, कहो ?
इष्ट है मुझको भला फिर त्यागना,
संग पत्थर और कंकड़ का अहो !

(९)

दीन से बनकर धनी, मानी भला
दीन जन को भूल जाना चाहिए ?
और क्या पाकर ज़रा-सी उच्चता
दर्प से फिर फूल जाना चाहिए ?

(१०)

कंकड़ों या पत्थरों को देख लें
दृष्टि से अवहेलना की अज्ञ जन ;
पर, 'नहीं कोई कहीं इनसे अधिक
पर-हितैषी'—यह बताते विज्ञ जन।

(११)

क्षुद्र-सी कुटिया, बड़े मंदिर-महल,
हैं न क्या इन पत्थरों के ही घने ?
हो गुहा छोटी कि हों भारी अचल,
हैं सभी तो पत्थरों के ही बने।

(१२)

'आत्म-श्लाघा हैं गुणी करते नहीं',
यह सिखाते शुभ्र रज-कण आपके * ।
क्या कहूँ ? कितना कहूँ ? कैसे कहूँ ?
है सुगम गिनना न गुण-गण आपके।

(१३)

क्या हुआ, बहु-मूल्य या उपमान हूँ,
रंग का या रूप का हूँ धाम जो ?
पर, नहीं कुछ काम का तब तक सभी,
विश्व-सेवा में न आया काम जो।

(१४)

हो न सकती सत्य शोभा, हों जटित
ताज में, गृह-द्वार में, या हार में ;
वस्तुतः होता बड़ा अपमान है,
मोह से हो पद-दलित संसार में।

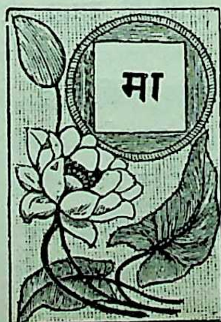
(१५)

प्राप्य है आदर तभी इस लोक में,
दूसरों का हित अगर करता रहे ;
दान देकर लोक-हित सर्वस्व को
दुःख दीनों का सदा हरता रहे।"

रत्नांबरदत्त चँदोला "रत्न"

असत्य

प्राक्कथन



धुरी वर्ष १, खंड २, संख्या १ में हमने तर्क-शास्त्र के रूप की चर्चा की थी। बतलाया था कि तर्क-शास्त्र का विषय सत्यासत्य-निरूपण है। पाठकों को यह भी मालूम हो गया होगा कि तर्क-शास्त्र का उद्देश्य सत्य-प्राप्ति और असत्य-निराकरण है। लोगों की समझ में यह भी आ गया होगा कि तर्क-शास्त्र के दो प्रधान रूप हैं ; एक वर्णनात्मक, दूसरा समालोचनात्मक। हम लोग असत्य से बचना चाहते हैं। अतएव असत्य के रूप

* 'पाषाण' के।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हमको विशेष परिचय रखना चाहिए। हम यदि असत्य को जान लें, तो उससे सर्वथा बच सकते हैं। अन्यथा जब हमको सत्यासत्य का ज्ञान ही नहीं, तो फिर असत्य से रक्षा कहाँ ? असत्य के धोके में हम सहज ही फँस जायँगे। फिर उससे छुटकारा पाना तो दूर रहा, असत्य की उलझनों से पार पाना ही कठिन होगा। हमारा लक्ष्य असत्य का निराकरण है। अतएव सबसे पहले हम उसके रूप का निरूपण करेंगे। कारण, यदि हम असत्य से बच जायँ, तो फिर सत्य तक पहुँचना कुछ विशेष कठिन बात नहीं है। अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिये अपने मार्ग के कंटकों को जानना हमारे लिये परमावश्यक है। अतएव हम आज अपने पाठकों के समक्ष असत्य का सजीव चित्र अंकित कर देना चाहते हैं।

साधारण रूप

सत्यासत्य का प्रश्न अत्यंत प्राचीन है। यह प्रश्न प्राचीन काल से प्राच्य तथा पाश्चात्य देशों में उठ रहा है। हमारा आशय, इस लेख में, पाश्चात्य देशों से रहेगा। पर हम यह नहीं कहते कि प्राच्य देशों में यह प्रश्न उठा ही नहीं। उठा निस्संदेह, पर इस छोटे-से निबंध में दोनों देशों के विषय में विचार करना सहज नहीं है। अतएव हम अपने विषय को और भी संकुचित कर देंगे। आगे चलकर हम कभी आपके समक्ष इस प्रश्न पर भारतीयों के विचार भी लिखेंगे। आप कहेंगे, पहले अपने यहाँ की बात तो जान लो, तब आगे बढ़ना। आपके मतानुसार हमें पहले भारत के दर्शन लिखने चाहिए। मगर हमारा कहना है कि हम अपने यहाँ की बात तो किसी प्रकार कुछ जानते भी हैं, विदेशियों की बात भी तो सुनें।

ग्रीस-देश में, प्राचीन काल में, एक बड़ा दार्शनिक हो गया है। नाम है उसका पलातून (Plato)। शायद उसके नाम से हमारे पाठकगण भी परिचित होंगे। वह प्रसिद्ध सुकरात (Socrates) का शिष्य तथा अरस्तू (Aristotle) का शिक्षक था। सत्यासत्य का प्रश्न उसके हृदय में भी उठा। उसने Thœretedus नाम की एक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक ज्ञान-शास्त्र की है। उक्त पुस्तक में वह प्रश्न उठाता है कि "असत्य किस प्रकार संभव हो सकता है ? सत्य तथा असत्य दोनों एक ही भाँति हमारी चेतना में आते हैं। फिर सत्य तथा असत्य में क्या भेद हो सकता है ? यदि ज्ञान या चेतना नहीं, तो फिर असत्य कहाँ ? यदि हमको यह ज्ञान है कि मनुष्य उड़ते हैं, तब तो हम असत्य हैं; पर यदि हमें कुछ चेतना ही नहीं, तो फिर सत्यासत्य कहाँ ? अब सत्य, यथा मनुष्य मरणशील है, तथा असत्य, यथा मनुष्य आकाश में उड़ते हैं, दोनों हमारी चेतना में हैं। फिर हम एक को सत्य तथा दूसरे को असत्य क्यों कहते हैं ? फिर हमारे सत्यासत्य की माप क्या है ?" हम देखते हैं, इन्हीं प्रश्नों पर पलातून ने अपनी पुस्तक में कुछ विचार किए हैं। हम आज उन विचारों को लिखने नहीं बैठे हैं। यदि संभव हुआ, तो कभी आप लोगों के समक्ष उन विचारों को उपस्थित करेंगे। इस निबंध में तो उतना लिखने का स्थान नहीं है। हम तो अपने लक्ष्य की ओर जा रहे हैं। यदि हम इस तरह भटकते फिरेंगे, तो अपने लक्ष्य तक किस तरह पहुँच सकते हैं ?

फ्रांस-निवासी Descartes (डेकार्ट) साहब के समय से इस प्रश्न ने सर्वथा दूसरा रूप पकड़ा। अब ज्ञान के विषय में भी संदेह होने लगा। प्रश्न उठा, ज्ञान कैसे संभव हो सकता है ? ज्ञान क्या है ? ज्ञान की सीमा क्या है ? इन्हीं सब प्रश्नों के हल करने में महात्मा Kant (कैंट) की Critic of Pure Reason (समालोचनात्मक ज्ञान-शास्त्र)-नामक पुस्तक की उत्पत्ति हुई।

पर ज्ञान के विषय में तो पलातून को संदेह हुआ ही नहीं। यदि असत्य न होता, तो उसको ज्ञान-शास्त्र लिखने का उपक्रम ही न करना पड़ता। हमारा भी प्रश्न पलातून के समान है। दोनों में भेद केवल यह है कि हमारा प्रश्न सत्यासत्य की चेतना में एक भाँति से उपस्थिति है, और उक्त विद्वान् का प्रश्न सत्यासत्य की चेतना में साथ-साथ उपस्थिति है। हम यह नहीं कहते कि सत्य तथा असत्य, दोनों का चेतना में आना एकसाथ होता है; बल्कि हमारा कहना है कि दोनों एक ही तरह से हमारी चेतना में आते हैं। अब सत्यासत्य का विचार कैसे हो ? हम सत्य तक किस भाँति पहुँच सकते हैं।

इस प्रश्न के उत्तर में अनुकरणवादी (Representativists) कहते हैं कि जब हमारे आंतरिक विस्तृत विचार बाह्य संसार के अनुकूल होते हैं, तब हम सत्य तक पहुँच सकते हैं। हम सामने अपनी घड़ी देखते हैं। घड़ी के आकार-प्रकार है। इन लोगों का कहना है कि हमारी चेतना में हमारे मानसिक पटल पर, अपनी घड़ी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ोटो खिंच जाता है, तब हम कहते हैं कि यह हमारी घड़ी है। इन लोगों के मत में मस्तिष्क फ़ोटो खींचने का कॅमरा है। जिस तरह कॅमरे से हमारे फ़ोटो खिंच जा सकते हैं, ठीक उसी तरह हमारे मस्तिष्क-पटल पर फ़ोटो खिंच जा सकते हैं। यदि हमारा फ़ोटो ठीक-ठीक उतरा, तब तो हम सत्य तक पहुँचते हैं, नहीं तो असत्य ही में भटकते फिरते हैं। इनका कहना है कि विचार सत्ता के अनुकरण-मात्र हैं। यदि वे सत्ता का ठीक-ठीक अनुकरण करते हैं, तो हम सत्य तक पहुँचते हैं। अब कठिनाई यह उपस्थित होती है कि हम अपने विचार तथा सत्ता की तुलना किस भाँति कर सकते हैं? हम तो उनकी तुलना करने में समर्थ होते हैं, जो हमारी चेतना में उपस्थित रहते हैं। मनोवैज्ञानिक भाई बतलाते हैं, तुलना के लिये अत्यंत आवश्यक है कि तुलनीय पदार्थ हमारी चेतनता में रहें। अब सत्ता यदि हमारी चेतनता में आ गई, तब तो वह भी संवित् बन गई। फिर हम संवित् और सत्ता की तुलना करने के बदले संवित् तथा संवित् की तुलना करने लगते हैं। संभव है, जिसे हम सत्ता समझकर अपने ज्ञान की माप मानते हैं, वह हमारा विचार, और भ्रम-शील विचार हो। यदि हमारे विचार और सत्ता के एक नियम हैं, तब तो हम सत्य को पा सकते हैं। नहीं तो सत्यासत्य का विचार कोरी कपोल-कल्पना ही है। हम सत्ता को नहीं जान सकते।

संविद्वादी (Idealist) Lotze महाशय ने अपने तर्क-शास्त्र में यह बतलाया है कि साधारण ज्ञान को सत्य कह सकते हैं। वह कहते हैं, Validity is in generality, अर्थात् सत्यता साधारण में है। उनके विचार में हम अपने संवित् को जान सकते हैं; सत्ता जानने की क्षमता हममें नहीं है। अमुक संवित् सत्य है अथवा नहीं, इस प्रश्न के लिये यह आवश्यक है कि हम अपने अमुक संवित् की शेष से तुलना करें। यदि वह सबसे सामंजस्य रखता हो, तब हम उसको सत्य कहने में झिझक नहीं सकते। उन्होंने अपने तर्क-शास्त्र के संवित्-संसार-नामक अधिकरण में इस बात को स्पष्ट रूप से झलका दिया है। Lotze का तर्क-शास्त्र हमने हिंदी में आप लोगों के लिये कर दिया है। पर द्रव्याभाव तथा समयाभाव से अब तक प्रकाशित नहीं हो सका। और भी एक बात है। उक्त तर्क-शास्त्र का अनुवाद जर्मन-भाषा से अँगरेज़ी में हुआ है, और हमने अँगरेज़ी से हिंदी में अनुवाद किया है। यह हमारे देखने में अच्छा नहीं मालूम पड़ता। हमने जर्मन तर्क-शास्त्र के लिये ऑर्डर दे दिया है।

व्यवहार-वादियों (Pragmatists) का तो कहना है कि सत्य व्यावहारिक है। एक के लिये कुछ सत्य है, तो दूसरे के लिये कुछ सत्य है। वे कहते हैं, सत्यासत्य के विचार में कुछ-न-कुछ लक्ष्य अवश्य रहता है। जो एक लक्ष्य से सत्य है, वही दूसरे लक्ष्य से असत्य है। उनके मत में पारमार्थिक सत्य संभव नहीं है। वे व्यावहारिक सत्य ही मानते हैं। हमारे यहाँ के जैन-मतवालों से उनका मत मिलता-जुलता है। जैन-मतवालों को हम स्याद्वादी कहते हैं। स्यात् का अर्थ कदाचित् तथा वाद का अर्थ मत है। इनका मत है कि सभी अंशतः सत्य हैं। सर्वथा सत्य हम नहीं पा सकते। सप्तभंगी-न्याय में यह बात साफ़-साफ़ दिखलाई गई है। संभव हुआ, तो आपको सप्तभंगी-न्याय के विषय में भी कभी कुछ-न-कुछ सुनावेंगे। हमारे पाश्चात्य व्यवहार-वादी भी ठीक इसी प्रकार के हैं।

प्रत्यगात्म-वादी (Solipsists) लोगों का तो कहना है कि हमारे विचार ही सत्ता हैं। हम अपने विचार को बाह्य जगत् में स्थान देना चाहते हैं। अतएव सत्ता की व्युत्पत्ति होती है। हमारे विचार ही सत्य हैं, जगत् मिथ्या है। परमात्म-वादियों (Absolutists) का कहना है कि सत्ताएँ हमारे विचार नहीं, बल्कि परमात्मा के विचार हैं। वे कहते हैं, "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या ब्रह्म लोकैव नापरम्।" अस्तु। सत्यासत्य के बीच में भी कोई ज्ञान है। आगे के अधिकरण में हम इसका विचार करेंगे।

उद्देश्य तथा विषय

हमें असत्य को दूर करने और सत्य को जानने की उत्कंठा होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि हम सत्य जानते ही नहीं, यदि हमें सत्य का सर्वथा ज्ञान ही नहीं है, यदि सत्य से हम बिलकुल अपरिचित हैं, तो यह उत्कंठा कैसी? हम मिठाई का स्वाद जानते हैं, अतएव मिठाई खाने के लिये दौड़ पड़ते हैं। हमने गाने सुने हैं, अतएव हम गाना सुनने के उत्सुक हैं। इसी भाँति जब तक हम सत्य को नहीं जानते, उसके लिये व्याकुल नहीं हो सकते। हम सत्य को जानते हैं; पर सर्वथा नहीं जानते। हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी अनिश्चित चेतना है। हमारा मार्ग अनिश्चित से निश्चित की ओर है, अज्ञात से ज्ञात की ओर नहीं। पहले जो बिलकुल अनिश्चित था, वह पीछे निश्चित हो जाता है। प्रस्तुत अधिकरण में हम लोग इसी विषय पर वार्तालाप करेंगे।

हम प्रश्न करते हैं कि अमुक त्रिकोण, सम-कोण, न्यून-कोण या अधिक-कोण है ? यहाँ हम त्रिकोण के विषय में सत्य जानना चाहते हैं। हम यह जानते हैं कि यह तीनों में से एक है। यहाँ हमारा ज्ञान बहुत कुछ निश्चित है। हमें यह तो मालूम है कि यह तीनों में से एक है; पर यह निश्चित करना है कि तीनों में से कौन है। हम यह जानते हुए भी कि यह तीनों में से एक है, यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि यह तीनों में से कौन है। यहाँ हमारा विषय त्रिकोण और उद्देश्य त्रिकोण के तीन प्रकार हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि मोहन कलकत्ते गया, या कहाँ ? यहाँ पर हमारा ज्ञान पहले-सा तो निश्चित नहीं है। हमें यह तो ज्ञात है कि वह या तो कलकत्ते गया, या किसी और नगर में। यहाँ पूर्वोक्त उदाहरण की अपेक्षा कम निश्चय का भाव है। एक तीसरा उदाहरण लीजिए। एक पक्षी आकाश में उड़ रहा है। हम यह नहीं जानते कि आगे वह क्या करेगा। हमें यहाँ तो प्रश्नात्मक ज्ञान तक नहीं है। यहाँ हम प्रश्न तक नहीं कर सकते। तथापि हमें इसका कुछ-न-कुछ ज्ञान तो अवश्य है। हम यह पूछते हैं कि १५×१७ का गुणन-फल कितना होता है ? हमें इसका कुछ पता नहीं। पर इतना ज्ञान तो अवश्य है कि यह संख्या १५ तथा १७ का विशेष रीति से गुणन करने पर मिल सकती है। कल्पना कीजिए, हम अपने कमरे में बैठे हैं। अकस्मात सामने तिलक भगवान् का चित्र दीवार से गिर गया। चित्र के गिरने से हमारा ध्यान उस ओर खिंच गया। हम चित्र के गिरने से उसके पूर्व-स्थान के विषय में सोचने लगे। यह उदाहरण ऊपर के उदाहरणों से कहीं भिन्न है। ऊपर के उदाहरणों में हम प्रश्न से उत्तर की ओर जाते हैं। इस उदाहरण में हम उत्तर से प्रश्न की ओर आ रहे हैं। हम अपनी कुरसी पर बैठे माधुरी के लिये निबंध तैयार कर रहे हैं। सामने पुस्तकों की आलमारी रक्खी है। अब हमारे मन में न तो यही प्रश्न उठता है कि क्या पुस्तक आलमारी में है, और न यही कि क्या आलमारी में पुस्तक है। यहाँ दोनों साथ-साथ आते हैं। यह उपर्युक्त दो प्रकार के उदाहरणों से भिन्न है। पहले में प्रश्न से उत्तर, दूसरे में उत्तर से प्रश्न, तथा तीसरे में दोनों एकसाथ।

अब प्रश्न भी असत्य हो सकते हैं। यथा हम पूछ सकते हैं कि मनुष्य के कितने पंख होते हैं ? यहाँ हमारा उद्देश्य पंख जानना और विषय मनुष्य है। इस प्रश्न का उद्देश्य है ठीक उत्तर पाना। पर विषय ऐसा है कि ठीक उत्तर पाना असंभव है। यदि हम प्रश्न को ठीक न करें, तो ठीक उत्तर नहीं पा सकते। यह भूल प्रश्नों की भूल कही जा सकती है। यहाँ भी साधारण ही नियम घटित होता है। यहाँ भी उद्देश्य तथा विषय में असामंजस्य है। अतएव यह भी असत्य है। बस, इसको भी सत्य बनाने के लिये उद्देश्य तथा विषय में सामंजस्य की आवश्यकता है।

अब वाक्य दो प्रकार के हो सकते हैं। हम कह सकते हैं कि मनुष्य ज्ञान-शील है। यहाँ ज्ञान-शील है, यह बात मनुष्य के अंतर्गत ही है। मनुष्य की परिभाषा हम लोग बताते हैं कि मनुष्य ज्ञान-शील जीव है। अतएव इस वाक्य से कुछ विशेष ज्ञान नहीं हुआ। जितना ज्ञान हमको मनुष्य से होता था, उतना ही ज्ञान मनुष्य ज्ञान-शील है, यह कहने से हुआ। अब दूसरे प्रकार के उदाहरण लीजिए। हम कहते हैं कि मनुष्य मरण-शील है। यहाँ पर मरण-शील का विचार तो मनुष्य के अंतर्गत नहीं है। यह हमारा नया विचार है। इसमें हमारे ज्ञान का विकास होता है। इन दोनों को हम विवरणात्मक तथा संयोगात्मक (Analytic and synthetic) के नाम से पुकारेंगे। तार्किकों का कहना है कि दोनों में कोई विशेष भेद नहीं है। वे कहते हैं कि जो एक दृष्टि से एक प्रकार का है, वह दूसरी दृष्टि से दूसरे प्रकार का होता है। ब्राडले साहब ने लिखा है कि Every analytic judgment is and synthetic in the making. अर्थात् जब तक हम पक्षी के मार्ग को देखते हैं, तब तक वह क्या करेगा, यह हमारा उद्देश्य है, और हमारा वाक्य संयोगात्मक है; पर जब पक्षी वही काम करने लगता है, तब हमारा वाक्य विवरणात्मक हो जाता है। अब हमको यह पता चल सकता है कि असत्य उद्देश्य तथा विधेय का असामंजस्य-मात्र ही है। हम किसी उद्देश्य के अनुपयुक्त विधेय जोड़ देते हैं। हम सत्य तक पहुँचना चाहते हैं। हमारा उद्देश्य सत्य की ओर है। पर सत्यासत्य का विचार किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार संभव हो सकता है ? सत्य में हमारा कुछ-न-कुछ लक्ष्य तो अवश्य ही है । हम एक लक्ष्य से एक को सत्य, तो दूसरे लक्ष्य से दूसरे को सत्य कह सकते हैं । कल्पना कीजिए कि हम एक अज्ञात नगर में टहल रहे हैं । अब यदि हम कहीं जाना नहीं चाहते, यदि हम यों ही भटकते फिरते हैं, यदि हमारा कहीं भी कुछ लक्ष्य नहीं है, तब तो हम यह कह नहीं सकते कि हम भूल रहे हैं । पर यदि हमें चौक जाना है, और हम उसके विपरीत दिशा को चलें, तब तो हम मार्ग भूलते हैं । यदि हमें बनारस जाना है, और हम रामनगर की ओर चल पड़े, तब तो हम भूल रहे हैं । पर यदि हमें कहीं जाना ही नहीं, तो हम किस तरह भूल सकते हैं ? यदि हम यह कहें कि सूर्योदय हो रहा है, तो हम सत्य कह रहे हैं । हमारे भौगोलिक भाई आपत्ति करेंगे कि सूर्योदय मिथ्या है ; सत्य तो यह है कि पृथ्वी परिक्रमा करती है । पर हम पूछते हैं कि हमारा लक्ष्य तो दृश्य संसार है । आप इससे बाहर क्यों जाते हैं ? यह सत्य है कि पृथ्वी घूमती है । पर देखने में यह भी सत्य है कि सूर्योदय होता है । अतएव हम भूल नहीं रहे हैं । संभव है कि हम पारमार्थिक सत्य तक नहीं पहुँचते । पर यह हमारा उद्देश्य भी नहीं है । हमारा उद्देश्य तो दृश्य संसार है । दृश्य संसार में यह सत्य है । अतएव हम भूल नहीं रहे हैं ।

कल्पना तथा ज्ञान

हमारी कल्पनाएँ व्यक्ति-गत होती हैं । हमारा उन पर पूरा अधिकार है । वे हमारी सृष्टि में हैं । हम कल्पना करने में स्वतंत्र हैं । जब हम अपने बच्चों को चंद्रकांता की कथा सुनाते हैं, तब कथा हमारी बनाई हुई है । हम जैसे चाहें, वैसे उसे तोड़-मरोड़ सकते हैं । कोई चीं-चपड़ करनेवाला नहीं है । यह हमारी कल्पना है । बाह्य संसार के विषय में यह चर्चा नहीं करती । जिस तरह हम चाहें, कथा को गढ़ सकते हैं । पर एक बात है । कोई भी कल्पना कोरी कल्पना नहीं है । जब हम तिलिस्मी कथा भी कहते हैं, तो हमें युक्ति-संगत होना पड़ता है । हम अप्सराओं को ललना ही मानते हैं, पुरुष नहीं । हम इंद्र-देव ही के हाथ से वज्र गिरने की कल्पना करते हैं, अग्नि-देव के हाथ से नहीं । अतएव यह स्पष्ट सिद्ध हुआ कि कल्पना में भी हम पूर्ण स्वतंत्र नहीं हैं । वहाँ भी बाह्य संसार का कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ता है । पर ज्ञान में तो हम सर्वांश पराधीन हैं । हम यहाँ अपनी गढ़ंत की बात नहीं करते । हमको यहाँ पदार्थ के निकट पराधीन होना पड़ता है । अस्तु । यहाँ भी हमको कुछ-न-कुछ स्वतंत्रता है । यहाँ भी, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रामायण में लिखा है—"जिनकी रही भावना जैसी ; प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी ।", भावना हमारे लक्ष्य पर, हमारे दृश्य पर बड़ा प्रभाव डालती है । सामने एक गुलाब की कली है । कवि कहता है, यह मानिनी है । भ्रमर गुन-गुनकर इसका गुणानुवाद गा रहा है । कली भी अपने प्रियतम की प्रशंसाओं से एक बार फूल उठी है । एक साधारण मनुष्य कहता है, यह सुंदर फूल है । बालक कहता है, यह कोई खिलौना है । उद्भिद्-शास्त्रज्ञ कहता है, यह अमुक जाति का फूल है, इसमें अमुक-अमुक विशेषताएँ हैं । हमारे वेदांती भाई कहते हैं, अजी कहाँ भूलते हो, यह तो माया है । सामने हमारा मित्र है । डॉक्टर उसे बीमारी का घर समझता है । अर्थ-शास्त्री उसे द्रव्योत्पत्ति तथा द्रव्य-नाश की कल समझता है । धर्मसांप्रदायिक उसे ईश्वर का पुतला समझता है । उसकी लड़की उसे पिता समझती है । उसकी घरवाली मुन्नी तो उसे अपना प्राणपति कहती है । इससे यह सिद्ध हुआ कि हम ज्ञान में भी कुछ-न-कुछ तो स्वतंत्र अवश्य हैं । पर हमारी स्वतंत्रता कहाँ तक है ? दो या अनेक शर्तों के बीच से एक चुनने की स्वतंत्रता तो हमें है, पर दो या अनेक शर्तों के विषय में हम स्वतंत्र नहीं । हमारी स्वतंत्रता यहाँ पर बाह्य संसार पर निर्भर है । हम यहाँ पर बाह्य संसार से बद्ध हैं । जब हम उच्छृंखल हो उठते हैं, जब बाह्य संसार के नियमों का उल्लंघन करते हैं, तब लोग कहते हैं कि हमसे भूल हुई । अब ज्ञान को हम अनुभव कहें, तो कोई विशेष हानि न होगी । हमारा प्रश्न है कि $१ + \frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{८} + \frac{१}{१६}$ का योग दो हो सकता है या नहीं ? हम सचमुच जोड़ने में लग जा सकते हैं । यह एक मानसिक परीक्षा है । पर हम इसमें असफल होते हैं । यह प्रश्न ऐसा नहीं कि हम उत्तर पा सकें । कितनी ही संख्याएँ क्यों न हम जोड़ जायँ, हमको योग-फल दो नहीं मिलता । परंतु सदा यह संदेह बना रहता है कि हम और संख्या जोड़ने से—आगे बढ़ने से—शायद दो तक पहुँच सकते हैं । अब हम दूसरे प्रकार से इसका निरीक्षण करते हैं । अब हम अनुभव पर निर्भर नहीं करते, तर्क से काम लेते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दंपति

[श्रीमान् विष्णुनारायणजी भार्गव की चित्र-शाला से]

दंपति बिहरत बाग-बिच, रहे गगन घन चूमि ;
पति की रस-बतियाँ सुमति जुवति जाति रँग-भूमि ।

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा संभव हो सकता है ? सत्य में हमारा कुछ-न-कुछ लक्ष्य तो अवश्य ही है । हम एक लक्ष्य से एक को सत्य, तो दूसरे लक्ष्य से दूसरे को सत्य कह सकते हैं । कल्पना कीजिए कि हम एक अज्ञात नगर में टहल रहे हैं । अब कहीं हम कहीं जाना नहीं चाहते, यदि हम यों ही भटकते फिरते हैं, यदि हमारा कहीं भी कुछ लक्ष्य नहीं है, तब तो हम यह कह नहीं सकते कि हम भूल रहे हैं । पर यदि हमें चौक जाना है, और हम उसके विपरीत दिशा को चलें, तब तो हम मार्ग भूलते हैं । यदि हमें बनारस जाना है, और हम रामनगर की ओर चल पड़े, तब तो हम भूल रहे हैं । पर यदि हमें कहीं जाना ही नहीं, तो हम किस तरह भूल सकते हैं ? यदि हम यह कहें कि सूर्योदय हो रहा है, तो हम सत्य कह रहे हैं । हमारे भौगोलिक भाई आपत्ति करेंगे कि सूर्योदय मिथ्या है ; सत्य तो यह है कि पृथ्वी परिक्रमा करती है । पर हम पूछते हैं कि हमारा लक्ष्य तो दृश्य संसार है । आप इससे बाहर क्यों जाते हैं ? यह सत्य है कि पृथ्वी घूमती है । पर देखने में यह भी सत्य है कि सूर्योदय होता है । अतएव हम भूल नहीं रहे हैं । संभव है कि हम पारमार्थिक सत्य तक नहीं पहुँचते । पर यह हमारा उद्देश्य भी नहीं है । हमारा उद्देश्य तो दृश्य संसार है । दृश्य संसार में यह सत्य है । अतएव हम भूल नहीं रहे हैं ।

कल्पना तथा ज्ञान

हमारी कल्पनाएँ व्यक्ति-गत होती हैं । हमारा उन पर पूरा अधिकार है । वे हमारी सृष्टि में हैं । हम कल्पना करने में स्वतंत्र हैं । जब हम अपने बच्चों को चंद्रकांता की कथा सुनाते हैं, तब कथा हमारी बनाई हुई है । हम जैसे चाहें, वैसे उसे तोड़-मरोड़ सकते हैं । कोई चीं-चपड़ करनेवाला नहीं है । यह हमारी कल्पना है । बाह्य संसार के विषय में यह चर्चा नहीं करती । जिस तरह हम चाहें, कथा को गढ़ सकते हैं । पर एक बात है । कोई भी कल्पना कोरी कल्पना नहीं है । जब हम [illegible] कथा भी कहते हैं, तो उसे युक्ति-संगत होना पड़ता है । हम [illegible] को [illegible] ही मानते हैं, पुरुष नहीं । हम इंद्र-देवजी के हाथ से वज्र गिरने की कल्पना करते हैं, अग्नि-देव के हाथ से नहीं । अतएव यह स्पष्ट सिद्ध हुआ कि कल्पना में भी हम पूर्ण स्वतंत्र नहीं हैं । वहाँ भी बाह्य संसार का कुछ-न-कुछ [illegible] पड़ता है । [illegible]

पराधीन हैं । हम यहाँ अपनी गढ़त की बात नहीं करते । हमको यहाँ पदार्थ के निकट पराधीन होना पड़ता है [illegible] अस्तु । यहाँ भी हमको कुछ-न-कुछ स्वतंत्रता है । यहाँ भी, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रामायण में लिखा है—"जिनकी रही भावना जैसी ; प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी ।", भावना हमारे लक्ष्य पर, हमारे दृश्य पर बड़ा प्रभाव डालती है । सामने एक गुलाब की कली है । कवि कहता है, यह मानिनी है । भ्रमर गुन-गुनकर इसका गुण-गुवाद गा रहा है । कली भी अपने प्रियतम की प्रशंसा से एक बार फूल उठी है । एक साधारण मनुष्य कहता है, यह सुंदर फूल है । बालक कहता है, यह कोई खिलौना है । उद्भिद्-शास्त्रज्ञ कहता है, यह अमुक जाति का फूल है, इसमें अमुक-अमुक विशेषताएँ हैं । हमारे वेदांती भाई कहते हैं, अजी कहाँ भूलते हो, यह तो माया है । [illegible] हमारा मित्र है । डॉक्टर उसे बीमारी का घर समझता है । अर्थ-शास्त्री उसे द्रव्योत्पत्ति तथा द्रव्य-नाश [illegible] समझता है । धर्मसांप्रदायिक उसे ईश्वर का [illegible] समझता है । उसकी लड़की उसे पिता समझती है । उसकी घरवाली सुखी तो उसे अपना प्राणपति कहती है । इससे यह सिद्ध हुआ कि हम ज्ञान में भी कुछ-न-कुछ तो स्वतंत्र अवश्य हैं । पर हमारी स्वतंत्रता [illegible] तक है ? दो या अनेक शर्तों के बीच से एक [illegible] स्वतंत्रता तो हमें है, पर दो या अनेक शर्तों के [illegible] हम स्वतंत्र नहीं । हमारी स्वतंत्रता यहाँ पर बाह्य [illegible] पर निर्भर है । हम यहाँ पर बाह्य संसार से बद्ध [illegible] हम उच्छृंखल हो उठते हैं, जब बाह्य [illegible] नियमों का उल्लंघन करते हैं, तब लोग कहते हैं [illegible] से भूल हुई । अब ज्ञान को हम अनुभव करें, [illegible] विशेष हानि न होगी । हमारा प्रश्न है कि १ + [illegible] + $\frac{1}{2}$ + [illegible] का योग दो हो सकता है या नहीं [illegible] सचमुच जोड़ने में लग जा सकते हैं । यह एक [illegible] परीक्षा है । पर हम इसमें असफल होते हैं । [illegible] ऐसा नहीं कि हम उत्तर पा सकें । कितनी ही [illegible] क्यों न हम जोड़ जायँ, हमको योग-फल दो नहीं [illegible] परंतु सदा यह संदेह बना रहता है कि हम और जोड़ने से—आगे बढ़ने से—शायद दो तक पहुँच [illegible] है । अब हम दूसरे प्रकार से इसका निरीक्षण [illegible] [illegible] पर निर्भर नहीं करते, तर्क से [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी



दंपति

[श्रीमान् विष्णुनारायणजी भार्गव की चित्र-शाला से]

दंपति बिहरत बाग-बिच, रहे गगन घन चूमि ;
पति की रस-बतियाँ सुनति जुवति जाति रँग-भूमि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

N. K. Press, Lucknow.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अब हम देखते हैं, इसके रूप का पर्यवेक्षण करते हैं। हम इसकी चाल को देखते हैं। हम देखते हैं कि हमारी ईप्सित संख्या अगली संख्या के बराबर होनी चाहिए। यदि बराबर नहीं, तो हम यह साफ़-साफ़ कह सकते हैं कि इनके योग-फल दो नहीं हो सकते। अब हम पाठकों को यह दिखा चुके कि सभी मानसिक समस्याओं में हमारी स्वतंत्रता पराधीन है। हम पदार्थों के अधीन हैं। हम आँख-कान बंद कर, अनुभव के बिना, केवल अपनी तार्किक शक्ति ही से, सत्य तक नहीं पहुँच सकते। हम अब तक यही सिद्ध कर चुके हैं कि सत्य ज्ञान के लिये अनुभव तथा तर्क-शक्ति, दोनों एक-समान आवश्यक हैं।

विवर्त तथा आवर्त

जब हम विवर्त को आवर्त मान बैठते हैं, तब असत्य में पड़ जाते हैं। अब असत्य की समस्या हल करने के लिये हमको विवर्त तथा आवर्त में भेद नियत करना चाहिए। हम अब इस भेद को समझ सकते हैं। अब तक हम लोगों को यह तो मालूम हो गया है कि कल्पना का रूप क्या है। काल्पनिक वस्तुएँ असत्य हैं। कारण यह है कि उनकी स्थिति हमारे मानसिक संसार पर ही निर्भर है। बाह्य संसार में उनकी स्वतंत्र स्थिति नहीं है। वे हमारी कोरी कल्पना हैं, बिलकुल हमारी गढ़ंत हैं। परंतु काल्पनिक वस्तु जब तक सात्त्विक वस्तु से भिन्न रहती है, तब तक वह असत्य नहीं हो सकती। जब हम दोनों के भेद भूल जाते हैं, तभी असत्य में पड़ जाते हैं। जब तक हम कल्पना को कल्पना मानते हैं, तब तक कोई आपत्ति नहीं है।

काल्पनिक वस्तु विवर्त का एक प्रकार-मात्र है। परंतु जहाँ हमारा ज्ञान हमारी मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं पर निर्भर रहता है, वहाँ भी हम विवर्त में पड़ जाते हैं। जब हम एक वस्तु को दूरवीक्षण या अणुवीक्षण-यंत्र से देखते हैं, तब वह भिन्न जान पड़ती है। परंतु वस्तु वही है, जो केवल आँखों के सामने थी। भेद मनोवैज्ञानिक अवस्था का है। जैसे-जैसे हम निकट जाते हैं, हमारी दृश्य वस्तु बढ़ती जाती है, तथा जैसे-जैसे दूर जाते हैं, घटती जाती है। पर ये सब मनोवैज्ञानिक भेदों के कारण हैं, अतएव विवर्त हैं। हम जब तक आँखें खुली रखते हैं, तब तक वस्तुएँ देख पड़ती हैं। आँखें बंद करने पर कुछ नहीं मालूम पड़ता। पर वस्तु आँख बंद करने पर भी है, इस विषय में कोई संदेह नहीं करता।

अब सिद्ध हुआ कि विवर्त आवर्त का विवृत रूप है, आत्मा का नहीं। विवर्त के दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो विवर्त की उपस्थिति, तथा दूसरा उपस्थित विवर्त। हम विवर्त को बराबर दूसरे अर्थ में लेते रहे हैं। एक छड़ी को पानी में डुबा दीजिए। क्या दिखाई पड़ेगा? छड़ी टेढ़ी जान पड़ेगी। छड़ी का टेढ़ापन उपस्थित विवर्त है। यहाँ पर छड़ी सचमुच टेढ़ी दिखाई पड़ेगी। छड़ी टेढ़ी-सी नहीं मालूम पड़ेगी। मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक अवस्थाओं पर यह अनिवार्य है। छड़ी का टेढ़ापन यहाँ आत्मा का नहीं है। यहाँ पर देखनेवाला टेढ़ा नहीं है। पानी में डुबाई हुई छड़ी ही टेढ़ी है।

फिर विवर्त और आवर्त में भेद किसी लक्ष्य पर निर्भर है। हम जब किसी वस्तु को देखते हैं, तब उसके आवर्त की ओर ध्यान रखते हैं। हमारा लक्ष्य उसके वास्तविक रूप पर है। पर एक आदर्श चित्रकार के लिये, जो वस्तु के आदर्श को देखकर चित्र खींचना चाहता है, विवर्त ही आवर्त है। उसका लक्ष्य ही कुछ और है। यह कार्य अति कठिन हो उठता है। कारण, हम वस्तु की वास्तविक अवस्था देखने में ऐसे अभ्यस्त हैं कि विवर्त की पर्वा ही नहीं करते। एक बालक, जो पहले-पहल चित्र खींच रहा है, यदि मनुष्य का चित्र खींचने लगे, तो यद्यपि वह उसकी एक ही आँख देखता है, तथापि दोनों आँखों का चित्र खींचेगा।

असत्य के विशेष कारण

असत्य के प्रधान रूप से दो कारण हो सकते हैं। एक तो अज्ञान के कारण हम असत्य हो सकते हैं, दूसरे निर्विवेक के कारण भी हम असत्य बन सकते हैं। पाठको, घबराइए मत। आप सोचते होंगे कि क्या पागलों की-सी बातें कर रहा है। निर्विवेक और अज्ञान में भेद ही क्या है? ज़रा धैर्य धरिए। यह शास्त्र की बारीकी है। इन दोनों में भेद है। एक वस्तु को दूसरी वस्तु से भिन्न न मानकर एक के स्थान में दूसरी तथा दूसरी के स्थान में पहली मानना निर्विवेक है। अब आगे के अधिकरणों में हम इनके विशेष विवरण देंगे।

निर्विवेक

निर्विवेक तब उठता है, जब हम एक वस्तु को तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानना चाहते हैं, पर जानने लग जाते हैं दूसरी वस्तु को। हम यहाँ पर एक साधारण उदाहरण ही देकर संतोष करेंगे।

क ——— ज ——— झ ——— ख

ग ——— च ——— छ ——— घ

उक्त चित्र में क ख तथा ग घ दो रेखाओं में से दो से दो समान भाग च छ, ज झ काट लिए गए हैं। अब च छ वास्तव में ज झ के बराबर हैं। पर सभी पाठक सरसरी निगाह से देखकर एकसाथ कह उठेंगे कि ज झ च छ से छोटा है। कारण, यद्यपि हम च छ तथा ज झ की तुलना करना चाहते हैं, पर इनके साथ-ही-साथ क ख, ग घ की भी बात आ जाती है।

जब हम अंध-विश्वास में पड़ जाते हैं, तब भी सत्य को नहीं देख सकते। हम सूनसान जंगल में जा रहे हैं। घोर अंधकार छाया हुआ है। हाथ-मारा नहीं सूझता। हमारी माता ने एक बात बतला दी है। निर्जन वन में भूत रहते हैं। हम टूटा हुआ वृक्ष देखते हैं। हमें विश्वास हो जाता है कि हम भूत देख रहे हैं। पत्तियाँ खड़खड़ाती हैं। हम सोचते हैं, भूत चलता है। जिन-जिन विचारों में संबंध घना हो गया है, वे एक दूसरे से हटते नहीं। इसके अंतर्गत हम संदिग्ध शब्दों को भी ला सकते हैं। एक शब्द का एक अर्थ से घनिष्ठ संबंध हो गया है। अब वह घनिष्ठ संबंध तोड़े से नहीं टूटता। यदि वह शब्द अब दूसरे अर्थ में भी आता है, तो हम पहले ही अर्थ में लेते हैं।

पक्षपात असत्य का तीसरा कारण है। हम हिंदू हैं। हमारा पक्ष हिंदुओं के प्रति है। हम उनके अवगुण नहीं देख पाते। हिंदू-धर्म में भी लाखों अवगुण हैं। पर हमको एक भी नहीं सूझ पड़ता। वैसे ही हम अपने मुसलमान भाइयों के गुणों को ठीक-ठीक नहीं देख सकते। कुछ दिन पहले हम बँगला में लिखा करते थे; हिंदी में लिखना पाप समझते थे। हमारा बँगला के प्रति पक्षपात था। हम समझते थे कि हिंदी में कोई गुण है ही नहीं। पर जब हमारा यह पक्षपात हटा, तब हम समझने लगे कि हिंदी में भी कुछ रत्न हैं। इन काँचों में भी कुछ रत्न छिपे हुए हैं। कुछ हिंदी में भी गुदड़ी के लाल हैं। एक समय था कि रवींद्र बाबू की कविता-कामिनी से मुग्ध होकर हम हिंदी को भूल बैठे थे। हमारा यह भी विचार था कि हिंदी में कोई अच्छी पत्रिका है ही नहीं। हमने हिंदी की भी बहुत-सी पत्रिकाएँ देखीं; पर पक्षपात ने इतना गहरा रंग पकड़ा था कि हटाए न हटता था। इसी बीच में हमें माधुरी देख पड़ी। हमें यह जानकर असीम आनंद हुआ कि हमारी हिंदी में भी एक-आध पत्रिका बँगला के समान हैं। हमारा पक्षपात का परदा उठ गया, और जिस प्रकार माया के परदे के उठने से हम ब्रह्म की एक झलक पाते हैं, ठीक उसी प्रकार पक्षपात के परदे के हटने से सत्य की झलक दिखलाई दी।

अज्ञान

इस अधिकरण में अज्ञान के विषय में हम वार्तालाप करेंगे। इसके अंतर्गत विस्मृति भी आ जायगी। अज्ञान भी असत्य का एक बड़ा कारण है। हम, बीस वर्ष हुए, हमीरपुर गए थे। वहाँ हमारे मौसा का मकान था। आँगन में एक नारंगी का वृक्ष था। परसाल हम फिर हमीरपुर जा रहे थे। हमने मुग़लसराय से टिकट ख़रीदे। टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गए। गाड़ी ने सीटी दे दी। सन्-सन् करके गाड़ी चलने लगी। पलक मारते हम स्टेशन के बाहर हो गए। ध्यान आया, चलो भाई, चलकर नारंगी तो खाने को मिलेगी। पर जब हम वहाँ पर पहुँचे, तो देखते हैं कि नारंगी का वृक्ष नहीं है। हम यहाँ पर असत्य थे। कारण था हमारा अज्ञान।

कुछ लोग — जिनमें हमारे ग्रीस-देश-वासी Pyrooh भी आ सकते हैं—कहेंगे कि ऐसी हालत में हम चुप रह सकते हैं। हाँ महाशय, कहना तो आसान है। पर चुप रहने से काम कहाँ चलता है? हमें ज्ञान है, अतएव हम काम करते हैं, और हम काम करते हैं, इसी से जीते हैं। अतएव चुप रहने से तो जीवन भार-सा हो जायगा। कुछ लोग तो यह कहेंगे कि हम निश्चय-पूर्वक कोई बात न कहकर उसकी संभाव्यता ही बतावें। हम जब हमीरपुर जा रहे थे, तब हमको यह कहना चाहिए था कि यह अधिक संभव है कि नारंगी का वृक्ष हो। परंतु यहाँ भी हम असत्य से नहीं बच सकते। हम लोग संभाव्यता की मात्रा को ठीक करने में भी असत्य हो सकते हैं। संभाव्यता की मात्रा ठीक करने में हम अपने प्राचीन अनुभवों से काम लेते हैं। संभाव्यता के ठीक करने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि कहीं भूल हो गई, तो हम उसका उपयोग नहीं कर सकते ।

अब यदि Pyrooh के अनुसार हम चुप ही रहना, बिलकुल ही चुप रहना, उचित समझें, तो व्यावहारिक सत्य तक भी नहीं पहुँच सकते । यहाँ पर बिलकुल का अर्थ कुछ और है । इसका अर्थ यह है कि संभाव्यता, अस्तित्व और नास्तित्व, दोनों में समान है । परंतु यहाँ भी हम असत्य से नहीं बच सकते । यह कहना भी कि अस्तित्व तथा नास्तित्व की संभाव्यता समान है, असत्य हो सकता है । पुनः ऐसे ज्ञान के सहारे कोई काम नहीं चल सकता । हम अपनी परीक्षा में सफलता और निष्फलता की समान संभाव्यता मानते हुए भी सफलता की ही संभाव्यता मानकर काम करते हैं । अब हम यह सिद्ध कर चुके कि मौन सर्वथा कार्य के लिये अहितकर है । इस दशा में हम कोई भी कार्य नहीं कर सकते । व्यावहारिक मौन रहने से भी काम नहीं चलता । असत्य के विषय में हम यह सिद्ध कर चुके कि असत्य विवर्त का एक रूप-मात्र है । विवर्त और आवर्त का निर्विवेक ही असत्य है ।

उपसंहार

उपसंहार में पहले तो हम यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि कोई भी असत्य सर्वथा असत्य नहीं हो सकता । जब हम कहते हैं कि अमुक व्यक्ति सर्वथा असत्य है, तब कुछ-न-कुछ हमारा लक्ष्य अवश्य होता है, जिसके लिये हम उसे असत्य बतलाते हैं । जो एक दृष्टि से सत्य है, वही दूसरी दृष्टि से असत्य हो सकता है । दूसरे, हम यह भी बता देना चाहते हैं कि असत्य की भी कोई सीमा है । संदेह किसी सीमा ही तक हो सकता है । जब तक कल्पना को कल्पना ही मानते हैं, तब तक हम असत्य नहीं होते । अब कुछ ज्ञान ऐसे भी हैं, जिनमें पारमार्थिक सत्ता का संबंध नहीं । ऐसी हालत में असत्य बतलाना बिलकुल फ़िज़ूल है । इस प्रकार हम आत्मा तथा ब्रह्म में संदेह नहीं कर सकते । बाह्य संसार को भी हम झूठा नहीं बता सकते; क्योंकि कोई उससे अधिकतर सत्ता है ही नहीं, जिसके संबंध में उसको झूठा बता सकते हों । कुछ लोग असत्य से बचने के लिये एक उपाय बतलाते हैं । उनका कहना है कि यदि हम व्यक्ति-विशेष के विषय में न कहकर साधारण भाव के विषय में कहें, तो अपने को असत्य के फंदे से छुड़ा सकते हैं । वे ज्यामिति इत्यादि गणित-शास्त्रों का उदाहरण देकर कहते हैं कि इनमें हम असत्य से बिलकुल बच सकते हैं ; यहाँ असत्य की संभाव्यता है ही नहीं । पर यहाँ पर भी हम यह कहना उचित समझते हैं कि गणित-शास्त्र क्या, सभी शास्त्रों के विषय में यह कहा जा सकता है । यह ठीक है कि शास्त्रों में हम प्रकृति को अपने साँचे में ढालते हैं । पर साथ ही यह भी कह देना आवश्यक है कि हमारे साँचे प्रकृति के लिये हैं, प्रकृति हमारे साँचों के लिये नहीं है । अतएव हमारे शास्त्रों के साँचों को प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए । जब वे साँचे प्रकृति के काम के नहीं रहते, तब हम दूसरे साँचे गढ़ते हैं । अतएव देखने में आता है कि शास्त्रों के साँचे एकदम से नियत नहीं हैं । उनका क्रम से विकास होता रहता है ।

"बाण"

दीर्घ-जीवी होने की प्राचीन रीतियाँ



वन बड़ी प्यारी वस्तु है । हमारे लिये उससे बढ़कर इस संसार में कोई दूसरी वस्तु नहीं है । इसी से तो जब हम किसी वस्तु को औरों की अपेक्षा अधिक चाहते हैं, तो उसकी उपमा अपने प्राणों से देते हैं । इसलिये कोई आश्चर्य नहीं, जो बहुत पुराने ज़माने से मनुष्य-जाति उन उपायों के ढूँढ़ निकालने में लगी हुई है, जिनके द्वारा उसके जीवन की सीमा अधिक विस्तृत हो जाय । कहते हैं, यहाँ, भारतवर्ष में भी प्राणायाम तथा योग के साधनों द्वारा आयु बढ़ाने में हमारे पूर्वजों ने बहुत-कुछ सफलता प्राप्त की थी । भारत के प्राचीन इतिहास में इसके अनेक अच्छे-अच्छे प्रमाण मिलते हैं । पर इस लेख में हम उनका वर्णन न करके केवल उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीतियों का हाल लिखेंगे, जो जीवन-काल बढ़ाने के लिये, समय-समय पर, योरप में प्रचलित थीं।

योरप में दीर्घ-जीवन-संबंधी विचारों की सृष्टि के बहुत पहले मिस्र-देशवासियों का ध्यान इधर जा चुका था, और उन्होंने कुछ ऐसे नियम भी बना लिए थे, जिनके द्वारा, उनके विचार में, मनुष्य दीर्घ-जीवन प्राप्त कर सकता है। नील-नदी की बाढ़ तथा प्रचंड ग्रीष्म की धूप के कारण वहाँ की आब-हवा सदा से अस्वस्थ कर देनेवाली रही है, और बहुत संभव है कि इसी कारण उन्हें उक्त विषय में जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता पड़ी हो। उन लोगों का यह विश्वास था कि क़य करानेवाली तथा पसीना लानेवाली दवाओं के उपयुक्त प्रयोग से मनुष्य दीर्घ-जीवी हो सकता है। इससे वहाँवाले प्रति मास कम-से-कम दो दफ़े क़य करानेवाली दवा अवश्य खाते थे। परस्पर मिलने पर यह पूछने की जगह कि 'आपकी तबियत कैसी है?', वे पूछते थे कि 'आपको कैसा पसीना आता है?'

शांत तथा निर्मल जल-वायु के प्रभाव से ग्रीस-वासियों में दीर्घ-जीवन की इच्छा ने दूसरा ही रूप धारण किया। उनका विचार था कि प्राकृतिक सुखों के उचित उपभोग तथा अपनी शक्तियों का निरंतर प्रयोग करते रहने से मनुष्य की जीवनी-शक्ति अवश्य बढ़ जाती है। उस देश के प्रायः सभी प्रसिद्ध चिकित्सक और तत्त्व-ज्ञानी दीर्घ-जीवन-प्राप्ति के लिये संयम, स्वच्छ और खुली हवा का सेवन, दैनिक स्नान, कसरत तथा शरीर की मालिश का उपदेश करते थे। अंतिम दो बातों पर वे विशेष रूप से ज़ोर देते थे। उन्होंने शरीर को अनेक प्रकार से संचालित करने के विशेष नियम बनाए थे। इन्हीं से कुछ समय के बाद उस प्रकार की कसरत का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे 'जिमनास्टिक' कहते हैं। उस देश के बड़े-से-बड़े दर्शन-शास्त्री तथा विद्वान् का सदैव इस बात पर ध्यान रहा कि शरीर तथा मन, दोनों ही को यथोचित व्यायाम की आवश्यकता रहती है।

उन्होंने व्यायाम को एक कला में परिणत कर दिया, और उसे पूर्णता की चरम सीमा तक पहुँचा दिया। वे यह भली भाँति जानते थे कि मनुष्यों के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभावों, अवस्थाओं तथा आवश्यकताओं के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की कौन सी कसरतें उपयोगी हो सकती हैं। वे यह बात भली भाँति जान गए थे कि कसरत के द्वारा मनुष्य-शरीर की आंतरिक दशा किस प्रकार ठीक रक्खी जा सकती है। उसके द्वारा वे रोगों को केवल रोक ही न सकते थे, बल्कि उन्हें दूर भी कर सकते थे। कहा जाता है, हेरोडिकस-नामक एक चिकित्सक इस कला में इतना दक्ष था कि वह अपने रोगियों पर टहलने के लिये दबाव डालता, उनके शरीर में मालिश करवाता, और जैसे-जैसे रोग उन्हें दुर्बल करता जाता, वैसे-ही-वैसे उनके पुट्ठों की शक्ति बढ़ाकर उनकी कमज़ोरी दूर करने का प्रयत्न करता था। इसमें उसे यथेष्ट सफलता मिली, और उसने अनेक दुर्बल रोगियों का जीवन-काल कई वर्ष अधिक बढ़ा दिया। ज़िक्र है कि इस पर प्रसिद्ध यूनानी तत्त्व-वेत्ता प्लेटो (अफ़लातून) ने उसे बहुत फटकार बतलाई थी। कहा था कि प्रकृति-विरुद्ध रीति से रुग्ण मनुष्यों का जीवन बढ़ा देना अन्याय है; क्योंकि रुग्ण अवस्था में जीवन काटते हुए उन अभागों को सुख तो मिल नहीं सकता; हाँ, उनके कष्ट अवश्य बढ़ जाते हैं।

जीवन-काल बढ़ाने के संबंध में यूनान के प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक प्लूटार्क ने भी बहुत-कुछ लिखा है। उनके विचार बहुत ही स्पष्ट और प्रकृति के अनुकूल हैं। उन्होंने परिपक्व वृद्धावस्था तक जीवित रहकर अपने नुस्खों की सचाई भी प्रमाणित की है। उन्होंने इस विषय पर जो कुछ लिखा है, उसके अंतिम भाग में कुछ ऐसे नियम दिए हैं, जो आज-कल के लिये भी उपयोगी जान पड़ते हैं। वह लिखते हैं—"अपने सिर को ठंडा तथा अपने पैरों को गरम रक्खो। प्रत्येक बीमारी के लिये, औषध का प्रयोग करने के बजाय, यह अच्छा होगा कि एक दिन उपवास कर डालो। अपनी शारीरिक-उन्नति पर सदैव ध्यान दो; पर मानसिक-उन्नति को बिलकुल न भूल जाओ।"

उन्हीं दिनों मध्य-योरप में जीवन बढ़ाने की एक बड़ी ही विचित्र रीति प्रचलित थी। इस विधि के अनुसार वृद्ध तथा निर्बल पुरुषों को नवीन अवस्थावाले लड़के-लड़कियों के बीच में रक्खा जाता था; जिससे उनके शरीर से निकलते हुए परमाणु तथा वायु, उन वृद्ध पुरुषों के शरीर में लगकर, उनमें नवीन शक्ति उत्पन्न कर दें। प्राचीन चिकित्सकों के ग्रंथों में भी अनेक स्थलों पर इस रीति का वर्णन आया है। इससे जान पड़ता है कि यह रीति बहुत पुराने समय से प्रचलित थी, और वृद्धावस्था की कमज़ोरियों को दूर करने में लाभ-दायक समझी जाती थी।

योरप के कुछ देशों में इसके प्रचार के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम काल में हरमन बीरहाव-नामक एक प्रसिद्ध चिकित्सक था। उसने हालैंड के एक मुखिया को इसी रीति से अच्छा किया था। वह उसे दो नौजवान व्यक्तियों के बीच में लिटाता रहा। कुछ काल तक ऐसा करने से उस वृद्ध की शक्ति और फुर्ती में प्रत्यक्ष वृद्धि हो गई। कहते हैं, रोम-नगर में छोटी-छोटी लड़कियों का एक शिक्षक ११५ वर्ष तक जीवित रहा। कहा जाता है, लगातार छोटी-छोटी लड़कियों के बीच रहने से ही उसकी अवस्था इतनी बढ़ गई थी। योरप के एक प्रसिद्ध डॉक्टर इस उदाहरण का उल्लेख करने के बाद हमें इस बात की शिक्षा देते हैं कि हम नित्य सुबह-शाम छोटी निष्पाप लड़कियों की साँस से अपने शरीर का संसर्ग होने दें। वह कहते हैं, ऐसा करने से हमारी जीवनी-शक्ति बहुत-कुछ बढ़ सकती है।

इसके कुछ ही समय बाद रुग्ण मनुष्यों के असाध्य रोगों को दूर करने तथा उन्हें दीर्घ-जीवी बनाने के लिये एक दूसरी ही विधि की सृष्टि हुई। यह 'अंतःसंचारण' (Transfusion)-विधि कहलाती थी। इसके अनुसार रोगी की दो नाड़ियाँ खोली जाती थीं। फिर एक छोटे-से पंप में किसी जीवित पशु की नाड़ी (Artery) से रक्त भरकर उनमें से एक नाड़ी में भर दिया जाता था। साथ ही रोगी की दूसरी नाड़ी से रक्त बहने दिया जाता था। इस प्रकार रोगी के शरीर का विकृत रुधिर निकल जाता था, और उसके स्थान में नवीन रक्त प्रवाहित होने लगता था। इँगलैंड में इस विधि की कुछ परीक्षाएँ पशुओं पर बहुत सफलता-पूर्वक की गई थीं। इस प्रकार वृद्ध तथा दुर्बल पशुओं में कुछ समय बाद बहुत-कुछ फुर्ती और शक्ति आ गई थी। कहीं-कहीं तो डरपोक पशुओं के शरीर में भयानक जंगली पशुओं का रुधिर भरकर उन्हें निडर बनाने का प्रयत्न किया गया था।

इन परीक्षाओं से उत्साहित होकर लोगों ने उन्हीं उपायों से मनुष्यों को चंगा करने का प्रयत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया ! पेरिस के दो डॉक्टरों ने पहले-पहल एक युवक पर इस विधि की परीक्षा की । वह युवक सदैव बहुत सुस्त रहता था । अनेक प्रकार की ओषधियों के सेवन से भी उसकी सुस्ती दूर नहीं हुई थी । उन डॉक्टरों ने उसके शरीर में भेड़ के बच्चे का रुधिर भर दिया । इससे वह बिलकुल चंगा हो गया । उन डॉक्टरों ने एक पागल को भी, उसके शरीर में बछड़े का रक्त भरकर, नीरोग किया ! पर आपरेशन करते समय नाड़ियों में हवा भर जाने से अनेक व्यक्तियों की मृत्यु भी हो गई । आठवें पोप इन्नोसेंट (Pope Innocent VIII) की इसी आपरेशन में मृत्यु हुई थी । चीर-फाड़ की चिकित्सा के एक विभाग में अंतःसंचारण-विधि का आजकल बड़ा ऊँचा स्थान है ।

जीवन बढ़ाने के इन विचार-पूर्ण उपायों या ढंगों के अतिरिक्त मूर्ख जनता में कुछ दूसरे तरीक़े प्रचलित थे ; जिनका यहाँ पर उल्लेख करना असंगत न होगा । कुछ लोगों का विश्वास था कि कुछ विशेष प्रकार की ओषधियों द्वारा मनुष्य-जीवन की सीमा बढ़ाई जा सकती है । इसका यह परिणाम हुआ कि अनेक ठगों ने वैद्यों का वेष रखकर जनता को ठगना शुरू किया । इस प्रकार के वैद्यों में सबसे ढीठ परसेल्सस (१४६३—१५४१) था । उसने घोषित किया कि संसार में मैं ही पहला चिकित्सक हूँ । उसने बड़ी गंभीरता से इस बात का दावा किया कि संसार में ऐसा कोई रोग नहीं, जिसे मैं दूर नहीं कर सकता, और ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसका जीवन मैं नहीं बढ़ा सकता । उसके पास एक पदार्थ था ; जिसे वह अमरत्व का पत्थर कहा करता था । धीरे-धीरे वह इतना प्रसिद्ध हो गया कि योरप के प्रत्येक भाग से उसके पास रोगी तथा विद्यार्थी आने लगे । 'अमरत्व का पत्थर' पास रखते हुए भी वह पचास वर्ष की ही अवस्था में चल बसा । बाद को उसकी धूर्तता सबको मालूम हो गई । परीक्षा करने से मालूम हुआ कि उसका 'अमरत्व का पत्थर' और कुछ नहीं, गंधक इत्यादि वस्तुओं के योग से बना हुआ एक गरम पदार्थ था ।

उन दिनों गंडे और तावीज़ भी मनुष्य को दीर्घजीवी करने के साधन समझे जाते थे । लोगों का विचार था कि ग्रहों और धातुओं में परस्पर घनिष्ठ संबंध तथा सहानुभूति है । इस कारण विशेष ग्रहों के प्रभाव में विशेष धातुओं को गलाकर तथा ढालकर तावीज़ बनाए जाते थे, और यह समझा जाता था कि वे ग्रह उन्हें पहननेवालों की सदैव रक्षा करते हैं, जिनका उन तावीज़ों की धातुओं से संबंध है ।

तावीज़ कई प्रकार के होते थे । एक तो वैसे होते थे, जो किसी एक ग्रह द्वारा होनेवाले रोगों को रोकते थे । दूसरे वे, जो सभी ग्रहों के बुरे प्रभाव को रोकते थे, और तीसरे वे, जो भिन्न-भिन्न धातुओं को विशेष रूप से एक ही में मिलाकर तथा गलाकर बनाए जाते थे । यह समझा जाता था कि इस अंतिम कोटि के तावीज़ों के पहनने से बुरे-से-बुरे ग्रह में पैदा होने की सारी बुराई तत्क्षण दूर हो जाती है । उन्हें पहननेवाले उनके प्रताप से ऊँचे-ऊँचे पदों को पा सकते थे, और व्यापार तथा विवाह में सफलता प्राप्त करते थे । यदि किसी तावीज़ पर वृश्चिक-राशि के चिह्न के साथ-साथ मंगल-ग्रह का चित्र चित्रित होता था, तो उसे पहननेवाला अजेय हो जाता था, और किसी प्रकार का शस्त्र उस पर असर नहीं कर सकता था । जर्मनी के सिपाहियों को इस पर इतना विश्वास था कि जब वे लड़ाई पर जाते थे, तो इस प्रकार का तावीज़ अवश्य पहन लेते थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक फ़रासीसी लेखक ने लिखा है कि एक दफ़े जर्मनों तथा फ़रासीसियों में युद्ध होने के बाद जितने मृत, घायल तथा क़ैदी सिपाही मिले, उनमें से प्रत्येक के गले में एक-एक तावीज़ लटक रहा था।

जिस समय योरप की जनता पर अंध-विश्वास का ऐसा प्रबल साम्राज्य था, उसी समय हमें दीर्घ-जीवन-संबंधी एक बड़ा मार्के का उदाहरण मिलता है। इटली में कारनेरो नाम का एक व्यक्ति था। भोग-विलास की अधिकता के कारण चालीस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते उसका शरीर बिलकुल बर्बाद हो गया। वह सदैव वायु-शूल, अंग-शूल तथा ज्वर से पीड़ित रहने लगा। अंत को उसकी दशा इतनी बुरी हो गई कि उसके चिकित्सकों को उससे साफ़-साफ़ कह देना पड़ा कि अब तुम एक-दो महीने से अधिक नहीं जी सकते। उन्होंने कहा कि ओषधियों के सेवन से तुम्हें कोई लाभ नहीं हो सकता। हाँ, यदि तुम अपने आहार की मात्रा कम कर दो, और हलका भोजन करो, तो शायद तुम्हें कुछ लाभ हो। उसने ऐसा ही किया। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों बाद वह कुछ-कुछ अच्छा हो चला, और कुछ समय में बिलकुल नीरोग हो गया। साथ ही वह इतना हृष्ट-पुष्ट और बलवान् भी हो गया, जितना कि युवावस्था में भी नहीं था।

यह देखकर उसने अपने खान पान की मात्रा को और भी कम कर दिया। जीवन बनाए रखने के लिये जितने भोजन की आवश्यकता थी, वह उतना ही खाता था। नित्य-प्रति उसके भोजन का सारा सामान डेढ़ पाव से अधिक नहीं होने पाता था। जल भी वह लगभग इतना ही पीता था। साठ वर्ष तक उसकी यही ख़ूराक रही। बहुत गरमी या सरदी तथा काम-क्रोधादि बुरे भावों से वह अपने को बचाए रखता था। इस नियमित पथ्याहार से केवल उसका शरीर ही नहीं, बल्कि मन भी अंत तक ऐसी उत्तम अवस्था में बना रहा कि कोई भी बात उसे हानि न पहुँचा सकी। अस्सी वर्ष की अवस्था में वह एक बड़ा मुक़दमा हार गया; जिसका उसके दो भाइयों पर ऐसा बुरा असर पड़ा कि उनका देहांत हो गया। पर वह बिलकुल नीरोग और बेफ़िक्र बना रहा। इसके कुछ समय बाद वह अपनी घोड़ा-गाड़ी से गिर पड़ा, और घोड़े की टापों के नीचे कुचल गया। इससे उसका एक हाथ और एक पैर टूट गया। उसने अपने टूटे हाथ तथा पैर को कटवा डाला, और बिना किसी प्रकार की दवा का प्रयोग किए ही चंगा हो गया।

एक दफ़े उसने मित्रों के अनुरोध से अपने भोजन की मात्रा बढ़ा दी। इसका क्या परिणाम हुआ, सो उसी के मुख से सुनिए—"अभी मुझे अपने भोजन की मात्रा बढ़ाए दस दिन भी नहीं होने पाए थे कि मेरी प्रसन्नता और फुर्ती न-जाने कहाँ चली गई, और मैं व्याकुल तथा उदास रहने लगा। अपना जीवन मुझे भारू मालूम पड़ने लगा, और दूसरे भी मुझे भार-रूप समझने लगे। बीसवें दिन मेरी पसलियों में पीड़ा होने लगी, और वह चौबीस घंटे तक होती रही। इसके बाद ही मुझे तीव्र ज्वर चढ़ आया, और वह पैंतीस दिन तक नहीं उतरा। लोगों को मेरे बचने की आशा नहीं रही। पर ईश्वर की दया और अपने भोजन-पान की मात्रा को कम करने से मैं फिर अच्छा हो गया। यह तिरासीवाँ वर्ष होने पर भी मेरा शरीर तथा मन, दोनों ही अच्छी हालत में हैं। मैं बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी की सहायता के घोड़े पर चढ़ सकता हूँ; ढालू पहाड़ियों पर घूम-फिर सकता हूँ। अभी हाल में मैंने हास्य-रस-पूर्ण एक नाटक भी लिखा है। जब मैं मित्रों से मिल-जुलकर अथवा सीनेट से लौटकर घर पहुँचता हूँ, तो ग्यारह नाती-पोते मेरा स्वागत करते हैं। उनकी शिक्षा, उनके खेल तथा उनके गीतों से मुझे इस अवस्था में बहुत सुख मिलता है। बहुधा मैं भी उनके साथ गाने लगता हूँ। आजकल मेरी आवाज़ इतनी स्पष्ट और गंभीर है, जितनी कि युवावस्था में भी कभी नहीं थी। वृद्धावस्था में लोग बहुधा चिड़चिड़े और रूखे हो जाते हैं; पर मैं जानता ही नहीं कि ये बातें क्या होती हैं।"

इस प्रकार सुख-पूर्वक वह पूरे सौ वर्ष तक जीवित रहा।

इँगलैंड के बहुत बड़े विद्वान् लॉर्ड बेकन ने भी दीर्घ-जीवन के प्रश्न पर अपना ध्यान दिया, और उसकी जाँच-पड़ताल की। उनके विचार में जीवन दीपक की लौ की तरह है; जिसे आस-पास का वायु-मंडल प्रतिक्षण क्षीण करता जा रहा है। मज़बूत-से-मज़बूत शरीर भी इस स्थायी शोषण-क्रिया से क्षीण होकर नष्ट हो जाता है। इस कारण, उनके मत में, इस शोषण-क्रिया के प्रभाव से बचे रहने से, और अपने शरीर के रसों का समय-समय पर नवीकरण करते रहने से, हम दीर्घ-जीवी हो सकते हैं।

बाह्य शोषण को रोकने के लिये उनके विचार में शीतल जल से स्नान करना बहुत आवश्यक है। स्नान के बाद वह यूनानियों के ढंग से तेल की मालिश का उपदेश करते हैं। आंतरिक शोषण को कम करने के लिये वह मन की शांति तथा शीतोत्पादक भोजन को उपयुक्त समझते हैं। उनके मत में, ऐसा करने से आंतरिक आवेगों का तेज परिमित हो जाता है, और उनके द्वारा शरीर की दैनिक शोषण-क्रिया में कमी पड़ जाती है। जैसे-जैसे हमारी अवस्था बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे हमारे शरीर के रस परिशुष्क तथा दूषित होते जाते हैं। उन रसों को शुद्ध करने के लिये उनकी शिक्षा है कि प्रति दूसरे या तीसरे वर्ष हमें उनका नवीकरण करना चाहिए। नवीकरण की विधि इस प्रकार है कि सूक्ष्म भोजन तथा जुलाब के द्वारा पहले हम अपने शरीर के दूषित रसों को निकाल डालें; फिर उत्तम, आरोग्य-वर्द्धक तथा पुष्टि-कारक भोजन के द्वारा शरीर की शुष्क नाड़ियों को नवीन रसों से भर दें। बेकन के इन विचारों में बहुत-कुछ सचाई है, और थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ ये शिक्षाएँ प्रत्येक समय में मान्य हैं *।

भूपनारायण दीक्षित

'संजीवन-भाष्य' के कुछ अंश की संक्षिप्त आलोचना

(वर्ष १, खंड २, संख्या ६ से आगे)

(८)

श्री शर्माजी ने बिहारीलाल के—

फिर-फिर चित उत ही रहत, टुटी लाज की लाव;
अंग-अंग छबि-झौर में भयो भौंर की नाव ॥२८१॥

इस दोहे से श्रीगोवर्धनाचार्यजी की—

"भ्रामं भ्रामं स्थितया स्नेहे तव पयसि तत्रतत्रैव;
आवर्तपतितनौकायितमनया विनयमपनीय ॥ ४२२ ॥"

इस आर्या से तुलना की है। आर्या की व्याख्या करने के बाद आपकी आलोचना इस तरह शुरू होती है—

"उक्ति अपूर्व है, पर रूपक पूरी तरह बँधा नहीं। यद्यपि 'स्नेहे पयसि' है, 'भ्रामं भ्रामं' है, 'विनयमपनीय',

---

* जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् *Dr. Hufeland* की १२५ वर्ष की पुरानी पुस्तक *The Art of Prolonging Life* के प्रथम परिच्छेद के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी है, पर वह बात नहीं, जो दोहे में है। 'विनयमपनीय' की जगह विहारीलाल ने 'टुटी लाज की लाव' बनाकर रूपक का रूप अधिक स्पष्ट कर दिया है। आर्या में आवर्त "अर्थापत्ति' है। प्रकृत में भँवर-स्थानीय कोई चीज़ नहीं कही गई। दोहे के रूपक में "अंग-अंग छबि-झौर" बहुत चमत्कृत और चक्करदार भँवर आ पड़ा है। लाज की मज़बूत लाव भी टूट गई। अब उसमें से चित्त-रूप नौका का निकलना नितांत कठिन है, असंभव है। और, फिर, इस नाव के (चित्त के) नाविक का स्पष्ट उल्लेख न करके कवि ने और भी कमाल किया है। चाहे 'अनया' समझिए या 'अनेन'। अथवा 'अस्याः' या 'अस्य'। आर्या में नायिका को नौका बनाया है, और दोहे में चित्त को नाव ठहराया है। चित्त को नाव कहना एक प्रकार से औचित्य-पूर्ण है। उर्दू के कवियों ने भी किश्तिए-दिल के मज़मून बाँधे हैं।"

शर्माजी का यह कहना कि आर्या में 'रूपक पूरी तरह नहीं बँधा' सर्वथा अयुक्त है। इस (आर्या) में ऐसा अच्छा रूपक बँधा है कि विहारीलाल के सदृश चतुर कवि भी इसका पूरी तरह अनुकरण करने में अक्षम हो गए। जब 'स्नेहे पयसि' और 'भ्रामं भ्रामं' है, तब आवर्त को 'अर्थापत्ति' कहना सरासर अन्याय है। जल में चक्कर पड़ने ही को तो भँवर कहते हैं। अतः आर्या में आवर्त का निर्देश अत्यंत स्पष्ट और चातुर्य-चमत्कार-पूर्ण है।

सख्यादि (नाविकों) के प्रयत्न (लाव) को दूर करके (तोड़कर), स्नेह (जल) में बार-बार भ्रमित होकर वहीं (स्नेहावर्त में) नायिका (नौका) की स्थिति का परम स्पष्ट निर्देश होने पर भी 'आवर्त-पतित नौका' का रूपक पूरी तरह क्यों नहीं बँधा, यह मुझ-सरीखे मंद-मति की समझ में नहीं आता।

दोहे में अलबत्ता 'फिर-फिर चित', 'टुटी लाज की लाव', 'अंग-अंग छबि-झौर' के होने पर भी रूपक पूरी तरह नहीं बँधा है। जिसमें भँवर पड़ता है, उस (जल) का ही जब पता नहीं, तब भँवर का पड़ना कैसा? 'अंग-अंग छबि-झौर में भौंर' का पड़ना तब तक नहीं माना जा सकता, जब तक अंग-अंग के लिये प्रकृत में जल का निरूपण न किया जाय।

दोहे में नाविक का उल्लेख न होने से बड़ी भारी त्रुटि है। पर इसे श्रीशर्माजी कवि का कमाल समझते हैं। गुण को दोष और दोष को गुण बना देनेवाले श्रीशर्माजी को अनेक साधुवाद!

नायिका को नौका बनाने में क्यों औचित्य नहीं है, इसका कोई कारण शर्माजी ने नहीं दिखलाया। हमारी समझ में नायिका को नौका बनाना अत्यंत औचित्य-पूर्ण है। इस औचित्य का अनुभव रसिक-समाज सहज में ही कर सकता है।

प्रिय पाठक, अब आप लोग देखें कि आर्या दोहे से उत्कृष्ट है या नहीं? दोहे को आर्या से उत्कृष्ट बतलाकर श्रीशर्माजी ने पक्षपात किया है या नहीं?

(६)

कंजनयनि मंजन किए बैठी ब्यौरति बार;
कच अँगुरिन बिच दीठि दै चितवति नंदकुमार॥ ६० ॥

शर्माजी इस दोहे की तुलना—

चिकुरविसारणतिर्यङ्नतकंठा विमुखवृत्तिरपि बाला,
त्वामियमंगुलिकल्पितकचावकाशा विलोकयति॥ २३१ ॥

इस आर्या से करते हैं। आर्या का भावार्थ बतलाने के बाद आप लिखते हैं—

"चिकुर-विसारण" (केश-परिष्करण) और "ब्यौरति बार", "अंगुलिकल्पितकचावकाशा" और "कच अँगुरिन बिच दीठि दै", "विलोकयति" और "चितवति"— दोनों जगह एक हैं। पर "नंदकुमार" की कृपा से विहारी का चित्र अमूल्य हो गया है, सहृदय भावुकों की दृष्टि बलात् अपनी ओर खींचता है। दोहे का माधुर्य आर्या से कहीं बढ़ा-चढ़ा है। पढ़नेवाले की ज़बान और सुननेवाले के कान इसमें साक्षी हैं। कस्तूरी की गंध सौगंध की हाजत नहीं रखती।

यहाँ श्रीशर्माजी वही पुरानी चाल फिर चले हैं। केवल 'नंदकुमार' के कथन-मात्र से दोहे का चित्र आर्या के चित्र से कैसे उत्कृष्ट हो गया, यह शर्माजी के सदृश सर्वज्ञ समालोचक ही समझ सकते हैं। 'चिकुर-विसारण' और 'ब्यौरति बार', 'अंगुलिकल्पितकचावकाशा' और 'कच अँगुरिन बिच दीठि दै', 'विलोकयति' और 'चितवति', यद्यपि दोनों जगह एक हैं, किंतु 'तिर्यङ्-नतकंठी', और 'विमुखवृत्तिरपि बाला' की तुलना के लिये दोहे में कुछ भी नहीं। और, इसकी तुलना न होने से, दोहे की तुलना आर्या से नहीं हो सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गर्दन को तिरछी नीचे झुकाए, और पीठ फेरे हुए भी उँगलियों से केशों के बीच में मार्ग बनाकर देखने में, और धृष्टता से सामने ही बैठकर बालों और अँगुलियों के बीच से देखने में बड़ा अंतर है । आर्या में बाला नायिका का वर्णन है, अतः उसके अवलोकन का चित्र बहुत ही चातुर्य और युक्ति के साथ चमत्कृत रीति से दिखलाया गया है । दोहे का चित्र इसके सामने कोई चीज़ नहीं । दोहे का पद-माधुर्य आर्या से कुछ विशेष अवश्य है । किंतु इतने उत्कृष्ट भाव-माधुर्य पर इस साधारण पद-माधुर्य को तरजीह नहीं दी जा सकती ।

इतनी उत्कृष्ट आर्या को दोहे से हीन बतलाना शर्माजी के पक्षपात का पूर्ण प्रमाण है ।

(१०)

पलनि प्रगटि बरुनीनि बढ़ि नहिं कपोल ठहरायँ ;
अँसुवा परि छतिया छनक छनछनाय छपि जायँ ॥ ४२६ ॥"

तप्ते महाविरहवह्निशिखावलीभि-
रापांडुरस्तनतटे हृदये प्रियायाः ।
मन्मार्गवीक्षणनिवेशितदीनदृष्टे-
र्नूनं छमच्छमिति वाष्पकणाः पतंति ॥ ८६ ॥

श्रीशर्माजी महाराज, ऊपर-लिखे दोहे और आर्या की इस तरह तुलनात्मक समालोचना करते हैं—

"इस दोहे की रचना के समय विहारी की दृष्टि में अमरुक का यह "छमच्छमिति वाष्पकणाः पतंति", "नूनं" घूम रहा था । तथापि दोहा उससे कहीं उत्कृष्ट हो गया है । दोहे में शब्द-चमत्कार के अतिरिक्त अर्थ-चमत्कार का आधिक्य भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है । अमरुक के यहाँ वाष्पकणों के छन-छन करके गिरने का कारण 'महाविरहवह्निशिखावलीभिस्तप्ते' पद में स्पष्ट है ; पर विहारी के यहाँ यह बात छिपी है, इतनी कसर ज़रूर है । अमरुक के पद्य में विरह के साथ 'महत्' पद अच्छा नहीं । यह बड़े अनर्थ की सूचना दे रहा है, 'महानिद्रा' 'महायात्रा' की तरह 'मृत्यु-विरह' की अमंगलता का सूचक है । परंतु अमरुक की विरहिणी का नायक महाप्राणता की कृपा से अभी विद्यमान है । वही तो यह कह रहा है कि 'मन्मार्गवीक्षणनिवेशितदीनदृष्टेः'; इतनी ख़ैर है । इसने अमंगलता के पाँव नहीं जमने दिए ; बात आई-गई हुई । अमरुक के 'वाष्पकणाः पतंति' से प्रकट है कि वाष्पकण नीचे गिर रहे हैं । छनछनाकर छिप नहीं जाते । विहारी के यहाँ संतापाधिक्य बहुत ही प्रबल है ; वहाँ आँसू गिर नहीं सकते, छनछनाकर वहीं छिप जाते हैं ।"

यहाँ श्रीशर्माजी ने या तो पद्य की उत्कृष्टता पर ध्यान ही नहीं दिया, या पक्षपात का चश्मा चढ़ाए हुए चक्षुओं से वह इसकी उत्कृष्टता देख ही नहीं सके । जो हो, इस तुलना में शर्माजी ने पक्षपात की हद कर दी है । पद्य के भाव और शब्दों का अपहरण दोहे में स्पष्ट रूप से हुआ है । दोहे में पद्य से कोई विशेषता नहीं है । विशेषता दूर रही, दोहा इस पद्य की बराबरी भी नहीं कर सकता । प्रिय पाठक, मैं अपनी अल्प मति के अनुसार इस पद्य की उत्कृष्टता को दिखलाता हुआ शर्माजी की आलोचना के पक्षपात और भ्रम को साबित करता हूँ ।

प्रिय पति के विरह में नायिका की दशा अत्यंत दयनीय हो गई थी । विरह-जनित कृशता और कमज़ोरी के कारण उसमें अब चलने-फिरने की भी शक्ति नहीं रही थी । दिन-रात पति के ध्यान में तल्लीन रहने के कारण उसने सखी आदि से बात-चीत करना भी बंद कर दिया था । अब वह रात-दिन पति के आने का रास्ता देखने के लिये आँखों को दीन किए हुए, भित्ति आदि के सहारे बैठी, एकांत में, रोया करती थी ।

इन्हीं दिनों नायक परदेश से घर को लौटा । अपने ग्राम में आकर भी, अपनी प्राण-प्रिया के ध्यान में तल्लीन होने के कारण, ग्राम-जनों से विना कुछ बात-चीत किए वह सीधे अपने घर पहुँचा । घर में अपनी प्राण-वल्लभा का दर्शन न पाकर उसे अत्यंत दुःख हुआ । उस समय वहाँ कोई सखी आदि नहीं थी, जो नायक उनसे अपनी प्रिया का हाल पूछता । दुर्वह-दुःखाभिभूत होकर वह अपनी प्रिया के विषय में, अपने मन में, जिस समय तरह-तरह के तर्क-वितर्क कर रहा था, उसी समय उसको उस मकान की कोठरी या कमरे से, जिसमें नायक के साथ नायिका पहले प्रायः रहा करती थी, छम्-छम् की आवाज़ सुन पड़ी । इस शब्द पर ध्यान देकर उसने देखा कि कमरे के भीतर एक स्थान में आग की ज्वालाएँ निकल रही हैं, उन ज्वाला-मालाओं के बीच में कुछ ज़र्दी-मिला शुक्र वर्ण दिखलाई देता है, और वहीं से छम्-छम् की आवाज़ आ रही है । नायिका में तल्लीन होने के कारण नायक, तत्काल इस बात को हृदयंगत करके, बोल उठा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ये सामान्य अनल की ज्वालाएँ नहीं हैं, मेरे विरह के कारण मेरी प्रियतमा के शरीर से विरह-वह्नि की ज्वालाएँ निकल रही हैं। यह पीतत्व-संवलित धूसर वर्ण और कुछ नहीं, इन्हीं विरह-वह्नि-शिखावलियों से तवे की तरह तपाया हुआ मेरी प्राण-वल्लभा का हृदय है, जहाँ यह पीतत्व-संवलित धूसर-वर्ण स्तन-तट दिखाई देता है। मुझे यह निश्चय है कि मेरे वियोग में मेरा मार्ग देखती हुई दीन दृष्टि किए हुए मेरी प्रिया के ये आँसू ही इसी (तवे की तरह संतप्त) हृदय पर गिरकर 'छमच्छमिति' शब्द कर रहे हैं—छन-छन करके छिप रहे हैं।

नायक की अपनी प्रियतमा में इतनी तल्लीनता और नायिका की वियोगावस्था का इतना उत्कृष्ट चित्र और कहीं दिखाई देता है? हृदय में कुछ पीतत्व-संवलित श्वेतता-युक्त धूसर वर्ण स्तन-तट से विरहाधिक्य की दशा कितनी उत्तम रीति से व्यक्त हुई है? शरीर के पीतत्वाभास के साथ रक्त-मांसाभाव के कारण त्वचा के भीतर की अस्थियों का श्वेतत्व दिखलाकर कवि ने नायिका का कार्श्य दिखलाने में कैसा कमाल किया है!

हमें इस बात का अत्यंत आश्चर्य है कि शर्माजी के सदृश समालोचक-पुंगव को पद्य की यह उत्कृष्टता क्यों नहीं देख पड़ी! अस्तु।

विरह की इतनी अधिकता को—जिसके संताप के कारण वह्नि-शिखावलियाँ निकल रही हैं—सूचित करने के लिये विरह के साथ महत्-पद सर्वथा उपयुक्त और अच्छा है। दोहे में पद्य से न तो शब्द-चमत्कार अधिक है, और न अर्थ-चमत्कार। अर्थ-चमत्कार में तो यह दोहा पद्य से अत्यंत हीन है। सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि सहृदयों के शिरोमणि श्रीशर्माजी महाराज ने 'हृदय' का कैसे बहिष्कार कर दिया। यदि आप हृदय का बहिष्कार न कर देते, तो 'वाष्पकणाः पतंति' इतना ही लिखकर इसका यह अनुपम भावार्थ कि 'वाष्पकण नीचे गिर रहे हैं', कैसे लिख देते। 'वाष्पकणाः पतंति' का यह अर्थ कि 'वाष्पकण नीचे गिर रहे हैं' कहाँ से और कैसे निकलता है, यह हमारी समझ में नहीं आता। हमें तो 'वाष्पकणाः पतंति' का अर्थ, 'वाष्पकण गिर रहे हैं' यही समझ पड़ता है। यदि 'वाष्पकणा अधः पतंति' होता, तो शर्माजी का यह अर्थ ठीक होता। शर्माजी ने वाष्पकणों के छन-छन करके गिरने का कारण 'महाविरहवह्निशिखावलीभिस्तप्ते' लिखकर भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि इस ('महाविरहवह्नि-शिखावलिभिस्तप्ते') विशेषण का विशेष्य कौन है। यदि आपने इस पर ध्यान दिया होता, तो आपको 'हृदये' दिखलाई पड़ता, और फिर आपसे इस तरह अर्थ का अनर्थ न होता। पद्य में 'वाष्पकणाः प्रियाया हृदये पतंति' अर्थात् आँसू (वाष्पकणाः) प्रिया के वक्षःस्थल पर (प्रियाया हृदये) गिरते हैं (पतंति), इस बात का बहुत स्पष्ट उल्लेख होने पर भी इस पर ध्यान न देने से श्री-शर्माजी का भ्रम या पक्षपात या भ्रम और पक्षपात, दोनों साफ़ ज़ाहिर हैं।

पाठक, देखिए, श्रीशर्माजी ने पद्य से दोहे को उत्कृष्ट सिद्ध करने के लिये कैसी मन-मानी समालोचना की है—

पद्य में आँसुओं के हृदय पर गिरने का उल्लेख है, और आप लिखते हैं कि वाष्पकण नीचे गिर रहे हैं। पद्य में आँसुओं के गिरते ही 'छम्-छम्' होकर छिप जाने का स्पष्ट उल्लेख है, और आप लिखते हैं, वाष्पकण छन-छनाकर छिप नहीं जाते। आप लिखते हैं कि "विहारी के यहाँ संतापाधिक्य बहुत ही प्रबल है; वहाँ आँसू गिर नहीं सकते, छनछनाकर वहीं छिप जाते हैं।" शर्माजी के 'आँसू गिर नहीं सकते' के लिखने का शायद यह अभिप्राय है कि आँसू नीचे नहीं गिर सकते। मगर जब आँसू आँखों से निकलकर कपोलों पर से होते हुए छाती पर गिर ही रहे हैं, तब गिर क्यों नहीं सकते?

श्रीशर्माजी विहारी के यहाँ संतापाधिक्य की प्रबलता बतलाते हैं, किंतु अमरुक के संतापाधिक्य के सामने यह संतापाधिक्य बहुत कम है। विहारी के यहाँ आँसू 'छनछनाकर' छिप जाते हैं सही, पर उनके छाती पर छनछनाकर छिप जाने में कुछ देर, एक-आध क्षण, ज़रूर ही लगता है; किंतु अमरुक के यहाँ वाष्पकण अत्यंत संतप्त हृदय पर गिरते ही 'छम्-छम्' शब्द करते हुए तत्काल छिप जाते हैं; उनके छिपने में 'छनक' (एक क्षण) भी नहीं लगता।

शर्माजी लिखते हैं—"विहारी ने आँसुओं की उत्पत्ति और पतन का प्रकार बहुत विलक्षणता से कथन किया है। इसमें एक ख़ास चमत्कार है। 'बरुनीनि बढ़ि' से बरौनियों की सघनता और वियोग-चिंता में अर्ध-निमीलन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशा की प्रतीति होती है। यदि आँख बिलकुल खुली हों, तो पलकें ऊपर को उठी रहने से, और बिलकुल बंद हों, तो पलकों के सिरे नीचे को होने से, आँसू इकट्ठे होकर, बढ़कर, नहीं गिर सकते। 'नहिं कपोल ठहरायँ' से कपोलों की श्लक्ष्णता—स्निग्धता—की ध्वनि निकलती है। जहाँ निगाह के पाँव रपटते हैं, वहाँ पानी की बूँद कैसे ठहर सकती हैं!"

विहारीलाल ने आँसुओं की उत्पत्ति और पतन का प्रकार बेशक बहुत बढ़िया दिखलाया है; किंतु अमरुक के 'मन्मार्गवीक्षणनिवेशितदीनदृष्टेः' में भी वही ख़ास चमत्कार है, जो विहारीलाल ने दिखलाया है। प्रिय का मार्ग देखने की चिंता से दीन दृष्टि में भी नेत्रों की अर्ध-निमीलित-दशा की प्रतीति होती है। अतः इसमें भी अश्रु-पतन का वही प्रकार है, जो 'पलनि प्रगटि बरुनीनि बढ़ि' में है।

'नहिं कपोल ठहरायँ' से श्रीशर्माजी ने नायिका के कपोलों की श्लक्ष्णता—स्निग्धता—की ध्वनि निकालकर, विहारी की इस सुकमनीय कविता का काया-पलट करके अर्थ का अनर्थ कर डाला है। हमने 'लाल-चंद्रिका' प्रभृति टीकाओं से युक्त सतसइयों में 'छन कपोल ठहरायँ' यही पाठ देखा है। 'नहिं कपोल ठहरायँ' यह पाठ शर्माजी ने कपोलों की स्निग्धता—श्लक्ष्णता—दिखाने की ग़रज़ से गढ़ लिया है। विहारी की कविता को 'येन-केन प्रकारेण' उत्कृष्ट सिद्ध करने के विचार से शर्माजी ने इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया कि यहाँ किसी प्रहर्षित-वदना संयोगिनी का वर्णन नहीं है, जिसके मुख-कमल पर अश्रु-जल नहीं ठहरता। यहाँ तो उस वियोगिनी का वर्णन है, जिसके 'अँसुआ परि छतियाँ छनक छनछनाय छपि जायँ।' ऐसी वियोगिनी के कपोलों की इतनी स्निग्धता—श्लक्ष्णता—के वर्णन में स्पष्ट अनौचित्य है। कपोलों की श्लक्ष्णता—स्निग्धता—के वर्णन से वियोग-संतापाधिक्य की वह दशा, जिसके वर्णन में 'अँसुवा परि छतियाँ छनक छनछनाय छपि जायँ' कहा जा रहा है, काफूर हुई जाती है। फिर वियोगिनी के वर्णन में कपोलों की श्लक्ष्णता प्रदर्शित होने से संयोगिनी का भी भान होने लगता है। ऐसी दशा में शर्माजी की कृपा से यह कविता 'रसाभास' से दूषित हुई जाती है। और, वियोगिनी-दशा-प्रदर्शक करुण-रस के वर्णन में संयोगिनी-दशा-समर्थक शृंगार-रस का सान्निध्य हो जाने के कारण रस-विरोध भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। ऐसे दूषणों से दूषित कविता सहृदय रसिक-जनों के आनंद का कारण नहीं हो सकती।

अब मैं अपने प्यारे पाठकों को दोहे से पद्य की उत्कृष्टताएँ दिखलाता हूँ—

(१) दोहे में आँसुओं के छनछनाकर छिप जाने का कारण कुछ भी नहीं दिखलाया गया; किंतु अमरुक के पद्य में 'महाविरहवह्निशिखावलीभिस्तप्ते' वाक्य से आँसुओं के छिप जाने का कारण बिलकुल स्पष्ट है।

(२) दोहे में केवल 'छतियाँ' लिखकर आँसुओं का छिप जाना दिखलाया गया है; किंतु पद्य में 'आपांडुरस्तनतटे हृदये' के उल्लेख से 'हृदय' अग्नि-तप्त तवे के रूप में प्रदर्शित होकर वाष्पकणों के 'छमच्छमिति पतंति' को स्पष्ट बतला रहा है।

(३) दोहे में नायिका की वियोग-दशा के रूप का कुछ भी प्रदर्शन नहीं हुआ; किंतु पद्य में 'आपांडुरस्तनतटे' और 'मन्मार्गवीक्षणनिवेशितदीनदृष्टेः' से वियोग-दशा का रूप सुचारु रूप से निरूपित है।

(४) दोहे में विरहिणी के विरही की दशा का कुछ भी कथन नहीं है; किंतु पद्य में नायक की नायिका में तल्लीनता, और उसी तल्लीनता के कारण नायिका की विरह-दशा का अनुभव-रूप नायक का निश्चयात्मक कथन नायक की दशा को सुंदर चित्र की तरह चित्रित कर रहा है।

(५) दोहे में आँसुओं के 'छनक छनछनाय छपि जायँ' का उल्लेख है; किंतु पद्य में विरहिणी के हृदय पर आँसुओं के गिरते ही छम्-छम् करके छिप जाने का कथन है। कुछ देर छनछनाकर छिप जाने में वियोग-संताप की इतनी अधिकता नहीं है, जितनी गिरते ही तत्काल छम्-छम् करके छिप जाने में है।

(६) आँसुओं के हृदय पर गिरते ही छिप जाने में वियोग-संताप का अत्यंतातिशयत्व व्यंग्य है। इस प्रकार वाच्यातिशयी व्यंग्य होने के कारण महाकवि श्रीअमरुक का यह पद्य-रत्न ध्वनि-काव्य का उत्तमोत्तम उदाहरण है।

ऊपर-लिखी विशेषताओं से पद्य की परमोत्कृष्टता स्पष्ट सिद्ध है। और, विहारी का दोहा, बस, समझ लीजिए, इसके सामने जो कुछ है। अब मर्मज्ञ पाठक देखें, ऐसे परमोत्कृष्ट पद्य-रत्न को विहारी के साधारण दोहे से हीन बतलाकर शर्माजी ने पक्षपात किया है या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११)

मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँह चूम्यो ढिग जाय ;
हँस्यौ, खिसानी, गर गह्यौ, रही गरैं लपटाय ॥२१४॥

शर्माजी ने इस दोहे की तुलना —

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किंचिच्छनै-
र्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम् ।
विश्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गंडस्थलीं,
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुंबिता ॥८२॥

अमरुक के इस जगत्प्रसिद्ध पद्य से की है । इस पद्य के मुक़ाबिले में यह दोहा अत्यंत हीन है ; किंतु श्रीशर्माजी महाराज दोहे को ही उत्कृष्ट बतलाते हुए लिखते हैं—

"विहारी का यह दोहा अमरुक के इसी प्रसिद्ध पद्य का "तुल्यदेहितुल्य" प्रतिद्वंद्वी है । अमरुक ने जिस गोपनीय घटना की अपने पद्य में विशद व्याख्या करके रसिकों को चौंका दिया है, ठीक उसी घटना का उक्ति-वैचित्र्य से विहारी ने भी वर्णन किया है, और हम समझते हैं, खूब किया है । ख़ासकर दोहे का उत्तरार्द्ध बहुत ही उत्तम हो गया है । उसमें पर्याय-व्यापारों का बड़ा ही मनोहर शब्द-चित्र खिंच गया है । फिर दोहे की शब्द-स्थापना पर ध्यान दीजिए, कितना गढ़कर— दृढ़ता से संधि मिलाकर—शब्दों को बिठलाया है कि ज़रा भी कहीं शिथिलता का नाम नहीं, एक मात्रा भी इधर-उधर नहीं हो सकती—"हँस्यौ, खिसानी, गर गह्यौ, रही गरैं लपटाय ।" अँगूठी पर नगीने-से जड़ दिए हैं ।"

मगर हमारी राय है कि विहारी का यह दोहा अमरुक के पद्य का निकृष्ट छायानुवाद भले ही कह लिया जाय, 'तुल्यदेहितुल्य प्रतिद्वंद्वी' कभी नहीं माना जा सकता । अमरुक ने इस गोपनीय घटना की विशद व्याख्या करके जिस मनोहर चित्र का चित्रण किया है, वह अत्यंत चातुर्य-चमत्कार-पूर्ण है । विहारी के चित्र का रंग इसके मुक़ाबिले में बहुत ही फीका है । हम विहारी के दोहे की लाल-चंद्रिका और अमरुक के पद्य का भावार्थ देकर, दोनों की तुलना करके, यथामति यह दिखलाते हैं कि दोहे से पद्य कितना उत्कृष्ट है ।

दोहे की लाल-चंद्रिका—"नायिका-वचन सखी से । मैंने बहाना करनेवाले को सोया जानके उसका मुँह चूमा पास जाके जब वह हँसा तब मैं खिसानी हुई नायक ने मेरा गला पकड़ा मैं उसके गले से लिपट रही तात्पर्य यह कि नायक ने गला पकड़कर चाहा कि चूँबा लूँ पर मैंने ऊँचा मुँह कर गले से लपट चूँबा न दिया भ्रांत्यलंकार सोवने का भ्रम हुआ नायिका को नायक के मिस से ।"

पद्य का भावार्थ—नवोढ़ा नायिका ने वास-गृह को शून्य देखकर, शय्या से आहिस्ता-आहिस्ता कुछ उठकर छल से सोए हुए पति के मुख को, बहुत देर तक देखकर, सोने का विश्वास करके, चूम लिया । चूमने पर पति की गंडस्थली को रोमांच-युक्त देख पति के बहाने को समझ नायिका ने लज्जा से मुँह नीचा कर लिया । तब हँसकर पति ने उस बाला नायिका का बहुत देर तक चुंबन किया ।

अब देखिए, दोहे में चुंबन-प्रकार का कुछ भी कथन नहीं । 'मुँह चूम्यो ढिग जाय' से यह मालूम होता है कि नायिका कहीं दूर से चलकर नायक के पास पहुँची, और उसे छल से सोया देख मुख-चुंबन कर लिया । इस तरह के मुख-चुंबन से उसकी निर्लज्जता साबित होती है । मुख-चुंबन के बाद जब पति हँसा, तब वह खिसिया गई । पति ने मुख चूमने के लिये गला पकड़ा, उसने गले में लिपटकर मुख-चुंबन नहीं करने दिया । नायिका की ऐसी ढिठाई देखकर यह समझ में नहीं आता कि वह पहले क्यों लज्जित हुई थी । शायद उसका लज्जित होना झूठ-मूठ मज़ाक़ से हो । यदि वह सचमुच ही लज्जित हो गई होती, तो नायक के गले में अपने आप लिपटकर इतनी धृष्टता न करती । नायिका की इतनी निर्लज्जता और धृष्टता से यह साफ़ साबित है कि वह बाला नहीं है । और, नायिका के बाला न होने से इस दोहे में वह चमत्कार नहीं, जो पद्य में है । नायक के मिसहा सोने की सूचना, ठठाकर हँसने के कारण, इस(नायक)की निर्लज्जता और ओछेपन को स्पष्ट बतलाती है ।

अब अमरुक के पद्य का मुलाहज़ा कीजिए । नायक और नायिका, दोनों एक ही मकान में पास-ही-पास अपनी-अपनी शय्या पर लेटे थे । नायक बहाना करके सो गया । मकान को शून्य (सखी आदि से ख़ाली) देखकर नायिका आहिस्ता-आहिस्ता कुछ उठी । उसके आहिस्ता-आहिस्ता उठने का यह कारण था कि किसी तरह की ज़रा भी आवाज़ न हो ; क्योंकि शब्द के होने से नायक के जग पड़ने का खटका था । और, कुछ उठने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का यह कारण था कि कदाचित् उठने के समय में ही पति की निद्रा उचट भी जाय, तो चटपट फिर लेट जाने से (नायिका की) इस चेष्टा को नायक कुछ भी न समझ सकेगा। पति के मुख को बहुत देर देखने का यह अभिप्राय था कि पति सो गया है या नहीं। इस तरह पति के सो जाने का पूर्ण विश्वास करके बाला ने यद्यपि इतने भय, लज्जा और चातुर्य के साथ पति का मुख-चुंबन किया, तथापि उसे पति के जग पड़ने का खटका था, और इसीलिये पति की मुख-चेष्टा पर उसका विशेष लक्ष्य था। चुंबन करते ही पति की गंडस्थली को रोमांचित होते देख पति की छद्म-निद्रा को जानकर वह लज्जा से नम्रमुखी हो गई—अत्यंत लज्जित होने के कारण चित्र-लिखित-सी रह गई। तब पति ने हँसकर उस (बाला) का बहुत देर तक चुंबन किया। पति के देर तक चुंबन करने में भी विशेष हेतु था। जैसे किसी ने किसी को क़र्ज़ दिया हो, और वह क़र्ज़दार उसका क़र्ज़, सवाए-ड्योढ़े सहित अदा कर दे, तो क़र्ज़दार की प्रशंसा और क़र्ज़ देनेवाले को प्रसन्नता होती है। इसी तरह यहाँ नायिका ने नायक को चुंबन-रूप क़र्ज़ दिया था ; नायक ने नायिका का बहुत देर तक चुंबन करके वह क़र्ज़ विशेष रूप से (सवाए-ड्योढ़े-सहित) अदा कर दिया। नायक की व्याज-निद्रा की विज्ञप्ति रोमांचित गंडस्थली द्वारा होने से उस (नायक) की लज्जा-शीलता और गंभीरता स्पष्ट परिलक्षित है।

अब मर्मज्ञ पाठक देखें, अमरुक का पद्य विहारी के दोहे से कितना उत्कृष्ट है। ऐसे पद्य-रत्न के सामने यह दोहा निष्प्रभ काँच के समान है। फिर भी इस पद्य से उस मामूली दोहे को उत्कृष्ट बतलाने के कारण शर्माजी विहारी के प्रबल पक्षपाती सिद्ध होते हैं।

(१२)

मरिबे को साहस कियौ ; बढ़ी बिरह की पीर।
दौरति है समुहे ससी, सरसिज, सुरभि समीर ॥४३४॥

इस दोहे से श्रीशर्माजी भवभूति के निम्न-लिखित पद्य की तुलना करते हैं—

धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते
मार्गे गात्रं क्षिपति बकुलामोदगर्भस्य वायोः ;
दावप्रेम्णा सरसबिसिनीपत्रमात्रांतराय-
स्ताम्यन्मूर्तिः श्रयति बहुशो मृत्यवे चंद्रपादान्।

यद्यपि इस पद्य से दोहे की तुलना करना अत्यंत अनुचित है, सरासर अन्याय है—क्योंकि मणि से काँच की या सूर्य से दीपक की तुलना कैसी—तथापि शर्माजी ने बलात् दोहे को पद्य के बराबर बिठला दिया। दोहे की हीनता को आप कवि की कारीगरी समझते हैं। पद्य का भावार्थ बतलाकर आप लिखते हैं—

"विहारी के दोहे में इतनी उद्दीपन-सामग्री का संग्रह नहीं है, इस कारण इसे हीनता न समझिए। इसमें भी एक बात है। भवभूति के यहाँ "महाप्राण" माधव (पुरुष) की दशा का वर्णन है, उसकी अभीष्ट-सिद्धि के लिये इतने ही घातक उद्दीपनों की आवश्यकता है, और इधर दोहे में एक बेचारी विरहिणी अबला का वर्णन है, उसका काम तमाम करने को इनमें से एक-आध घातक भी पर्याप्त है, घातकों की सेना दरकार नहीं है। हम समझते हैं, यही समझकर कवि ने उद्दीपन-सामग्री का अधिक विस्तार नहीं किया।"

अब देखिए, भवभूति ने उद्दीपन-विभावों को कितनी उत्तमता के साथ प्रदर्शित किया है। एक-एक उद्दीपन-विभाव की गणना करते हुए विरही की दशा और उसकी कार्य-प्रणाली का कितना विचित्र वर्णन है? उद्दीपन-विभावों के प्रभाव से क्रमशः विरहाधिक्य-प्रदर्शन कितनी रमणीय रीति से प्रतिपादित है? विरह से अधीर होकर मरने के लिये उस बौरे हुए नवीन आम्र-वृक्ष पर, जिस पर कोकिलाएँ बोल रही हैं, दृष्टि धारण करना, मृत्यु होने के स्थान में इससे विरहाधिक्य होने पर मौलसिरी की गंध से सुगंधित वायु के मार्ग में लोटना, इससे भी विफल-मनोरथ होकर दावाग्नि में जल मरने के लिये भीगे हुए कमलिनी के पत्रों का ओढ़ना, और इससे भी मनःकामना सिद्ध न होते देख चंद्र-किरणों की शरण लेना दिखलाकर कवि ने उद्दीपन-विभावों की प्रबलता और तत्संजात उत्तरोत्तर विरह-वर्धन जिस चमत्कृत ढंग से दिखलाया है, दोहे में उसका आभास भी नहीं। शर्माजी के कहने से यदि हम इस बात को मान भी लें कि भवभूति ने महाप्राण माधव का मनोरथ सिद्ध करने के लिये उद्दीपन-विभावों का दल इकट्ठा कर दिया है, और विहारी ने अल्पप्राणा विरहिणी का मनोऽभीष्ट सफल होने के लिये एक-आध घातक ही पर्याप्त समझकर उद्दीपन-विभावों की अत्यल्पता दिखलाई है, तो भी पद्य का वर्णन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैचित्र्य अत्यंत चमत्कारी और हृदयहारी होने के कारण बेजोड़ है। यह दोहा तो इसके सामने नितांत नगण्य है।

शर्माजी के पक्षपात के उदाहरण दिखलाते-दिखलाते यह लेख बहुत बढ़ गया। यद्यपि हम शर्माजी के पक्षपात के कुछ उदाहरण 'उर्दू' और 'हिंदी' के भी अभी और देना चाहते थे, किंतु अवकाश की कमी हमें अब इस कार्य से रोकती है। यदि समय मिला, तो हम इस पर कभी फिर लिखेंगे। अब हम अपनी तीसरी बात पर भी विचार करते हुए अपना यह लेख समाप्त करते हैं।

समालोचक के लिये आवश्यक तीसरी बात है—

'समालोचना की भाषा को काठिन्य, कटुता और वितंडा-वाद से विहीन रखना'

समालोचना में व्यर्थ का वितंडा-वाद और कटु शब्दों की बौछार नितांत अनुचित है। उससे थोड़ी देर के लिये संकीर्ण हृदयों को मज़ा भले ही मिल जाय, किंतु समालोचना का महत्त्व सर्वथा नष्ट हो जाता है। इससे सहृदय सज्जन पाठकों का हृदय अत्यंत क्षुब्ध हो उठता है। जो बात वितंडा-वाद और कटूक्ति से प्रतिपादित होती है, उससे क्रोध की उत्पत्ति होकर कलह का बीज बो जाता है। इसी कारण उसका प्रभाव अल्प समय में ही विलीन हो जाता है। किंतु वही बात यदि प्रेम-पूर्वक मधुर शब्दों द्वारा प्रतिपादित की जाय, तो उसका प्रभाव चिरस्थायी होकर क्रोध-कलह के स्थान में शांति और मेल को प्रतिष्ठित करता है। अतः उत्तम समालोचकों को उचित है कि बुरे ढंग को अपनी समालोचना के पास न फटकने दें। हमें खेद है कि श्रीशर्माजी महाराज ने इस बात का कुछ भी ख़याल न करके अपनी समालोचना में, जान-बूझकर, बड़ी कोशिश से, वितंडा-वाद, फबतियों और कटूक्तियों को ठूँस-ठूँसकर भर दिया है। यों तो आपके भाष्य-भर में इन दोनों दोषों का अखंड राज्य है, किंतु 'सतसई-संहार' तो इस बात का जाज्वल्यमान उदाहरण है। यहाँ संजीवन-भाष्य से इन दोनों दोषों के कुछ ही उदाहरण मैं प्रिय पाठकों को प्रदर्शित करता हूँ—

(१) इस दोहे पर व्यासजी ने यह टिप्पणी जड़कर "दादे-सखुनवरी" दी है। (संजीवन-भाष्य, पृ० २२६)

(२) मेसर्स मिश्र-बंधुओं ने लिखा है।

(सं० भा०, पृ० [illegible])

(३) सखुन फ़हमी मिश्र-बंधुआँ मालूमशुद।

(सं० भा०, पृ० २३६)

(४) नहीं महाशयगण! बंधुगण! ऐसा न मानिए ××× हमें तो यहाँ आपकी समझ में साफ़ ग़लती समझ पड़ती है। (सं० भा०, पृ० २४०)

(५) मेसर्स मिश्र-बंधु फिर फ़रमाते हैं।

(सं० भा०, पृ० २४२)

(६) मेसर्स मिश्र-बंधुओं ने विहारी पर और भी कुछ कृपा की है। ××××× उसे 'काइयाँ' पन की उपाधि दी है। गुंडों का-सा चित्र बनाकर (हिंदी-नवरत्न में) उसके चरित्र पर कलंक-कालिमा पोतने की गर्हणीय दुश्चेष्टा की है।

(सं० भा० की टिप्पणी, पृष्ठ २४२, २४३)

(७) यह राख, मिश्र महोदय की प्रमाद-ज्वाला में जले हुए इस स्वर्गवासी वाक्य की है।

(सं० भा० टि०, पृ० २५६)

(८) अविद्यावारिधीयंतु भवति यथान्यासमेवास्तु।

(सं० भा०, पृ० २५८)

(९) यह आप टीका कर रहे हैं, या स्वप्न की दशा में पड़े बड़बड़ा रहे हैं! इतने पर भी इस प्रलाप का नाम रक्खा है 'अति ललित मधुर मुग्ध टीका'!!

(सं० भा०, पृ० २७०)

(१०) चाहे दोहे का साधारण अर्थ भी न हो सके, परंतु अलंकार का नाम आप ज़रूर लिख देते हैं, जिससे कोई समझे कि आप बड़े आलंकारिक हैं!

(सं० भा०, पृ० २७३)

(११) धन्य हो, आपका जादूरक़म क़लम भी ऐसे-ऐसे करश्मे दिखलाता है कि देखनेवाले दंग रह जायँ! (सं० भा०, पृ० २७७)

(१२) आपको तो अपनी "विद्वद्वृंद-शिरोमणि", "विद्यावारिधि" की उपाधियों का ध्यान रखना चाहिए था। ये बेचारी अपने जी में क्या कहती होंगी, अपने कर्मों को कोसती होंगी।

(सं० भा०, पृ० २६३)

(१३) विद्यावारिधिजी! इसमें तो आपने काव्यत्व की एक बूँद भी नहीं छोड़ी, यह तो सूखे छिलके रह गए! अब इन कोरे शब्दों में आप कहाँ काव्य का लिंग ढूँढ रहे हैं! (सं० भा०, पृ० २६७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१४) समझे हुज़ूर ! पुरनूर ! (सं० भा०, पृ० ३०१)

(१५) इस विचित्र अर्थ में काव्य-लिंग किधर को समाय है ? (संजीवन-भाष्य, पृ० ३१४)

अब इतने ही उदाहरणों से पाठक अनुमान कर लें कि श्रीशर्माजी का संजीवन-भाष्य 'कटूक्ति' और 'वितंडा-वाद' से किस तरह ठसाठस भरा हुआ है। और अधिक उदाहरण देकर लेख बढ़ाना उचित नहीं; जिसे देखना हो, वह उक्त भाष्य ही मँगाकर पढ़ जाय।

इस लेख को समाप्त करने के पहले मैं अपने प्रिय पाठकों से इस बात की प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग पक्षपात छोड़कर इस लेख को पढ़ें। यदि इसमें कहीं कोई भूल-चूक हो गई हो, तो क्षमा करने के बाद कृपा करके उसकी सूचना माधुरी द्वारा स्पष्ट दे दें। इस कृपा के लिये मैं आप लोगों का अत्यंत कृतज्ञ हूँगा।

मैं श्रीशर्माजी से भी फिर अपनी वही प्रार्थना करता हूँ कि यदि मेरे लेख में कोई बात अनुचित, अनर्गल या ग़लत लिख गई हो, तो मेरा अपराध क्षमा करके मुझे सूचित करें। मैं शर्माजी से क्षमा माँगने के बाद अपनी यह समालोचना वापस ले लेने को तैयार हूँ।

श्रीलक्ष्मणसिंह क्षत्रिय

युद्ध, जीवन-संग्राम और सदाचार

(२)



आंतरिक और बाहरी शांति का संबंध

आंतरिक शांति के लिये बाहरी शांति का स्थापन—युद्ध का बंद होना—परमावश्यक है, हमारे इस सिद्धांत का पोषण योरप के इतिहास द्वारा पूर्ण रूप से होता है। मध्य-युग के योरप का सामाजिक संगठन पूर्ण रूप से सैनिक ढंग का था। कार्यतः योरप के इस युग का इतिहास लड़ाई, हिंसा, द्वेष, व्यभिचार इत्यादि का इतिहास है। दसवीं शताब्दी के संबंध में मार्टिन ने लिखा है कि "इस युग को छल और कपट का ही युग समझना चाहिए। फ़्यूडैलिज़्म (Feudalism=मनसबदारी प्रथा) के आदि-काल में मनुष्य का नैतिक स्वभाव जितना नीचे गिर गया था, उसकी तुलना मनुष्य के इतिहास में प्राप्त करना कठिन है।" सैनिकता के घटने से ही योरप की उन्नति हुई है, यह निर्विवाद है। मैं समझता हूँ कि यहाँ पर पाठक समर-बद्ध योरप की ओर अवश्य इशारा करेंगे। मैं स्वीकार करता हूँ कि आज के सभ्य योरप ने जिस पाशविकता, निर्दयता और विकरालता का परिचय दिया है, उसका जोड़ शायद सभ्य संसार के इतिहास में नहीं पाया जा सकता। परंतु उसके साथ ही यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि योरप की सामाजिक बनावट इस समय मध्य-युग से कहीं भिन्न है। शासक-वर्गों का चाहे जो विचार हो, परंतु जन-साधारण के हृदय में युद्ध को अब वह प्राधान्य प्राप्त नहीं है। व्यवहार में चाहे जो कुछ हो, किंतु कम-से कम सिद्धांत-रूप से तो युद्ध निस्संदेह बुरा समझा जाता है। हाल के महाभारत में उभय पक्ष के लोग यही कहते थे कि युद्ध का अंत करने के लिये ही वे इस महायुद्ध में सम्मिलित हुए हैं (A war to end war)। यद्यपि आधुनिक युग में भी बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हुई हैं, तथापि आधुनिक समय में युद्ध का सर्व-व्यापी प्रभाव नहीं पड़ता, सभी लोगों को सैनिक कामों में भाग नहीं लेना पड़ता। सैन्य-वाद के साथ-साथ व्यवसाय-वाद का भी आविर्भाव हुआ है। युद्ध ही जीवन का एक-मात्र काम नहीं है। प्राचीन समय में उस जन-समुदाय का भी, जो सेना में भरती होकर युद्ध नहीं करता था, प्रधान काम सैनिक संगठन का पोषण, उसको क़ायम रखना ही था। इस जन-समुदाय का जीवन अपने लिये नहीं, बल्कि लड़नेवाले समुदाय के लिये था। सैनिकों के अतिरिक्त और किसी के जीवन का कोई मूल्य ही नहीं था। उनके लिये किसी के हृदय में—स्वयं उनके अपने हृदय में भी—कोई सम्मान न था। सैनिकों के प्रति उनकी कम या अधिक उपयोगिता या अनुपयोगिता के ही अनुसार उनके जीवन का मूल्य लगाया जाता था। परंतु इसके विपरीत अब यह समझा जाता है कि समाज का सैनिक अंश व्यवसायी अंश की रक्षा करने के लिये ही जीवन धारण कर रहा है। क्या यह साधारण परिवर्तन है? अतएव शांति ही योरप की उन्नति का कारण है। और, यह भी स्पष्ट ही है कि योरपियन सभ्यता में जो त्रुटि रह गई है, उसकी भव्य भौतिक सभ्यता में जो काले धब्बे रह गए हैं, उसकी न्याय-बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मधुरतम फल—उसके प्रजातंत्र—जो आज विडंबना-मात्र में परिणत हो गए हैं, इसका भी कारण योरप का युद्ध-वाद ही है।

इतना ही नहीं, इतिहास के अध्ययन से यह भी देखा जाता है कि बढ़ती हुई सैनिकता के साथ-साथ मनुष्यों और जातियों की पाशविकता और निष्ठुरता भी बढ़ती जाती है। इँगलैंड के इतिहास से इसका उदाहरण देना अच्छा होगा। योरप के अन्य देशों की अपेक्षा अँगरेज़ी समाज ने कहीं पहले व्यवसाय-वाद को ग्रहण किया था; परंतु युद्ध के लगातार बहुत समय तक चलते रहने के कारण व्यवसायी इँगलैंड का सदाचार भी बहुत नीचे गिर गया। सन् १७७५ से १८१५ तक इँगलैंड में एक बड़ी लड़ाई छिड़ी रही, और उस समय का वृत्तांत यों है कि किसी की जान-माल की रक्षा का कोई ठिकाना न था। यद्यपि साधारण-से-साधारण बातों के लिये भी क़ानून प्राणदंड दिया करता था, तथापि सर्वत्र स्वेच्छाचारिता और अराजकता फैली हुई थी। परंतु युद्ध के बंद होते ही हवा बदल गई, दंड-विधान भी बदल दिया गया, और अपराध और दोष की मात्रा भी एकदम से कम हो गई।

सैनिक-समाज और लूट-पाट

हम लोग अनुमान कर सकते हैं कि जब सैनिक-समाज में मनुष्यों की जान की ही पर्वा नहीं की जाती, तो वहाँ मनुष्य के माल की पर्वा कहाँ तक की जा सकती है? युद्ध अर्थात् निरंतर लूट-पाट में लगा हुआ मनुष्य चोरी और डकैती को बुरा क्योंकर समझ सकता है? उत्तरी योरप की प्रसिद्ध लड़ाकू जातियों के बीच डकैती और जहाज़ी लूट-पाट सम्मान और आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। टर्कोमैन प्रभृति कई जंगली जातियों के मध्य चोरों को बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त है। लोग प्रसिद्ध चोरों की क़ब्र पर ज़ियारत के लिये जाया करते हैं। प्राचीन स्पार्टा में चोरी किस दृष्टि से देखी जाती थी, यह सभी को मालूम है। स्वयं इँगलैंड में ही सौ वर्षवाले बड़े युद्ध के समय डकैती का पूर्ण प्रादुर्भाव हुआ था। लूट-पाट का संपूर्ण साम्राज्य था। अकेले और असंगठित लुटेरों के अलावा डाकुओं के सुसंगठित जत्थे भी थे, और उनके सरदार दुर्गाधिपति तक हुआ करते थे। डाकुओं का यह दल अपना समय भोग-विलास में ही व्यतीत करता था। ये बच्चों को दास और स्त्रियों को वेश्या बनाने के लिये चुराकर ले जाया करते थे, और बहुत धन लेकर मुसाफ़िरों को रास्ते से पार करते थे। ३० वर्ष की लड़ाई में जर्मनी की अवस्था भी ठीक ऐसी ही हो गई थी। स्वयं सिपाही लोग ही लूट-पाट मचाया करते थे। वे केवल डकैती ही नहीं करते थे, लोगों को अनेक प्रकार की यंत्रणाएँ भी देते थे, और पैशाचिक यंत्रणाओं को न सह सकने पर विवश होकर लोग उन्हें बतला दिया करते थे कि उनका धन गुप्त रूप से कहाँ-कहाँ रक्खा हुआ है। शस्त्रों से पूर्ण सुसज्जित होकर ही किसान लोग कृषि-कार्य कर सकते थे। अब निरुपद्रवी समाजों पर दृष्टि-पात कीजिए, और देखिए कि उनके विचार और आचरण किस तरह के हैं। 'वेदा'-जाति के लोग यह अनुमान भी नहीं कर सकते कि कोई मनुष्य दूसरे की वस्तु का अपहरण क्योंकर कर सकता है। एस्किमो लोगों के यहाँ लड़ाई का नामो-निशान भी नहीं है। उनके संबंध में लिखा है कि वे पूर्ण रूप से ईमानदारी की रक्षा करते हैं, और बेईमानी का आविर्भाव उन्हीं एस्किमो-समुदायों में हुआ है, जो श्वेत-वर्ण योरपियनों के संसर्ग में आए हैं। न्यूगायना के दक्षिण किनारे पर बसनेवाली कुछ जातियों के बारे में लिखा है कि इन लोगों के परस्पर के बर्ताव में बेईमानी का लेश भी नहीं है। सत्य-शीलता में हम लोग भी इनका सामना नहीं कर सकते। फिर इन्हीं जातियों के संबंध में यह भी लिखा है कि वे पूर्ण रूप से लड़ने के अयोग्य हैं। डोरी के रहनेवाले सत्य और न्याय का पूर्ण आदर करते हैं। चोरी उनके यहाँ बहुत बड़ा दोष मानी जाती है। इत्तिफ़ाक़ से ही कभी उनके यहाँ चोरी का नाम सुना जाता है। निरुपद्रवी टोडा, संथाल, लेपचा, बोड़ो, धीमल, हौस, चकमा, जाकून, सोरा, गोंड, खोंड, अराफ़ुरा आदि जातियों की सत्य-शीलता और शुद्धाचरण सर्वत्र विख्यात हैं। आजकल इनमें असत् व्यवहार का किंचित् लेश जो पाया जाता है, वह योरपियनों के संसर्ग की ही बदौलत है। टोडा-जाति के संबंध में एक लेखक कहता है—मैंने दूसरी कोई ऐसी जाति नहीं देखी, जो परस्पर की वैयक्तिक संपत्ति का इतना आदर करती हो। खोंड लोगों में ऋण को अस्वीकार करना महापाप समझा जाता है। थोरूस-जाति के लोगों को जब कभी रक्षा के लिये पहाड़ों पर भागना पड़ता है, तो वे जो कुछ ऋण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी मनुष्य का चाहते हैं, उसे कपड़े में बाँधकर, अपने घर के दरवाज़ों में बाँध जाया करते हैं। हौस-जाति के बीच चोरी इतनी बुरी समझी जाती है कि जब मनुष्य पर चोरी का संदेह होता है, तो वह अक्सर आत्म-हत्या कर डालता है। बर्मा के आदिम निवासियों के बारे में भी यही लिखा है कि जब किसी मनुष्य पर कोई दुष्कर्म करने का अभियोग लाया जाता है तो वह किसी निर्जन स्थान में चला जाता और वहाँ अपनी क़ब्र खोदकर फाँसी लगाकर मर जाता है। पूर्ण निरुपद्रवी अराफ़ुरा-जाति के बीच धनवान् होना बड़े आदर की बात समझी जाती है; परंतु उनके यहाँ धन-संचय का अभिप्राय यही होता है कि अमीर लोग ग़रीबों का ऋण चुका दिया करें। उपर्युक्त सभी जातियों के बीच चोरी का प्रायः नाम भी नहीं सुना जाता, और अपराध की मात्रा गोया नहीं ही के बराबर है। ये सभी लोग उदार-हृदय, हँस-मुख, शांति-प्रेमी और मिलनसार होते हैं। मलनसा-जाति के एक मनुष्य ने होलंब से कहा था कि हम लोग पशुओं के रक्त के भी प्यासे नहीं हैं, तब मनुष्यों का रक्त क्योंकर बहा सकते हैं? व्हेराकुर्ज के मूल-निवासियों के बारे में लिखा है कि ये लोग ईमानदार होते हैं, और बहुत बड़े प्रलोभन के सामने आने पर भी चोरी नहीं करते। इरूक्वैस-संघ के बारे में हम ऊपर ही कह चुके हैं।

सैनिक-समाजों की हीन नैतिक अवस्था का किंचित् दिग्दर्शन

परंतु जिन जातियों में लगातार युद्ध जारी रहता है, उनकी अवस्था इसके एकदम विपरीत है। सभ्य और असभ्य, सभी जातियों का यही हाल है। रक्त-प्रिय फ़ीज़ियनों के संबंध में कुछ कहने का अवसर मुझे कई दफ़े मिल चुका है। इनकी भीषण मारात्मकता विख्यात है। प्रखर द्वेष-परायणता इनकी रग-रग में कूट-कूटकर भरी है। असत्य-भाषण, चोरी, डकैती, धोखेबाज़ी और हत्या इनके यहाँ अपराध नहीं, बल्कि आदर की वस्तु समझी जाती है। बच्चों की हत्या तो खेल है। बीमारों को गला दबाकर मार डालना साधारण बात है। जीवित आदमियों को मारकर खा डालना साधारण घटना है। डहौमी-जाति के राजा का भवन मनुष्य की खोपड़ियों से सुसज्जित किया जाता है, और वे खोपड़ियाँ प्राप्त करने के लिये लड़ाइयाँ छेड़ी जाती हैं। मृत राजा के पास परलोक में संवाद पहुँचाने के लिये प्रति वर्ष कितने ही मनुष्यों का वध किया जाता है। मिथ्याचारी, रक्त-पिपासु, निष्ठुर और निर्दय होने के कारण इनमें कृतज्ञता और सहानुभूति का लेश भी नहीं है। परस्पर के संबंध के बारे में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है—पति और पत्नी, तथा माता-पिता और संतान के संबंध में भी स्नेह का फीका-सा प्रतिबिंब नहीं दिखलाई देता। डमारा-जाति का मनुष्य अपनी जाति के किसी मनुष्य को वन्य पशुओं द्वारा मारे जाते देखकर हँसता है। केवल असभ्य जातियों की ही ऐसी अवस्था नहीं है, सभ्य समझी जानेवाली जातियों का भी यही हाल है। मैक्सिकन लोगों के रक्त-पिपासु देवता और उनके नर-बलिदान मशहूर ही हैं। देवतों की तृप्ति के लिये तुरत वध किए गए मनुष्य का तड़पता हुआ हृदय उनके मुख में डाल दिया जाता था। जीवित मनुष्यों की खाल खींच ली जाती थी, और उसे पहनकर पुरोहितगण नृत्य किया करते थे। असीरियन लोग किस प्रकार क़ैदियों के अंग काटा करते थे, यह प्राचीन असीरिया की शिला-मूर्तियों के देखने से ही विदित होता है। प्राचीन मिस्र की शिला-मूर्तियों के अनुसार द्वितीय रैमसेस छः क़ैदियों की शिखा पकड़े हुए तथा एक ही बार में खड्ग से उन सभी के सिर धड़ से जुदा करते हुए नज़र आता है। मध्य-युग के धार्मिक अत्याचारों, इनक्वीज़िशन की करतूतों तथा उस समय पैशाचिक यंत्रणा देने की सामग्रियों और औज़ारों से सभी ऐतिहासिक परिचित हैं। प्राचीन रोमन लोग अखाड़ों में बाघ और अन्य हिंस्र पशुओं और क़ैदी मनुष्यों का दंगल कराया करते थे, और इस तमाशे को—हिंस्र पशुओं द्वारा मनुष्य के शरीर के विदीर्ण किए जाने को—रोमन-समाज के सभी श्रेणी के लोग और महिलाएँ भी बड़े आनंद से देखा करती थीं।

सैनिकों और व्यवसायी-समाजों में स्त्रियों का स्थान

यदि समाज में स्त्रियों का उच्च स्थान नैतिक उन्नति का एक चिह्न माना जाय, तो व्यवसायी और सैनिक-समाजों के अवलोकन से यह सिद्ध होता है कि सैनिक-समाजों की अपेक्षा व्यवसायी-समाजों में स्त्रियों को अधिक सम्मान प्राप्त है। प्रमाण के लिये हमें विशेषकर असभ्य-समाजों पर ही दृष्टि-पात करना होगा; क्योंकि कोई सभ्य-समाज हमें पूर्ण व्यवसायी या पूर्ण सैनिक नहीं देख पड़ता। प्रायः प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्य-समाज में इन दोनों बातों का समावेश पाया जाता है। बलात् अपहरण की गई, बात-बात पर मार खानेवाली, सभी परिश्रम-साध्य कामों को करनेवाली, केवल पुरुषों की जूठन से ही उदर-पूर्ति करनेवाली अबलाओं की दशा सैनिक-समाजों में सचमुच शोचनीय जान पड़ती है। इस पर भी उन्हें बच्चे जनना पड़ता है, और उनको दूध पिलाना पड़ता है। कठिन परिश्रम करने और पूर्ण आहार न पाने के कारण अनेक जंगली जातियों में पुरुष ही स्त्रियों से अधिक सुंदर होते हैं, और कुरूपता या असुंदरता में स्त्रियाँ पुरुषों से कहीं बढ़ी-चढ़ी होती हैं। पालतू पशुओं से किसी भी अंश में उनका भाग्य श्रेष्ठ नहीं होता। इस संबंध में एक क़ाफ़िर मनुष्य के निम्न-लिखित वाक्य ही यथेष्ट होंगे—"पत्नी अपने पति का बैल है। वह ख़रीदी गई है, और इसलिये उसे परिश्रम करना ही होगा।" क़ाफ़िर मनुष्य जब अपनी स्त्री का वध करता है, तो वह जवाब में यही कहता है कि उसकी स्त्री उसकी ख़रीदी हुई संपत्ति है, और उस पर उसे सभी अधिकार प्राप्त हैं। स्त्रियों का ख़रीदा और बेचा जाना असभ्य-समाज में एक साधारण बात है। किसी मनुष्य के मरने पर उसका उत्तराधिकारी उसकी अन्य संपत्तियों के साथ-साथ उसकी स्त्रियों का भी स्वामी बनता है। बहुत उदाहरण न देकर रक्त-पिपासु फ़ीज़ियनों का नाम लेना ही काफ़ी होगा। वे अक्सर अपनी पत्नियों को मारकर खा भी जाते हैं।

परंतु जब हम शांत, निरुपद्रवी और व्यवसायी-समाजों पर दृष्टि-पात करते हैं, तो हमें स्त्रियों के भाग्य में बहुत बड़ा रूपांतर दिखलाई पड़ता है। टोड़ा-जाति में स्त्रियों को कठिन परिश्रम नहीं करना पड़ता। यहाँ तक कि जल और लकड़ी लाने के लिये भी वे बाहर नहीं जातीं। बोड़ों और धीमल-जातियों में स्त्रियों को घर के बाहर का कोई काम नहीं करना पड़ता। मननासा, हौस, प्यूब्लौस आदि जातियों में स्त्रियों को बड़ा सम्मान प्राप्त है।

सैनिकता और लैंगिक स्वच्छता।

यद्यपि पूर्णतः व्यवसायी-समाजों में भी किंचित् विशृंखल लैंगिक संबंध पाया जाता है, तथापि यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि व्यवसायी-समाजों में ही लैंगिक स्वच्छता की मात्रा अधिक पाई जाती है। हम अभी देख चुके हैं कि सैनिक-समाजों में स्त्रियों की अवस्था कैसी शोचनीय है, और इससे हम स्वभावतः अनुमान कर सकते हैं कि जब स्त्रियाँ मनुष्य-जाति से बाहर-सी समझी जाती हैं, तो उनके सतीत्व की कहाँ तक पर्वा की जायगी। निरंतर युद्ध में लगी रहनेवाली जातियों में—जहाँ स्त्रियों को ही सभी परिश्रम-साध्य काम करने पड़ते हैं, जहाँ स्त्रियाँ लूट की संपत्ति समझी जाती और उनके ऊपर उनके स्वामियों का पूर्ण अधिकार स्वीकार किया जाता है, जहाँ गाय-बैल के सदृश उनकी ख़रीद-फ़रोख़्त हुआ करती है, जहाँ स्त्रियों की चोरी होती है, या नहीं तो वे गिरफ़्तार करके लाई जाती हैं, जहाँ स्त्रियों को कोई व्यक्तित्व तक नहीं प्राप्त है—स्त्रियाँ कहाँ तक पुरुषों के कामाघात से बचेंगी, यह आसानी से अनुमान किया जा सकता है। युद्ध-वादी समाजों में स्त्री के सतीत्व का अनुमान करने के लिये हमें बड़े-बड़े राजों और बादशाहों की असंख्य पत्नियों और हरमों को याद करना चाहिए। हमें एक-एक राजा की सौ-सौ और दो-दो सौ पत्नियों को याद करना होगा, लोगों की असंख्यों रखेलियों को याद करना होगा, तथा स्त्रियों के संबंध में लोगों के अपभाव-सूचक, घृणा-जनक और अश्लील विचारों को याद करना होगा। यदि सैनिक-समाजों में स्त्रियों का कुछ सतीत्व पाया भी जाय, तो वहाँ पुरुषों का लैंगिक आचार कदापि अच्छा नहीं पाया जाता। याद रहे कि लैंगिक स्वच्छता गुलामी के वायु-मंडल में—ऐसे समाज में, जहाँ स्त्रियाँ मानवता से बाहर समझी जाती हैं, जहाँ वे केवल मनुष्यों की क्रीड़ा की वस्तु या बच्चे पैदा करने की मशीन समझी जाती हैं—पदार्पण नहीं कर सकती। प्रेम-शून्य वायु-मंडल में—कामाग्नि से गर्म हवा में—स्त्रियों की ग़ुलामी की वायु में—शुद्ध लैंगिक संबंध कदापि उपलब्ध नहीं हो सकता। जब हम यह स्मरण करेंगे कि रोम के भयानक भ्रष्टाचार का आरंभ रोमन-देश के विजयों के बाद ही हुआ था, जब हम यह स्मरण करेंगे कि युद्ध-वादी रूस में हाल के समय तक प्रत्येक लड़की पर उसके ज़मींदार का पूर्ण अधिकार हुआ करता था, जब हम लड़ाकू, मनसबदारी-प्रधान (Feudal) योरप की भ्रष्टता को स्मरण करेंगे, जब हम यह स्मरण करेंगे कि एक पुरुष के एकसाथ बहु-विवाह करने की प्रथा युद्ध-वादी समाज का ही चिह्न है, तो हमें कहना पड़ेगा कि इस तरह के समाजों में लैंगिक स्वच्छता का पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से आना असंभव है। और, यह स्वच्छता जाति-हित, देश-हित, तथा मानव-हित के लिये कितनी आवश्यक है, इसके कहने की कोई ज़रूरत ही नहीं है।

सैनिक-समाजों का पारिवारिक जीवन

इसी कारण सैनिक-समाज का पारिवारिक जीवन निकृष्ट दर्जे का होता है। यदि यह सच है कि सहृदयता, स्नेह, सहिष्णुता और समवेदना का प्राथमिक पाठ हमें परिवार से ही मिलता है, तो यह स्पष्ट ही है कि उन्नति के लिये उच्च पारिवारिक जीवन परमावश्यक है। परंतु कठोर और बर्फ़-सी सर्द सैनिकता पारिवारिक मृदुताओं और उच्छ्वास को दूर करती है, स्नेह और सहिष्णुता की मृदुलता को कोसों भगाती है। सैनिक-समाज के पारिवारिक जीवन में भी उसके राजनीतिक जीवन की ऐसी ही कठोरता और बल-प्रधानता दृष्टि-गोचर होती है। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। सदा लड़ाई-भिड़ाई में लगे रहने से, सदा शत्रुता के भाव को हृदय में जगह देने और उसे मज़बूत करने से, विजय के आह्लाद से, सदा दूसरों को दुःख देने से सहृदयता के भावों पर पाला पड़ जाता है; जिसका प्रभाव मनुष्य के केवल राजनीतिक या सामाजिक जीवन पर ही नहीं, बल्कि उसके पारिवारिक जीवन पर भी पड़ता है। इसीलिये हम देखते हैं कि सैनिक-समाज में अपनी पत्नी और पुत्र-पुत्रियों के साथ भी मनुष्य के आचरण बड़े कठोर होते हैं। इसीलिये हम देखते हैं कि सैनिक-समाजों में स्त्रियों की दशा एकदम शोचनीय है, और उसका वर्णन हम ऊपर कर आए हैं। इसीलिये हम देखते हैं कि उनके यहाँ पारिवारिक सुख और शांति का नाम-निशान भी नहीं है। इसीलिये हम देखते हैं कि सैनिक-समाजों में पुरुष अपनी स्त्रियों और पुत्र-पुत्रियों का पूर्ण स्वामी समझा जाता है, और उसे उन्हें जीता रखने या मार डालने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इसीलिये हम देखते हैं कि आस्ट्रेलियन पुरुष अक्सर अपने बच्चों को बेच डालते हैं, और अक्सर उनके मांस और चर्बी से अपनी बंसियों को गूँधकर मछलियाँ फँसाते हैं, ज़रा-से साधारण दोष के लिये अपने बच्चों का वध कर डालते हैं, सिर्फ़ एक बोतल ब्रांडी के लिये अपने पुत्र-पुत्रियों और पत्नियों को दूसरों के हाथ बेच डालते हैं। इसीलिये हम देखते हैं कि सैनिक-समाजों में पिता-पुत्र का संबंध पशुओं के इस संबंध से किसी भी प्रकार ऊँचा नहीं है। इसीलिये हम देखते हैं कि सैनिक-समाजों में वृद्ध और रोगग्रस्त लोगों की हत्या की जाती है, या मरने के लिये वे घर से निकाले और अकेले छोड़ दिए जाते हैं।

शांति के स्थापित होने से ही मनुष्य के उच्च जीवन का आरंभ होता है, शांति के स्थापित हो जाने से ही मनुष्य का अधिकार बढ़ता है, और मनुष्य मनुष्य बनता है। असभ्य, निरुपद्रवी जातियों का पारिवारिक जीवन असभ्य लड़ाकू जातियों से और सभ्य निरुपद्रवी जातियों का पारिवारिक जीवन सभ्य लड़ाकू जातियों के पारिवारिक जीवन से कहीं ऊँचा होता है। बोड़ों और धीमल-जातियों के संबंध में लिखा है कि उनके यहाँ बाल-हत्या का पूर्ण अभाव है। पुत्रियों के साथ भी सहानुभूति का बर्ताव किया जाता है, और बूढ़े मा-बाप का परित्याग करना उनके यहाँ शर्म की बात समझी जाती है। अन्य असभ्य, निरुपद्रवी जातियों का भी यही हाल है। यदि हम सभ्य सैनिक-समाजों का हाल जानना चाहते हैं, तो हमारे लिये रोमन-समाज में स्त्रियों और पुत्र-पुत्रियों के स्थान और तत्संबंधी रोमन-क़ानून की ओर इशारा ही करना काफ़ी होगा।

सैनिक-समाजों की कला और कविता

यदि हम यह मानें कि मनुष्य का जीवन केवल बाह्य और शारीरिक ही नहीं है, बल्कि कहीं अधिक सूक्ष्म, आंतरिक और आध्यात्मिक भी है, तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्य के जीवन में शिल्प, कला, कविता इत्यादि को भी बहुत बड़ा स्थान प्राप्त है। वास्तव में मनुष्य की उन्नति और विकास के परिचायक ये ही हैं। परंतु युद्ध-वादी समाज में इनकी उन्नति नहीं हो सकती। सहृदयता ही इनकी मूल-भित्ति है, और युद्ध-वाद उस सहृदयता का ही मूलोच्छेद करता है। व्यवसायी और युद्ध-वादी मनुष्यों के स्वभाव और आचरण में जो अंतर है, वही अंतर इन दोनों तरह के समाजों की कला, शिल्प और कविता में भी देख पड़ता है।

सभी ललित कलाओं और कविताओं इत्यादि का मूल-विषय मनुष्य का शोक और हर्ष तथा आनंद और दुःख ही है, और इनके रसास्वादन के लिये समवेदना और सहानुभूति की परम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता है। परंतु युद्ध-वादी लोगों और जन-समुदायों में इसका अभाव है, और इसलिये इनका समझना उनके लिये दुःसाध्य है। इसीलिये हमें प्राचीन और आधुनिक समय की कविताओं में इतना अंतर दृष्टि-गोचर होता है। प्राचीन कविताओं का प्रधान विषय युद्ध तथा राजों और कुलीनों इत्यादि के कृत्यों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। इन कविताओं और महाकाव्यों में प्रधानतः युद्ध ही का किसी विजेता द्वारा असंख्यों मनुष्यों का वध किए जाने का—ही वर्णन है; इनमें नीच-कुलोत्पन्नों, विजितों और साधारण मनुष्यों को कोई स्थान नहीं प्राप्त है। प्रातःकाल अपने बैलों को लेकर किसानों का अपने खेतों पर जाना, संध्या-समय जानवरों को लेकर चरवाहे का वापस आना, धान रोपते समय स्त्रियों का मधुर गान करना, प्रकृति की अनुकूलता तथा नाज की अच्छी उपज को देखकर किसान का पुलकित होना, दिहाती मनुष्यों का सादा और भोला जीवन—इन सब बातों से प्राचीन कवि के हृदय-सागर में छोटी-से-छोटी विचार-तरंग भी नहीं उठती। उनकी सहानुभूति परिमित और सीमा-बद्ध है। उनके हृदय में तुच्छ और छोटे के लिये कोई स्थान नहीं है। उनकी पूरी सहृदयता बलवानों और विजेता लोगों ही के पक्ष में है, दुर्बलों और अनाथों के पक्ष में तनिक भी नहीं। उनकी न्याय-बुद्धि उन्हें अत्याचार और अन्याय के रोकने के लिये—दुर्बलों और उपप्लावितों की रक्षा के लिये—बद्ध-परिकर होने को उत्तेजित नहीं करती। उनके लिये साधारण मनुष्यों का जीवन जीवन ही नहीं है। उनकी छोटी अभिलाषा और आकांक्षा, उनके साधारण भाव और विचार, उनके मामूली हर्ष और विषाद, उनके तुच्छ गर्व और अभिमान, उनकी भोली-भाली चालाकी और चतुरता, उनके कपट-रहित चरित्र और कृत्रिमता-रहित स्वभाव को सैनिक-समाज के कवियों के समीप कोई महत्त्व प्राप्त नहीं है। एक शब्द में वे अँगरेज़ी के विख्यात कवि वर्ड्सवर्थ के साथ नहीं कह सकते कि—

"To me the meanest flower that blows can give, Thoughts that often lie too, deep for tears"

अर्थात् "एक क्षुद्र-से-क्षुद्र फूल भी मेरे हृदय में भाव की वे तरंगें भेजता है, जिन्हें भाषा द्वारा तो क्या, आँसुओं द्वारा भी व्यक्त करना असंभव है।"

एक आवश्यक सूचना

इस लेख को समाप्त करने के पूर्व इतना कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि सैनिक और व्यवसायी-समाजों की जो आलोचना हमने की है, वह केवल सिद्धांत के रूप से ही। वर्तमान समय में, विशेषकर सभ्य-संसार में, हमें विशुद्ध सैनिक या व्यवसायी-समाज दृष्टि-गोचर नहीं होते। आधुनिक समाजों में सैनिकता और व्यवसाय, दोनों की मात्रा देख पड़ती है। इसीलिये हमने अपने सिद्धांत को पुष्ट करने के लिये विशेषकर जंगली जातियों से ही उदाहरण दिए हैं। परंतु निष्पक्ष निरीक्षण से सैनिकता और सदाचार के बीच कार्य-कारण का जो सिलसिला दृष्टि-गोचर होता है, वह प्रत्येक समाज में, उसके व्यवसायी या सैनिक होने के परिमाण के अनुसार, अवश्य घटित होगा। यदि समाज अपेक्षाकृत अधिक व्यवसायी है, तो उसका सदाचार अपेक्षाकृत ऊँचे दर्जे का होगा। और, यदि वह अपेक्षाकृत अधिक सैनिक है, तो उसमें सैनिकता के कुपरिणाम, उसकी सैनिकता की मात्रा के अनुसार, अवश्य दृष्टि-गोचर होंगे।

शांति की आवश्यकता और युद्ध-वाद पर हृदय के कुछ उद्गार

युद्ध एक बहुत बड़ा अभिशाप है। वह हमारी उन्नति के पथ का हिमाचल है। वह मनुष्य के भाग्याकाश का राहु है। संसार की सारी वर्तमान उन्नति शांति का ही फल है। शांति के ही द्वारा हमें विचार और मनन करने का समय प्राप्त हुआ है। शांति ने ही हमें ज्ञान और विज्ञान सिखलाया है। युद्ध मानव के विकास का बहुत बड़ा शत्रु है। युद्ध दासता की जननी है। विकास के लिये स्वतंत्रता की आवश्यकता है। युद्ध के कारण मनुष्य को अपने स्वभाव और प्रकृत झुकाव के अनुसार बढ़ने और फैलने का अवसर नहीं प्राप्त होता। इसी के द्वारा संसार में धर्म का साम्राज्य नहीं होने पाता। युद्ध के द्वारा अन्य समाजों को तो पराजित किया जाता ही है—अन्य लोगों को तो दास और गुलाम बनाया जाता ही है—किंतु स्वयं विजयी समाज में भी लोगों की स्वतंत्रता का अपहरण होता है—लोगों को गुलामी करनी पड़ती है। प्रजा-तंत्रात्मक शासन और युद्ध-वाद में स्वाभाविक विरोध है। युद्ध-वादी समाज प्रजा-तंत्रात्मक कदापि नहीं हो सकता। यदि इसका प्रमाण चाहते हो, तो एक बार स्मरण करो कि हाल ही के महायुद्ध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा-तंत्रों में अग्रगण्य इँगलैंड की ही वैयक्तिक स्वतंत्रता पर कितना बड़ा आघात हुआ था, तथा लोगों के अधिकार कहाँ तक छिन गए थे, एवं गवर्नमेंट तथा राज कर्मचारियों की शक्ति कहाँ तक बढ़ गई थी। राजनीति-शास्त्र में आजकल यह निस्संदेह माना जाता है कि प्रजा-तंत्रात्मक शासन ही सर्वोत्तम शासन है । इसी के द्वारा मानव-चरित्र और स्वभाव की पूर्ण उन्नति हो सकती है। उन्नति के लिये प्रजा-तंत्रात्मक शासन ही सबसे अधिक अनुकूल है । परंतु योरप के अधूरे प्रजा-तंत्र अकुंठित कंठ से गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे हैं कि जब तक युद्ध-वाद विद्यमान है, तब तक संसार में शुद्ध प्रजा-तंत्रात्मक शासन पदार्पण नहीं कर सकता।

अतएव युद्ध एक भयानक अरिष्ट है। वह हमारी मनुष्यता पर कलंक का अत्यंत ही काला धब्बा है। ज्ञान-युक्त और बुद्धि-युक्त मनुष्यों को पशुओं के सदृश लड़ना शोभा नहीं देता।

वास्तव में युद्ध पाशविकता का दूसरा नाम-मात्र ही है। उसका उद्गम-स्थान वही प्रकृति है, जो एक कुत्ते को कोई दूसरा कुत्ता देखकर उसके साथ लड़ने के लिये उत्तेजित करती है। चाहे हम इसका कितना ही अच्छा नाम-करण करें— युद्ध करने को हम वीरता-शूरता, या चाहे जो कुछ भी क्यों न कहें —युद्ध युद्ध ही है। युद्ध करनेवाले अपने को देश-विजेता, प्रचंड वीर इत्यादि चाहे जो कुछ कहें, वास्तव में वे रक्त-पिपासु, हिंस्र जंतु ही हैं। उनके नामों के पीछे महान् या अन्य कितने ही बड़े-बड़े सम्मान-सूचक शब्द क्यों न जोड़ दिए जायँ, किंतु यथार्थ में वे अन्यायी और अत्याचारी लुटेरे, डाकू या हत्यारे ही हैं । यदि अंतर कुछ है, तो केवल इतना ही कि वे बहुत बड़े हत्यारे, बहुत बड़े अत्याचारी, तथा बहुत बड़े लुटेरे हैं। चाहे ज्ञान-शून्य पशुओं या असभ्य जंगलियों द्वारा किया जाय, और चाहे सभ्य मनुष्यों द्वारा ही किया जाय, युद्ध में वैसी ही भीषणता दृष्टि-गोचर होती है । मिथ्याचारी जंगलियों और मिथ्याचारी, कुटिल और दांभिक राजनीतिज्ञों में क्या अंतर है ? छल और पाखंड से काम लेनेवाले रेड इंडियनों में तथा कपट-कुशल राज-कर्मचारियों में कौन-सा भेद है ? यदि कोई भेद हो सकता है, तो केवल यही कि जंगलियों के छल और पाखंड सीधे और सुबोध होते हैं, किंतु राजनीतिज्ञों के अस्पष्ट, दुर्बोध और जटिल । राजनीतिज्ञ अपने भावों और विचारों को छिपा रख सकते हैं, उन पर आदर्श-वाद का आवरण डाल सकते हैं, तथा सहज में विद्वान्-से-विद्वान् पुरुषों की आँखों में भी धूल डाल सकते हैं। आज के सेनापतियों तथा नर-मांस-भोजी फ़ीज़ियनों में क्या अंतर है ? कुछ नहीं। यदि है, तो यही कि वे विजितों को तुरंत खा जाते हैं, किंतु सभ्य देशों के सेनापति और राजनीतिज्ञ उन्हें जान से नहीं मारते, बल्कि अपने आराम के लिये छोड़ देते हैं, और धीरे-धीरे उनका खून चूसते हैं। नेपोलियन की क़ब्र पर कही गई कर्नल इंगरसौल की निम्न-लिखित बातें याद रखने ही के योग्य हैं—

"थोड़े दिन हुए, मैं नेपोलियन की क़ब्र—सुवर्ण-मय अपराध और पाप के अद्भुत स्मारक—के समीप खड़ा था। संग-मूसा से बनी हुई इस देदीप्यमान समाधि को देख-देखकर मैं उस व्यग्र और उद्विग्न मनुष्य को स्मरण कर रहा था, जिसकी अंतिम भस्म क़ब्र की अविच्छिन्न शांति में इस समय आराम से विश्राम कर रही थी। उसकी क़ब्र की स्तंभ-पंक्ति के एक स्तंभ के सहारे झुककर मैं आधुनिक जगत् के इस सबसे बड़े सिपाही के जीवन पर एक नज़र दौड़ा गया । मैंने उसे सीन-नदी के तट पर खिन्न-हृदय आत्म-हत्या का संकल्प किए हुए देखा। तत्पश्चात् मैंने उसे इटली का सेनापति पाया। मैंने त्रिवर्ण झंडे को हाथ में लिए हुए उसे लोदी के पुल को पार होते हुए देखा। इसके बाद मैंने उसे मिस्र में विराट् स्तूपों की छाया के तले देखा। मैंने उसे अगम्य और दुर्जय आल्प्स-पर्वत पर विजय प्राप्त करते तथा फ़्रांस के खगांकित झंडे के खगों (पक्षियों) को और पहाड़ के वास्तविक खगों को एकसाथ मिलाते देखा। मैंने उसे मैरेंगो, आल्प्स और औस्टरलिज में देखा। मैंने उसे रूस में देखा; जहाँ बर्फ़ के पैदलों और कँप-कँपी पैदा करनेवाले झंझा-वायु के घुड़सवार-रूपी झोंकों ने उसकी असंख्य सेना को जाड़े के दिनों में वृक्ष से गिरे हुए पत्तों के समान इधर-उधर तितिर-बितिर कर दिया था। मैंने उसे लीपसीफ में पराजय और दुर्भाग्य का शिकार होते देखा। मैंने उसे असंख्य सेना से परास्त होकर पेरिस में पनाह लेते और एल्बा में निर्वासित होते देखा। मैंने उसे वहाँ से भागते तथा केवल अपनी दिव्य शक्ति के बल से एक साम्राज्य का उपार्जन करते देखा। मैंने वाटरलू के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीषण और मारात्मक युद्ध-क्षेत्र को भी, जहाँ दैव और भाग्य ने मिलकर उसका सर्वनाश किया था, देखा। तत्पश्चात् मैंने उसे सेंट-हेलना में बंदी और अपने हाथों को पीठ की ओर जोड़े हुए एवं मौन और शोकान्वित होकर समुद्र को निहारते हुए देखा। तब मुझे उसके हाथों विधवा बनाई गई स्त्रियों और अनाथ बनाए गए बच्चों का ख़याल आया। मुझे उन आँसुओं का स्मरण आया, जिनके बहाए जाने का एक-मात्र कारण उसकी कीर्ति-स्पृहा ही थी। मुझे उस स्त्री की याद हो आई, जिसके सिवा अन्य कोई स्त्री उसे प्राण-पण से प्यार न करती थी, और ऐश्वर्याकांक्षा के कठोर हाथों ने जिसे उसके हृदय से अलग कर दिया था। अब मैंने अपने मन में कहा— फ़्रांसीसी किसान होना और काठ के जूते पहनना इससे कहीं अच्छा है! राज-प्रासाद में रहने से उस झोपड़ी में, जिसके द्वार पर अंगूर की लता लगी हो, और जहाँ शरद्-ऋतु के सूर्य के चुंबन से अंगूर लाल हो रहे हों, रहना कहीं अच्छा है। एक ऐसा साधारण किसान होकर रहना, जिसकी स्त्री सुबह से शाम तक चरख़ा कातती हो, जिसके बच्चे उसकी गोद में बैठे या गले में बाँहें डाले हों, कहीं अच्छा है! मैं एक साधारण किसान होना ही पसंद करूँगा, गहरी विस्मृति की गहरी तह में—क़ब्र के बेज़बान सन्नाटे में—डूबना पसंद करूँगा, किंतु बल और हत्या का मूर्तिमान् स्वरूप—महान् नेपोलियन—होना कदापि नहीं। मैं दस हज़ार बार कहता हूँ कि मेरी इच्छा यही है।"

गोवर्द्धनलाल

राधा का रुदन

एक दिन यदुनाथ के, सखि, साथ में,
नाचती थी मैं लिए कर हाथ में।
मग्न थे हम रास में स्वच्छंद हो;
लग्न थे हम प्रेम में सानंद हो॥ १॥

रवि-कमल का-सा मिलन वह था जहाँ,
कालरात्रि अभाग्य से आई वहाँ।
कृष्ण के मन कौन-सी सुध आ गई;
और ही छवि द्रुत दृगों में छा गई॥ २॥

झट कहा—"सुनिए प्रिये, मैं जा रहा,
है मुझे कर्तव्य शीघ्र बुला रहा।"
कर विनय मैंने बहुत रोका वहाँ,
बात सुनने के भला वह फिर कहाँ? ३॥

पीत-पट तन, कान मणि-कुंडल पड़े,
प्रेम से वंशी बजाते थे खड़े।
फिर कहा—"हे लाड़िली, कुछ रोज़ में
लौट आऊँगा तुम्हारी खोज में॥" ४॥

खेल नाना रंग के रचते नए,
घूमते वह कुंज-गलियों से गए।
राह मैं तब से यहाँ हूँ देखती,
प्रेम-छवि का चित्र मन में लेखती॥ ५॥

पर न सुध कुछ आज तक मुझको मिली,
है न इस मन की कली तब से खिली।
आज सहसा उस निरंतर ध्यान में
वेणु की मृदु तान आई कान में॥ ६॥

हो उठा उत्कंठ यह विह्वल हृदय,
मैं चली मधुवन तुरत होकर अभय।
हर जगह ढूँढ़ा उन्हें हर कुंज में
जा चुकी हूँ और गोपी-पुंज में॥ ७॥

पर न सुध, संदेश कुछ मुझको मिला,
है कहाँ वह मुख-कमल शतदल खिला?
हो अलग प्राणेश से कैसे रहूँ?
यह हृदय की दुख-कथा किससे कहूँ? ८॥

एक पल भी कल न तब ही से पड़ी,
चित्त में चित-चोर की ही स्मृति अड़ी।
घूमती हूँ राग दुख का गा रही,
अश्रु से अंचल भिगोती जा रही॥ ९॥

वेणु की ध्वनि वह न भूलेगी कभी;
मौन रहती दुःख सहती हूँ सभी।
भूरि भाव विचित्र मन में उठ रहे,
जो कि शब्दों में न जाएँगे कहे॥ १०॥

भाव हैं या स्वर्ग के नक्षत्र हैं,
रेणु-कण या वृक्ष के वे पत्र हैं।
रोम-रोम वियोग का विष चढ़ गया,
रोग आज असाध्य होकर बढ़ गया॥ ११॥

हर्षदेव ओली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र की इच्छा और उसका परिणाम

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]



[१]

लालायित लाला लल्लूमल, लड़के की लालसा लगी;
यंत्र-तंत्र-मंत्रों से अब तक नहीं, हाय, तक़दीर जगी।
एकाएक एक दिन सूखी हुई कामना-कली खिली;
एक करामाती पंडितजी आए हैं, यह ख़बर मिली।
सुना—सिद्ध हैं उन्हें शारदा, वह सब कुछ कर सकते हैं;
कर्म-रेख पर मेख मारकर कष्ट कठिन हर सकते हैं।
बस, फिर क्या था, लल्लूमल को मुँहमाँगी मिल गई मुराद;
घर पर उन्हें बुलाकर पूजा, और कहा यों उसके बाद—
"महाराज, चिंता संतति की सदा सताती रहती है;
घरवाली तो रोती-धोती विष खाने को कहती है।
आप कृपा अब करें, पाप पुर्बले जलम के मिट जावें;
हम हँसता-खेलता हुआ अनमोल लाल प्यारा पावें।"
हो प्रसन्न तब पंडितजी ने कहा—"कृपा से ईश्वर की
शीघ्र पुत्र होगा, शोभा भी निरानंद सूने घर की।
यज्ञ किया दशरथ ने, देखो, पुत्र-रत्न पाए थे चार;
क्या न देवता कर सकते हैं, जो हो श्रद्धा का उपचार?"
लालाजी ने हाथ जोड़कर गद्गद स्वर से पुनः कहा—
"धन्य भाग्य मेरे, जो दर्शन मिले आपके आज अहा!
मेरी उमर ढल चुकी, सिर के गिरते, पकते जाते बाल;
लटकी खाल, गाल में गड्ढे, धीमी चाल, बुरा है हाल।
चिंता यही रहा करती है, यह धन-रत्न असंख्य, अपार,
भोग करेगा कौन, पिंड-जल देगा, लेगा हमें उबार?
अब जो कृपा आपने कर दी, भाग्य दास का चमक गया,
विमल हँसी से जो बच्चे की अंधकार-घर चमक गया,
भेंट करूँगा मैं चरणों में एक लाख रुपए तत्काल,
हो प्रसन्न मेरी घरवाली तो कर देगी मालामाल।"
बोले पंडित—"धीरज धरिए, घबराने का काम नहीं;
पुत्र न हो, तो कभी जन्म-भर लेना मेरा नाम नहीं।
कल से पूजा-पाठ और जप मैं करने लग जाऊँगा;
परमेश्वर की कृपा हुई, तो सूनी गोद भराऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



[२]

पति, पत्नी, दोनों कुछ दिन में पाकर पुत्र प्रसन्न हुए ;
मिला गृहस्थी का गौरव सुत, अभिनव सुख-संपन्न हुए ।

लाला—

"कहो, प्रसन्न हो गईं अब तो ? इच्छा पूर्ण हुई प्यारी ?
वह सुस्ती मिट गई तुम्हारी ? गई उदासी वह सारी ?"
कहा ललाइन ने तब हँसकर—"कृपा तुम्हारी ही तो है ?
इसका सारा श्रेय असल में उन पंडितजी ही को है ।
दिया लाल अनमोल हमें यह, थी कैसी सच्ची तरकीब !
वह जो पूजा-पाठ न करते, यह दिन होता कहाँ नसीब ?"

लाला—

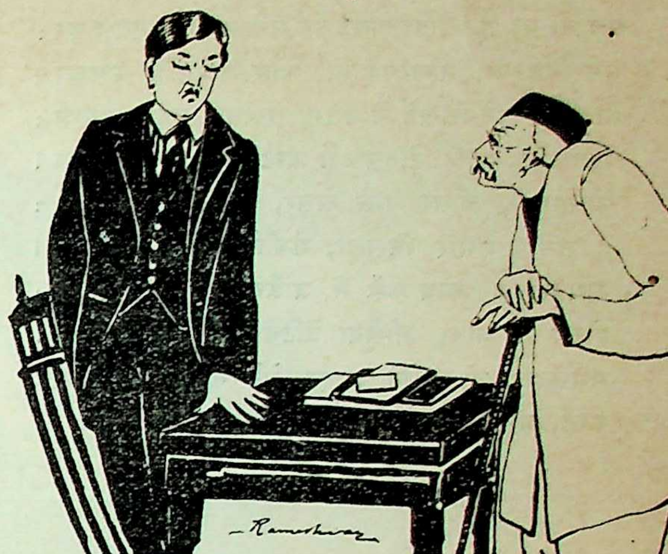
"यही सही जी, बस, अब ईश्वर इतना और सहायक हो;
हम लोगों के आगे ही यह पढ़-लिख करके लायक़ हो !"

ललाइन—

"लायक़ बने ? अजी लायक़ तो स्याना होकर होगा आप ;
मुझे और ही है अभिलाषा, जो पुरखों का पुन्न-प्रताप
है कुछ, तो दस-पाँच बरस में बहू ब्याह कर लाऊँगी ;
दोनों का मुख देख-देखकर आँखों का सुख पाऊँगी ।"

लाला—

"करने लगीं अभी से तुम तो अरे ब्याह के मंसूबे !
क्या जानो तुम, कितने घर यों दुख के सागर में डूबे !
कहा किसी ने सच है, स्त्री के बुद्धि बहुत कम होती है ;
स्त्री की जाति मोह-ममतावश संतति का सुख खोती है ।
पहले पढ़-लिख तो लेने दो, खूब बढ़ा लेने दो ज्ञान ;
होगा उसके बाद ब्याह का उत्सव, गौना, गर्भाधान ।"



[३]

पिता--

"बेटा, तेरे ऊपर मैंने ख़र्च कमाई की सारी ;
लायक़ तुझे बनाने की धुन सदा रही मुझको भारी ।
पर न किया तूने ख़याल कुछ, पालन किया न निज कर्तव्य ;
बिना परिश्रम विद्या चाही, व्यर्थ उड़ाया सारा द्रव्य ।
दो-दो दफ़े फ़ेल बी० ए० में होना है क्या कुछ आसान !
करते हैं तारीफ़ सभी तो, खूब बढ़ाया मेरा मान ।
अब की तो तू कर ले बेटा, मेहनत करके बी० ए० पास ;
मर तो सकूँ शांति से जिसमें, अंत-समय तो हूँ न उदास !
बुरा न मानो, तुम्हीं बताओ, इतने बड़े हुए, लेकिन
अच्छा काम नाम पाने का किया कौन तुमने, किस दिन ?
सिर्फ़ साहबी ठाट दिखाना, मुँह में सुलगा हुआ सिगार ;
और कोर्टशिप करते फिरना, क्या है यही सभ्यता-सार ?"

पुत्र—

"फ़ादर—नहीं, पिताजी, अब तो माफ़ कीजिए, मैं इस बार
पास परीक्षा कर ही लूँगा, आया अगर कहीं न बुख़ार ।

(स्वगत)

खूब ! खुलासा खूसट हैं खुद, काला अक्षर भैंस-समान ;
मगर मुझे देते हैं ताना, और जमाते अपनी शान !
कितना बड़ा और मुशकिल है कोर्स आजकल अँगरेज़ी ;
क्या जानें यह, दिखा रहे हैं इसीलिये इतनी तेज़ी ।
पढ़ते आप, समझते तो फिर पढ़ना भी है कैसा पाप !
मोटी अक़्ल न सूझे—होगा वैसा बेटा, जैसा बाप !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच तो यह है 'ओल्ड फूल' यह सठिया गए ज़रूर-ज़रूर :
मुझे निकम्मा, नालायक़ भी, और जानते हैं मग़रूर।
माना मैं पढ़ने-लिखने में उतना रखता नहीं कमाल ;
पर क्रिकेट, हॉकी, टेनिस त्यों फ़र्स्ट क्लास खेलूँ फुटबाल।
सोलहगुट्टी, चौसर, पाँसे, सेसर, चानस तक है याद ;
है शतरंज शुमार निराला, गंजीफ़े का हूँ उस्ताद।
नामवरी के काम करूँ मैं, जाऊँगा अब 'रेस' ज़रूर ;
होटल में जाकर सीखूँगा जेंटिल-मैनी के दस्तूर।
समझदार जो होते फ़ादर, मेरे तबले की तारीफ़
करते, और ग़ौर से सुनते मुझ आशिक़ की कुछ तसनीफ़।"

बक-बक झक-झकहक़-नाहक़ क्यों करते।सिर पर खड़े रहो ?
पहले का वह गया ज़माना, राज खूसटों का जब था,
बुड्ढों की थी चलती, उनका अमल-दख़ल घर में सब था।
ली उधार यह नई सभ्यता, है सुधार की स्कीम नई ;
अब हैं नई रोशनी के दिन, मिली हमें तालीम नई।
पुरखे पहले थे हम सबके नीम जंगली और गँवार ;
सभ्य देश हँसते हैं उनको, हम होते लज्जित लाचार।
अब हम सब जेंटिल-मैनों ने अपनी सभ्य बनाई चाल ;
याद रहे, अब तुम बुड्ढों की गल सकती है यहाँ न दाल।
कान खोलकर सुन लो, देखो, मेरी बीबी का अपमान



[४]

पुत्र—

"दफ़्तर से घर पर आते ही आफ़त में पड़ जाती जान ;
मुनुआ की मा करे आपकी सख़्त शिकायत, है हैरान।
मेरी नहीं समझ में आता, गई आपकी अक़्ल कहाँ ?
खा-पीकर चुप-चाप क्यों नहीं पड़ रहते हैं आप यहाँ।
रहते पड़े अगर ड्योढ़ी पर, तो फिर क्यों झखना पड़ता ?
दरवाज़े की निगरानी को नौकर क्यों रखना पड़ता ?
यह भी होता नहीं अगर, तो एक किनारे पड़े रहो ;

या उनसे तकरार करोगे, अथवा हुक्म न लोगे मान,
तो निकाल ही दूँगा घर से—

पिता—

"बस-बस बेटा, रहने दो ;
जोड़ू के बनकर गुलाम यों मुझको खूब उलहने दो !
क्यों न निकालोगे अब घर से, इसीलिये तो जन्म लिया
है तुमने, मैंने भी अपना लाखों रुपया ख़र्च किया।
दोष तुम्हारा नहीं ज़रा भी, हुआ विधाता ही जब वाम ;
सभी समय की यह खूबी है, पुत्र-मोह का कटु परिणाम !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



[मलार—पीलू-बरवा, झपताल]

स्वरकार और शब्दकार—प्रोफ़ेसर विश्वंभरसहाय "व्याकुल"

बैरी पपीहा क्यों पी-पी करै रे ;
सुन-सुन तोरी धुन जियरा जरै रे।
तोकों तो कागा को बोल ही भावे,
पिया के आवन को वो सगुन बतावे,
"व्याकुल" को कल वाही सों परै रे।

स्थाई

२		३			०		१		
					नी	पा	नी	सा	सा
					बै	—	री	—	प
गा	रे सा	रे मा	पा धा	पा मा	गा	—	रे	गा	सा
पी	ई —	हा —	आ —	क्यों —	पी	—	पी	—	क
रे	नी	सा	—	—					
रै	—	रे	—	—					
					गा	रे	मा	पा	मा
					सु	न	सु	—	न
पा	पा	पा	—	पा	नी धा	पा मा	गारे	रे	गा
तो	री	धु	—	न	जि —	य —	रा	—	ज
गा मा	पा धा	धा	पा	—					
रै —	ऐ —	रे	ए	—					

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतरा

					धा	पा	नी	—	सा
					तो	—	कौं	—	तो
गा	रे	सारे	मा पा	पा	गा	—	रे	गा	सा
का	—	गा —	आ —	को	बो	—	ल	—	ही
रे	नी	सा	—	—	धा	पा	नी	—	सा
भा	—	वे	ए	—	पि	या	के	—	आ
गा	रे सा	रे	मा	पा	गा	—	रे	गा	सा
व	न	को	—	वो	स	गु	न	—	व
रे	नी	सा	—	—	गा	रे	मा	पा	मा
ता	—	वे	ए	—	ब्या	—	कु	—	ल
पा	पा	पा	—	पा	नी धा	पा	गा	रे	गा
को	—	क	—	ल	वा	ही	सौं	—	प
गा मा	पा धा	मा	धा	पा					
रै	ऐ	रे	ए	—					

बाबू कुँवर सिंह

जगदीशपुर-निवासी उज्जन-क्षत्रियकुलतिलक बाबू कुँवर सिंहकी यह सुविस्तृत जीवनी है। इस पुस्तकमें महाराजा विक्रमादित्यसे लेकर सन् १८५७के गदर और बाबू अमर सिंहके देहान्त-कालतकका इतिहास है। ऐतिहासिक पुस्तकोंके सिवा हफ्तों बाबू साहबकी जन्मभूमिमें रह कर इसका सामग्री-संग्रह किया गया है। इसमें दस रङ्गबिरङ्गे चित्र दिये गये हैं। बाबू साहबका प्रसिद्ध तिनरङ्गा शिकारी चित्र भी जिल्द पर है। बाबू कुँवर सिंहके जिस असली चित्रका दर्शन किसी भी ऐतिहासिकको नहीं हुआ था, वह भी बड़े परिश्रम और व्ययसे प्राप्त कर इस पुस्तकमें दे दिया गया है। इसके सिवा रेशमी जिल्दपर दुरङ्गा रैपर और बुक-मार्क भी दिये गये हैं। आज तक हिन्दीकी किसी भी पुस्तककी ऐसी सजावट नहीं हुई है। सचमुच इससे आपकी लाइब्रेरी जगमगा उठेगी। आज ही आर्डर दीजिये, नहीं तो दूसरे संस्करण तक पछताना पड़ेगा। इसके भूमिका-लेखक हैं आल इण्डिया कांग्रेस कमिटीके जेनरल सेक्रेटरी बाबू राजेन्द्रप्रसादजी एम० ए०,एम० एल०। केवल लागत भर मूल्य २॥) है।

मैनेजर, भारतीपुस्तकमाला, २२, सरकार लेन, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. तिथियों तथा वारों की गणना



ह विषय बड़े महत्त्व का है। इससे ऐतिहासिक अनुसंधान करने-वालों को बड़ा लाभ हुआ करता है। इस विषय पर हिंदी-संसार में सुप्रसिद्ध कविवर भानुजी ने एक पुस्तक लिखकर प्रकाशित कराई थी। पुस्तक का नाम है 'काल-प्रबोध'। गत वर्ष इसका नूतन एवं परिवर्द्धित संस्करण निकाला गया है। उसमें अँगरेज़ी सन् और तारीख़ों के भी मिलान की विधियाँ बताई गई हैं। माधुरी में एक उपयोगी लेख लिखकर कविवर रत्नाकरजी ने इस विषय पर नूतन प्रकाश डालते हुए हिंदी-पाठकों का ध्यान इस मनोरंजक और 'वर्णित समय' के शुद्धाशुद्ध-परीक्षक गणित की ओर आक-र्षित करने की कृपा की है। हमें जब माधुरी की ७वीं संख्या मिली, तब हम श्रीयुत रत्नाकरजी के द्वारा प्रदर्शित विधि से तिथि और वार का मिलान करने के गणित में प्रवृत्त हुए, और उत्तर देखने या जाँचने के समय हताश होते रहे। अभी जब आठवीं संख्या में उनका नोट निकला, तब हमारा भ्रम दूर हुआ। पर, तो भी, कुछ शंकाएँ बनी हुई हैं; जिन्हें हम नीचे लिखते हैं। आशा है, कविवर रत्नाकरजी इन शंकाओं के समाधान का कष्ट स्वीकार कर विषय-गत जटिलता को दूर करने की उदारता प्रकट करेंगे।

(१) जब अहर्गण की संख्या को ७ से भाग देने पर शेष में कुछ न रहे, अर्थात् शून्य आवे, तो क्या करना चाहिए? शून्य के लिये कौन-सा वार माना जाय?

(२) कातिक-सुदी, बुध, अष्टमी, सं० १६५४। चैत्र-शुक्ल १ से कार्तिक-शुक्ल १ तक ७ महीने होते हैं। अब, जब कार्तिक-शुक्ल की प्रतिपदा गणना में आ गई, तो अष्टमी के ७ दिन ही शेष रहे। रत्नाकरजी ने किस हिसाब से ८ दिन रक्खे हैं, समझ में नहीं आता।

(३) कभी-कभी श्लोक, दोहा या कवित्त में "याते" या "बीते" पद वर्ष के साथ मिलते हैं। ऐसी अवस्था में किस संवत् को लेना होगा?

उदाहरणार्थ—

(१) संबत रस ग्रह अंग शशि **बीते** अंक प्रमान;
भादों-शुक्ल, गनेस-तिथि, बुद्धबार शुभ-खान।
(कविवर रेवाराम)

पुनः—

(२) संबत बसु ग्रह नाग शशि **बीते** अंक प्रमान;
माधव-मास, गनेस-तिथि, धवल-पक्ष, रबि जान।
(कविवर रेवाराम)

दोनों दोहे एक प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ की सेवा में परीक्षा के लिये भेजे गए थे। उन्होंने गणना करके तिथि और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार का विरोध बताया । हमने भानुजी को कष्ट दिया। उन्होंने गणना करके दोहे में कथित तिथि-वार को शुद्ध बताया। अपनी क्रिया भी लिख भेजने की दया की।

रतनपुर के संस्कृत-कवि पांडेय तेजनाथ शास्त्री का श्लोक 'याते'-संयुक्त है । हमने उसकी गणना रत्नाकरजी की विधि से की, जो यों है—

शरधर्मांगनिशेशे विक्रमरविभूपवत्सरे **याते** ;

आश्विनकृष्णनवम्यां सौम्ये ग्रंथः समाप्तोऽयम् ।

शर ५, धर्म ६, अंग ८, निशेश १ } = सं० १८६५ विक्रमीय, आश्विन-कृष्ण ६

चैत्र-शुक्ल १ से भाद्र-शुक्ल १ तक ५ महीने

शेष १४ दिन भाद्र-शुक्ल

\+ ६ दिन आ० कृ०

२३ दिन

१८६५+३०४४=४६३६×१२+५

= ५६२६८+५=५६२७३ मास

५६२७३÷७०=८४६

शेष ५३ का + १

८४७

५६२७३+८४७ = ६०१२०

६०१२०÷३३ = १८२१

५६२७३+१८२१= ६१०६४

६१०६४×३० = १८३२८२० दिन

\+ २३ दिन

१८३२८४३ दिन

१८३२८४३×११=२०१६१२७३

२०१६१२७३÷७०३=२८६७८

१८३२८४३–२८६७८=१८०४१६५

१८०४१६५÷७

७) १८०४१६५ (२५७७३७

१४

४०

३५

५४

४६

५१

४६

२६

२१

५५

४६

६ शेष

६ शेष

शुक्र, शनि, रवि, सोम, मंगल, बुध

१ २ ३ ४ ५ ६ =

सौम्ये × बुधे=बुधवार

इसमें हमने संवत् को १८६५ ही रक्खा है। यहाँ 'याते'-शब्द के प्रयोग पर ध्यान देना चाहिए। क्या उसका अर्थ Expired Year है? दोहा नं० १ में सं० १८६६ लिया जाय, या १८६७? दोहा नं० २ में सं० १८६८ लिया जाय, या १८६६? इसी तरह श्लोक नं० १ में १८६५ के स्थान पर १८६६ लिया जा सकता है, या नहीं? १८६६ लेने से शेष २ रहता है; जो तिथि और वार में भेद डालता है। एक दोहा यह है—

संबत अष्टादश गतै पचपन, कातिक-मास ;

कृष्ण-पक्ष, तिथि पंचमी, सोमबार परकास।

संवत् १८५५ कार्त्तिक-कृष्ण पंचमी सोमवार । कविवर रत्नाकरजी की विधि से गणना करने पर—

१८५५ वर्ष ६ महीने १४ + ५=१६ दिन

(१८५५ + ३०४४) × १२ + ६=५८७६४

५८७६४÷७०=८३६

\+१

८४०

(५८७६४ + ८४०)÷ ३३=१८०७

(५८७६४ + १८०७)× ३०=१८१८०३०

(१८१८०३०+१६) ×११=१६६६८५३६

१६६६८५३६ ÷ ७०३=२८४४७

(१८१८०४६–२८४४७)÷७ शेष बचता है ३

शुक्र, शनि, रवि,

१ २ ३

कहा गया है कि एक दिन का अंतर हो सकता है। इससे रवि का सोमवार होना संभव है।

श्रीयुत भानुजी की गणना से इस दोहे के तिथि और वार ठीक-ठीक निकलते हैं।

दोहा नं० १ के सं० १६६६ भादों-शुक्ल ४—

तदनुसार ५ मास ३ दिन के हिसाब से गणना करने पर ४ शेष रहता है।

और संवत् १८६७ भादों-शुक्ल ४—

५ मास ३ दिन के हिसाब से गणना करने पर ३ शेष रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले में सोमवार और दूसरे में रविवार आता है, बुधवार नहीं।

दोहा नं० २ सं० १८६८ वैशाख-शुक्ल ४—

१ मास ३ दिन के हिसाब की गणना से १ शेष रहता है।

और संवत् १८६६ वैशाख-शुक्ल ४—

१ मास ३ दिन के हिसाब में शून्य शेष रहता है। अर्थात् कुछ भी शेष नहीं रहता। ऐसा क्यों होता है, हम नहीं जानते। क्या कविवर रत्नाकरजी दोनों दोहों के अंकों की परीक्षा करके उसका फल प्रकट करने की दया न करेंगे? उनके लेख में वर्णित गणना करने की विधि को सर्वथा निर्भ्रांत और त्रुटि-रहित करना सर्व-साधारण के लिये बड़ा लाभ-दायक होगा, और इसी साधु भाव से प्रेरित होकर हमने उनसे यह प्रार्थना की है। आशा है, वह इसके लिये हमें क्षमा प्रदान करने की कृपा करेंगे।

लोचनप्रसाद पांडेय

× × ×

२. भवभूति और उनका समय

जयंति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ;
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।

(भर्तृहरि-नीतिशतक, श्लोक २४)

पाश्चात्य विद्वान् हमारे पितरों पर यह दोषारोपण करते हैं कि वे केवल इतिहास ही नहीं, अपने जीवन का वृत्तांत भी लिखना नहीं जानते थे। अनुकरण में तो हम निपुण हैं, इस कारण अपने पूर्वजों की बुराई करने में भी न चूके; परंतु यह विचार हमारे मन में कभी न उठा कि 'ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं' के अनुसार हमारे पितर ख्याति और यश के प्रति श्रद्धांध न थे। आधुनिक लेखक तो अपने नाम के साथ कभी-कभी अपना चित्र भी पुस्तक में देने की कृपा करते हैं, परंतु प्राचीन लेखक अपने नाम की अपेक्षा अपने आदर्श और भावों को अधिक प्रचलित करना चाहते थे। वे ख्याति-देवी के अगाध भक्त न थे, और इसी कारण कभी-कभी अन्य महानुभावों के नाम से भी ग्रंथ रच दिया करते थे। कुछ दोषान्वेषक इस बात का समर्थन करते हैं कि उनका यह कार्य प्रशंसनीय नहीं। यह हम भी स्वीकार करते हैं। परंतु, तब भी, आधुनिक लेखकों की अपेक्षा वे हमारी श्रद्धा के विशेष पात्र हैं; क्योंकि उन्होंने अपने ग्रंथों को आदर्श-पूर्ति का एक साधन माना था, न कि यशःप्राप्ति का एक वाहन। जिन महान् पुरुषों ने वेदों की सैकड़ों शाखाएँ, 'ब्राह्मणों' पर व्याख्याएँ और शास्त्र-संबंधी अनेक ग्रंथ रचे थे, आज उनके विचारों के कारण विद्वन्मंडली उनकी कृतज्ञ है। आज हम जिन महाकवि के काल का निर्णय करना चाहते हैं, वह भी अपना जीवन-वृत्त पृथक् नहीं लिख गए। हर्ष का विषय है कि उनके ग्रंथों से कुछ बातों का पता चलता है।

वीरचरित-नाटक में भवभूति ने अपने माता-पिता का नाम जातुकर्णी और नीलकंठ लिखा है। यह दक्षिण के पद्मपुर-नामक नगर के रहनेवाले थे। इनके पितामह का नाम भट्ट गोपाल, गुरु का नाम ज्ञानाभिधा और इनका उपनाम नीलकंठ था।

"अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरंनाम नगरम्। तत्र केचित् तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पंचाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिनो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसंति।

(वीरचरित-नाटक)

इससे विदित होता है कि उनका काश्यप गोत्र था। उनके पूर्वज विद्वान्, प्रतिष्ठित, धर्मनिष्ठ और यजुर्वेद की तैत्तिरीय-शाखा के प्रकांड पंडित थे। उनमें कोई-कोई कवि भी थे। भवभूति अपने काल के विषय में बिलकुल चुप हैं, इस कारण हमें उनके उत्तर-कालीन ग्रंथकारों का आश्रय लेना पड़ेगा। कल्हण-कृत राज-तरंगिणी के अनुसार भवभूति कान्यकुब्ज-नरेश यशोवर्मन् के सभासद थे।

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ;
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवंदिताम्।

(राज-तरंगिणी, तरंग ४, श्लोक १४४)

डॉक्टर भांडारकर ने लिखा है कि काश्मीर के राजा ललितादित्य ने यशोवर्मन् को परास्त किया। जनरल कनिंघम के मतानुसार ललितादित्य ने सन् ६६३ से ७२६ तक राज्य किया। काश्मीर के इतिहास में 'गौड़-बध' काव्य के कर्ता वाक्पतिराज का नाम यशोवर्मन् के राज-सभा-सदों में लिखा है। इस ग्रंथ से विदित है कि वाक्पति-राज भवभूति के शिष्य अथवा सम-कालीन तो अवश्य ही थे। यदि 'गौड़-बध' काव्य यशोवर्मन् के राज्य के अंतिम काल में लिखा गया, तो भवभूति उसके आदिम काल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हुए होंगे। इसका अर्थ यह है कि भवभूति ७वीं शताब्दी के अंतिम भाग में हुए होंगे।

श्रीयुत आनंदराम बारुआ इस काल-निर्णय के विरुद्ध हैं। उनका कथन है कि भवभूति न तो क़न्नौज का अपने ग्रंथों में उल्लेख करते हैं, और न उसके राजा यशोवर्मन् का। वाक्पतिराज तो भवभूति की एक उपाधि थी। उनके मतानुसार भवभूति उज्जयिनी के राजसभासद थे; क्योंकि उनके नाटक कालप्रियनाथ के मंदिर में खेले गए थे।

इसमें केवल इस एक बात का उत्तर देना आवश्यक है कि कालिदास ने भी अपने संरक्षक विक्रमादित्य का अपने ग्रंथों में उल्लेख क्यों नहीं किया।

भवभूति का दूसरा अनुषंग 'भोज-प्रबंध' के "वाराणासीदेशादागतः कोऽपि भवभूतिर्नाम कविर्द्वारि तिष्ठति", इस वाक्य में आता है। परंतु भोज-प्रबंध में तो भवभूति, माघ, कालिदास, मयूर और बाण आदि समस्त कवि सम-कालीन दिखाए गए हैं। इस कारण यह ग्रंथ विश्वास-योग्य नहीं हो सकता।

बाल-रामायण के रचयिता राजशेखर अपने ग्रंथ के निम्न-लिखित पद्य में भवभूति का नाम देते हैं—

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेंठताम्;
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते संप्रति राजशेखरः।

'शंकर-दिग्विजय' के कर्ता माधवाचार्य के मतानुसार राजशेखर शंकराचार्य स्वामी के सम-कालीन थे। स्वामी शंकराचार्य ७वीं शताब्दी में हुए थे, इस कारण भवभूति भी ७वीं शताब्दी से थोड़े ही वर्ष पूर्व हुए होंगे; नहीं तो हर्ष-चरित के रचयिता बाण कवि ने उनका नाम कालिदास आदि के साथ अपने ग्रंथ में अवश्य दिया होता।

श्रीयुत बारुआजी भवभूति का काल पाँचवीं शताब्दी निर्णीत करते हैं। भवभूति ने सबसे प्रथम राम-चरित के विषय में नाटक रचा; जैसा कि उनके वीर-चरित के "किंतु अपूर्वत्वात् प्रबंधस्य कथापदेशं समारंभे ज्ञातुमिच्छंति", इस वाक्य से विदित है।

भवभूति की और ४वीं शताब्दी के कवियों की रचना-शैली में बड़ा अंतर है। गुप्त-वंश के राजों ने ४वीं शताब्दी में कुछ शिला-लेख स्थापित किए थे। इन लेखों की रचना में कालिदास की रचना के समान सरलता पाई जाती है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों रचना कठिन और अप्राकृतिक होती गई। बड़े-बड़े पद और लंबे-लंबे समासों की ओर लेखकों की रुचि बढ़ी। इस रचना की सीमा बाण भट्ट की कादंबरी में मिल सकती है। भवभूति भी इसी शैली के उपासक थे। उन्होंने अपने ग्रंथों में कई स्थानों पर वैदिक प्रयोग किए हैं। इससे सिद्ध है कि भवभूति बौद्ध-मत के अधःपतन के समय पैदा हुए थे। परंतु बौद्ध-मत निरंतर निर्मूल नहीं हुआ था; क्योंकि मालती-माधव में कामंदकी नाम की भिक्षुकी का चरित्र बड़ा निर्मल और शुद्ध दिखाया गया है।

भवभूति ने महावीर-चरित्र, मालती-माधव और उत्तर राम-चरित्र नाम के तीन नाटक लिखे हैं। भवभूति की रचना में वाक्य-बाहुल्य है। प्राकृतिक शोभा और वीर रस-संबंधी रचना में तो वह बड़े ही निपुण हैं। सामान्य वस्तुओं में भी सुंदरता दिखाना भवभूति के लिये एक साधारण कार्य है। वह शास्त्र-मर्यादा के दृढ़ अनुयायी हैं।

"कपूर"

× × ×

३. फ्रांस का विख्यात व्यंग्य-चित्रकार

फ्रांस में एक साहित्य-सभा है, जिसे फ्रेंच एकाडेमी कहते हैं। वह फ्रेंच-साहित्य की बुराइयों को दूर करने में सतत व्यग्र रहकर इस बात का मुख्य रूप से ख़याल रखती है कि प्रतिभा निर्धनता के पंक में पड़कर कहीं सड़ न जाय। जहाँ प्रतिभा देख पड़ती है, वहाँ उसका आदर करना—आर्थिक सहायता देकर उसकी समुन्नति करना—इस सभा के मुख्य कार्यों में से एक है। यह सभा ललित कला, काव्य-कला तथा चित्रकारी आदि विषयों के निष्णात साहित्यिकों को अपना सदस्य बनाकर उनका उचित सम्मान करती है। फ्रांस में इस सभा का सदस्य बनाया जाना मानो उस साहित्यिक व्यक्ति के अपूर्व गुणों का सर्वत्र निदर्शन कराना है।

अभी हाल में ही इसने फ़ोरें(Forain)-नामक एक प्रसिद्ध कार्टून (व्यंग्य-चित्र) बनानेवाले को अपना सदस्य बनाकर अखिल साहित्य-संसार को अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है। फ़ोरें महाशय आजकल के व्यंग्य-चित्रकारों में सर्व-श्रेष्ठ माने जाते हैं। इनके चित्र आधुनिक समाचारपत्र-जगत् में अमूल्य हीरे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी यह कल्पना निराधार नहीं है। छांदोग्य-उपनिषद् में उषस्ति ऋषि की एक कथा है; जिसका आशय यह है कि कुरु-देश में ओले आदि के गिरने से फ़सल कम हुई। लोगों को अन्न-कष्ट होने लगा। उक्त ऋषि अपनी स्त्री के साथ इभ्य-ग्राम में भीख माँगने गए। वहाँ का रहनेवाला एक इभ्य कुलथी खा रहा था। उन्होंने उससे अन्न माँगा। वह बोला—"मेरे भोजन-पात्र में जो अन्न परोसा हुआ है, उससे अधिक मेरे पास नहीं है। यह अन्न मेरे खाने के कारण जूठा हो गया है। इस पर ऋषि ने कहा कि जूठा ही अन्न दो, पर मैं जल नहीं लूँगा; क्योंकि जल पीना उच्छिष्ट पानी का पीना होगा।" *

यह बात सुनकर इभ्य ग्राम-निवासी गृहस्थ बोला—"आपने मेरा जूठा अन्न ले लिया, पर जल नहीं लिया।" ऋषि उषस्ति ने उसे उत्तर दिया—"संसार में जल बहुत है। मैं उसके बिना मर नहीं सकता। पर बिना खाए मेरी मृत्यु हो जायगी। अतएव जूठे अन्न का लेना उचित है; पर जूठे जल का नहीं।"†

उक्त ऋषि जूठा अन्न खाकर समीपस्थ एक राजा के यज्ञ में गए, और वहाँ के प्रस्तोता, उद्गाता तथा प्रतिहर्ता से कहा कि तुम लोग जिन वेद-मंत्रों को पढ़ रहे हो, उनमें जो देवता हैं, उन्हें जाने बिना पाठ करोगे, तो तुम लोगों का मस्तक-पात हो जायगा। यज्ञ में बैठे हुए सब ऋषियों ने काम छोड़ दिया; क्योंकि वे वेदों का यथार्थ अर्थ नहीं जानते थे। जो जानते भी थे, उन्हें देवतों के तेज का यथार्थ अनुभव नहीं हुआ था।

यज्ञ करनेवाले राजा ने उन्हें यज्ञ का आचार्य बनाया, और उन्होंने प्रस्तोता को प्राण-देवता, उद्गाता को आदित्य-देवता तथा प्रतिहर्ता को अन्न-देव का स्वरूप बतलाया। राजा ने उन्हें बहुत-सा धन दिया।

उक्त उदाहरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राण-रक्षा के लिये चारों वेद के जाननेवाले भी खान-पान में कुछ बंधन ढीला कर सकते हैं। अतएव रेल तथा जहाज़ के जो यात्री दूर की यात्रा करते हैं, वे आचार-विचार में कुछ स्वतंत्र हो सकते हैं।

लाचारी के समय किए हुए भोजन-संबंधी पापों के लिये वेदों में प्राणायाम का विधान है। *

प्रजा के धर्म, धन की रक्षा के लिये राजा की उत्पत्ति हुई है। भारत में जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य रहते हैं, उनके आचार तथा धार्मिक व्यवहार की रक्षा के लिये प्रत्येक ट्रेन में एक हिंदू-भोजनालय का प्रबंध होना चाहिए। जहाज़ में तो इसकी आवश्यकता अनिवार्य है।

उपर्युक्त ऋषि के दृष्टांत से रेल, जहाज़ों पर खाना-पीना आपद्धर्म हो जाता है। पर वास्तव में आपद्धर्म अधर्म-मिश्रित है; क्योंकि उसके अभ्यास से अधर्मी बन जाने का डर रहता है। यदि यह भय न होता, तो पृथक् डब्बे की कोई आवश्यकता न होती।

हिंदू-धर्म के अनुसार मद्य, मांस से दूषित स्थान भोजन-योग्य नहीं होते। आजकल रेलवे-डब्बों में मुसलमान तथा ईसाई उक्त वस्तुओं का व्यवहार बिना रोक-टोक करते हैं। वहाँ खाना-पीना आचारवान् हिंदुओं के लिये बड़ा कष्ट-दायक होता है। इसीलिये पृथक् डब्बे की आवश्यकता प्रतीत होती है।

सकलनारायण शर्म्मा

× × ×

५. हे घन-श्याम !

विभुवर, दया-वारि बरसाओ !
चिंतानल से मन जलता है, हरे ! तुरंत बुझाओ।
दृग से अविरल अश्रु बहाकर मैं चाहता बुझाना;
वह है और प्रज्वलित होता, कुछ है ठीक ठिकाना !
मैं निशंक हूँ—डरता केवल यह है हृदय हमारा,
मेरे मन-मंदिर में तुम हो, जले न अंग तुम्हारा।
शांति-लता झुलसी है; प्यारे-भाव, कुसुम मुरझाने;
आशा-कोकिल के भी अब तो सुनता नहीं तराने।
दया-सिंधु हो, दया तुम्हें है नहीं कहीं से लाना;
हे घन-श्याम श्याम फिर तुमको उचित न देर लगाना।
करते शमन अग्नि वसुधा की, प्रभो ! गिरा जल-धारा;
इधर एक छींटा ही काफ़ी, हल्का हो कि करारा।

श्रीरत्न शुक्ल

---

* "स हेभ्यं कुल्माषां खादंतं विभिक्षे तं होवाच नेतोऽन्ये विद्यंते यच्च ये मे उपहिता इति । × × × × हंतानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतं स्यादिति होवाच।" (छांदोग्य)

† "नस्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमानखादन्निति होवाच कामोम उदपानमिति" (छांदोग्य)

* "यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. कूड़े का उपयोग



आजकल किसी पदार्थ को व्यर्थ नष्ट करना असभ्यता का चिह्न समझा जाता है। मनुष्य समझने लगा है कि प्रत्येक पदार्थ का मूल्य होता है। वैज्ञानिक मशीनें कूड़े-कर्कट को नए-नए रूप दे रही हैं। काग़ज़ फटे-पुराने कपड़े से बनता है। 'उस्ट-बीम' के कूड़े को जलाकर एक ऐसी गैस बन रही है, जिससे विद्युत् तैयार करनेवाले बड़े-बड़े 'डायनमो' चल रहे हैं। उनमें जो राख रहती है, वह मिस्त्री के अस्त्र का काम करती है।

पहले साबुन के फेन से इँगलैंड की बहुत-सी नदियों का जल अव्यवहार्य हो जाता था। आज फेन के साथ चूना मिलाकर टिकिया बना ली जाती है। वह कोयले के बदले व्यवहृत होती है। उससे जो गरमी पैदा होती है, वह कोयले की गरमी से तिगनी अधिक होती है। घोड़े, गाय, बैल आदि के मर जाने पर उनके रोंयों से कंबल और चटाइयाँ बनती हैं; हाड़ से कंघियाँ, छुरी के फल बनते हैं; चर्बी से जिलेटिन निकाली जाती है। उनका खून ज़मीन की खाद और पुटाश-प्रुशिएट के बनाने में काम आता है।

बहुत-से लोग मेरी इस बात पर विश्वास नहीं करेंगे, यदि मैं कहूँ कि फटे-पुराने जूतों से 'जेली' और फटे हुए कपड़े से 'ह्विस्की' बन रही है। एक और मज़े की बात यह है कि आरे से काटी हुई लकड़ी की बुकनी से डबल-रोटी तैयार होकर हमारी रसना की तृप्ति करती है। मछली के काँटे तथा चींटों से कृत्रिम मुक्ता बनकर स्त्रियों के कान और गले को सुशोभित करते हैं।

× × ×

२. पतला और मोटा

बहुत दिनों की गवेषणा तथा परीक्षा के बाद स्थिर हुआ है कि मोटे और वज़न में भारी मनुष्यों की अपेक्षा हलके तथा पतले मनुष्य अधिक स्वस्थ और दीर्घ-जीवी होते हैं। जो मनुष्य शरीर की तुलना में वज़न में बहुत भारी होते हैं, उनका भविष्य सर्वदा संकट-जनक होता है। तीस वर्ष की अवस्था तक यदि शरीर के अनुपात से वज़न अधिक हो, तो कोई डर की बात नहीं; किंतु तीस वर्ष व्यतीत होने के बाद भी यदि कोई शरीर की अपेक्षा वज़न में बढ़ता रहे, तो वह अल्पायु होगा, यह बहुत-से दृष्टांतों द्वारा प्रमाणित हो चुका है।

साधारणतः मनुष्य की छाती उसकी लंबाई से आधी होनी चाहिए, और कमर कभी छाती से अधिक मोटी न हो, इसका सर्वदा ध्यान रहना चाहिए। शरीर के अनुपात से वज़न में भारी होने का अर्थ शरीर की चर्बी का बढ़ना है। चर्बी बढ़ने का कारण अधिक भोजन और कम व्यायाम करना है। बहुत अधिक खाने से तोंद निकल आता है। पेट तथा कमर के पास चर्बी जमा होने से छाती की अपेक्षा कमर अधिक मोटी हो जाती है। अधिक मोटे तथा वज़न में भारी होने के कारण स्वास्थ्य की हानि और आयु का ह्रास होता है। तीस वर्ष की आयु के स्त्री-पुरुषों के मुनासिब वज़न की एक सूची नीचे दी जाती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भिन्न-भिन्न आयु के मोटे तथा पतले मनुष्यों की प्रतियोगिता का चित्र

(तीस वर्ष की आयु के, पतले तथा मोटे, दस-दस मनुष्य दो दलों में हैं। जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे मोटे मनुष्यों की संख्या कम होती जाती है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो लोग मुनासिब वज़न से भारी हो गए हों, उन्हें अपना वज़न तथा मुटाई कम करने की शीघ्र चेष्टा करनी चाहिए । इसका उपाय परिमित आहार और नियमित रूप से उपयुक्त व्यायाम करना है। चर्बी या मेदा उत्पन्न करनेवाले भोजन का व्यवहार कुछ दिन के लिये एकदम बंद कर देना चाहिए। भिन्न-भिन्न आयु के मोटे तथा पतले मनुष्यों की दीर्घायु-प्रतियोगिता का एक चित्र पीछे दिया गया है; जिसे देखकर यह आसानी से समझा जा सकता है कि जीवन-युद्ध में मोटे-पतले की जय-पराजय का क्या संबंध है।

रहता था, जिसमें डॉक्टर बोडन रहते थे। साढ़े चार बजे सुबह डॉक्टर साहब की पुकार हुई। उन्होंने जाकर देखा, रोगी एक आराम-कुर्सी पर मृत्यु की आशा में बैठा हुआ है। ऐसी अवस्था में और कोई दवा काम नहीं कर सकती, इसलिये डॉ० बोडन ने एड्रिनेलिन * (Adrenalin) का इंजेक्शन (Intra-cardiac injection) देना ठीक किया। वह अपने कमरे में गए, और जब सुई लगाने का सब सामान लेकर लौटे, तो मालूम हुआ कि इसी बीच में रोगी मृतप्राय हो चुका है।

तीस वर्ष की उम्र में स्त्री-पुरुषों का लंबाई के अनुसार स्वाभाविक वज़न

स्त्री की लंबाई			स्त्री का वज़न	पुरुष की लंबाई			पुरुष का वज़न
४ फ़ीट ८ इंच			१ मन १६ सेर	५ फ़ीट ० इंच	...	...	१ मन २६ सेर
४ ,, ९ ,,	...	...	१ ,, १७ ,,	५ ,, १ ,,	...	..	१ ,, २७ ,,
४ ,, १० ,,	...	...	१ ,, १८ ,,	५ ,, २ ,,	...	...	१ ,, २८ ,,
४ ,, ११ ,,	...	...	१ ,, १९ ,,	५ ,, ३ ,,	...	...	१ ,, २९ ,,
५ ,, ...	...	...	१ ,, २० ,,	५ ,, ४ ,,	...	...	१ ,, ३० ,,
५ ,, १ ,,	...	...	१ ,, २१ ,,	५ ,, ५ ,,	...	...	१ ,, ३२ ,,
५ ,, २ ,,	...	...	१ ,, २२ ,,	५ ,, ६ ,,	...	...	१ ,, ३४ ,,
५ ,, ३ ,,	...	...	१ ,, २४ ,,	५ ,, ७ ,,	...	...	१ ,, ३६ ,,
५ ,, ४ ,,	...	...	१ ,, २६ ,,	५ ,, ८ ,,	...	...	१ ,, ३८ ,,
५ ,, ५ ,,	...	...	१ ,, २८ ,,	५ ,, ९ ,,	...	...	२ ,, ० ,,
५ ,, ६ ,,	...	...	१ ,, ३० ,,	५ ,, १० ,,	...	...	२ ,, २ ,,
५ ,, ७ ,,	...	...	१ ,, ३२ ,,	५ ,, ११ ,,	...	...	२ ,, ४ ,,
५ ,, ८ ,,	...	...	१ ,, ३४ ,,	६ ,, ० ,,	...	...	२ ,, ६ ,,
५ ,, ९ ,,	...	...	१ ,, ३६ ,,	६ ,, १ ,,	...	...	२ ,, ९ ,,
५ ,, १० ,,	...	...	२ ,, ० ,,	६ ,, २ ,,	...	...	२ ,, १२ ,,
५ ,, ११ ,,	...	...	२ ,, २ ,,	६ ,, ३ ,,	...	...	२ ,, १५ ,,
६ ,, ० ,,	...	...	२ ,, ४ ,,	६ ,, ४ ,,	...	...	२ ,, १८ ,,

× × ×

३. मुर्दे को ज़िंदा करना

आजकल मृत मनुष्यों को ज़िंदा करने की बहुत-सी परीक्षाएँ हो रही हैं ; जिनमें से कुछ को सफलता भी प्राप्त हुई है । "Lancet"-नामक पत्र में डॉ० कार्ल बोडन ने एक मरे हुए मनुष्य को, जिसकी साँस बंद हो गई और हृदय की धड़कन रुक गई थी, जिलाने का निम्न-लिखित वर्णन प्रकाशित किया है—

रोगी की उम्र ५६ वर्ष की थी, और वह उसी घर में

डॉक्टर साहब लिखते हैं—"जब तक मैं इंजेक्शन की तैयारी कर रहा था, तब तक उसकी साँस भी बंद हो गई, हृदय की क्रिया भी रुक गई। नब्ज़ का भी अनुभव नहीं होता था। मैंने समझा, वह मर गया। इस समय इंजेक्शन की सुई लगाने में कोई हानि न समझकर मैंने वही किया।"

थोड़ी देर बाद डॉक्टर बोडन ने उसकी छाती की धड़कन का अनुभव किया, और लगभग आधे मिनिट में

* यह पदार्थ एड्रिनेल ग्लैंड्स (Adrenal glands) में बनता और हृदय की क्रिया को उत्तेजित करता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



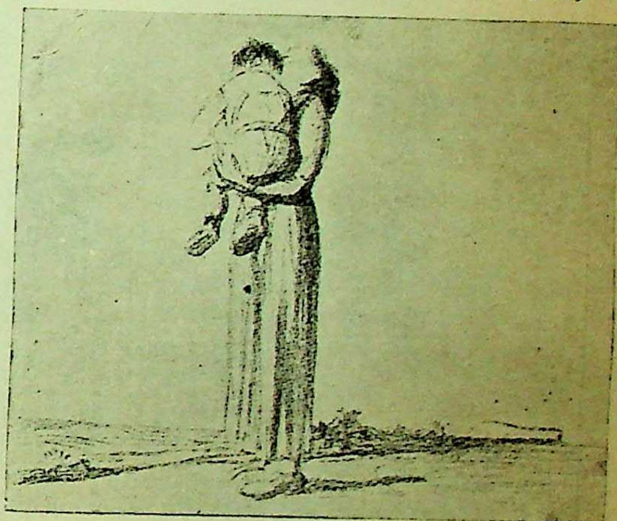
फ्रांस का प्रसिद्ध व्यंग्य-चित्रकार लुई फ़ोरें

पूर्वोक्त आलोचना का आशय यह है कि फ़ोरें महाशय केवल वर्तमान समय के ही चित्रकार नहीं हैं ; वह सदा के लिये हैं। उन्होंने स्वाभाविकता को समुचित सीमा के भीतर ही रक्खा है। उनके चित्रों में समाज के प्रति उतनी घृणा नहीं है, जितनी एक व्यंग्य-काव्य-लेखक में होती है। वह मनुष्यों की प्रत्येक दशा के सूक्ष्म पारखी हैं ; वह उनके वैसे ही चित्र खींचते हैं, जैसे वे वास्तव में होते हैं।

युद्ध के समय मनुष्यों के भावों का उन्होंने खूब अध्ययन किया था। युद्ध-विषयक अनेक चित्रों के लिये उनकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। नीचे प्रकाशित चित्रों को ध्यान से देखिए।

समान मूल्यवान् समझे जाते हैं। Le Figaro-नामक साप्ताहिक पत्र तो इनके चित्र-रत्नों का आकर है। इसी में अधिकतर वे प्रकाशित होते रहते हैं। व्यंग्य-चित्रों के विशेषज्ञों की सम्मति है कि यद्यपि इनके चित्रों में हास्य-रस की धारा बहाने की शक्ति बिलकुल नहीं है, परंतु उनमें गंभीर भावों—सुंदर विचारों—का सुलभ निदर्शन रहता है। फ़ोरें महाशय फ़्रेंच-संसार की घटनाओं के साथ-साथ बहते हैं। प्रत्येक महत्त्व-पूर्ण घटना पर इनके व्यंग्य-चित्र प्रकाशित होते हैं, और उनसे इनके मौलिक विचारों का यथेष्ट पता लगता है। इनके चित्रों में स्वाभाविकता तो कूट-कूटकर भरी रहती है। एक फ़्रेंच विद्वान्—Mr. Voudoyer—इनके विषय में लिखते हैं—

In his drawings, many of which we may without exaggeration call classics, he has shown himself to be not only a man of his own times but a man of all time. He was young when naturalism was in its best days ; he has kept his naturalism within bounds. His 'ferocity' and 'cynicism' are not so much those of the scold and the Satirist as they are those of the shrewed observer who tells us about people as they are.



पिता के युद्ध-क्षेत्र में चले जाने पर

इस चित्र में पिता युद्ध में जा रहा है ; परंतु उसका प्यारा छोटा बच्चा उसके लिये फूट-फूटकर रो रहा है। माता उसे गोद में उठा लेती है, और उसे समझाती है—"बेटा, मत रो, देखो मैं भी नहीं रोती।" चित्र बहुत ही करुणा-पूर्ण है।

दूसरा चित्र भी युद्ध-विषयक है। निरीह अबलाएँ जर्मनों के अत्याचारों से तंग आ गई हैं। केवल उनके पति ही मृत्यु-शय्या पर नहीं सो गए हैं, जर्मनों ने गाँव में भी आग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जर्मनों के अत्याचारों से पीड़ित प्रमदाएँ

लगा दी है ; जिससे ये अत्यंत दुरवस्था में पड़ गई हैं । कुछ रो रही हैं। दूसरी उन्हें समझाती हैं कि जर्मन सब चीज़ें जला रहे हैं; बस, जान पड़ता है, वे अब लौट जायँगे।



रूर-प्रदेश में

तीसरा दृश्य बिलकुल आधुनिक है । यह फ्रेंचों के द्वारा रूर-प्रदेश के क़ब्ज़े के विषय में है। जर्मन कहता है—"वाह, क्या कोई आदमी अपने देश के विरुद्ध हठात् कोई कार्य कर सकता है ? उस पर बलात्कार करने का अधिकार किसे है ?" फ्रेंच सिपाही उत्तर देता है—"जब तुम इतनी क़ानूनी तथा राजनीतिक बातें जानते हो, तो तुम्हें मिस् केबेल को मारना उचित न था ।"

ये चित्र आजकल खूब प्रशंसित हुए हैं ।

फ़ोरें केवल कार्टून बनानेवाले ही नहीं, चित्रकार भी हैं । अपने रंगीन चित्रों में वह नाट्य-शाला तथा कचहरी की घटनाएँ अंकित करते हैं । इसके सिवा वे धार्मिक बातों के चित्रण में भी दक्ष हैं । पुराने उस्तादों की कला-कुशलता के आदर्श चित्रों में भी वह नवीनता लाते हैं । अतएव फ्रेंच साहित्य-सभा के द्वारा उनका आदर किया जाना प्रत्येक विद्वान् की सम्मति में महत्त्व-पूर्ण बात है ।

क्या हम आशा करें कि भारत में भी व्यंग्य-चित्रकारों का आदर इसी भाँति किया जायगा ?

बलदेव उपाध्याय

× × ×

४. रेल तथा जहाज़ों में खान-पान

प्राचीन समय में रेल नहीं थी, अतएव स्मृतियों में यात्रियों के खान-पान का विधान अथवा निषेध नहीं मिलता । जहाज़ के यात्री दूर-दूर जाते थे । पर उस पर आर्य अधिक रहते थे, अतएव छुआ-छूत का विचार विशेष नहीं होता था । यदि होता भी था, तो नाव पर यात्रा करने में छुआ-छूत न माननेवाला विधान जहाज़ की यात्रा के लिये भी लागू था।

प्राचीन ऋषियों के समय में रेल न थी, मुसलमान न थे, ईसाई न थे, यदि होते, तो आर्यों के लिये निम्न-लिखित आज्ञा होती—

(१) निकट स्थान के जानेवाले यात्री रेल के डब्बे में बैठकर भोजन न करें ।

(२) दूर के यात्री भोजन कर सकते हैं ; पर उन्हें प्रायश्चित्त-स्वरूप प्राणायाम तथा गायत्री-जप विशेष करना चाहिए । अथवा—

(३) राजपुरुषों को द्विजातियों के भोजन तथा जल के लिये एक पृथक् डब्बे का प्रबंध कर देना चाहिए, इत्यादि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह धड़कन नियमित हो गई। दो घंटे के बाद रोगी को होश हुआ; पीछे की कोई भी घटना उसे स्मरण नहीं रही। इस क्रिया के तीन महीने बाद वह भला-चंगा हो गया, और अब भी अच्छी तरह से है।

डॉक्टर साहब का कहना है कि रोगी को हृद्-रोग था। अब वह बहुत दिनों तक बच सकता है। साँस और हृदय की गति बंद हो जाने के बाद इंजेक्शन में पाँच या दस मिनिट से अधिक देर नहीं करनी चाहिए; क्योंकि रक्त-संचालन के रुक जाने के तीन मिनिट बाद मस्तिष्क के कोष विकृत होने लगते हैं।

× × ×

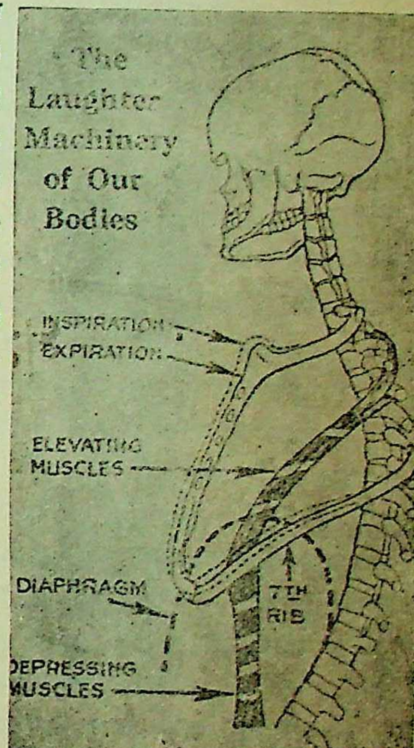
४. मनुष्य हँसते क्यों हैं ?

अमेरिका के प्रसिद्ध हास्यावतार विल राजर्स से उनके एक मित्र ने प्रश्न किया—"हँसी क्या है ? हँसने के समय भिन्न-भिन्न प्रकार की आवाज़ें क्यों निकलती हैं ? शरीर, मन और स्वास्थ्य पर हँसी का क्या प्रभाव पड़ता है ? हँसने से क्या लाभ है ?"

उत्तर में विल राजर्स ने कहा—"हँसने का कारण बहुत साधारण है। मनुष्य विना हँसे नहीं रह सकता, इसीलिये वह हँसता है। मनुष्य के लिये हँसना अत्यावश्यक है। शरीर और मन की स्वाभाविक गति को ठीक रखने के लिये मनुष्य को विवश होकर हँसना पड़ता है। हँसी शरीर तथा मन के विश्राम का एक उपाय है। कुछ समय खूब हँस लेने से शरीर की थकावट तथा मन की ग्लानि दूर हो जाती है। मन के प्रसन्न रहने से शरीर भी नीरोग रहता है। हँसने से शरीर का खून तेज़ चलने लगता है, श्वास-प्रश्वास घनी होती है, और मस्तिष्क में अधिक रक्त जाता है। इन सब शारीरिक प्रतिक्रियाओं से हमारा मन और शरीर प्रफुल्ल तथा स्वस्थ होता है। मानस-तत्त्व की दृष्टि से देखने से हँसी हमारे और भी अनेक उपकार करती है। दिल खोलकर हँसने से हमारी बहुत-सी दुश्चिंताएँ दूर हो जाती हैं, और बुरी भावनाओं से हमारी रक्षा होती है। हँसी मन का मैल धोकर साफ़ कर देती है, अनेक प्रकार की उत्तेजनाओं का दमन करती है, और अनेक प्रकार की स्नायविक तथा मांस-पेशी-संबंधी जड़ता और निर्जीवता को मिटाती है। हँसी शरीर के अंतर्गत क्षय-प्राप्त और कमज़ोर शक्ति-कोषों का संस्कार तथा पुनर्गठन आरंभ कर देती है। किसी अद्भुत वस्तु के देखने-सुनने या सोचने से हँसी आने का कारण यह है कि प्रत्येक के शरीर में कुछ ऐसी मांस-ग्रंथियाँ (Glands) हैं, जो थोड़ी-सी भी उत्तेजना पाने से शरीर में प्रबल वेग से एक रस निकालती हैं। वह रस शरीर की किसी विशेष पेशी पर प्रभाव डालकर हँसी की सृष्टि करता है। ऐसे भी कुछ मनुष्य हैं, जो कभी हँसते नहीं। गुदगुदाए जाने पर भी उन्हें हँसी नहीं आती। इसका कारण उनमें इस शारीरिक गुण का अभाव है।



हास्यावतार विल राजर्स



शरीर की हँसने की मशीनें

× × ×

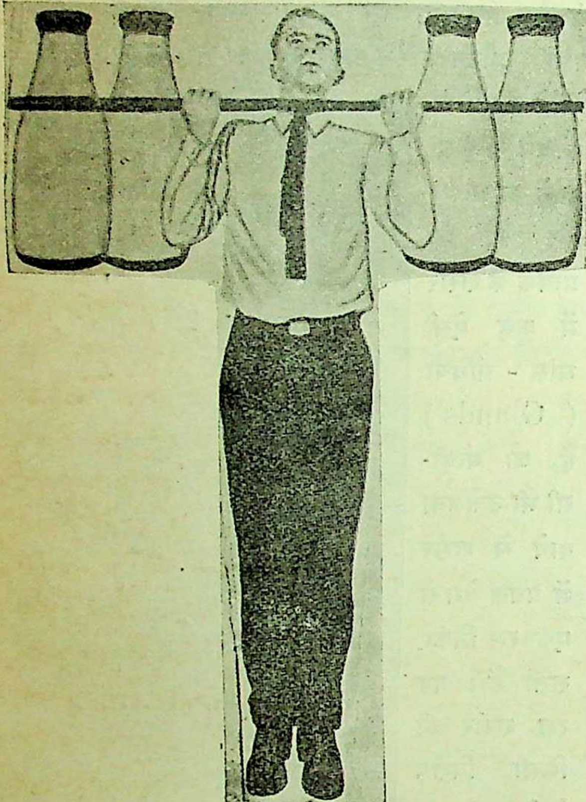
५. दूध ही मनुष्य का प्रधान भोजन है

भारतवासी दूध को बहुत दिनों से मनुष्य का प्रधान खाद्य मानते चले आते हैं। अब अमेरिका के बड़े-बड़े वैज्ञानिक तथा रसायन-शास्त्र-निष्णात पंडितों ने अनेक प्रकार के खाद्य-द्रव्यों की परीक्षा करके बतलाया है कि दूध-सा पुष्टिकारक तथा बलकारक भोजन दूसरा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका कहना है कि प्रत्येक बालक को कम-से-कम छः वर्ष की उम्र तक तीन पाव दूध पीना चाहिए, और छः से चौदह वर्ष की उम्र तक डेढ़ पाव से आधा सेर तक। प्रत्येक युवक को प्रत्यह एक पाव दूध पीना चाहिए। जो लोग दूध एकदम नहीं पचा सकते, उन्हें पहले थोड़ा-थोड़ा पीने का अभ्यास करना और पीछे उस मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिए।



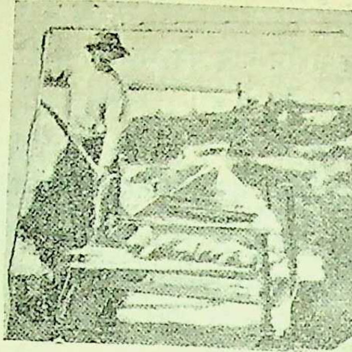
दूध के व्यवहार का सुफल

यह जिस नवयुवक का चित्र है, उसकी उम्र १८ वर्ष की है। लड़कपन में यह बहुत दुबला-पतला था, इसलिये डॉक्टरों ने इसे अन्यान्य खाद्यों के बदले दूध ही व्यवहार करने को कहा। इस व्यवस्था के अनुसार यह अपने स्कूल के सब लड़कों से अधिक स्वस्थ, परिपुष्ट और बलवान् हो गया है। आजकल यह अन्यान्य पदार्थों के साथ ३ सेर दूध भी पीता है।

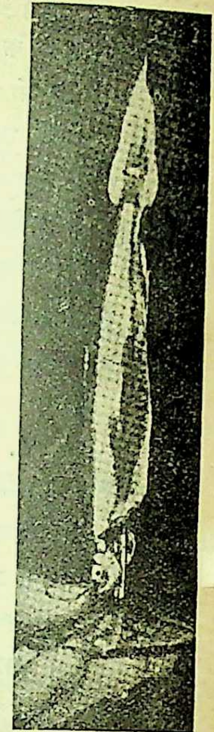
× × ×

६. मत्स्य-प्रदीप

प्रशांत महासागर के उत्तरी किनारे के पास एक प्रकार की मछली मिलती है, उसे "उलिकन" कहते हैं। इस मछली के शरीर में बहुत-सी चर्बी पाई जाती है। इसकी



'उलिकन' से तेल निकालने का चित्र



उलिकन मोमबत्ती-जैसी जल रही है

पूँछ में यदि दियासलाई लगा दें, तो वह मोमबत्ती-जैसी जलने लगेगी, और रोशनी भी काफ़ी होगी। जलाने के पहले इसे सुखा लेना पड़ता है। इसका तेल बहुत-सी व्यावसायिक वस्तुओं के बनाने में काम आता है। इसलिये मछुए बारहों मास, दिन-रात, इसका शिकार किया करते हैं, और भिन्न-भिन्न स्थानों को इसका चालान करते हैं, वहाँ के लोग इसे खाते भी हैं।

× × ×

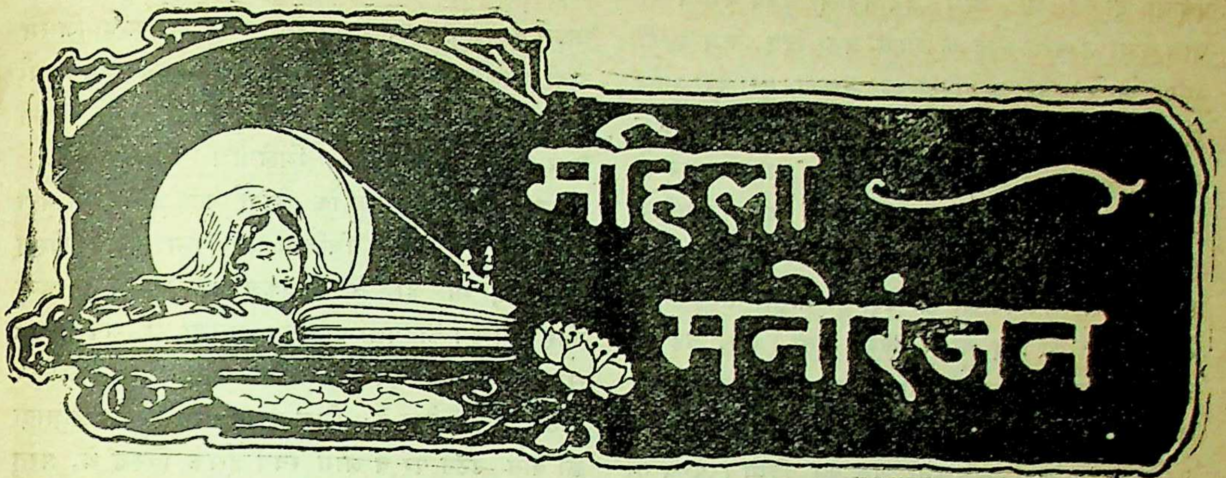
७. आलपीन पर चित्र

किसी छोटी वस्तु की तुलना 'पिन' या सुई से की जाती है; किंतु इतनी छोटी आलपीन के सिर पर भी चित्र बनाया जा सकता है, यह बात मानने के लिये कोई सहसा तैयार नहीं होगा। अमेरिका के संयुक्त-राज्य के सरकारी चित्रकार मि० हैबिच ने एक आलपीन के सिर पर एक सुंदर चित्र बनाकर संसार के लोगों को अवाक् कर दिया है। पिन को सुदृश्य तथा अंकनोपयोगी बनाने में तीन दिन लगे थे, और उसके सिर पर चित्र बनाने में पूरे चार मास। चित्र इतना छोटा है कि माइक्रासकोप के बिना पूरा दृष्टि-गत नहीं होता। चित्र में घर, दरवाज़ा, खिड़की आदि तो हैं ही, इनके अतिरिक्त United St tes, Capital और नीचे Washington, 1922. भी लिखा हुआ है।

रमेशप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. स्त्रियों की स्वाधीनता



ग १, खंड २, संख्या ३ में यह लिखा जा चुका है कि मैं स्त्री और पुरुष, दोनों को बराबर का अधिकार मिलने का पक्षपाती हूँ, और चाहता हूँ कि वह दिन जल्दी आवे, जब किसी के अधिकार किसी से कम न रहें। किंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या स्वयं स्त्रियाँ भी पुरुषों के बराबर अधिकार चाहती हैं ? अगर नहीं, तो क्यों यह बात ठीक है कि जो बात वे नहीं चाहतीं, वह हम उन्हें ज़बरदस्ती दें ?

हमारे कुछ मित्र कहते हैं कि स्त्रियों को दबाकर ही रखने से वे ठीक रहती हैं, और सनातन से यह मानी हुई बात है कि—

शूद्र, गँवार, ढोल, पशु, नारी,
ये सब ताड़न के अधिकारी।

ऐसी दशा में, उनको स्वाधीन बनाना शास्त्रों के विरुद्ध चलना है। उनका धर्म तो, बस, पति-भक्ति है, और किसी चीज़ से उन्हें क्या मतलब ? इसमें संदेह नहीं कि अधिकतर हिंदू-स्त्रियाँ भी यही मानती और स्वाधीनता चाहनेवाली स्त्रियों को बुरे रास्ते पर चलनेवाली समझती हैं। इस दशा में हमारा धर्म क्या है—यह कि उनको वही लीक पीटने दें, या यह कि उनमें स्वाधीनता के भाव जाग्रत् करें ?

स्त्री की दशा ऐसी क्यों है ? क्या परमेश्वर ने उसके वास्ते कुछ और नियम बनाए हैं, और पुरुष के वास्ते दूसरे ? मैं कहूँगा, हरगिज़ नहीं। परमेश्वर को अपनी हरकतों पर दोष देना या अपनी बुराइयाँ उसके सिर मढ़ना बड़ी ही हठ-धर्मी है। यदि परमेश्वर का इसमें कुछ हाथ होता, तो जिस ज़माने में शादी करने की रीति प्रचलित न थी, स्त्री क्यों नहीं दबी थी ? यह स्पष्ट है कि जब से समाज का संगठन हुआ, और शादी-ब्याह होने से घर-गृहस्थी जमी, तभी से स्त्री को दबाने की चेष्टा होने लगी, और होते-होते वह इतनी दबाई गई कि बचपन से मरते-दम तक उसके वास्ते किसी-न-किसी के अधीन होना नियत किया गया। इतना ही नहीं, किसी अजनबी के सामने जाना भी उसके लिये बहुत कुछ मना कर दिया गया। परदे में रहना उसके वास्ते बड़ा ही उपयोगी समझा गया।

कहा जाता है, परदा मुसलमानों के समय से, कुछ कारणों से, प्रचलित है। यह ग़लत है। मुसलमानों के समय से वह आजकल की शकल में ज़रूर होगा, परंतु किसी-न-किसी शकल में कौरवों के राज्य में भी था। महाभारत में इसके उदाहरण मिलते हैं। हाँ, ऐसा परदा न था कि हरदम स्त्री बंद रहे। फिर भी स्त्री के वास्ते कुछ बाहर आने की रोक थी। जब श्रीकृष्ण पांडवों के दूत बनकर राजा धृतराष्ट्र के पास हस्तिनापुर गए, तो राजा ने आज्ञा दी कि कुल नगर की स्त्रियाँ आज परदा न करें, बल्कि मुँह खोलकर अपनी अटारियों पर बैठकर श्रीकृष्ण का स्वागत करें। मेरी ग़रज़ ख़ाली यह दिखाने की है कि हज़ारों वर्षों से स्त्री को किसी-न-किसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दबाया जा रहा था; और, दबानेवाला पुरुष-समाज ही था। उसी ने तरह-तरह के शास्त्र बना दिए, और उन्हीं शास्त्रों का डर स्त्री को दिखाकर उसकी पूरी-पूरी भक्ति अपने ऊपर करा ली। मूर्ख बनाना उसने पहले ही शुरू कर दिया होगा; क्योंकि अगले जन्म का डर मूर्ख को ज़्यादा होता है। अतएव स्त्री की नीच दशा बनाने में पुरुष-समाज का हाथ साफ़ दिखाई दे रहा है। अगर शुरू ही में शास्त्र लिखनेवाली स्त्री पैदा हो जाती, तो पुरुषों के लिखे शास्त्रों का कुछ असर कम होता। ख़ैर, वह तो हो गया, और पुरुष की जीत हुई। सबसे बड़ी जीत तो उसकी तब हुई, जब स्त्री ने स्वयं ही उन शास्त्रों को परमेश्वर के लिखे समझना शुरू कर दिया। पुरुष तो स्त्री का परमेश्वर है ही।

किन-किन चालों से स्त्री को यह विश्वास दिलाया गया, उनके कहने का यहाँ न मौक़ा है, न इस लेख में वे आ ही सकती हैं। शास्त्रों इत्यादि में तरह-तरह के दृष्टांत दिए गए। उनमें पति-भक्त स्त्री की बड़ाई की गई, और उसके भोले मन को वश में कर लिया गया।

जिन लोगों ने ऐसे दृष्टांत गढ़े, उन्होंने विजय पाई। जो चाहते थे, सो हो गया। यानी स्त्री बिलकुल पुरुष की दासी हो गई। सारी हिंदू-स्त्रियाँ पति-भक्त हो गईं, और अधिकतर आज तक हैं। किंतु उनकी पति-भक्ति ने उनके पतियों और उनको पराधीन होने से नहीं बचाया। सब बुरी तरह से पराधीनता के जाल में फँस गए। इतना ही नहीं, उनकी इसी पति-भक्ति ने उनमें इतनी भी हिम्मत न छोड़ी कि वे पुरुष-समाज को स्वाधीनता प्राप्त करने की हिम्मत दिलातीं। ऐसा भी देखा गया है कि कितनी ही पति-भक्त स्त्रियाँ अपने उत्साही पतियों के देश-सेवा के कार्य में बाधा डालती हैं। परंतु यह सब दोष हमारा ही है, जिन्होंने उन्हें मूर्ख बनाकर पति-भक्ति की तोता-रटंत तो करा दी, किंतु और किसी बात से वास्ता नहीं रखने दिया।

जब पुरुष-समाज ने उनकी यह दशा की, तो उसे सँभाले कौन? अपनी ग़लती तो हमें मालूम होने लगी है, अब उन्हें भी यदि ग़लती दिखाई जाय, तो क्या हानि है? मैं तो कहूँगा कि स्त्रियों को यह समझा देना हमारा धर्म है कि हमने स्वार्थ के कारण उन्हें अपने अधीन बनाया। जब देखा कि उसकी बदौलत हम भी अधीन हो गए, तब हम उन्हें उतना स्वाधीन कर देना चाहते हैं, जितना स्वाधीन करना हमारे हाथ में है; जिसमें दोनों मिलकर देश के कार्य में तत्पर हो सकें। जब स्त्रियाँ अपना कर्तव्य समझ जायँगी, तब पुरुष-समाज को अपना कार्य करने में पूर्ण सहायता मिलेगी।

सच्ची बात तो यह है कि स्त्रियाँ यह जानती ही नहीं कि स्वाधीनता किस चिड़िया का नाम है। कारण चाहे कुछ भी हो, वे आजकल परदे में बंद रहना और पति-देव का पल्ला पकड़कर चलना ही अपना धर्म समझती हैं। अतएव इस पथ को छोड़ देना उनके लिये कठिन दिखाई देता है। जिस प्रकार गुलामों की आज़ादी की बात उठने पर वे लोग स्वयं इसके विरुद्ध थे, परंतु आज़ादी प्राप्त होने के बाद कोई आफ़त नहीं आई, इसी प्रकार संभव है, स्त्रियाँ भी स्वाधीनता का विरोध करें; क्योंकि उसका मज़ा तो वे जानती ही नहीं। जब हमारे पढ़े-लिखे पुरुष भी स्त्रियों की स्वाधीनता का यही अर्थ समझते हैं कि स्त्रियाँ अन्य पुरुषों से व्यवहार रक्खेंगी, और पति-देव केवल उनके जूते साफ़ करेंगे, या उनके वास्ते चाय बनावेंगे, तब स्त्रियाँ यदि अपनी स्वाधीनता का वास्तविक अर्थ न समझें, तो क्या आश्चर्य? स्त्री-समाज तो समझाने और अवसर पाने से समझ भी जायगा, परंतु हठ-धर्मी पुरुषों का क्या होगा? मैं समझता हूँ, उनकी भी बुद्धि तब ठिकाने आ जायगी, जब वे देखेंगे कि स्त्रियाँ अपनी स्वाधीनता को पुरुषों की अपेक्षा अच्छी तरह काम में ला सकती हैं।

मोहनलाल नेहरू

× × ×

२. श्रीमती माणिक्यकुमारी देवी

इस भूमंडल में कदाचित् ही कोई ऐसा देश होगा, जिसे भारतवर्ष-जैसी आदर्श स्त्रियाँ—स्वधर्म-रक्षण-हेतु जीवन तक उत्सर्ग करनेवाली देवियाँ—उत्पन्न करने का गौरव प्राप्त हो। सती, सावित्री और सीता के सदृश देवियों को जन्म देने का सौभाग्य भारतवर्ष को ही प्राप्त है। प्राचीन काल में इस विश्व-वंद्य भारतवर्ष में ऐसी-ऐसी देवियाँ जन्म ले चुकी हैं, जिनके पुनीत चरित्रों का अनुसरण आज भी प्रत्येक भारतवासी को गौरवान्वित बनाता है। इस पुण्य-भूमि में आज भी ऐसी सती-साध्वी देवियाँ हैं, जो अपने सद्गुणों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्कार्यों द्वारा पूर्वजों की गौरव-रक्षा में सदा तत्पर रहती है। इन पंक्तियों में एक ऐसी ही आदर्श राजकुमारी श्रीमाणिक्यकुमारी का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

राजकुमारी श्रीमती माणिक्यकुमारी का जन्म रायगढ़ (मध्य-प्रदेश) में, संवत् १८९९ वि० में, हुआ था। आपके पिता का नाम राजा घनश्यामसिंह था। घनश्यामसिंह महाराज फ़्यूडेटरी चीफ़ थे, और उनके दो रानियाँ थीं। उनमें से बड़ी रानी श्रीमती लक्ष्मणकुमारी के गर्भ से आपने जन्म ग्रहण किया था। छोटी रानी श्रीमती धीरकुमारी के उदर से चार कुमार और एक कन्या उत्पन्न हुई। बड़ी रानी के गर्भ से उत्पन्न होने तथा ज्येष्ठ होने के कारण रायगढ़-राज्याधिकारिणी आप ही होतीं ; किंतु आपने अपनी इच्छा से अपने स्वत्व का उपयोग नहीं किया, और ज्येष्ठ कुमार राजा भूपदेवसिंहजी राज्य-सिंहासन पर आसीन हुए।

स्वर्गीय राजा घनश्यामसिंहजी ने अपनी पुत्री माणिक्यकुमारी का शुभ पाणि-ग्रहण फिंगेश्वर ज़मींदार के पुत्र के साथ करना निश्चित किया। फिंगेश्वर ज़मींदार ने भी यह शुभ संबंध सहर्ष स्वीकार किया। फल-दान कर चुकने के पश्चात् शादी की लग्न रक्खी गई ; परंतु फिंगेश्वर-ज़मींदार ने रायगढ़-नरेश को धोखा देकर अपने पुत्र की शादी अन्यत्र कर ली। तत्पश्चात् रायगढ़ में द्वितीय ब्याह करना चाहा। रायगढ़-नरेश बड़े आत्माभिमानी थे। यह अनुचित व्यवहार उनके नेत्रों में काँटे के समान खटकने लगा। आपने बड़ी निर्भीकता-पूर्वक उत्तर दिया—"क्या मेरी कन्या आपके यहाँ छोटी रानी कहलाने योग्य है? फ़्यूडेटरी चीफ़ की एक-मात्र कुमारी क्या आपके यहाँ छोटी होकर रहेगी? कदापि नहीं! मैं आपके यहाँ उसका ब्याह कदापि न करूँगा, चाहे वह आजन्म कुमारी ही क्यों न रहे। यदि ईश्वर की कृपा से उसका ब्याह होगा, तो वह किसी फ़्यूडेटरी चीफ़ के यहाँ रानी होकर जायगी, अन्यथा आजन्म अविवाहिता रहेगी।" तदनंतर राजकुमारी ने भी अपने पिता के अनुकूल यह वीरोचित प्रतिज्ञा की कि "मैं पिताजी की आज्ञा के विरुद्ध कदापि ब्याह न करूँगी, चाहे मुझे कोई लाख समझावे!"

माणिक्यकुमारी ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पिता के प्रण को पूर्ण रूप से निभाया। जिस आश्रम में रह-कर निर्वाह करना दुष्कर ही नहीं, नितांत दुस्साध्य है, आपने उसी ब्रह्मचर्याश्रम का आजन्म पालन किया।

आपका स्वभाव बड़ा ही कोमल और दयामय था। आपके द्वार से कोई भी साधु तथा भिखमंगा रिक्त-हस्त न लौटने पाता था। साधु तथा ब्राह्मणों पर आपकी असीम भक्ति थी। आप तीर्थाटन भी खूब करती थीं। खेद के साथ लिखना पड़ता है कि विगत ता० ६ फ़रवरी, सन् १९२३ ई० को, रात्रि के ११ बजे, ८५ वर्ष की अवस्था में आपका देहांत हो गया।

आप बड़ी सादी चाल से रहती थीं। ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करके स्त्री-संसार के समक्ष आपने जो आदर्श रक्खा है, वह सर्वथा आदरणीय है। आत्म-प्रशंसा से आप इतनी दूर रहती थीं कि आपने आजन्म अपना कोई फ़ोटो नहीं उतरवाया। खेद है, इसीलिये आपका चित्र नहीं प्राप्त हो सका।

श्रीराम अग्रवाल

× × ×

३. पुलिस-विभाग में स्त्रियाँ

देखते-देखते समस्त पाश्चात्य-जगत् में स्त्रियाँ भी उन कार्यों का भार अपने ऊपर वहन करने लगी हैं, जिनके संबंध में सदा स्त्रियों की योग्यता पर संदेह किया जाता था। पार्लियामेंट की सदस्या बनने और उसके विवाद-ग्रस्त प्रश्नों में भाग लेने की बात तो अब एक प्रकार से पुरानी हो चली है। इधर मालूम हुआ है कि पुलिस-विभाग में भी स्त्रियों का प्रवेश क्रमशः बढ़ रहा है। कई मास हुए अमेरिका के पुलिस-विभाग की प्रधान मिसेज़ मिना वान विंकल योरप में स्त्री-पुलिस-विभाग का निरीक्षण करने के लिये पधारी थीं। वहाँ पर आपने अमेरिका के स्त्री-पुलिस-विभाग की बहुत-सी बातें बतलाई थीं। उन्होंने बतलाया कि ५ वर्ष हुए, वाशिंगटन के पुलिस-विभाग के अध्यक्ष ने लंदन में स्त्रियों को पुलिस-विभाग का कार्य करते हुए देखकर अपने नगर में भी स्त्रियों को पुलिस-विभाग का कार्य करने के लिये नियुक्त किया था। इस कार्य में स्त्रियाँ इतनी अधिक उपयोगी सिद्ध हुईं कि उनके कार्य का पुलिस-विभाग और जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा, और फलतः अब अमेरिका की लगभग ३०० म्युनिसिपलिटियों में स्त्रियाँ ही पुलिस-विभाग का विशेष रूप से कार्य करती हैं।

आपने बतलाया कि अपराधों को रोकने और अपरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धियों द्वारा जनता की रक्षा कराने के कार्य में स्त्री-पुलिस-विभाग ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। पुरुषों की भाँति ही उन्हें गिरफ़्तारी आदि के अधिकार प्राप्त हैं। उन्हें पुरुषों की भाँति पुलिस की वर्दी नहीं पहनना पड़ती। वर्दी पहनने की अपेक्षा विना वर्दी पहने वे अधिक कार्य कर सकती हैं, इसीलिये अमेरिका में स्त्री-पुलिस-विभाग की कार्य-कर्त्री कोई स्त्री वर्दी नहीं पहनती। हाँ, कुछ काम ऐसे अवश्य हैं, जिनमें वर्दी पहनना कुछ महत्त्व रखता है; परंतु बहुत-से काम ऐसे हैं, जिन्हें वर्दी पहने हुए करना लोग पसंद नहीं करेंगे। अंत में आपने बतलाया कि अपराधों की रोक उस समय तक अधिक नहीं हो सकती, जब तक स्त्री-पुलिस अपने सादे वस्त्रों में न हो। मालूम होता है, वह समय भी अत्यंत निकट है, जब संसार के समस्त आवश्यक कार्य करना स्त्रियों के लिये संभव ही नहीं, उचित प्रमाणित होगा।

× × ×

४. एक योरपीय महिला का चिकित्सा-विज्ञान-विषयक आविष्कार

विलायत की महिला-डॉक्टर मिसेज़ हैरियट चिक ने पिछले वर्ष चिकित्सा-विज्ञान में एक नवीन आविष्कार किया है। आपने बतलाया है कि सूर्य की किरणें प्राणियों का खाद्य हैं। ये किरणें उतनी ही शक्ति-वर्द्धक हैं, जितना कि घी-दूध या रोटी-दाल। अपने इस कथन को सिद्ध करने के लिये आपने कई प्रत्यक्ष प्रमाण दिए हैं। आपने बतलाया कि जाड़े के दिनों में, उत्तरी ध्रुव के ग्रीन लैंड-प्रदेश में, सूर्य न निकलने के कारण अधिक चर्बी खाना लोगों के लिये अनिवार्यतः आवश्यक हो गया है। आस्ट्रिया की राजधानी बायना-नगर में मिसेज़ हैरियट चिक बालकों की चिकित्सा करती थीं। वहाँ आपको अनुभव हुआ कि सर्दी के दिनों में, धूप न मिलने पर, यदि बालकों को चर्बी तथा कॉड लिवर ऑयल न खिलाया जाय, तो वे अक्सर बीमार रहते हैं; परंतु पर्याप्त धूप और गरमी मिलने पर वे चंगे हो जाते हैं। योरप में धूप कम निकलती है, अतएव वहाँ ऐसे बड़े लैंपों का प्रयोग होता है, जिनकी किरणें बीमार बच्चों पर पड़ने से वे अच्छे हो जाते हैं।

मिसेज़ हैरियट चिक के इस आविष्कार का योरप के महिला-समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। इसी आविष्कार से प्रभावित होकर वहाँ की बहुतेरी महिलाओं ने जाड़े के दिनों में बच्चों की ख़ुराक में मक्खन की वृद्धि करने तथा गरमी में उनको ख़ूब धूप खिलाने का निश्चय किया है। मिसेज़ हैरियट चिक आजकल बालकों की अन्य तमाम बीमारियों के इलाज पर गंभीर अध्ययन कर रही हैं। और भी कई डॉक्टर-महिलाओं ने आपका साथ दिया है। हाल ही में चिक महाशया ने बतलाया है कि स्त्रियों और बच्चों की अधिकांश बीमारियाँ अंधकार में रहने के कारण होती हैं। आपके साथ की अन्य महिलाओं में से कुछ महिलाएँ क्षय-रोग, इंफ़्लुएंज़ा तथा ज़हरबात आदि रोगों के नाश का उपाय सोच रही हैं। आजकल समस्त योरप के स्त्री-संसार में डॉक्टर महाशया के इस आविष्कार तथा उनके विचारों की चर्चा ज़ोरों पर छिड़ी हुई है।

× × ×

५. जीवन पर शिक्षा का सुप्रभाव

मनुष्य के सांसारिक जीवन पर शिक्षा का व्यापक प्रभाव पड़े विना नहीं रहता। बहुधा देखा गया है कि अशिक्षित माता-पिताओं के जितनी संतानें होती हैं, शिक्षित माता-पिताओं के उतनी नहीं होतीं। हाल ही में अमेरिका के मिंट होलयोक में यह प्रश्न उठा था कि क्या कॉलेज में पढ़ी शिक्षिता महिलाओं की अपेक्षा अनपढ़ महिलाएँ अधिक संतानोत्पादन करती हैं? जाँच हुई। जाँच का फल निम्न-लिखित है—

कॉलेज की शिक्षा से रहित माता-पिताओं की संतानोत्पत्ति का औसत प्रति-शत ४·६

केवल पिता कॉलेज की शिक्षा-प्राप्त है, ऐसे कुटुंबों में संतानोत्पत्ति का औसत प्रति-शत ३·७

पिता-माता दोनों कॉलेज की शिक्षा-प्राप्त हैं, ऐसे कुटुंबों में संतानोत्पत्ति का औसत ३·६

केवल माता कॉलेज की शिक्षा-प्राप्त है, ऐसे कुटुंबों में संतानोत्पत्ति का औसत ३·१

उक्त तालिका से यह बिलकुल स्पष्ट है कि पढ़े-लिखे, पर्याप्त शिक्षा-प्राप्त, दंपति अनपढ़ों की अपेक्षा संतानोत्पत्ति कम कर सकते हैं। परंतु शिक्षा का यह परिणाम समाज के लिये अहितकर नहीं कहा जा सकता। कारण, उत्तम हृष्ट-पुष्ट और शिक्षित संतति समाज के लिये लाभदायक है, और अनपढ़, प्रतिभा-हीन और दुर्बल संतति अधिक होते हुए भी समाज के लिये हानिकर।

कृष्णकुमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

१. वैद्यक और शारीरिक

स्त्री चिकित्सा—लेखक, डॉक्टर ए० मुकर्जी एल्० एम्० एस्०, एम्० डी० । आकार छोटा । छपाई और काग़ज़ साधारण । पृष्ठ-संख्या १२५ । मूल्य १।।) । प्राप्ति-स्थान लिखा नहीं । यह दिल्ली के एलेक्ट्रिक-प्रिंटिंग-वर्क्स में छपी है ।

इसमें मुकर्जी महाशय ने गर्भाशय-संबंधी रोगों का वर्णन और उनकी चिकित्सा लिखी है । गर्भिणी-दशा के रोगों और चिकित्सा का भी ज़िक्र है । लिखने का ढंग सर्व-साधारणोपयोगी एवं सुगम है । उपयोगी दवाओं तथा व्यापक रोगों का चुनाव योग्यता-पूर्वक किया गया है । पुस्तक पढ़ने और संग्रह करने योग्य है । इसमें गर्भाशय-संबंधी कई लीथो के चित्र भी हैं । परंतु वे सब अस्पष्ट हैं । भाषा परिमार्जनीय है । मुकर्जी महाशय ने इसे "अँगरेज़ी होम्योप्याथिक (?) बड़े-बड़े ग्रंथों (?) का सार" बताया है, और अपनी "सहधर्मिणी (?) श्रीमती सरोजनी(?)देवी के नाम इसका उपसर्ग" (?) किया है ; क्योंकि वे "विपत्ति (?) और संपत्ति (?)" में आपका साथ देनेवाली हैं । यह 'उपसर्ग' (अथवा उत्सर्ग) और 'सूचना' पुस्तक के आदि में ही हैं ।

होम्योपैथी चिकित्सा में दवाओं का पौर्वापर्य निश्चित है । यह नहीं है कि चाहे जिस दवा के पीछे चाहे जो दवा दे दी जाय । बहुत-सी दवाएँ आगे-पीछे पड़ जाने से बड़ी हानि पहुँचाती हैं । मुकर्जी महाशय से हमारा अनुरोध है कि इस पुस्तक के अगले संस्करण में दवाओं की सूची के साथ अनुकूल और प्रतिकूल दवाओं की सूची जोड़ने की भी कृपा करें ।

× × ×

चिकित्सा-सिंधु—यह छोटे आकार के १७३ पृष्ठों की पुस्तिका है । १० पृष्ठ का परिशिष्ट है । छपाई, सफ़ाई, काग़ज़ साधारण । मूल्य १।।)

इसमें "एलोपैथिक, होम्योपैथिक, वैद्यक और यूनानी रीति के निदान, लक्षण और चिकित्सा का संग्रह" मथुरा से पं० "क्षेत्रपाल शर्मा × × × × ने बनाकर प्रकाशित किया है" । उन्हीं से यह मिलती है ।

इसमें छोटे-बड़े अनेक रोगों के नाम और नाम-मात्र परिचय देकर उनके लिये पूर्वोक्त चारों प्रकार की चिकित्साओं के अनुसार कुछ-कुछ नुसख़े लिखे हैं । वैद्यक के नुसख़े अधिकांश काष्ठौषधों के हैं ।

वैद्यों पर शर्माजी की विशेष कृपा मालूम होती है । आरंभ में ही आप लिखते हैं—"आजकल के वैद्य लोग × × × रोगी को नीरोग नहीं कर सकते । × × × खेद है कि वैद्यों ने अपनी अयोग्यता से नाम को बट्टा लगा लिया" इत्यादि । सो अब 'सुधा-सिंधु' के विक्रेता के बनाए इस 'चिकित्सा-सिंधु' में ग़ोता लगाकर "आजकल के अयोग्य वैद्यों" को योग्य बन जाना चाहिए ।

निदान की अधिकता के लिये होम्योपैथी चिकित्सा प्रसिद्ध है । किसी-किसी रोग में पाँच-पाँच सौ पृष्ठ पढ़ने पड़ते हैं । लोग दस-दस, बीस-बीस वर्ष किसी एक ही चिकित्सा के जानने में खपा देते हैं, तब कहीं थोड़ी बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्यता प्राप्त होती है । परंतु शर्माजी इस पौने दो सौ टुच्चे पृष्ठों की किताबिया से ही एलोपैथिक, होम्योपैथिक, वैद्यक और यूनानी के 'निदान' लक्षण और चिकित्सा के 'सिंधु' में लोगों को डुबाते हैं । इस पर भी आप 'डॉक्टर-वैद्यों' को 'अयोग्यता' का सार्टिफ़िकेट देते हैं । इसे दुस्साहस के सिवा और क्या कहा जा सकता है ?

इस पुस्तक के देखने से ग्रंथकर्ता में किसी चिकित्सा की योग्यता का तो पता नहीं चलता, पर यह अवश्य मालूम होता है कि लेखक ने अपनी योग्यता के अनुसार कई पुस्तकों से नुसख़े इकट्ठे करने में परिश्रम किया है ।

छठे पृष्ठ में आपने ३० ग्रेन कुनैन की मात्रा एक-एक घंटे बाद तीन बार देने की व्यवस्था की है । यदि इतने पर भी बेशर्मा रोगी न मरे, तो शर्माजी का क्या दोष ? पृष्ठ २२ में आप फ़र्माते हैं—"यद्यपि आर्य-चिकित्सकों ने अजीर्ण और अतिसार को पृथक्-पृथक् लिखा है, परंतु वास्तव में इनके लक्षण में कोई विशेष भेद नहीं है ।" समझे आप ? शर्माजी फ़र्माते हैं कि क़ब्ज़ (अजीर्ण) और दस्तों (अतिसार) में कोई भेद नहीं है !

एक और मज़ेदार उदाहरण देखिए । पृष्ठ १२६—"हिष्टिरिया—यह रोग आँतों के गोलयोग से प्रायः देखी गई (?) है ।" यह 'गोलयोग' बँगला-भाषा की चोरी का प्रत्यक्ष प्रमाण है । हिंदी के 'गड़बड़' और 'गोलमाल'-शब्दों के स्थान में वंग-भाषा में 'गोलयोग'-शब्द का प्रयोग होता है । परंतु शर्माजी ने उसे ज्यों-का-त्यों रख दिया है, और आगे उसका भाष्य भी कर दिया है । ज़रा उसे भी सुन लीजिए—"गले के भीतर मानों कोई गोल चीज़ अटकी-सी मालूम देती है ।" सुना आपने ? अब बंगाली लोग चाहे अपनी भाषा की दुहाई दिया करें, चाहे वंग-भाषा जाननेवाले सिर पटका करें, परंतु शर्माजी ने 'गोल' का 'योग' करके बेचारी स्त्रियों के गले में 'गोल चीज़' अटका ही तो दी । परंतु 'आँतों' के 'गोलयोग' को आपने गले में किस फ़िलासफ़ी के ज़ोर से लटकाया, यह हमारी समझ में नहीं आया । 'रोग देखी गई है', यह भी हिंदी में कोई नहीं लिखता ।

इसी के आगे आप फ़र्माते हैं—"स्नायु धातुवाली स्त्रियों को यह पीड़ा जवानी में अक्सर देखी गई है ।" क्या 'स्नायु' भी कोई धातु होती है ? क्या संसार में कोई स्त्री या पुरुष ऐसा भी है, जिसके 'स्नायु' न हों ? यदि नहीं, तो फिर 'स्नायु धातुवाली स्त्रियों' से क्या मतलब ? "आजकल के अयोग्य वैद्यों" के देखे-सुने चरक, सुश्रुत आदि ग्रंथों में तो कहीं इनका पता है नहीं । अतः कुछ अयोग्य वैद्यों का एक डेपुटेशन शर्माजी के पास जाकर ऐसी स्त्रियों का ज्ञान प्राप्त कर ले, तो अच्छा हो । संभव है, आपने ऐसी स्त्रियों का कुछ संग्रह कर रक्खा हो ।

शालग्राम

× × ×

२. नाटक

मधुर मिलन—(सामाजिक नाटक) लेखक, हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी । एकादश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर कलकत्ते में खेला गया । इसमें ९८ पृष्ठ हैं, और मूल्य ।।=)

इसका प्रकाशन हिंदी-पुस्तक-भवन (नं० १८१, हरिसन-रोड, कलकत्ता) ने किया है । रचना की दृष्टि से नाटक उत्तम है, और अभिनय के समय दर्शकों का मनोरंजन भी कर सकता है । इसमें हिंदी-भाषा-भाषियों के आदर्श की रक्षा हुई है, और कुछ हिंदी-नाट्यकारों की भाँति बँगला के जूठे टुकड़ों की ओर हाथ नहीं बढ़ाया गया है । यह बड़ी अच्छी बात है ।

× × ×

नंद-पतन—इस ऐतिहासिक नाटक की रचना श्रीव्रजविहारी-शरण एम्० ए०, बी० एल्० (पटना) ने की है । आप ही के पास से यह १) में मिल सकता है । इसमें १६० पृष्ठ हैं ।

नाटक मनोरंजक और स्टेज पर खेले जाने लायक़ है । वकील साहब ने कई ग्रंथों के आधार पर इसे लिखा है । आशा है, आप और भी नाटक लिखेंगे । इसका पद्य-भाग लचर है, और भाषा भी मुहाविरे तथा व्याकरण की दृष्टि से त्रुटि-पूर्ण है ; किंतु फिर भी वकील साहब का परिश्रम और उद्देश्य स्तुत्य है ।

× × ×

परशुराम—यह एक पौराणिक नाटक है । लेखक विश्वजी तथा प्रकाशक बाबू शिवरामदास गुप्त (उपन्यास बहार ऑफ़िस, काशी) हैं । मूल्य ।।।) है । भीतरी टाइटिल पेज के पीछे एक सूचना दी हुई है, जो यों है—

"सावधान ! कोई भी कंपनियाँ लेखक की आज्ञा विना इस नाटक को स्टेज पर लाने का साहस न करें । अन्यथा लाभ के बदले हानि उठानी पड़ेगी ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी भी यही राय है। इसमें फ़ारसी अथवा हिंदी के जिन छंदों का प्रयोग किया गया है, उनमें प्रायः किसी नियम का भी पालन नहीं किया गया। न-मालूम क्या सोचकर पद्य-रचना करने का कष्ट उठाया गया है। व्याकरण और मुहाविरों की इस क़दर हत्या की गई है कि पाठक के हृदय में घृणा के साथ क्रोध भी आ सकता है। हर्ष की बात यही है कि लेखक महोदय अपने इस प्रथम प्रयास को स्वयं ही 'तुच्छ कृति' समझते हैं। आशा है, आगे आप सफल नाट्यकार होने की अधिक चेष्टा करेंगे, झटपट पुस्तक लिखकर नाम कमाने की कम।

× × ×

मायामोचन—इसके तीनों अंक अलग-अलग छपे हैं, जो कुल मिलाकर ९६ पृष्ठ के हैं। इसके लेखक अध्यापक ग० प्र० (अनल) तथा प्रकाशक श्रीराम शर्माजी (बलरामपुर, अवध) हैं। मूल्य ।।=) है।

इस ग्रंथ का उद्देश्य किसी का विरोध, हानि या जी दुखाना नहीं, किंतु प्रत्येक पंथ में जो आडंबर का समावेश है, उसकी पोल खोलकर सन्मार्ग दिखाना है। उद्देश्य अच्छा तथा सामयिक है। इसका जो पद्य-भाग है, उसमें कई जगह पिंगलाचार्य की नाक काट ली गई है!

'दर्शक'

× × ×

३. इतिहास और राजनीति

डूँगरपुर-राज्य का इतिहास (पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध) मूल्य दोनों भागों का १) रु०। लेखक का नाम नहीं दिया। पृष्ठ-संख्या ८७+९७। मिलने का पता—पं० रामचंद्र दुबे, सेक्रेटरी अमात्य कार्यालय, अँगरेज़ी दफ़्तर, राज्य डूँगरपुर।

पूर्वार्द्ध में डूँगरपुर का गज़ैटियर है। वह खोज के साथ लिखा गया है। उससे मालूम पड़ता है कि राज्य में हिंदू-जनता और हिंदू-धर्म, दोनों ही गिरी दशा में हैं। शिक्षा का प्रचार प्रायः नहीं के बराबर है। इस भाग में वहाँ के रीति-रिवाजों का भी रोचक वर्णन है, और कुछ प्राचीन इतिहास भी दिया है। उत्तरार्द्ध में मराठों के समय से लेकर अब तक का वर्णन है। उससे मालूम पड़ता है कि स्वर्गीय महारावल प्रजा के हित का बहुत ध्यान रखते थे, और उन्होंने प्रजा के लाभ के लिये बहुत कुछ किया भी था। इस समय वहाँ एक प्रकार की एजेंसी है। अंत में सिंहावलोकन दिया गया है। पुस्तक विशेषकर डूँगरपुर के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है, और उनके लिये अवश्य ही लाभदायक है। राजपूताने के इतिहास-प्रेमियों और पुस्तकालयों के संग्रह करने योग्य है।

× × ×

हालैंड की स्वाधीनता का इतिहास—स्वातंत्र्य-सोपान-सीरीज़ का प्रथम सोपान। लेखक, ठाकुर छेदीलाल एम्० ए० (आक्सन)। पृष्ठ-संख्या ११६+१६। मूल्य ।।।-) प्रकाशक ठाकुर छेदीलाल, अकलतरा, बिलासपुर (सी० पी०)

हालैंड का देश किसी समय स्पेनवालों के अधीन था। उनका शासन बहुत ही कठोर और असह्य था। उनके विरुद्ध हालैंड-निवासियों ने किस प्रकार स्वतंत्रता की लड़ाई लड़कर स्वाधीनता प्राप्त की, उसी का इस पुस्तक में इतिहास है। स्पेनवालों ने जो अत्याचार किए थे, और हालैंडवालों ने जिस प्रकार युद्ध किया था, उसका इसमें बहुत ही स्पष्ट वर्णन है। विलियम का—जिसे हालैंड का उद्धारकर्ता कहना चाहिए—चरित्र प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी को पढ़ना ही नहीं, मनन भी करना चाहिए। पुस्तक बहुत ही रोचक और सरल भाषा में लिखी गई है।

हिंदी-पाठकों के लिये अन्य देशों के जो इतिहास लिखे जायँ, उनमें आरंभिक बातों का बहुत कुछ वर्णन देने की आवश्यकता होती है। मालूम पड़ता है, इस पुस्तक के लेखक ने इस बात को मान लिया है कि हिंदी-पाठक योरपियन-इतिहास की मोटी-मोटी बातें अवश्य ही जानते होंगे। किंतु हमारी सम्मति में यह न होना चाहिए। हिंदी-पाठकों के लिये heresy, Inquisition आदि को भली भाँति समझना अत्यंत आवश्यक है। हम लोग इनको थोड़े में समझ ही नहीं सकते, और इनको भली भाँति समझे विना हमें इनका महत्त्व नहीं मालूम हो सकता। दूसरी त्रुटि जो इस सुंदर और उपयोगी पुस्तक में खटकती है, वह नक़्शे का न होना है। योरप के भूगोल का ज्ञान हम लोगों को बहुत ही कम है, और नक़्शे का सहारा लिए विना बहुत-सी बातों का समझना कठिन है।

पुस्तक के अंत में शब्दों की पारिभाषिक सूची और हेप्सबर्ग-वंश का वंश-वृक्ष भी दे दिया गया है। पुस्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत ही उपयोगी है। राष्ट्रीय विद्यापीठों तथा सम्मेलन की परीक्षा में पाठ्य पुस्तक होने योग्य है।

× × ×

प्राचीन भारत में स्वराज्य—लेखक, पं० धर्मदत्तजी विद्यालंकार। प्रकाशक, गुरुकुलीय साहित्य-परिषद्, गुरुकुल काँगड़ी। मूल्य १।।); पृष्ठ-संख्या २००।

यह मनोरंजक पुस्तक यह सिद्ध करने के लिये लिखी गई है कि प्राचीन भारत में राजा का अधिकार नियंत्रित होता था, और प्रजा-सत्तात्मक राज्य भी जहाँ-तहाँ पाए जाते थे। सबसे पहले यह प्रमाणित करने का उद्योग किया गया है कि कोई व्यक्ति राजघराने में उत्पन्न होने के कारण ही राजा नहीं होता था। प्रजा जिसे राज्य सौंपती और अपना राजा बनाती थी, वही राजा होता था। इसकी पुष्टि करने के लिये वेद-मंत्रों तथा अन्य प्राचीन पुस्तकों के हवाले दिए गए हैं। राजा को मंत्रणा देने के लिये सभाएँ थीं; उन सभाओं का भी वर्णन किया गया है। प्रजा-तंत्र-शासन के उदाहरण में प्रसिद्ध लिच्छवियों के और केरल-देश के शासन तथा महाभारत के समय के दस्युओं के प्रजा-तंत्र का हाल बतलाया गया है। प्राचीन काल में स्थानीय स्वराज्य का होना भी सिद्ध किया गया है। यद्यपि हम इस पुस्तक की सभी बातों से सहमत नहीं हैं, फिर भी इसके लेखक के अध्ययन और परिश्रम की सराहना करते हैं। पुस्तक की लेखन-शैली अत्यंत सुंदर है, और इसमें विचार-शील लोगों को विचार करने के लिये बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। प्रमाणों और उदाहरणों के संग्रह करने में लेखक ने बहुत परिश्रम किया है, और इसमें संदेह नहीं कि अपने अधिकांश मतों को प्रमाणित करने में उन्हें सफलता भी हुई है। हम लेखक और प्रकाशक, दोनों ही को साधुवाद देते हैं। इसमें अँगरेज़ी शब्दों में हिज्जों की अंधाधुंध ग़लतियाँ हैं। आशा है, अगले संस्करण में अधिक सावधानी से प्रूफ़ देखे जायँगे।

× × ×

Mughal Government (मुग़ल गवन्मेंट)—लेखक, अध्यापक वेणीप्रसाद एम्० ए०। प्रकाशक, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी-प्रेस, बंबई। मूल्य लिखा नहीं।

यह छोटी-सी पुस्तिका अध्यापक वेणीप्रसादजी के जहाँगीर के प्रसिद्ध इतिहास के एक अध्याय के कुछ भाग का पुनः संस्करण है। पतीली के दो-तीन चावलों की तरह इस पुस्तिका से असली पुस्तक के महत्त्व का पता लग सकता है। इसमें यह दिखलाया गया है कि जहाँगीर के समय में मुग़ल-सरकार की क्या अवस्था थी। इसके दस पृष्ठों में बहुत-सी काम के लायक़ और जानने योग्य बातें भर दी गई हैं। प्रायः प्रत्येक कथन के लिये फ़ुट-नोटों में प्रचुर प्रमाण भी दिए गए हैं। उस समय रेल, तार आदि साधन न होते हुए भी मुग़ल-बादशाह किस प्रकार सारे साम्राज्य में अपना आतंक जमाए रहते थे, यह इससे स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है। पुस्तिका होने के कारण इसमें दी हुई बातें बहुत ही संक्षिप्त हैं। पुस्तक अँगरेज़ी में और संग्रह करने योग्य है।

× × ×

Mopla Rebellion of 1921.—लेखक, पं० विष्णुशास्त्री बी०ए०, एल्-एल्० बी०। संपादक और प्रकाशक, श्री० बी० एल्० सतीदास, प्रणवीर कार्यालय, क्रैडक टाउन, नागपुर। पृष्ठ-संख्या ५०+५। मूल्य ।।)

श्री० विष्णुशास्त्री ने ये आठ पत्र मलाबार से लिखे थे। इनमें से अधिकांश पत्रों में मलाबार की भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा वहाँ के निवासियों की अवस्था का वर्णन है। विद्रोह का भी थोड़ा-सा वर्णन है। इस पुस्तक से वहाँ के उच्च जाति के हिंदुओं की दुर्दशा का पता लगता है। रेशम के कीड़े की तरह इन लोगों ने अपने को अपने ही बनाए गोले में ऐसा बाँध लिया है कि उसमें घुटकर ये स्वयं नष्ट हो जायँगे। इनकी दशा तो पतितों और अछूतों से भी गई-बीती है। कारण, अछूतों की दशा अपनी बनाई हुई नहीं, दूसरों की बनाई है; किंतु ये तो एक प्रकार से "आत्महत्याकारी" हैं। पुस्तक पढ़ने से मलाबार की बहुत-सी जानने योग्य बातों का पता लगता है।

× × ×

कारावास की रामकहानी या १९२१-२२ की धकापेल—लेखक, वेदतीर्थ श्रीनरदेव शास्त्री। प्रकाशक, चौधरी हुलास वर्मा, भारतीय प्रेस, देहरादून। पृष्ठ-संख्या २००। दो चित्र। मूल्य ।।।)

श्रीनरदेव शास्त्री को देहरादून से असहयोग-आंदोलन के संबंध में १८ महीने की जेल हुई थी। इस पुस्तक में उन्होंने अपने जेल के अनुभवों का वर्णन किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसके उत्तरार्द्ध में जेल-प्रणाली के ऊपर विचार किया गया है। पुस्तक मनोरंजक है, और १६२१-२२ के राजनीतिक वायु-मंडल की दिग्दर्शक। इस पुस्तक के पढ़ने से जेल की बहुत-सी ऐसी बातों का पता लगता है, जिनको जन-साधारण बहुत कम जानते हैं। यदि इसमें लिखी हुई बातें सही हैं, तो जेलों में अवश्य बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। इसमें विचार-शील लेखक के अनुभवों का बड़ा सुंदर वर्णन है, और असहयोगियों के जेल-जीवन के सभी प्रकार के चित्र हैं। आशा है, पुस्तक का आदर होगा। इसके पढने से लोगों को बहुत-सी काम की बातें मालूम होंगी।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

४. धर्म और दर्शन

हिंदू-जाति का परम धर्म – निर्माता, प्रकाशक, श्रीमन्निखिलशास्त्र-निष्णात पंडित स्वामी हरिप्रसाद वैदिक मुनि। निर्णयसागर छापाखाना, मुंबई में मुद्रित। इस ३६ पृष्ठों की छोटी पुस्तक का मूल्य ।-) है।

इसका विषय नाम से ही प्रकट है। आदि के १६ पृष्ठों के उपोद्घात में "ओम् संघं शरणं गच्छामि" लिखकर सबको उपदेश दिया है कि आपस में सबको 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' समझकर जागृति के मार्ग का अवलंबन करना चाहिए। आगे चलकर वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, मनु और महाभारत के भिन्न-भिन्न वचनों को सार्थ लिखकर शुद्धि-संप्रदाय का महत्त्व पुष्ट किया गया है। पुस्तक समाज-सुधारकों के काम की है।

× × ×

श्रीरामगीता—"ठाकुर साहब श्रीगुमानसिंहजी-विरचित "राकाशशिप्रभाप्रकाशिनी" भाषा-टीका-सहित। जिसको महाराज साहब श्रीसूरतसिंहजी के छोटे कुँवर साहब श्री-चतुरसेनजी ने छपाकर प्रकाशित किया।" महामंडल-शास्त्र-प्रकाश-यंत्रालय, काशी में मुद्रित। पृष्ठ ८६। मूल्य लिखा नहीं। छपाई, कागज़ साधारण।

यह अध्यात्मरामायण की रामगीता है। प्रत्येक श्लोक का अन्वय, पदार्थ, विशेषार्थ उत्तम रीति से हिंदी में लिखा गया है। ज्ञान-पिपासुओं को इस गीता-सुधा का अवश्य पान करना चाहिए। पुस्तक उत्तम और संग्रह-योग्य है।

× × ×

श्रीसामवेदसंहिता, अर्थात् श्रीसामामृतसिंधुः—"श्रीमन्निगमागमार्णवसेतुनिर्माता महर्षि १०८ श्रीसायणाचार्य-प्रणीतभाष्यच्छायानुगामी आर्यभाषा पद्यात्मक अनुवाद का द्वितीयाध्याय। जिसको अजमेर राजकीय पाठशाला के प्रधान संस्कृताध्यापक कवि-रत्न त्रिपाठि शिवदत्त काव्यतीर्थ ने बनाया और श्रीसीताराम-चरणारविंद-चंचरीक कायस्थकुलावतंस गवर्नमेंट-कॉलेज के गणित-शास्त्र-प्रोफ़ेसर श्रीविश्वंभरप्रसादजी माथुर एम्० एस्-सी० महोदय की उदार आर्थिक सहायता द्वारा प्रकाशित हुआ (१)" छपाई, कागज़ साधारण। मूल्य लिखा नहीं।

यह श्रीसामामृतसिंधु उक्त कवि-रत्न और काव्यतीर्थजी का रचा हुआ सामवेद का हिंदी-पद्यात्मक अनुवाद है। खंडशः प्रकाशित होता है। दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठे अध्याय का अनुवाद प्राप्त हुआ है। संसार की गति विचित्र है। अब तक हिंदी-पद्यों में ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक और सामाजिक विषयों को ही लेकर कविता-कौमुदी का प्रकाश हुआ था; अब वेद, उपनिषदों की भी बारी आ गई है। कविता-प्रेमियों को विना किसी प्रयास, आराम से, वैदिक साहित्य के आनंद का अनुभव करना चाहिए।

× × ×

अथ गयाकृत्यम्—"सर्वथाऽसमर्थानान्नित्यमात्ररक्षार्थम-तिसूक्ष्मं गयाकृत्यसहितम्। द्वयं चेदम्। विविधविरुदावली-विराजमानमानोन्नतमहाराजाधिराजमिथिलाधीशकुमारबाबूगुणे-श्वरसिंहात्मजश्रीयुतबाबूश्रीललितेश्वरसिंहनिर्मापितम्। दर-भंगायाम्। कन्हैयालालकृष्णदास इत्यभिधस्य, स्वीये "श्रीरमेश्वर"-नाम्नि यंत्रालये, पं० श्रीकाशीनाथशर्मद्वारया मुद्रितम्। मूल्यम् ।≶)"

श्रीगयाकृत्य-सूची और गयाकृत्य-शुद्धि-पत्र के साथ इस ग्रंथ की पृष्ठ-संख्या ११० है। कागज़, टाइप, छपाई साधारण। जिनको गया-श्राद्ध करना या कराना हो, उनको देखना चाहिए कि इस 'गयाकृत्य' में किन-किन कृत्यों का, कहाँ तक, समावेश हुआ है। बिहार-प्रांत के, ख़ासकर मैथिल पंडितों का, यह कृत्य सर्वदेशीय पंडित-समाज के सम्मत है या नहीं, इसका विचार कर्मकांडी महानुभावों को अवश्य करना चाहिए।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदू-धर्म-दर्पण—प्रथम तथा द्वितीय भाग। लेखक तथा प्रकाशक—पं० मूलराज शर्मा नागर, स्यालकोट । मूल्य क्रमशः १) तथा २) । पृष्ठ-संख्या प्रथम भाग ११६, द्वि० भाग २६० ।

सनातन-धर्म के सिद्धांतों का सामंजस्य दिखाकर विरोधि-मत का खंडन करना इन पुस्तकों के लिखने का मुख्य प्रयोजन है । प्रथम भाग के प्रारंभ में धर्म के लक्षण, सदाचार, शौचाचार आदि का वर्णन किया गया है । एक पृथक् अध्याय में कच्ची और पक्की रसोई का भेद प्रचलित होने के कारण आदि का भी विवेचन किया गया है । लेखक महाशय के मत से 'खान-पान की छूत-छात कोई वैर-विरोध के कारण नहीं है । यह एक वैद्यक उसूल के कारण होती है ।' इसी अध्याय में लेखक महाशय ने विलायत से लौटनेवालों के लिये व्यवस्था दी है कि शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त करने पर उनके अंगीकार कर लेने में कोई दोष नहीं । आगे चलकर केवल गुण के द्वारा जाति माननेवालों के मत का युक्ति-पूर्वक खंडन किया गया है । मूर्ति-पूजा का महत्त्व भी श्रुति और स्मृति के प्रमाणों से पुष्ट किया गया है । साथ-साथ युक्ति से भी खूब काम लिया गया है । मूर्ति-पूजा-विषयक अध्याय वास्तव में बहुत अच्छी तरह लिखा गया है । पितृगण का क्या अर्थ है, वे कितने प्रकार के हैं, पुराणों के आधार पर यह वर्णन तो है ही, साथ-साथ श्रुति तथा निरुक्त से भी प्रमाण दिए गए हैं । राशिचक्र क्या है, नवग्रह क्या हैं, उनका प्रभाव मनुष्य पर किस प्रकार पड़ता है, इत्यादि का भी समीचीन विवेचन किया गया है । मलमास, कुंभ, वारुणी पर्व आदि को भी युक्ति-संगत सिद्ध करने का प्रयास किया गया है । त्योहारों का भी उल्लेख है । उनकी उत्पत्ति तथा उपयोगिता बताकर उनका महत्त्व सिद्ध किया गया है । प्रथम भाग के अंत में 'हिंदु-धर्म का सत्य और सार'-शीर्षक देकर उपदेश-षोड़शी दी गई है ।

द्वितीय भाग गणेश-शब्द की व्याख्या से शुरू होता है । फिर ओम् की व्याख्या है । भारतवर्ष को जो लोग एक देश न मानकर महाद्वीप मानते हैं, उन पाश्चात्य पंडितों के मत का सप्रमाण खंडन तथा भारत का एक-देशत्व-प्रतिपादन बड़ी मनोहर रीति से किया गया है । भारत की विभिन्न भाषाओं का उल्लेख करते हुए लेखक महाशय ने सिद्ध करके दिखाया है कि 'यद्यपि भारत में अनेक बोलियाँ बोली जाती हैं, तथापि हिंदी-भाषा ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और सर्व-व्यापक है, और यही सब प्रांतों में अधिक प्रचलित करने के योग्य है' । हिंदू-शब्द की व्याख्या करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि 'हिंदू-शब्द वस्तुतः इंद्र-शब्द से बिगड़कर बना हुआ है, और हिंदू-शब्द फ़ारसी-भाषा का हिंदू अर्थात् चोर नहीं है' । लेखक महाशय लिखते हैं—'जैसे फ़ारसी-भाषा में हिंदू चोर को कहते हैं, उसी प्रकार संस्कृत-भाषा में मूसा (मूषः) चूहे को कहते हैं । और मूसा ईसाई और मुसलमानों के एक बड़े प्रसिद्ध महात्मा का नाम है । परंतु शब्दार्थों के कारण न हिंदू चोर हैं, और न मूसा चूहा हो सकता है' । इसके अनंतर विशेष महत्त्व का वह अध्याय है, जिसमें लेखक ने हिंदू-धर्म की व्याख्या की है । धृति, क्षमा आदि दस प्रकार के साधारण धर्मों का उल्लेख करके लेखक ने याज्ञवल्क्य-स्मृति का प्रमाण देकर अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि को धर्म का साधन सिद्ध किया है । तत्पश्चात् बड़े गौरव के साथ घोषणा की गई है कि 'हिंदू-धर्म सबका स्रोत है, और बाक़ी सब इसकी शाखाएँ हैं' । केवल इतने से ही संतोष न करके लेखक ने अपने मत को फिर से स्पष्ट शब्दों में दुहराया है कि 'सनातन हिंदू-धर्म संसार के सकल धर्मों का मूल स्रोत है' । इस कथन को पुष्ट करने के लिये रूपक का आश्रय लेकर हिंदू-धर्म को एक बड़ी अगाध और विस्तृत नदी बताया गया है, और अन्य धर्मों को इसी नदी से निकाली हुई नहर कहा गया है । स्त्री-शूद्रों को वेद-पाठ का अधिकार न देने के लिये सनातन-धर्म पर जो आक्षेप किया जाता है, उसका भी खंडन किया गया है । पौराणिक अनेक कथाओं का नवीन ढंग से सामंजस्य दिखाने की शैली भी विलक्षण प्रतीत होती है ।

सार यह कि सनातन-धर्म की छोटी-सी-छोटी बात को युक्ति-संगत दिखाने का प्रयास किया गया है, और इसमें संदेह नहीं कि अनेक स्थलों में लेखक ने अपनी तीव्र गवेषणा का अच्छा परिचय दिया है । पर यह भी अवश्य है कि कहीं-कहीं केवल सनातन-धर्म के पक्षपात के कारण अन्य धर्मों पर अनुचित आक्षेप आ गया है । आभूषण पहनने की आवश्यकता और उपयोगिता दिखाते हुए लेखक महाशय लिखते हैं कि 'कई लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूषण धारण करने के अति विरोधी हैं, और कहते हैं कि ज़ेवरों के लालच से हर साल कई बच्चे मारे जाते हैं। परंतु इसमें तो ज़ेवर का कोई दोष नहीं, यह दोष हमारा है कि हमारी सोसाइटी में इस क़दर ज़ालिम और निर्दय आदमी पैदा हो गए हैं। एक दिन वह था कि हमारे देश के लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे।' यह ठीक है कि जिन दिनों घरों में ताले नहीं लगाए जाते थे, उस समय भूषण पहनाने में कोई भय न था; पर वर्तमान समय में जब तक सोसाइटी के ये ज़ालिम और निर्दय आदमी विद्यमान हैं, तब तक भूषण पहनाकर बालकों के जीवन को संशयित करना कहाँ की युक्ति है? पुस्तक बड़े महत्त्व की है, और प्रत्येक सनातन-धर्मी तो इससे कुछ लाभ उठा ही सकता है, अन्य मतावलंबी भी इसे पढ़कर सनातन-धर्म के महत्त्व को समझ सकेंगे। यह सब ठीक है, पर पुस्तक की भाषा भी यदि शुद्ध हिंदी रहती, तो हिंदी-संसार में इसका विशेष समादर होता। लेखक महोदय ने अनेक वर्ष पूर्व उर्दू में यह पुस्तक लिखी थी। उसके बाद हिंदी-उर्दू न जाननेवाले हिंदी-प्रेमियों के लिये उसी उर्दू की पुस्तक के आधार पर यत्र-तत्र परिवर्तन तथा परिवर्द्धन करके यह पुस्तक हिंदी-भाषा में लिखी गई है। भाषा इसी कारण शुद्ध नहीं है। जिस तरह उर्दूवाले स्कूल को सकूल कहते हैं, उसी तरह संस्कृत-शब्दों को उर्दू-लिबास में रखना बड़ा भद्दा मालूम होता है। पर्याय के बदले प्रयाय, क्यों के स्थान में क्यूँ, पर्याप्त के स्थान में प्रयाप्त इत्यादि अनेक प्रयोग पुस्तक-भर में भरे पड़े हैं। छापे की अशुद्धियों की भरमार है। विशेष करके संस्कृत के श्लोक जो उद्धृत किए गए हैं, उनमें छापे की अशुद्धियाँ इतनी अधिक हैं कि श्लोक ही कुछ-का-कुछ हो जाता है। यदि लेखक महाशय द्वितीय संस्करण में भाषा शुद्ध करके छपाई की शुद्धता पर ध्यान देंगे, तो पुस्तक का महत्त्व और अधिक बढ़ जायगा। इन दोषों के होते हुए भी विषय की गंभीरता के कारण पुस्तक सर्वथा संग्रहणीय है। मूल्य इसका यदि कुछ कम होता, तो अच्छा था।

× × ×

श्रीसमाधि-शतक टीका—श्रीस्वामीकृत संस्कृत समाधि-शतक-ग्रंथ का भाषानुवाद। अनुवादक, जैनधर्म-भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी। प्रकाशक, पं० फतहचंद देहली-वासी। न्योछावर १)

श्रीस्वामी नाम के एक प्रसिद्ध जैनाचार्य वैक्रम तृतीय शतक के अंतिम भाग में हुए थे। इन्होंने संस्कृत में समाधि-शतक-नामक एक आध्यात्मिक ग्रंथ लिखा था। मूल-ग्रंथ में आत्मा का विवेचन विलक्षण रीति से किया गया है। आत्मा और देह में अंतर बताया गया और आत्म-ज्ञान की उपयोगिता का वर्णन किया गया है। इसी संस्कृत-ग्रंथ की व्याख्या हिंदी-भाषा में ब्रह्मचारी शीतल-प्रसादजी ने की है। इसमें संदेह नहीं कि व्याख्या विशद तथा मनोरम है, और मूल-ग्रंथ के दुरूह आशय को हृदयंगत करने में कोई कसर नहीं रक्खी गई है। विषय को स्पष्ट करने के लिये अन्यान्य जैन-ग्रंथों से भी उपयोगी वाक्यों का संग्रह किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि जैन-मतावलंबियों के लिये पुस्तक बड़े काम की है।

× × ×

बालगंगाधर तिलक-स्मारक दैशिक-शास्त्र—लेखक, श्रीयुत बद्रीसाह टुलघरिया। प्रकाशक और मुद्रक, शंकरनरहर जोशी, चित्रशाला-प्रेस, पूना। कपड़े की जिल्द। मूल्य ३)। पृष्ठ-संख्या १६०।

यह पुस्तक—जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है—स्वनामधन्य, भारत-मार्तंड, पं० बालगंगाधर तिलक के स्मारक रूप में लिखी गई है। इसका विषय है दैशिक-शास्त्र। इस शब्द का अर्थ लेखक ने भूमिका में इस प्रकार दिया है—"दैशिक-शास्त्र का अर्थ होता है देश की रक्षा करनेवाला शास्त्र; भगवान् पाणिनि के 'रक्षति'-सूत्र के अनुसार देश-शब्द में 'ठक्' प्रत्यय लगाने से दैशिक शब्द बनता है।" पुस्तक में पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय आह्निकों में विभक्त है। प्रथम आह्निक के अंत में आह्निक में कही गई बातों का सार 'विचारास्पद बात'-शीर्षक देकर दे दिया गया है। यह पद्धति यदि संपूर्ण पुस्तक में रहती, तो पुस्तक की उपयोगिता और अधिक होती; पर ज्ञात होता है, कलेवर-वृद्धि के भय से लेखक ने उसे आगे नहीं निबाहा। आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से ग्रंथ में देश की दशा का समीचीन विवेचन किया गया है। स्थान-स्थान पर पाश्चात्य राजनीतिक पंडितों के मतों का भी उल्लेख किया गया है। देश और जाति-शब्दों की व्याख्या, द्वितीय अध्याय में, बहुत अच्छी तरह की गई है। इस ग्रंथ के अनुसार देश-शब्द मातृ-भूमि का पर्याय-वाचक है। लेखक ने देश-शब्द का लक्षण इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार दिया है—"दैशिक-शास्त्र के अनुसार देश-शब्द का अर्थ होता है पृथ्वी का ऐसा भाग, जिसमें कोई जाति संतान रूप से बसी हुई हो, अर्थात् ऐसे संबंध से कि जो उस भूमि के अतिरिक्त और किसी भूमि से न हो सके। कोई भूमि तब तक देश नहीं कही जा सकती, जब तक उसमें किसी जाति का मातृक-ममत्व अर्थात् ऐसा ममत्व कि जैसा पुत्र का माता के प्रति होता है, न हो।"

आगे चलकर दैशिक-धर्म की व्याख्या है। स्वतंत्रता क्या वस्तु है, शासनिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता तथा स्वाभाविक स्वतंत्रता आदि का क्या अर्थ है, इन सब बातों के विचार के लिये एक पृथक् अध्याय स्वातंत्र्याध्याय के नाम से लिखा गया है। राज्य-विभाग, वर्णाश्रम-विभाग आदि विराडध्याय के अंतर्गत विवेचित हुए हैं। विषय गंभीर तथा गवेषणा-पूर्ण है। विषय की क्लिष्टता के कारण भाषा भी अत्यंत क्लिष्ट हो गई है। किसी-किसी स्थल में तो भाषा इतनी दुरूह है कि लेखक का भाव यथार्थ रीति से समझना दुष्कर हो जाता है। इस ग्रंथ के अधिकारी साधारण शिक्षित भारत-वासी हैं। अतः यदि भाषा को सरल बनाने का प्रयास किया गया होता, तो पुस्तक की उपादेयता और अधिक बढ़ जाती। संस्कृत के प्रत्यय-युक्त कठिन शब्द, जो इस शास्त्र में, विशेष अर्थ में, व्यवहृत किए गए हैं, पुस्तक की क्लिष्टता के प्रधान कारण हैं। उन पदों के लक्षण आदि देकर यद्यपि उन्हें समझाने का प्रयास किया गया है, तथापि उनकी क्लिष्टता बनी ही रहती है।

'हमने पाश्चात्यों से शिक्षा लेनी है' इत्यादि मराठी-हिंदी के प्रयोग खटकनेवाले हैं।

तथापि पुस्तक महत्त्व-पूर्ण और संग्रहणीय है। लेखक ने इसे लिखकर हिंदी-संसार में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति की है। छपाई और सफ़ाई सराहनीय है। पुस्तक के आदि में दो चित्र भी हैं—प्रथम, सादा चित्र श्री १०८ सोमबारी बाबाजी महाराज का है, और उन्हीं के 'पतितपावन पद-पंकजों में यह पुस्तक-पुष्प समर्पित' किया गया है। द्वितीय चित्र, जो रंगीन है, भगवान् तिलक का है, जिनके स्मारक रूप में यह ग्रंथ लिखा गया है।

आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

५. अर्थ-शास्त्र

व्यापार का बीमा—प्रकाशक, श्रीकान्यकुब्ज-स्वदेशी स्टोर, बादशाही नाका, कानपुर। लेखक, श्रीयुत रामरतनजी द्विवेदी। आकार २०×३० सोलह-पेजी। छपाई-सफ़ाई और कागज़ अच्छा। पृष्ठ-संख्या ६१, और मूल्य ।)

इस पुस्तक में, आदि से लेकर अंत तक, दूकानदारी की विधि और दूकानदारों का कर्तव्य वर्णन किया गया है। पुस्तक का नाम व्यापार का बीमा रखने से लेखक का शायद यह अभिप्राय है कि यदि कोई व्यक्ति इस पुस्तक को पढ़कर उसमें बतलाए हुए नियमों के अनुसार दूकानदारी करे, तो उसको अपने व्यापार में असफलता नहीं हो सकती। इसमें दूकानदारी के मूल सिद्धांत, माल की ख़रीद, माल का विज्ञापन, नौकरी के मूल सिद्धांत इत्यादि महत्त्व-पूर्ण विषयों का विवेचन किया गया है। यद्यपि पुस्तक लेखक के अनुभव के आधार पर लिखी गई है, और बहुत उपयोगी है, तथापि हम यह नहीं कह सकते कि उसमें बताई हुई एक-एक बात असंख्य रुपयों की है; जैसा कि लेखक महाशय दावा करते हैं। प्रत्येक दूकानदार को इस पुस्तक की एक प्रति ख़रीदकर उससे लाभ उठाना चाहिए।

× × ×

अर्थ-विज्ञान—प्रकाशक, आदर्श-कार्यालय, मेस्टन रोड, कानपुर। लेखक, श्रीयुत मुक्तिनारायणजी शुक्ल राजवैद्य, जयपुर। आकार २०×३० सोलह-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ४१८, और मूल्य ३) तथा सजिल्द का ३।=)

यह पुस्तक मोरलैंड साहब की An Introduction to Economics for Indian Students के आधार पर लिखी गई है। कहीं-कहीं एक-दो नए परिच्छेद जोड़ दिए गए हैं, तो कहीं-कहीं उनका क्रम भी बदल दिया गया है। भारतीय विद्यार्थी जब अँगरेज़ी में अर्थ-शास्त्र का अध्ययन आरंभ करते हैं, तब उनको मोरलैंड साहब की पुस्तक पढ़ने के लिये कहा जाता है। अँगरेज़ी की पुस्तक बहुत सरल भाषा में लिखी गई है, और अपने ढंग की निराली है। शुक्लजी ने भी हिंदी की पुस्तक को सरल भाषा में लिखकर उसे रोचक बनाने का अच्छा प्रयत्न किया है।

अँगरेज़ी पुस्तक के समान इस पुस्तक का नाम भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ-शास्त्र-प्रवेशिका अथवा अर्थ-विज्ञान-प्रवेशिका रक्खा जाता, तो अच्छा होता। अर्थ-शास्त्र बहुत विस्तृत शास्त्र है, और यह संभव नहीं कि एक छोटी-सी पुस्तक में इसके सब विषयों का समावेश किया जा सके। इसलिये उस शास्त्र के एक भाग को ही 'अर्थ-विज्ञान' का नाम दे देना, हमारी समझ में, उचित नहीं मालूम होता। इस पुस्तक में रुपया-पैसा, बैंकिंग, विदेशी विनिमय, व्यापार इत्यादि महत्त्व-पूर्ण विषयों पर कुछ भी नहीं लिखा गया, और राजस्व का महत्त्व-पूर्ण विषय सात पृष्ठों में ही समाप्त कर दिया गया है।

हिंदी में अर्थ-शास्त्र-संबंधी विषयों पर लेख अथवा पुस्तक लिखते समय अँगरेज़ी पारिभाषिक शब्दों के लिये उपयुक्त पर्यायवाची शब्द ढूँढ़ने या गढ़ने में कितनी कठिनाई होती है, यह उन लोगों से छिपा नहीं है, जिन्हें इसका थोड़ा भी अनुभव है। शुक्लजी को भी इस कठिनाई का सामना करना पड़ा होगा। यही कारण है कि अँगरेज़ी के कुछ पारिभाषिक शब्दों के लिये इस पुस्तक में उपयुक्त पर्यायवाची शब्दों का उपयोग नहीं किया गया है। Consumption के लिये 'क्षय', Land के लिये 'क्षेत्र', Supply के लिये 'संग्रह', Standard of Comfort के लिये 'आराम का माध्यम' तथा Specialisation के लिये 'विशेषत्व'-शब्द हमको ठीक नहीं जँचते। आशा है, दूसरे संस्करण में उपयुक्त पर्यायवाची शब्दों का ही उपयोग किया जायगा।

इस आर्थिक युग में अर्थ-शास्त्र के ज्ञान को जनता में फैलाने की बड़ी आवश्यकता है। परंतु यह काम हिंदी में अर्थ-शास्त्र-संबंधी उत्तम पुस्तकों की कमी के कारण रुका हुआ है। श्रीयुत मुक्तिनारायणजी शुक्ल की पुस्तक इस कमी को कुछ अंशों में दूर करने में बड़ी सहायक होगी। हमारी हार्दिक इच्छा यही है कि इस पुस्तक का हिंदी-संसार में खूब प्रचार हो। यदि पुस्तक का मूल्य कुछ कम रक्खा जाता, तो और अच्छा होता।

× × ×

रेलवे का क़ानून और व्यापारियों के हक़—मुद्रक तथा प्रकाशक, श्रीयुत शंकरजनार्दन खाते, संकल्प-प्रेस, नागपुर। लेखक, श्रीयुत केशवबालाजी पाठक बी० ए०, छिंदवाड़ा सी० पी०। काग़ज, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ६३, और मूल्य ।)

इस पुस्तक में सन् १८९० के रेलवे-ऐक्ट की कई उपयोगी धाराओं का हिंदी-अनुवाद दिया गया है। उसके बाद रेलवे के सामान्य नियम, माल चढ़ाने व डिलेवरी लेने के सामान्य नियम तथा वारफ़ेज़ और डिमरेज के नियम भी दिए गए हैं। रेलवे की जवाबदारी का भी अच्छी तरह से विवेचन किया गया, और रेट तथा चार्ज का वर्णन भी पूरी तरह से किया गया है। परिशिष्ट में श्रीयुत विश्वनाथगणेश जावड़ेकर ने यह बतलाया है कि माल की डिलेवरी कैसी लेना चाहिए, और यह सिफ़ारिश की है कि व्यापारी को रिस्क-नोट से नहीं डरना चाहिए।

लेखक के महाराष्ट्र होने के कारण इस पुस्तक में भाषा-संबंधी कुछ दोष रह गए हैं, और कहीं-कहीं प्रूफ़-संबंधी कुछ ग़लतियाँ भी नज़र आती हैं, तो भी व्यापारियों के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। हम अपने व्यापारी भाइयों से अनुरोध करते हैं कि वे इस पुस्तक की एक प्रति अपने पास अवश्य रक्खें।

दयाशंकर दुबे

× × ×

६. ज्योतिष

सौर-साम्राज्य—ग्रंथकर्ता, ग्वालियर-निवासी पंडित विंध्येश्वरीप्रसाद मिश्र, और प्रकाशक, गृहलक्ष्मी-कार्यालय, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या १३९, छपाई-सफ़ाई और काग़ज़ उत्तम। मूल्य ॥।=)

यह ज्योतिर्विद्या-ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प है। इसमें पृथ्वी, सूर्य, चंद्र तथा ग्रहोपग्रहादि का सोपपत्तिक और सचित्र परिचय है। हिंदी में इस विषय की कई छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। प्राचीन काल में भूगोल-विद्या, खगोल-विद्या आदि विषयों की और आज-कल ज्योतिः-शास्त्र, ज्योतिर्विज्ञान, ज्योतिर्विनोद आदि की। परंतु इन सब निबंधों में प्रायः ग्रह-नक्षत्र-ग्रहण, उदय-अस्त-युति आदि विषयों का स्थूल निरूपण ही किया गया है। पृथ्वी से सूर्य इतने लाखगुना बड़ा है, अमुक ग्रह से अमुक ग्रह की दूरी इतने करोड़ मील है, व्यासार्ध इतना है इत्यादि; बस, इन्हीं सब आख्यानों की भरमार है। किसी ग्रंथ में क्रियात्मक बातें नहीं दिखलाई गईं। यदि हैं भी, तो बहुत ही सूक्ष्म; जिनसे कोई लाभ नहीं उठा सकता। गणित के ग्रंथ बड़े हों या छोटे, विना क्रियात्मक विषयों के उदाहरणों को दिखलाए सब अधूरे रह जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों या अनुवादकों को इस आवश्यक बात का ध्यान रखकर कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होना चाहिए । अँगरेज़ी में अनेक ग्रंथ हैं, और अनेक रीति के हैं । उनसे विषय-संग्रह बहुत अच्छा—उदाहरण और उपपत्ति के साथ—हो सकता है । इस देश के प्राचीन गणितज्ञों के लिये वही लाभदायक है । अस्तु ।

इस सौर-साम्राज्य में ग्रंथकर्ता ने बड़ा श्रम किया है। विषयों का विवेचन प्राचीन रीति की तुलना करते हुए किया है। इसमें जो कुछ लिखा है, वह खूब मनन-पूर्वक । यह ग्रंथ पाश्चात्य रीति की ग्रह-विद्या के प्राथमिक ज्ञान में बड़ा सहायक होगा। इसमें सूर्य-चंद्र-ग्रहण के क्षेत्र, भू-भ्रमण, ग्रह तथा नक्षत्रों के अँगरेज़ी नाम, उनके संस्कृत नामों के साथ, उचित रीति से दिए गए हैं । ग्रंथकर्ता ने भूमिका में लिखा है कि इस ग्रंथ की सामग्री मराठी और अँगरेज़ी के कई प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों से इकट्ठी की गई है । ठीक है, ग्रंथकर्ता महाशय से प्रार्थना है कि इस माला के दूसरे पुष्पों में उपपत्ति का विस्तार-पूर्वक—सोदाहरण—प्रकाशन होना चाहिए । अँगरेज़ी में Refrection, Nutation Abberation, और ग्रहस्पष्टीकरण—सूर्य-ग्रहण का (Bessilan's Elements) गणित—भी बड़े महत्त्व के हैं । उनको भी लिखना चाहिए । आकर्षण शक्ति और केपलर के सिद्धांत भी बहुत आवश्यक हैं ।

× × ×

वृद्ध-बोध-वर्ण-परिचय (प्रथम भाग)—ज्योतिर्विज्ञान, कलालतिकादि ज्योतिष-ग्रंथ, उत्कलेर पंचतीर्थादि धर्म-ग्रंथ, एवं गायत्री-उपासना के प्रणेता और ज्योतिष-शास्त्र के प्रवर्तक ज्योतिष-शिक्षा-विस्तार,समिति के प्रतिष्ठाता,लब्ध-प्रतिष्ठ, प्राच्य और प्रतीच्य ज्योतिर्वित्, पंडित, परम उदार, ब्रह्मर्षि (!!!) श्रीयुक्त योगेंद्रनाथ राय-प्रणीत, वंग-भाषा से आज्ञा प्राप्त, सैंगई, पोस्ट फ़िरोज़ाबाद, ज़िला आगरा के वास्तव्य-ऋषिकुल हरिद्वारस्थ हिंदी-भाषाध्यापक श्रीशिवनारायण शर्मा मैत्र द्वारा अनुवादित और प्रकाशित । सर्वाधिकार स्वरक्षित । मूल्य डा०व्य०स० ।≶); छोटी-सी ९३ सफ़े की पुस्तक है । छपाई, काग़ज़ मामूली ।

इस ग्रंथ के नाम से कुछ भी नहीं पता चलता कि इसका क्या विषय है । मूल-लेखक अवश्य अनुभवी विद्वान् हैं; परंतु अनुवादकजी भी बड़े पंडित मालूम होते हैं । इसीलिये ग्रंथकर्ता ने अपने संपूर्ण बँगला-ग्रंथों के अनुवाद की आज्ञा दे दी है । बहुत कुछ दिमाग़ ने चक्कर खाया, तो ज्ञात हुआ कि इस 'वृद्ध-बोध-वर्ण-परिचय' में स्वर -व्यंजनों का स्थान, उनकी उत्पत्ति, संख्याओं का स्वरूप, ग्रहों के सत्त्व, रज, और तमोगुण का विचार, नाम के आदि-अक्षर से ग्रह-दशा, वर-कन्या का विवाह-निर्णय, ग्रहों का धातु-विवेक, काल-चक्र दशा आदि बहुत सूक्ष्म और दुर्ज्ञेय विषयों का निरूपण है। वर्ण-माला में ४६ अक्षर मानकर भौतिक और अंतरिक्ष शक्तियों के साथ योग-विद्या का सामंजस्य दिखाने की चेष्टा की गई है ।

अनुवादक ने इस पुस्तिका के ८० पृष्ठ में एक जगह गणित का उदाहरण लिखते हुए "यदि इस वर्ण-परिचय को अध्यापकों, वैद्यों और ज्योतिषियों ने देखकर २०० महानुभावों ने ग्राहक-श्रेणी में अपना नाम लिखाया, तो उसका हिंदी-अनुवाद भी शीघ्र आरंभ किया जायगा । बँगला-अक्षरों में उस ग्रंथ का मूल्य ५) है । इसके अनुवाद की स्वीकृति रचयिता महोदय मुझे प्रदान कर चुके हैं—अनुवादक" यह विज्ञापन भी दे दिया है, हालाँकि यह पुस्तक के अंत में भी छपा है ! ऐसी स्वार्थ-लोलुपता को दूर से नमस्कार है !

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

× × ×

७. पत्र-पत्रिकाएँ

स्त्रीबोध—गुजराती मासिक । संपादक, श्रीमती पुतलीबाई काब्राजी तथा केशवप्रसाद छोटालाल देसाई बी० ए०, एल्-एल्० बी० । प्रकाशक, श्रीयुत लक्ष्मीचंद हीराचंद पटेल, अहमदाबाद । आकार १८×२२ अठ-पेजी । पृष्ठ-संख्या ७२, छपाई-सफ़ाई अच्छी, और वार्षिक मूल्य ३।), प्रति अंक का मूल्य ।-)

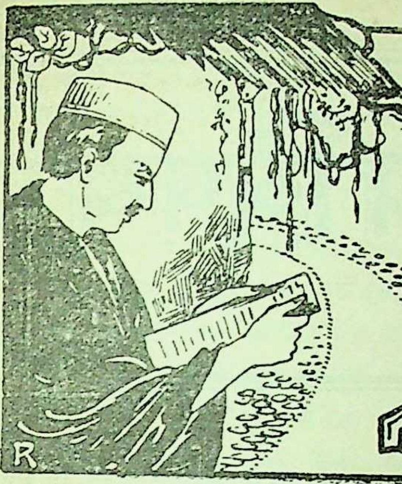
यह पत्र हिंदी में प्रकाशित होनेवाले "स्त्रीदर्पण" के समान है । प्रथम भाग में स्त्रियों के लिये ४४ पृष्ठ तथा दूसरे भाग में २६ पृष्ठ बालकों के लिये रहते हैं ।

नवें वर्ष का प्रथम अंक हमारे सामने है । टाइटिल पर भगवान् से प्रार्थना करते हुए एक बालक का सादा चित्र है । भीतर और तीन सादे चित्र भी हैं । कुल २३ लेख हैं । जिनमें से १० लेख स्त्रियों के लिये तथा शेष बालकों के लिये हैं । संपादन भी अच्छा हुआ है । लेख सभी बालोपयोगी सरल, धार्मिक तथा उपदेश-प्रद हैं । गुजराती जाननेवाली स्त्रियों के काम का है ।

श्रीधर नारायणदास मेहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साहित्य-सूचना

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "श्रीकृष्ण-चरित्र", स्व० बाबू वंकिमचंद्र चटर्जी की बँगला-पुस्तक का पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य २॥)

(२) "रामायण", श्रीरामदासजी गौड़ द्वारा संपादित। मूल्य १)

(३) "भारतीय संपत्ति-शास्त्र" अर्थात् "देश की सच्ची बात", प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार-लिखित। मूल्य ५)

(४) "सुगम ज्योतिष", पं० देवीदत्त जोशी-लिखित। मूल्य ५)

(५) "भारतीय वीरता", श्रीरजनीकांत गुप्त-लिखित बँगला की "आर्यकीर्ति" का श्रीवैद्यनाथसहाय-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य १॥)

(६) "घर और बाहर", कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर-लिखित बँगला के 'घरे-बाहरे' का श्रीयुत रघुकुलतिलक एम्० ए०-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य १)

(७) "भक्ति", स्वामी विवेकानंद-लिखित पुस्तक का श्रीज्ञान-पिपासु-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य ।=)

(८) "रागिणी", श्रीवामन मल्हारराव जोशी-लिखित पुस्तक का पं० हरिभाऊ उपाध्याय-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य ४), रेशमी जिल्द ४।)

(९) "भारतवर्ष का इतिहास", श्रीलाजपत रायजी की उर्दू पुस्तक का श्रीसंतरामजी बी० ए०-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य २।)

(१०) "आलोक-लता", श्रीचारु वंद्योपाध्याय-लिखित उपन्यास का श्रीप्रकाशचंद्र सेठी-कृत हिंदी-अनुवाद। मूल्य १॥=)

(११) "सचित्र महाभारत", पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा अनुवादित पुस्तक का पंचम संस्करण। मूल्य ४)

(१२) "स्वामी रामतीर्थ", भाग २०, २१, २२। मूल्य प्रति भाग ॥=)

(१३) "व्यापारिक पत्र-बहार", बाबू कस्तूरचंद बाँठिया बी० काम०। मूल्य १=)

(१४) "नीति-विज्ञान", श्रीयुत गोवर्धनलाल एम्० ए०, बी० एल्०-लिखित। मूल्य २।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. माधुरी की कलेवर-वृद्धि

परमेश्वर की कृपा से इस समय माधुरी की ग्राहक-संख्या और बढ़ गई है । हमने प्रथम संख्या में, अपने वक्तव्य में, ही यह प्रकट कर दिया था कि माधुरी से उसके संचालक कुछ आर्थिक लाभ उठाना नहीं चाहते ; अगर लाभ होगा, तो वह माधुरी की उत्तरोत्तर उन्नति में ही लगाया जायगा । ज्यों-ज्यों ग्राहक बढ़ेंगे, त्यों-त्यों माधुरी की कलेवर-वृद्धि की जायगी। किंतु जब हमने १०४ से बढ़ाकर १२० पृष्ठ कर दिए और रंगीन तथा सादे चित्रों की संख्या भी बढ़ा दी, तो कुछ कृपालु सज्जनों ने माधुरी को कलेवर-वृद्धि का रोग बताकर अपना असंतोष प्रकट किया । अब हम फिर माधुरी के पृष्ठ और चित्र बढ़ाना चाहते हैं—मूल्य वही रहेगा । मगर पूर्वोक्त प्रकार के सज्जनों के असंतुष्ट होने का भय हमें विवश कर रहा है कि हम कलेवर-वृद्धि करने के पहले अपने कृपालु पाठकों और हित-चिंतकों से उनकी सम्मति पूछ लें । हम पाठकों—ग्राहकों—से पूछते हैं कि वे माधुरी की कलेवर-वृद्धि पसंद करते हैं या नहीं ? ग्राहकों और शुभ-चिंतकों को शीघ्र अपनी सम्मति भेजनी चाहिए । बहु-मत के अनुसार ही कार्य किया जायगा ।

× × ×

२. तुलसी-जयंती

हर्ष की बात है कि गत श्रावण-शुक्ला सप्तमी के दिन देश में, सभी हिंदी-भाषा-भाषी प्रांतों में, महात्मा तुलसीदासजी की त्रिशत-वार्षिक जयंती का उत्सव उत्साह, श्रद्धा और भक्ति के साथ मनाया गया । यहाँ तक कि अन्य भाषा-भाषी प्रांतों में भी, जहाँ हिंदी-भाषा-भाषी प्रांतों के लोग थे, उस दिन सभा करके, व्याख्यान देकर, कविताएँ और लेख पढ़कर गोस्वामीजी के प्रति भक्ति और कृतज्ञता प्रकट की गई । काशी, प्रयाग आदि हिंदी के केंद्रों में तो ख़ासी भीड़ हुई ही, लखनऊ में भी, सिर्फ़ २-३ दिन की सूचना पर, छेदीलाल की धर्मशाला में, अच्छा जमाव हो गया था ; जगह न होने के कारण बहुत-से आदमी आकर लौट गए । इस प्रकार अपनी जाति के उन्नायक महात्मा, महाकवि और महापुरुष के प्रति लोगों ने जैसी भक्ति दिखाई, उनके कीर्ति-कीर्तन में जैसा उत्साह प्रकट किया और इन उत्सवों में जैसी सफलता हुई, वह सर्वथा संतोष-जनक है । आशा है, हम हिंदी-भाषी हिंदुओं की कर्तव्य-बुद्धि और उत्साह का अंत यहीं पर न हो जायगा, देश में प्रति वर्ष गोस्वामीजी की वार्षिक जयंती इसी तरह मनाई जाया करेगी ।

× × ×

३. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की सूचना

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यालय से हमें यह सूचना प्रकाशित करने के लिये मिली है कि इस वर्ष आगामी चतुर्दश सम्मेलन के अवसर पर हिंदी में समाज-शास्त्र (अर्थात् इतिहास-पुरातत्त्व, राजनीति और अर्थ-शास्त्र)-विषय के किसी मौलिक ग्रंथ के लेखक को सम्मेलन की ओर से १२००) का मंगलाप्रसाद-पारितोषिक दिया जायगा । पारितोषिक-समिति ने उक्त पारितोषिक के लिये ग्रंथ भेजने की अंतिम तिथि आगामी विजया-दशमी (१९ ऑक्टोबर, १९२३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियत की है। उक्त तिथि तक ग्रंथकारों या प्रकाशकों को पूर्वोक्त विषय के मौलिक ग्रंथ सम्मेलन-कार्यालय, प्रयाग में अवश्य भेज देने चाहिए। विजया-दशमी के बाद जो पुस्तकें भेजी जायँगी, उन पर इस वर्ष विचार नहीं किया जा सकेगा। प्रेषकों को हरएक पुस्तक की तीन कापियाँ भेजनी होंगी।

× × ×

४. हिंदू-संगठन

इधर हिंदू-जाति में एक भारी हलचल उठ खड़ी हुई है। अजमेर, पानीपत, मेरठ आदि कई स्थानों में, रथयात्रा तथा बकरीद के अवसर पर, हिंदुओं पर जो निंदनीय आक्रमण किए गए, बच्चे तक नहीं छोड़े गए, स्त्रियों की इज़्ज़त तक पर हाथ सफ़ा किए गए, उनका असर यह हुआ है कि हिंदू लोग आत्म-रक्षा का कोई उपाय शीघ्र करने के लिये अधीर हो उठे हैं। हिंदू-संगठन के विचार का सूत्रपात तो बहुत पहले ही हो चुका था, किंतु सदा से आलस्य को अपनानेवाली और समय बीत जाने पर सब भूल जानेवाली हिंदू-जाति बीच में शिथिल हो चली थी। ईश्वर ने उसे सजग और सावधान करने के लिये ही मानों यह नया आघात करवाया है। हम मुसलमान-भाइयों को शत्रु नहीं समझते, और न उनको बुरा-भला कहने के ही पक्षपाती हैं। हम यह भी नहीं मानते कि संपूर्ण मुसलमान-भाई हिंदुओं पर होनेवाले पूर्वोक्त घृणित आक्रमणों के समर्थक हैं। मगर हम यह भी ठीक नहीं समझते कि स्थान-स्थान पर, समय-समय पर, मुसलमान गुंडे हिंदू-जाति पर हमला करें, हमारे बच्चों और मा-बहनों को मारें, बेइज़्ज़त करें, और हम महज़ इस भय से कि एकता नष्ट हो जायगी, मुसलमान-भाई हमारे विरोधी बन जायँगे, आत्म-रक्षा की कोई चेष्टा न करें—खड़े-खड़े अपनी आँखों से मा-बहनों की दुर्दशा तक देखा करें। न हम अपने मुसलमान-भाइयों के इस दुराग्रह का ही समर्थन करने को तैयार हैं कि अपने धर्म के प्रचार का हक़ उनके सिवा और किसी को नहीं है, वे नित्य हिंदुओं को मुसलमान बनाते रहें, और हम अपने ही भाइयों को जाति में न मिलावें। हमें अपने उन भाइयों की समझ पर तरस आता है, जो राजनीतिक अड़ंगा आगे रखकर संगठन और शुद्धि का विरोध कर रहे हैं। अगर हिंदुओं को इसी तरह दबकर रहना पड़ा, अपने धार्मिक अधिकार छोड़ देने पड़े, तो फिर उनका अस्तित्व जितनी जल्दी नष्ट हो जाय, उतना ही अच्छा। मा-बहनों को बेइज़्ज़त कराकर, स्वयं जगह-जगह जूते खाकर अगर हमें राजनीतिक स्वराज्य मिला भी, तो उसे धिक्कार है। संगठन के विरोधी कहते हैं कि अभी स्वराज्य पाने की कोशिश करो, स्वराज्य मिल जाने पर सब ठीक हो जायगा। हम उनसे पूछते हैं, क्या उस समय इन अपने अनुचित अधिकारों से इंच-भर भी हटना मुसलमान-भाई स्वीकार करेंगे? पंजाब के म्युनिसिपलिटी-विभ्राट् पर ग़ौर कीजिए। ग़ैर-मुसलिम मेंबरों के इस्तीफ़े भी मुसलमान-भाइयों पर कुछ असर नहीं कर सके। वहाँ के शिक्षा-मंत्री अपनी नीति पर अटल हैं। इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, और पत्रों में लिखा जा रहा है। इसलिये हम अधिक न लिखकर हिंदू-भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि आप काशी से हिंदू-महासभा का जो आदेश लेकर लौटे हैं, उसे कार्य-रूप में परिणत करने के लिये तत्पर हो जायँ। आपका संगठन आत्म-रक्षा के सिद्धांत पर होना चाहिए। घृणा, क्रोध या द्वेष की नींव पर यह संगठन की इमारत टिक नहीं सकेगी। आशा है, हिंदू-महासभा में उपस्थित होनेवाले प्रतिनिधि लौटकर अपने-अपने प्रांत, शहर और ग्रामों में संगठन का काम शुरू कर देंगे।

लखनऊ में स्थापित अवध-हिंदू-सभा के कार्यकर्ताओं से भी हमारी यही प्रार्थना है कि वे निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार काम शुरू कर दें। सबसे पहले उन्हें वारंवार भिन्न-भिन्न प्रकाश्य स्थानों में सभाएँ करके अपने उद्देश्य की घोषणा और प्रचार करना चाहिए। नगर और ज़िले के हरएक हिंदू के कान में अवध-हिंदू-सभा का नाम पड़ना चाहिए, उन्हें संगठन की आवश्यकता और महत्त्व बतलाया जाना चाहिए। ऐसा करने से ही सफलता का पथ परिष्कृत होगा। हमें इस समय किसी के विरोध की पर्वा नहीं करनी चाहिए। हमारे उद्देश्य की सचाई कार्य द्वारा प्रकट होने पर सब विरोध स्वयं शांत हो जायगा।

× × ×

५. मुसलमानों का अत्याचार

देश में इस समय कुछ ऐसी द्वेष-द्रोह की हवा चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है कि उसका परिणाम, यदि शीघ्र ही कुछ स्थायी प्रतिकार न किया गया, उत्तरोत्तर भयंकर हत्या-कांड का रूप धारण करता जायगा। अभी मुल्तान, मुरादाबाद, अमृतसर, अजमेर, मेरठ, पानीपत आदि में दुष्टों के द्वारा हिंदुओं पर हुए अत्याचार ताज़े ही थे कि इधर मोहर्रम के दिनों में सहारनपुर, आगरा, गोंडा, कासगंज, जबलपुर आदि कई स्थानों में हिंदुओं पर घोर आक्रमण किए गए हैं। सहारनपुर का हत्या-कांड तो ऐसा है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। लोग कहते हैं, ये हमले गुंडों की करतूत हैं। हम पूछते हैं, सहारनपुर में जो ४०,००० मुसलमान थे, वे क्या सब गुंडे ही थे? कहाँ हैं स्वराज्य-प्राप्ति के लिये हिंदू-संगठन का विरोध करनेवाले नेता? क्या अब भी वे संगठन का विरोध करेंगे? अगर सहारनपुर और आगरे में पहले से संगठन होता, तो क्या इस तरह हिंदू लुटते, इस तरह बच्चों तक की हत्याएँ होतीं? इन स्थानों की दुर्दशा का हाल हमारे पाठकों ने दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में विस्तार के साथ पढ़ा होगा। इन स्थानों में मुसलमानों ने जिस तरह पहले ही से लूट-मार का मशविरा करके हिंदुओं पर हमले किए, स्त्रियों का अपमान किया, परदेशियों की हत्याएँ कीं, देवमूर्तियों और देवालयों की बेइज़्ज़ती की, उसे पढ़-सुनकर जिस हिंदू की आँखों से आँसू न बह चले—ख़ून न उतर आवे, ख़ून जोश से चक्कर न मारने लगे और जो हिंदू हिंदू-संगठन की आवश्यकता को न स्वीकार करे, वह हिंदू ही नहीं है। बल्कि वह मनुष्य ही नहीं है। अगर हमारी मा-बहनों की बेइज़्ज़ती हो चुकी, देवमूर्तियाँ और देवालय नष्ट-भ्रष्ट कर दिए गए, सर्वस्व लुट गया, हज़ारों भाई पशुओं की तरह काट डाले गए, हम—केवल हम ही—एकता-एकता कहते और पिटते रहे, तो धिक्कार है हमारे मनुष्यत्व को, धिक्कार है हमारे जीवन को!

इन शब्दों से हम अपने भाइयों को लड़ने-भिड़ने के लिये उत्तेजित नहीं करते। हमारा कहना केवल यही है कि उठो, सबल बनो, आत्म-रक्षा करने के लायक़ शक्ति का संचय करो, संगठन करो, भय और घबराहट को हृदय से निकालकर हिम्मत बाँधो। फिर देखोगे, हिंदू-मुसलिम-एकता सुदृढ़ और स्थायी हो जायगी—फिर आक्रमण और बात-बात पर अपमान करना तो दूर रहा, कोई गुंडा या भला आदमी आँख उठाकर भी तुम्हारी तरफ़ ताक नहीं सकेगा। एक बात और है। इतने अनर्थ हो गए, हिंदुओं का इतना अपमान हुआ, इतनी हानि हुई, मगर एकता के हामी मुसलमान नेताओं में से कोई भी घटना-स्थल पर नहीं गया, किसी ने दुष्टों को डाँटकर, बुरा कहकर, हिंदू-भाइयों से सहानुभूति दिखाकर उनके घावों पर मरहम-पट्टी नहीं की। क्या इसी तरह एकता हो सकती है? कटारपुर आदि के दंगे सहारनपुर और अजमेर के हत्या-कांड से अधिक भयानक नहीं थे। उस अवसर पर सैकड़ों मुसलमान नेता वहाँ पहुँच गए थे, और उन्होंने मुसलमानों की सहायता की थी। सरकार ने भी उपद्रवी हिंदुओं को कठोर-से-कठोर दंड दिया था। पर अब हम देखते हैं, हमारे अधिकांश हिंदू नेता चुप हैं। कुछ महानुभावों को छोड़कर सब दूर से तमाशा देख रहे हैं, अत्याचार के शिकार हुए हिंदुओं की सहायता करने को अग्रसर नहीं होते। रह गई सरकार, सो देखना है, वह इन दुष्ट आततायियों के लिये कैसे दंड की व्यवस्था करती है!

अंत में डॉक्टर किचलू के शब्दों में हम हिंदुओं से यही कहेंगे कि भाइयो, कमज़ोर का मददगार कोई नहीं होता। जो आप अपनी रक्षा नहीं कर सकता, उसकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। अगर तुम अब भी अपना संगठन नहीं करोगे, सबल नहीं बनोगे, निर्भय और आत्म-रक्षा के लिये सचेष्ट न होगे, तो बराबर यों ही पिटते लुटते रहोगे। हमको इन घटनाओं को भी उस मंगलमय की दी हुई चितावनी समझकर सचेत हो जाना चाहिए। एकता नष्ट होने की चिंता न करो। तुम जब आत्म रक्षा करने को समर्थ हो जाओगे, तब हिंदू-मुसलिम-एकता की आधार-शिला बहुत मज़बूत होगी।

× × ×

६. हिंदू-महासभा और अन्य सभाएँ

गत अगस्त की १९ से २२ तारीख़ तक काशीपुरी में अखिल भारतवर्षीय महासभा का सप्तम अधिवेशन बड़े समारोह और सफलता के साथ सुसंपन्न हो गया। कहने को तो सप्तम अधिवेशन था, पर वास्तव में इसी को पहला अधिवेशन कहना चाहिए। भारत के प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रांत से प्रतिनिधि पधारे थे, जिनकी संख्या १५०० के लगभग थी। हिंदू-जाति के प्रत्येक विभाग के प्रतिनिधि उपस्थित थे। भारत-धर्म-महामंडल तथा आर्यसमाज के स्तंभ स्वामी दयानंद तथा श्रद्धानंद भी उपस्थित थे। लंका से बौद्धाचार्य धर्मपालजी भी आए थे। अछूतों के भी दो प्रतिनिधि थे। स्वागत-कारिणी के सभापति राजा मोतीचंदजी और सभापति महर्षि मालवीयजी थे। भाषण दोनों सभापतियों के मार्मिक और समयानुकूल हुए। मालवीयजी के भाषण का तो कहना



पं० मदनमोहन मालवीय

ही क्या है। दर्शकों की संख्या भी ५००० के क़रीब हो गई थी। अछूतोद्धार, पुनःसंस्कार, विधवाओं की रक्षा, सब जातियों के हिंदुओं में एकता, ब्रह्मचर्य-पालन, धार्मिक शिक्षा, नगर-रक्षक-दल-संगठन आदि वर्तमान समय की सभी समस्याओं पर मालवीयजी ने अपने उदार विचार प्रकट किए। बहुत-से समयोपयोगी प्रस्ताव पास हुए, और कुछ समस्याएँ हल करने के लिये विद्वत्परिषद् का संगठन किया गया। प्रस्तावों का विवरण हमारे पाठक समाचार-पत्रों में पढ़ चुके होंगे। हिंदू-संगठन को संदेह की दृष्टि से देखनेवाले मुसलमानों और एकता के नाम पर उसका विरोध करनेवाले कुछ हिंदुओं का समाधान भी सभापतिजी ने किया। मतलब यह कि हिंदू-सभा को संतोष-जनक सफलता प्राप्त हुई, और इसका सारा श्रेय सभापतिजी को है। यह मालवीयजी का ही काम था कि पुराने विचारोंवाले पंडित और नवीन विचारोंवाले नव्य शिक्षित, सभी महासभा से संतुष्ट रहे, और सभी प्रस्ताव बहुमत से नहीं, सर्व-सम्मति से पास हुए। अगले साल फिर काशी में ही अधिवेशन होगा। मालवीयजी ने मार्ग दिखला दिया है—दिखला ही नहीं, बल्कि उसकी रचना भी कर दी है, अब उस पर चलकर लक्ष्य तक पहुँचना हिंदू-जाति के ऊपर निर्भर है। हिंदू-जाति के भिन्न-भिन्न स्थानीय नेताओं का कर्तव्य है कि वे इस उत्साह को बुझने न दें। लौटकर अपने-अपने स्थानों में हिंदू-सभाएँ स्थापित कर स्थानीय हिंदुओं का संगठन कर डालें। उन सभाओं के सभासद् नित्य नहीं, तो सातवें दिन सम्मिलित हुआ करें, स्थिति पर विचारों का आदान-प्रदान करें, स्थानीय अभाव-अभियोगों पर ध्यान दें, नवयुवकों में शिक्षा-प्रचार और शक्ति-संचार का उद्योग करें और अनाथों और विधवाओं तथा रोगियों की सहायता और सेवा का प्रबंध करें इस ढंग से काम करते रहने से ही हिंदू-संगठन दृढ़ और स्थायी होगा।

हिंदू-महासभा के अवसर पर काशी में और भी कई सभाएँ हुईं। पहले तो नागरी-प्रचारिणी-सभा की ओर से तुलसी-जयंती मनाई गई। फिर सनातन-धर्म-महासभा का अधिवेशन हुआ। इसके सभापति काशी-नरेश थे। युक्त-प्रांतीय लिबरल-सम्मेलन का भी अधिवेशन हुआ। इसके सभापति लखनऊ के प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर ए० पी० सेन महाशय थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सम्मेलन में अनेक लिबरल नेता पधारे थे। समाज-सुधार-सभा का अधिवेशन भी राजा साहब तिर्वा के सभापतित्व में हुआ। आपका भाषण हिंदी में हुआ। संस्कृत-साहित्य-सभा का अधिवेशन पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण महाशय के सभापतित्व में किया गया। इसकी स्वागत-कारिणी के सभापति मालवीयजी थे। महिला-



काशी-नरेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा का सभापतित्व बाबू भगवानदासजी की धर्म-पत्नी ने किया । इन सब सभाओं के अधिवेशन सफल हुए । प्रस्ताव भी सबमें समयोपयोगी और उन-उन सभाओं के दल के अनुकूल पास हुए । स्थानाभाव से हम



तिर्वों-नरेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबका विस्तृत विवरण देने में असमर्थ हैं, इसका हमें खेद है।

× × ×

७. प्रतिवाद

हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत मिश्र-बंधुओं ने माधुरी की पिछली संख्या में प्रकाशित अमेरिका के एक बहुत मोटे और पुराने वृक्ष के संबंध की टिप्पणी के प्रतिवाद में हमारे पास यह सूचना प्रकाशनार्थ लिख भेजी है—"आप ४४ फ़ीट मोटा वृक्ष खोजने को अमेरिका में ४० फ़ीट नीचे गड़े हुए ठूँठ पर विचार करने क्यों गए, आप ही के देश काश्मीर में आज ५४ फ़ीट मोटा एक चिनार का जीवित वृक्ष लगा हुआ है। उसे हम तीनों भाइयों ने ऑक्टोबर, सन् १९२१ में अपनी आँखों से देखा था। उसे लार्ड हार्डिंज साहब ने भी देखा है, यह उसी वृक्ष पर खुदा हुआ है। उसकी मुटाई की नाप भी उसी पर खुदी हुई है। हम लोगों ने भी उसे खुद नापा था। उसी स्थान पर और भी कई मोटे-मोटे चिनार के वृक्ष लगे हुए हैं; किंतु उक्त वृक्ष सबसे अधिक मोटा है। चिनार का वृक्ष काश्मीर के बहुत श्रेष्ठ जाति के वृक्षों में समझा जाता है। उसकी छाया बड़ी शीतल और पथिकों को आनंद देनेवाली होती है।"

× × ×

८. युक्त-प्रांत की भाषाएँ

सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार युक्त-प्रांत में भिन्न-भिन्न-भाषा बोलनेवालों की संख्या नीचे-लिखे अनुसार है—

हिंदुस्थानी	४,६२,८६,०७३
अँगरेज़ी	३२,२४२
पंजाबी	२५,०३८
बंगाली	२३,४५४
नैपाली	१८,४६५
भाटिया	७,६८६
राजस्थानी	४,५६५
मराठी	२,८१२
गुजराती	२,७६०
अन्य भाषाएँ	४,५१०
	४,६५,१०,६६८

हिंदुस्थानी बोलनेवालों की संख्या इस प्रांत में ९९ फ़ी-सदी से भी अधिक है। हिंदुस्थानी में हिंदी और उर्दू, दोनों शामिल हैं। मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के लेखक महाशय का मत है कि हिंदी और उर्दू-भाषा बहुत कुछ एक ही हैं, केवल लिपि का ही अंतर है। जब हिंदुस्थानी-भाषा उर्दू-लिपि में लिखी जाती है, और फ़ारसी-शब्दों का अधिक उपयोग किया जाता है, तब उसे उर्दू कहते हैं; और जब हिंदुस्थानी-भाषा देवनागरी-लिपि में लिखी जाती है, और संस्कृत-शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाता है, तब उसे हिंदी कहते हैं। लिपि का ज्ञान तो पढ़े-लिखे व्यक्तियों को ही हो सकता है, इसलिये अपढ़ व्यक्तियों के संबंध में यह नहीं बताया जा सकता कि वे हिंदी का उपयोग करते हैं, या उर्दू का। क्या ही अच्छा होता, यदि पढ़े-लिखे व्यक्तियों से, जिनकी संख्या इस प्रांत में आजकल क़रीब १७ लाख है, यह जानने का प्रयत्न किया जाता कि कितने उर्दू की लिपि लिखते और कितने देवनागरी-लिपि का उपयोग करते हैं? हमारी समझ में देवनागरी-लिपि का उपयोग करनेवालों की संख्या उर्दू-लिपि लिखनेवालों की संख्या से अवश्य ही अधिक है। अन्य-भाषा-भाषियों की संख्या इस प्रांत में बहुत कम है, और हमें विश्वास है कि उनमें से भी अधिकांश व्यक्ति हिंदी अथवा हिंदुस्थानी को अच्छी तरह से समझ लेते हैं। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि इस प्रांत की प्रायः संपूर्ण जनता हिंदुस्थानी का ही उपयोग करती है।

× × ×

९. भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में जल-प्रलय

हमारे यहाँ अतिवृष्टि और अनावृष्टि को ईश्वरीय कोप का परिणाम समझा जाता है। जल भी ईश्वर का एक रूप या विभूति है। वह जब बढ़िया के उग्र रूप में बढ़कर अन्न-जन का संहार करने लगता है, तब मनुष्य की क्षुद्र शक्ति उसका प्रतिरोध नहीं कर सकती। मनुष्य का बुद्धि-बल, बाहु-बल, धन-बल, जन-बल, सब तिनके की तरह उस प्रवाह में बह जाता है, ठहर नहीं सकता। हमारे यहाँ के प्राचीन विश्वास के अनुसार ऐसा उत्पात राजा या प्रजा के पातकों—उग्र अपकर्मों—का ही परिणाम होता है। गत कई सप्ताहों में भारत के भिन्न-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न प्रांतों में गंगा, यमुना, सोन, वेत्रवती आदि महा-नदियों में भयंकर बाढ़ आने के कारण देश की बड़ी ही क्षति हुई है। हज़ारों पशु बह गए, घर गिर गए, गाँव-के-गाँव नष्ट हो गए, फ़सल का कहीं पता नहीं रहा। हज़ारों मनुष्य तबाह हो गए; वे इस समय गृह-हीन और खाने-पीने को मोहताज होकर जीवन को मृत्यु से बढ़कर दुःखदायक समझ रहे हैं। विशेषकर बिहार में पटना, आरा, छपरा, सारन आदि के दिहातों की बहुत ही बुरी दशा है। बाबू राजेंद्रप्रसादजी ने देश-वासियों से सहायता के लिये अपील की है। आशा है, ग़रीब, अमीर सब अपने विपत्ति-ग्रस्त भाइयों को यथा-शक्ति आर्थिक सहायता देंगे। बाढ़ के उपद्रव निम्न-लिखित स्थानों में अधिक हुए हैं। हमीरपुर और जालौन ज़िलों में कई गाँव डूब गए। लगभग ४०० मनुष्यों के घर नष्ट हो गए हैं। काल्पी के पास कई गाँव डूब गए हैं। काल्पी-शहर टापू बन गया था। कोटा-रियासत में ४ नदियाँ बढ़ आई थीं; ३० गाँव डूब गए। टोंक-रियासत में बाढ़ आने से ५ गाँव नष्ट हो गए। मदरास में कनानोर के निकट नदी में बड़े ज़ोर की बाढ़ आई। इटावा, गोंडा और बलिया-ज़िलों में भी बाढ़ आई है। काशी में गंगाजी शहर के भीतर घुस आई थीं। प्रयाग में यमुना में १५७ फ़ीट तक पानी फैल गया था। बर्मा में भी एक बाढ़ से शहर के पास नदी का बाँध टूट गया। कहीं-कहीं २० फ़ीट तक ऊँचा पानी था। वहाँ ५,००० आदमी गृह-हीन हो गए हैं। इस तरह इटारसी और जबलपुर के बीच नर्मदा में २४ गज़ ऊँचा पानी चढ़ आया था। बँगलोर में शिवसमुद्रम् के पास कावेरी-नदी में बाढ़ आने से पुल टूट गया। यह तो मुख्य-मुख्य और बड़े-बड़े स्थानों का उल्लेख-मात्र है। जिन नदियों में बाढ़ आई है, उनके किनारे के अनेक छोटे-छोटे गाँवों और बस्तियों का जो कुछ बुरा हाल हुआ होगा, उसका अनुमान करने से भी रोमांच होता है। यह सब हमारे ही पापों का फल है; भोगना ही होगा। देश के एक प्रांत में कोई आपत्ति आने से अन्य प्रांत मिलकर थोड़ी-थोड़ी सहायता करते हैं, और अनायास ही उसका प्रतिकार हो जाता है; किंतु इस बार तो चारों ओर हाहाकार हो रहा है। देश के धनी और दयालु सज्जनों को धन, अन्न, वस्त्र, औषध और सेवा आदि से विपन्नों की सहायता करने के लिये शीघ्र मैदान में आना चाहिए। मनुष्यत्व और सच्ची देश-भक्ति दिखाने का यही सच्चा अवसर है।

× × ×

१०. केनिया-कांड

अंत को केनिया के काले और गोरे निवासियों के अधिकार की समस्या ब्रिटिश-साम्राज्य के कर्णधारों ने हल कर दी। फ़ैसला वही हुआ, जिसकी आशा थी। कालों की फ़रियाद या प्रतिवाद पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया। गोरों के सुख, सुविधा और सम्मान की रक्षा की गई। माननीय श्रीनिवास शास्त्री-जैसे महा मॉडरेट सज्जन भी उस फ़ैसले के अपमान से विचलित हो उठे हैं। जगह-जगह बंबई, कलकत्ता आदि शहरों में रोष प्रकट करने के लिये सभाएँ की गईं। उनमें साम्राज्य-प्रदर्शिनी के बहिष्कार का प्रस्ताव भी पास किया गया। २७ अगस्त को देश-व्यापी हड़ताल करके भी विरोध प्रकट किया गया। पर क्या इतना ही यथेष्ट है? इस हड़ताल या सभाओं में केवल पास किए गए प्रस्तावों से केनिया-प्रवासी भारतीयों को क्या अधिकार मिल जायँगे? या इस धमकी-घुड़की से उपनिवेश के उद्दंड, स्वार्थी गोरों का दिमाग़ ठिकाने आ जायगा? कभी नहीं। हाँ, अगर 'जैसे को तैसा'वाली नीति भारत-सरकार अख़्तियार करे, केनिया आदि उपनिवेशों के गोरों को यहाँ न रहने दिया जाय, उनका माल यहाँ न बिकने पावे, उन्हें भारत-सरकार के किसी विभाग में नौकरी न दी जाय, तो वे बहुत शीघ्र रास्ते पर आ सकते हैं। पर इसके लिये नेताओं में बड़ी दृढ़ता की ज़रूरत है। कारण, रंग-ढंग से जान पड़ता है कि भारत-सरकार भारत के सम्मान के लिये इतना करना कभी स्वीकार नहीं करेगी। और, कदाचित् वह स्वीकार भी कर ले, तो लार्ड पील या अर्ल विंटरटन-सरीखे जाति-भक्तों को कदापि वह मत मान्य न होगा। किंतु उपनिवेश के माल का बहिष्कार तो हम भारतीयों के ही हाथ की बात है। उतना करने से भी बहुत कुछ हो सकता है। साम्राज्य-प्रदर्शिनी का बहिष्कार तो यहाँ के नेताओं, व्यापारियों, शिल्पियों, दर्शकों और समाचार-पत्रों को मिलकर क़तई कर देना चाहिए। यहाँ का कोई समाचार-पत्र प्रदर्शिनी का विज्ञापन न छापे। कलकत्ते के समाचार-पत्र-संपादकों ने सभा करके शायद ऐसा प्रस्ताव भी पास किया है। हमको जान लेना चाहिए कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दबनेवाले को सभी दबाते हैं; किंतु जो कुछ भी तेज रखता है, उसको सभी डरते हैं। बुझी हुई आग पर सभी पैर रखते हैं; किंतु जलती हुई छोटी-सी लकड़ी पर कोई नहीं। देखें, मॉडरेट नेताओं का यह क्रोधावेश कुछ करता है, या साहबों के हँसकर हाथ मिलाने और मौखिक खेद या सहानुभूति प्रकट करने से ही काफ़ूर हो जाता है।

× × ×

११. जापान में भयानक भूकंप, बाढ़ और अग्नि-कांड

प्राच्य देशों में जापान ने जितनी जल्दी उन्नति की और अपने को प्रथम श्रेणी का राष्ट्र बना लिया, उसे देखकर योरप के राष्ट्र चकित रह गए, अमेरिका के अंतःकरण में आतंक का संचार हो गया। इधर महायुद्ध में अन्य सब बड़े राष्ट्र शामिल हुए, पर जापान बचा रहा। फल यह हुआ कि अन्य राष्ट्रों की धन-जन-शक्ति क्षीण हो गई, और सुलह हो जाने पर भी उनमें इतनी शक्ति नहीं रह गई कि वे किसी से युद्ध कर सकें। उधर उनका व्यापार भी बंद रहा, या कम हो गया। इसके विपरीत जापान का व्यापार चमक उठा। भारत में जर्मनी, आस्ट्रिया आदि के माल की जगह सुई से लेकर बढ़िया रेशमी कपड़ा तक जापान से आने लगा। हरएक चीज़ पर जापान की भाग्य-लिपि की तरह Made in Japan की छाप चमकती नज़र आने लगी। पहले का धन-जन-बल सुरक्षित रहा, उसमें कुछ कमी नहीं हुई, और उस पर नई शक्ति संचित होने लगी। नतीजा यह हुआ कि जापान से इँगलैंड और अमेरिका, दोनों खटका खाने लगे। किंतु सब दिन समान नहीं बीतते। जापान के भाग्य ने पलटा खाया। अचानक दैव-कोप ने उसकी वह क्षति कर दी है, जो एक घोर युद्ध में हारने पर भी नहीं हो सकती थी। समाचार आया है कि पहली सितंबर के दिन एकाएक जापान में ऐसा भयानक भूकंप का आक्रमण हुआ कि उससे टोकियो और याकोहामा, आदि कई बड़े शहर नष्ट-प्राय हो गए। टोकियो जापान की राजधानी है। २ लाख ४० हज़ार मनुष्य तो मर ही गए, और साढ़े चार लाख बे-तरह घायल होकर अधमरे पड़े हैं। ६० लाख के लगभग मनुष्य गृह-हीन हो गए हैं। भूकंप के साथ ही बाढ़ भी आई। ज्वालामुखी पर्वत भी आग उगलने लगे। गैस के पंप फट जाने से आग लग गई, और तेज़ हवा ने उसे आनन-फ़ानन में फैला दिया। जल की कलें भी ख़राब हो गई थीं, इससे आग नहीं बुझाई जा सकी। टोकियो की सब इमारतें बरबाद हो गईं। सड़कें मुर्दों से पटी पड़ी हैं। राजा और रानी सकुशल हैं; पर राजघराने के कई आदमी मर गए, या लापता हैं। विदेशों के दो-एक दूत भी शायद मर गए हैं। कई सौ विदेशी मर गए हैं। जापान का ओसीमा-द्वीप डूब गया है, उसका नाम-निशान तक नहीं है। अमेरिका, इँगलैंड आदि राष्ट्र जापान की सहायता कर रहे हैं। उनके जहाज़ डॉक्टर, अन्न, लकड़ी आदि लेकर जापान की ओर रवाना हो गए हैं। अनुमान किया गया है कि जापान के नष्ट स्थानों की मरम्मत और उसके पुनः संस्कार में १ अरब पौंड की भारी रक़म ख़र्च होगी। सड़कों, इमारतों आदि की मरम्मत का काम शुरू भी हो गया है। भारत के लाट साहब ने भी जापान की सहायता के फ़ंड में ५०००) रु० दिए हैं। एक बैंक ने एक लाख पौंड दिए हैं। सभी राष्ट्रों के प्रेसीडेंटों या राजों आदि ने जापान से सहानुभूति प्रकट की है। यहाँ मालवीयजी ने भी भारतीयों से जापान की सहायता के लिये ज़ोरदार अपील की है। आशा है, दयालु और परोपकारी भारत अपनी प्राचीन महत्ता का परिचय अवश्य देगा। हमें अपने निकट-संबंधी जापान की इस दुर्गति और विपत्ति पर हार्दिक दुःख है।

× × ×

१२. अनधिकार-चेष्टा

जिस विषय में पूरी गति न हो, या जिस पर अपना अच्छा अधिकार न हो, उसमें हाथ डालने को अनधिकार-चेष्टा कहते हैं। यह अनधिकार-चेष्टा मनुष्य को हास्यास्पद बना देती है। साधारणतः यह अनधिकार-चेष्टा किसी भी विषय में गौरव का कारण नहीं हो सकती; पर साहित्य में तो इस अनधिकार-चेष्टा का परिणाम, वैसी चेष्टा करनेवाले के साथ ही, साहित्य के लिये भी बड़ा हानिकारक होता है। ऐसी अनधिकार-चेष्टा करनेवाले—अपने को सर्वशक्तिमान् या सर्वज्ञ समझनेवाले—सज्जन जिस रद्दी रचना की सृष्टि करते हैं, वह उस साहित्य और भाषा को अन्य-भाषा-भाषियों की दृष्टि में तुच्छ बना देती है। दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि हमारी मातृ-भाषा हिंदी के साहित्य-संसार में आजकल अनधिकार-चेष्टा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यंत अधिकता देख पड़ती है। कोई कविता अगर अच्छी कर लेता है; तो वह उपन्यास, नाटक, कहानी आदि सब कुछ लिखने लगता है। कोई कहानी का अच्छा लेखक है, तो वह कविता में भी टाँग अड़ाने को तैयार हो जाता है। कोई ग्रंथ-रचना में अगर कुछ सफल समझा जाने लगता है, तो वह चट संपादक की कुरसी पर उछल जाता है। कोई दैनिक पत्र का संपादन करने में योग्यता दिखा सकता है, तो वह मासिक पत्रों के संपादन की ओर भी हाथ बढ़ाता है। फल यह होता है कि जिस पर जिसका अधिकार नहीं है, उसमें हाथ डालने से उसका पूर्व गौरव भी म्लान होने लगता है, और उसे सफलता भी नहीं मिलती। साहित्य में यह लबड़-धौंधौं ठीक नहीं है। जो सज्जन ऐसी अनधिकार-चेष्टा करने की भूल करते हैं, उन्हें उचित है कि वे साहित्य के जिस-जिस अंग पर क़लम चलाना चाहते हों, उसका पहले पूर्ण अभ्यास कर लें। हम उनके उत्साह को नष्ट करना नहीं चाहते, और न उसे बुरा ही कहते हैं; हमारा मतलब यही है कि सब कुछ लिखने की शक्ति सबमें नहीं होती, इसलिये पहले अभ्यास-द्वारा यह देख लेना चाहिए कि किस विषय पर अपना अधिकार हो सकता है।

× × ×

१३. एक अद्भुत मनुष्य

रूस-देश में राटुशिक-नामक एक महाशय हैं। उनकी उम्र बीस वर्ष की है। लंबाई में वह पृथ्वी के अपनी उम्र के सब मनुष्यों से छोटे हैं। उनकी ऊँचाई २६ इंच, अर्थात् डेढ़ हाथ से भी कम, है। उनका शरीर एकदम अविकृत है। यद्यपि वह चार वर्ष के लड़के से भी छोटे हैं, पर विद्या-बुद्धि में बहुत-से सिनदार आदमियों से बढ़-चढ़कर हैं। लिखना-पढ़ना तो वह जानते ही हैं, किंतु चित्र-विद्या में भी निपुण हैं। अपनी भाषा के अलावा फ्रेंच और जर्मन-भाषा में भी उनका दख़ल है। उनके मा-बाप साधारण मनुष्य-जैसे हैं। वह जहाँ जाते हैं, अपनी ज़रूरी चीज़ों को एक बक्स में बंद करके लेते जाते हैं। उनके बक्स में टेबिल, कुर्सी, ड्रायर, यहाँ तक कि उनके स्नान करने का टब भी रक्खा रहता है। उनका भोजन एक आलू का चौथाई भाग, एक चम्मच 'सूप' (Soup), चार अंगूर या एक टुकड़ा सेब (Apple) है।

× × ×

१४. अखिल भारतवर्षीय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन में एक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न

इस वर्ष काशी में उक्त सम्मेलन के सप्तम अधिवेशन में, जो हिंदू-युनिवर्सिटी में हुआ था, स्वा० स० के सभापति महामना श्रीयुक्त मालवीयजी ने समस्त भारतीय संस्कृत-विद्वानों के सामने एक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न उपस्थित किया था। संस्कृत-भाषा के जीवन-मरण से संबंध रखने-वाला यह प्रश्न इतना महत्त्व-पूर्ण है कि समस्त संस्कृतानुरागियों—विशेषतः भारतीयों—को सबसे प्रथम इसे विचारना और तुरंत तदनुरूप कार्य आरंभ करना चाहिए। अन्यथा संस्कृत की वर्तमान दीन-हीन दशा देखते हुए कोई अच्छी आशा नहीं की जा सकती। प्रश्न—

"अस्ति किं संस्कृतभाषाया ईदृशी शाश्वती लोकोत्तरोपकारिता यदस्या अध्ययनाध्यापनप्रचारार्थं सर्वैरपि आर्यवंशीयैः सार्वजनीनशाश्वतप्रबंधार्थे प्रयत्नः करणीयः ? यद्यस्ति तर्हि के ते सर्वोत्कृष्टा उपायाः यैरिदमभीप्सितं प्राप्तुं शक्यते ?"

इस प्रश्न को उपस्थित करते हुए श्रद्धेय श्रीमालवीयजी ने कहा कि "आजकल आयुर्वेद, धर्म-शास्त्र और ज्योतिष आदि संस्कृत के सभी विषय प्रचलित भाषा में अनुवाद करके पढ़ाए जाते हैं। केवल संस्कृत से कहीं भी काम नहीं चलता। फिर केवल अनुवाद के ही द्वारा उन सब विषयों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रबंध क्यों न किया जाय ? मूल संस्कृत-भाषा जानने के लिये १०-१५-२० वर्ष व्यर्थ लगाने की क्या आवश्यकता है ?" उत्तर देनेवालों ने इस व्याख्या का ही उत्तर दिया। प्रश्न के अंतिम अंश पर कोई नहीं बोला। और, यह संभव भी नहीं था; क्योंकि उत्तर देनेवालों को केवल दस मिनट का समय दिया गया था। बोलनेवालों की संख्या बहुत अधिक थी। उनमें से लखनऊ के वैद्यराज, विद्वद्वर पं० शालग्रामजी शास्त्री का श्लोक-बद्ध उत्तर—जिसे श्रोताओं ने अधिक पसंद किया, और जिसकी कई कापियाँ संस्कृत-पत्र-संपादकों और अन्य लोगों ने वहीं कर लीं—हम माधुरी के पाठकों की भेंट करते हैं—

"आध्यात्मिकानां गम्भीरभावानामवबोधकाः।
नान्यभाषासु ते शब्दा अनुवादः कथं भवेत् ॥ १ ॥
यथाकथञ्चिद् यत्किञ्चिदनुवादेन बुद्ध्यते।
न तेन मूलग्रन्थानां विलोपं कोऽपि कामयेत् ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवादेषु लभ्यश्चेत् कालिदासगिरां रसः ।
हन्ताऽऽसं कालिदासत्वं सर्वैरेवानुवादकैः ॥ ३ ॥
अनेके ह्येकपर्यायाः श्लिष्टाश्चार्थान् यथा बहून् ।
व्यञ्जन्ति संस्कृते तेषां कोऽनुवादं करिष्यति ॥ ४ ॥
अस्थिरायां तु भाषायामनुवादे कृतेऽप्यथ ।
कालान्तरेऽनोपयोगान्मूलभ्रंशो भविष्यति ॥ ५ ॥
अनुवादः सदोषश्चेल्लोके भ्रान्तिं प्रवर्तयेत् ।
मूलाज्ञाने कथं को वा तस्य शुद्धिं विधास्यति ॥ ६ ॥
जातीयताया जातेश्च प्राचीनत्वं यथा स्थिरम् ।
संस्कृतेन तथा नान्यभाषाभाले निधेर्लिपिः ॥ ७ ॥
सर्वासां भारतीयानां भाषाणामुपजीव्यता ।
संश्रिता सुरभारत्यां तद्विरोधः कथं भवेत् ॥ ८ ॥
आविर्भावे स्वभावानां सर्वा एव सदैव च ।
देववाणीमुखापेक्षाः कथं हन्युः स्वमातरम् ॥ ९ ॥
सर्वान् संस्कृतशब्दाँश्चेत् हिंदीभाषा परित्यजेत् ।
तदाऽसौ ग्राम्यभाषातोऽप्यधमत्वं गमिष्यति ॥ १० ॥
आविर्भवन्ति विज्ञानात् शब्दा नवनवा इह ।
तान् प्रकाशयितुं शब्दान् का भाषा संप्रदास्यति ॥ ११ ॥
उपजीव्या प्रधानं च जीवातुः सुरभारती ।
तद्विघातं तु को वाञ्छेदुपजीवकसंश्रयात् ॥ १२ ॥
कन्थापटचरैः शीतवारणे संभवत्यपि ।
ऊर्णाकम्बलकौशेयप्रावारान् कः प्रदाहयेत् ॥ १३ ॥
मृत्कुम्भानम्भसा पूर्णान् पश्यन् गेहेषु सत्वरः ।
सुधातुल्यजलं को वा कूपं मृद्भिः प्रपूरयेत् ॥ १४ ॥
उपस्पर्शाय पर्याप्तं पश्यन् वा स्वाञ्जलौ जलम् ।
को वा मन्दाकिनीधारां निरोद्धुमभिकामयेत् ॥ १५ ॥
पल्वलान्नालिकां क्षुद्रां पश्यन् केदारमध्यगाम् ।
कोऽप्रमत्तो घनध्वानान् मेघान् घोरं विघूर्णयेत् ॥ १६ ॥
ग्रामोफ़ोनेषु गानानि श्रावंश्रावं सचेतनः ।
को वा गायकमुख्यानां प्राणघातमुपक्रमेत् ॥ १७ ॥
प्रतिविपणि पणेन प्रापणीयानि पश्यन्
क इह सकललभ्यब्लाकचित्राणि विद्वान् ।
सुनिपुणरविवर्मप्रस्तुतं भूरिभावं
लसदमलकलौघं चित्रमुच्छेत्तुमिच्छेत् ॥ १८ ॥
क्रमेण तेनैव त एव शब्दा धर्मं दिशन्त्युच्चरिता विधीनाम् ।
नान्ये तथा, तत्सुरभारतीयं धर्माभिकामैरपि रक्षणीया ॥१९॥"

अर्थ—किसी भाषा के भावों को दूसरी भाषा में प्रकाशित करना 'अनुवाद' कहलाता है, और मानसिक भावों को प्रकाशित करनेवाली वागिंद्रिय-संबंधी साधन-संपत्ति को 'भाषा' कहते हैं। जिन लोगों की भावना जिस ओर प्रवण होती है, उनकी भाषा में उसी प्रकार के शब्दों का प्राचुर्य पाया जाता है। सूक्ष्म और गंभीर आध्यात्मिक भावों के बोधक शब्द जैसे संस्कृत में हैं, वैसे और किसी भाषा में हैं ही नहीं; फिर संस्कृत का ठीक-ठीक अनुवाद कैसे होगा ? १ ॥ इसके सिवा अनुवाद से उस भाव के सामान्य रूप का यथाकथंचित् ज्ञान होता है, विशेष ज्ञान नहीं होता। अतः मूल-ग्रंथों का विलोप कोई नहीं चाहेगा ॥ २ ॥ यदि कालिदास की वाणी का रस अनुवादों में आ जाय, तब तो फिर सब-के-सब अनुवादक कालिदास ही हो जायँ ॥ ३ ॥ संस्कृत में एक ही वस्तु के लिये दस-दस बीस-बीस शब्द हैं। 'रत्नाकर' और 'वारिधि' दोनों समुद्र के ही नाम हैं; परंतु—

"अयं रत्नाकरोम्भोधिरित्यसेवि धनाशया ;
धनं दूरेऽस्तु वदनमपूरि क्षारवारिभिः ।"

यहाँ 'रत्नाकर' के स्थान में दूसरा शब्द रखते ही रस-भंग हो जाता है। 'कपाली' और 'पिनाकी' दोनों शिवजी के ही नाम हैं ; परंतु—

"द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया कपालिनः ।"

इस पद्य में 'पिनाकी' कहते ही बात बिगड़ जाती है। इसके सिवा एक-एक शब्द के दस-दस अर्थ होते हैं। जहाँ श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग है, वहाँ उनका अनुवाद करके कौन रस उत्पन्न कर सकता है ? ४ ॥ यदि यह मान भी लें कि सर्वांग-पूर्ण अनुवाद हो सकता है, तथापि अँगरेज़ी की तरह हिंदी आदि सभी वर्तमान भाषाएँ अस्थिर हैं। जैसे शेक्सपियर के समय की अँगरेज़ी आज मर चुकी है—आज उसे कोई नहीं बोलता—उसी प्रकार चंद बरदाई के 'पृथ्वीराज-रासो' की हिंदी भी आज अव्यवहार्य है। और भाषाएँ भी इसी प्रकार मरती जा रही हैं। इस दशा में यह कौन कह सकता है कि आज की प्रचलित भाषाएँ दो सौ वर्ष बाद भी इसी तरह समझी जा सकेंगी ? यदि आज संस्कृत के सब ग्रंथ समुद्र में डुबा दिए जायँ, या गड्ढा खोदकर दफ़न कर दिए जायँ, और 'सर्वांग-पूर्ण' अनुवादों से ही सब काम चलाया जाय, तो दो-चार सौ वर्ष बाद अनुवादों के अज्ञेय होने पर इस हिंदू-जाति की क्या दशा होगी ? वह दिन कैसे दुर्भाग्य का होगा, जब सहस्रों वर्षों की प्राचीन यह हिंदू-जाति अस्थिर भाषा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रय लेने के कारण अपनी प्राचीनता, अपनी जातीयता, अपने धर्म और अपने सामाजिक जीवन को खोकर संसार से सदा के लिये मिट जायगी ? अस्थिर भाषा के आश्रय से कालांतर में इसका 'मूल-भ्रंश' हो जायगा ॥ ५ ॥ यदि अनुवाद दूषित हुआ, तो मूल-ज्ञान के विना उसकी शुद्धि कौन करेगा ? ६ ॥ हमारी जातीयता और जाति की प्राचीनता जैसे संस्कृत के कारण सुरक्षित है, वैसे और किसी भाषा से नहीं रह सकती ॥ ७ ॥ भारत की प्रायः सभी प्रचलित भाषाएँ अपने-अपने भाव प्रकाशित करने के लिये संस्कृत का ही सहारा लेती हैं। फिर ये अपनी माता का विघात कैसे करेंगी ? ८-१० ॥ आज विज्ञान की कृपा से प्रतिदिन नए-नए भाव प्रकाशित हो रहे हैं। भारत में संस्कृत के सिवा और कौन-सी ऐसी भाषा है, जो उन सबके बोध के लिये पर्याप्त शब्द दे सके ? संस्कृत के सदृश धातु और प्रत्ययों के द्वारा नवीन शब्द उत्पन्न करने का सामर्थ्य किस भाषा में है ? ११ ॥ संस्कृत उपजीव्य है, प्रधान है, और सब भारतीय प्रतिष्ठित भाषाओं की प्राणप्रद है ; अतः उपजीवकों के सहारे उसका विघात किसी बुद्धिमान् को अभीष्ट नहीं होगा। सेना के भरोसे राजा का प्राण-घात कोई नहीं किया करता ॥ १२ ॥ गुदड़ी और गले-सड़े कपड़ों से जाड़ा तो दूर हो सकता है, परंतु उनके भरोसे पशमीने के दुशाले और रेशमी कपड़े जलाए नहीं जाते ॥ १३ ॥ ऐसा कौन है, जो अपने घर के घड़ों को पानी से भरा देखकर अमृत-तुल्य पानीवाले कुएँ को मिट्टी से पाटना शुरू कर दे ? १४ ॥ वह कौन है, जो अपनी अंजलि के जल को आचमन के लिये काफ़ी समझकर गंगा की धारा को रोकने की सलाह दे ? १५ ॥ ऐसा कौन मूर्ख है, जो गंदे तालाब से निकली हुई क्षुद्र नाली से अपने खेत की क्यारी को भरा देखकर गंभीर गर्जन करते हुए मेघों को घोर दृष्टि से घूरना शुरू करे ? १६ ॥ क्या ऐसा भी कोई है, जो ग्रामोफ़ोन के रेकर्डों का गाना सुनकर बड़े-बड़े गवैयों को फाँसी पर लटकाने का हुक्म दे ? १७ ॥ रविवर्मा के चित्रों के ब्लाकों से बनी हज़ारों तसवीरें गली-गली कौड़ियों के मोल मिलती हैं ; लेकिन क्या उनके भरोसे ख़ास रविवर्मा की तैयार की हुई भाव-भरी, कला-कौशल की मूर्ति, प्रधान तसवीरों को कोई फाड़ डालने की इच्छा करेगा ? १८ ॥ यज्ञ आदि धार्मिक कृत्यों में उन्हीं शब्दों के उच्चारण से धर्म होता है ; अतः धार्मिक पुरुषों को तो संस्कृत की रक्षा करनी ही चाहिए ॥ १९ ॥

× × ×

१५. बात करनेवाला सूत्र

गत आषाढ़-मास की माधुरी में 'बात करनेवाला सूत्र'-शीर्षक नोट पढ़कर एक सज्जन ने उसके संबंध में कुछ और सूचनाएँ दी हैं। उन्होंने इस यंत्र को अपनी आँखों से देखा है, और उसका व्यवहार भी किया है। वह लिखते हैं—"यह यंत्र उन बड़े लोगों के लिये बहुत उपयोगी है, जिनका समय बहुत अमूल्य है। आजकल बड़े-बड़े कार्य-कर्ताओं को प्रायः नित्य ही सैकड़ों पत्र एवं पत्रोत्तर का मूल-लेख (Draft) लिखना पड़ता है, और पीछे उसे क्लर्क टाइप करते हैं। अब सोचने की बात है कि जो मूल-लेख घंटों में लिखा जाता, वह इस यंत्र के द्वारा मिनटों में ख़तम हो जाता है, और जैसा कि विगत नोट में लिखा जा चुका है, उसे कहीं दूर भेजने में भी बहुत सुबीता है। इसके अतिरिक्त इससे एक लाभ और है। वह यह कि इस यंत्र में सुनने के लिये दो भाग हैं। एक तो जिसके लगाने से आवाज़ बहुत ज़ोर की होती है, और कमरे में बैठे बहुत लोग उसे सुन सकते हैं। इसके द्वारा कहीं दूर का दिया हुआ व्याख्यान तक मँगाकर सुना जा सकता है। दूसरा भाग वह है, जो इस यंत्र की उपयोगिता को और भी बढ़ाता है। पाश्चात्य-जगत् में इसी भाग से विशेष काम लिया जाता है। इस भाग को केवल एक मनुष्य अपने दोनों कानों में लगाता है। उसका कार्य यह है कि बाहर का कोई शोर-गुल नहीं सुन पड़ता, केवल इस यंत्र की कुल बातें बहुत स्पष्ट सुनी जाती हैं। पाठकों ने देखा होगा, कलकत्ते, बंबई आदि बड़े-बड़े नगरों में सदा ही गाड़ी, ट्राम वग़ैरह सवारियाँ और मनुष्य-कंठ का कोलाहल हुआ करता है। आस-पास के कल-कारख़ानों की मशीनों से भी कुछ कम शब्द नहीं होता। ऐसी जगहों के कार्यालयों में विशेषकर क्लर्कों को बाहर के हल्ले-गुल्ले के मारे काम एवं टाइप करने में बहुत दिक़्क़त हुआ करती है। वहाँ तो आपस की बात सुनना भी कठिन होता है। ऐसी जगहों में इस यंत्र के द्वारा बहुत सरलता से, विना बाहर की कोई आवाज़ सुने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए, केवल अपने मतलब की बातें सुनते हुए, बहुत एकाग्रता के साथ, टाइप किया जाता है। यह मशीन भारत में प्रायः तीन वर्ष से आई हुई है, और इसके द्वारा बहुत कार्यालयों में काम भी हो रहा है। इस मशीन के भारतवर्षीय एजेंट Messrs T. R. Pratt & Co., 30./2 Bowbazar St., Calcutta. है। इसका मूल्य लगभग चार सौ रुपए के है।

× × ×

१६. सरकार का पक्षपात

यह बात प्रायः सभी लोगों को मालूम है कि गवर्नमेंट का व्यवहार कालों और गोरों के साथ समान नहीं है। जिस पद पर गोरे को १,०००) वेतन मिलता है, उसी पद पर काम करनेवाले काले को, गोरे से अधिक योग्यता रखने और परिश्रम करने पर भी, मुशकिल से २००-३०० रुपए का वेतन दिया जाता है। यहाँ तक कि सरकार के लिये समान मूल्य की जान देने के लिये हर वक्त तैयार अत्यंत राजभक्त सैनिकों में भी कालों को, अधिक वीर और आज्ञा-पालक होने पर भी, गोरों से कहीं कम वेतन दिया जाता है। व्यवस्थापक-सभा में एक प्रश्न के उत्तर में सरकार की ओर से सरगाड्फ़े ने जो हिसाब बताया था, वह पाठकों के जानने के लिये नीचे दिया जाता है—

गोरे		वेतन	काले		वेतन
सर्जेंट	(विवाहित)	२६०)	हवलदार	पैदल	५२)
,,	(अविवाहित)	२०४)	,,	तोपख़ाना	५२)
कार्पोरल	(विवाहित)	२२६)	,,	घुड़सवार	५८)
,,	(अविवाहित)	११७)	नायक	पैदल	४८)
सिपाही	(विवाहित)	२०६)	,,	तोपख़ाना	४६)
,,	(अविवाहित)	१५०)	,,	घुड़सवार	५३)
			सिपाही	पैदल	४२)
			,,	तोपख़ाना	४४)
			,,	घुड़सवार	४५)

इस पर अधिक टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। केवल इतना ही कहना यथेष्ट है कि सरकार की ऐसी पक्षपात-नीति से ही भारतीयों के असंतोष की मात्रा बढ़ती जाती है।

× × ×

१७. फलों को अधिक समय तक सुरक्षित रखना

स्वास्थ्य-शास्त्र की सम्मति है कि ताज़े फल खाने से स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ता है। भोजन के समय दो-एक ताज़े फल खाने से बड़ा उपकार होता है। फलों का उपादान शरीर के लिये पोषक और रुधिर-शोधक होता है। मगर किसी को कोई फल रुचता है, किसी को कोई फल। कोई अमरूद पसंद करता है, तो कोई संतरे; कोई आम खाता है, तो कोई पपीता। किंतु सभी फल सब ऋतुओं में नहीं मिलते। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न फल होते हैं। फल अधिक दिन तक रक्खे भी नहीं रह सकते, सूख या सड़-गल जाते हैं। कुछ दिन हुए, वैज्ञानिकों का ध्यान इधर गया, और उन्होंने सोचा कि ऐसा कोई उपाय अगर निकाला जाय कि बारहों महीने हरएक फल ताज़ा और खाने के लायक़ बना रहे, तो व्यापार में लाभ और सर्व-साधारण के लिये भी बड़ी सुविधा हो। वैज्ञानिकों ने चेष्टा की, और उसमें उन्हें सफलता भी हुई। अब Preserved fruits (सुरक्षित फल) का व्यापार योरप और अमेरिका में खूब चल रहा है। भारत में भी विदेश से ऐसे सुरक्षित फल अधिक परिमाण में आने लगे हैं। कुछ लोग भारत में भी फलों की रक्षा का प्रयत्न कर रहे हैं, और उनका वह प्रयत्न बहुत कुछ सफल भी हुआ है। इस देश से भी आम, सेब, अनानास, अमरूद, नींबू आदि फल बोतल या टीन में बंद कर ताज़ी हालत में भेजे जाने लगे हैं। हाल में अमेरिका में एक नए ढंग से परीक्षा की गई है। देखा गया कि इस De-hydration-पद्धति से फल का रंग, खुशबू और स्वाद, सब कुछ बहुत समय तक ताज़ा रक्खा जा सकता है, और उसके गुण में भी कुछ कमी नहीं होती। De-hydration-पद्धति सहज भी है। मगर सावधानी की बड़ी ज़रूरत है। एक तरह के यंत्र की सहायता से फल पर इस तरह वायु-तरंग छोड़ते हैं कि फल के भीतर का सारा जल-भाग या तरी सोख ली जाती है; परंतु उससे फल के किसी भाग को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचती। वह फल साल-डेढ़ साल के बाद भी वैसा ही स्वाद देता है, जैसा कि ताज़ा। उसके रंग और गंध में भी कुछ व्यतिक्रम नहीं नज़र आता। सिर्फ़ खाने से एक घंटा पहले उसे जल में भिगो देना पड़ता है। इसी उपाय से हरी तरकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी रक्खी जा सकती है। फल की तरी सोख लेने से उसका वज़न बहुत कम हो जाता है। रोज़गारियों के लिये यह कम लाभ की बात नहीं है। वे कम महसूल में अधिक फल भेज सकते हैं। साथ ही फल में एसिड, वाइटामिन और नमक आदि उपयोगी उपादान जो रहते हैं, उनमें भी कुछ कमी नहीं होती।

× × ×

१८. एक अमेरिकन नाटककार

बहुत दिनों से अमेरिका इसके लिये बदनाम चला आता है कि वहाँ कोई अच्छा काव्य या नाटक नहीं लिखा जाता; अर्थात् वहाँ कोई उत्कृष्ट कवि या नाटककार नहीं पैदा होता। यह भी कहा जाता है कि अमेरिका रोज़गारी मुल्क है। कल-कारख़ानों के बोझ और दौलत के दबाव में अमेरिकनों का हृदय ऐसा दब रहा है कि उसकी ओर भावुकता और कल्पना अग्रसर होते हिचकती है।

लेकिन हाल में एक प्रतिभाशाली नाटककार ने प्रकट होकर अपनी मातृ-भूमि के इस कलंक को दूर कर दिया है। उसकी प्रतिभा के विकास को देखकर सभी लोग उसके भक्त बनते जाते हैं। इन नाटककार का नाम है यूज़िन ओ'नील। योरप-भर में सर्वत्र इसके नाटकों के अनुवाद निकल रहे हैं। इनके "The Straw," "Difl'rent", "The Emperor Qones" नाटकों की इँगलैंड में ऐसी प्रसिद्धि और प्रशंसा हो रही है कि अमेरिकन-विद्वेषी अँगरेज़ लोग उक्त नाटकों की प्रशंसा करते समय नाक-भौं सिकोड़ कर कहते हैं—ओ'नील तो आयरिश-मैन है, अमेरिकन नहीं।

रूस के मास्को-शहर के आर्ट-थिएटर में ओ'नील के The Hairy Ape नाटक का अभिनय हुआ था। उसे देखकर सभी ने तारीफ़ के पुल बाँध दिए। फ़्रांस, जर्मनी, बेलजियम, आयर्लैंड, सभी जगह उसके नाटक पढ़े जाते हैं, उनका अभिनय होता है, और अनुवाद किए जा रहे हैं। उसके अन्य नाटकों के नाम हैं—"Anna Bhristie", "Beyond the Horizon", "The White-hdead Boy," The First Man"। इन नाटकों के उपाख्यान (प्लाट) और पात्रों के चरित्र-चित्रण सचमुच अपूर्व हैं।

× × ×

१९. बायस्कोप के लिये नाटक लिखना

आजकल भारत में भी मदन-कंपनी की कृपा से लखनऊ, काशी, कानपुर, कलकत्ता आदि अनेकों शहरों में बायस्कोप का प्रचार बढ़ता जा रहा है। उक्त कंपनी की देखा-देखी और भी अनेक बायस्कोप-कंपनियाँ स्थापित हुई हैं, हो रही हैं, और होंगी। उन कंपनियों के लिये नए-नए नाटकों का लिखा जाना भी स्वयंसिद्ध बात है। कारण, हर कंपनी के पास ख़ास अपने नए नाटकों के फ़िल्म रहने से ही उनकी क़दर हो सकती है। इसीलिये हम Photo-Play-पत्रिका से इस संबंध की कुछ बातों का सारांश यहाँ लिखते हैं—

बायस्कोप की इस समय बाल्यावस्था है। इस समय ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि इसके कथा-नाट्य बिलकुल निर्दोष हों। आधुनिक नाट्य-साहित्य की सृष्टि मध्य युग में हुई थी। कई शताब्दियों तक इसकी चर्चा या अनुशीलन के फल से कथा-नाट्य की वर्तमान अवस्था देख पड़ती है। आधुनिक उपन्यास-साहित्य के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। छोटी कहानियाँ (आजकल की भाषा में गल्प) तो कई शताब्दी पहले लिखी नहीं, बल्कि ज़बानी कही जाती थीं। उसके बाद उनके लिखने का चलन हुआ, और उस युग को भी कई शताब्दियों ने पीछे ढकेल दिया है। इस समय, इतने दिनों बाद, उसी छोटी कहानी का यह विचित्र मनोहर रूप देखकर विश्व-वासी मानव मुग्ध और आश्चर्य-चकित हो रहे हैं।

साहित्य के हिसाब से बायस्कोप (चलते-फिरते चित्रों) की अवस्था केवल १०-१२ वर्ष की ही है। यह बालक चाहे जितनी तेज़ी से उन्नति के मार्ग में अग्रसर हो, बालक ही है। उसके निकट प्रौढ़ नाटक अथवा उपन्यास के परिपूर्ण माधुर्य की आशा करना अनुचित है। तथापि इस दृष्टि से इस बालक का भाग्य बहुत ही अच्छा है कि इसने जन्म लेते ही संपूर्ण संसार के सभी लोगों की—वे चाहे जिस भाषा के बोलनेवाले हों—दृष्टि अपनी ओर खींच ली है, और सबसे आदर प्राप्त किया है।

बायस्कोप के प्रथम युग में अभिनय करनेवाले नर-नारी केवल हाथ-पैर चलाने के प्रखर वेग की ही साधना करके कर्म-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। उन दिनों डाइरेक्टर की एक-मात्र आज्ञा यही थी कि हिलते-डुलते रहो, हाथ-पैर चलाते रहो, दम-भर भी स्थिर न रहो! उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद जब बायस्कोप में दौड़ती हुई रेलगाड़ी, चलती हुई मोटर और जहाज़, उड़ती हुई चिड़िया और घुड़-दौड़ के चित्र दिखाए जाने लगे, तब सबने सोचा कि बायस्कोप ने आज क़िला फ़तह कर लिया। उन दिनों बायस्कोप से इससे अधिक आशा कोई नहीं करता था!

उसके उपरांत बायस्कोप की रंग-भूमि और भी विस्तृत रूप में देख पड़ी। छोटी-मोटी कहानियाँ बायस्कोप के परदे पर दिखाई जाने लगीं। क्रमशः बड़े-बड़े नाटकों और उपन्यासों की घटनावलियाँ जब बायस्कोप में दिखाई जाने लगीं, तब तो लोगों की आशा और आग्रह की सीमा नहीं रही। नाटक का स्टेज बायस्कोप के एक सादे कपड़े के परदे में अवतीर्ण हो गया! किंतु तो भी नाटक की रंग-भूमि एक बात में अद्वितीय ही बनी रही—बायस्कोप उसमें उसकी प्रतिद्वंद्विता नहीं कर सका। इस विषय में सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत बर्नार्डशा ने लिखा था—

"यह सच है कि बायस्कोप सब तरफ़ से स्टेज को ग्रसने के लिये उद्यत है, तथापि एक बात में इस समय भी स्टेज का प्रतिद्वंद्वी कोई नहीं है। वह है भाषा अथवा स्वर। भाषा पात्रों के मुख से निकलकर दर्शकों के चित्त में अनायास भिन्न-भिन्न रस उत्पन्न करती है। बायस्कोप की गति वहाँ तक नहीं है।"

इस कमी को दूर करने के लिये बायस्कोप में Sub-title की ईजाद हुई। इस ub-title में भाषा का अलंकार आकर दिखाई दिया, काव्य का आभास मिला, रंग-तमाशे की कमी नहीं रही। अब क्रमशः बायस्कोप की इतनी उन्नति हुई है कि बर्नार्डशा की उक्त उक्ति पर हड़ताल फिर चली है। इस समय रेलों की टक्कर, ख़ूनी जानवरों के सामने से भागना या घर में आग लगाना दिखाना ही बायस्कोप की बहुत बड़ी करामात नहीं समझी जाती। अब दर्शक लोग बायस्कोप के चित्र में मानसिक प्रवृत्तियों का प्रस्फुरण अथवा भावों का घात-प्रतिघात देखना चाहते हैं, और उनकी वह इच्छा बहुत कुछ पूर्ण भी हो रही है। इस समय नाटक से बढ़कर बायस्कोप का आदर देखा जाता है।

बायस्कोप के कथानक के स्थूल रूप से दो भाग हैं। एक तो असल प्लॉट, और दूसरा, वह सत्य या मूल-तत्त्व, जिसका प्रतिपादन उस पुस्तक का उद्देश्य हो। कथानक तो स्थूल रूप से साधारण ही अच्छा लगता है, किंतु वह प्रतिपाद्य विषय (Theme) चित्र-नाट्य को हृदय के भीतर पहुँचा देता है, उसमें जान डाल देता है।

जो लेखक बायस्कोप के चित्रों के लिये नाटक लिखना चाहते हों, उनसे स्थूल रूप से दो-चार बातें कह देना आवश्यक है। असल कहानी या कथानक केवल कुछ घटनाओं की समष्टि-मात्र होता है। कथानक तो एक जगह से शुरू होकर Climax में पहुँचा, और उसके बाद अपना काम करके ख़तम हो गया। किंतु किसी सत्य का प्रतिपादन करना हो, तो एक भाव लेकर शुरू करना होगा, और उसको फैलाने के लिये जैसी घटनाओं का प्रयोजन है, वैसी घटनाओं का समावेश करना होगा। उदाहरण-स्वरूप इब्सन के Doll's House को ही ले लीजिए। इसमें इब्सन ने यह कहना चाहा है कि स्त्री पुरुष के हाथ का खिलौना हो उठी है। यही सत्य उनके उक्त नाटक की असल चीज़ है, और इसी को केंद्र करके उनका प्लॉट अग्रसर हुआ है।

बायस्कोप के लिये नाटक लिखने का शौक़ हो, तो ख़ुद बायस्कोप देखने की बड़ी ज़रूरत है। आप अगर बायस्कोप के लिये कोई नाटक लिखना चाहते हैं, तो पहले ख़ूब बायस्कोप देखिए। पहले भले और बुरे, सब चित्र देखते जाइए। अब अगर आप बुरे चित्रों से भले को चुनकर अलग कर सकते हों, तो समझिए, आपकी शिक्षा कुछ अग्रसर हो चली है। जो अच्छा है, वह क्यों अच्छा लगता है, यह समझ सकने की शक्ति पैदा हो जाने पर बायस्कोप के चित्रों का बुरा पहलू आपके मन में अपनी छाया भी न डाल सकेगा। मतलब यह कि चित्र देखकर सोचना और विचारना होगा कि लेखक ने जिस सत्य का प्रतिपादन करना चाहा है, उसे वह ठीक-ठीक कर सका है क्या? कुछ अवांतर विषय या घटना तो बीच में नहीं रख दी है? उसने व्यर्थ के कुछ दृश्य रखकर मन को अस्त-व्यस्त तो नहीं कर दिया? Climax कहीं पर पाया गया है क्या?

इस तरह क्रमशः एक के बाद दूसरा चित्र देखते रहने से title लिखने के संबंध में भी अच्छा ज्ञान उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। Sub-title को किस तरह खूब हृदयग्राही बनाया जा सकता है, इसका ज्ञान भी प्राप्त होगा। इसके अलावा और एक बात का ख़याल रखना चाहिए। संभव है, नाट्य-चित्र लेने के समय नाटककार वहाँ पर न उपस्थित हो, इसलिये उसे प्रत्येक चरित्र की छोटी-मोटी बातों का सब ब्योरा—आना-जाना, खड़े रहना या बैठना, साज-सज्जा, भाव-भंगी—नाटक में लिख देना उचित है। पहले कथानक लिखकर फिर दृश्य-योजना करना अच्छा होता है।

× × ×

२०. अमेरिका में आत्म-हत्या

हमारे यहाँ शास्त्र में आत्म-हत्या की गिनती महापातकों में है। प्रारब्ध-वादी भारत इस लोक के थोड़े-से दुःख, कष्ट या असुविधा में पड़कर आत्म-हत्या कर डालने को कायरपना समझता है। फिर हमारे यहाँ इस लोक के सुख पर उतना लक्ष्य नहीं रहता, जितना परलोक के सुख पर। इन्हीं कारणों से हमारे यहाँ घोर-से-घोर दुःख-कष्ट के अवसर पर भी अधीर होकर आत्म-हत्या नहीं की जाती। किंतु अमेरिका की बात दूसरी है। वहाँ इस लोक का सुख, इस लोक की सुविधा ही सब कुछ समझी जाती है। इसी से वहाँ हर साल इतने आदमी आत्म-हत्या कर लेते हैं कि उनकी संख्या सुनकर रोएँ खड़े हो जाते हैं। अमेरिका के ग़ैर-सरकारी विवरण से मालूम हुआ है कि गत वर्ष केवल संयुक्त-राज्य में १,२०,००० आदमियों ने आत्म-हत्या की है। इन आत्म-हत्या करनेवालों में १००वर्ष के बूढ़े से लेकर ५ वर्ष के बालक तक हैं। उक्त संख्या में एक-तिहाई संख्या स्त्रियों की है। छात्र, अध्यापक, पादरी, जज, बैरिस्टर, सौदागर, लखपती, ग़रीब, सभी श्रेणी के लोग इनमें हैं। इन आत्म-हत्या करनेवालों में से कुछ लोगों ने तो ऐसे तुच्छ कारणों से आत्म-हत्या कर ली है कि हम लोगों को विश्वास ही नहीं हो सकता। एक औरत ने किसी कारण से अपने बाल काट डाले थे, और बाद को दुःख के मारे उसने आत्म-हत्या कर ली। एक व्यक्ति ने गल्फ़ के खेल में शरीक न हो सकने से दुःखित होकर अपनी जान दे दी। एक रमणी ने वारंवार दो बार ट्रेन मिस होने से दुःखित होकर आत्म-हत्या कर ली। एक आदमी ने इस विश्वास से कि प्रलय का समय बहुत शीघ्र आनेवाला है, जान दे दी। एक मर्द ने पालतू बिलाव के लिये दूसरे से झगड़ा करके आत्म-हत्या कर डाली। कहाँ तक गिनावें, अनेक आत्म-हत्याओं के कारण ऐसे ही साधारण हैं। अमेरिका की आत्म-हत्याओं का सरकारी ब्योरा जो निकला है, उसके अनुसार वहाँ एक साल में १५,५३० आत्म-हत्याएँ हुई हैं। इन आत्म-हत्या करनेवालों में १५ वर्ष से कम अवस्था के लड़के-लड़की ६०० हैं। डॉक्टर वारेन का कहना है कि इन सब बालक-बालिकाओं की आत्म-हत्या का कारण बाल-विवाह की असुविधाएँ हैं। सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि पंद्रह वर्ष की अवस्था में १,६०० लड़कों और १,२०० लड़कियों के ब्याह हो गए थे। ४,७०० लड़कियाँ १४ वर्ष की अवस्था में ही संतान की मा हो चुकी थीं। इनमें २,२००ने आत्म-हत्या कर ली है। आत्म-हत्या करनेवाले बालकों में १८ की अवस्था बारह वर्ष से कम थी, और २ की अवस्था दस वर्ष से भी कम। हमारे यहाँ के कुछ मनचले लोग इसी अमेरिका की सभ्यता को अपना आदर्श बनाने के लिये बेताब हैं!

× × ×

२१. विज्ञान की महिमा

विज्ञान का ज्ञान वास्तव में बहुत उपयोगी और बहु-मूल्य है। प्रकृति के ख़ज़ाने में बहुत-सी ऐसी अदृश्य अस्पष्ट शक्तियाँ मौजूद हैं, जिनका पता लगाकर अपने अधीन कर लेने से बड़े-बड़े अद्भुत कार्य किए जा सकते हैं। प्रकृति के गुप्त रहस्यों की खोज वैज्ञानिक अनुसंधान से की जाती है। यह युग विज्ञान ही का है। इधर वैज्ञानिक अनुसंधान के द्वारा बहुत-सी ऐसी बातें संभव बन गई हैं, जिनका ख़याल भी कभी किसी के मन में न हुआ होगा। वैज्ञानिक अनुसंधान की बदौलत किए गए आविष्कार सचमुच आश्चर्य-जनक हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों को देखकर डॉक्टर रसल ने इस युग को Wonderful Century (आश्चर्य-जनक शताब्दी) कहा है। आजकल मनुष्य-जीवन का मुख्य कर्तव्य यही समझा जाता है कि प्रकृति की अच्छी तरह छान-बीनकर उसे अपने काम में आनेवाली बनाया जाय, यथासंभव उससे लाभ उठाया जाय। योरप और अमेरिका के वैज्ञानिक नए-नए अनुसंधान करके अपने देश की संपत्ति बढ़ा रहे हैं। उन्होंने अखंड परिश्रम और जाँच करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत-से ऐसे आविष्कार कर डाले हैं कि उनसे दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में बड़ा सुबीता हो गया है, समय और धन की बड़ी बचत हो गई है। वैज्ञानिक खोज के प्रभाव से आज खेती, व्यापार तथा हरएक कला-कौशल के काम में युगांतर उपस्थित हो गया है। बरसों का काम महीनों में, महीनों का काम दिनों में और दिनों का काम घंटों में होने लगा है। साधन सुगम हो गए हैं। उत्पादिका-शक्ति भी खूब बढ़ गई है। जिस भूमि में मन-भर अन्न उपजता था, उसमें दस-बीस मन उपजने लगा है। कृत्रिम उपाय से वर्षा करने के आविष्कार से अब अकाल का भय भी जाता रहा है। जो गउएँ सेर-दो सेर दूध देती थीं, उनकी नसल को उन्नत करके ऐसा कर दिया गया है कि आज वे मनों दूध देने लगी हैं। इधर भारत की दशा क्या हो रही है! यहाँ विज्ञान की शिक्षा जो कुछ दी जाती है, वह भी निष्फल होती है। यहाँ आविष्कार करने की कोई सुविधा नहीं है। न उतना धन है, न वैसी निश्चिंतता है कि जिनमें विज्ञान का वैसा ज्ञान है, वे जाँच करके कोई आविष्कार कर सकें। अगर कोई आविष्कार होता भी है, तो आविष्कार करनेवाले को उत्साह और सहायता नहीं मिलती। तभी तो सर जगदीशचंद्र वसु या पी० सी० राय को अपने आविष्कारों की दाद के लिये योरप या अमेरिका जाना पड़ता है; विलायत में विज्ञान की शिक्षा के प्रचार के लिये लोग करोड़ों रुपए देते हैं, और सरकार भी यथा-शक्ति ख़र्च करती है। यहाँ लाखों रुपए दान-पुण्य में दिए जाते हैं। यदि वह धन विज्ञान की शिक्षा के प्रचार में ख़र्च किया जाय, तो देश का बड़ा उपकार हो सकता है।

× × ×

२२. भारत और विलायती व्यापारी

योरप का सारा व्यापार भारत के बदौलत चल रहा है। विलायती माल को अगर भारत न ख़रीदे, तो आज विलायती व्यापारियों की बड़ी बुरी दशा हो। अन्य सब देश यथासंभव अपने ही यहाँ आवश्यक वस्तुएँ बना लेते हैं। वे बहुत कम वस्तुएँ अन्य देशों से ख़रीदते हैं। जापान, अमेरिका, फ़्रांस, इँगलैंड, जर्मनी आदि सभी देशों के माल भारत में ही खपते हैं। यही कारण है कि भारत की व्यापारिक उन्नति का आंदोलन विदेशी व्यापारियों में भारी हलचल डाल देता है। एक अँगरेज़ ने 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' में स्पष्ट लिखा है कि "भारत में इस समय ३१,९०,७५,१३२ मनुष्य हैं, और यह भारत की आबादी हम व्यापारियों के लिये बहुत ही प्रसन्नता की बात है। जहाँ जितनी अधिक आबादी होगी, वहाँ उतना ही अधिक माल खपेगा, और जितनी अधिक खपत होगी, उतना ही अधिक माल बनेगा। साधारणतः भारत की दशा बहुत अच्छी है, और यहाँ व्यापार-व्यवसाय बढ़ने की खूब संभावना है।" अँगरेज़ व्यापार के लिये ही भारत को हाथ में रखना चाहते हैं। मि० चेंबरलेन ने कुछ दिन हुए कहा था कि "साम्राज्य ही व्यापार है, व्यापार ही से वह पैदा किया गया है। व्यापार के बिना वह एक दिन भी नहीं टिक सकता। भारतवर्ष हमारे देश का सबसे बड़ा और बहु-मूल्य ग्राहक है।" इससे यह स्पष्ट है कि भारत के व्यापार की उन्नति न होने देने का प्रयत्न सदैव अँगरेज़ व्यापारी करते रहेंगे। इस विषय पर हम फिर किसी संख्या में और अधिक लिखेंगे।

× × ×

२३. नींबू के गुण

एक विलायती प्रोफ़ेसर ने नींबू के गुणों की बड़ी तारीफ़ की है। वह लिखते हैं, सबेरे उठकर हाथ-मुँह धोकर नींबू का रस पानी में मिलाकर पीने से शरीर में बिजली बढ़ती है। अर्क़ में उससे दसगुना पानी मिला लेना चाहिए। सोने से पहले पानी में मिलाकर नींबू का रस पीने से क़ब्ज़ की शिकायत नहीं रहती। अगर अजीर्ण हो गया हो, तो नहाने के बाद नींबू का रस पी लेना लाभदायक होगा। यद्यपि डॉक्टर लोग नींबू का रस पीने के ख़िलाफ़ होंगे, पर उक्त प्रोफ़ेसर महाशय अपने अनुभव के बल पर उसकी उपेक्षा करने की सलाह देते हैं। यह प्रोफ़ेसर आज १५-२० साल से रोज़ सबेरे उठकर १-२ नींबू का रस निचोड़कर जल के साथ पीते हैं। उससे उन्हें बड़ा लाभ हुआ है। रोग कभी उनके पास नहीं फटकते। वह रक्त के संशोधन के लिये नींबू के रस को अक्सीर बताते हैं। जिन लोगों को ऊपर बताए गए रोगों में से किसी की शिकायत हो, उन्हें अवश्य परीक्षा करनी चाहिए।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४. अमेरिका का चीनी का व्यवसाय

अमेरिका में चीनी का व्यवसाय दिन-दिन उन्नति करता जा रहा है। सन् १९१२ में यह व्यवसाय जितनी तादाद में था, उससे अब ३१गुना, बल्कि उससे भी अधिक, हो गया है। अमेरिका में तैयार चीनी का जितना अंश जिस सन् में बाहर भेजा गया, सो नीचे लिखा जाता है—

१९१२	में	२९,३३८ टन	एक टन का वज़न २,००० पौंड माना गया है।
१९१३	,,	२५,८८६ ,,	
१९१४	,,	१,९५,२०५ ,,	
१९१५	,,	४,८१,७८७ ,,	
१९१६	,,	७,८८,३२६ ,,	
१९१७	,,	५,०५,३९८ ,,	
१९१८	,,	२,०३,६४८ ,,	
१९१९	,,	७,३७,७०४ ,,	
९२०	,,	४,६१,६४४ ,,	
१९२१	,,	४,६६,८९६ ,,	
१९२२	,,	९,१८,३६१ ,,	

सन् १९२२ में जो ९,१८,३६१ टन चीनी अमेरिका ने बाहर भेजी, उसमें से १३,९५० टन भारत में आई थी। अमेरिका अपनी आवश्यकता पूरी करके लाखों टन चीनी बाहर भेजता है, और भारत सब कुछ साधन सुलभ रहने पर भी—चीनी का व्यवसाय अपना पुराना व्यवसाय होने पर भी—अपनी ज़रूरत भी नहीं पूरी कर सकता; बल्कि बाहर से मँगाकर अपना काम चलाने को बाध्य होता है। सन् १९२१-२२ में भारत ने ७,८३,००० टन और सन् १९२२-२३ में ५,०४,००० टन चीनी बाहर से मँगाई है।

× × ×

२५. बंदर की बातें

लंदन के चिड़ियाख़ाने में एक मनुष्य के सिपुर्द केवल बंदरों का ही विभाग है। बंदरों के खिलाने-पिलाने का प्रबंध उसी के हाथ में है। उसका कहना है कि बहुत दिन के अभ्यास से वह अब बंदरों की भाषा को बहुत कुछ समझने लगा है। वह कहता है, बंदरों में घृणा, क्रोध, लालच, घमंड आदि की प्रवृत्तियाँ ही विशेष होती हैं। उन्हें बात-चीत करने के बदले चुप रहना ही अधिक पसंद होता है। उसने अपनी देख-रेख में रहनेवाले बंदरों में से एक का नाम पीटर रक्खा है। पीटर उसके साथ भोजन भी करता है। ठीक समय पर, घंटी बजते ही, आदमी की तरह वह भोजन के टेबुल के सामने एक कुर्सी पर बैठ जाता है। जब सब लोग भोजन शुरू कर देते हैं, तब वह भी खाने लगता है। चम्मच से चाय भी पीता है, मगर क्या मजाल कि एक बूँद भी गिर जाय। भोजन के उपरांत वह अपना काँटा-चम्मच आदि सामान यथास्थान रख देता है। जिस दिन उससे उसका शिक्षक कह देता है कि आज तुम साथ भोजन न करने पाओगे, क्योंकि तुमने शरारत की है, उस दिन वह उदास हो जाता है, और कुछ भी नहीं खाता।

× × ×

२६. अद्भुत झील

आयर्लैंड में एक अद्भुत झील है। उसमें जो चीज़ डाल दो, वही पत्थर बन जायगी। जो चीज़ पूरी तौर से पत्थर नहीं बन सकती, उसके चारों ओर पत्थर की तह जम जाती है, और धीरे-धीरे वह पत्थर खूब कड़ा हो जाता है। हमारे यहाँ ऐसी झील होती, तो उस पर हज़ारों रुपए की भेंट-पूजा चढ़ जाती।

× × ×

२७. सबसे छोटा प्रजा-तंत्र राज्य

योरप में इटली के पास सेनमेरीनो नाम का एक स्वतंत्र प्रजा-तंत्र राज्य है। इसका क्षेत्र-फल ३८ वर्ग-मील है, और आबादी १२ हज़ार। हमारे यहाँ के एक साधारण शहर से भी वह छोटा है; लेकिन तो भी उसे एक स्वतंत्र-राष्ट्र की पदवी और प्रतिष्ठा प्राप्त है। उसका शासन प्रजा के निर्वाचित प्रतिनिधियों की एक 'ग्रेट कौंसिल' (महासभा) द्वारा होता है। प्रबंध के लिये हर छठे महीने इसी सभा के दो मेंबर 'कैप्टन रीजेंट' नियत किए जाते हैं। गत महायुद्ध में इस ज़रा-से राज्य ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की थी, और अपनी सेना को—जिसमें कुछ दर्जन सिपाही थे—इटली की सेना के साथ युद्ध-क्षेत्र में भेजा था। पर एक बात बड़ी महत्त्व की है। यह संसार का सबसे पुराना प्रजा-तंत्र है। इसकी वर्तमान शासन-पद्धति एक हज़ार साल से क़ायम है। अब इटली के समान सेनमेरीनो में भी फ़ैसिस्टी शासन क़ायम हो गया है।

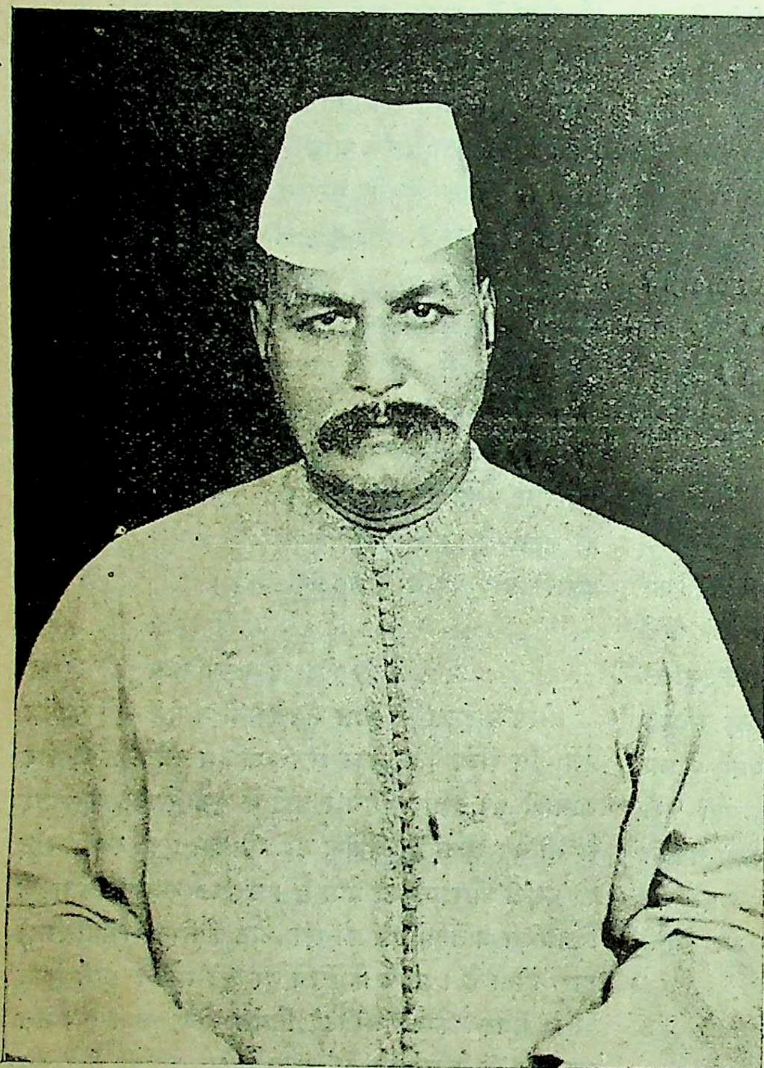
× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८. स्वर्गीय पं० रामभजदत्त चौधरी

गत संख्या में पं० रामभजदत्त चौधरी की असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए हमने उनका चित्र आगामी संख्या में देने के लिये लिखा था। तदनुसार आपका चित्र नीचे दिया जाता है—



पं० रामभजदत्त चौधरी

× × ×

२९. इंजीनियरी-कौशल

अमेरिका में एक महराबदार, पत्थरों का बना रेल का पुल है। वह ७४० फ़ीट लंबा और १५० फ़ीट ऊँचा है। उसे बने २८ वर्ष हुए। एडवर्ड गोइफ़े नाम के एक इंजीनियर ने समूचे-का-समूचा वह पुल ७५ फ़ीट हटाकर रख दिया है! उसकी जगह दूसरा पुल बनाना था। है न आश्चर्य की बात!

× × ×

३०. बम बरसानेवाला नया जहाज़

आजकल इँगलैंड भावी युद्ध के लिये बराबर नए-नए आविष्कार कर रहा है। अभी एक हवाई जहाज़ बनाया गया है, जो शहरों पर या युद्ध के मैदान में बम बरसाने के काम में अब तक के सब जहाज़ों से बढ़कर है। इसके दो हिस्से हैं। ऊपर के हिस्से में मशीनगन चलाने और जहाज़ को उड़ानेवाले बैठते हैं। नीचे के हिस्से में बम फेंकने की जगह बनाई गई है। इस जहाज़ में केवल ३ आदमियों की आवश्यकता रहती है। इसके पंख इस तरह बनाए गए हैं कि ज़रूरत पड़ने पर उनको घड़ी की शकल में बदल दिया जाता है। जहाज़ को थोड़ी-सी जगह में ही रक्खा जा सकता है। इसमें तेल भरने की टंकी इस ख़ूबी से बनाई गई है कि गोली लगने पर भी उसमें आग नहीं लगेगी, बल्कि उसका छेद आपसे बंद हो जायगा। सबसे बड़ी विशेषता इस जहाज़ के एंजिन में है। इस एंजिन का बोझ केवल २५ मन है; पर ताक़त १००० हॉर्स-पावर की है। आजकल १००० हज़ार हॉर्स-पावर के जो साधारण एंजिन मिलते हैं, उनका बोझ १८०० मन से कम नहीं होता। मतलब यह कि यह जहाज़ बड़ी आसानी से दूर-दूर तक उड़कर बड़े-बड़े शहरों को बम-गोलों से नष्ट कर सकेगा। ख़ूब अच्छी तरक़्क़ी हो रही है! ख़ूब शांति-स्थापन की चेष्टा की जा रही है! 'मुँह में राम, बग़ल में छुरी' का बढ़िया उदाहरण है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. रंगीन चित्र

पहला रंगीन चित्र लाजवती का है। लज्जा स्त्री-जाति का स्वाभाविक गुण और उसका प्रकृति-दत्त भूषण है। चंद्रिका के शुभ्र प्रकाश को सामने देखकर नायिका झट अपना दक्षिण अवगुंठन खींचकर अपनी लज्जा-शीलता का कैसा सुंदर दृश्य दिखा रही है! इस चित्र में माधुरी के कुशल चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसादजी वर्मा ने नायिका की लज्जा का भाव और स्वाभाविक सौंदर्य की छटा अंकित करने में सचमुच कमाल कर दिखाया है!

दूसरा रंगीन चित्र दंपति-नामक है। इसका भाव स्पष्ट ही है। वर्षा ऋतु है। बादल घिरे हैं। उद्दीपन की सब सामग्री उपस्थित है। दृश्य संयोग-शृंगार का है।

तीसरा रंगीन चित्र माता और पुत्र का है। माता अपने तीन वर्ष के शिशु को गोद में लिए हुए दासी-सहित बाग़ की हवा खाकर और सैर करके अपने भवन को लौट रही है। शिशु की प्रसन्नता से प्रभावान्वित होकर माता का मुख-मंडल आनंद-पुलकित हो उठा है। माधुरी के पाठकों के चिरपरिचित चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू ने इस चित्र में माता की पुत्र-वत्सलता का भाव बड़ी ख़ूबी के साथ चित्रित किया है।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र 'आजकल के ग्रेजुएट' है। डिग्री-प्राप्त करने की चेष्टा में कॉलेज का अत्यंत अधिक कोर्स तो उनकी पीठ पर लदा ही रहता है, पर छोटी ही अवस्था में व्याह हो जाने के कारण उसी समय स्त्री और कुटुंब के पोषण-भार से वे और भी दब जाते हैं। निदान ग्रेजुएट महाशय इन दोनों बोझों से दबे हुए दिन-रात की मेहनत, चिंता और अभाव की ताड़ना से पूरे बैल बनकर दोनों दीन से जाते हैं—न डिगरियाँ ही मिलती हैं, न कुटुंब ही सुखी हो पाता है। पूर्ण-वयस्क और समर्थ हुए बिना परिणय करने का यही कुफल होता है। इस व्यंग्य-चित्र में चित्रकार ने परोक्ष रूप से बाल-विवाह पर अच्छा कटाक्ष किया है।

दूसरी व्यंग्य-चित्रावली 'पुत्र की इच्छा और उसका परिणाम' है। इसे भी माधुरी के चित्रकार श्रीयुत रामेश्वरप्रसादजी वर्मा ने चित्रित किया है। भाव चित्रों पर दी हुई हमारी कविता में पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों की लूट ! अपूर्व अवसर !! पुस्तकों की लूट !!!

रुपए का माल बारह आने में

केवल

दो मास के लिये

सावन-सुदी ५ से क्वार-सुदी ५ तक

१७ अगस्त से १४ ऑक्टोबर तक

इसी संख्या के साथ

अलग बँटे हुए विज्ञापन को पढ़िए

और

जिन पुस्तकों की ज़रूरत हो,

उन्हें पत्र में लिखकर

आज ही

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

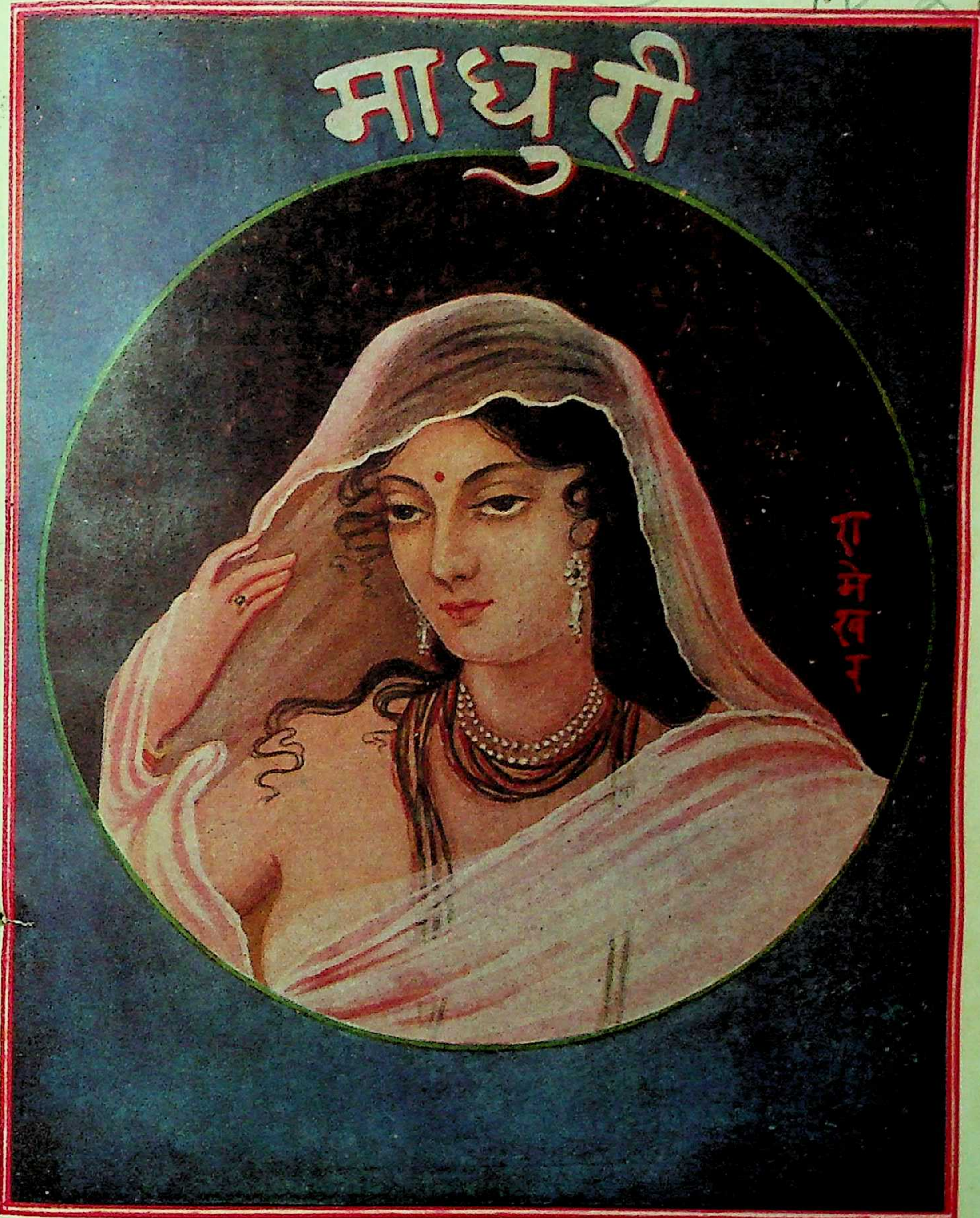
से मँगा लीजिए।

समय निकल जाने पर पछताना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष २ ; खंड १] आश्विन, ३०० तुलसी-संवत [संख्या ३ ; पूर्ण संख्या १५
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुरी



संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)

छमाही मूल्य ३॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुंदर गुच्छेदार चमकीले बाल



कामिनिया ऑइल

हरएक स्त्री की शोभा बढ़ाकर, उसकी कुदरती सुंदरता को दुगुना बढ़ाता है। क्या आप ऐसा नहीं चाहते कि अपने और अपनी स्त्री तथा बच्चों के बाल घने, लंबे, काले, चमकीले और रेशम के तुल्य मुलायम हों? यदि चाहते हों, तो दुनिया में मशहूर रजिस्टर्ड "कामिनिया ऑइल" का व्यवहार करें। 'कामिनिया ऑइल' एक सच्चा वनस्पति-मिश्रित सुगंधित द्रव्यों से बनाया हुआ नुमाइशी सुगंधित तेल है। दाम प्रति-शीशी १) रु०। डाक-म० ।=), ३ शीशी २॥=) डा०-म० ॥।)

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)



ओटो दिलबहार को सेंट कहो, चाहे इत्र कहो। क्योंकि इसमें स्पिरिट का नाम तक नहीं है। इस "ओटो दिलबहार सेंट" का कपड़े पर दाग़ नहीं पड़ता। यह सेंट कई क़िस्म के नए-नए फूलों के अर्क़ से बनाया गया है। इसके दो या चार बूँद कपड़े पर डालने से कपड़े की सुगंधि कई दिन तक क़ायम रहती है।

दाम छोटी शीशी ॥), मँझली ॥।), आध औंस २) डा०-म० अलग।

नमूना देखना हो, तो पहले "ओटो दिलबहार का सुगंधित कार्ड" एक आने का टिकट भेजकर मँगाइए।

सोल एजेंट्स—

दि ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी.

१५५. जुम्मामसजिद—बंबई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची

धातुपुष्ट

स्वप्नदोष, धातु का जाना या वीर्य का पतला होना, शरीर में शक्ति का कम होना, स्मरण-शक्ति का कम होना, वीर्य-दोष के कारण नौजवानों में बुढ़ापे के लक्षण दिखाई देना, बालों का कम उम्र में पकना, हस्त-मैथुन तथा बहुविषय से शिथिलता इत्यादि रोग दूर होते हैं। गर्भ-धारण कराने की शक्ति रखता है। दाम १॥=)। खाँसी, बोखार, बालकों के सुस्ती, दाँत का मंजन, बवासीर का तेल, संग्रहणी इत्यादि की दवा औषधालय में मुफ़्त और बाहर-वालों को ॥=) के टिकट मिलने पर भेजी जाती है। रोगियों को वैद्यकीय सलाह मुफ़्त दी जाती है। एजेंटों की ज़रूरत है।

पं० सीताराम द्विवेदी वैद्य,
कृष्णा-औषधालय, इमली महादेव,
मिर्ज़ापुर, यू० पी०

४६
४३

बाबू कुँवर सिंह

जगदीशपुर-निवासी उज्जन-क्षत्रियकुलतिलक बाबू कुँवर सिंहकी यह सुविस्तृत जीवनी है। इस पुस्तकमें महाराजा विक्रमादित्यसे लेकर सन् १८५७के गदर और बाबू अमर सिंहके देहान्त-कालतकका इतिहास है। ऐतिहासिक पुस्तकोंके सिवा हफ्तों बाबू साहबकी जन्मभूमिमें रह कर इसका सामग्री संग्रह किया गया है। इसमें दस रङ्गबिरङ्गे चित्र दिये गये हैं। बाबू साहबका प्रसिद्ध तिनरङ्गा शिकारी चित्र भी जिल्द पर है। बाबू कुँवर सिंहके जिस असली चित्रका दर्शन किसी भी ऐतिहासिकको नहीं हुआ था, वह भी बड़े परिश्रम और व्ययसे प्राप्त कर इस पुस्तकमें दे दिया गया है। इसके सिवा रेशमी जिल्दपर दुरङ्गा रैपर और बुक-मार्क भी दिये गये हैं। आज तक हिन्दीकी किसी भी पुस्तककी ऐसी सजावट नहीं हुई है। सचमुच इससे आपकी लाइब्रेरी जगमगा उठेगी। आज ही आर्डर दीजिये, नहीं तो दूसरे संस्करण तक पछताना पड़ेगा। इसके भूमिका-लेखक हैं आल इण्डिया कांग्रेस कमिटीके जेनरल सेक्रेटरी बाबू राजेन्द्रप्रसादजी एम० ए०, एम० एल०। केवल लागत भर मूल्य २॥) है।

मैनेजर, भारतीपुस्तकमाला, २२, सरकार लेन, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आवश्यकता है।"

"सी० पो० बालिकाविद्यालय" के लिये एक ऐसी सुयोग्य सच्चरित्र और अनुभवी प्रधानाध्यापिका की, जो हिंदी में अच्छी योग्यता रखती हो। और ट्रेंड हो। वेतन योग्यतानुसार ६०) रु० तक। निवास स्थान मुफ़्त। पत्र-व्यवहार निम्न पते से कीजिए।

मंत्रीः—मारवाड़ी सम्मेलन,

४४/१७० ३९३, कालबादेवी रोड, बंबई।

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

हिंदी-पुस्तकमाला का पाँचवाँ पुष्प

कृष्णचरित्र

ले० स्वर्गीय बाबू बंकिमचंद्र चटर्जी और अनुवादक "हास्य-रसावतार" पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

जिस ग्रंथ-रत्न की बहुत दिनों से माँग थी वह छपकर तैयार है। श्रीकृष्ण भगवान् के चरित्र पर ऐसा समालोचनात्मक ग्रंथ दूसरा नहीं है। मूल्य भी ५०० से अधिक पृष्ठ के सजिल्द ग्रंथ का केवल २॥) रखा गया है।

माला के अन्य ग्रंथ

१—स्वाधीनता के सिद्धांत—ले० आयर्लैंड के सत्याग्रही वीर टेरेन्स मैक्स्विनी मूल्य १)
२—कर्मयोग—ले० बंगाल के प्रसिद्ध कर्मयोगी श्रीअश्विनीकुमार दत्त मूल्य ॥।)
३—सरल गीता—ले० "भारतमित्र"-संपादक पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे मूल्य १॥) सजिल्द १॥।=)
४—मधुर मिलन—ले० हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी मूल्य ॥=)

सुलभ साहित्य-सीरीज़ की चौथी संख्या

मूल्य ॥-) पृ० सं० ३००

अहंकार

अनुवादक प्रेमचंदजी

राजनीतिक उपन्यासों के लिखने में विक्टर ह्यूगो ने जितनी ख्याति प्राप्त की है, धार्मिक उपन्यासों में अनातोले ने भी उनसे कम प्राप्त नहीं की है। अनातोले का "अहंकार" पढ़िए। ऐसा अनूठा धार्मिक उपन्यास आपने न पढ़ा होगा। पुस्तक कैसी है, इसी से समझ लीजिए कि प्रेमचंदजी-जैसे प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक ने इसको अनूदित करना पसंद किया।

सीरीज़ के अन्य ग्रंथ

यंग इंडिया

तीन भागों में समाप्त पृ० सं० २५०० मूल्य ४॥)

पुस्तक क्या है असहयोग की गीता है। घर-घर में इसकी एक-एक प्रति रहनी चाहिए। सजिल्द का ।), अधिक।

सब प्रकार की हिंदी-पुस्तकें मिलने का पता—

हिंदी-पुस्तक-भवन नं० १८१, हरिसन-रोड, कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लँगड़ा आम, गुलाबी लीची आदि का
तिनसाला क़लम

फ़ौरन् अपने बग़ीचे में लगाइए और दो-तीन ही साल से ख़ूब खाना शुरू कर दीजिए। दाम १२) दर्जन, ख़र्च अलावा—कैटलौग मुफ़्त। बढ़िया स्वादिष्ठ अमावट। दाम २) सेर ख़र्च अलग।

पता—न्यू दरभंगा नरसरी, दरभंगा।

श्वेतकुष्ठ की लासानी दवा
एक रोज़ में क़तई आराम

सिर्फ़ तीन मर्तबे लगाइए और आराम हो जायगा। आराम न हो तो क़ीमत वापस।
बड़ा डिब्बा ४॥) छोटा डिब्बा ३) ख़र्च अलावा

४४/१६६ लेपरोभार कंपनी, दरभंगा।

अर्थ-विज्ञान

पृष्ठ-संख्या लगभग ५००
मूल्य सजिल्द ३।=) सादी ३)

भूमिका लेखक:—
हिंदी के धुरंधर विद्वान्
पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी

यदि आपको इस कठिन शास्त्र को सरल-से-सरल भाषा में समझकर अपनी और देश की बेकारी को दूर करना है तथा खद्दर के प्रचार और पुरानी भारतीय पद्धति के अनुसार स्वराज्य प्राप्त करना है, तो शीघ्र ही इसको ख़रीदकर पढ़िए और अपनी लाइब्रेरी की एक कमी को पूरा कीजिए। बड़े-बड़े विद्वानों ने प्रशंसा की है और सम्मेलन की तथा अन्य विद्यालयों की पाठ्य पुस्तक बनाने का अनुरोध किया है।

हिंदी के प्राचीन लेखक, जयपुर राज की केबिनेट और कौंसिल के मेंबर रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ-जी एम्० ए०, सी० आई० ई० की सम्मतिः—

"अर्थ-विज्ञान" एक उच्च-कोटि का असाधारण ग्रंथ-रत्न है। हिंदी में ऐसी पुस्तक का प्रकाशन साहित्य के सौभाग्य और गौरव की बात है।

प्रो० रामदासजी गौड़ लिखते हैं:—
"मेरी राय में इस पुस्तक को सम्मेलन की मध्यमा-परीक्षा की पुस्तकों में होना उचित है।"

मिलने का पता—
४६/१६० आदर्श कार्यालय, मेष्टन रोड, कानपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलौकिक गुण **अंब्रोसिया** अद्भुत आविष्कार

इस वनस्पति की दवा से अंतड़ियों तथा फेफड़े से संबंध रखनेवाला क्षयरोग, ब्रुंकाइटिस, दमा, बच्चों की हंपन (उल्टी साँस), कफ़, गंडमाला, आदि-आदि रोग शीघ्र और अवश्य अच्छे हो जाते हैं। मात्रा २० बूँद। एक औंस टिंक्चर की क़ीमत २) रु०। काढ़ा बनाकर पीने के लिये पत्तों में भी मिल सकती है, जो चाय तथा काफ़ी के समान पिए जा सकते हैं। विशेष हाल के लिये पत्र लिखिए:—

राय और कंपनी,
होमियोपैथिक और बायोकेमिक दवाख़ाना,
१३६
१६७ भरूचा बिल्डिंग, प्रिंसेज़ स्ट्रीट, बंबई।

माधुरी के पाठकों को सूचना

माधुरी के जो पाठक १५ नवंबर १६२३ तक हिंदी-मंदिर, प्रयाग से प्रकाशित होनेवाली "कविता-कौमुदी" (तीसरा भाग-संस्कृत) के ग्राहक हो जायँगे, उन्हें घर बैठे पुस्तक असली मूल्य पर ही मिल जायगी; डाक-व्यय नहीं देना पड़ेगा। इस पुस्तक में संस्कृत-भाषा के सब प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की जीवनियाँ और उनके मनोहर, शिक्षाप्रद, चमत्कार से भरे हुए श्लोक हिंदी-अर्थ-सहित संग्रह किए गए हैं। हिंदी में यह अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। सुंदर बढ़िया काग़ज़ पर छपी हुई, सुनहले अक्षरों से अंकित रंगीन कपड़े की मज़बूत जिल्द से सजी हुई, पुस्तक का दाम, केवल तीन रुपए। शीघ्र ही "मैनेजर, हिंदी-मंदिर, प्रयाग", को लिखकर ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखाइए। १५ नवंबर के बाद डाक-व्यय के दस आने अधिक देने पड़ेंगे।

कविता-कौमुदी पहला भाग का चौथा संस्करण बड़ी सज-धज से निकला है। इस बार इसमें बड़ी वृद्धि हुई है। १०० पृष्ठों में हिंदी का १००० वर्ष का इतिहास, ४०० पृष्ठों में हिंदी के सब सुप्रसिद्ध कवियों की जीवनियाँ और कविताएँ, और १०० पृष्ठों में कौमुदीकुंज जिसमें बड़े मज़ेदार दोहे, घनाक्षरी, सवैया, बरवै, छप्पय, खुसरो की पहेलियाँ, ढकोसले, गाने के पद, खेती की तीन-चार सौ कहावतें और कई सौ मसले (लोकोक्तियाँ) संगृहीत हैं। काग़ज़ उम्दा, छपाई-सफ़ाई बढ़िया, जिल्द कपड़े की बड़ी सुंदर और दाम केवल तीन रुपए।

कविता-कौमुदी (दूसरा भाग) इसमें बाबू हरिश्चंद्र से लेकर आज तक के खड़ी बोली के सब प्रसिद्ध कवियों की कविताएँ उनकी जीवनी-सहित दी गई हैं। यह पुस्तक दूसरी बार छपकर तैयार है। छपाई-सफ़ाई और जिल्द पहले भाग की तरह मनोहर है। दाम केवल तीन रुपए।

पथिक ॥)—राज-संस्करण सचित्र और सजिल्द १) ; मिलन ।) ; हिंदी-पद्य रचना ।) ; कुललक्ष्मी १।) ; बालकथाकहानी दो भाग ।), ।–) ; रहीम ≈) ; हिंदी का संक्षिप्त इतिहास ।=) ; प्रेम ।=) सूचीपत्र मुफ़्त।

पता—हिंदी-मंदिर, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची

(क) रंगीन

देश-भक्तों को सूचना

दी जाती है कि सब प्रकार के स्वदेशी खद्दर हमारे ही यहाँ से मँगावें—

धोया खद्दर कोटों के लायक़ २७ इंची १६ गज़ थान। दाम ४) —रजाई के लिये छींट खद्दर की २७ इंची १६ गज़ थान। दाम ४॥=) —उपरोक्त छींट रँगी हुई—थान ६॥=)

गुलूबंद खद्दर का रंगीन व सादा बेल-बूटे बना हुआ दाम १), दर्जन का १०) डाक-व्यय अलग। मगर जो दिवाली तक मँगा लेंगे, उन्हें डाक-ख़र्च आधा ही देना पड़ेगा।

पता—बी० एल० तोदी, १५१, मछुवा बाज़ार, कलकत्ता।

४६/१७४

"एक तंदुरुस्ती हज़ार न्यामत है"



क्यों

आप बजारू सुर्ती, ज़र्दा इत्यादि व्यवहार करके अपना अमूल्य स्वास्थ्य नष्ट करते हैं।

जो तृप्ति और सुख आपको बदलराम के बनाए हुए सुर्ती, ज़र्दा और जाफ़रानी पत्ती इत्यादि से मिलेगा वह और किसी के बनाए हुए ज़र्दा-सुर्ती से नहीं मिल सकता। जिन्होंने एक बार बदलराम का बनाया हुआ ज़र्दा व्यवहार किया है, वह कदापि दूसरे स्थान से माल नहीं मँगाते—

सर्वश्रेष्ठ काशी सुर्ती, ज़र्दा, जाफ़रानी पत्ती, नस, नानाप्रकार के पान के मसाले, पानविलास और खमीरा तंबाकू के प्रस्तुत कारक—

"बदलराम लक्ष्मीनारायण, सुवर्ण-पदक-प्राप्त, बनारस-सिटी"

३०/८८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेबी-घड़ी मुफ़्त ।

ओटो मुश्क हिना

हरएक शौक़ीन को घर में हमेशा रखने लायक़ देशी इत्र क़ीमत एक शीशी की १२ आने । १ दर्जन लेनेवाले को १ रास्कोप घड़ी इनाम

दाद-विनाशक

दाद और खुजली के लिये अक्सीर मलहम, क़ीमत ।) चार आना ।

२४ डब्बी लेने से एक रास्कोप घड़ी इनाम, न लेने से १॥।) दर्जन ।

१३६/१६८ किंग जार्ज कारोनेशन कं०, बंबई नं० ४

हिंदी-साहित्य में एक अनूठा रत्न

ज्ञानोदय-ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प

कालिदास और शेक्सपियर

साहित्य-संसार में भला ऐसा कौन होगा, जिसने कालिदास और शेक्सपियर का नाम न सुना हो । कौन ऐसा साहित्य-सेवी होगा, जो इनकी सुमधुर और चमत्कारिणी लेखनी से प्रभावित न हुआ हो । प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं दोनों कवि-सम्राटों की प्रतिभाओं का दिग्दर्शन कराया गया है । यदि आपको प्राच्य और पाश्चात्य प्रतिभाओं का कौतुक देखना है, यदि आप प्रकृति के सौंदर्य का पूर्ण रस-स्वादन करना चाहते हैं, यदि आप मनुष्य-प्रकृति से पूर्णतया परिचित होना चाहते हैं, यदि आप अंतर्जगत् और बहिर्जगत् का समुचित ज्ञान संपादन करना चाहते हैं, यदि आप इन दोनों कवि-कुल-गुरुओं के भाव, भाषा और काव्य के संबंध में कुछ भी जानने की इच्छा रखते हैं और यदि आप इनकी आनंदोत्पादिनी तथा चमत्कारिणी उक्तियों तथा युक्तियों से लाभ उठाना चाहते हैं, तो शीघ्र लौटती डाक से आर्डर भेजिए । मूल्य २)

नोट—"श्रीयुत रामदासजी गौड़ एम्० ए०, श्रीयुत पं० कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० प्रभृति लोगों ने इस पुस्तक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है ।"

आलम-केलि—(खंड-काव्य) सुप्रसिद्ध आलम और शेख़ का यह वही ग्रंथ है, जिसके लिये सवा दो सौ वर्ष से काव्य-रसिक लालायित हो रहे थे । यदि आपको काव्य से कुछ भी प्रेम है और कविता-कानन की सैर करना चाहते हैं, तो आप ला० भगवानदीन द्वारा संपादित इस आलम-केलि को अवश्य मँगाइए । टिप्पणी देने से ग्रंथ और भी सुगम और सरल हो गया है । दाम भी केवल १) है ।

पताः—ज्ञानोदय-ग्रंथमाला कार्यालय, काशी ।

३२/१३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार तोहफ़े

१. राजामंजन—दाँत, डाढ़ व मसूढ़ों में कैसी ही तकलीफ़ क्यों न हो फ़ौरन् दूर करता है। मुँह में खुशबू पैदा करता है। मूल्य ।)

२. राजाहेर-ऑयल—अगर किसी भी तेल के लगाने से आपके सिरदर्द की शिकायत न गई हो, तो एक दफ़ा इसको ज़रूर लगाइए। फ़ौरन् फ़ायदा करेगा। ख़ासकर कमज़ोर दिमाग़वाली औरतों को बेहद मुफ़ीद है। ख़ालिस हिंदुस्तानी दवाओं से बना हुआ है। मूल्य १), ६ शीशी ५)

३. राजासुरती—आपने तंबाकू तो बहुत-सी खाई होगी, मगर एक मर्तबा इसको भी खाकर परीक्षा लीजिए। फिर अगर आप कोई दूसरी तंबाकू खा लें, तो हमारा ज़िम्मा। मूल्य फ़ी डिब्बी ।-)

४. राजाभोजनबहार—इसको दाल में मिलाने से निहायत मज़ेदार ज़ायक़ा आने लगता है, और खाना बहुत जल्द हज़म होता है। एक मर्तबा खाने से ही हाल मालूम होगा। मूल्य ।), दर्जन २॥)

पता:—

४४
१६८ राजा ब्रॉदर्स, मो० जकाती, बरेली।

RIGVEDA: ENGLISH TRANSLATION

BY H. H. WILSON

COMPLETE IN 6 VOLUMES.

We have undertaken the publication of a new edition of this great work. The first edition is long out of print. Our edition will be finished in about six months, one volume every month. Names are registered as advance purchasers on the following terms:—

Class I.—On payment of Rs. 15 in advance for the whole set. The registration will stop in about a month, *i. e.*, on the day the 1st volume will come out.

Class II.—On payment of Rs. 3 in advance and Rs. 3 at the time of every volume as it comes out. The total price under this class will come to Rs. 21. The registration will stop on the day the 1st volume will come out.

Price after publication—Not less than Rs. 30.

Text.—Along with the above, we are also issuing the Sanskrit text of the Rigveda in two vols., and we shall give it to the advance purchasers of the translation charging no price.

Our new Catalogue.—Professors, teachers, librarians, university students, literary people and other booklovers desirous of making valuable additions to their libraries, should apply at once for our new catalogue announcing many concessions.

३८
१५०

Ashtekar and Co., Poona City.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्याश्रम-ग्रंथावली

(१) साहित्य-सिद्धांत – यह पुस्तक हिंदी व संस्कृत की ऑनर्स-परीक्षा देनेवालों के लिये, साहित्य-शास्त्रीय-विज्ञान में अत्यंत लाभदायक एवं छात्रों को साहित्य-शास्त्र का मर्मज्ञ बनानेवाली है। मू० २)

(२) हिंदी-निरुक्त—भाष्य, भूमिका सहित मूल्य ६॥।-)

(३) हिंदीसांख्यदर्शन—(सांख्यकारिका की हिंदी-टीका) मू० ।=)

(४) साहित्योद्देश्य—(संस्कृत) यह पुस्तक संस्कृत-साहित्य-शास्त्र के परीक्षार्थियों के लिये परमोपयोगी है।

उक्त पुस्तकें कमीशन काटकर भेजी जाती हैं। दूकानदारों के लिये विशेष प्रबंध है। पत्र-व्यवहार करें।

पता—मैनेजर, हिंदी-निरुक्त कार्यालय,
ब्रह्मचर्याश्रम,
भिवानी (पंजाब)

४६/१७५

हिंदी-संसार में एकदम नई चीज़—

सचित्र

आरब्य उपन्यास

अलिफ़लैला की कहानियाँ – भाव में, भाषा में, घटनाओं में, चरित्र-चित्रण में, उपदेश में, मनोरंजन में— साहित्यिक विषयों में अद्वितीय हैं। इसलिये, संसार की समस्त सभ्य भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद मौजूद है। हिंदी में इसका कोई भी सर्वांग-सुंदर अनुवाद न था; इसीलिये यह पुस्तक बड़ी सज-धज से खंड-खंडकर प्रकाशित हो रही है। प्रत्येक खंड लगभग ८० पृष्ठों का और कहानी समाप्त ही हैं। साथ ही उसमें कई एकरंगे तथा बहुरंगे चित्र भी दिए गए हैं। अनुवाद बड़ा ही सरल, सरस तथा सुंदर हो रहा है। पाठकों के सुबीते के लिये मूल्य भी बहुत कम रक्खा गया है अर्थात् ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखा लेने पर प्रत्येक खंड डाक-ख़र्च सहित ॥) की वी० पी० से भेजा जाता है। काग़ज़ की इस महँगी में इतनी सस्ती और ऐसी सचित्र पुस्तक दूसरी नहीं है।

हिंदी-पाठकों और पुस्तकालयवालों को यह सुअवसर कदापि न त्यागना चाहिए।

१५०/१५६

पता—लक्ष्मीविलास-प्रेस,
१३८, [illegible] लेन, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



माधुरी

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र, मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रस-मयी अनन्य !

वर्ष २ खंड १ | आश्विन-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८० वि०)— १६ ऑक्टोबर, १९२३ ई० | संख्या ३ पूर्ण संख्या १५

प्रार्थना

दयामय, दीनबंधु, भगवान,
जगत के नायक, न्याय-निधान,
देख लो अब भारत की ओर,
मिटा दो सारे संकट घोर ॥ १ ॥
विविध मत-माया का हो अंत;
ज्ञान, गुण, गौरव बढ़ें अनंत।
मिले सर्वत्र हमें सम्मान ;
न कायरपन का रहे निशान ॥ २ ॥
वीर, विदुषी, बालक, विद्वान,
धनी, निर्धन, सब एक-समान
हृदय में रक्खें अमित उमंग,
परस्पर मिलें प्रेम के संग ॥ ३ ॥
शिल्प, वाणिज्य बढ़े, उद्योग
रुचे सबको, हो सुलभ सुयोग।
न भूखे रोवें दीन किसान ;
न मद में अंधे हों धनवान ॥ ४ ॥
विवेकी विज्ञ विचार-प्रचार
करें, हों नूतन आविष्कार।
न कोई शेष रहे प्रतिबंध ;
करें सब अपने आप प्रबंध ॥ ५ ॥
रहें स्वच्छंद न छोड़ें धर्म ;
करें सब लोग सदैव सुकर्म।
प्रतापी पौरुष पकड़े हाथ ;
सफलता-देवी का हो साथ ॥ ६ ॥

हरिशंकर शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशांबी



शांबी या कोसम प्रयाग से ३१ मील दक्षिण-पश्चिम, यमुना-नदी के बाएँ किनारे पर, बसा हुआ है। प्राचीन काल में यह बहुत बड़ा नगर था, और हज़ारों वर्षों तक हिंदू और बौद्ध-राजों की राजधानी रह चुका है। इसका प्राचीन नाम कौशांबी है। आजकल नगर की जगह कोसम नाम की एक छोटी और उजाड़ बस्ती है। वहाँ पुराने खँड़हर मीलों तक फैले हुए हैं। अधिकांश पुरातत्त्वज्ञ इसी को कौशांबी मानते हैं। परंतु मिस्टर विंसेंट स्मिथ, बाबू काशीप्रसाद जायसवाल तथा अन्य कुछ विद्वान् नागौद-राज्य के भरहूत-नामक ग्राम को ही कौशांबी कहते हैं।

इस विषय पर डॉक्टर कनिंगहम का एक लेख एशियाटिक जरनल, जिल्द १, पृ० ३५१ में निकला था। उनका कथन कोसम को ही कौशांबी सिद्ध करने के पक्ष में है। इसके विरुद्ध मिस्टर विंसेंट स्मिथ और बाबू काशीप्रसाद जायसवाल के लेख इंडियन एंटीक्वेरी और नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, सन् १९०२, में निकले थे। वे भरहूत (नागौद) को ही कौशांबी सिद्ध करना चाहते हैं। इस विषय में पूर्वापर-पक्ष के कथनों पर विचार करना आवश्यक है। शेषोक्त लेखों के विरुद्ध कोसम को कौशांबी सिद्ध करने के पक्ष में हिंदी-पत्रों में तो क्या, शायद अँगरेज़ी-पत्रों में भी कोई लेख नहीं निकला। कोसम को कौशांबी न माननेवाले महाशयों के पक्ष में निम्न-लिखित आधार हैं—

१—प्रयाग से कोसम, ह्वेनसांग के कथनानुसार, ५०० ली अर्थात् ८४ मील दूर है। परंतु वर्तमान कोसम केवल ३१ मील के अंतर पर है। अतः कोसम कौशांबी नहीं हो सकता।

२—कौशांबी के समीप नाग-गुफा के सामने २०० फ़ीट ऊँचा अशोक-स्तंभ था। वह इस समय कोसम में नहीं है।

३—ह्वेनसांग गंगा-नदी को कौशांबी से ७०० ली (११७ मील) के लगभग दूर बतलाता है। परंतु कोसम से केवल २१ मील के अंतर पर ही गंगा-नदी मिल जाती है।

४—ह्वेनसांग ७ दिन में प्रयाग से कौशांबी पहुँचा था। अब कोसम केवल कुछ घंटों का ही मार्ग है।

५—नाग-गुफा (प्रभास-पहाड़ी पर) कौशांबी से ८-९ ली (१½ मील) दूर उत्तर-पश्चिम में बतलाई गई है। परंतु इस समय कोसम से प्रभास-पहाड़ी चार मील के अंतर पर, दक्षिण-पश्चिम दिशा में, है।

इन शंकाओं का समाधान अगर हो जाय, और कोसम के कौशांबी होने के पक्ष में प्रबल युक्तियाँ मिलें, तो मानना पड़ेगा कि वर्तमान कोसम ही प्राचीन कौशांबी है। सुनिए—

१—ह्वेनसांग[1] के समय में प्रयाग और कौशांबी के बीच भयानक जंगल था; जिसमें वन्य पशु और जंगली हाथी यात्रियों को बहुत कष्ट दिया करते थे। बिना अच्छे गरोह के दो-चार मनुष्य उस जंगली मार्ग से नहीं जा सकते थे। मार्ग भी सीधा नहीं, पेचीदा और फेर का होगा। अतः सीधी ३१ मील की दूरी के लिये ८४ मील का मार्ग तय करना पड़ा हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। ह्वेनसांग का कथन भी यही है कि प्रयाग से ५०० ली अर्थात् ८४ मील चलकर कौशांबी पहुँचते हैं। वह दूरी नहीं बताता, और इसी कारण वहाँ घना जंगल होने से गरोह के साथ ७ दिन में, १२ मील प्रतिदिन चलकर, कौशांबी पहुँचना स्वाभाविक माना जा सकता है। कौशांबी से संकाश २०० मील के लगभग है। वह मार्ग उसने एक मास से अधिक समय में तय किया था।

२—कौशांबी[2] में दो अशोक-स्तंभ बतलाए जाते हैं। एक इस समय वहाँ मौजूद है, और दूसरा जहाँगीर (बादशाह) ने कौशांबी से हटाकर प्रयाग के क़िले में गड़वा दिया है। उसमें स्पष्ट कौशांबी का नाम लिखा हुआ है। आगे उसकी प्रतिलिपि दी हुई है। अतः यह शंका भी दूर हो जाती है।

३—कौशांबी[3] से उत्तर-पश्चिम ७०० ली (११७ मील)

१. देखो ह्वेनसांग का यात्रा-विवरण, भाग १, पृ० ३६६।

२ देखो एशियाटिक जरनल, जिल्द १, पृ० ३५१।

३. देखो बुद्धिस्ट इंडिया, डॉ० टी० डब्लू० आर्० डेविड्स एल-एल० डी०, पी-एच० डी०-रचित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर तक घना जंगल चला गया है । इसमें सीधी उत्तर की ओर गंगा-नदी तक कम-से-कम दूरी नहीं बतलाई गई। अतः उत्तर-पश्चिम ओर दो-आब में जंगल की लंबाई बतलाई गई है । यह जंगल फ़तहपुर और कानपुर के बीच किसी स्थान पर समाप्त हुआ होगा ; जहाँ पर गंगा-जी को पार कर कुछ दूर चलने से काशपुर पहुँचते हैं । यह काशपुर कहाँ है, इसका अभी निश्चय नहीं हो सका । वहाँ से १८० ली (३० मील) पर विशाखा-नगर था ; जिसे अब करसी कहते हैं । यह रायबरेली के ज़िले में है । अतः चीनी यात्री के इस कथन से भी कौशांबी को कोसम मानने में कोई बाधा नहीं पहुँचती । इस विषय में फ़ाहियान और ह्वेनसांग, दोनों के कथनों में बड़ा अंतर पाया जाता है ।

४—चौथे नंबर का उत्तर प्रथम शंका के समाधान में आ गया है ।

५—नाग-गुफा की दूरी में अंतर पड़ना स्वाभाविक है । पहले कौशांबी बहुत बड़ी नगरी थी, अब छोटा-सा ग्राम है । क़िले से पहोसा की पहाड़ी, जिस पर नाग-गुफा वर्तमान है, पश्चिम दिशा में है । नगर के किस स्थान से यह दिशा और दूरी ली गई है, यह ठीक-ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता ।

उपर्युक्त प्रमाणों से ज्ञात होता है कि मिस्टर विंसेंट स्मिथ के आक्षेप कोसम को कौशांबी मानने में बाधक नहीं हैं । उक्त आक्षेपों का यथेष्ट समाधान हो जाता है । अब कोसम को ही कौशांबी मानने के पक्ष में विचार कीजिए—

१—डॉक्टर नंदलाल चक्रवर्ती इंडियन एंटीकेरी में एक ऐतिहासिक कोष निकाल रहे हैं । उसमें भी वर्तमान कोसम को ही कौशांबी माना गया है ।

२—राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद भी वर्तमान कोसम को ही कौशांबी मानते थे ।

३—डॉक्टर टी० डब्लू० आर्० डेविड्स एल्-एल्० डी०, पी-एच्० डी० ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ बुद्धिस्ट इंडिया में वर्तमान कोसम ही को कौशांबी माना है ।

४—शिक्षा-पत्रिका में भी कोसम को ही कौशांबी मानकर कुछ ऐतिहासिक बातें वर्णन की गई हैं, यद्यपि कुछ वर्णन उसमें अशुद्ध भी हैं ।

५—प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में कौशांबी को वत्स-देश के अंतर्गत माना है । यह वत्स-देश प्रयाग के आस-पास का भाग माना जाता है । कोसम प्रयाग-ज़िले के अंतर्गत और समीप है । अतः कोसम और कौशांबी का एक ही होना अधिक संभव है ।

६—चीनी यात्रियों ने विशाखा (वर्तमान करसी, ज़िला रायबरेली) और अयोध्या से कौशांबी को ५०० ली के अंतर पर माना है । यह अंतर कोसम से ही विशाखा और अयोध्या का है, भरहूत से या अन्य स्थान से नहीं हो सकता ।

७—विष्णु-पुराण में एक कथा आई है कि हस्तिनापुर के गंगा में बहने के पश्चात् पांडव-वंशीय राजा ने कौशांबी को अपनी राजधानी बनाया । इस समय भी कोसम में पांडु-वंशीय राजा का यज्ञ-स्थल 'भुंजेहेड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है ।

८—अवदान-लता आदि बौद्ध-ग्रंथों में कौशांबी, कोशल और काशी, ये राज्य मिले हुए बतलाए गए हैं । वर्तमान कोसम को कौशांबी मानने से ही ये तीनों राज्य मिले हुए हो सकते हैं । भरहूत से उक्त दोनों स्थानों का अंतर भी अधिक पड़ता है ।

९—चीनी यात्री फ़ाहियान, जो चौथी शताब्दी में भारत में आया था, मृगदाव (सारनाथ) से कौशांबी को

---

१. देखो आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, जिल्द १ ।

२. देखो इंडियन एंटीकेरी, सन् १९२२ ।

३. देखो, आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, जि० १, पृ० ३०१ ।

४. देखो बुद्धिस्ट इंडिया ।

१. देखो शिक्षा, खंड २७, संख्या ८, ज्येष्ठ-शुक्ल नवमी, सं० १९८० वि० ।

२. देखो कथासरित्सागर, हितोपदेश और हर्ष-कृत रत्नावली-नाटिका ।

३. देखो फ़ाहियान और ह्वेनसांग का यात्रा-विवरण ।

४. देखो इंडियन एंटीकेरी एप्रिल, सन् २२ में 'हस्तिनापुर'-लेख ।

५. देखो अवदान-लता, पल्लव ८, घोषिलावदान ।

६. देखो सारनाथ का इतिहास और बुद्धिस्ट इंडिया, रीस डेविड-कृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३ योजन बतलाता है। यह फ़ासला भी सारनाथ से कोसम तक ही हो सकता है। भरहूत लगभग २० योजन के सारनाथ से दूर है। ऐसी दशा में कोसम ही कौशांबी प्रतीत होता है, भरहूत नहीं।

१०—कड़ा और पभोसा कोसम से थोड़े ही फ़ासले पर हैं। कड़े में संवत् १०९३ का, राजा यशपाल का, एक लेख प्राप्त हुआ है। उसमें पभोसा को कौशांबी-मंडल के अंतर्गत और कड़े के महाराज के अधीन बतलाया गया है।

११—वररुचि कात्यायन की जन्म-भूमि कौशांबी ही प्राचीन ग्रंथों में पाई जाती है। कोसम के समीप वरूचा-नामक एक छोटा ग्राम है। उसका यह नाम वररुचि का संबंध प्रकट करता है।

१२—विनय-पिटक नाम के पाली-ग्रंथ में वर्णित है कि बुद्ध भगवान् राज-गृह से नाव द्वारा कौशांबी गए थे। राज-गृह और कौशांबी, दोनों नदियों के द्वारा संबंध-युक्त हैं। किंतु भरहूत यमुना से ७० मील के अंतर पर स्थित है। भरहूत और राज-गृह का नदी द्वारा संबंध भी नहीं है।

१३—अशोक-स्तंभ पर, जो प्रयाग के क़िले में है, स्थान का नाम 'कोसंबिय' दिया है। यह लेख अशोक का खुदवाया हुआ कौशांबी के भिक्षुओं को उपदेश है। भरहूत से इस स्तंभ का प्रयाग तक ले जाना भी दुस्साध्य कार्य है। यह स्तंभ कोसम से ही, जो प्रयाग के पास है, वहाँ पहुँचाया गया है। जहाँगीर बादशाह उसे प्रयाग उठवा ले गया। उस स्तंभ पर जहाँगीर का भी एक लेख, फ़ारसी अक्षरों में, खुदा हुआ है।

१४—दिव्यावदान नाम के प्राचीन बौद्ध-ग्रंथ में वकुल की कथा आई है। वह यमुना के किनारे कौशांबी में किसी सेठ के यहाँ उत्पन्न हुआ था। यमुना-तट पर खेलते समय इसे मछली ने निगल लिया। वह मछली काशी में पकड़ी गई। मछली के पेट से वकुल जीवित निकाला गया। उसे एक साहूकार ने मोल ले लिया। कुछ दिनों में यह सूचना कौशांबी में पहुँची। पिता और साहूकार, दोनों में उस लड़के के लिये झगड़ा हुआ। अंत को न्यायाधीश ने उस पर दोनों कुलों का समान अधिकार ठहराया। काशीवाले साहूकार के केवल एक लड़की ही थी। उसका विवाह वकुल के साथ कर दिया गया। वकुल दोनों कुलों की संपत्ति का अधिकारी हुआ। दो कुलों का होने के कारण उसका नाम वकुल (द्विकुल) पड़ा। वह ९० वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा।

इस कथा से यह निष्कर्ष निकलता है कि कौशांबी यमुना के किनारे बसी हुई थी। कोसम भी यमुना के किनारे है। भरहूत यमुना से ७० मील के अंतर पर है। अतः कोसम ही कौशांबी हो सकता है, भरहूत नहीं।

१५—अकबर के समय, चैत्र-बदी सं० १६२१, का लिखा हुआ सोनी-वैष्णवों का एक लेख कोसम-गढ़ में अशोक-स्तंभ पर खुदा हुआ है। उसमें स्पष्ट ही इस स्थान का नाम 'कौशांबी-पुर' दिया हुआ है।

१६—अब से १०० वर्ष पूर्व, संवत् १८८१, का शिला-लेख जो पभोसा के जैन-मंदिर पर लगा हुआ है, उसमें कौशांबी और पयहास, इन दोनों स्थानों का नाम खुदा हुआ है। कौशांबी और पहोसा में १½ मील का अंतर है। यह मंदिर प्रयाग के हीरालाल जैन ने सं० १८८१ में बनवाया था।

१७—'कोसम'-शब्द कौशांबी का ही अपभ्रंश-रूप है।

१८—संवत् १३०५ में बलवन ने कड़े पर चढ़ाई की थी। उस समय कौशांबी में 'दलकी या मलकी' नाम की रानी राज्य करती थी। अतः सिद्ध है कि कड़ा और कौशांबी, दोनों समीप थे। ये दोनों स्थान इलाहाबाद के ज़िले में हैं।

उपर्युक्त प्रमाण कोसम को कौशांबी मानने के लिये यथेष्ट हैं, विशेष टिप्पणी की आवश्यकता नहीं।

---

१. देखो एशियाटिक जरनल, जिल्द ५, पृ० ७३१ और आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, जिल्द १७, पृ० ९५ तथा जिल्द ४, पृ० ९९।

२. देखो इंडियन एंटीक्वेरी, जि० १९, पृ० १२६ तथा जि० १३, पृ० ३०६ और एपीग्राफ़िका इंडिका, जि० ४, पृ० १२२ तथा जि० २, पृ० २४५।

३. देखो एशियाटिक जरनल, जिल्द १, पृ० ३५१ और कनिंगहम का लेख।

१. देखो सोनियों का अकबर के समय का लेख।

२. देखो एशियाटिक जरनल में पहोसा का लेख।

३. देखो आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट जिल्द १७, पृ० ९१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब यह निश्चय हो गया कि वर्तमान कोसम ही प्राचीन कौशांबी है, तब उसके इतिहास की जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। इस नगर की उत्पत्ति कैसे हुई, किसने इसे बसाया, कब से यह बसा हुआ है, किस-किसने यहाँ राज्य किया, किन-किन ग्रंथों में इसका वर्णन आदि मिलता है, इन सब बातों पर विचार करना उचित प्रतीत होता है।

(१) वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि जब विश्वामित्र मुनि राम और लक्ष्मण को साथ लिए हुए जनकपुर जा रहे थे, तब कौशांबी-नगर मार्ग में मिला था। उस समय अपने वंश की उत्पत्ति बतलाते हुए उन्होंने इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

"कुशांबो कुशनाभश्च अमूर्तरजसं वसुम्।
दीप्तियुक्ता × × × × × ×
कुशांबस्तु महातेजाः कौशांबीमकरोत् पुरीम्।"

अर्थात् कुश नाम के एक कुमार थे। उनकी वैदर्भी-नामक स्त्री से कुशांब, कुशनाभ, अमूर्तरजा और वसु नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए। इन चारों पुत्रों ने अलग-अलग नगर बसाए।

कुशांब ने कौशांबी, कुशनाभ ने महोदय, अमूर्तरजा ने धर्मारण्य और वसु ने गिरिव्रज-पुर नाम के नगर बसाए थे।

इस समय कौशांबी का नाम कोसम, महोदय का नाम क़न्नौज और गिरिव्रज-पुर का नाम वसुमती हो गया है। ये ही नगर बहुत दिनों तक क्रम से वत्स, कान्यकुब्ज और मगध देशों की राजधानी रहे। धर्मारण्य का इस समय कुछ पता नहीं।

(२) महाभारत में भी यही वर्णन पाया जाता है कि पुरूरवा की दसवीं पीढ़ी में सोमवंशी राजा कुशांब ने कौशांबी-नगरी की स्थापना की।

(३) विष्णु-पुराण में वर्णित है कि हस्तिनापुर के गंगाजी में डूब जाने पर कुरुओं के राजा नेमिचक्र ने, जो अर्जुन से आठवीं पीढ़ी में हुआ था, कौशांबी को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश ने २२ पीढ़ियों तक यहाँ राज्य किया। यहाँ का अंतिम राजा क्षेमक था।

(४) मार्कंडेय-पुराण में भी कौशांबी का वर्णन पाया जाता है।

(५) बार्हस्पत्य-कोष में रामायण, कथासरित्सागर और हितोपदेश आदि के आधार पर कौशांबी का निम्न-लिखित वर्णन किया गया है—

"सा च पुरी गौड़देशांतर्गतवत्सभूमिगता।
अस्ति वत्सभूमि इतिख्यातो देश इत्युपक्रमे;
कौशांबी नाम तत्रास्ति मध्यभागे महापुरी।"
(कथासरित्सागर)

"अस्ति गौड़विषये कौशांबीनाम नगरी।"
(हितोपदेश)

अर्थात् गौड़-देशांतर्गत वत्स-भूमि में जाने पर मध्य-भाग में कौशांबी नाम नगरी है।

(६) "निष्कौशांबिः" सूत्र से कौशांबी-शब्द सिद्ध किया गया है।

(७) महाकवि भास-कृत 'स्वप्न-वासवदत्ता'-नामक नाटक अब से लगभग २,२०० वर्ष पूर्व रचा गया था। उसका कथानक यह है—

कौशांबी के महाराज उदयन का उज्जैन के महाराज प्रद्योत की लड़की वासवदत्ता के साथ विवाह हुआ था। राजा का उस पर घनिष्ठ प्रेम था। मंत्री यौगंधरायण ने आरुणि-नामक शत्रु से राज्य की रक्षा करने के लिये मगध-राज्य से संबंध जोड़ना आवश्यक समझा; और महारानी वासवदत्ता की उपस्थिति में महाराज उदयन कभी अन्य विवाह करना स्वीकार न करेंगे, यह सोचकर एक षड्यंत्र द्वारा वासवदत्ता का जलकर मर जाना प्रसिद्ध कर दिया। राजा को वासवदत्ता के लिये अतीव शोक हुआ। उधर मगधाधिपति महाराज दर्शक की भगिनी पद्मावती-

---

१. देखो वाल्मीकीय रामायण, अध्याय ३२, श्लोक २ से ११ तक।

२. देखो महाभारत-उपोद्घात, आदि-पर्व, ६४ अध्याय, ४४ श्लोक।

३. देखो आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, जिल्द १, पृ० ३०१।

१. देखो मार्कंडेय-पुराण, अध्याय ३०७।

२. देखो बार्हस्पत्य-कोष में 'कौशांबी'-शब्द।

३. देखो अष्टाध्यायी।

४. देखो महाकवि भास-कृत स्वप्न-वासवदत्ता-नाटक, गणपति शास्त्री द्वारा संपादित, ट्रिवेंड्रम्-सीरीज़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भी महाराज उदयन पर बहुत प्रेम था, इसलिये मंत्रियों के बहुत समझाने पर महाराज उदयन ने पद्मावती के साथ विवाह कर लिया। इस प्रकार मगध-नरेश को अपने पक्ष में करके मंत्री ने शत्रु से अपने राज्य की रक्षा की। अंत में सब भेद राजा को समझाकर शांत कर दिया।

(८) महाकवि कालिदास ने भी अपने प्रसिद्ध काव्य मेघदूत में कौशांबी और उसके राजा उदयन का वर्णन किया है।

(९) वासवदत्ता-नामक नाटक को सुबंधु ने छठी शताब्दी में रचा था। इसमें भी कौशांबी-नरेश उदयन और वासवदत्ता के प्रेम का वर्णन है।

(१०) कान्यकुब्जेश्वर महाराज हर्षवर्धन-रचित 'रत्नावली'-नाटिका में कौशांबी का ही दृश्य है। इसमें भी वत्सराज उदयन और वासवदत्ता के प्रेम का ही वर्णन है। इसमें कौशांबी का अन्य नाम वत्स-पट्टन भी लिखा है।

(११) प्रियदर्शिका-नाटिका[२] में लिखा है कि उज्जैन के राजा चंडप्रद्योत की लड़की वासवदत्ता का विवाह उदयन के साथ हुआ था।

(१२) कौशांबु-कुटीर[३] श्रावस्ती में कौशांबी के नाम पर ही एक स्थान है, जहाँ बुद्ध भगवान् रहे थे।

अब तक आपने संस्कृत-साहित्य में कौशांबी का वर्णन अवलोकन किया, अब बौद्ध-ग्रंथों में भी कौशांबी का दृश्य देखिए—

(१) ललितविस्तर बौद्धों का अति प्राचीन और प्रामाणिक ग्रंथ है। इसका चीनी-भाषा में, सन् ७० ई० में, अनुवाद हुआ था। उसमें लिखा है कि कौशांबी-नरेश शतानीक का पुत्र उदयन और भगवान् बुद्ध एक ही दिन पैदा हुए थे। सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त करने पर छठा और नवाँ वर्ष कौशांबी में ही व्यतीत किया था।

(२) महावंश-नामक बौद्ध-ग्रंथ में, जो पाँचवीं शताब्दी में बना था, लिखा है कि यश-नामक बौद्ध-भिक्षु वैशाली से भागकर कौशांबी की दूसरी सभा (Synod) में गया था।

(३) सिंहल की बौद्ध-पुस्तकों में भारत के १६ नगरों का वर्णन है। उनमें प्रसिद्ध नगर कौशांबी का भी वर्णन किया गया है।

(४) दिव्यावदान से उद्धृत कौशांबी की कथा आप पढ़ ही चुके हैं।

(५) हेमचंद्र[२]-कृत योग-शास्त्र में ब्रह्मदत्त की कथा आई है। वह अपने वैरी से डरकर कौशांबी में छिपा था, और धनप्रवर की कन्या से विवाह करके मगध को चला गया—

पलायमानौ कौशाम्बीं प्राप्तुस्तौ पुरीं क्रमात्।
तत्र सागरदत्तस्य श्रेष्ठिनो बुद्धिलस्य च ॥ ३०६ ॥
ततस्तस्मिन् गतेऽरण्ये मध्ये द्वौ कलभाविव ॥ ३०७ ॥

(६) शेफ़्नर[३] (Sehiefner)-कृत Tibetan sehe lebesehrei bung का उल्लेख डेनिश-भाषा की पुस्तक Buddhismus में किया गया है; जिसका अनुवाद जर्मन-विद्वान् जैकोबी ने डेनिश-भाषा से जर्मन-भाषा में Das leben das Buddha के नाम से किया है। उसमें लिखा है कि शतानीक का पुत्र उदयन कौशांबी में, ब्रह्मदत्त का पुत्र प्रसेनजित् श्रावस्ती में, महापद्म का पुत्र बिंबसार राज-गृह में और अनंतनेमि का पुत्र प्रद्योत उज्जैन में राज्य करता था।

(७) जैकोबी ने Kern[४]-कृत डेनिश-भाषा के Buddhism का जर्मन-भाषा में अनुवाद किया है। उसके भाग १, पृष्ठ १६८ में जीवक के संबंध में करोहे Krohe)-नामक जर्मन-विद्वान् ने बौद्ध-ग्रंथ से एक कथानक उद्धृत किया है। उसमें भी कौशांबी का वर्णन है।

(८) जब[५] बुद्ध भगवान् जेतवन[६]-आराम (बहरायच

१. देखो माधुरी-पत्रिका, आषाढ़ सं० १९८०।
२. देखो प्रियदर्शिका-नाटिका, अंक १, दृश्य ३।
३. देखो बालार्क-तीर्थ-रहस्य, बाबू देवकलीप्रसाद आर्य-रचित।

नोट—श्रावस्ती को सहेट-महेट कहते हैं। बुद्ध ने कौशांबी से प्रेम के कारण ही श्रावस्ती में अपने निवास-स्थान का नाम कौशांबु-कुटीर रक्खा था।

१. इंडियन एंटीकेरी, जिल्द १३, पृ० ३३४-३३५।
२. हेमचंद्र-कृत योग-शास्त्र, प्रकाश २।
३. देखो *Das Leben das Buddha*, पृष्ठ २३५।
४. देखो *Buddhism, Part I. Page 168.*
५. देखो धम्मपद पृष्ठ २०५ और *Harward Oriental Series, Volume XXIX.*
६. देखो बालार्क-तीर्थ-रहस्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समीप चितौरा स्थान) में निवास करते थे, तब वहाँ से आकर उन्होंने एक मास तक कौशांबी-नगरी में वास किया था। उस समय वह बड़े तिस्सा-नामक व्यक्ति को बौद्ध-धर्म की दीक्षा देना चाहते थे। परंतु वह बौद्ध नहीं हुआ, अन्य व्यक्ति बौद्ध बन गया। फिर भी पहले व्यक्ति का ही नाम 'वृद्ध तिस्सा' विख्यात हुआ।

(६) उज्जैन का राजा चंडप्रद्योत पिंडोल के उपदेश से बौद्ध-मतावलंबी हुआ था। बौद्ध-धर्मानुसार उदयन परंतप का पुत्र था।

(१०) बुद्ध भगवान् कौशांबी में उदयन के मंत्री घोषिल के बनवाए घोषिलाराम में रहते थे।

(११) उदयन प्रथम व्यक्ति है, जिसने बुद्ध भगवान् की लाल चंदन की मूर्ति बनवाई। उनकी दूसरी मूर्ति कोशल-नरेश प्रसेनजित् ने सोने की बनवाई थी। ये दोनों राजा बुद्ध के समकालीन थे।

(१२) जब बुद्ध भगवान् घोषिलाराम (कौशांबी) में थे, तब छन्न-नामक भिक्षु ने कुछ अपराध किया, और उसे उसने स्वीकार भी नहीं किया, इसलिये उसे 'उक्खेपनिय' (गर्दनिया देकर निकाल देने का) दंड दिया गया; जिसका भाव यह है कि वह संघ के साथ न भोजन कर सकेगा, और न रह सकेगा।

(१३) जब बुद्ध भगवान् कौशांबी ही में थे, तो मोग्गलायन ने अजातशत्रु और देवदत्त का संवाद उनसे कहा था। देवदत्त बौद्ध-धर्म का पूर्ण विरोधी था, और अजातशत्रु देवदत्त का अनुयायी। जब देवदत्त विरोध से अलग होकर एकांत-वास करने लगा, तब अजातशत्रु बौद्ध-धर्म का अनुयायी हो गया।

बौद्ध-ग्रंथों में कौशांबी का वर्णन बहुतायत से पाया जाता है। इस लेख में उन सब प्रसंगों का उल्लेख भी असंभव है।

१. देखो *Dr. Rey David's Buddhist India, Page 7.*

२. देखो चुलवग्ग, पिटक १, अध्याय ३५।

३. देखो *Edkin's Chinese Buddhism, P. 49.*

४. देखो *Sacred Books of the East, Vol. XVII, P. 371.*

५. देखो *Sacred Books of the East, Vol. XX, P. 233-236;* चुलवग्ग, पिटक ७, अध्याय २।

अब शिला-लेख, सिक्के आदि के आधार पर जो वर्णन प्राप्त हुए हैं, उन्हें देखिए—

(१) कनिंगहम साहब को कोसम की खोज में ११वीं शताब्दी की बहुत-सी जैन-मूर्तियाँ मिली थीं। वहाँ का तोरण भरहूत-स्तूप के समान था।

(२) पटने से दो प्राचीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं। अब तक लोग उन्हें यक्ष-मूर्तियाँ मानते थे। उन पर कुछ लेख भी खुदे थे। एक पर 'भगो अचो छोणीधीशे' खुदा हुआ था; जिसका भाव बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ने राजा अज उदयन लिया है। शायद यह अज उदयन कौशांबी का वत्स उदयन ही हो। दूसरी मूर्ति नंदिवर्धन की है।

(३) प्रयाग के क़िलेवाले अशोक-स्तंभ पर जो लेख अशोक ने खुदवाया है, वह यहाँ ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया जाता है—

ये (आ) न पयति 'कोसंबिय' महम् (।) त...मः संवस् (इ) त् (अ) चिये संवं मांखति भिखु व भिखुनीया (द्) उसानि नं धापयितु आन (ये) स...

इसमें कौशांबी के भिक्षुओं को आदेश दिया गया है। यह स्तंभ कौशांबी से प्रयाग के क़िले में जहाँगीर बादशाह की आज्ञा से गया था। सारनाथ के स्तंभ पर भी यही विज्ञप्ति खुदी हुई है।

(४) कड़े के लेख में, जो कड़े के महाराज यशपाल ने पयहास-ग्राम के लिये लिखाया है, उसे कौशांबी-मंडल के अंतर्गत बतलाया है। लेख इस प्रकार है—

संवत् १०९३, आषाढ़-सुदी १

अद्येह श्रीमतकरे महाराजाधिराजश्रीयशःपालः कोसांबमंडले पयहासग्रामे महांतमनुसमादिशति यथापभोसे कीय माथुर

१. आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, जिल्द १०, पृ० १-५।

२. देखो नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, नया संस्करण, भाग १, अंक २।

३. इंडियन एंटीक्वेरी, जि० १९, पृ० १२६ और जि० १३, पृ० ३०६। एपीग्राफ़िका इंडिका जि० ४, पृ० १२२ और जि० २, पृ० २४५।

४. देखो *Asiatic Society's Journal, Vol. V, P. 731. Asiatic Researches, Vol IX, P. 433.* आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, जिल्द १७, पृ० ९५ और जिल्द ४, पृ० ९९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रुष्य शासनत्वं प्रसादोंकृत्य.मत्वभाग मोघाकर हिरन्यपत्य-दायादिकं मस्वोपन तथा मिति दस वन्वेन सहधिकं ढाल दतं पोत्रा लामं... दं...

इस लेख से प्रतीत होता है कि पभोसा-ग्राम कौशांबी-मंडल के अंतर्गत था ; जिसके महाराज कड़े में रहते थे। पूर्व का कौशांबी-नगर पीछे से कौशांबी-मंडल भी कहलाने लगा था ; जैसा कि इस लेख से प्रतीत होता है।

(५) कोसम के अशोक-स्तंभ पर सोनी-वैष्णवों के, अकबर के समय के, लेख का वर्णन किया जा चुका है। यह नागरी-अक्षरों में खुदा हुआ है। शायद किसी बरात में आए हुए सुनारों ने इसे खुदाया हो। इस पर १५-२० सोनी-वैष्णवों के नाम दिए हुए हैं। उसका लेखक अनंदसुत सोनी प्रतीत होता है। वहाँ के वृद्ध लोगों ने वर्णन किया कि यहाँ के लोग अशोक-स्तंभ को भैरव की मूर्ति मानकर पूजा किया करते थे। आस-पास घनी झाड़ी थी। कुछ लड़कों ने गरमी के दिनों में झाड़ी में आग लगा दी, जिसकी गरमी से स्तंभ का ऊपरी भाग दो-तीन टुकड़े होकर नीचे गिर गया। अब भी स्तंभ से थोड़े ही अंतर पर एक खेत में ये टुकड़े पड़े हुए हैं। लोगों ने भैरव को शांत करने के लिये बहुत-सा चंदन मूर्ति पर चढ़ाया था ; जो इस समय भी स्तंभ पर हाथ रगड़ने से जान पड़ता है। ज्ञात नहीं, इस कथानक में कहाँ तक सचाई है।

इसी स्तंभ पर सोनियों के लेख से कुछ हटकर नीचे की ओर गुप्त-काल का भी एक लेख है ; परंतु वह पढ़ा नहीं गया। सोनियों का लेख इस प्रकार है—

मोगल पातीसाह अकबर पातसाहराजी श्रीगणेश संवत १६२१ चैत्र बदी वारानय में कौसांबीपुर...नागनीक सोनी... मुखदर्शन वैष्णवदर्शन...सोनन्हि को देव भैरव...अनंदसुत...

साधन न होने से उसकी छाप न ली जा सकी, और न ठीक-ठीक पढ़ा ही गया।

लोगों ने यह भी बयान किया कि सोनी लोग जाति के क्षत्रिय और राज-वंश के व्यक्ति थे।

(६) संवत् १८८१ के लिखे पभोसा के जैन-शिला-लेख में भी कौशांबी का वर्णन मिलता है।

(७) कोसम से प्राप्त शिव-पार्वती की मूर्ति पर गुप्त-वंश का एक लेख है। उसकी प्रतिलिपि भी यहाँ दी जाती है—

महाराजस्य श्रीभीमवर्मन सम्व १३६
...मा......दि ७ ए ता दिवस कुमार मे

यह स्कंदगुप्त के संरक्षण में कौशांबी का राजा प्रतीत होता है। यह नगर बहुत काल तक दो-आब की राजधानी रहा है।

(८) यहाँ से पीतल की एक मोहर भी प्राप्त हुई है। उस पर खुदा है—

"मुनिपुत्रस्य प्राचीन सम ३१५"

यह कोई गुप्त-संवत् से भिन्न संवत् है, जो अक्षरों से गुप्त-काल का प्रतीत होता है। इस पर का प्राचीन संवत् शक या विक्रम होगा।

विक्रम-संवत् २८२ में गुप्त-संवत् आरंभ होता है। अतः यह मोहर प्रसिद्ध गुप्त-वंशीय महाराज समुद्रगुप्त के समय की होनी चाहिए।

(९) इसी प्रकार[2] कुलहस्तमित्र, देवमित्र और अश्व-घोष के नामोंवाले सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार के सिक्के भरहूत से भी प्राप्त हुए हैं ; जो विक्रम से १५० वर्ष पूर्व के हैं।

(१०) इंडोसिथियन[3] एजिलीसिस का भी एक सिक्का, जो विक्रम से २३ वर्ष पूर्व का है, यहीं से प्राप्त हुआ है। यह सिक्का अन्यत्र कहीं नहीं मिला।

(११) संवत्[4] १३०५ में बलवन ने कड़े पर चढ़ाई की थी। उस समय कौशांबी में 'दलकी या मलकी' नाम की रानी प्रसिद्ध थी। अतः सिद्ध है, उस समय भी कौशांबी हिंदू-राजों की ही राजधानी थी।

(१२) पहोसा[5] की गुफा में प्राप्त पहोसा का लेख—

अधि छत्राया राज्ञो शोन का यनपुत्रस्य राजो तेवणीपुत्रस्य भागवतस्य पुत्रेण कश्शपी यानं अरहंतान राज्ञो गोपाली पुत्रस्य, वह सती मित्रस मातुलेन गोपालीया वैहदरी पुत्रेन आसाढ़सेनेन लेखं कारितं (उदाकस) दसमे सब छरे...

१. देखो आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, जिल्द १०, पृष्ठ १-५।

१. देखो आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, जिल्द १०, प्लेट २, पृष्ठ १-५ तक।

२. देखो इंडियन एंटीक्वेरी, जिल्द २१, पृष्ठ २२५।

३. देखो वही, जिल्द १४, पृष्ठ १३८।

४. देखो आर्कियालोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, जिल्द १७, पृष्ठ ९१।

५. देखो एपीग्राफिका इंडिका, जिल्द २, पृष्ठ २४०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३) सन् १८६१ से १०० वर्ष पूर्व तक कौशांबी-नगर अच्छी दशा में था।

कौशांबी के विषय में चीनी-यात्रियों ने बहुत विस्तार से वर्णन किया है। उनका विवरण भी देखिए—

ह्वेनसांग अपनी विस्तृत यात्रा का विवरण इस प्रकार देता है—

प्रयाग से नैर्ऋत्य-दिशा में एक बड़ा जंगल है; जिसमें हिंसक जंतु और बनैले हाथी बहुतायत से रहते हैं। यहाँ से ५०० ली (८४ मील) चलकर (किया-शांग-मी) कौशांबी पहुँचते हैं, वहाँ से ५०० ली पर (पी-सो-किया) विशाखा-राज्य स्थित है। वहाँ से ५०० ली उत्तर-पूर्व की ओर चलने से श्रावस्ती (शी-लो-फू-शी-ती) नगर मिलता है।

प्रयाग से एक बड़ा जंगल तय करके ७ दिन में कौशांबी पहुँचा। इस नगर के दक्षिण ओर वह वाटिका है, जहाँ गोशिर-देव ने बुद्ध को एक वाटिका अर्पित की थी। यहाँ १० बौद्ध-मठ उजाड़ दशा में थे, और ५० देव-मंदिर।

पवित्र चरणों की पूजा करके वह पुनः उदित राजा के साथ, जिसे महाराज हर्षवर्धन ने यात्रा की सुगमता के लिये ह्वेनसांग के साथ कर दिया था, चला। एक मास और कई दिन तक उत्तर-पश्चिम की ओर कई देशों में होता हुआ आगे बढ़ा, और पुनः स्वर्ग की सीढ़ी के चिह्नों की पूजा की। वहाँ से ३ योजन उत्तर-पश्चिम ओर चलकर पी-लो-ना-ना(विदशन)-राज्य की राजधानी में पहुँचा। यहाँ दो मास ठहरा।

यह स्वर्ग की सीढ़ी कपिथ की राजधानी में थी। फ़ाहियान इसे संकाश्य-नगर से २० ली (३½ मील) पूर्व बतलाता है। संकाश्य फ़र्रुख़ाबाद-ज़िले में है।

उदयन कौशांबी का राजा था। पाली-ग्रंथों में उदैना नाम भी पाया जाता है। पहले यह बहुत क्रूर था। इसके महलों में वासवदत्ता नाम की एक अति सुंदर रानी थी। जब बुद्ध ने उसके साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया, तो उसके बाप प्रद्योत ने राजा उदयन के साथ उसका विवाह कर दिया।

• कौशांबी में स्थापित बुद्ध-मूर्ति की प्रति Han-Ming-ti के समय तक चीन में पाई गई थी।

कौशांबी-नगर के दक्षिण-पूर्व में घोषिलाराम का स्थान नष्ट दशा में था। वहाँ भी बुद्ध-मंदिर, उनके बाल और नखों पर एक स्तूप तथा बुद्ध का स्नानागार था। इसके समीप ही, नगर के बाहर, २०० फ़ीट ऊँचा अशोक-स्तंभ था। यहाँ पर बुद्ध भगवान् ने कई वर्षों तक धर्म का प्रचार किया था।

बुद्ध के बाल व नखों पर एक दूसरा भी स्तूप था। वहाँ उनके घूमने-फिरने का स्थान था। घोषिला या गोशिर-देव बुद्ध-काल में महाराज उदयन का मंत्री था। उसने बुद्ध के लिये संघाराम बनवाया। यह घोषिला पाली-ग्रंथों में घोषित नाम से भी प्रसिद्ध है। चीनी-भाषा में इसका नाम Mei-yin मेइ-यिन है; जिसका अर्थ Fine Voice (दिव्य वाणी) होता है। इसका बचपन में वध होनेवाला था। घोषिलाराम में ही बैठकर वसुबंधु ने 'हीनयान'-संप्रदाय का प्रसिद्ध ग्रंथ Vei-Shih-lun बनाया। संस्कृत में इस ग्रंथ का नाम 'विद्या-पात्र-सिद्धि-शास्त्र' है। बहुत स्थानों पर इस ग्रंथ के उद्धरण पाए जाते हैं। Cheng-Vei-Shih-lun पर धर्मपाल, स्थिरमति और ८ अन्य शिष्यों ने व्याख्या लिखी थी।

महायान का लंका-सूत्र और विद्या-पात्र-शास्त्र-नामक ग्रंथ विश्वास-योग्य नहीं प्रतीत होते।

कुछ लोग इसका 'ता-सेंग-वेइ-सिह-लून' नाम देते हैं। इसके चीनी-भाषा में ३ अनुवाद पाए जाते हैं।

प्रथम को गौतम प्राज्ञ-रुचि-कृत और कोई बोधी-रुचि-कृत तथा संवत् ५७७ में रचा गया बतलाते हैं। दूसरे का संवत् ६१७ में परमार्थ ने और तीसरे का संवत् ७१८ में ह्वेनसांग ने अनुवाद किया। तीनों में कई स्थानों पर अंतर पाया जाता है।

इस संप्रदाय के अनुयायियों ने एक अन्य नाम भी दिया है—P-O-Si-ho-in-lun, जिसमें दार्शनिक रूप से मन और माया का वर्णन पाया जाता है।

लंकावात्र-सूत्र में कुछ अन्य रचयिताओं के सूत्र भी मिले हैं; लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि Vei-Shih-lun (वेइ-शिह-लून) उक्त सूत्र की व्याख्या ही है।

घोषिलाराम के पूर्व आम्र-वन में आसंग-नामक भिक्षु

१. देखो ह्वेनसांग का यात्रा-विवरण भाग १, पृ० ३६६ से ३७२ तक।

१. देखो ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण में Julion का नोट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने Hsien-Ying-Sheng-Chiao-lun की रचना की थी। ये सब बौद्ध-धर्म के ग्रंथ थे।

यूनयांग के अनुवाद भी एक प्रकार की व्याख्या ही थे; जिसको योगाचार्य ने भूमि-शास्त्र के नाम से उद्धृत किया है।

राजधानी से ८-९ ली (१½ मील) पर Venumous dragon's cave (नाग-गुफा) थी। यहाँ बुद्ध ने अपनी छाया छोड़ी थी। परंतु पीछे छाया नहीं दिखाई दी।

वहीं पर अशोक-स्तंभ और बुद्ध भगवान् के चरण-चिह्न थे; जहाँ बहुत यात्री आया करते थे।

यह अंतिम स्थान था, जहाँ बौद्ध-धर्म उस समय तक ठहरा रहा। किसान से लेकर राजा तक सब बौद्ध-मतावलंबी थे। जो वहाँ गया, बौद्ध-भावों को लेकर लौटा।

महासांगिक-विनय में लिखा है कि कौशांबी की भयंकर नाग-गुफा An-P-O-lo स्वगत (बुद्ध भगवान्) ने बनाई।

मिस्टर[1] कौकबर्न (Mr. Cockburn) उस स्थान को स्वीकार नहीं करते थे। वे सीता की खिड़की को ही नाग-गुफा मानते थे; जो कि महराबदार कटा हुआ, ४० फ़ीट ऊँचा, भिक्षु का स्थान था। यह ढालू और एतिहासिक पहाड़ी प्रभास (कौशांबी); ज़िला इलाहाबाद में है। यह किंवदंती है कि बुद्ध के १५०० वर्ष पश्चात् एक भिक्षु कौशांबी में मारा गया। इससे वह नगर उजाड़ हो गया।

वह क़न्नौज से १०० ली दक्षिण-पूर्व नवदेवकुल (ज़िला फ़र्रुख़ाबाद) में आया; जहाँ १ अच्छा देव-मंदिर, ३ बौद्ध-मंदिर और १ अशोक-स्तूप था। आजकल इसे नोहवत-गंज कहते हैं।

यहाँ बुद्ध ने मौद्गलायन से ४०० डैमनों को भोजन देने को कहा था।

नवदेवकुल से ६०० ली दक्षिण-पूर्व दिशा में अयोध्या थी। वहाँ से ३०० ली उत्तर-पूर्व हयमुख-देश था।

हयमुख शायद गोरखपुर-ज़िले का कसिया-नामक स्थान है। यह स्थान अयोध्या से ४० मील उत्तर-पूर्व को है। हयमुख से ७०० ली दक्षिण-पूर्व प्रयाग है। प्रयाग गंगा-यमुना के संगम पर है। यहाँ हीनयान-संप्रदाय के बौद्ध रहते थे। अधिक आबादी नानबौद्ध (बौद्ध से भिन्न संप्रदायवाले) लोगों की थी।

प्रयाग से ५०० ली दक्षिण-पश्चिम कौशांबी थी। वहाँ बीच में घना जंगल था, और जंगली हाथी तथा वन्य पशु अधिकता से पाए जाते थे। इस राज्य का घेरा ६००० ली था, और राजधानी कौशांबी ३० ली के घेरे में थी। यह देश उपजाऊ और यहाँ का जल-वायु उष्ण था। यहाँ चावल और गन्ना बहुतायत से होता था। यहाँ के मनुष्य परिश्रमी, अन्वेषक, कारीगरी में अभिरुचि रखनेवाले तथा कृषक थे। हीनयान-संप्रदाय के ३०० बौद्ध यहाँ निवास करते थे। Julion ने भूल से कौशांबी को प्रयाग से ५० ली के अंतर पर माना था।

बुद्ध भगवान् श्रावस्ती से कौशांबी को जाते समय भद्र-वाटिका होकर गए थे।

सुत्तनिवात में लिखा है—कौशांबी के राजा उदयन के बाग़ में एक भिक्षु को साधु-जीवन के लिये धमकाने पर वह श्रावस्ती भाग गया था।

ब्राह्मणों से झगड़ा होने पर वायोरी कौशांबी से श्रावस्ती को बुद्ध भगवान् के पास गया था।

डॉक्टर कनिंगहम फ़ाहियान और ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण और स्वयं निरीक्षण से लिखते हैं—

कौशांबी में बुद्ध-मंदिर ६० फ़ीट ऊँचा था। यह मंदिर नगर के बीच में था। उसके पूर्व में कुआँ था; जिसमें बुद्ध का स्नानागार था। स्नान-गृह तोड़ डाला गया था; परंतु स्थान से लोग परिचित थे। नगर के दक्षिण-पूर्व पुराने निर्माणों का संग्रह—१ स्तूप, १ गोशिर के घर का खँड़हर, १ स्नानागार और १ मंदिर आदि—था। प्राचीर के बाहर ये स्थान पुराने थे—१ दक्षिण-पूर्व की प्राचीर के पास ही बड़ा स्तूप २०० फ़ीट ऊँचा अशोक का बनवाया, गोशिर के उद्यान में १ मठ, बुद्ध के केश और नख पर बना हुआ एक स्तूप, वसुबंधु का दो-खंडा अट्टाल-गृह और आसंग का घर। दक्षिण-पश्चिम ओर, नगर के बाहर, १½ मील पर २००

१. मि० कौकबर्न की यह राय ग़लत है।—लेखक

२. हयमुख से प्रयाग दक्षिण-पश्चिम दिशा में है।—लेखक

१. देखो नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, सन् १९०२, बाबू काशीप्रसाद जायसवाल का लेख और एशियाटिक जरनल, जिल्द १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ीट ऊँचा अशोक-स्तंभ, केश और नख पर समाधि और नाग-गुफा थी।

आगे लिखते हैं—मैहर की लंबी और तंग घाटी के उत्तरी सिरे पर उज्जैन और भिलसा से होकर आया हुआ मार्ग उत्तर ओर कौशांबी और श्रावस्ती को घूमता है। वहीं पर भरहूत की आनंद-दायिनी स्थिति शोभायमान है। कौशांबी उज्जैन और पाटलिपुत्र के बीच एक पड़ाव है।

(इस कथन का समर्थन करनेवाला वाक्य राज-गृह के प्रसिद्ध वैद्य जीवक की विचित्र कथा में आता है।)

इसके पश्चात् कनिंगहम साहब हार्डी-कृत Manual of-Buddhism-नामक पुस्तक से वर्णन करते हैं—कौशांबी उज्जैन से ९० योजन दूर है। दोनों के बीच गोधी, दिवसा और बलसेवत-नामक नगर पड़ते हैं।

अश्वघोष लिखता है—बुद्ध जब कौशांबी आए, तो गोशिर को शिष्य बनाया था। बहुधा यात्री कौशांबी, साकेत और श्रावस्ती में एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते रहते थे।

आगे कहता है—क़िले के भीतर एक बड़ा बुद्ध-मंदिर ६०० फ़ीट ऊँचा था। उसमें कुरेदी हुई चंदन की मूर्ति थी; जिस पर पत्थर का छत्र लगा हुआ था। यह मूर्ति बुद्ध की आकृति से पूर्णतया मिलती थी। इसे मौद्गल-पुत्र ने बनाया था।

संकाश्य में बुद्ध को अपनी मूर्ति मिली थी। वह शायद इसे (मूर्ति-निर्माण को) अच्छा नहीं समझते थे।

फ़ाहियान लिखता है—जब तुम मृगदाव (सारनाथ) से १३ योजन उत्तर-पश्चिम जाओ, तो तुम्हें कौशांबी-राज्य मिलेगा। इसके विहार का नाम घोचिर-वन (गोशिर-वन) है; जहाँ बुद्ध भगवान् प्रथम बार रहे थे। यहाँ संन्यासियों का एक दल है, जो हनियान-संप्रदाय का अनुयायी है। यहीं तथागत का भी स्थान था। यहाँ अशोक का एक स्तूप था। वह स्थान, जहाँ पर दुष्ट पिशाच को गौतम ने निज-मतावलंबी बनाया था, कौशांबी से ८ योजन पूर्व है। यहाँ से २०० योजन पर दक्षिण दिशा में दक्षिण-देश है।

अब कुछ योरपियन विद्वानों की राय भी देखिए। योरपियनों की राय बहुत कुछ पहले भी वर्णन की जा चुकी है—

डॉक्टर फ़ुहरर का प्रयत्न। कनिंगहम साहब लिखते हैं कि डॉक्टर फ़ुहरर मार्च, सन् १८८१, में पभोसा की पहाड़ी की चोटी से रस्सी बाँधकर गुफा में उतरे थे। इसके भीतर राजा भविष्यत्-मित्र और आषाढ़सेन के शिलालेख मिले। कौकबर्न साहब ने दूरबीन से इन्हें देखा था। ये अक्षर ईस्वी सन् से दो-एक शताब्दी पूर्व के हैं। इनमें बौद्ध-धर्म-संबंधी कोई उल्लेख नहीं है। केवल 'कास्सपिय अर्हत', यह एक शब्द है। डॉक्टर बुहलर का कथन है कि इसका अर्थ काश्यपीय शिक्षा-संप्रदाय के बौद्ध होगा, या कश्यप-गोत्रीय वर्द्धमान के अनुयायियों से तात्पर्य होगा।

यह जैनों का पूज्य स्थान है। यहाँ मंदिर और मूर्तियाँ भी हैं। अतः दूसरा अर्थ ठीक जँचता है।

(चंदन की मूर्ति को जैनी ग्रंथ महावीर की बतलाते हैं। उस मूर्ति के लिये चंडप्रद्योत और उदयन में युद्ध भी हुआ था।)

इस समय कोसम दो भागों में बँटा हुआ है। गढ़ के पश्चिमी भाग में कोसम इसहाम है। इसके विषय में कहा जाता है, यहाँ ७०० वर्ष पूर्व इसहाम नाम के फ़क़ीर ने अपनी कुटी स्थापित की थी। यह शिया-मज़हब का माननेवाला था।

आज भी कोसम इसहाम में मुसलमानों की आबादी है। इसहाम-गाँव के कोसम में आबाद होने के कारण कोसम इसहाम नाम पड़ गया। इसे मुसलमान इसहामाबाद भी कहते हैं। कोसम ख़िराज़गढ़ के पूर्वी भाग में है। गढ़ में भी कुछ ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों की आबादी है; जिसे गढ़वा के नाम से पुकारते हैं। यहाँ २५०-३०० घरों की बस्ती है।

पं० बेलीराम शर्मा एम्० ए० सुपरिंटेंडेंट लाहौर-म्यूज़ियम ने इसकी खुदाई भी कराई है। परंतु इसमें विशेष उल्लेख-योग्य कोई वस्तु नहीं निकली।

अशोक-स्तंभ के पास खुदाई कराने से कुछ मिट्टी के बर्तन और एक कुआँ पाया गया है। यह कुआँ और बर्तन बहुत प्राचीन समय के नहीं मालूम होते। जान पड़ता है, नमक बनानेवालों ने ही यह कुआँ बनवाया है। बर्तन भी सारनाथ में रक्खे हुए प्राचीन बर्तनों से भिन्न हैं। वहीं पर एक भट्टी भी, कुछ गहराई पर खोदने से, पाई गई है। इससे यह विश्वास दृढ़ हो जाता है।

जैन-मंदिर के पास बुद्ध भगवान् की खंडित मूर्तियाँ भी पड़ी हुई हैं। यहाँ पर क़िले में ईंटें बहुत बड़ी और

१. देखो बुद्ध-चरित।

२. देखो नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, सन् १९०२।

१. जैनों का कथन अशुद्ध है। वह मूर्ति बुद्ध की ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोटी पाई जाती हैं। मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े भी अधिक मोटे दल के पाए जाते हैं।

गढ़ के पूर्वी भाग में कुंजेश्वर भुंजहेड़ा (यज्ञ-स्थान) कहलाता है; जहाँ, लोग कहते हैं, पांडु-वंशीय राजों ने यज्ञ किया था। एक बार यमुना-नदी में अधिक बाढ़ आने के कारण भुंजहेड़ा पर पानी भर गया था। तब उसके भीतर से जले हुए जव आदि बाहर उतराने लगे थे।

पं० इंद्रनारायणजी द्विवेदी ज्योतिष-भूषण ने भी इसका समर्थन किया है। उन्होंने स्वयं देखा भी था।

गढ़ के उत्तर ओर वरूचा नाम का ग्राम है। इस समय यह एक छोटा-सा ग्राम है; जिसमें १०-१२ घर से अधिक आबाद न होंगे। यही स्थान वररुचि कात्यायन की जन्म-भूमि माना जाता है। वररुचि के नाम से ही ग्राम का नाम वररुचा पड़ा था, जो अब बरूचा हो गया है।

गढ़ के पश्चिम ओर कोसम इसहाम के पीछे पाली-ग्राम है। यहाँ पर बुद्ध भगवान् ने पाली प्राकृत में उपदेश दिया था। इसी ग्राम के नाम पर उस भाषा का नाम ही पाली-भाषा हो गया, जिसमें बुद्ध भगवान् ने उपदेश दिए थे।

कोसम ख़िराज़ से कुछ पूर्व गुवसासा स्थान है। कहा जाता है, यह वही स्थान है, जहाँ पर श्रीरामचंद्रजी ने वन जाते समय यमुना-नदी को पार किया था।

यह नगर हज़ारों वर्ष तक आर्य और बौद्ध राजों की राजधानी रहा। इस नगर के ध्वंसावशेष उन पुरु-वंशीय आदि आर्य-राजों के स्मृति-चिह्न-स्वरूप हैं, जिनका यह नगर क्रीड़ा-क्षेत्र रहा है, और जिनमें से बहुतों का समय निर्धारित करना भी मनुष्य-शक्ति के बाहर प्रतीत होता है। इसी स्थान पर पांडु-वंशीय तथा दूसरे अन्य राजों की हज़ारों वर्ष तक राजधानी रही है, और इसी भूमि पर बुद्ध भगवान् के चरण-चिह्न वर्षों तक अंकित होते रहे हैं, तथा जनता की सहस्रों वर्ष की धार्मिक पिपासा उनके अमृतमय सुमधुर उपदेशों से शांत होती रही है। उसके पश्चात् भी सहस्रों वर्षों तक गुप्त आदि कई वंश यहाँ राज्य करते रहे हैं। उसी नगर को अब पहचानना तक कठिन हो गया है। कराल काल की अपार महिमा है।

इस नगर का वर्णन वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, पुराण, दर्शन, आदि प्राचीन ग्रंथों में अच्छी तरह मिलता है। इसी नगर की घटनाओं को लेकर ईसा से ३०० वर्ष पूर्व कविरत्न 'भास' ने स्वप्न-वासवदत्ता, सुबंधु ने छठी शताब्दी में वासवदत्ता और महाराज हर्षवर्धन ने सातवीं शताब्दी में रत्नावली-नाटिका लिखकर अपनी लेखनी को पवित्र किया था। महाकवि कालिदास ने भी कौशांबी और उसके राजा का वर्णन किया है। महाकवि वररुचि कात्यायन और सुबंधु-जैसे विद्वानों को जन्म देने का सौभाग्य भी इसी भूमि को है।

बौद्ध-धर्म का तो शायद कोई बड़ा धार्मिक ग्रंथ ऐसा न मिलेगा, जिसमें कौशांबी का वर्णन न मिले। चीनी, तिब्बती और सिंहाली ग्रंथों में तो इसका वर्णन मिलता ही है। उन्हीं के आधार पर अँगरेज़ी, फ्रेंच, डेनिश और जर्मन आदि योरपियन भाषाओं में भी कौशांबी का यथेष्ट वर्णन मिलता है।

जिस प्रकार हिंदी में इंद्रप्रस्थ और सारनाथ का इतिहास लिखा गया है, उसी प्रकार कौशांबी का इतिहास लिखने की भी बड़ी आवश्यकता है। आशा है, कोई विद्वान् इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

इसी प्रकार सैकड़ों प्राचीन नगर लुप्तप्राय हो गए हैं; जिनको खोज निकालना और उनका इतिहास प्रकाशित करना योग्य विद्वानों का ही काम है। खेद यही है कि एक तो इस विषय के विद्वान् ही थोड़े हैं; जो हैं भी, वे अँगरेज़ी में ही लेख और पुस्तकें लिखना पसंद करते हैं। इसे मातृ-भाषा हिंदी का दुर्भाग्य ही समझिए। उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे महाशय हिंदी पर कृपा कर मातृ-भाषा में ही लेख और पुस्तकें लिखना शुरू करें, और नए कृती योग्य लेखक भी इस ओर ध्यान देकर खोज के कार्य में लग जायँ। यह एक अभाव और भी खटकता है कि संस्कृत के विद्वान् हिंदी को अब भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं, और इस ओर ध्यान देने की कृपा नहीं करते। बंगाल में अधिकतर संस्कृत के विद्वान् ही बँगला के अच्छे लेखक हैं। यही दशा महाराष्ट्र और गुजरात-प्रांत की भी है।

इसी अभाव के कारण मुझ-सरीखे क्षुद्र लेखक को इस लेख के लिखने का दुस्साहस करना पड़ा *।

भागीरथप्रसाद दीक्षित

---

* इस लेख के लिखने में कविराज पं० गोपीनाथजी एम्० ए०, पुस्तकाध्यक्ष सरस्वती-पुस्तकालय, क्वींस कॉलेज, बनारस से जर्मन-भाषा के ग्रंथों का भावार्थ समझने में बहुत सहायता मिली है। अतः उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आल्ह-खंड का अँगरेज़ी-अनुवाद

[The Lay of Alhá]



ल्हे का प्रचार युक्त-प्रांत में बहुत अधिक है। अन्य प्रांतों में भी, जहाँ-जहाँ इन प्रांतों के निवासी अधिक संख्या में पाए जाते हैं, आल्हा गाया जाता है। आल्हे की फ़सल विशेष करके वर्षा-ऋतु है। जो लोग सभ्य और सुशिक्षित होने का सही या ग़लत दावा करते हैं, उनकी बात हम नहीं कहते। ऐसे लोगों की समझ में आल्हे की मजलिस के पास खड़े होना भी अपनी इज़्ज़त घटाना है। परंतु जो लोग ऐसे दावे से दूर हैं, अधिकांश में वे सभी हिंदू—कहीं-कहीं मुसलमान भी—आल्हे से अत्यंत अधिक प्रेम रखते हैं। उनके लिये, तुलसीदास-कृत रामायण के बाद, यदि कोई पुस्तक या गाने की चीज़ आदर-पात्र है, तो आल्हा ही। वर्षा का आरंभ होते ही किसी-किसी शहर या क़सबे में तो आल्हे के प्रेमी उन्मत्त-से हो उठते हैं। उनके मुँह से आल्हे की कड़ियाँ अनायास निकला ही करती हैं। आल्हे के नामी-नामी गवैयों की बन आती है। उनकी बड़ी पूजा-अर्चा होती है। सैकड़ों नहीं, हज़ारों रुपए उन पर चढ़ा दिए जाते हैं। उनकी मजलिस में इतनी भीड़ होती है, जितनी कि श्रीमद्भागवत, महाभारत या रामायण का पारायण करनेवाले पौराणिक पंडितों की भी मजलिस में नहीं होती।

दिहात में यद्यपि उतनी भीड़ नहीं होती, जितनी कि शहरों में, पर गंगा और यमुना के बीच के भू-भाग में शायद ही नाम लेने योग्य कोई गाँव ऐसा हो, जहाँ बरसात में दो-एक दफ़े आल्हा न होता हो। कहीं-कहीं तो दस-दस, पंद्रह-पंद्रह दिनों तक नियम-पूर्वक ढोलक ठनकती है, और परमाल, मलखान, आल्हा और ऊदन आदि के वीरोचित कार्य-कलाप की कीर्ति का गगन-भेदी गान हुआ करता है। उत्साह का समुद्र उमड़ उठता है। श्रोताओं के रोम-रोम से वीर-रस का स्रोत बहने लगता है। छोटे-छोटे बच्चे तक गाँव की गलियों में, खेतों और बाग़ों में, नदियों और नालों के किनारे आल्हा गाते फिरते हैं।

जितने सभ्य देश हैं—और सभ्य होने का दावा उन्हीं को करना चाहिए, जहाँ के निवासियों के हृदयों में अपने पूर्व पुरुषों का यथेष्ट सम्मान और यथेष्ट गौरव है—वे सभी अपनी क़िस्से-कहानियों का, अपनी प्राचीन पुस्तकों का, अपने गँवारू गीतों तक का आदर करते हैं। सभ्यता के मेरु-दंड ग्रीस और रोम को जाने दीजिए; भारतीय सभ्यता-माला के सुमेरु सज्जन इस विषय में जिस इँगलैंड को अपना गुरु समझते हैं, वह भी अपने पुराने गीतों का आदर करता है। पर हाय, उसी के शिष्य हम आल्हे का नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, उसकी ध्वनि सुनते ही रास्ता छोड़कर, कतराकर वहाँ से निकल जाते हैं। जिस आल्हे में हमारी रग-रग फड़का देनेवाली, हमारे वीर-वरों की अद्भुत कार्यावली का वर्णन है, जिस आल्हे को सुनकर कायरों के भी हृदयों में वीर-रस का संचार हो जाता है, जिस आल्हे में स्वामि-भक्ति, मातृ-स्नेह, पति-प्रेम और आत्म-गौरव के एक-से-एक बढ़कर उदाहरण पाए जाते हैं, उसी से हमारे सभ्यताभिमानी नागरिकों की विरक्ति देखकर अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहाने के सिवा समझदार मनुष्य और कर ही क्या सकता है? कारण, जो सर्वज्ञ, सभ्य और शिक्षित होने के दावेदार हैं, वे अल्पज्ञों और अल्प-शिक्षितों के समझाने के मान के थोड़े ही हैं।

साधारण जनों—अपढ़ों और मूर्खों तक—को आल्हा इतना प्रिय है, और उसने उनके हृदयों पर इतना अधिकार कर लिया है कि उससे लेने लायक़ शिक्षाओं का असर समाज पर डालकर बड़े-से-बड़े काम कराए जा सकते हैं। यहाँ तक कि आल्हा-छंद में रची गई अभीष्ट विषयों की कविता से भी जन-साधारण का मन मनमानी दिशा की ओर आकृष्ट किया जा सकता है। परंतु बड़े ही परिताप की बात है कि इस ओर आज तक किसी का ध्यान ही शायद नहीं गया। आल्ह-खंड को तो पढ़े-लिखे लोगों ने हेय-सा समझकर उसका कोई अच्छा-सा संस्करण तक नहीं प्रकाशित किया। उसकी जितनी पुस्तकें देखी जाती हैं, प्रायः सभी बाज़ारू हैं। किसी में कुछ अधिक है, किसी में कुछ कम। किसी में केवल महोबे या सिरसे ही की लड़ाई है, और किसी में केवल बेला का ब्याह। पाठांतरों और क्षेपकों की तो गिनती ही नहीं। हमारे दुर्दिन और हमारे साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दुर्गति का यह दुःख-जनक दृश्य बड़ा ही करुणा-जनक है। और देश होता, तो इस वीर-पूज्य पुस्तक की सहायता से अनेक नए-नए काव्य बन जाते; इसके कथा-भाग के आधार पर अनेक नई-नई पुस्तकें प्रकाशित हो जातीं। और कुछ न होता, तो सभ्यताभिमानी शिक्षितों के पढ़ने योग्य इसका एक गद्यात्मक रूपांतर तो अवश्य ही तैयार हो जाता। और बातें जाने दीजिए, जब हम लोग आल्हे की यह प्रसिद्ध लाइन पढ़ते या सुनते हैं कि "देवी सारदा तुमका सँवरों मनिया-देव महोबे क्यार।", तब इस बात तक की खोज का ध्यान हमारे मन में नहीं आता कि यह मनिया-देव क्या चीज़ है। वह सचमुच कोई देव ही है, या देवी है, या कोई दानव? यह बात हम लोगों को तो नहीं सूझती; सूझती है छः हज़ार मील दूर, समुद्र-पार, रहनेवाले अँगरेज़ों को—उन अँगरेज़ों को, जिनके अनेक दोष स्वयं ग्रहण करने में परम पटु होने पर भी हम उनके दोषों का बहुधा प्रदर्शन किया करते हैं; पर उनके गुणों को ग्रहण करने की बहुत कम चेष्टा करते हैं। इन्हीं विद्या-व्यसनी अँगरेज़ों का कथन है कि महोबे का मनिया-देव न तो देव है, न दानव। वह देवी है। सो उसे मनिया-देव नहीं, मनिया-देवी कहना चाहिए।

बात पुरानी है। उस समय की है, जब इस देश में ईस्ट-इंडिया-कंपनी का प्रभुत्व था। उसी ज़माने में —सन् १८४० ईसवी के लगभग—विलायत में, विलियम वाटरफ़ील्ड नाम के एक साहब के हृदय में भारत आकर नौकरी करने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस कारण वहाँ उन्होंने अपनी भाषा के सिवा संस्कृत, फ़ारसी, बँगला और हिंदी आदि भाषाएँ भी सीखीं, और इस उपलक्ष्य में कितने ही तमग़े और पुरस्कार भी प्राप्त किए। उस समय वहाँ इन भाषाओं की शिक्षा का प्रबंध था या नहीं, और था, तो कहाँ तक था, यह हमें ज्ञात नहीं। उक्त साहब के बेटे फ़िलिप वाटरफ़ील्ड ने अपने पिता के विषय में जो कुछ लिखा है, उसी की पुनरुक्ति-मात्र हम यहाँ पर करते हैं। ख़ैर, १८४२ ईसवी में नौकर होकर साहब कलकत्ते आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने फ़ोर्ट-विलियम-कॉलेज में, अपने पूर्वदेशीय भाषाओं के ज्ञान की और भी वृद्धि की, और बड़ी नामवरी के साथ परीक्षाएँ पास कर लीं। इनाम-इकराम भी पाए। अरबी और उर्दू भी आपने सीख ली। इस प्रकार अनेक भाषाओं के वेत्ता हो जाने पर आपको नौकरी मिली। आप चौबीस परगने के असिस्टेंट मैजिस्ट्रेट और कलेक्टर बनाए गए। धीरे-धीरे आपकी पदोन्नति होती गई। यहाँ तक कि १८६७ ईसवी में आप इन प्रांतों के एकाउंटेंट जनरल और १८७७ में सारे भारत के कंट्रोलर जनरल हो गए। १८८१ में आपने पेंशन ले ली, और १९०७ में परलोक-गमन किया। आपको कविता से प्रेम था। आप अच्छे कवि थे। कई काव्य आपने अँगरेज़ी में लिखे, और कई फुटकर कविताओं का प्रणयन भी किया।

जिस समय वाटरफ़ील्ड साहब इलाहाबाद में एकाउंटेंट जनरल थे, उसी समय इलियट साहब फ़र्रुख़ाबाद में मैजिस्ट्रेट और कलेक्टर थे। ये वही इलियट साहब हैं, जो पीछे से सर चार्ल्स इलियट कहाए थे। इन्हें आल्हे से प्रेम हो गया। पर उस समय, अर्थात् सन् १८६७ तक, आल्हे की कोई पुस्तक न तो छपी हुई मिलती थी, और न लिखी हुई ही। इस कारण इलियट साहब ने क़न्नौज के आस-पास के नामी-नामी अल्हैतों को बुलाकर आल्हा सुना। फिर जैसा पाठ उन्होंने सुनाया, उसी के आधार पर साहब ने आल्हे को लिखा लिया। भिन्न-भिन्न विषयों के अनुसार उन्होंने उसे २३ सर्गों या खंडों में विभक्त किया। इस प्रकार, जो आल्हा लाखों मनुष्यों के गले का हार हो रहा है, और जो हमारे धर्म, आचार, कर्तव्य, क्षत्रियत्व और वीरत्व आदि के अनूठे भावों का भांडार है, वह हमें एक विदेशी अँगरेज़ अफ़सर के बदौलत प्राप्त हुआ। एतदर्थ हमें सर चार्ल्स इलियट का कृतज्ञ होना चाहिए। उनको धन्यवाद। उनके इस सत्कार्य के लिये उन्हें सैकड़ों साधुवाद।

इलियट साहब को जब मालूम हुआ कि वाटरफ़ील्ड साहब हिंदी, उर्दू आदि कई भाषाएँ जानते हैं, तब उन्होंने उनको आल्हे के लिपि-बद्ध किए जाने की ख़बर दी। साहब को आल्हा बहुत पसंद होने के कारण संभव है, उन्होंने उसकी प्रशंसा भी की हो। क़िस्सांकोताह आल्हे की पोथी वाटरफ़ील्ड साहब को भेजी गई, और उन्होंने अँगरेज़ी-पद्य में उस समग्र काव्य का अनुवाद कर डालने का संकल्प किया। अनुवाद उन्होंने "बैलड"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Ballad)-छंद में आरंभ किया; जो इस ग्रंथ के लिये बहुत ही उपयुक्त था।

आल्हे के एक खंड में "नौलखा हार" के संबंध का वर्णन है। वाटरफ़ील्ड साहब ने उसका समग्र अनुवाद करके १८७५-७६ में, "कलकत्ता-रिव्यू"-नामक सामयिक पत्र में, प्रकाशित किया। इसके तीन ही चार वर्ष बाद अनुवादक महाशय पेंशन लेकर अपने देश चले गए। वहाँ १६०७ ईसवी में उनकी मृत्यु हो गई।

वाटरफ़ील्ड साहब ने आल्हे का और जितना अनुवाद किया था, वह सब अप्रकाशित ही उन्हीं के घर पड़ा रहा। दैव-योग से डॉक्टर ग्रियर्सन ने उनके पुत्र फ़िलिप वाटरफ़ील्ड से उनके पिता के अनुवादित और प्रकाशित "नौलखा हार" के विषय में कुछ पूछ-पाछ की। नतीजा यह हुआ कि फ़िलिप महोदय ने अपने पिता के संगृहीत समस्त काग़ज़-पत्रों को डॉक्टर साहब के पास भेज दिया। उनमें डॉक्टर साहब को वाटरफ़ील्ड साहब का किया हुआ आल्हे के पाँच सर्गों का पूरा और दो का अधूरा अनुवाद मिला। रह गए १६ सर्ग। उनमें से ७ सर्गों का गद्यात्मक सारांश तो फ़र्रुख़ाबादवाले इलियट साहब के काग़ज़-पत्रों के आधार पर तैयार किया गया। बाक़ी ६ सर्गों का सारांश डॉक्टर साहब ने ख़ुद ही तैयार किया। इस प्रकार ५ सर्गों के पूरे और २ सर्गों के अधूरे पद्यात्मक अनुवाद के साथ अवशिष्ट १६ सर्गों का संक्षिप्त वर्णन शामिल करके एक पुस्तक तैयार की गई, जो "The Lay of Alhá" के नाम से प्रकाशित हुई है। इसका संपादन पूर्व-निर्दिष्ट डॉक्टर ग्रियर्सन ने और प्रकाशन विलायत के आक्सफ़र्ड-युनिवर्सिटी-प्रेस ने किया है। पुस्तक सुंदरता से छापी गई है। ऊपर नेत्र-रंजक जिल्द है। मूल्य रक्खा गया है ७ शिलिंग ६ पेंस। अँगरेज़ी-भाषा की पुस्तकें बेचनेवाले प्रसिद्ध-प्रसिद्ध बुकसेलरों से भी शायद यह पुस्तक मिल सकती है। प्रकाशित करनेवाले प्रेस के जो एजेंट कलकत्ते और बंबई में हैं, वे तो इसे बेचते ही हैं। डॉक्टर साहब ही की प्रेरणा से इस पुस्तक की एक कापी, बंबई से, हमें भी मिली है। वह न उपहार में आई है, न भेंट में। आई है समालोचना के लिये। डॉक्टर साहब ने ख़ुद भी, सीधे नहीं, द्राविड़ी प्राणायाम का-जैसा चक्कर काटकर, एक और महाशय की मारफ़त, हमें इसकी समालोचना प्रकाशित करने के लिये आज्ञा दी है। दिहात में अज्ञात-वास न सही, एकांत-वास करने के कारण इधर कई वर्षों से हमें डॉक्टर साहब की नूतन कृतियाँ देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। हमें यहाँ तक ख़बर नहीं कि उनकी "Linguistic Survey" की सारी जिल्दें निकल गईं या नहीं, और साथ ही तद्विषयक उनकी भूमिका या प्रस्तावना भी प्रकाशित हो गई या नहीं। तथापि आपकी गत-पूर्व रचनाओं से ही हम बहुत लाभ उठा चुके हैं। अतएव हम पर आपका ऋण है। इसी से, सरस्वती-संपादन से विरत होने के कारण, यद्यपि समालोचना करना हमने छोड़ दिया है, क्योंकि यह हमारा पेशा नहीं, तथापि डॉक्टर साहब की आज्ञा शिरोधार्य करके उनकी इस पुस्तक के संबंध में, हमने यह इतना निवेदन करना अपना कर्तव्य समझा। अभी कुछ थोड़ा-सा वक्तव्य और है। उसका भी समापन हम किसी तरह कर देना चाहते हैं।

विदेशी-भाषा के शब्दों का भावार्थ ठीक-ठीक समझ लेना बहुत कठिन बात है। विदेशी-भाषा की कविता का भाव—और ऐसी भाषा की कविता का भाव, जिसका संबंध अपनी भाषा से प्रायः बिलकुल ही नहीं—हृदयंगत कर लेना तो और भी कठिन है। प्रत्येक भाषा के एक-एक शब्द ने एक ही नहीं, यदा-कदा अनेक भावों को अपने में लीन-सा कर लिया है। उसके श्रवण या उच्चारण से वे सभी भाव हृदयंगत हो जाने चाहिए, मुहाविरों का ठीक-ठीक मतलब समझ में आ जाना चाहिए, उस भाषा के बोलनेवालों के जाति-गत संकेतों, आचारों और रूढ़ियों का ज्ञान हो जाना चाहिए। विना इसके भाषा-ज्ञान पूरा नहीं हो सकता। उदाहरण के लिये ताप-शब्द को लीजिए। जिस धातु से वह निकला है, वही धातु प्र-ताप, परि-ताप, सं-ताप और अनु-ताप में भी मौजूद है। परंतु भिन्न-भिन्न उपसर्गों के बल से इन सभी शब्दों के अर्थ में भिन्नता आ जाने पर भी उस भिन्नता ने धात्वर्थ के लगाव को फिर भी नहीं छोड़ा। विदेशी विद्वान् जब तक इन सभी शब्दों के धात्वर्थ और वाच्यार्थ से अच्छी तरह परिचित न होंगे, तब तक वे हिंदी या संस्कृत-भाषा में रची गई कविताओं का ठीक-ठीक भावार्थ शायद ही हृदयंगत कर सकें। आल्हे के अँगरेज़ी-अनुवाद के दो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार स्थल हमने मूल से मिलाकर जो देखे, तो मालूम हुआ कि वाटरफ़ील्ड साहब आल्हे की हिंदी अच्छी तरह समझते थे। अतएव उन्हें, अपने अनुवाद में, मूल का यथार्थ भाव व्यक्त करने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है। युद्धों के लंबे-चौड़े वर्णनों को उन्होंने छोटा कर दिया है। शस्त्रों की नामावली में भी उन्होंने कतर-ब्योंत की है। सेनाओं और मरे हुओं तथा घायलों की संख्या भी उन्होंने कम कर दी है। मूल के लाखों और करोड़ों के सूचक अंकों का संकोचन भी उन्होंने कर दिया है। परंतु इस काट-छाँट से प्रसंग-च्युति नहीं हुई। कथा-सूत्र बराबर समझ में आता चला जाता है।

अनुवाद की भाषा कैसी है—वह यथेष्ट भाव-व्यंजक है या नहीं, वह उतनी ही सरस है या नहीं, जितनी कि मूल-ग्रंथ की भाषा—इस पर कुछ कहने का अधिकार हमें नहीं। क्योंकि हम इस भाषा के सभी शब्दों और मुहाविरों का भावार्थ और संकेतार्थ अच्छी तरह जानने का दावा नहीं कर सकते। ऐंग्लो-सैक्सन-भाषा का एक शब्द है किन या काइन (Cyn)। वह अँगरेज़ी के कई शब्दों का आधार है। यथा—किन (Kin), जिसका अर्थ है सजातीय, संबंधी, कुटुंबी आदि। किंसमैन (Kinsman) और किनशिप (Kinship) आदि इसी से बने हैं। दूसरा शब्द लीजिए—काइंड (Kind); यह भी ऐंग्लो-सैक्सन-भाषा के काइन (Cyn) से ही बना है। पर अर्थ में अंतर हो जाने पर भी इसने अपने आद्यर्थ का समूल ही परित्याग नहीं किया। तीसरा शब्द है—किंग (King)। यहाँ अर्थ में और भी अधिक भिन्नता आ गई। परंतु इसकी भी जड़ से इसके मूल आधार काइन (Cyn) का लगाव बना हुआ है। कहने का मतलब यह कि योरप के प्राच्य-विद्या-विशारद अपनी प्रखर प्रतिभा और कुशाग्रबुद्धि के बल पर हमारी रामायण, पद्मावत, विनय-पत्रिका, रासो और आल्हे आदि का कवि-हृद्-गत अर्थ चाहे भले ही समझ लें, पर हम-जैसे विदेशी उनकी भाषा में रची गई कविताओं और काव्यों का अभ्रांत तात्पर्य समझने का गर्व नहीं वहन कर सकते। हाँ, जिन लोगों ने अँगरेज़ी-भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया हो, और वह भाषा जिनकी मातृ-भाषा-सी हो गई हो, वे भले ही वैसा गर्व वहन करें, और आल्हे के अँगरेज़ी-अनुवाद के सरस या नीरस तथा अच्छे या बुरे होने के विषय में राय दें। हम तो, अपने परिमित भाषा-ज्ञान के बदौलत, केवल इतना ही कह सकते हैं कि कहीं-कहीं तो वह हमें रोचक और कहीं-कहीं पर अरोचक मालूम होता है। पर हमारी इस राय का मूल्य ही कितना?

इस अनुवाद की कविता का यथेष्ट आस्वादन चाहे सभी लोग न कर सकें, पर इसका कथांश थोड़ी अँगरेज़ी जाननेवाले भी समझ लेंगे, इसमें संदेह नहीं। डॉक्टर साहब ने पुस्तकारंभ में एक विस्तृत प्रस्तावना और ऐतिहासिक नामों की विवरणात्मक सूची देकर इस अनुवाद की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है।

हमारे सैकड़ों नहीं, हज़ारों सभ्यताभिमानी और शिक्षितम्मन्य देश-भाई आल्हे को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे देखें कि उनकी उसी घृणा-योग्य वस्तु का विदेशी विद्वान् कितना आदर करते हैं। उन्हीं के प्रांत का एक विदेशी एकाउंटेंट जनरल उसे अपनी भाषा का रूप देता है, और दूसरा, अनेक सम्मान-सूचक पदवियों का भोक्ता पेंशनर सिविल सर्वेंट, उसे परिवर्धित और संस्कृत करके उसका प्रकाशन करता है। हमारे जो भाई आल्हे को गँवारू-गीत, हिंदी को गँवारू-भाषा और हिंदी-कविता को तुच्छ समझते हैं, वे इस अँगरेज़ी-अनुवाद ही को पढ़ने की कृपा करें।

आल्हे के पाठ से बारहवीं सदी के महोबे, क़न्नौज और देहली की राजनीतिक स्थिति का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। उसके अवलोकन से उस समय के वीरों की देश-भक्ति और स्वामि-भक्ति के उदाहरणों के साथ-ही-साथ कृतघ्नता और कपटाचार के भी उदाहरण देखने को मिलते हैं। जहाँ आल्हा, ऊदन, मलखान और लाखन के सदृश धीर, वीर और विश्वास-पात्र योद्धाओं के कीर्ति-कलापों का वर्णन है, वहाँ माहिल के सदृश दुष्ट, दुःशील और विश्वासघाती पुरुषों की कलंक-कालिमा का भी उल्लेख है। बेला और मल्हना आदि क्षत्राणियों के चरित्र से भी अनेक शिक्षाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। उस समय के आचार, व्यवहार, विवाहादि से संबंध रखनेवाले जो चित्र आल्हे में हैं, वे भी उपेक्षणीय नहीं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीक्षा



दो मास की दीर्घ प्रतीक्षा के पश्चात् एक दिन उनका पत्र मिला। दीर्घ ?—हाँ, दीर्घ। प्रतीक्षा का एक-एक पल दीर्घ—महादीर्घ होता है। पत्र में लिखा था—"तुम बड़े निष्ठुर हो। मुझसे मिलने नहीं आए। मुझे तो अंत में आना ही पड़ता है।" अपने प्यारे का प्रेम-पत्र पाकर मुझे परम प्रसन्नता प्रतीत हुई। जिसको हम प्यार करते हैं, उसके सब पत्र प्रेम-पत्रों की ही कोटि में आते हैं, फिर चाहे उनमें गालियाँ ही क्यों न हों। प्रेमी के मुख से गालियाँ भी तो मीठी लगती हैं। सचमुच, मुझे तो उसके निष्ठुर शब्द में सिकंजी (नींबू के रस और क़ंद के मिश्रण) का-सा स्वाद आया।

मेरा मन मित्र-मिलन के भावी सुखानुभव से मुदित हो इस प्रकार नाचने लगा, जैसे मेघ-दर्शन से प्रेमोन्मत्त होकर मयूर नाचने लगता है। मेरा रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठा; मानो मुझे साक्षात् प्रेमनाथ—कृष्ण—के दर्शन होनेवाले हैं। अलंकारों के उपासक कहेंगे, यह अत्युक्ति है। पर उनको ध्यान रहे कि प्रेम-साम्राज्य की भाषा में अत्युक्ति-अलंकार है ही नहीं। नैयायिक पूछेंगे—'प्रमाण?' प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्। वे अपने तमसावृत हृदय-मंदिर में प्रेम-प्रदीप जलाकर देखें।

अब मेरे हृदय में विरह-ज्वाला एकदम भभक उठी। मन चाहने लगा कि वह कल न आकर उसी दिन आ जाते—नहीं-नहीं, उसी समय आ जाते। सच है, मित्र के आने का संदेश सुनकर उससे मिलने की उत्कंठा इतनी उत्कट हो जाती है कि फिर धैर्य धारण करना कठिन हो जाता है। मेरे नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे, हृदयाकाश कुछ स्वच्छ-सा प्रतीत होने लगा। अब उसमें अनेक भाव-तारे उदित होने लगे। मैं, उनके गाड़ी से उतरते ही, उनसे किस प्रकार मिलूँ—गाढ़ालिंगन-पूर्वक, या उनके पैरों में गिरकर ? अथवा उनके इतनी प्रतीक्षा कराकर आने के कारण मौन रहकर मान जताऊँ ? किंतु कुछ निश्चय न कर सका।

उत्सुकता क्षण-क्षण पर बढ़ने लगी। हर्षाधिक्य के कारण उस रात को नींद भी नहीं आई। जगते में स्वप्न-संसार की सैर करता रहा। वह एक रात मुझे तीन रातों के समान लंबी मालूम होती थी। जैसे-तैसे करके सबेरा हुआ। आज संध्या को अपने प्यारे से मिलूँगा—यह बार-बार सोचकर मैं बहुत प्रसन्न हो रहा था। जैसे-तैसे सबेरा तो हुआ, किंतु अब संध्या तक प्रतीक्षा करना मेरे लिये बहुत कठिन हो गया।

सूर्य भगवान् अपने रथ को इतना धीरे-धीरे चला रहे थे कि संध्या तक वह अपनी पश्चिम-दिशा-वधू से मिल पावेंगे, इसका मुझे विश्वास नहीं होता था। मेरा मन तो बहुत चाहता था कि उनके रथ के घोड़ों के एक चाबुक ज़ोर से फटकार दूँ; पर वश नहीं चलता था।

जैसे-तैसे करके संध्या होने को आई। लाल साड़ी पहने हुए, प्रचुर प्रतीक्षा के पश्चात् अपने प्रियतम को पाकर परम प्रसन्न होती हुई पश्चिम दिशा ने अपने पहाड़ी प्रासाद में उसके साथ प्रवेश किया। पक्षी भी अब अपने सम्राट्—सूर्य—की सेवा से छुट्टी पाकर मधुर गीत गाते हुए अपनी प्रियतमाओं तथा प्यारे बच्चों से मिलने को अपने-अपने घरों की ओर चल पड़े।

मैं गाड़ी के समय से बहुत पहले स्टेशन जा पहुँचा, और अपने प्रिय मित्र को मिलानेवाली प्यारी गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगा। अब आई, अब आई, अब आई। आख़िर गाड़ी आ पहुँची। मैं उत्सुकता-पूर्वक एक-एक डिब्बा देखने लगा। मित्र दिखलाई न पड़े। मैं कुछ उदास हुआ। फिर टिकट-कलक्टर के पास जा खड़ा हुआ कि वह जायँगे तो यहीं से। एक-एक करके सब मुसाफ़िर निकल गए। मित्र न देख पड़े। मन न माना, फिर एक एक डिब्बा अंदर घुस-घुसकर देख डाला। पर वह वहाँ हों, तब तो मिलें। फिर दौड़ा-दौड़ा जहाँ इक्के खड़े थे, वहाँ गया कि कहीं मैं न देख सका होऊँ, और वह निकल गए हों। पर वह वहाँ भी न मिले। मुसाफ़िर सवारियों में बैठ-बैठकर चल पड़े। दिल न माना। उसने फिर एक झाँसा दिया। मैंने स्टेशन का एक-एक कमरा देख डाला। वह कहीं भी न मिले। वह तो आए ही नहीं थे, मिलते कहाँ से।

मैं घर को लौट पड़ा। आँखों में अँधेरा छा गया। प्रेमी आशावादी होते हैं। किंतु नैराश्य का ऐसा प्रबल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्रमण हुआ कि आशा के पैर उखड़ने लगे। मैं किसी तरह हारा-थका घर पहुँचा। घर पर मैंने पूछा—"क्या वह नहीं आए?" घरवालों ने हँसकर कहा—"क्या कहते हो, लाने तो तुम गए थे!" उस समय कहीं तबीयत न लगने लगी। खाने बैठा, तो भूख ने भी जवाब दे दिया। दो-चार कौर खाकर शय्या की शरण ली। अब आँखों की बारी आई। आँसुओं का समुद्र उमड़ पड़ा। फिर नींद ने अपनी गोद में लिटा लिया।

मित्र उसी रात को, दूसरी लाइन से होकर, बारह बजेवाली गाड़ी से आ गए थे। सबेरे लेटे-लेटे मैंने अपने भतीजे के मुँह से यह सुना—"चाचा, यह आ गए। यह देखो छत पर खड़े हैं।" मैं समझा, स्वप्न देख रहा हूँ। जब दूसरी बार उसने कहा, तो आँखें मलते हुए उठ बैठा। किंतु फिर भी उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह बुरी बात पर तुरंत विश्वास कर लेता है; किंतु मन-चाही बात का विश्वास एकाएकी नहीं करता। मैं उठकर गया, तो क्या देखता हूँ, सचमुच वह छत पर खड़े हैं। मुझे देखकर मंद मुसकान से उनका मुखड़ा चमक उठा। मैं एकटक उनके मुख की ओर देखने लगा—कुछ कहते नहीं बना। मैंने चाहा, कूदकर उनको छाती से लगा लूँ; किंतु छत ऊँची थी। फिर भी मनो-मंदिर की छत पर मैंने उनका आलिंगन कर ही डाला। "आवश्यक कार्य-वश यहाँ से १५-२० मील दूर एक गाँव को मैं अभी जा रहा हूँ"—यह कहते हुए वह नीचे आने लगे। मैंने पूछा—"कब तक लौटोगे?" उत्तर मिला—"आज संध्या को ही छः बजे तक।" मुझ पर वज्र-पात-सा हुआ। हृदय की धड़कन बंद हो गई। नेत्र वर्षा-काल की बहार दिखाने लगे। किसी ने सच कहा है—

> माँगते हैं हिज्र हम बदले विसाल के;
> आख़िर तो दुश्मनी है दुआ को असर के साथ।

पाँच बजे से ही मैंने प्रतीक्षा आरंभ कर दी। प्रत्येक पल उनके पैरों की आहट की राह ताकने में व्यतीत होने लगा। एक-एक घड़ी घंटे के समान प्रतीत होने लगी। मैं सोचने लगा, परमात्मा प्रेम-पटल में वियोग-कंटक न लगाता, तो कैसा अच्छा होता! क्या यह बात उसके सामर्थ्य से बाहर थी? यदि मुझे वह (परमात्मा) एक घंटे के लिये भी अपनी जगह काम करने दे, तो पहली आज्ञा मैं यह दूँ कि संयोग में वियोग न हो। फिर मित्र के रूप का ध्यान करने लग गया। आहा! उनकी स्मृति कितनी सुखदायक है! मेरी आँखों में प्रेम और आशा-मिश्रित झलक देख पड़ी—होठों पर मधुर मुसकिराहट नाचने लगी।

मैंने समझा, छः बजे का समय हो गया होगा। तुरंत दृष्टि घड़ी की ओर गई। देखता हूँ, अभी तो सवा पाँच ही हुए थे। मुझे विश्वास न हुआ। घड़ी के पास जाकर देखा। ठीक सवा पाँच थे। उस समय घड़ी पर मुझे बड़ा क्रोध आया। मन में आया, सुई को घुमाकर अपने हाथ से छः बजा दूँ। छः में अभी पौन घंटा बाक़ी है—यह देखकर बेचैनी बढ़ने लगी। सोचने लगा, अब वह रास्ते में होंगे। १५ मिनट तो हो ही चुके, ४५ मिनट और बाक़ी हैं। घड़ी की ओर देखा, ४४ मिनट ही बाक़ी थे। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इस मिनट की कमी से मेरे जीवन-काल में एक मिनट की साठगुनी, अर्थात् एक घंटे की, वृद्धि हुई। गणितज्ञ कहेंगे, कम होने के बजाय जीवन-काल में यह वृद्धि कैसी? प्रेम-साम्राज्य के सभी व्यापार अद्भुत होते हैं। साधारण गणित की यहाँ गति नहीं। फिर मैं सोचने लगा, कहीं घड़ी एक मिनट देर से तो नहीं पूरा करती। मैं गिनकर न देख लूँ। एक दो, तीन, चार कहता हुआ मैं गिनने लगा। बीच में ही पैरों की आहट सुनाई दी। मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ देखने को लपका कि कहीं वही तो नहीं आ रहे हैं। पर वह मेरे पालतू कुत्ते के पैरों की आहट थी। मैं निराश हो गया। गिनती बीच में ही छूट गई। घड़ी में देखा, अभी साढ़े पाँच भी नहीं हुए थे। बाहर जाकर इधर-उधर कान लगाए।

मैं फिर लौटकर घड़ी के सम्मुख कुर्सी पर बैठ गया, और घड़ी की सुइयों की ओर देखने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि उस समय वे सुइयाँ बिलकुल नहीं चलती थीं। मैंने सोचा, कहीं घड़ी बंद तो नहीं है। किंतु नहीं, वह चल रही थी। उस दिन मुझे पूर्णतया ज्ञात हुआ कि प्रतीक्षा का एक-एक पल कितनी मुशकिल से बीतता है। जी फिर घबड़ाने लगा। कुर्सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उठकर मैं पलँग पर जा लेटा, और आँखें बंद करके मित्र का ध्यान करने लगा। मन न माना, वहाँ से भी उठ बैठा। सामने ही मित्र की तसवीर लगी हुई थी। उस पर दृष्टि पड़ी। तसवीर के पास जाकर खड़ा हो गया, और ध्यान-पूर्वक उसे देखने लगा। वह तसवीर में मुसकिराते हुए देख पड़े। उस समय मुझे वह तसवीर निर्जीव होने पर भी सजीव प्रतीत हुई। क्षण-भर के लिये विरहाग्नि पर शांति-सलिल की वर्षा हो गई। फिर उसमें से चिनगारियाँ निकलने लगीं। मैं सोचने लगा—"यह प्रेम क्या पदार्थ है?" अंतस्तल से किसी ने कहा—"प्रेम परमेश्वर है।"

फिर कुछ समय तक टहलता हुआ मैं प्रेम-साम्राज्य की सैर करता रहा। पास ही मेज़ पर रमेश-चित्रावली पड़ी थी। उस पर नज़र पड़ी। उसे देखने के लिये मैं वहीं कुर्सी पर बैठ गया। जो चित्र देखता, उसी में अपने मित्र की मनोरम मूर्ति दिखलाई पड़ती। उससे भी मेरा मन न बहल सका। चित्रावली के जिस चित्र को मैं घंटों देखने पर भी नहीं ऊबता था, वही चित्र उस समय मुझे अच्छा नहीं लगता था। बाहर पैरों की आहट सुनाई दी। मैं तुरंत दौड़कर गया। मेरी गाय के पैरों की आहट थी। मैं वापस चला आया। कमरे में प्रवेश करते ही घड़ी ने छः बजाकर मेरा स्वागत किया। मेरी हृदय-तंत्री भी बज उठी। दिल ने कहा—"अच्छी तरह देख लो, कहीं पाँच तो नहीं बजे—कहीं आँखों ने धोखा तो नहीं दिया कि चार को पाँच समझ लिया हो, और पाँच को छः।" मैंने घड़ी में देखा—ठीक छः बजे थे। दिल ने कहा—"घड़ी को इस सुखद-संदेश के लिये कुछ इनाम मिलना चाहिए।" मैंने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया, और घड़ी को प्रेम-पूर्वक चूम लिया।

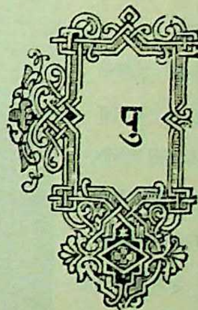
अब मेरे हृदय की अजीब हालत थी। मैं उन्मत्त-सा हो रहा था। कान अपनी पूर्ण शक्ति से काम ले रहे थे। कहीं कुछ आहट होती, तो मैं तुरंत दौड़कर उधर देखने जाता। मेरी श्रवण-शक्ति उस समय इतनी बढ़ी हुई प्रतीत होती थी कि कदाचित् कई मीलों से थोड़ी भी आहट ज्यों-की-त्यों सुनाई देती थी। मस्तिष्क महाराज उस समय सब काम छोड़कर कर्ण-रूपी बेतार की तारबरक़ी पर खड़े स्वयं प्रत्येक शब्द को सुन रहे थे। मैं छत पर जाकर खड़ा हो गया। कोई भी मोटरगाड़ी, साइकिल, इक्का, ताँगा या घोड़ा आता दिखलाई पड़ता, तो मैं समझता कि मेरे मित्र आ रहे हैं। परंतु, वह कोई दूसरा ही निकलता। अब तो आहट-पर-आहट सुनाई देने लगी। मैं कभी इधर दौड़कर देखता था, कभी उधर दौड़कर। चारों ओर दौड़-दौड़कर देखने लगा। घड़ी ने टन-टन करके सात बजा दिए। पर वह कहीं से भी आते न देख पड़े। मैं पागल की तरह दौड़ा गया, और सड़क पर खड़ा हो गया। सन-सन चलती हुई पवन कहने लगी—'प्रतीक्षा'; पेड़ों की पत्तियाँ हिल-हिलकर कहने लगीं—'प्रतीक्षा'; आकाश में मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था—'प्रतीक्षा'। पृथ्वी का एक-एक परमाणु मुझे 'प्रतीक्षा' का पाठ पढ़ता हुआ प्रतीत होता था।

चाँदसिंह

लाहौर

[पूर्वार्द्ध]

विषय-प्रवेश



पुरातन काल से चली आनेवाली पंजाब की राजधानी लाहौर ने जितने राजनीतिक परिवर्तन देखे हैं, उतने कदाचित् भारत की राजधानी देहली ने भी नहीं देखे होंगे। इसमें संदेह नहीं कि जितने ऐतिहासिक खँड़हर दिल्ली में हैं, उतने लाहौर में नहीं; परंतु जितने राज-वंशों का अभिषेक लाहौर ने देखा है, उतनों का दिल्ली ने नहीं देखा। इसकी ऊँची अट्टालिकाएँ, मंदिरों के सुनहले कलश और बड़े-बड़े गुंबद दूर से ही दर्शक की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करने लगते हैं। इसके जनाकीर्ण बाज़ार, इसकी कोलाहल-पूर्ण मंडियाँ और फलते-फूलते सब व्यवसाय यात्री के चित्त को प्रभावित किए बिना नहीं रहते।

लाहौर का नाम प्रातःस्मरणीय भगवान् रामचंद्रजी के पुत्र लव के नाम पर पहले लव-पुर था। राजपूताने के इतिहासों में इसे 'लोहकोट' भी लिखा है। मुसलमान-लेखकों के ग्रंथों में इसके लहावर, लोहाओवर, लोहारू और लहोर आदि नाम मिलते हैं। यह नगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कब बसा था, इसका ठीक-ठीक कुछ पता नहीं चलता। कुछ लोगों का अनुमान है कि ईसा की पहली और दूसरी शताब्दी के बीच इसकी नींव रक्खी गई थी।

लाहौर रावी-नदी से दक्षिण की ओर कोई डेढ़ मील की दूरी पर स्थित है। इसका अक्ष ३१° ३४′ ५″ उत्तर, रेखांश ७४° २१′ पूर्व, और समुद्र-तल से ऊँचाई ७०६ फ़ीट है। नगर एक समानांतर चतुर्भुज के रूप में बना है। चहारदीवारी के भीतर का क्षेत्र-फल लगभग ४६१ एकड़ है। किसी समय रावी इसकी दीवार के नीचे बहती थी; परंतु सन् १६६२ ई० में जब इसने नगर की भूमि को बेतरह काटना शुरू किया, तब उससे भयभीत होकर औरंगज़ेब ने इसके किनारे चार मील तक ईंट और चूने का एक मज़बूत बाँध बँधवा दिया। इससे नगर की रक्षा हो गई। इस बाँध के खँडहर अब तक भी कहीं-कहीं देख पड़ते हैं। तब से नदी ने अपना पुराना मार्ग बिलकुल छोड़ दिया है।

नगर उत्तर की ओर चौड़ा हो गया है, और एक विषम चतुर्भुज-सा देख पड़ता है। अकबर ने सन् १५८४ से १५९८ तक में इसके चारों ओर एक भारी दीवार बनवाई थी। वह कुछ समय बाद गिरने लगी। महाराजा रणजीतसिंह ने सन् १८१२ में फिर इसे दुबारा बनवाया, और इसके इर्द-गिर्द एक चौड़ी और गहरी खाई खुदवाई। यह चहारदीवारी पहले ३० फ़ीट ऊँची थी; परंतु स्वास्थ्य-रक्षा के विचार से बाद को इसे गिराकर १५ फ़ीट ऊँचा ही रक्खा गया। खाई भी भर दी गई। अब नगर के चारों ओर म्युनिसिपलिटी ने बाग़ या पार्क बनवा दिए हैं। इन बाग़ों को रावी की नहर से जल मिलता है। नगर कोई सवा मील लंबा और पौन मील से अधिक चौड़ा है। इसकी परिक्रमा तीन मील से कम है।

नगर के तेरह दरवाज़े हैं। उनके नाम ये हैं—

उत्तर-दिशा में—

१. रौशनाई-दरवाज़ा, या प्रकाश-द्वार।

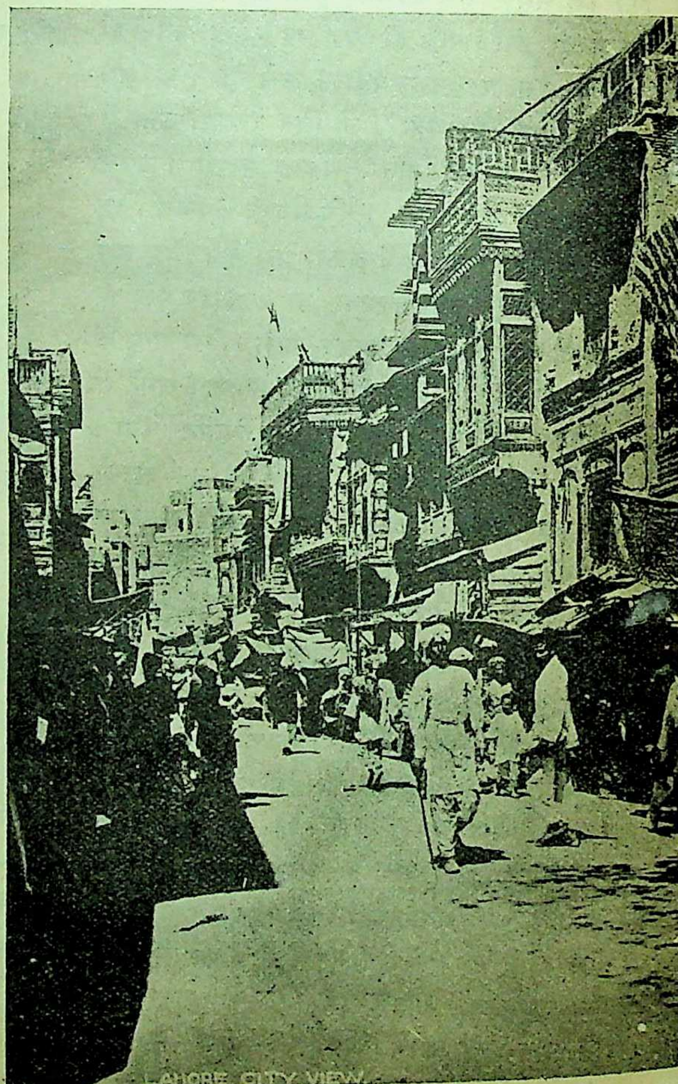
२. काशमीरी-दरवाज़ा।

३. मस्ती-दरवाज़ा। यह नाम मसजिदी का अपभ्रंश जान पड़ता है। अकबर की माता मरियम मकानी की मसजिद इसके समीप है।

४. ख़िज़री-दरवाज़ा। यहाँ पहले रावी का घाट होता था। उसी से इसका नाम ख़िज़री (पानियों का पैग़ंबर) हुआ। महाराजा रणजीतसिंह यहाँ पर दो शेर, पिंजड़े में बंद करके, रक्खा करते थे। उनके कारण पीछे से लोग इसे 'शेराँवाला' दरवाज़ा कहने लगे।

पूर्व-दिशा में—

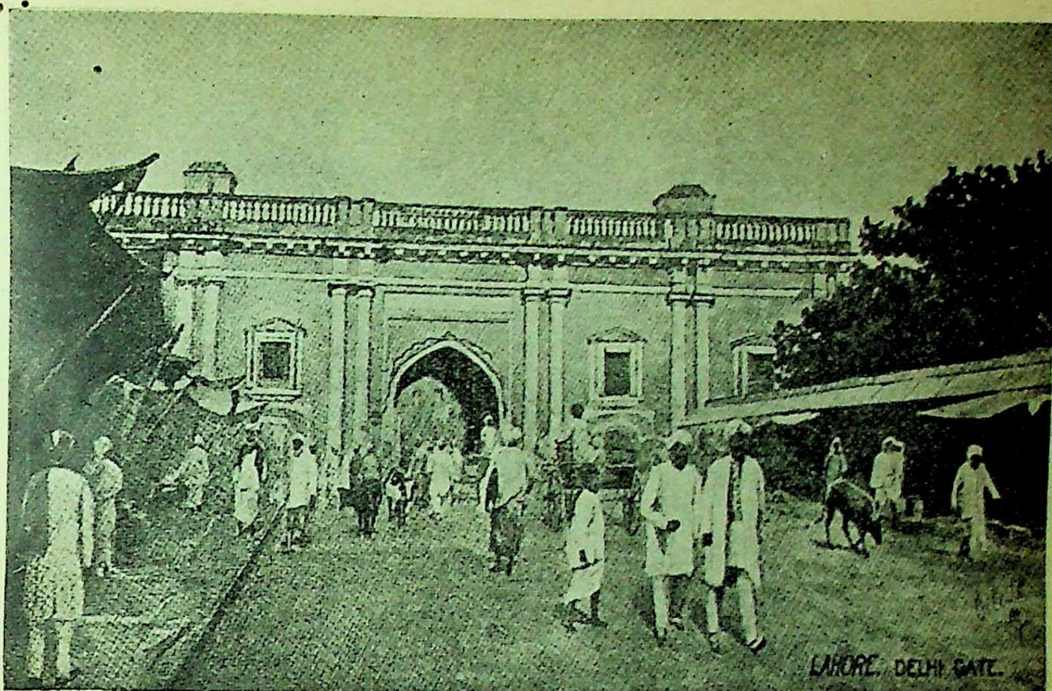
५. यक्की-दरवाज़ा। इसका असली नाम 'ज़की' था। ज़की-नामक कोई धर्मवीर मुग़लों के साथ युद्ध करता हुआ यहाँ मारा गया था।



शहर का दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दिल्ली-दरवाज़ा

६. दिल्ली-दरवाज़ा। यह लाहौर से दिल्ली को जानेवाली सड़क पर है।

७. अकबरी-दरवाज़ा। इसके समीप ही अकबरी-मंडी है।

दक्षिण-दिशा में—

८. मोची-दरवाज़ा। इसका वास्तविक नाम मोती-दरवाज़ा था। अकबर का मोतीराम नाम का कोई उच्च-पदाधिकारी यहाँ निवास किया करता था।

९. शाह-आलमी दरवाज़ा। यह इसी नाम के मुग़ल बादशाह के नाम पर है।

१०. लाहौरी-दरवाज़ा। इसे लोहारी भी कहते हैं।

११. मोरी-दरवाज़ा। यह सबसे छोटा है।

पश्चिम-दिशा में—

१२. भाटी-दरवाज़ा। यहाँ प्राचीन काल में भाटी-राजपूत बसा करते थे।

१३. टकसाली-दरवाज़ा। इसके निकट यवन-काल में टकसाल हुआ करती थी। कुछ लोग तक्ष-शिला और तक्का लोगों से भी इसका संबंध बतलाते हैं।

इस समय इन दरवाज़ों के अतिरिक्त लाहौर-नगर के प्रसिद्ध बाज़ार ये हैं—

लोहारी-मंडी, सूत्र-मंडी, डिब्बी-बाज़ार, पीर-महल, गुमटी, हीरा-मंडी, टिब्बी, चूनेमंडी, बच्छोवाली, चौक-मती, चौक चकला तथा चौक-झंडा आदि। ये सब नगर की चहारदीवारी के भीतर हैं।

दीवार के बाहर गत दस-पंद्रह वर्ष में बहुत-सी नई बस्तियाँ बस गई हैं। चहारदीवारी के बाहर प्रसिद्ध बस्तियाँ ये हैं—

अनारकली, ग्वाल-मंडी, पुरानी अनारकली, रामगली, क़िला गुजरसिंह, मुज़ंग और ठंडी सड़क या अपर माल।

नगर के दो रेलवे-स्टेशन हैं। बड़े स्टेशन से नगर सवा मील के फ़ासले पर है। वहाँ तक पहले बिलकुल उजाड़ था; परंतु अब कुछ ही वर्षों में बिलकुल आबाद हो गया है। शहर से रावी-नदी का पुल कोई दो मील दूर है। इस सड़क पर पहले धूल उड़ा करती थी; परंतु दो-एक वर्ष से यह पक्की मेटल्ड रोड बन गई है।

नगर-निवासी स्त्री-पुरुष एक बड़ी संख्या में प्रतिदिन सबेरे नदी-स्नान के लिये इधर जाते हैं। इस समय ज़्यादा रौनक़ के बाज़ार अनारकली, लोहारी, डिब्बी, शाह-आलमी और भाटी हैं। रामगली और ग्वाल-मंडी बिलकुल नई बस्तियाँ हैं। परंतु ये इतनी जन-सघन हैं कि दूसरा लाहौर जान पड़ती हैं। नगर से जो सड़क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लाहौर के बाज़ार का दृश्य

चिड़िया-घर और मियाँ-पीर को जाती है, उस पर अँगरेज़ों की दूकानें हैं। उसी का नाम ठंडी सड़क या माल-रोड है।

लाहौर की सन् १९२१ ई० की जन-गणना

कुल जन-संख्या २,८१,७८१ है। धर्मों के अनुसार जन-संख्या इस प्रकार है—

हिंदू	१,०७,७८३
मुसलमान	१,४९,०४४
ईसाई	११,२८७
जैन	४७४
सिख	१२,८३३
अन्य	३६०
योग	२,८१,७८१, जिसमें
पुरुष	१,७९,३५०
स्त्रियाँ	१,०२,४३१

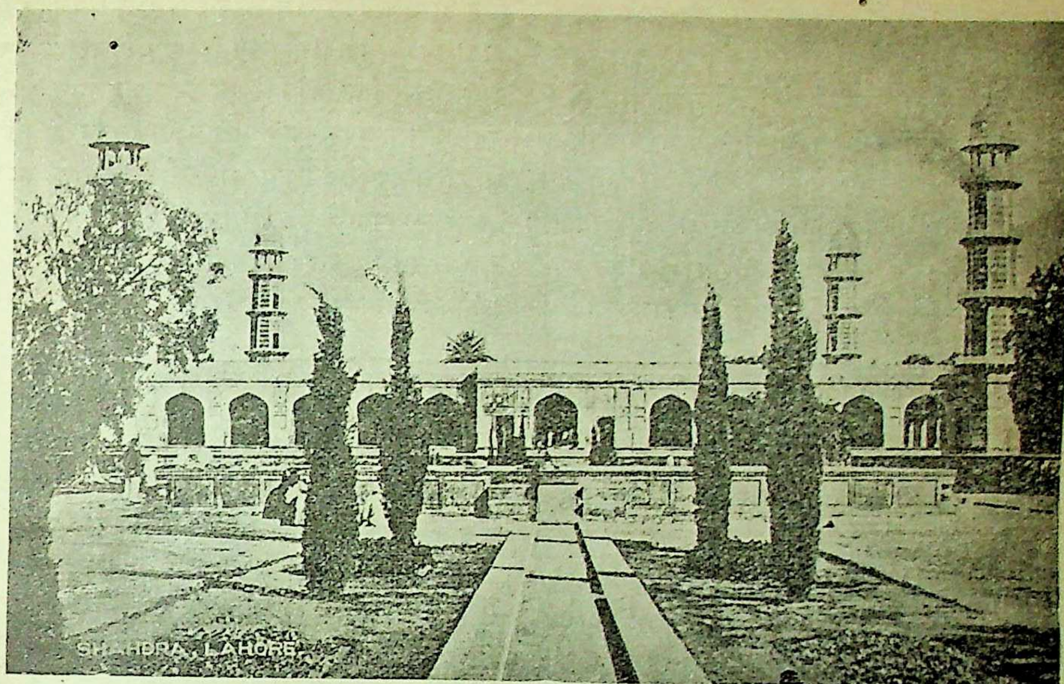
अब लाहौर के कुछ ऐतिहासिक और दर्शनीय स्थानों का वर्णन किया जाता है।

जहाँगीर का समाधि-भवन

इरावती के बाएँ तट पर शाहदरा-नामक नगर में सम्राट् जहाँगीर का समाधि-मंदिर है। इस विशाल भवन में जाने के लिये पत्थर और गच के दो भारी सिंहद्वारों में से गुज़रना पड़ता है। इनमें प्रवेश करने पर एक वर्गाकार आँगन या सराय मिलती है। यह पाँच सौ क़दम लंबी है। इसके चारों ओर पथिकों और भिक्षुकों के लिये कोठरियाँ बनी हुई हैं। इस हाते से आगे एक और बड़ा हाता है। इसमें सामने वाटिका का पूरा दृश्य देख पड़ता है। यह वाटिका कोई ६ सौ वर्गगज़ है। इसके आरपार—मध्य में से—ईंटों की चार नालियाँ जाती हैं। इन पानी की नहरों में पहले संख्यातीत फ़ौवारे थे; पर अब वे सब नष्ट हो चुके हैं। इस वाटिका में से एक सीधे और चौड़े पथ पर चलते हुए हम लाल पत्थर के एक वर्गाकार चबूतरे पर पहुँचते हैं। इस विस्तृत चतुष्कोण में जाने के लिये संगमरमर और इनेमल के एक सुंदर द्वार-पथ से गुज़रना होता है। यह सारी इमारत एक उच्च परिपथ से घिरी हुई है; जिसमें दर्शकों के बैठने के लिये कोठरियाँ हैं। इस पटे हुए पथ में नाना प्रकार की संगमरमर की सजावट है, और ललित चित्रकला-पूर्ण फूल, बेल-बूटे तथा क़ुरान के वाक्य अंकित हैं। दीवारों पर सुंदर और सादी आकृतियों तथा चित्रों की सजावट है। इस चतुर्भुज के प्रत्येक पार्श्व पर पचीस सीढ़ियों का एक पटा हुआ सोपान है। इस सोपान से दर्शक एक बड़े उज्ज्वल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बादशाह जहाँगीर का मक़बरा

और प्रभावशाली चबूतरे पर पहुँच जाता है । इस चबूतरे का फ़र्श चारख़ानेनुमा है । इसके प्रत्येक कोने पर ९५ फ़ीट ऊँचा एक-एक चौमंज़िला मीनार है । हर मीनार पर चढ़ने के लिये लपेटदार टेढ़ी-मेढ़ी साठ सीढ़ियों का सोपान है। हर सोपान में अनेक प्रकार के संगमरमर और पीले पत्थर जड़े हुए हैं, तथा उसके सिर पर सफ़ेद संगमरमर का गुंबद है । चबूतरा २११ फ़ीट ९ इंच वर्ग और बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। इन सुंदर मीनारों पर चढ़कर इर्द-गिर्द की सारी प्राकृतिक दृश्यावली देख पड़ती है। पहले मीनारों की छत के इर्द-गिर्द संगमरमर के कँगूरे और छज्जों के इर्द-गिर्द संगमरमर की जो चित्रकारी थी, उसे महाराजा रणजीतसिंह उखड़वा ले गए थे ।

समाधि-मंदिर के भीतरी भाग में सफ़ेद संगमरमर का ऊँचा ताबूत है । इसी में जहाँगीर का देहावशेष दबा पड़ा है। इसके पार्श्वों पर चित्रकारी में फूल आदि बने हुए हैं । जहाँगीर की मृत्यु सन् १६२७ ई० में, काश्मीर के राजौरी-नामक स्थान में, हुई थी । मरणासन्न अवस्था में उसने यह इच्छा प्रकट की थी कि उसका शव उसकी स्त्री नूरजहाँ के दिलकुशा-बाग़ (लाहौर) में रक्खा जाय । मृत्यु होने पर उसकी यह इच्छा पूरी की गई, और उसके पुत्र शाहजहाँ ने उसकी क़ब्र पर यह विशाल भवन बनवा दिया । शाहजहाँनामे में लिखा है कि इस समाधि-मंदिर पर दस लाख रुपए व्यय हुए थे, और यह दस वर्ष में बना था ।

इस बाग़ की चहारदीवारी का एक भाग रावी की भेंट हो चुका है । सिखों के शासन-काल में यहाँ के बहुमूल्य पत्थर और सजावट की सामग्री उखड़वाकर अमृतसर के स्वर्ण-मंदिर में लगवा दी गई है ।

नूरजहाँ की क़ब्र

जहाँगीर की प्यारी बेगम (नूरजहाँ) की क़ब्र भी इस समाधि-मंदिर के निकट ही है । नूरजहाँ ने अपने जीवन-काल में ही इसे बनवा रक्खा था । उसका देहांत सन् १६३८ ई० में, बहत्तर वर्ष की आयु में, हुआ था । उसका ताबूत और गुंबददार कमरे सब सुंदर सफ़ेद संगमरमर के बने थे । परंतु महाराजा रणजीतसिंह ने सब संगमरमर वहाँ से उखड़वा लिया । इस समय यह एक मंज़िल की सादी इमारत है । इसका व्यास कुल १३५ फ़ीट है । यह निकट-भविष्य में कुछ ही दिनों की मेहमान है । इसके भीतरी कमरे में दो क़ब्रें हैं—एक नूरजहाँ की और दूसरी उसकी पुत्री लाड़ली बेगम की ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

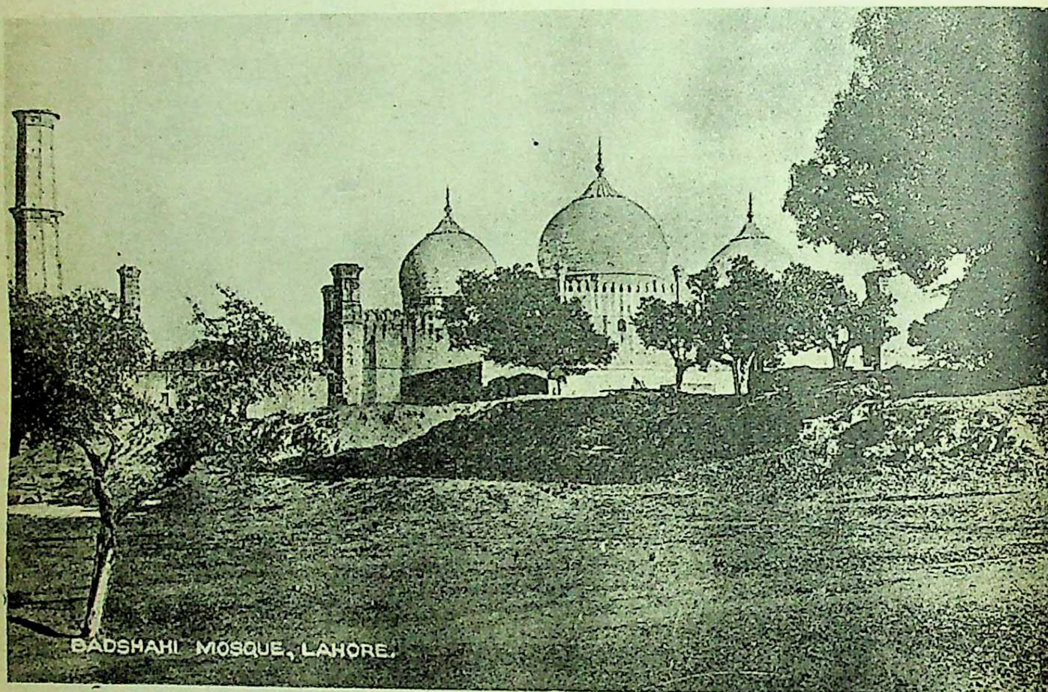
महाराजा रणजीतसिंह ने जब यहाँ से बहु-मूल्य पत्थर उखड़वाए, तब उन्होंने क़ब्रों को भी खुदवाया। खोदने पर उन्होंने लोहे के झूलों से लटकते हुए दो ताबूत पाए थे। उन्होंने झूलें निकलवाकर ताबूतों को भूमि में गड़वा दिया।

बादशाही मसजिद

क़िले के पश्चिम में औरंगज़ेब की बनवाई हुई बादशाही मसजिद है। यह एक ऊँचे चबूतरे पर है। यह चबूतरा महराबों पर है, और भूमि-तल से काफ़ी ऊँचा है। पूर्व की ओर एक सुंदर और विशाल सिंहद्वार है; जो लाल रेतीले पत्थर तथा संगमरमर का बना हुआ है। यहाँ तक पहुँचने के लिये बड़ी-बड़ी वृत्ताकार पैंड़ियाँ हैं। ये काबुल से लाए हुए अबरी-नामक सुंदर और रंग-बिरंगे पत्थर की बनी हुई हैं। इनकी संख्या २२ है। सबसे ऊपर की पैंड़ी ७६ फ़ीट ३ इंच और सबसे नीचे की २० फ़ीट से अधिक लंबी है। यह मसजिद मक्के में अली वालिद की मसजिद के नमूने पर बनाई गई है। महराबदार द्वार के ऊपर लाल रेतीले पत्थर तथा संगमरमर के अनेक छोटे-छोटे कलश हैं। इस प्रवेश-द्वार के बाहर की ओर सफ़ेद संगमरमर की एक तख़्ती पर फ़ारसी में लिखा हुआ है—"मुहईउद्दीन मुहम्मद आलमगीर बादशाह की मसजिद। राज-परिवार के तुच्छ सेवक फ़िदाई ख़ाँ कोका की अध्यक्षता में, सन् १०८४ हिजरी में, बनी।" इससे प्रकट होता है कि यह मसजिद सन् १६७३ में बनी थी। खुलासातुल तवारीख़ में लिखा है कि इसमें छः लाख रुपए व्यय हुए थे, और मुलतान का राजस्व इसकी सहायता के लिये नियत कर दिया गया था।

सिंहद्वार में प्रवेश करने पर एक बहुत बड़ा चतुष्कोण आँगन मिलता है। यह उत्तर से दक्षिण ५३० फ़ीट और पूर्व से पश्चिम ५२७ फ़ीट लंबा है। इसमें ठोस ईंटों का फ़र्श लगा हुआ है। प्रत्येक नमाज़ पढ़नेवाले के लिये काले संगमरमर की एक शिला लगी हुई है। आँगन के मध्य में पानी का एक बड़ा जलाशय है। इसके पश्चिमी भाग में स्वयं मसजिद है। इसमें सफ़ेद संगमरमर के बड़े-बड़े तीन गुंबद या शिखर-मंडल हैं। उनके ऊपर खूब गिलट किए हुए पीतल के नोकदार शृंग हैं। गुंबदों के नीचे एक बड़ा हाल है; जिसमें पूर्वाभिमुख अनेक महराबदार द्वार हैं। इसके बाद एक और हाल है।

विस्तृत आँगन के चारों कोनों पर लाल रेतीले पत्थर का बना हुआ एक-एक बहुत ऊँचा और महत्त्व-पूर्ण मीनार है। इन मीनारों पर चढ़कर चारों ओर का दृश्य खूब दिखाई

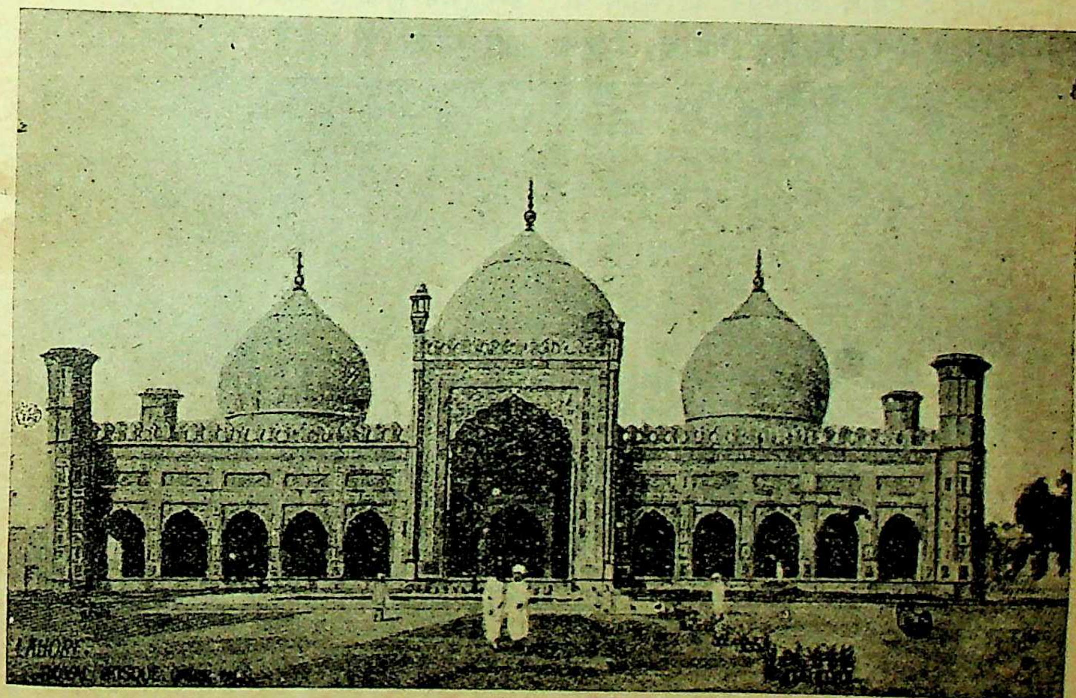


बादशाही मसजिद (दूर का दृश्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाही मसजिद (बाहरी दृश्य)



बादशाही मसजिद (भीतरी दृश्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता है। ऊपर से नीचे, पृथ्वी की ओर, देखने से डर-सा लगता है। किसी भी मीनार से देखिए, शाहदरे में जहाँगीर के मक़बरे के केवल तीन मीनार देख पड़ते हैं। प्रत्येक मीनार की उँचाई १४३ फ़ीट ६ इंच है। बाहर की ओर से इसकी परिधि ६७ और भीतर से ८८½ फ़ीट है। मीनारों की एक मंज़िल सन् १८४० ई० के भूकंप में हिल गई थी, इसलिये उसे गिरा देना पड़ा। मीनारों की चोटी पर से क़िले का भीतरी भाग ख़ूब देख पड़ता है।

महाराजा रणजीतसिंह इस मसजिद में अपना गोला-बारूद और युद्ध की सामग्री रक्खा करते थे। परंतु सन् १८५६ ई० में यह फिर मुसलमानों को मिल गई।

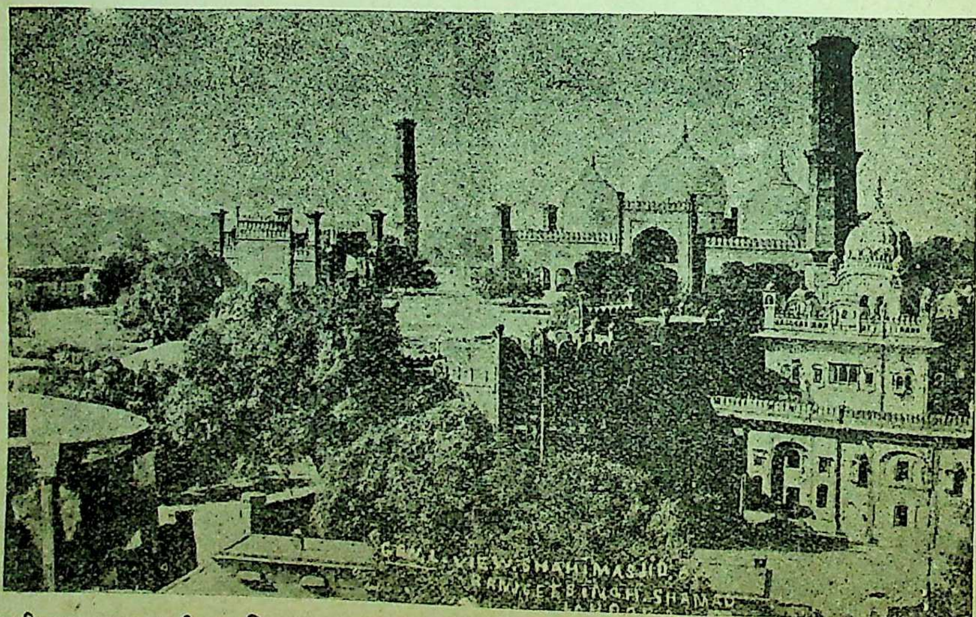
मसजिद के महत्त्व-पूर्ण महराबदार सिंहद्वार की ऊपर की मंज़िल में हज़रत मोहम्मद की हरी पगड़ी, कुल्ला, हरा कोट, सफ़ेद पायजामा, संदली रंग के पत्थर पर उनके पैर का चिह्न, हज़रत अली का लिखा हुआ कुरान का पहला परिच्छेद, उनका एक तावीज़, मोहम्मद साहब की पुत्री श्रीमती फ़ातिमा का काढ़ा हुआ रूमाल इत्यादि अनेक प्राचीन वस्तुएँ रक्खी हुई हैं।

हज़ूरीबाग़

जामा-मसजिद के पूर्व में औरंगज़ेब की सराय भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण है। जिस हाते में अब बाग़ और संगमरमर की बारहदरी बनी हुई है, वह मुग़लों के उत्कर्ष-काल में बादशाह के साथ नमाज़ पढ़ने के लिये जानेवाले अमीरों, वज़ीरों और सैनिकों से खचाखच भरा रहता था। दक्षिणी सिंहद्वार के साथ मिली हुई जो दो-मंज़िली इमारत है, जहाँ अब ओरियंटल-कॉलेज के विद्यार्थियों का छात्रावास है, वह वास्तव में बादशाही मसजिद में पढ़नेवाले विद्यार्थियों के रहने के लिये बनाई गई थी। पीछे से वह 'अबदार-ख़ाना' या बादशाह के लिये मुफ़र्रह शर्बत रखने का स्थान बना दी गई। महाराजा रणजीतसिंह के समय में इसका नाम 'गुलाब-ख़ाना' पड़ गया था; क्योंकि यहाँ गुलाब-जल तैयार किया जाता था। संगमरमर की बारहदरी भी महाराजा ने ही, सन् १८१८ ई० में, बनवाई थी। इस बारहदरी की सामग्री नवाँकोट में ज़ेबिंदा-बेगम की क़ब्र, टकसाली दरवाज़े के बाहर शाह शरफ़ की क़ब्र तथा अन्य मुसलमानी इमारतों से ली गई थी।

क़िला

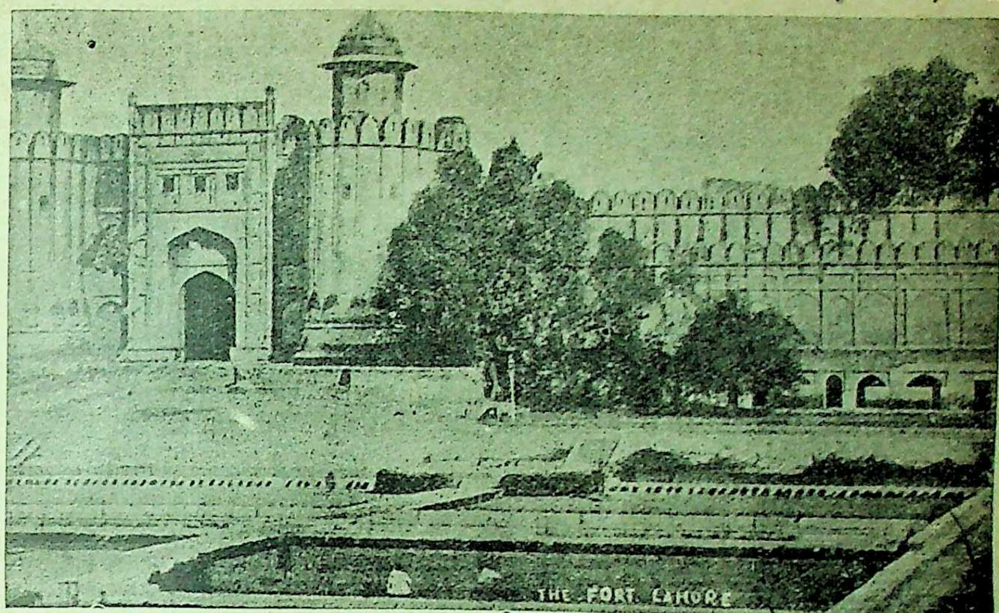
लाहौर का क़िला नगर के उत्तर-पश्चिम कोने पर है। इसके इर्द-गिर्द ईंटों की एक ऊँची और मज़बूत दीवार है। उसमें गोली चलाने के लिये छेद हैं। अकबर ने इसे पुराने क़िले के स्थान पर बनवाया था। दुर्ग का द्वार पश्चिम की ओर है। वहाँ अँगरेज़-सिपाहियों का



हज़ूरीबाग़, बादशाही मसजिद, महाराजा रणजीतसिंह की समाधि और क़िले का साधारण दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लाहौर का क़िला

पहरा रहता है। क़िला और महल—पूर्व से पश्चिम—कोई ९०० फ़ीट में है। यह चार बादशाहों का बनवाया हुआ है—पूर्वांत में अकबर के महल की नींवें हैं, उसके आगे जहाँगीर का चतुर्भुज आँगन है, और अंत में दो छः भुजावाले मीनारों के बीच एक परदे की दीवार है। कहते हैं, इसे शाहजहाँ ने बनवाया था, और औरंगज़ेब ने इसमें कुछ वृद्धि की थी।

पहले सिंहद्वार के बाद, जिस ओर अँगरेज़-सिपाहियों का पहरा है, एक और द्वार है। इसे 'हाथीपाँव' कहते हैं। राज-परिवार की स्त्रियाँ हाथियों पर सवार होकर इसी द्वार से वायु-सेवन के लिये निकला करती थीं। इस पर एक फ़ारसी-लेख है। उससे मालूम होता है, यह सन् १०४१ हिजरी में बना था।

लव का मंदिर

क़िले के उत्तर-पश्चिम में एक पुराना द्वार था। वह अब बंद कर दिया गया है। इसके निकटवर्ती बारगों में अब कमसरियट का गोदाम रहता है। इस गोदाम के उत्तर में, दीवारों से घिरा हुआ, लव का एक छोटा-सा मंदिर है। यह मंदिर अकबर के समय से भी पहले का है।

क़िले में पहले दीवान-आम और दीवान-ख़ास होते थे; परंतु अब वे सब सिपाहियों के रहने के कमरे बना दिए गए हैं। दीवान-ख़ास में अमीर और वज़ीर शाहजहाँ के सामने आदाब बजाते थे।

मोती-मसजिद

सिंहासन के कमरे के बाद, बारगों से पश्चिम की ओर, जहाँगीर की बनवाई हुई मोती-मसजिद है। यहाँ अब गवर्नमेंट का ख़ज़ाना रहता है। इसमें राज-परिवार की स्त्रियाँ ईश्वरोपासना किया करती थीं। इसकी बनावट सादी, सुंदर और प्रभावशाली है। इसके निर्मल, स्वच्छ, सफ़ेद संगमरमर के उभरे हुए गुंबद मोती के समान चमकते हैं। यह सन् १६१८ ई० में, मामूर ख़ाँ की अध्यक्षता में, बनी थी।

महाराजा रणजीतसिंह ने इसका नाम बदलकर मोती-मंदिर कर दिया। महाराजा ने गुजरात-ज़िले के रसूल-नगर का भी नाम बदलकर रामनगर कर दिया था। इस मोती-मंदिर का फ़र्श विशुद्ध संगमरमर का है। इसके कलशों और कँगूरों में जो बहु-मूल्य पत्थर लगे हुए थे, वे सब सिक्खों ने उखाड़ लिए।

मुसम्मन-बुर्ज

मुसम्मन-बुर्ज (अर्थात् आठ पहलूवाले मीनार) को जानेवाले द्वार के उत्तर में संगमरमर का अतीव सुंदर ग्रीष्म-भवन है। इसकी छत के किनारों पर संगमरमर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का जालीदार जँगला है। इसमें बहु-मूल्य पत्थरों के फूल आदि बनाकर जड़े गए हैं।

शीशमहल

शीशमहल का कुछ अंश शाहजहाँ ने और कुछ औरंगज़ेब ने बनवाया है। यहाँ सफ़ेद सीमेंट में भिन्न-भिन्न आठ वर्णों के छोटे-छोटे काँच जड़कर विचित्र चित्रकारी की गई है। इन काँचों के चमकने से एक बड़ा ही उज्ज्वल और शोभा-युक्त दृश्य देख पड़ता है। ऊपर के मीनारों को जानेवाले कमरों की लकड़ी की छतें बड़ी ही चित्रित और मुलम्मा की हुई हैं। आँगन में एक सुंदर जलाशय है। उसके बीच में एक चबूतरा है। चबूतरे के प्रत्येक किनारे पर पानी के फ़ौवारे हैं। मुसम्मन-बुर्ज़ के नीचे बड़े-बड़े तहख़ाने हैं। इनमें अब मदिरा रक्खी जाती है।

शाही बुर्ज़ पर चढ़कर देखने से एक बहुत मनोहर दृश्य देख पड़ता है। नगर की भीड़-भाड़ और चहल-पहल तथा तंग और टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ, उसके मंदिरों और गिरजों के चमकते हुए शृंग और मसजिदों के उभरे हुए गुंबद दर्शक के मन को मोह लेते हैं। उत्तर की ओर रावी का प्रवाह चाँदी की रेखा के सदृश दृष्टि-गत होता है।

शीशमहल के सामने शस्त्रागार है; जिसमें प्राचीन और अर्वाचीन काल के अनेक अद्भुत शस्त्रास्त्र रक्खे हैं। उसमें घातक गदाएँ, भारी-भारी कुठार, बंदूकें, तोपें और 'सबेरे का तारा' नाम की एक लोहे की गुलेल है। गुरु गोविंदसिंह का एक कुल्हाड़ा भी है। पठानों के लंबे-लंबे छुरे, अकालियों के भयानक चक्कर, सिखों की किर्चें, हिंदुओं की कटारें, ईरानियों के पेश-क़ब्ज़ और बिछुए, महाराजा रणजीतसिंह के सिपाहियों की वर्दियाँ और उनके हनूमान् के चित्रवाले झंडे आदि सब चीज़ें यहाँ दर्शनीय हैं। यहाँ छोटे-छोटे 'कौए के पैर', जिनको भूमि पर बिखरा देने से रिसाले के घोड़े लँगड़े हो जाते हैं, और दो कोफ़्तगरी के काम की तलवारें भी हैं।

महाराजा रणजीतसिंहजी की समाधि

क़िले के द्वार के सामने, पश्चिम की ओर, पंजाब के अंतिम देसी महाराजा, पंजाब-केसरी रणजीतसिंह का समाधि-मंदिर है। यह हिंदू और मुसलमान, दोनों की वास्तु-विद्या का सम्मिश्रण है। इसकी बनावट सादी और पत्थर की है। सिंहद्वार के सामने गणेश, देवी और ब्रह्मा की पाषाणमयी मूर्तियाँ हैं। छतों में काँच के टुकड़े सफ़ेद सीमेंट में जड़े हुए हैं। केंद्रस्थ विवर में, एक चँदोवे के नीचे, संगमरमर को काटकर बनाया हुआ एक बड़ा कमल का फूल है। महाराजा की भस्म इसी के नीचे दबी पड़ी है। इसी प्रकार के और भी अनेक कमल इसके इर्द-गिर्द हैं। ये उनकी चार रानियों और सात दासियों के स्मृति-चिह्न हैं। महाराजा की मृत्यु पर ये सब उनके साथ जल गई थीं। रानियों की समाधियों के ऊपर के लट्टू मुकुट-युक्त हैं, और दासियों के सादे। जिस समय महाराजा का शव जल रहा था, उस समय दो कबूतर भी चिता की आग में जल मरे थे। उन दोनों के स्मारक में दो लट्टू अलग बनाए गए हैं।

एक कमरे में देवी की बारहदरी है। यह वास्तव में दिलीपसिंह की माता महारानी चंद्रकुँअरि की थी। लाहौर छोड़ते समय उन्होंने यह समाधि को दे दी। इसके एक आले में देवी की एक संगमरमर की मूर्ति रक्खी हुई है।

समाधि-मंदिर में सिखों के ग्रंथ का पाठ होता है। सिख लोग भजन-कीर्तन भी करते हैं। यहाँ महाराजा के पुत्र खड्गसिंह और पौत्र नौनिहालसिंह की समाधियाँ भी हैं।

गुरु अर्जुन-देव की समाधि

रणजीतसिंह के समाधि-मंदिर के सामने, हज़ूरीबाग़ से परेड के मैदान को जानेवाली सड़क के किनारे, पाँचवें सिख-गुरु अर्जुन-देव का समाधि-भवन है। इन्होंने 'आदि-ग्रंथ' का संपादन किया था। लाहौर में जहाँगीर के अर्थ-सचिव चंदू शाह से इनकी अनबन हो गई। उसने बादशाह से जाकर कह दिया कि गुरुजी बादशाह के राज-विद्रोही पुत्र खुसरो का पक्ष लेते हैं। इस पर गुरुजी क़ैद कर लिए गए। वहीं, सन् १६०६ ई० में, उनकी मृत्यु हो गई। महाराजा रणजीतसिंह ने उनका समाधि-भवन बनवा दिया है। इसी प्राचीर में महाराजा रणजीतसिंह की रानी लक्ष्मी की समाधि भी है।

मरियम ज़मानी की मसजिद

मोती-दरवाज़े के निकट जहाँगीर की माता मरियम ज़मानी की बनवाई हुई मसजिद है। यह लाहौर की बहुत पुरानी मसजिदों में से है, और सन् १६१४ ई० में

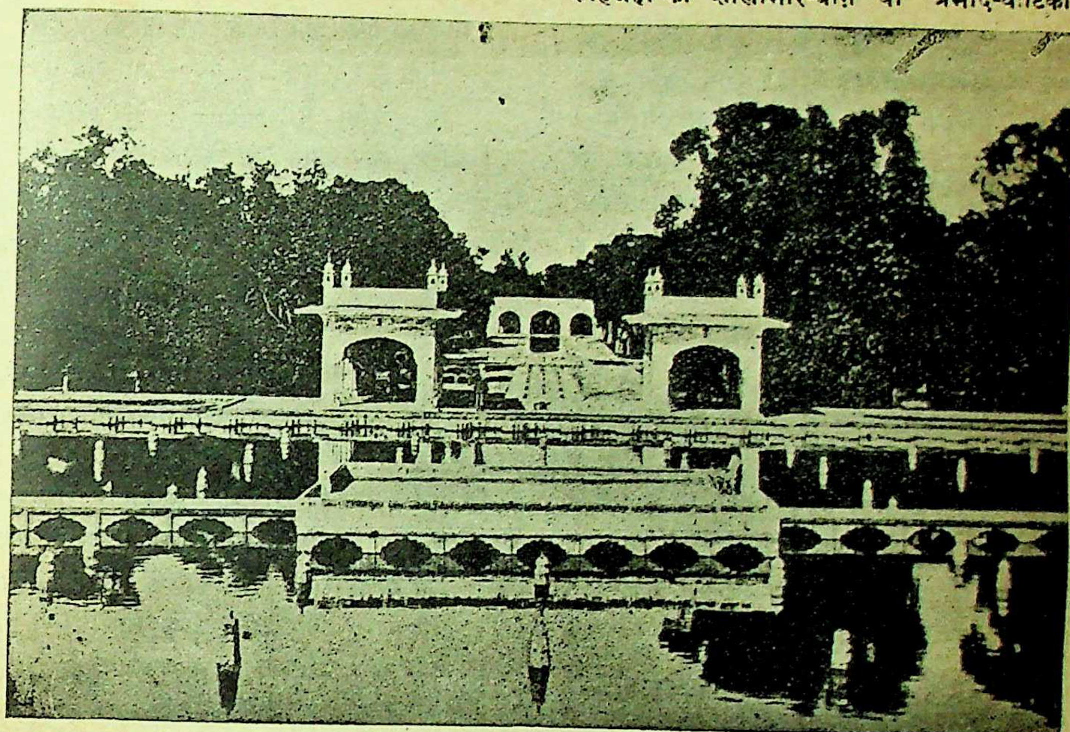
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

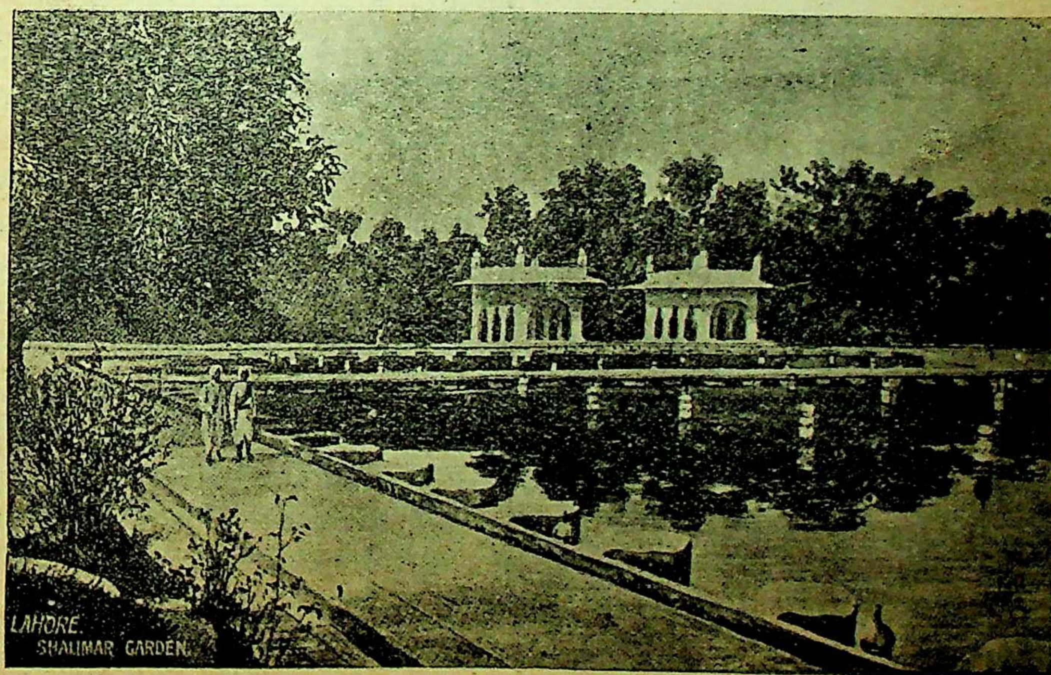
बनाई गई थी। आईन-अकबरी में लिखा है, यह बेगम राजा विहारीलाल की पुत्री और राजा भगवानदास की बहन थी।

शालामार-बाग़

लाहौर के उत्तर-पूर्व में, तीन मील के अंतर पर, शाहजहाँ का शालामार-बाग़ या 'प्रमोद-वाटिका' है।



शालामार-बाग़ (पहला दृश्य)



शालामार-बाग़ (दूसरा दृश्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह आयताकार समांतर चतुर्भुज है। इसके चारों ओर १,२०० क़दम लंबी और ८०० क़दम चौड़ी ईंटों की एक ऊँची दीवार है। सारा उद्यान तीन क्रमिक चबूतरों में बँटा हुआ है। एक चबूतरे का तल दूसरे के पृष्ठ-तल से १२ या १५ फ़ीट ऊँचा है। उद्यान का क्षेत्रफल ८० एकड़ के लगभग है। एक दूर से लाई हुई नहर उस रमणीय वाटिका को बीच से काटती हुई मध्यवर्ती चबूतरे में, एक संगमरमर के कुंड में, जा गिरती है। इस कुंड और नहर से ४५० फ़ौवारे छूटते हैं। उनका पानी संगमरमर के तालाबों में जा गिरता है। इस प्रकार बहुत अधिक जल-राशि के उछलने से वायु-मंडल ठंडा हो जाता है। सबसे ऊपर के चबूतरे पर संगमरमर की एक बारहदरी है। यह चारों ओर से खुली है। इसके सामने पानी के फ़ौवारे छूटते हैं। यहाँ से नीचे के चबूतरों पर जल-कणों के सब फ़ौवारे देख पड़ते हैं। इन जलाशयों में आर-पार संगमरमर के पुलों के तंग नमूने बने हुए हैं।

बीच में एक जलाशय है। इसके किनारे-किनारे एक बड़ी श्रम-साध्य छत है। जलाशय में सफ़ेद संगमरमर की बनी हुई चादर की ढलान से लुढ़ककर एक झरना गिरता है। इस चादर को सिकोड़कर एक ऐसा शोभा-युक्त खुदा हुआ खेस-सा बना दिया गया है, जिससे जल-राशि लुढ़ककर नीचे, तालाब में, गिरती है, और वहाँ से फिर एक दूसरे कुंड में गिरकर उद्यान की चरम सीमा पर जा पहुँचती है। जिस समय फ़ौवारे छूट रहे होते हैं, उस समय उनका दृश्य ही नहीं मनोहर हो जाता, बल्कि वायु का ताप भी घट जाता है। बारहदरियाँ और दूसरे मकान, अनेक स्थानों में, इधर-उधर बने हुए हैं। कुंज और तहख़ाने संगमरमर और लाल पत्थर के बने हुए हैं। उनकी रचना का ढंग बड़ा ही सुंदर है।

बाग़ के कोनों पर पाँच महत्त्व-पूर्ण गुंबद हैं। इनसे इर्द-गिर्द के प्रदेश की सुंदर दृश्यावली ख़ूब दिखलाई देती है।

इस बाग़ की बारहदरी में बैठकर औरंगज़ेब की प्रतिभाशालिनी और लाड़ली पुत्री ज़ेबुन्निसा, सखियों और सहेलियों के साथ, प्रकृति का सौंदर्य देखा करती थी। पानी के झरने, फूलों की क्यारियाँ, पत्तों की हरियाली और पक्षियों का मनोहर कलरव उसकी कविता-शक्ति को उत्तेजित करता था। यहाँ बैठकर ही उसने यह पद्य कहा था—

अय आबसार नौह गर अज़ बहे कीस्ती ;
चीं बर जबीं फ़िगंदा ज़े अंदोह कीस्ती।
आया चे दर्द बूद कि चूँ मा तमाम शब ;
सर्रा बसंग मे जदीयो मे गिरीस्ती।

"अर्थात्, जल-प्रपात! तू किसके लिये रो रहा है? किसके शोक में तूने अपने माथे पर झुर्रियाँ डाल रक्खी हैं? वह कौन-सी पीड़ा थी, जिसके कारण, हमारी तरह, सारी रात, तू सिर को पत्थर से मारता और रोता रहा है?"

बाग़ में आम, अनार और आड़ू आदि के वृक्ष हैं। नहर के दोनों ओर वृक्षावली की घनी छाया रहती है। नहर के किनारे घूमने में बड़ा ही आनंद आता है।

इस प्रमोद-वाटिका की नींव शाहजहाँ के राजत्व-काल में, सन् १६३४ ई० में, रक्खी गई थी। इसकी कल्पना वही है, जो काश्मीर के बाग़ों की थी। इसकी सिंचाई के लिये दो लाख रुपए ख़र्च करके माधोपुर से हसली अर्थात् नहर लाई गई थी। इसे अलीमरदान ख़ाँ और मुल्ला अलाउलमुल्क ने तैयार किया था। इस वाटिका और इससे संबंध रखनेवाले भवनों की लागत छः लाख रुपए थी। ये सब एक वर्ष, पाँच मास और चार दिन में तैयार हुए थे। वाटिका दो भागों में विभक्त है। पहले को फ़रहत-बख़्श और दूसरे को, जिसमें मध्यवर्ती भाग और तीसरा चबूतरा है, फ़ैज़-बख़्श कहते हैं।

इस बाग़ की बहुत-सी बहु-मूल्य चीज़ें अहमदशाह के समय में सिख उखड़वाकर ले गए। सुलेमानी पत्थर का एक सुंदर मंडप लहनासिंह ने उखड़वाकर २४,००० रुपए में, नगर के पत्थर बेचनेवालों के हाथ, बेच दिया। महाराजा रणजीतसिंह यहाँ से बहुत-सा संगमरमर का सुंदर काम उखड़वाकर अमृतसर के दरबारसाहब और गोविंदगढ़ के क़िले के लिये ले गए। अमृतसर के राम-बाग़ में भी यहीं का संगमरमर लगा हुआ है। मुसलमानों ने हिंदुओं के मंदिर गिराकर मसजिदें बनवाई थीं, उसी का फल उनको रणजीतसिंह ने दिया।

हक़ीक़तराय का समाधि-भवन

शालामार-बाग़ के निकट ही एक उजड़ा-सा मंदिर है। उसके पास एक ओर धर्म-वीर हक़ीक़त की भस्म गड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ी है। इस पुण्यात्मा वीर बालक का नाम याद आते ही श्रद्धा और पूजा के भाव से रोमांच-सा हो आता है। इस वीर ने समस्त यवन-सत्ता का सामना करते हुए धर्म-रक्षा के निमित्त अपने प्राणों को तृण-तुल्य न्योछावर कर दिया था। यहाँ प्रतिवर्ष वसंत-पंचमी का मेला होता है। महाराजा रणजीतसिंह भी अपनी सारी सेना-सहित बड़े समारोह के साथ यहाँ वसंत खेला करते थे। वीर बालक की समाधि टूटी हुई अवस्था में है। हिंदुओं का कर्तव्य है कि वे इसकी प्राण-पण से रक्षा करें।

श्रीचंद्र की समाधि और टाहली साहब

सिखों का यह पवित्र स्थान पागलख़ाने के दक्षिण में, नॉर्थ-वेस्टर्न-रेलवे के स्टेशन के पास, है। एक हाते में, जिसकी दीवार गिर गई है, बहुत-से पवित्र मकान हैं। उनमें सबसे महत्त्व-पूर्ण गुरु नानक के पुत्र और उदासी-संप्रदाय के प्रवर्तक बाबा श्रीचंद्र की समाधि है।

बुद्धू का आवाँ

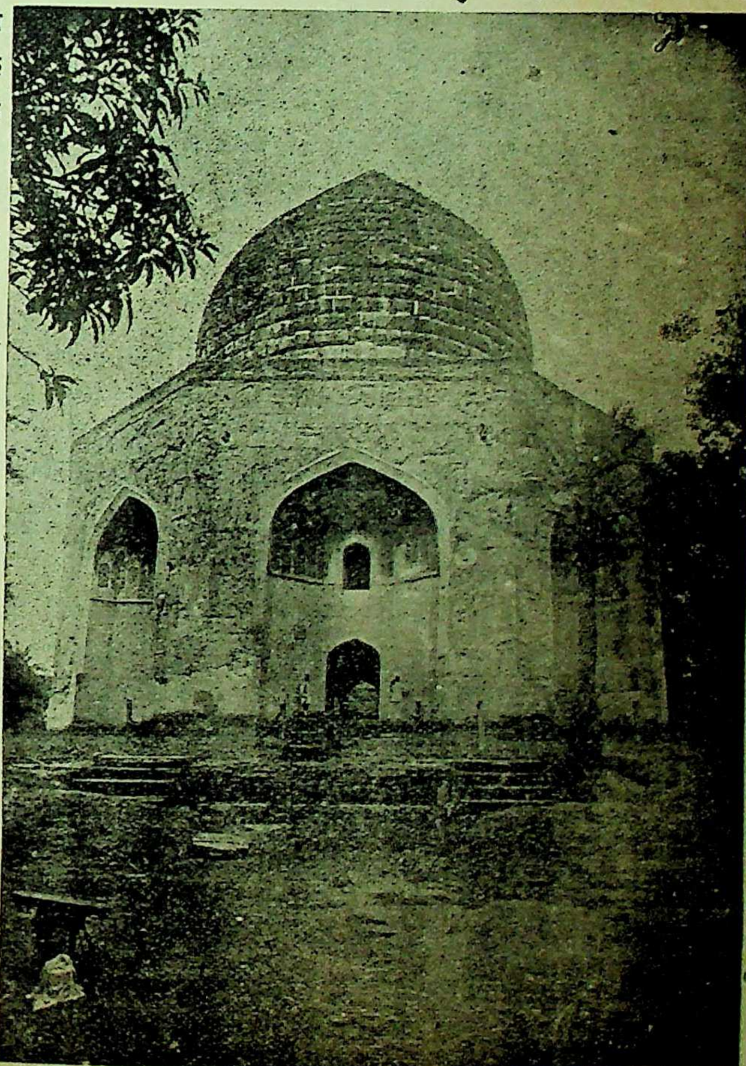
यह आवाँ लाहौर से कोई तीन मील की दूरी पर, शालामार-बाग़ की सड़क के दक्षिण में, है। सुद्धू कुम्हार का पुत्र बुद्धू शाहजहाँ के समय में था, और सुद्धू जहाँगीर के समय में। बादशाह की आज्ञा से वह राज-भवनों और उमरा के मकानों के लिये ईंटें पकाकर दिया करता था। उनमें नूरजहाँ के भाई आसिफ़जाह का महल सबसे बड़ा था। उसके बनवाने में बाईस लाख रुपए ख़र्च हुए थे।

इस आवें की चोटी पर महाराजा रणजीत-सिंह के फ़्रांसीसी अफ़सर जनरल एवीटे-बाइल ने गरमियों के रहने के लिये एक सुंदर मकान बनवाया था। यहीं महाराज शेरसिंह और राजा हीरासिंह ने लाहौर को घेरने के लिये ख़ालसा-दल एकत्र किया था

शहीदगंज

शहीदगंज दिल्ली-दरवाज़े के बाहर, लंडा-बाज़ार के पूर्व में, सुलतान की सराय के पास है। पहले इसका नाम घोड़-नख़ास था। परंतु जिन दिनों यहया ख़ाँ लाहौर का सूबेदार था, दीवान लखपतराय ने अपने भाई जसपतराय का बदला लेने के लिये एमनाबाद के निकट उपद्रवी सिखों को घोर दंड दिया, और अपने साथ बहुत-से सिख-क़ैदी लाहौर पकड़ लाया, तथा इस स्थान पर उसने बड़ी निर्दयता के साथ उनके सिर कटवा डाले। उसी घटना की स्मृति में इस स्थान का नाम शहीदगंज हो गया।

सबसे बड़ा धर्म-वीर भाई तारूसिंह था। उससे कहा गया, यदि तुम मुसलमान हो जाओ, तो तुम्हें प्राण-दान दिया जा सकता है। पर उसने अपने धर्म को छोड़ना स्वीकार नहीं किया, मृत्यु की गोद में सोना ही अच्छा समझा। उसका सिर बड़ी बुरी तरह से काट डाला गया।



बुद्धू कुम्हार का आवाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिखों ने उसके स्मारक में एक शानदार समाधि-भवन बनवा दिया है।

इसी प्राचीर के अंदर भाई मणिसिंह और भाई गुलज़ारसिंह की भी समाधियाँ हैं। ये दोनों धर्म-वीर गुरु गोविंदसिंह के अनन्य भक्त थे। मणिसिंहजी पंजाबी-भाषा के बहुत अच्छे कवि भी थे। यह सन् १७२७ ई० में, अमृतसर में, पकड़े जाकर लाहौर लाए गए, और तत्कालीन गवर्नर मीर मन्नू ने इनकी हत्या करवा डाली। महाराजा रणजीतसिंह इन समाधियों के प्रति बड़ा पूज्य-भाव रखते थे। मीर मन्नू की क़ब्र भी रेलवे-स्टेशन के पास शहीदगंज में ही है।

मियाँ मीर का मक़बरा

मियाँ मीर नाम के एक बहुत अच्छे फ़क़ीर हो गए हैं। ये सीसतान-देश के रहनेवाले और ख़लीफ़ा उमर के वंशज थे। इनका मक़बरा मियाँ मीर नाम की छावनी में है। इनका देहांत ८८ वर्ष की आयु में हुआ था। इनकी लंबी आयु का कारण योगाभ्यास बताया जाता है। कहते हैं, रात-भर में यह केवल दो या तीन ही साँसें लिया करते थे। जब यह कुछ बूढ़े हो गए, तब चार बार साँस लेने लगे थे।

नादिरा-बेगम की बारहदरी

यह बारहदरी मियाँ मीर के मक़बरे के पूर्व की ओर स्थित है। इसे दाराशिकोह ने अपनी बहन नादिरा-बेगम की क़ब्र पर बनवाया था। वह मियाँ मीर की बड़ी भक्त थी।

दातागंजबख़्श

भाटी-दरवाज़े के बाहर दातागंजबख़्श का मक़बरा है। इनका असली नाम अलीमख़दूम हुजवेरी था। यह ग़ज़नी के रहनेवाले थे, और महमूद के पुत्र मसऊद के साथ, सन् १०३९ ई० में, लाहौर आए थे। सन् १०७२ ई० में इनका यहीं देहांत हो गया। यहाँ मुसलमान स्त्री-पुरुष मन्नतें मानते और भेंटें चढ़ाते हैं। इसके पुजारी बड़े धनाढ्य हैं। २०वीं 'सफ़र' को यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। यहाँ हस्त-लिखित कुरान की अनेक प्रतियाँ हैं।

अनारकली की क़ब्र

अनारकली, जिसके नाम पर लाहौर का प्रसिद्ध बाज़ार है, बादशाह अकबर के अंतःपुर में निवास करनेवाली एक सुंदरी थी। उसका असली नाम नादिरा-बेगम या शर्फुन्निसा था। एक दिन बादशाह दर्पणों से जड़े हुए एक कमरे में बैठे थे, और तरुणी नादिरा उनकी सेवा में थी। बादशाह ने दर्पण में उसे सलीम (जहाँगीर) की मुसकिराहट का उत्तर मुसकिराहट में देते देख लिया। बादशाह को संदेह हुआ कि यह सलीम के साथ कोई षड्यंत्र रच रही है। उसने उसे जीते ही गाड़ देने की आज्ञा दे दी। बस, फिर क्या था, निर्दिष्ट स्थान पर उसे सीधी खड़ी करके चारों ओर ईंटें चुन दी गईं! सलीम को उसकी मृत्यु का भारी शोक हुआ। गद्दी पर बैठते ही उसने उसकी क़ब्र पर एक बड़ा महत्त्व-पूर्ण भवन बनवा दिया। इसका ताबूत निर्मल श्वेत संगमरमर का बना हुआ है; जिसके पहलुओं पर जहाँगीर का बनाया हुआ यह फ़ारसी का पद्य खुदा हुआ है—

"ता क़यामत शुक्र गोयम किर्दगारे ख़ेश रा;
आह गर मन बाज़ बीनम रूए यारे ख़ेश रा।"

ताबूत के उत्तरी पहलू पर यह लेख अंकित है—

"मजनूँ सलीम अकबर"

यह शिला-लेख उसके अत्यंत अनुराग को प्रकट कर रहा है। अनारकली की मृत्यु सन् १५९९ ई० में हुई थी, और यह क़ब्र सन् १६१५ ई० में बनाई गई।

आजकल यह क़ब्र पंजाब-सरकार के सेक्रेटरियट-ऑफ़िस के हाते में है।

पंजाब सार्वजनिक पुस्तकालय

सेंट्रल-म्यूज़ियम के निकट चार उभरे हुए गुंबदों और सुंदर महराबोंवाला एक विशाल भवन है। इसे अनारकली के बाग़ का प्रधान आभूषण कहा जाय, तो अनुचित न होगा। यह नवाब वज़ीर ख़ाँ की बारहदरी है। इसके चारों ओर तीन-तीन महराबदार दरवाज़े हैं। वज़ीर ख़ाँ का असली नाम हकीम इलमुद्दीन था। यह शाहजहाँ की ओर से लाहौर का राज-प्रतिनिधि था। इसकी बारहदरी के बाग़ में खजूरों के पेड़ बहुत थे, इसलिये यह नख़लिया-बाग़ कहलाता था।

सिखों के समय में यहाँ छावनी थी। मियाँ मीर की छावनी बनने के पहले अँगरेज़-सिपाही भी यहीं रहा करते थे। फिर यह बंदोबस्त का दफ़्तर और तार-घर बनाया गया। पर कुछ काल से अब एक सुंदर पुस्तकालय का काम दे रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पंजाब सार्वजनिक पुस्तकालय

चौबुर्जी

मुलतान की सड़क के पश्चिम में औरंगज़ेब की विदुषी पुत्री ज़ेबुन्निसा या ज़ेबिंदा-बेगम के बाग़ का सिंहद्वार है। इसकी बाहरी दीवारें इनेमल से जगमगा रही और नीले, हरे सुंदर खपड़ों से सुसज्जित हैं। यद्यपि इन्हें बने दो सौ वर्ष से अधिक समय हो चुका, पर आज भी ये बिलकुल नई जान पड़ती हैं। यह बाग़ नवाँकोट से लाहौर तक चला गया था। पर अब तो इसका चिह्न तक शेष नहीं।

ज़ेबुन्निसा की एक प्यारी दासी थी। उसका नाम था मियाँ बाई। राजकुमारी ने यह बाग़ उसी को दान कर दिया था।

सिंहद्वार की मेहराब पर फ़ारसी में यह पद्य अंकित है—

"बिना पिज़ीर शुद ईं बाग़ रौज़ए रिज़वाँ,
*   *   *   *†
बिगश्त मरहमत ईं बाग़ बर मियाँ बाई,
जे लुत्फ़ साहिबे ज़ेबिंदा-बेगमे दौराँ।"

इस राजकुमारी ने विवाह ही नहीं किया। इसकी क़ब्र नवाँकोट-नामक गाँव में है। इसका फ़र्श और खिड़कियाँ बड़े सुंदर संगमरमर की थीं। इसमें बहु-मूल्य पत्थर जड़े हुए थे। ये सब बहु-मूल्य चीज़ें सिखों ने वहाँ से उखड़वाकर हज़ूरीबाग़ आदि में, अपने मकानों में, लगा दीं।

† यह दूसरी पंक्ति मिट चुकी है।

नीला गुंबद

यह इमारत अनारकली से पुराने सेनेट-हॉल को जानेवाली सड़क पर स्थित है। इस विशाल भवन के ऊपर चीनी का एक बड़ा गुंबद है। गुंबद के नीचे अब्दुल रज़्ज़ाक मकाई की क़ब्र है। यह महाशय ग़ज़नी के रहनेवाले एक साधु थे, और हुमायूँ के काल में लाहौर में आ बसे थे। सिखों के काल में यहाँ तोपख़ाना रहता था; पर अब यह मुसलमानों के पास है।

छज्जू भक्त का चौबारा

यह रतचंद की सराय के दक्षिण में, मेयो-हास्पिटल के निकट, है। छज्जू शाहजहाँ के समय में एक ईश्वर-भक्त मनुष्य था। वह लाहौर का रहनेवाला एक भाटिया था, सराफ़ी का काम करता था; परंतु फ़क़ीरों की संगति से संसार से विरक्त हो गया। कहते हैं, जब उसका अंत-काल निकट आया, तब वह

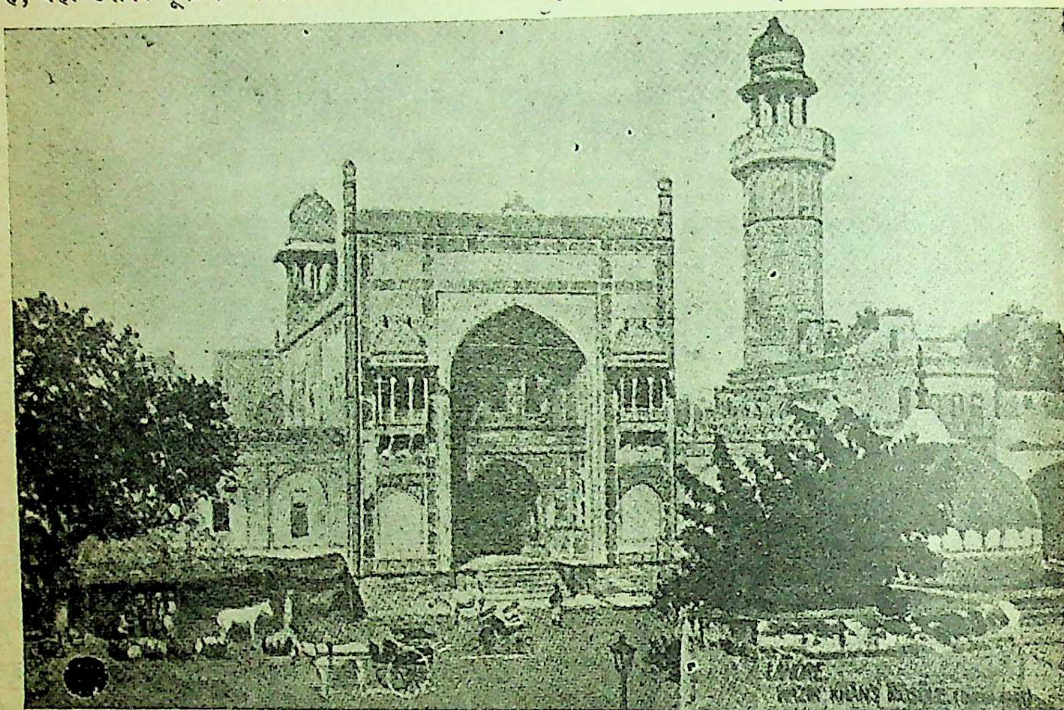
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

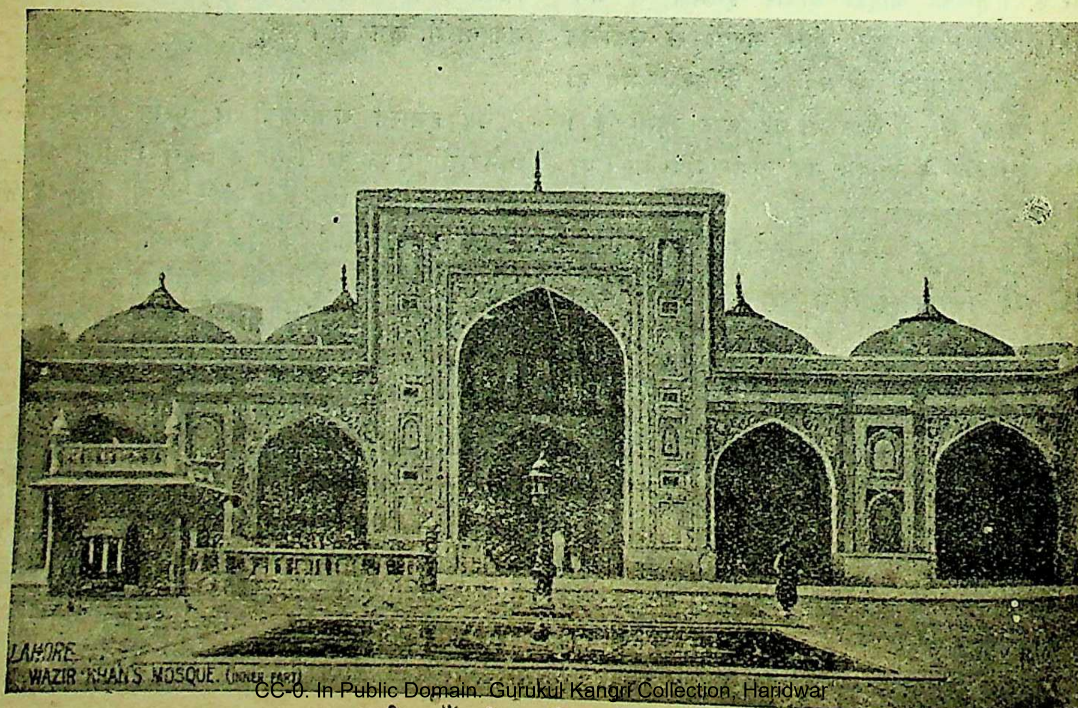
एक कोठरी में जा घुसा। फिर उसे किसी ने नहीं देखा। उसकी मृत्यु संवत् १६९६ वि० में हुई। वह एक चौबारे में बैठकर उपासना किया करता था। जहाँ अब मंदिर है, वहाँ उसकी दूकान थी।

वज़ीर खाँ की मसजिद

वज़ीर ख़ाँ की मसजिद लाहौर की एक दर्शनीय चीज़ है। इसका भवन बड़ा ही सुंदर और महत्त्व-पूर्ण है। इसकी चित्रकारी, फूल, बेल-बूटे और प्याले, सब



वज़ीर खाँ की मसजिद (बाहरी दृश्य)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वज़ीर खाँ की मसजिद (भीतरी दृश्य)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

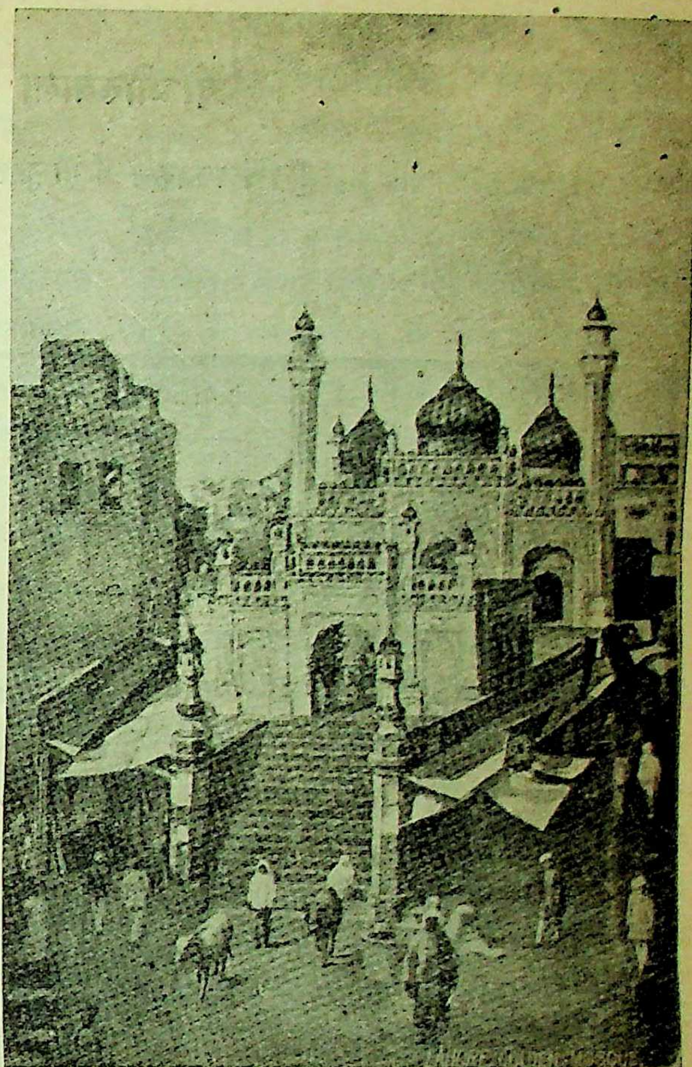
देखने के योग्य हैं। दूर से ऐसा मालूम होता है, मानो वे चित्रित हैं; पर वास्तव में वे अलग-अलग टुकड़ों के बनाकर बीच में जड़े गए हैं। यह मसजिद एक ऊँची वेदी पर बनी हुई है। पूर्व की ओर सीढ़ियों पर चढ़कर वहाँ तक पहुँचना होता है। यह पाँच कोष्ठों में विभक्त है। प्रत्येक कोष्ठ के आगे एक विस्तृत आँगन और सिर पर एक गुंबद है। मध्यवर्ती गुंबद, मध्यवर्ती मेहराबदार द्वार के सदृश, अपने दोनों पार्श्ववर्ती गुंबदों से बहुत बड़ा और अधिक ऊँचा है। चतुर्भुज आँगन के प्रत्येक कोने पर एक बहुत ऊँचा मीनार है। इसके इर्द-गिर्द एक छज्जा है। उसमें खड़े होकर नगर का सारा दृश्य दिखलाई पड़ता है। मसजिद के मध्य-भाग में जल का एक कुंड है। नमाज़ी लोग उसमें हाथ-मुँह धोते हैं।

मसजिद की नींव, सन् १६३४ ई० में, शेख़ इल्मुद्दीन अंसारी ने रक्खी थी। उसके पूर्वज चिनियोट के रहनेवाले थे। वह शाहजहाँ का मंत्री बन गया था, और उसने वज़ीर ख़ाँ की उपाधि पाई थी।

सुनहरी मसजिद

यह मसजिद काश्मीरी-बाज़ार में है। यह पृथ्वी-तल से कोई एक मंज़िल ऊँचे चबूतरे पर बनी है। इसे नवाब भिकारी ख़ाँ ने बनाया था। यह यद्यपि छोटी है, फिर भी बहुत सुंदर बनी हुई है।

नवाब सैयद भिकारी ख़ाँ मुहम्मदशाह के राजत्व-काल में मीर मन्नू के अधीन लाहौर का नायब-सूबा था। उसने सन् १७५३ ई० में इसकी नींव रक्खी। मीर मन्नू की मृत्यु पर उसकी विधवा मुराद-बेगम ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। भिकारी ख़ाँ उसका पूर्ण विश्वास-पात्र बन गया। वह एक सुंदर युवक था। परंतु उसने बेगम के प्रति एक ऐसा भीषण अपराध किया, जिसे स्त्री-जाति कभी क्षमा नहीं कर सकती। बेगम ने क्रोध के आवेश में उसे अपनी दासियों द्वारा जूतों से पिटवाकर मरवा डाला।



सुनहरी मसजिद

सिखों के समय में यह मसजिद अकालियों के अधिकार में आई। उन्होंने वहाँ गऊ के गोबर का चौका लगाकर ग्रंथ-साहब रख दिया। फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन और नूरुद्दीन तथा गुल्लू माशकी की सिफ़ारिश से महाराजा रणजीतसिंह ने यह मसजिद फिर मुसलमानों को वापस कर दी। परंतु शर्त यह हुई कि नमाज़ उच्च स्वर से न पढ़ी जाय, और इससे संबंध रखनेवाली दूकानों की आय भी दरबार को मिले।

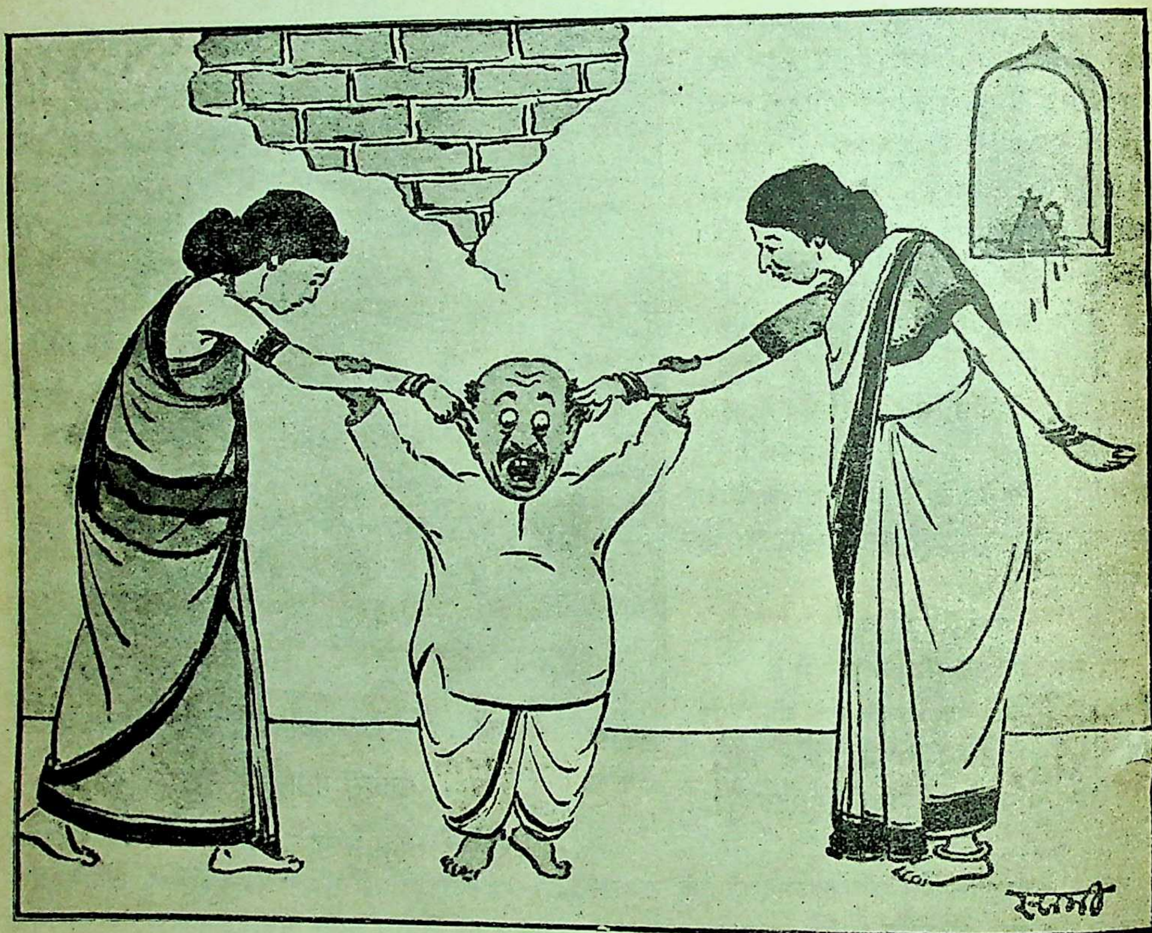
संतराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो जोरूवाला

[चित्रकार—श्रीयुत गुरुस्वामी]



झपट झिड़ककर कर्कशा दोनों पकड़े कान ;
दो जोरूवाला करे 'हाय ! हाय !' हैरान ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"साहित्यालोचन"

(आलोचना)



स पुस्तक के लेखक बाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए० हैं; जो हिंदी के एक धुरंधर लेखक गिने जाते हैं। मैंने इस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा सुनकर एक प्रति ख़रीदी। मैंने स्वयं पढ़ने के पहले यह पुस्तक अपने एक मित्र को दी। मित्र ने हिंदी की उच्च शिक्षा प्राप्त की है; लेकिन वह न तो अधिक अँगरेज़ी पढ़े हैं, और न संस्कृत ही जानते हैं। मैं चाहता था, वह इस पुस्तक को पढ़कर मुझे इसकी मोटी-मोटी बातें बता दें; जिसमें मुझे इसे पढ़ना न पड़े, और मैं इसके विषय को जान जाऊँ। मेरी इस चेष्टा का कारण समय की कमी ही थी।

दो-चार रोज़ पढ़ने के बाद मेरे मित्र ने पुस्तक लौटा दी, और कहा—मैं इसे अच्छी तरह नहीं समझ सका, और न इसका विषय ही भली भाँति बता सकता हूँ। तब मुझे लाचार होकर पुस्तक पढ़नी पड़ी। पढ़ने के बाद मुझे मालूम हुआ कि पुस्तक के लेखक ने यह पुस्तक या तो अपने ही समझने के लिये लिखी है, और या उनके पढ़ने के लिये, जो संस्कृत में साहित्य-शास्त्र से परिचित हैं। मगर पिछले पाठकों को तो इसके पढ़ने की आवश्यकता ही क्या है? रही बाबू साहब के खुद समझने की बात। सो, संभव है, जो कुछ बाबू साहब ने इस विषय में पढ़ा हो, उसको शायद इसलिये कुछ संक्षेप में लिख लिया हो कि उसके पढ़ने से उन्हें अपनी पढ़ी हुई बातें याद आ जायँ। मेरी राय में, यदि इस संक्षेप लेख को वह अप्रकाशित ही रखते, तो अच्छा होता। इससे सिर्फ़ हिंदी पढ़े हुए लोग कुछ अधिक लाभ नहीं उठा सकते। जिसने संस्कृत में साहित्य का विषय पढ़ा है, वह अवश्य इस पुस्तक में सभी बातों को बीज-रूप में देख सकेगा; लेकिन साहित्य से अपरिचित पाठक इससे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता। जिस विषय को बाबू साहब ने विस्तार से—खोलकर—लिखा है, वह अँगरेज़ी-पुस्तकों के आधार पर है। उसे अँगरेज़ी पढ़ा हुआ मनुष्य ही अच्छी तरह समझ सकता है। लेखक महाशय ने अपनी पुस्तक के अंत में ऐसी पुस्तकों की एक लंबी सूची दी है, जिन्हें पढ़कर उन्होंने इस पुस्तक की रचना की है। लेकिन मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि 'साहित्यदर्पण' का हिंदी-अनुवाद, जिसे पं० शालग्राम शास्त्री ने किया है, न छप गया होता, तो शायद बाबू साहब की पुस्तक का जन्म भी न हुआ होता। मैं कह सकता हूँ कि बाबू साहब ने साहित्यदर्पण को पढ़कर ही उसके आधार पर एक पुस्तक लिखनी चाही है। साथ ही यह भी चाहा है कि बात खुले नहीं, हिंदी-संसार उनकी पुस्तक को मौलिक ही समझे, और उसकी प्रशंसा करे।

साहित्य-विषय का विवेचन जिस उत्तम रीति से साहित्यदर्पण में हुआ है, वह इस पुस्तक में देखने को भी नहीं है। साहित्यदर्पण में प्रत्येक बात कितने ही उदाहरण देकर समझाई गई है, और विषय-क्रम भी सुचारु रीति से रक्खा गया है। किंतु बाबू साहब ने उदाहरण तो दिए ही नहीं, वह विषय-क्रम भी नहीं रक्खा है। शायद इसलिये ऐसा किया गया है कि किसी को यह न ज्ञात हो कि आपने साहित्यदर्पण की नक़ल इसमें कर ली है। आपकी पुस्तक में दस अध्याय हैं। पहले और अंत के अध्यायों को छोड़कर, जिनमें ललित कलाओं और साहित्यालोचना का विषय है, बाक़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब अध्यायों में साहित्यदर्पण-प्रतिपादित विषय के कुछ अंशों को बेतरतीब लिख मारा है। बीच-बीच में अँगरेज़ी ख़यालात के जोड़ भी लगा दिए हैं; जो बेमौज़ूँ मालूम होते हैं। अब अध्यायों के क्रम से व्याख्या की जाती है—

पहले अध्याय में किसी अँगरेज़ी-पुस्तक के आधार पर यह बतलाया है कि ललित कलाएँ पाँच हैं, और उनमें काव्य-कला सबसे श्रेष्ठ है। अंत के दसवें अध्याय में समालोचना करनेवाले के लिये कुछ साधारण बातें— जिन्हें लगभग सभी समालोचना करनेवाले जानते हैं, चाहे वे उन्हें अमल में लावें या नहीं—कहकर उपदेश दिया गया है।

बीच के आठ अध्यायों में लेखक ने काव्य, साहित्य, कविता, गद्य-काव्य, दृश्य-काव्य, रस और शैली का विवेचन किया है। यद्यपि लेखक ने अँगरेज़ी-पुस्तकों के आधार पर बहुत कुछ इन अध्यायों में घुसेड़ा है, पर सब बेमेल है। जिस विषय को समझाना चाहिए था, वह वैसा ही रह गया है। यह विषय विना उदाहरणों के समझ में नहीं आ सकता। संस्कृत-साहित्य-शास्त्र के रचयिताओं ने प्रत्येक बात को कई-कई उदाहरण देकर समझाया है; लेकिन बाबू साहब ने इस ओर कुछ ध्यान ही नहीं दिया। ध्यान देते भी कैसे? साहित्यदर्पण आदि साहित्य-ग्रंथों में जो उदाहरण दिए गए हैं, वे संस्कृत के काव्य-ग्रंथों से। किंतु यहाँ हिंदी के काव्य-ग्रंथों से उदाहरण देने की आवश्यकता थी, और उसके लिये हिंदी के समस्त काव्य-ग्रंथों का परिशीलन ही नहीं आवश्यक था, बल्कि ऐसी कुशाग्र विवेक-बुद्धि भी चाहिए थी, जिसके द्वारा यह निश्चय हो सके कि जिस उदाहरण को देना चाहते हैं, वह उस विषय का ठीक उदाहरण है या नहीं। यह बड़ी योग्यता का काम है। यदि बाबू साहब साहित्यदर्पण-प्रतिपादित विषयों को, जिनमें से कुछ उन्होंने, अपनी पुस्तक में, बेतरतीब लिखे हैं, हिंदी-कवियों की कविता के उदाहरण देकर बताते, तो पुस्तक बड़ी उपयोगी होती। लेकिन यह कार्य अत्यंत परिश्रम, योग्यता और पांडित्य का है। मैं पाठकों से निवेदन करता हूँ कि वे आठवें और नवें अध्याय को पढ़ें, और फिर बतावें कि उदाहरणों के विना वे क्या समझे। लेखक ने जितना समय उपन्यास के पात्र लिखने और इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका से नाटक-कला का इतिहास उद्धृत करने में लगाया, उतना समय रस-संबंधी विषय को उदाहरण-सहित समझाने में अगर लगाते, तो कुछ लाभ भी होता, और हिंदी-पाठकों को बहुत कुछ साहित्य का परिचय प्राप्त हो जाता। आपने यह तो बताया कि रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से होती है, पर साहित्यदर्पण की तरह उदाहरण देकर इस विषय को नहीं समझाया। न विभाव के संबंध में आपने नायक-नायिका-भेद का ही कुछ हाल लिखा। आपने उपन्यासों के पात्रों पर व्याख्या तो लिखी, लेकिन उतनी ही, जितनी कि अँगरेज़ी-पुस्तकों से उपलब्ध हो सकती थी। नायक-नायिका-भेद के आधार पर उपन्यासों के पात्रों का अच्छा विवेचन हो सकता है; लेकिन इस बात की आपने हवा भी नहीं आने दी। आपने साहित्यदर्पण के अनुसार तीन गुण बताए तो सही, लेकिन हिंदी-कविता से उदाहरण देकर यह नहीं दिखाया कि माधुर्य, ओज और प्रसाद-गुण कैसे होते हैं, और न वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली, इन तीन रीतियों को ही उदाहरणों से दिखाया। अलंकार-विषय को तो आपने बातों में ही उड़ा दिया है। काव्य-विषय में जब तक अच्छे उदाहरणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा यह न बताया जाय कि ध्वनि-काव्य क्या है, गुणीभूत व्यंग्य-काव्य क्या है, और ध्वनि-काव्य के दो मुख्य भेद—लक्षणा-मूलक ध्वनि और अभिधा-मूलक ध्वनि—क्या हैं, तब तक काव्य का परिचय ही क्या हो सकता है? इन बातों को उदाहरण द्वारा बतलाने के लिये हिंदी की कविता-पुस्तकों में खोज की आवश्यकता है। विना ऐसा किए यह विषय स्पष्ट नहीं हो सकता। यह काम परिश्रम और योग्यता का है। यदि लेखक महाशय, जिनमें योग्यता की कमी नहीं है, परिश्रम करते, तो हिंदी-संसार के लिये एक नई बात होती, और पुस्तक का महत्त्व भी बढ़ जाता। आपने नाटक-विषय पर व्याख्या तो बड़ी लंबी-चौड़ी लिखी है, पर १० रूपकों और १८ उपरूपकों की कुछ भी व्याख्या नहीं लिखी; जिससे पाठक समझ लेते कि ये क्या वस्तु हैं। न इनके उदाहरण ही दिए। कोरे नाम गिनाने से कुछ भी लाभ नहीं है।

लेखक ने साहित्य-शब्द की जो कुछ व्याख्या की है, वह स्पष्ट और सर्व-साधारण के बोध-गम्य नहीं है। बीज-रूप से उसमें बहुत कुछ आ गया है। लेकिन जिन्होंने इस विषय को नहीं पढ़ा, उन्हें समझाने के लिये बहुत कुछ चेष्टा करनी पड़ती है। न करना अच्छे लेखक के कर्तव्य से गिर जाना है। जिस प्रकार की यह पुस्तक है, उसमें भली भाँति दो ही बातों का विवेचन करना है, अर्थात् साहित्य क्या है, और काव्य क्या है? लेखक ने इन दोनों बातों को लिखा ज़रूर है, पर वैसा स्पष्ट और बोध-गम्य नहीं, जैसा कि संस्कृत के साहित्य-ग्रंथों में है।

मैं पाठकों के लाभार्थ साहित्य-शब्द की थोड़ी-सी व्याख्या लिखता हूँ—

साहित्य-शब्द 'सहित' से बना है; जिसका अर्थ है साथ। जैसे हम यह कहें कि यह तुलसी-कृत रामायण की पुस्तक टीका-सहित है, तो इसका अर्थ यही है कि यह रामायण टीका के साथ है, यानी इसमें केवल मूल ही नहीं है, उसके साथ टीका भी है। सहित का अर्थ साथ या समेत है। जब सहित का रूप साहित्य हो जाता है, तो उसका अर्थ होता है साथवाली चीज़ें, यानी वे वस्तुएँ, जो साथ में हों। देव-पूजन करने में धूप, दीप, नैवेद्य आदि सामग्री ज़रूरी है, यानी ये चीज़ें उसके साथ-साथ हैं। इसलिये धूप, दीप, नैवेद्य आदि वस्तुएँ देव-पूजन का साहित्य हैं। ऐसे ही मकान बनाने का साहित्य है ईंट, पत्थर, चूना, लकड़ी आदि सामान। जो चीज़ें जिस कार्य के लिये आवश्यक हैं, यानी उसके साथ-साथ रहती हैं, वे उसका साहित्य कहलाती हैं। यहाँ प्रश्न यह है कि काव्य-रचना में किन-किन चीज़ों की आवश्यकता है, यानी काव्य के लिये कौन-कौन-सी चीज़ें ज़रूरी हैं, या उसके साथ रहनेवाली कौन-कौन चीज़ें हैं? इसका उत्तर यह है कि उसके लिये ये चीज़ें ज़रूरी हैं—१. शब्द-शक्ति, २. रस, ३. दोष-हीनता, ४. गुण, ५. अलंकार, और ६. रचना-शैली। ये चीज़ें काव्य के साथ रहती हैं, और इसलिये यही काव्य का साहित्य है। जो ग्रंथ इन चीज़ों का स्पष्ट रूप से विवेचन करे, वह साहित्य-शास्त्र है।

यदि साहित्य यह है, तो काव्य क्या हुआ? काव्य वह रचना हुई, जिसमें ये छः चीज़ें हैं। जिस रचना में इनका अभाव है, वह काव्य नहीं है। ऐसी रचना, जिसमें ये छहो वस्तुएँ विद्यमान हैं, यानी जो काव्य है, उसके मुख्य दो भेद हैं। ध्वनि और गुणीभूत व्यंग्य। पहला दूसरे से उत्कृष्ट है। इसी काव्य के दूसरे प्रकार से दो भेद और हैं—दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्य। दृश्य-काव्य में नाटक हैं; जो रूपक कहलाते हैं। रूपक १० और उपरूपक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८ हैं। श्रव्य-काव्य चार प्रकार का है—महाकाव्य, खंड-काव्य, कोष और गद्य। गद्य के पाँच भेद हैं। कथा, आख्यायिका, चंपू, विरुद और करंभक।

अत्यंत संक्षेप में साहित्य-विषय का यही तारतम्य है। इसमें प्रत्येक विषय को उदाहरण-सहित बताना साहित्य-शास्त्र का उद्देश है। यह उद्देश साहित्यालोचन से कितना पूरा हुआ है, सो इसके पाठक ही बतला सकते हैं। जब पुस्तक को मैंने हाथ में लिया, तो मुझे पूर्ण आशा थी कि जैसे विद्वान् की लिखी हुई यह पुस्तक है, वैसी ही इसमें हिंदी-काव्यों की दृष्टि से साहित्य-तत्त्वों की अच्छी आलोचना भी होगी। लेकिन जब मैं इसे पढ़ चुका, तो मेरी आशा चूर-चूर हो गई। मैं तो यही कहूँगा कि जिन महाशय को साहित्य-शास्त्र का विषय जानना है, वे साहित्यदर्पण को पढ़ें। उसका हिंदी-अनुवाद छप गया है। इस पुस्तक के पढ़ने से अधिक लाभ नहीं। बल्कि और झंझट में पड़ जाना है। अभी हिंदी के ऐसे सौभाग्य के दिन नहीं हैं कि उसमें साहित्यदर्पण-जैसी पुस्तक लिखी जाय।

इसके सिवा लेखक महाशय को लगभग प्रत्येक वाक्य में ही 'आदि'-शब्द अड़ा देने की आदत-सी पड़ गई है। कहीं-कहीं तो यह बेतरह खटकता है। पाठक ध्यान-पूर्वक देखेंगे, तो पुस्तक के हरएक पृष्ठ में 'आदि'-शब्द की भरमार पावेंगे।

आपने कविता की सत्यता दिखाते हुए गोसाईं तुलसीदास के दोहे में जो दोष दिखाया है, उससे गोसाईंजी की असंख्य गुण-परिपूर्ण कविता पर आक्षेप होता है। आपने उनकी सुंदर कविता में से ध्वनि-काव्य के कहीं भी उदाहरण नहीं दिए।

"क"

दीपक

तरुणी निज अंचल से ढँककर
    ले जाती है तुझको, दीप!
किन भावों से पूर्ण हृदय से,
    प्रेम-सहित निज नाथ समीप?
पर छल से अथवा कौतुक से
    तू बुझ-बुझ जाता है, शोक!
युवती-उर-से रुचिर स्थल में
    होगा क्या तेरा आलोक?
मिट्टी के छोटे-से दीपक,
    क्यों होता है दीन, मलीन?
चिंतित है क्या, यह तेरी द्युति
    अंधकार में होगी लीन?
मानव-जीवन की समता भी
    तो है तुझसे ही संपूर्ण।
कौन मनुज तूने देखा है
    इस प्रकार चिंता से चूर्ण?

रामचंद्र टंडन

संवत् १७५७ का हिंदी का एक गद्य-ग्रंथ



दी-भाषा-भाषी उन सज्जनों का जन्म निस्संदेह धन्य है, जो मातृ-भाषा के साहित्य को नैसर्गिक प्रेम और आदर के साथ देखते तथा उसे अपने गौरव की वस्तु मानकर उसकी रक्षा तथा वृद्धि करने को अपना परम पुनीत कर्तव्य समझते हैं। हिंदी-भाषा के ऐसे ही कृतविद्य विद्वानों द्वारा उसका इतिहास बनाया जा रहा है। वह जब पूरा होगा, तब संसार को उसकी क्रमोन्नति का पूरा-पूरा वृत्तांत ज्ञात हो जायगा। कहना न होगा कि संसार में वही जाति, वही राष्ट्र और वही देश, उन्नति कर सकता है—और अपनी उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति की रक्षा भी चिरकाल पर्यंत कर सकता है—जो अपनी भाषा के साहित्य को नित्यप्रति उन्नत करता जाता है। संतोष का विषय है कि हिंदी-भाषा-भाषी विद्वानों का ध्यान इस गुरुतर विषय की ओर आकृष्ट हो चुका है, और कई सज्जनों ने इस दिशा में काम करना भी आरंभ कर दिया है। ऐसे सज्जनों की अवगति के लिये आज हम एक हिंदी के दो सौ तेईस वर्ष के पुराने हस्त-लिखित गद्य-ग्रंथ का हाल यहाँ पर लिखते हैं। आशा है, जो लोग हिंदी-भाषा के साहित्य का इतिहास लिख रहे हैं, उन्हें यह समाचार—यदि पहले ज्ञात न हो चुका होगा—विशेष हर्ष-दायक होगा।

इस ग्रंथ के आदि में, संस्कृत में, मंगलाचरणात्मक एक श्लोक लिखने के पश्चात् लेखक ने लिखा है—"अथ दसम की पोथी भाषा लिष्यते॥" इसी प्रकार अंत में लिखा है—"श्रीभागवतु लिष्यौ भाषा अर्थ सहित संपूर्न दसम॥ संवतु १७५७ साके × × × × सावन-सुदि पून्यौ १५ शुक्रवासरे लिष्यत पं० मिश्र नाथूराम शुभस्थान नग्र चदेरी॥ दोहा॥ श्रीबाई जू लहलही देति द्विजनि कौ दान। सदा सनेही राम की मीरां के उनमान॥ सावन सुदि पून्यौ सही शुक्रवार इमि नाम। ता दन पुस्तक यह लिष्यौ लेखक नाथूराम॥"

उक्त अवतरण से यह अनुमान होता है कि ग्रंथकार ने अपनी इस कृति का नाम "दसम की पोथी भाषा" रक्खा है। इसमें भागवत के दशम स्कंध की कथा का वर्णन है। अंत के दोहों से ज्ञात होता है, चँदेरी में कोई राम-भक्त श्रीमती लहलही बाई रहती थीं, और वह ब्राह्मणों को पुस्तक लिखाकर दान में दिया करती थीं। इस पुस्तक को सं० १७५७ वि० के श्रावण-मास की पूर्णिमा, शुक्रवार, को इसके लेखक पंडित नाथूराम मिश्र ने चँदेरी-नगर में पूर्ण किया। पर इस लेख से यह स्पष्ट ज्ञात नहीं हो सकता कि पंडित नाथूरामजी मिश्र इस कृति के कर्त्ता हैं, या केवल प्रतिलिपि-लेखक ही?

पुस्तक बड़े-बड़े १२८ पत्रों में, स्थूल एवं सुवाच्य अक्षरों में, लिखी हुई है। आदि-अंत के पृष्ठों का कुछ भाग बिगड़ गया है। शेष भाग बहुत अच्छी दशा में है। लिपि आजकल की देवनागरी-लिपि से सर्वांश में नहीं, तो बहुलांश में अवश्य ही मिलती है। केवल ऊ, ए, ऐ, ख, प, य, ब, व, रू और क्ष आदि अक्षरों के रूप में भेद पाया जाता है। व और य की ब और प से भिन्नता दिखाने के लिये उनके नीचे एक बिंदु लगा दिया गया है।

उक्त ग्रंथ से नीचे एक अवतरण दिया जाता है। उससे पाठकों को उस समय के गद्य-लेख की प्रणाली का बहुत कुछ ज्ञान हो सकेगा। इस अवतरण में हमने, मूल-ग्रंथ में जिस अक्षर का जैसा रूप लिखा है, वैसा ही रूप देने का यत्न किया है। शब्दों की अखरौटी भी ज्यों-की-त्यों दी है। हम चाहते थे, इस अवतरण का फ़ोटो देते; पर वैसा इस समय सुगमता से नहीं हो सका। आगे उसकी आवश्यकता उपस्थित होगी, तो वैसा भी किया जा सकेगा।

श्रीशुकोवाच॥ अब यह कथा सुषदेव राजा परीछत सौं कहत है॥ कि सुनहु हो राजा परीछत॥ तब देवतनि की बातैं सुनिकै॥ परमेस्वर जोगमाया कह अग्या दई कै अहो जोगमाया॥ तुम गोकुल मह जाउ॥ जसोदा कैं गर्भ अवतारु लेहु नंद कैं घर॥ तब भादौं कौ महीना आयौ॥ गर्भ के दिन पूजे॥ तब भादौं कै पहिलैं पषवारे आठैं की राति॥ रोहिनी नछत्र्॥ आधी राति तब श्रीकृष्न जू अवतारु लयौ॥ श्रीमथुरा जू मह॥ अरु उहाँ गोकुल मैं॥ नंद कें घर दसोदा जू कें बेटी भई॥ श्रीदुर्गा जू प्रगट भई॥ तब दुर्गा जू कें प्रगट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होत ।। सवनि कैं मोहु भयौ ।। सव कोऊ सोइसे गए ।। कछू काहू कह संग्या न रही अरु मथुरा जू मह श्रीकृष्न जू प्रगट भए ।। तव दसहूं दिसांनि उदोतु होइ रह्यौ ।। अरु साधुनि के मन प्रसंन भए ।। अरु जे असाधु हते तिनके मन मह डरु भयौ ।। तव श्रीकृष्न जू चतुर्भुजु भए ।। चारि भुजाँ ।। पीतांमरु वोढै ।। संष चक्र गदा पद्म धरैं ।। कौस्तक मनि गरैं पहिरैं क्रीट मुकटु माथैं धरैं ।। ऐसे श्रीकृष्न जू प्रगट भए ।। तव वसुदेव अरु देवकी ।। ए दोऊं जनैं श्रीकृष्न जू की अस्तुति करन लागें ।। *

इस अवतरण से पुरातत्त्व के पंडितों को ज्ञात होगा कि सं० १७५७ के हिंदी के गद्य-लेखक प्रत्येक वाक्य को सीमा-बद्ध लिखा करते थे। उक्त अवतरण में 'श्रीमथुरा जू मह' और 'अरु उहां गोकुल मैं' ये वाक्यांश विशेष ध्यान देने योग्य हैं। जो सज्जन बेट साहब आदि विदेशियों को हिंदी-गद्य-प्रणाली के आद्याचार्य का पद देकर उनके अनुकरण पर हिंदी की लिपि-प्रणाली में विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखने की प्रथा का समर्थन करते हैं, और उसकी मात्रा को यहाँ तक बढ़ाते हैं कि शब्द और उसकी विभक्ति के बीच में एक कामा लगा देते हैं, उनसे हमारी सविनय प्रार्थना है कि हिंदी के प्राचीन गद्य-लेखकों का ध्यान यद्यपि उस समय इस विषय की ओर उतना नहीं था, जितना हिंदी के मुद्राक्षरों के अस्तित्व में आने के समय से उस ओर दिया जाने लगा है, तथापि उक्त अवतरण से यह स्पष्ट है कि हिंदी के प्राचीन गद्य-लेखक विभक्ति-प्रत्ययों को उनकी प्रकृतियों से सटाकर लिखना उचित समझते थे। वे उन्हें अलग लिखना उचित समझते, तो आजकल के भिन्नता-मत-वादी लोगों की तरह 'श्रीमथुरा जू' और 'मह' के बीच में और उसी प्रकार 'गोकुल' और ' मैं ' के बीच में खड़ी पाई अवश्य लगा देते।

जो सज्जन आजकल की लिपि-प्रणाली में विभक्ति-प्रत्ययों की संलग्नता या असंलग्नता के विषय में उदासीनता दिखलाते हैं, उनकी सेवा में नत-मस्तक होकर हम यह प्रार्थना करते हैं कि जिस भाषा की लिपि-प्रणाली में इतनी भिन्नता पाई जाती है कि कोई उसके पदों को पद के रूप में लिखता है, कोई अपद के रूप में, वह कदापि विद्वज्जन-समादृत नहीं हो सकती । हिंदी-भाषा की देवनागरी-लिपि को इस दोष से बचाना उसके प्रत्येक बड़े विद्वान् का परम पुनीत कर्तव्य और धर्म है।

जिस वाक्य में जो शब्द जिस अभिप्राय से लिखा गया हो कालांतर में उसका वही अभिप्राय आगे के लोग भी समझें, उसमें समयांतर की प्रचुरता के कारण कोई विभिन्नता न आने पावे, इसीलिये शिष्ट जन अपनी भाषा को व्याकरण के नियमों से सुसंस्कृत कर देते हैं। भारत की प्रायः सभी प्राचीन भाषाओं के व्याकरण पाए जाते हैं। यदि व्याकरण न होते, तो आज दिन उनके मूल-लेखकों के मूल भावों के समझने में बड़ी असुविधा होती। इस आवश्यक और प्रयोजनीय विषय पर ध्यान देकर हिंदी के हित-चिंतकों को उसके व्याकरण से भय-भीत नहीं होना चाहिए । हिंदी में शब्दों की विभक्ति-प्रत्ययों को उनसे अलग लिखना कुछ अस्वाभाविक-सा देख पड़ता है। और, शब्दों तथा विभक्ति-प्रत्ययों के बीच में स्पष्टता के नाम पर एक कामा लगा देना तो और भी उपहासास्पद

* मूल-लेख में व और य के नीचे बिंदु दिए हुए हैं। छापे के अक्षरों में वैसे बिंदु न होने के कारण य और व का वह रूप नहीं दिखाया जा सका। रु का रूप भी उसमें 'नु' पैसा है।—संपादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत होता है। हमें पूरा-पूरा भरोसा था कि अखिल-भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन अपनी कानपुर की बैठक में उक्त विषय का निर्णय कर डालेगा; पर भवितव्यता-वश वैसा नहीं किया जा सका। भारत की राष्ट्र-भाषा की लिपि-प्रणाली में इस प्रकार की भिन्नता उसकी प्रतिष्ठा को मिटानेवाली है, बढ़ानेवाली नहीं। इस विषय में विदेशियों द्वारा प्रचलित की हुई असंलग्नता की प्रथा ने हम पर जो, लड़कपन से, प्रभुत्व जमा लिया है, उसके कारण हमें अपनी सब गुन-आगरी नागरी की लेख-प्रणाली को दूषित नहीं होने देना चाहिए।

टँडा-ग्राम के ठाकुर चंदनसिंहजी ने उदारता-पूर्वक हमें उक्त पुस्तक देखने को दी, तथा जब तक हम उस पर यह टिप्पणी नहीं लिख सके, तब तक उसे अपने पास रखने की भी आज्ञा दे दी थी। इस कृपा के लिये हम ठाकुर साहब के बहुत कृतज्ञ हैं। ठाकुर साहब कहते हैं, जयश्रीनगर में हिंदी की प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकें बहुत हैं। देखें, वहाँ जाने का सौभाग्य हमें कब प्राप्त होता है।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

भारतीय समूह-वाद



यद माधुरी के पाठक डॉ० राधाकमल मुकर्जी से परिचित होंगे। आपने Principles of Comparative Economics नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसके दूसरे भाग में, जो हाल ही में प्रकाशित हुआ है, भारतीय समाज-संगठन के मूल सिद्धांतों का दिग्दर्शन कराया गया है। उसका नाम Communalism निश्चित किया गया है। उसमें इसके भारतीय अनुरूप की व्याख्या की गई है; और भारत को ही नहीं, समस्त संसार को, उसके देश-कालानुसार, पुनरुद्धार का उपदेश दिया गया है। इस लेख में हमें उपर्युक्त पुस्तक के आधार पर कुछ अपने विचार प्रकट करना है।

Communalism का एक रूप वे ग्रामीण तथा जाति-गत पंचायतें हैं, जो साधारण सामाजिक झगड़ों को तय किया करती हैं। इसलिये हम Communalism का हिंदी-रूपांतर पंचायत-वाद ही करते। परंतु कुछ पुस्तकों में Republicanism को यही हिंदी-रूपांतर दिया गया है। अतएव हम हिंदी में अँगरेज़ी के इस शब्द का अनुवाद 'समूह-वाद' ही निश्चित करते हैं। आशा है, Communalism का यह रूपांतर हिंदी-लेखकों को स्वीकृत होगा।

स्वर्गवासी, प्रातःस्मरणीय महादेवगोविंद रानाडे भारतीय धन-विज्ञान के जन्म-दाता माने जाते हैं। यों तो भारतीय नेताओं ने धन-विज्ञान के पाश्चात्य सिद्धांतों का समय-समय पर विरोध किया था, परंतु सबसे पहले रानाडेजी ने ही अपने Essays on Indian Economics में यह दिखलाया कि पाश्चात्य सिद्धांत हर हालत में भारत के लिये उपयोगी नहीं हो सकते। उस समय पश्चिम में आदम स्मिथ और रिकार्डो के सिद्धांतों का बोलबाला था। रानाडे के विचारों ने भारत में रक्षित व्यापार-नीति के अनुकूल विचारों की नींव डाली।

परंतु तब से पश्चिम में भी धन-विज्ञान ने अपना बहुत कुछ रंग बदला है। अब वहाँ भी कोई रिकार्डो के Economic man (आर्थिक मनुष्य) को नहीं मानता, और आदम स्मिथ के मुक्तद्वार-व्यापार-सिद्धांत को माननेवाले शायद मैंचेस्टर में भी अधिक न निकलें। उन सिद्धांतों की जगह अब दूसरों का ज़ोर है। धन-विज्ञान अब दार्शनिकों और गणित-शास्त्रियों के हाथ से निकलकर जीव-वैज्ञानिकों और भूगोलज्ञों का आश्रित है। राधाकमलजी इस नव धन-विज्ञान के भारतीय अधिष्ठाता हैं।

रानाडेजी के समय से मुकर्जी महाशय के समय तक सिद्धांतों में बहुत कुछ अंतर पड़ गया है। रानाडे का सिद्धांत था—"व्यवसाय और शिल्प ही की उन्नति से शहरों की उन्नति हो सकेगी, और शहर ही सभ्यता तथा जनताधीन शासन के केंद्र हैं। इसलिये खूब व्यवसाय बढ़ाओ और नगर-निवासी बनो। तभी तुम्हारी सार्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनिक कार्य की ओर प्रवृत्ति बढ़ेगी। दिहाती या ग्रामीण बने रहने से स्वराज्य के योग्य न हो सकोगे।" मुकर्जी महाशय इस सिद्धांत के बिलकुल विरुद्ध हैं। वह शायद साफ़-साफ़ यह तो नहीं कहते कि आजकल के व्यवसाय और शिल्प से सार्वजनिक कार्य के प्रति प्रवृत्ति की उन्नति नहीं हो सकती—शायद जो सामाजिक दशा इस समय पाश्चात्य देशों की है, वह हमारी भी हो जाय, यदि उन्हीं की तरह यहाँ भी उनके उन्नति-मार्ग का अनुसरण करें—परंतु * उस सामाजिक दशा को, इंद्रायण के फल के समान, बाहर से सुहावनी पर अंदर से ज़हरीली और घृणित बतलाते हैं। जिस व्यावसायिक संगठन ने जनता के बड़े भारी भाग को पशु-तुल्य बना दिया, जिसने देश के अधिकतर धन को इने-गिने धनपतियों के हाथ जाने दिया, जिसने शहरों को व्यभिचार, दरिद्रता और रोगों का अड्डा बना दिया, जिसने राष्ट्रीयता को अंतर-राष्ट्रीयता का विरोधी बनाकर पश्चिम में खून की नदियाँ बहा दीं—अशांति का राज्य स्थापित कर दिया, उस संगठन के अनुकरण से हमारे देश को लाभ नहीं हो सकता। कितना अंतर है! रानाडे के समय में सभ्यता की हवा पश्चिम से ही बह रही थी। लोग समझते थे, अमेरिका और इँगलिस्तान के सामाजिक तथा राजनीतिक संगठन का अनुकरण करने में ही देश का कल्याण है। आवश्यकताओं का बढ़ाना ही उन्नति का साधन है। क़रीब ५० वर्ष तक पश्चिम का जादू पूर्व की आत्मा को अपने मायावी इंद्रजाल में फाँसे रहा। पर युद्ध ने इस इंद्रजाल का नाश कर दिया। पूर्व की आत्मा को फिर होश आया है। इस समय वह अपने प्राचीन आदर्शों की खोज में भटक रही है। उसे पूर्ण विश्वास हो गया है कि पाश्चात्य आदर्शों से संसार का कल्याण नहीं होने का। अतएव उसे अपने ही लिये नहीं, समस्त संसार के लिये, अपने प्राचीन आदर्शों के संदेश सुनने-सुनाने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। गाँधी और रवींद्र, श्रद्धानंद और सरोजिनी, सभी अपने-अपने क्षेत्रों में इस आदर्श की खोज में लगे हैं। राधाकमलजी अभी नवयुवक हैं। उनके विचार अभी परिपक्व नहीं हुए। न उनके आत्मीय पौरुष का ही अभी तक पूर्ण विकास हुआ है। इसलिये हम उपर्युक्त महान् आत्माओं की श्रेणी में इन्हें नहीं रख सकते। परंतु इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि इनकी इस पुस्तक में भारतीय समाज-सुधारकों तथा धन-वैज्ञानिकों के लिये एक नया ही संदेश है। और, वह यह है कि अपने देश के सामाजिक तथा आर्थिक संगठन के मूल-सिद्धांतों का ही विवेचन कीजिए। इस देश का ही नहीं, समस्त संसार के भावी सुख का बीज उन्हीं में है। पाश्चात्य आदर्श हमें कुछ दूर तक सांसारिक सुख पहुँचा सकते हैं; परंतु यदि सच्चे सुख का—जिसमें आत्मा और शरीर, धर्म और अर्थ, दोनों का सम्मिलन हो सके—अनुभव करना है, तो हमें अपने सामाजिक और व्यावसायिक संगठन को इन आदर्शों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना पड़ेगा।

पूर्व और पश्चिम के सामाजिक आदर्शों के भेद को अच्छी तरह समझने के लिये हमें एक ओर भारत के प्राचीन समाज-संगठन का तथा दूसरी ओर प्राचीन यूनान और रोम के सामाजिक संगठन का विवेचन करना होगा। कारण, प्राचीन भारत के आदर्श एशिया में फैले, तथा प्राचीन यूनान और रोम के आदर्श योरप की जातियों में फैलकर, उनके साथ, उन देशों में भी फैले, जहाँ उनका प्रभुत्व जमा।

यों तो आर्य-जाति का एक अंग भारत में और दूसरा यूनान तथा योरप के अन्य देशों में बसा, और इसलिये दोनों देशों में समाज का संगठन व्यक्ति-गत न होकर कुटुंब-गत रहा, परंतु जल-वायु के भेद ने कुटुंब के संगठन में भेद डाल दिया। यूनान और रोम में अधिकतर सामुद्रिक तिजारत या पशु-पालन से जीविका-निर्वाह था; किंतु आर्यों को इस देश की उर्वरा भूमि में ही जीविका की पूरी सामग्री मिल गई। वहाँ कुटुंब के संगठन में कुटुंब के मुखिया का निष्कंटक राज्य रहा; किंतु यहाँ कुटुंब-शासन में उसके प्रत्येक नर-सदस्य को बराबर अधिकार रहा। रोमन क़ानून में पिता को अपने बच्चों पर पूर्ण अधिकार था। लड़कों को विना पिता की मर्ज़ी कौटुंबिक संपत्ति के किसी हिस्से को लेने का अधिकार नहीं था। रोमन पिता के इस प्रभुत्व में योरप के व्यक्ति-वाद का बीज है। वहाँ जायदाद पर व्यक्ति का प्रभुत्व है, कौटुंबिक समाज का नहीं। परंतु मनुस्मृति में पिता कुटुंब का पालक है, मालिक नहीं। लड़कों का कुटुंब की जायदाद पर उतना

* यहीं पर रानाडेजी और मुकर्जी महाशय में गहरा मत-भेद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही हक़ है, जितना कि पिता का। हिंदू-पिता की इस अधिकार-शून्यता में आधुनिक साम्य-वाद के भारतीय अनुरूप समूह-वाद का बीज है। जीविका-निर्वाह के भेद ने यूनान और रोम के समाज को नागरिक का और भारत के समाज को ग्रामीण का रूप दिया। ईसाई-मत के सिद्धांतों ने इस व्यक्ति-वाद की जड़ को पुष्ट किया। परंतु भारत में कुछ समय तक बौद्ध-धर्म का प्राधान्य होने पर भी Communalism के अंकुर को धक्का नहीं पहुँचा; क्योंकि पैतृक धर्म के अधिकांश की पुट बराबर बौद्ध-धर्म के साथ रही।

यों भारत में समूह-वाद की और योरप में व्यक्ति-वाद की नींव पड़ी। बौद्ध-काल के धुरंधर ज्ञाता, अँगरेज़-विद्वान्, स्वर्गीय डॉ० रीज़ डेविड्स ने सबसे पहले अपने Buddhist India-ग्रंथ में सूचना दी थी कि अब से २५०० वर्ष पहले उत्तरीय भारत में बड़े राज्यों के साथ छोटे-छोटे पंचायती राज्य भी थे। परंतु यह सूचना-मात्र ही थी। इधर, कुछ वर्ष हुए, मुकर्जी महाशय के बड़े भाई डॉ० राधाकुमुदजी ने बड़ा परिश्रम—गवेषणा-पूर्ण खोज—करने के बाद अपने Local Government in Ancient India-ग्रंथ में यह दिखलाया है कि भारतीय समूह-वाद गाँवों में ही नहीं, समस्त व्यवसायों, उद्योग-धंधों और धार्मिक संस्थाओं के संगठन में पूर्ण रूप से व्याप्त था। उनकी खोज से तो यही प्रकट होता है कि इस अपूर्व संस्था के उत्पादक और पोषक द्राविड़ लोग ही थे। उत्तरीय भारत के आर्यों ने द्राविड़ों का अनुकरण-मात्र किया। जो हो, राधाकमलजी के 'समूह-वाद'-विषयक विचार उनके बड़े भाई के ग्रंथ से ही आरंभ होते हैं।

राजनीति-विशारदों का विचार है कि समूह-वाद राज-संस्था के विकास-मार्ग की एक आवश्यक मंज़िल (Stage) ही था। सबसे पहले राज-संस्था का उद्देश्य प्रजा की रक्षा करना ही था। सामाजिक सुधार उसका उद्देश्य न था। यह काम उन सामाजिक संस्थाओं का ही था, जो हर गाँव और हर शहर में, जाति-गत अथवा व्यवसाय-गत सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार, स्थापित होती रहती थीं। ज्यों-ज्यों राज-संस्था प्रबल होती गई, उसका कार्य-क्षेत्र भी विस्तीर्ण होता गया। सामाजिक संस्थाएँ शिथिल पड़ती गईं, उनका कार्य-क्षेत्र संकीर्ण होता गया, उनके अधिकार घटते गए। योरप में तो ये संस्थाएँ बिलकुल लुप्त हो गईं। भारत में भी दिन-पर-दिन क्षीण होती जाती हैं।

राधाकमलजी इस मत का विरोध करते हैं। वह कहते हैं, समूह-वाद राज-संस्था की कोई मंज़िल नहीं है, राज-संस्था संगठन का एक भेद-मात्र है। उन्होंने भारतवर्ष के सब स्थानों से प्रमाण जमा करके यह दिखलाया है कि पंजाब के नए गाँवों में, दक्षिण के नए व्यवसायों में, तथा यत्र-तत्र की नई सभाओं में इस ब्रिटिश-राज्य के अंतर्गत, क़ानूनों के बाधक होते हुए भी, समूह-वादी संस्थाएँ प्राचीन प्रथा के अनुसार अब भी बनती चली जा रही हैं।

इन संस्थाओं में वे सब गुण हैं, जो पश्चिम में सह-योग-संस्थाओं तथा मज़दूर-संघों में पाए जाते हैं। परंतु भारतीय संस्थाओं और उनके पाश्चात्य अनुरूपों में भेद यह है कि पाश्चात्य संस्थाओं की नींव आर्थिक स्वार्थ पर है, और यहाँ वे सामाजिक सुख के लिये स्थापित होती हैं। वहाँ प्रयत्न से उनकी स्थापना होती है, और यहाँ यह मालूम होता है कि वे अपने सामाजिक निसर्ग का फल-मात्र हैं। वहाँ धर्म का बंधन नहीं है, और यहाँ क़ानूनों की दस्तंदाज़ी होते हुए भी धर्म-बंधन ही में उनका बल है।

मुकर्जी महाशय ने अपने मत की पुष्टि में जो-जो सजीव उदाहरण दिए हैं, उनका उल्लेख करना इस छोटे-से लेख में कठिन है। अनुवाद करने की ओर रुचि होती, तो तीन-चार उदाहरण देकर लेख समाप्त कर दिया जाता। आवश्यकता है ऐसी संपूर्ण पुस्तक का हिंदी में अनुवाद होने की। हमें इस लेख में सिर्फ़ इतना सूचित करना है कि प्रचलित शासन-प्रणाली, व्यवसाय-संगठन और कचह-रियों के इंसाफ़ क्योंकर इस समूह-वाद के बाधक हुए हैं, और इनके बाधक होने से देश को कितनी क्षति पहुँची है। यद्यपि राधाकमलजी ने इनके संशोधन के विषय में विशेष ध्यान नहीं दिया, तथापि अंत में इस विषय पर भी अपने विचार प्रकट करने का प्रयत्न किया जायगा।

प्रचलित शासन-प्रणाली समूह-वादी संस्थाओं के बिलकुल विरुद्ध जाती है। प्रतिनिधित्व का आधार क्षेत्र-गत और आर्थिक है। अमुक ज़िले से एक प्रतिनिधि हो। वही व्यक्ति वोट दे सके, जिसके पास अमुक जायदाद हो, या जिसकी इतनी आमदनी हो। समूह-वादी संस्थाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कोई मान नहीं। यह नहीं कि गाँव की पंचायत में बैठकर लोग अपने प्रतिनिधि चुन सकें। यह भी नहीं कि किसी समूह-वादी संस्था को प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो।

फिर, दूसरी बात यह है कि प्रजा के हित या अहित की कोई भी ऐसी बात नहीं, जिसमें शासक दस्तंदाज़ी न कर सकें, जिसके लिये सरकार क़ानून न बना सके। और, क़ानून की दशा यह है कि वह संगठित कुटुंब में सम्मिलित मिलकियत का विरोधी है। वह पंचायती फ़ैसलों को नहीं मानता, और गाँव-गाँव इंसाफ़ करने के सुबीते करके इन पंचायतों को बेकार भी बनाए देता है। जब समूह-वादी संस्थाओं का कोई मान नहीं, जब उनके कोई अधिकार नहीं, जब उनके लिये कोई काम नहीं, तो उनका शिथिल हो जाना आश्चर्य-जनक नहीं। सच पूछिए, तो आश्चर्य-जनक बात यही है कि इन रुकावटों के होते हुए उनका अस्तित्व अब भी बाक़ी है।

व्यावसायिक संगठन भी बाधाएँ डालता है। 'मिल' के कार्य के लिये किसी ख़ास जाति या गाँव के लोग तो लिए ही नहीं जाते। उन्हें मिल के प्रबंध से कोई संबंध नहीं। एक नियत समय पर सैकड़ों-हज़ारों की तादाद में पहुँचते हैं। कहीं संध्या तक फ़ुरसत मिलती है। शहर में मकानों की क़िल्लत है। बेचारे अपने बाल-बच्चों को गाँव में छोड़ आते हैं। गाँव उजड़ जाता है। वहाँ कोई सार्वजनिक जीवन के साधन नहीं रह जाते। और, शहर में समूह-वादी संस्थाओं के स्थापित होने का कोई द्वार नहीं रहता।

देश के स्वाभाविक सामाजिक जीवन में पश्चिम से इन बाधाओं के आ पड़ने से जो क्षति पहुँची है, उसका अनुमान न शासक कर सके हैं, न देश के समाज-सुधारक। शासक देश में अज्ञान तथा कुप्रथाओं का रोग बढ़ते देखकर क़ानूनी सुधार द्वारा उसका इलाज करना चाहते हैं। क़ानून को कारगर बनाने के लिये प्रजा के प्रतिनिधियों की राय की आवश्यकता है। शासक इस देश के सामाजिक संगठन को वैसा ही समझते हैं, जैसा कि अपने देश के संगठन को। इसलिये वे प्रतिनिधि, जिनकी राय से क़ानून बनता है, सचमुच प्रजा के प्रतिनिधि ही नहीं होते। कारण, प्रजा यहाँ समूह-वादी संस्थाओं द्वारा अपने विचार प्रकट कर सकती है। उसके लिये ज़िले या कमिश्नरी की आबादी का कोई सामाजिक अस्तित्व नहीं है। क़ानून बन जाता है; परंतु उसका कोई असर नहीं होता। शासक चकराते हैं; समझते हैं, शिक्षा के अभाव के कारण लोग अपना सुधार नहीं करते। चुनाव क्षेत्र-गत आधार पर होता है, और प्रार्थी पाश्चात्य पार्टी-गत सिद्धांतों का ढोंग रचते हैं; परंतु वोट समूह-वादी ढंग पर दिए जाते हैं। पाश्चात्य रोशनी से चौंधियाए हुए नेता समझते हैं, अभी जनता अज्ञान के अंधकार में पड़ी हुई है। उसे अभी राष्ट्रीयता का ज्ञान नहीं। मानो राष्ट्रीयता तभी असली समझी जाय, जब वह पाश्चात्य ढंग की हो। और कहाँ तक कहा जाय, जातीय सभाएँ जो होती हैं, उनमें भी ज़िलेवार प्रतिनिधि चुने जाते हैं। समाज-सुधार-विषयक बहुत-से मंतव्य स्वीकृत होते हैं; परंतु सभाओं के बाहर उनके अनुसार कोई कार्य नहीं होता। समाज-सुधारक समझते हैं, ये हमारी चरित्र-हीनता के लक्षण हैं। पूछिए, ये मंतव्य किसकी राय से स्वीकृत हुए। सभा में प्रतिनिधि ज़िले या शहर के प्रतिनिधि हैं, जिसका उस जाति-गत समाज में कोई अस्तित्व नहीं, तो व्यक्तियों के समूह के वे मंतव्य हुए। और, वे व्यक्ति किसी एक विभिन्न समूह-वादी संस्था के सदस्य हैं। व्यक्ति का उस संस्था से अलग सामाजिक प्रश्न के लिये कोई अस्तित्व नहीं। इसीलिये मंतव्य कार्य-रूप में परिणत नहीं होते। दोष हमारे चरित्र का नहीं है। दोष हमारे उन नेताओं की नासमझी का है, जो पाश्चात्य तरीक़ों से समूह-वादी संस्थाओं का तिरस्कार-कर समाज-सुधार करना चाहते हैं।

हम देखते हैं, जहाँ कहीं समूह-वादी ढंग पर कोई कार्य किया जाता है, वहीं सफलता प्राप्त होती है। जनता द्वारा संचालित शिक्षालयों में वे ही सफलता-पूर्वक कार्य कर रहे हैं, जो भारतीय समूह-वादी निसर्ग को उत्तेजित करते हैं। कायस्थ, कान्यकुब्ज, क्षत्रिय, वैश्य, जैन, हिंदू, मुसलमान आदि के द्वारा संचालित संस्थाएँ उन्नति कर रही हैं। जहाँ पँचमेल इंतिज़ाम है, वहीं उन्नति के मार्ग में बहुत कठिनाइयाँ पड़ती हैं, चाहे गाँधीजी के नाम पर उत्तेजना दी जाय, चाहे स्वर्गीय गोखले के नाम पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवसाय में भी समूह-वादी संस्थाओं का तिरस्कार करने से जो कुछ सामाजिक स्वास्थ्य और चरित्र को धक्का पहुँचा है, वह प्रकट ही है। व्यवसायियों को विशेष लाभ नहीं पहुँचा। मिलों के मालिक अक्सर शिकायत किया करते हैं कि मज़दूर उनकी मिलों में टिककर काम ही नहीं करते। पिता को पोत चुकाना है; सिर पर क़र्ज़ का बोझ है। लाचार होकर वह एक लड़के को शहर में मज़दूरी करने के लिये भेज देता है। जहाँ उसने कुछ रुपया पैदा किया, गाँव गया, वहीं पंचायत की, वहीं अपने पिता का क़र्ज़ चुकाया; और यदि उसको कुछ भी सहारा मिल गया, तो फिर शहर का नाम नहीं लिया। मिलों में काम तभी ज़्यादा होता है, जब फ़सल अच्छी होती है। और, इधर दिहाती या ग्रामीण अपना गाँव, लाचार होने ही पर, उसी समय छोड़ते हैं, जिस समय सिवा चमड़े के कारख़ानों के दूसरी जगह उनकी माँग भी नहीं होती। इसी कारण भारतवर्ष के दो-एक शहरों को छोड़कर कहीं भी टिकाऊ मज़दूरों की आबादी नहीं है। इसी कारण यहाँ के मज़दूर मिल का काम सीख नहीं पाते। उनकी ग़ैर-हाज़िरी और उनकी जिहालत, दोनों से मिलवालों को नुक़सान उठाना पड़ता है।

इसका उपाय क्या है? एक शताब्दी से प्रचलित शासन-पद्धति, व्यावसायिक संगठन और विचार-गति को एकदम बिगाड़ तो सकते ही नहीं। हाँ, जगह-जगह इन्हें समूह-वादी संस्थाओं के अनुकूल बना सकते हैं।

शासन-पद्धति से प्रतिनिधित्व की प्रथा को तो हम अलग ही नहीं कर सकते। इस संसार में सर्वत्र इसका प्रचार है। फिर यदि भारतवर्ष में भी लोग इसी की ओर झुक रहे हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। परंतु इतना हम अवश्य कर सकते हैं कि राज-संस्था एक प्रकार के Federation की भाँति हो। समूह-वादी संस्थाएँ अपने आंतरिक मामलों पर पूरा अधिकार रक्खें। उनके प्रतिनिधि उनकी गणना-शक्ति के लिहाज़ से भिन्न-भिन्न राजकीय संस्थाओं में बैठें। समाज-सुधार-विषयक जितने कार्य हों, वे इन समूह-वादी संस्थाओं के हाथ में रहें। बाक़ी जो देश-रक्षा-विषयक कार्य हैं, वे प्रांतीय तथा राष्ट्रीय सरकार के अधीन रहें। कर-प्रणाली व्यक्ति-गत न होकर समूह-गत हो। समूह-वादी संस्थाओं से भी वोट के द्वारा प्रतिनिधि न चुने जायँ; क्योंकि वोट से पार्टियाँ पैदा होती हैं, और उनका जन्म जनता की सार्वजनिक प्रवृत्ति के लिये घातक है। समूह से कुछ योग्य पुरुषों के नाम छाँट लिए जायँ, और उन नामज़द सदस्यों में से एक या अधिक चिट्ठी डालकर चुन लिए जायँ। सरकारी कचहरियाँ धीरे-धीरे कम कर दी जायँ। समूह-वादी क़ानूनों और समूह-वादी कचहरियों की सरकार मदद करे। इतना आवश्यक है कि कुछ सरकारी कचहरियाँ ऐसी अवश्य हों, जो एक समूह-वादी संस्था का दूसरी से विरोध न होने दें।

पाठक देखेंगे, भारत के लिये जिस भावी राज-संस्था का चित्र खींचा गया है, वह पाश्चात्य राजनीति-विशारदों की किसी भी श्रेणी में नहीं आ सकता। वह Bolshevism नहीं है; क्योंकि Bolshevism में मज़दूरों का राज्य है, और राज-संस्था द्वारा कानूनों की कोई हद नहीं। वह State Socialism भी नहीं है; क्योंकि उसमें भी प्रजा की प्रत्येक काररवाई के लिये सरकारी क़ानून होंगे। यदि कुछ भी समता है, तो Guild Socialism से। परंतु भारतीय पंचायत पाश्चात्य Guild से बिलकुल भिन्न है। पंचायत को, उसके अंतर्गत व्यक्ति के जीवन की कोई समस्या ही ऐसी नहीं, जिस पर अधिकार न हो। परंतु Guild भारतीय विशेषतया आर्थिक है। समूह-वाद के अंतर्गत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सभी के साधन मौजूद हैं।

प्राचीन काल में समूह-वादी संस्थाएँ बहुत शक्ति रखती थीं। परंतु प्राचीन भारत की राज-संस्थाओं की यही कमज़ोरी थी कि उनके केंद्रिक अंग का इन सामूहिक स्थानीय संस्थाओं से विशेष संबंध न था। और, इसी कारण राज्य एक के हाथ से निकलकर दूसरे के हाथ में चला जाता था। विद्रोह की अग्नि भड़कती थी, या देश पर हमला होता था। परंतु इन संस्थाओं के कार्य में अधिक विघ्न नहीं पड़ता था। इन संस्थाओं का भी मत था, "कोउ नृप होय हमैं का हानी"। प्रतिनिधि-प्रणाली की पुट देकर हम अब स्थानीय संस्थाओं और प्रांतीय तथा केंद्रिक संस्थाओं के बीच वह संबंध पैदा कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावसायिक पद्धति का सुधार करना उतना कठिन नहीं है। श्रीयुत चैटरटन महाशय ने भारतवर्ष में घरेलू धंधों के भविष्य पर मनन किया है। राधाकमलजी ने शहरों में मज़दूरों की दुर्दशा का चित्र खींचा है। इसलिये सुधार के दो मार्ग इस संबंध में हैं। एक तो यह कि हाथ से काते हुए सूत और हाथ के बुने हुए कपड़े पर से सिर्फ़ सरकारी चुंगी ही न हटा ली जाय, बल्कि बाहर से आनेवाले मोटे कपड़े पर कुछ अधिक कर भी लगा दिया जाय। हमारा विचार है कि यदि ये सुविधाएँ सरकार कर दे, और साथ ही ज़िलों के बोर्ड भी इस कार्य में किसान-सभाओं से सहयोग करें, तो बहुत जल्द सफलता प्राप्त हो सकती है।

मिलों के मज़दूरों की दशा सुधारने की भी आवश्यकता है। इस संबंध में दो बातें बहुत आवश्यक हैं। एक तो यह कि काम करने के घंटे घटा दिए जायँ, और दूसरी यह कि मिलों के पास मज़दूरों के लिये घर बनाए जायँ। हमें विश्वास है, यदि मिलें औद्योगिक गाँवों के ढंग पर बनें, तो उनमें भी वही सार्वजनिक प्रवृत्ति पैदा हो सकती है, जो किसी समय गाँवों में थी; और, मज़दूरों के भागने की जो समस्या हमेशा मिल-मैनेजरों के सामने रहती है, वह भी हल हो सकेगी।

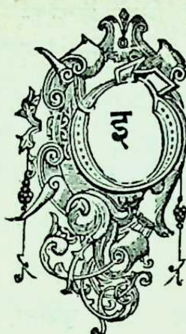
इस लेख के लिखने में दो विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। एक तो यह कि विषय भारतीय है, और उसका मंत्र हमारे सामाजिक जीवन के रोम-रोम में व्याप्त है, परंतु अपनी मातृ-भाषा में हमें उसके प्रकट करने में लोहे लग जाते हैं। दूसरी यह कि विषय विस्तृत है। इसके अंतर्गत बहुत-से ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर हिंदी-साहित्य में अभी विचार नहीं किया गया। परंतु लेख का आकार बढ़ाया नहीं जा सकता। शायद इन्हीं कारणों से लेख विशेष रूप से रोचक नहीं हो सका। कहीं-कहीं दुर्बोध्य भी हो गया है। परंतु, हमें आशा है, विषय के महत्त्व के विचार से ही पाठक इसे आदि से अंत तक पढ़ने का प्रयत्न करेंगे। संभव है, किसी विद्वान् की कृपा-दृष्टि इस लेख पर पड़े, और वह इस विषय पर अधिक प्रकाश डाल सकें।

कालिदास कपूर

प्राकृत-विचार

(आदि उत्पत्ति-प्रकरण)

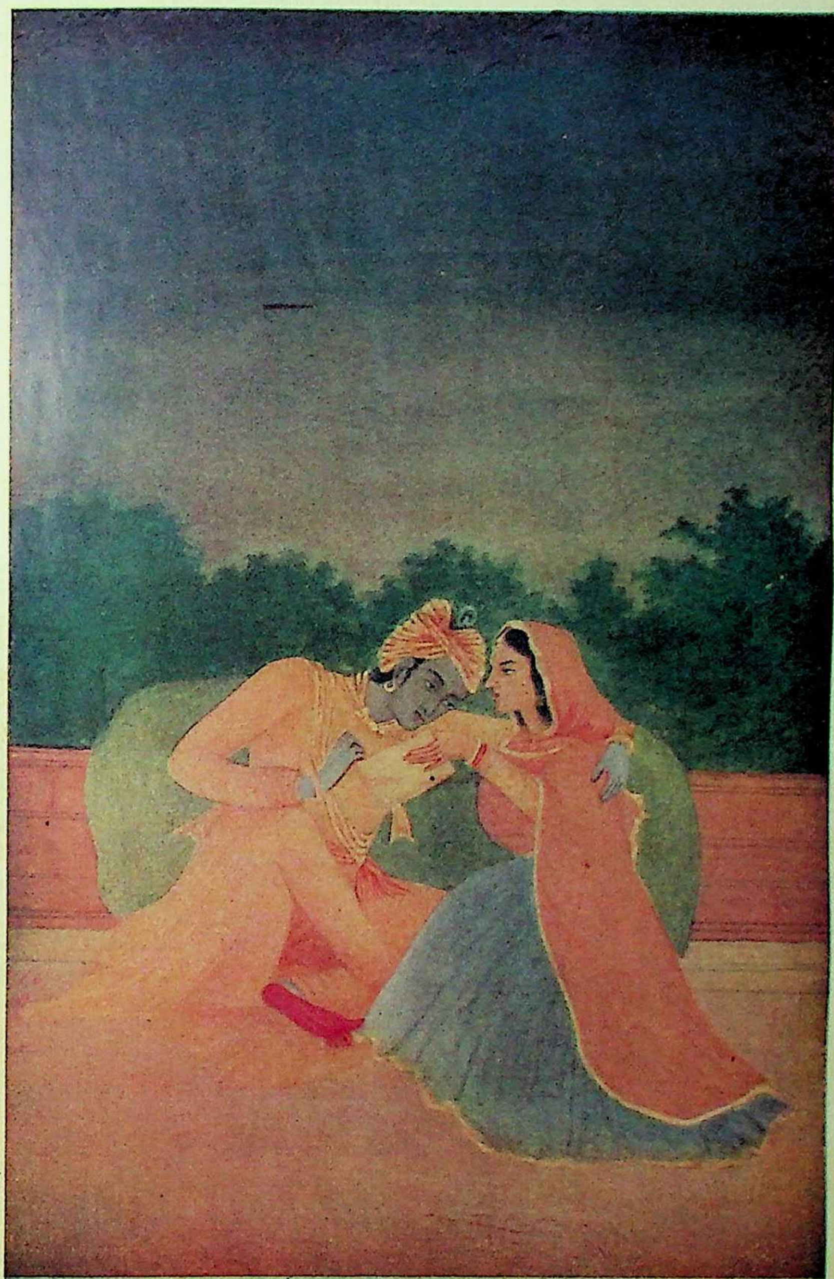
[४]



स रीतिसे महाप्रलयका अंत होनेपर जब दृश्य-पदार्थ-मात्रके साथ-ही-साथ वायु आदि महाभूतों-का ध्वंस हो जाता है, तब सर्व-शक्ति-संपन्न अर्द्धनारी-नटेश्वर महेश्वरको जीवात्माओंके भोगके लिये पुनः सृष्टि के उत्पन्न करनेकी इच्छा, अपने समयपर, स्वतः उत्पन्न होती है। उस समय, प्रलय करनेवाले अदृष्टका कार्य समाप्त हो जाने-से भोगोत्पादक अदृष्टका अपने क्रमानुसार पुनः कार्य उत्पन्न होने लग जाता है; क्योंकि उसकी वृत्तिके निरोधकी सामर्थ्य ही प्रलय-हेतुक अदृष्टमें तब नहीं रहती। कारण, प्रलयका तो कार्य-काल ही समाप्त हो चुका। इसलिये सृष्टि उपजानेवाले अदृष्टकी वृत्तियाँ फलोन्मुखी हो अपने कार्य-क्षेत्रमें क्रमशः आगे बढ़ने लग जाती हैं। भोगके अदृष्टका आत्मासे संयोग ही सबसे पहले महाप्रलयके उन बिखरे हुए अतिसूक्ष्म, अतींद्रिय वायुके परमाणुओं में क्रिया-शक्तिका संचार पुनः करा देता है। वायुका अनंत आकाशमें बिखरा हुआ अतिसूक्ष्म, अतींद्रिय परमाणु-पुंज सिमटकर आपसमें मिलता हुआ क्रमसे दो अणुओंके मिले हुए रूपसे अतिविस्तीर्ण वायु-मंडलका रूप धारणकर सृष्टि-क्रमकी उस आदिम अवस्थामें स्पंदित अथवा कुछ-कुछ कंपित होता रहता है। सृष्टि-क्रमकी उस प्रथमावस्थामें, इस वायुमंडलके सिवा आकाशमें दूसरे किसी महा-भूतकी भी उत्पत्ति तब तक न होनेसे, उस वायुकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रुक्मिणी और कृष्ण

[चित्रकार—श्रीयुत महावीरप्रसाद वर्मा]

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतिको रोकनेवाला अथवा उसे धक्का अथवा टक्कर देकर उसकी गतिको फेरनेवाला व्यवधान एक भी नहीं रहता। इसलिये, स्वभावसे ही तिरछी गतिवाली उस हवामें बराबर स्वाभाविक गति-शक्तिके प्रभावसे अतिसूक्ष्म स्पंद अथवा कंपन-मात्र होता रहता है। आघात-प्रतिघात, संघर्ष और दबावके विना तीव्र गति भी नहीं उपजती!

इस रीतिसे वायु-मंडलकी सृष्टि होनेके पीछे बीजरूपसे अतिसूक्ष्म अदृश्य व्यापक जलके परमाणुओंका भी वायु-मंडलके गर्भमें ही उद्गम अथवा अस्तित्व आरंभ होता है। अतींद्रिय, सूक्ष्म जलीय परमाणुओंमें क्रिया-शक्ति द्वारा जलके वैसे सूक्ष्म दो-दो अणु आपसमें मिल-मिलकर अतिसूक्ष्म महान् जल-राशिको आकाशके आधारमें ही रहनेवाले सबसे प्रथम उत्पन्न उस महान् वायु-मंडलके गर्भमें ही अदृश्य रूपसे उत्पन्न करने लगते हैं। इस क्रमसे ही उस सूक्ष्म जल-राशिके गर्भमें अतिसूक्ष्म पार्थिव परमाणुओंका भी बीज-रूपसे जन्म होता है, और निविड़ावयव महापृथ्वी भी अदृश्य रूपसे उस कंपमान वायु-मंडलके गर्भके अंदर ही छिपी रहती है। अतिसूक्ष्मताके कारण हम उसे जान नहीं सकते। जब आकाशमें वायु, जल और पृथ्वीके भी सूक्ष्म परमाणु अतिसूक्ष्म अर्थात् बीज-रूपसे उत्पन्न हो लेते हैं, तब ऊपर लिखे क्रमसे ही दीप्यमान महान् तेजःपुंजके आविर्भावका समय भी आ उपस्थित होता है। व्यापक तेजके सूक्ष्म परमाणु-समूह भी उस सूक्ष्म जल-राशिके ही गर्भमें छिपे रहते हैं। सूक्ष्म रूपसे जब यहाँ तक सृष्टि हो चुकती है, तब अर्द्धनारी-नटेश्वरके संकल्प-मात्रसे ब्रह्मांडकी और दिव्यदेहधारी, स्वयंभू, पद्मयोनि, सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीकी उत्पत्ति होती है। विश्व-विधाता, स्वयंभू ब्रह्माजी निरतिशय ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य-संपन्न ही स्वभावतः उत्पन्न होकर, अर्द्धनारी-नटेश्वर उस महेश्वरकी ही प्रेरणासे सृष्टि रचनेमें प्रवृत्त हो, जीवोंके प्राक्तन कर्म अथवा अदृष्टानुसार ही, संकल्प-मात्रसे जगत्-संसारकी रचना करने लगते हैं। पाँचों महाभूतोंमें, आकाश तो वैशेषिक-दर्शनके मतसे नित्य ही है; केवल वायु, तेज, जल और पृथ्वी, इन चारों महाभूतोंकी सूक्ष्म सृष्टि, अर्थात् अपने-अपने कारणोंसे कार्य-रूपमें सूक्ष्मतया आविर्भाव और अपने कारणोंमें क्रमशः विलीन हो नष्ट होनेका प्रलय-क्रम ही अतिसंक्षेपसे यहाँ दरसाया गया है। इस सृष्टि-क्रममें भी जलसे ही पृथ्वीकी उत्पत्ति स्पष्ट है।

तत्त्व-दर्शिनी बुद्धिसे भली भाँति विचारकर देखने पर ऊपर लिखे वैशेषिक-दर्शनके मूल सिद्धांतसे अन्यान्य दर्शनोंके सिद्धांतोंका भी विरोध नहीं पड़ेगा। सृष्टि-क्रमके वर्णनमें, महाभारतमें, महर्षि व्यासने भी वैशेषिक-दर्शनके ही सिद्धांतके पोषक वचन, अनेकों स्थलोंमें, प्रायशः दिए हैं। उन वचनोंमें कहीं-कहीं इतनी विशेषता अवश्य देखनेमें आती है कि वैशेषिकमें वर्णित उस अदृश्य, अतिसूक्ष्म, कंपमान वायु-मंडलका वर्णन न कर, जलीय दृश्य अणुओंके मेलसे महान् जल-राशिकी उत्पत्तिके बाद ही पृथ्वी, वायु और तेजकी उत्पत्तिका वर्णन आता है। अवश्य यह वर्णन स्थूल दृश्यमान और स्पर्श-गुणवाली वायु आदिका ही है। महाभारतके शांति-पर्वमें, भृगु-भारद्वाज-संवादके १८३वें अध्यायमें, नीचे-लिखे अनुसार महर्षि व्यासके वचन ज्यों-के-त्यों यहाँ विशेष-विचार पूर्वक अवलोकनार्थ दिए जाते हैं। यथा—

"पुरा स्तिमितमाकाशं अनंतमचलोपमम्;
नष्टचंद्रार्कपवनं प्रसुप्तमिव संबभौ।
ततस्सलिलमुत्पन्नं तमसीवापरं तमः;
तस्माच्च सलिलोत्पीडादुदतिष्ठत मारुतः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा भाजनमच्छिद्रं निश्शब्दमिव लक्ष्यते ;
तच्चांभसा पूर्यमाणं सशब्दं कुरुतेऽनिलः ।
यथा (तथा?) सलिलसंरुद्धे नभसोऽते निरंतरे ;
भित्त्वार्णवतलं वायुः समुत्पतति घोषवान् ।
स एष चरते वायुः अर्णवात्पीडसंभवः ;
आकाशस्थानमासाद्य प्रशांतिं नाधिगच्छति ।
तस्मिन् वाय्वंबुसंघर्षे दीप्ततेजा महाबलः ;
प्रादुरभूदूर्ध्वशिखः कृत्वा निस्तिमिरं नभः ।
अग्निः पवनसंयुक्तः खं समाक्षिपते जलम् ;
सोऽग्निर्मारुतसंयोगात् घनत्वमुपपद्यते ।
तस्याकाशान्निपततः स्नेहस्तिष्ठति योऽपरः ;
स संघातत्वमापन्नो भूमित्वमनुगच्छति ।
रसानां सर्वगंधानां स्नेहानां प्राणिनां तथा ;
भूमिर्योनिरिह ज्ञेया यस्यां सर्वं प्रसूयते ॥१७॥"
(म० भा०, शा० पर्व)

"जलात् प्रसूता जगती जगत्या जायते जगत् ।"
(म० भा०, शा० प०, अ० २०२)

"आपोमयमिदं सर्वं आपो मूर्तिश्शरीरिणाम् ।"
(म० भा०, शा० प०, अ० १८७)

"अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रं अश्मनो लोहमुत्थितम् ;
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ २२ ॥"
(म० भा०, शा० प०, अ० ७८)

"आकाशादभवत् वारि सलिलादग्निमारुतौ ;
अग्निमारुतसंयोगात् ततस्समभवन्मही ॥ १५ ॥
ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयंभुवा ;
तस्मात्पद्मात् समभवत् ब्रह्मा वेदमयो निधिः ॥१६॥"
"मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता ;
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ।
कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः ;
तस्य मध्ये स्थितो लोकान् सृजते जगतः प्रभुः ॥ ३९ ॥"
(म० भा०, शा० प०, अ० १८२)

"प्रजाविसर्गं विविधं मानसो मनसाऽसृजत् ;
संरक्षणार्थं भूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम् ।
यत्प्राणः सर्वभूतानां वर्द्धंते येन च प्रजाः ;
परित्यक्ताश्च नश्यंति तेनेदं सर्वमावृतम् ।
पृथिवी पर्वता मेघा मूर्तिमंतश्च येऽपरे ;
सर्वं तद्वारुणं ज्ञेयमापस्तस्तंभिरे यतः ॥४॥"
(म० भा० शा० प० अ० १८३)

महाभारतसे उद्धृत महर्षि व्यासके वचनों-की वर्णन-शैलीमें अंतर तो अवश्य देखनेमें आता है, परंतु इस प्रभेद और अंतरका मूल-कारण विचारने योग्य है। महर्षि कणाद अतिसूक्ष्म, अतींद्रिय वायवीय (वायुके) परमाणुओंके परस्पर दो-दो अणुओंके मिलनेके उस आदि-रूपकी सृष्टिका सांगोपांग वर्णन कर गए हैं। परंतु महर्षि व्यासने महाभारतके इन वचनोंमें उस अतींद्रिय, अतिसूक्ष्म सृष्टि-क्रमको छोड़ दिया है। साधारण बुद्धिके समझने-योग्य इंद्रिय-ग्राह्य सृष्टि-क्रमका विकास जब होने लगा था, उसीकी परंपराका वर्णन ही महा-भारत-महापुराणमें महामति व्यासजीने यथोचित ही किया है। विना स्पर्शके अतिसूक्ष्म व्यापक वायु-मंडलका ज्ञान प्राणियोंको साधारणतः नहीं होता। वैसे ही व्यापक तेजका ज्ञान भी तब तक नहीं हो सकता, जब तक वह तेज किसी आधारके सहारे प्रकाशमान होकर आँखोंके आगे न आवे। अतिसूक्ष्म जलके अतींद्रिय परमाणुओंका ज्ञान भी साधारण रूपसे सबको तब तक नहीं हो सकता, जब तक स्थूल अथवा सूक्ष्म जल-बिंदु-रूपसे जलको प्रत्यक्ष देख नहीं लेते। इन महाभूतोंके अतिसूक्ष्म व्यापक रूप भिन्न हैं, और प्रत्यक्ष स्थूल रूप ही स्वतंत्र हैं। यथार्थमें तेजकी उत्पत्तिका मूल-कारण वायु ही है। इसलिये अतिसूक्ष्म, व्यापक परमाणुरूप-से तो वायुके सूक्ष्म परमाणुओंमें कार्य-परंपराके क्रमानुसार प्रच्छन्न भावसे तेजका रहना स्वाभाविक ही है। परंतु उस अतिसूक्ष्म व्यापक तेजका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि जब तक जलके साथ पृथ्वीके अणुओंका मेल और जलीय स्नेहांशकी चिकनाहटके साथ सूक्ष्म पार्थिव अंशका संयोग नहीं हो लेता, तब तक तेजको प्रकाशित होनेका आधार ही नहीं मिलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओस, कुहरा और जलकी परम छोटी कणिका, ये तीनों ही जलके परमाणुओंके रूपांतर-मात्र हैं। वायु-मंडलमें सर्वत्र व्यापक रहने पर भी परम सूक्ष्मताके कारण ओस दिखाई नहीं पड़ती। किसी पात्रमें बरफ़का ढेला डालने पर उस पात्रके ऊपर, शीतलताकी अधिकताके कारण, वायु-मंडलके व्यापक परम सूक्ष्म ओसके कण जमकर अतिसूक्ष्म जल-बिंदुके रूपमें परिणत हो प्रत्यक्ष देख पड़ने लगते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी इस ओसको ही हिम-नामसे "जो गुन-रहित सगुन सो कैसे ? हिम, जल, उपल, होत पुनि जैसे।" रामायणकी इस अपनी उक्तिमें रूप-रहित वर्णन कर पुनः जल-रूपमें प्रत्यक्ष अनुभूत रूपवान् दरसा दिया है। महाभारतमें महर्षि व्यास-देवने भी सृष्टि-क्रमके वर्णनमें जलकी उत्पत्तिके बादका ही वर्णन किया है। वायुकी गति उत्पन्न होनेके विषयमें एक ख़ाली घड़ेमें जल भरनेके समयका दृष्टांत भी बड़ा ही समीचीन, उपयुक्त और हृदय-ग्राही दिया है। शून्य कलशके गर्भमें आकाश और वायुका परिपूर्ण रहना स्वभाव-सिद्ध है। जब उस घड़ेमें जल भरा जाता है, तो जलके बोझका दबाव पड़नेसे उस ख़ाली घड़ेके भीतरका परिपूर्ण आकाश वायुके साथ ही पूरे वेगसे घड़ेके बाहर निकलने लगता है। जलके गुरुत्वसे दबनेके कारण ही वायुमें गति उत्पन्न होती है। जल और वायुके परस्पर संघर्षणसे ही उस ख़ाली घड़ेका पहलेसे अधिकार किया हुआ अवकाश अगत्या वायुको छोड़ देना पड़ता है, और जल वहाँ अपना अधिकार जमा लेता है। जल बल-पूर्वक घड़ेकी वायुको बाहर निकालता हैं। इससे ही वायुमें कुछ तीव्र गति उत्पन्न होती है। आकाशके आधार पर ही वायुकी गतिका वेग, तथा जलका बोझ पड़नेसे आपसकी रगड़से ही शब्द भी आकाशमें होने लगता है। ठीक ऐसी ही क्रिया, अपेक्षा-कृत स्थूल सृष्टिके आरंभ-समयमें, आकाशमें, वायु-मंडल पर जलीय मिले हुए स्थूल अणुओंके भार और दबावके कारण, जिस समय होती है, उस समय गति-शील वायु अनंत आकाशमें शब्द उत्पन्न करती हुई वेगसे दौड़ती फिरती है। जलका बोझ पड़नेसे चलायमान जल और वायुके स्थूल मिलित अणुओंके परस्पर रगड़ खाते रहनेसे तेज अर्थात् बिजली या अनल (अग्नि) जलके ही आधार पर प्रकाशित हो इधर-उधर दौड़ती दिखाई देती है। उस समय आकाश-मंडलका घना अंधकार तेजके प्रकाशसे दूर हो जाता है। अनंतर तेज और वायुके मिलित-प्रभावसे जलके स्थूल अणु-पुंज वाष्प-रूपमें इकट्ठे हो मेघ बनकर जल बरसाने लगते हैं। मेघकी उन बूँदोंमें स्नेहांश तैल या चिकनापन जो रहता है, वही कालांतरमें घनीभूत होता हुआ एकार्णव-समुद्रके गर्भसे भूमिको उत्पन्न करता है। गध-मात्र, सब रस, स्नेह (चिकनापन) और प्राणि-मात्रकी जननी भूमि ही है। वर्णन-शैलीके अंतरका मूल-कारण जान लेने पर महर्षि कणादके मतसे महर्षि व्यासका विरोधाभास आप ही दूर हो जाता है। महाभारतके उद्धृत वचनोंकी भाषा सरल है, इसलिये उनके अनुवादकी आवश्यकता नहीं। इसमें तो संदेह नहीं कि वेदव्यासजीने भी जलसे ही दृश्य तेज-तत्त्व, प्रकाश, बिजली अथवा अग्निकी उत्पत्ति मानकर तदनंतर उस एकार्णव-जल-राशिसे ही पृथ्वीकी उत्पत्ति मानी है।

मूल-श्रुति-प्रमाणोंमें भी "तम एवेदमग्र आसीत्।" "आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।" आदिसे प्रलयावस्थाका वर्णन कर तदनंतर सृष्टि-क्रममें "ततो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः'' इत्यादिसे जल-की सृष्टिके बाद ही दृश्य तेज आदिकी और जलसे ही इस भूगोलकी उत्पत्ति भी सर्वत्र प्रमाणित की है। जल-राशिसे ही पृथ्वी की उत्पत्ति सर्व-वादि-सम्मत है। इस अकाट्य, अखंडनीय सिद्धांतका कहीं विरोध ही नहीं देखनेमें आता। वेदके "अद्भ्यः पृथिवी।" और "तद्यदपां शर आसीत् तत्समहन्यत सा पृथिव्य-भूत्।" इस अपौरुषेय सुदृढ़ सिद्धांतकी प्रतिध्वनि ही सर्वत्र गूँज रही है! दर्शन, पुराण आदि शास्त्रों-ने तर्क, युक्ति और परीक्षाओंसे उसकी सत्यताको ही प्रमाणित किया है। "अपां शर" इस वैदिक शब्द-प्रयोगमें 'शर'-शब्द जिस अर्थमें प्रयुक्त है, महा-मति वेदव्यासजीने भी महाभारत-महापुराण-रूप पंचम वेदमें "तस्याकाशान्निपततः स्नेहस्तिष्ठति यो-ऽपरः। स संघातत्वमापन्नो भूमित्वमनुगच्छति॥" लिखकर उसका ही विशद अनुवाद अपनी संस्कृत-भाषामें किया है। जलमें जो स्नेहांश है, वह इकट्ठा होकर जलके ऊपर दूधकी मलाई-सा जम जाता है। उसे ही वैदिक-भाषामें 'शर'-शब्दसे व्यक्त किया है। अतिप्राचीन वैदिक 'शर'-शब्दका प्रयोग बँगला-भाषामें आज भी वंग-देशमें सर्वत्र दूधकी मलाई-के अर्थमें ही प्रयुक्त होता है। प्रकृति-देवीके सृष्टि-रचना-चातुर्यसे बहुत दिनों बाद घनीभूत और दृढ़ होता-होता अंतको वह 'शर' भू-गोलकका रूप धारण कर लेता है।

वेदोंमें 'अर्णव' और 'समुद्र'-शब्दोंके प्रयोग-से प्रथम तो उस वायु-महामंडलका ज्ञान होता है, जब वायु-मंडलके गर्भमें जलके अणु सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं। दूसरा अर्थ इन शब्दोंका हमारे इस भू-गोलककी उस आदिम अवस्थाको सूचित करता है, जिस समय दृश्य भू-खंडकी उसके किसी अंशमें भी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, केवल जल-मय गोलक ही था। परंतु इसमें तो संदेह ही नहीं कि वायु-महा-मंडलमें जब तक पार्थिव अंश सहयोगी जलकी उत्पत्ति नहीं हो लेती, तब तक तेज अथवा विद्युत्के प्रकाश-का, आधारके अभावसे, अदर्शन ही रहता है। हमारे आधार-सर्वस्व इस भू-गोलक पर भी सबसे पहले एकार्णवके उस जल-मय अपार उदधिके ऊपर बड़वानलका प्रकाश ही होता है।

निस्संदेह पृथिवीकी उत्पत्ति जलसे ही हुई है। आकाश आदि पाँचों महाभूतोंके पसारेमें सूक्ष्म विचार-दृष्टिसे कार्य-कारण-शृंखलाका अनुसंधान, पूरी जाँच और खोज करनेसे वातज अतींद्रिय तेज-तत्त्वको जल-तत्त्वका और जल-तत्त्वको ही क्षिति-तत्त्वका मूल-कारण मानना पड़ता है। सृष्टिकी आद्यावस्थामें वायुके अणुओं-के संयोगसे ही क्रिया-शक्ति स्पंदन, फड़कन और अणुओंकी आपसकी रगड़से ही, तेज-तत्त्व या बिजली-के प्रभावसे ही, पहले जल-तत्त्वको अतिसूक्ष्म अतींद्रिय, फिर आस, तदनंतर कोहरेके रूपमें आना पड़ता है। क्रमसे स्थूल रूपमें बदलते हुए वे ही अतींद्रिय जलके परमाणु जल-बिंदु-रूपमें आ जाते हैं। हमारा यह भू-गोलक भी सृष्टिकी प्रथमावस्थामें केवल अतींद्रिय जलके परमाणु-पुंजका एक पोला गोला ही था। अनेकों शताब्दियोंके बाद उस सूक्ष्म जल-कण-पुंजकी परिणति ही एकार्णव महासमुद्रके पारावार-रहित अगाध जल-राशिकी यह समष्टि प्रत्यक्ष है। उस महासमुद्रके प्रबल प्रवाह-वेग, तरंग-मालाके आपसके संघर्ष और प्रतिकूल गतिके कारण बड़वा-नल-नामक दृश्य तेज-तत्त्वके साथ ही विद्युत्-शक्ति-का भी अपने-अपने समय पर आविर्भाव हुआ। अपने-अपने कारणोंसे ही कार्योंकी उत्पत्तिके क्रम-प्रवाहमें सहस्रों बरस बीत जानेके बाद उस अपार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महासमुद्रके जलके मल अथवा 'शर'-भाग और अतिकाय बहुत ही बड़े-बड़े कोसों तक लंबे-चौड़े समुद्रके मच्छ, तिमि, तिमिंगिल, मगर, घड़ियाल, सूँस, सर्प, शंखासुर, कछुए आदि दीर्घ-काय भयावने अनेकों प्रकारके जलचर जंतुओंकी मज्जा, मेद, त्वचा, हड्डी, रुधिर आदिके क्रमशः संचित होने पर महासमुद्रके जल-मय गोलकके गर्भमें ही इस विशाल अनंत-भूमिका स्थूल पार्थिव पिंड भी अपने क्रमानुसार बढ़ता हुआ सुदृढ़ और सुसंगठित होने लगा। वेदकी देव-वाणी और संस्कृत-भाषामें भी हमारी इस धरतीको 'रसा' और 'मेदिनी' भी इसीलिये कहा है कि 'रस' अर्थात् जल, तथा जल-जीवोंके मेदसे ही इस भू-पिंडकी उत्पत्ति हुई है। *

(असमाप्त)

गोविंदनारायण मिश्र

कविता पर परिस्थिति का प्रभाव

(२)



काल के अंतर्गत समय के ऐतिहासिक विभाग, अपूर्व घटनाएँ, सुराज्य तथा धार्मिक संप्रदाय इत्यादि का उद्भव और प्रभाव आदि बहुत-सी बातें आ सकती हैं; किंतु अपने प्रयोजन के अनुसार केवल थोड़े-से ही विषयों का उल्लेख करना यहाँ पर उचित है। इनका स्पष्टीकरण चाहे तो कोई एक ही साहित्य के संबंध में कर सकता है। किसी भी साहित्य का इतिहास उठाइए, उसमें कविता की स्थिति सर्वदा एक ही प्रकार की नहीं देख पड़ेगी। अँगरेज़ी-साहित्य में Renaissance के प्रथम की कविता अथवा हिंदी-साहित्य में रामानंद स्वामी इत्यादि बड़े-बड़े वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रचारित धार्मिक पुनरुत्थान के प्रभाव के पहले की कविता अपने आगे होनेवाली कविताओं से कई बातों में बिलकुल भिन्न है। नए-नए विचारों की लहरों ने साहित्यिक-संसार में एक बहुत बड़ी हलचल उत्पन्न कर दी, और दोनों दशाओं में इतना परिवर्तन हो गया, जितना कि साधारण समय में कई वर्षों के परिश्रम के उपरांत भी नहीं हो सकता था। उनके उपरांत जो समय आया, उसमें सर्वदा परिस्थिति के अनुसार ही उन्नति या अवनति होती गई। कई बातों में उस समय से अब तक भी उन्नति नहीं हो पाई है; किंतु, तो भी, भाषा अथवा बहुत-से विचारों के संबंध में परिवर्तन उन्नति की ओर ही रहा है। दोनों साहित्यों की बीच की स्थिति लगभग एक-सी ही रही है, यद्यपि हिंदी में अँगरेज़ी की अपेक्षा, अपने क्षेत्र में, कुछ अधिक अच्छे कवि उत्पन्न हुए। तीसरा समय अँगरेज़ी-साहित्य में Romantic Revival से और हिंदी-साहित्य में अँगरेज़ी-साहित्य इत्यादि कई एक कारणों से उत्पन्न हुई भाषा की नई प्रणाली से आरंभ होता है। इनमें से दोनों परिवर्तनों के नायक हिंदी के लिये हरिश्चंद्र और अँगरेज़ी के लिये वर्ड्सवर्थ कहे जाते हैं। इन उपर्युक्त तीनों विभागों में किस-किस प्रकार के परिवर्तन होते आए हैं, इस प्रश्न का सविवरण उत्तर देने के लिये यह स्थान नहीं। उन साहित्यों के इतिहास इस विषय में देखे जा सकते हैं। हिंदी-कविता अथवा अँगरेज़ी-कविता पर सुराज्य या अच्छी शासन-प्रणाली से उत्पन्न शांति का कितना प्रभाव पड़ा है, इसका प्रमाण अकबर तथा एलिज़बेथ के समय में होनेवाले महाकवि तुलसीदास तथा शेक्सपियर के ही नाम ले लेना पर्याप्त

---

* बड़े ही खेद की बात है कि माननीय मिश्रजी का स्वर्गवास हो जाने से यह लेख अधूरा ही रह गया। गत हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर मिश्रजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त होने पर हमने यह लेख पूर्ण कर देने का अनुरोध किया था। मिश्रजी ने कहा—लेख बहुत बड़ा होगा। यह तो भूमिका-मात्र है। स्वास्थ्य ठीक होते ही हम पूर्ण लिख डालेंगे। परंतु हमारे और हिंदी के दुर्भाग्य से मिश्रजी का स्वर्गवास ही हो गया। यह अपूर्ण लेख ही मिश्रजी की अंतिम रचना है।

—संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यही बात १४वें लुई के समय में फ्रेंच-साहित्य के, विक्रमादित्य के समय में संस्कृत-साहित्य के, तथा ऑगस्टस के समय में लैटिन-साहित्य के विषय में भी कही जा सकती है। अपूर्व घटनाओं के उल्लेख-संबंधी उदाहरण भी उपर्युक्त तीनों विभागों के काव्यों में यथेष्ट मिल सकते हैं। सोलहवीं शताब्दी के रचे हुए उसमान कवि-कृत चित्रावली-नामक ग्रंथ में कुछ ही दिनों के आए हुए अँगरेज़ों के विषय में इस प्रकार लिखा है—

वलंदीप देखा अँगरेजा ; जहाँ जाइ नहिं कठिन करेजा।
ऊँच नीच धन संपति हेरा ; मद, बराह भोजन जिन केरा।
जहाँ जाइ, उँह बंदर साजा ; लगा संग चढ़ि गयउ जहाजा।
(उसमान)

यही नहीं, कविताओं के कलेवर में भी साहित्यों के आदि काल से अब तक बहुत परिवर्तन होते आए हैं। दिन-दिन कवियों की रुचि छोटी-छोटी कविताएँ करने की ओर ही जाती जान पड़ती है।

समाज के अंतर्गत इतनी बातें आ जाती हैं, जिनके विषय में थोड़ा-थोड़ा लिखने पर भी बहुत स्थान की आवश्यकता होगी ; किंतु प्राकृतिक दृश्य के संबंध में ही पाले गए नियम के अनुसार यहाँ भी केवल मुख्य-मुख्य बातों का ही उल्लेख किया जायगा। कविता सौंदर्य की खान होती है, इसलिये सबसे प्रथम यहाँ अँगरेज़ी तथा हिंदी-कवियों के समाजों में निश्चित किए गए सौंदर्य के 'मान' अथवा Standard पर ही विचार किया जाता है। अँगरेज़ी-कवि की नायिका का सबसे उत्तम रंग श्वेत हुआ करता है ; किंतु हिंदी-कवियों ने सोने अथवा चंपे की ही आभा को अधिक पसंद किया है। गेहूँ का रंग हो, तो भी अच्छा ; किंतु सफ़ेदी में वह सौंदर्य नहीं। भारतीय कवि बहुत दिनों से केशों की कृष्णता को ही अच्छा समझते आए हैं, बल्कि वे जितने ही काले हों, उतना ही उत्तम है। उदाहरण के लिये—

चिक्कन, कुटिल अलक-अवली छबि, कहि न जाय शोभा अनूप बर ;
बालभुअंगिनि निकरि मनहुँ मिलि, रही घेरि रस जानि सुधाकर।
(तुलसीदास)

अथवा—

भाल बिशाल तिलक झलकाहीं,
कच बिलोकि अलि-अवलि लजाहीं।
(तुलसीदास)

—इत्यादि सैकड़ों पद्य दिए जा सकते हैं। यदि उपर्युक्त दोनों गुणों को एकसाथ देखना हो, तो गंग कवि की—

मनो कंचन के कदली दल पै, अति साँवरि साँपिनि सोइ रही।

इस पंक्ति में किसी नायिका की पीठ पर लटकी हुई वेणी के वर्णन में देख लीजिए। परंतु अँगरेज़ी-कवि इसे बहुत पसंद न कर केशों की प्रतिष्ठा उनके सुनहलेपन अथवा धुँधलेपन के ही कारण अधिक करेगा। देखिए—

Thy silver locks, once auburn bright,
Are still more lovely in my sight.
Than golden beams of orient light
My Mary ! (W. Cowper.)

(ऐ मेरी मेरी ! तेरे पांडु-वर्ण के चमकीले केश, आज चाँदी की भाँति श्वेत हो जाने पर भी, मेरी दृष्टि में पूर्व-दिशा से निकलनेवाली सुनहली किरणों के समान ही सुहावने जान पड़ते हैं।)

अथवा—

Her eyes as stars of twilight fair ;
Like twilight's, too, her dusky hair : etc.
(Wordsworth.)

(उसकी आँखें संध्या के तारों की भाँति सुंदर थीं, और उसके बाल भी संध्या के ही समान धुँधले रंग के थे।) —में कवि किस प्रकार इन रंगों पर मुग्ध हैं। इसी प्रकार आँखों को हिंदी-कवि मृग के नेत्रों के समान बड़ी-बड़ी और काली-काली होने पर ही अधिक पसंद करेगा। उनकी ललाई तथा चपलता भी उसे अच्छी लगती है। जैसे—

कारे, कजरारे, अमल, पानिप-ढारे पैन ;
मतवारे, प्यारे, चपल, तुअ ढुरवारे नैन।
(अज्ञात)

अथवा—

रतनारी थारी आँखड़ियाँ।
प्रेम-छकी, रस-बस अलसानी, जाणि कमल की पाँखड़ियाँ ;
सुंदर रूप लुभाई गति मति, हौं भइ ज्यूँ मधुमाँखड़ियाँ।
(मीरा बाई)

—इत्यादि। परंतु अँगरेज़ी-कवि को नीली आँखें पसंद हैं। इसका उदाहरण—

'T was not her golden ringlets bright ;
Her lips, like roses, wet with dew ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Her heavy bosom lily-white—
It was her eyes so bonnie blue.

(उतना उसके सुनहले, चमकीले तथा घुँघराले बाल अथवा ओस के जल से भीगे हुए गुलाब के फूलों के समान उसके होंठ या नलिनी के समान उसके श्वेत तथा गंभीर स्तन-देश उसका स्मरण नहीं दिलाते, जितना उसकी सुंदर नीली आँखें ।)

—में देख लीजिए । इसी प्रकार गर्दन की बनावट के विषय में हिंदी-कवियों का आदर्श कपोत की ग्रीवा रही है । जैसे—

जब धरनीन कपोत सब, जरे देखि ग्रिव-भेख ;
तब उन पापिनि कंठ विधि, दियो पाप की रेख ।
(श्रीधर पाठक)

किंतु अँगरेज़ी-कवि इससे संतुष्ट नहीं । अपनी नायिका की ग्रीवा को वह किसी ऊँचे कँगूरे के समान बनाना चाहता है । जैसे—

Her neck is like a stately tower,
Where love himself imprisoned lies, etc.
(T. Lodge.)

(उसकी गर्दन एक ऊँची मीनार के समान है, जिसमें स्वयं प्रेम बँधा हुआ पड़ा है ।)

—में दिखलाया गया है । और अंगों के वर्णन के विषय में पाठक स्वयं ढूँढ़कर देख लें । अपने प्रयोजन के लिये यहाँ यही यथेष्ट है । इँगलैंड और भारतवर्ष के स्त्री-पुरुष-संबंध के विषय की तुलना कई बार की जा चुकी है । यह कोई नई बात नहीं । किंतु उपर्युक्त नियमों को स्पष्ट करने के लिये यहाँ भी कुछ कह देना अनुचित न होगा । भारत में स्त्रियाँ बहुत दिनों से सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी इत्यादि विशेषणों से भूषित होती आई हैं । इनके विषय में "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवताः" तक कहा गया है । किंतु यह सब कुछ होते हुए भी, कई कारणों से प्रेरित होकर, बहुत दिनों से हिंदू-समाज इनका निरादर भी करता आया है । हिंदी-कवियों में इस दूसरी दशा का ही विवरण अधिक मिलता है । वैराग्य की दशा वर्णन करते समय जो कहा गया है, वह तो है ही, साधारण रूप से भी महाकवि तुलसीदास तक ने कहा है—"औगुन आठ सदा उर रहहीं ।" स्त्रियों के इन अवगुणों को उन्होंने गिना तक दिया है, और एक स्थान पर उन्हें "ताड़न के अधिकारी" लोगों में स्थान दिया है । पाश्चात्य-समाज में भी उनका इतना आदर सदा नहीं रहता आया है; किंतु तो भी—

Woman is the lesser man, and all thy
passions matched with mine,
Are as moonlight unto sunlight, and as
water unto wine, etc. (Tennyson.)

(स्त्री तो पुरुषप्राय ही है ; तेरे और मेरे मनोविकारों में वही अंतर है, जो चाँदनी और सूर्य की प्रभा में तथा जल और मदिरा में दिखलाई पड़ता है ।)

—ही अधिक देखने को मिलेंगे । स्त्रियों की दुर्दशा पर प्रसिद्ध लेखक मिल की "Subjection of Women"-नामक पुस्तक पढ़ने योग्य है । परंतु ये सब विषय समाज-शास्त्र-संबंधी हैं । इस लेख से इनका संबंध नहीं । दोनों भाषाओं के कई कवियों ने आदर्श स्त्रियों के चरित्र-चित्रण का प्रयत्न किया है । उत्तम स्त्रियों के कर्तव्य-संबंधी विषयों पर हिंदी-कवियों के ऊँचे आदर्श का पता नीचे लिखी कुछ पंक्तियों से चल सकता है—

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते,
पिय बिन तियहिं तरनि ते ताते ।
तन, धन, धाम, धरनि, पुर, राजू,
पिय-विहीन सब सोक-समाजू ।

* * *

जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी,
तैसहिं नाथ पुरुष बिनु नारी ।
मैं सुकुमारि, नाथ बन-जोगू,
तुमहिं उचित तप, मो कहँ भोगू ।

अथवा—

हम नारियों की पति बिना गति दूसरी होती नहीं ।
(मैथिलीशरण गुप्त)

इत्यादि । पति-भक्ति अथवा पति-परायणता के ऐसे उज्ज्वल दृष्टांत कम देखने को मिलते हैं । परंतु अँगरेज़ी-कवि भी बहुत ऊँचे आदर्श रख सकता है । 'रामचरित-मानस' की ऊपरवाली चार पंक्तियों के कहे जाने का जो समय था, लगभग ठीक वैसे ही समय में महाकवि-शेक्सपियर के "Othello"-नामक नाटक की, उसकी नायिका डेस्डिमोना द्वारा कही गई, कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

That I did love the Moor to live with him,
My downright violence and storm of fortunes
May trumpet to the world my heart's subdued
Even to the very quality of my lord ;

* * *

So that, dear lords, if I be left behind
A moth of peace, and he go to the war,
The rites for which I love him are bereft me,
And I a heavy interim shall support
By his dear absence. Let me go with him.

(Shakespeare)

(मैं मूर के साथ रहने के लिये ही उसे प्यार करती। यह मेरे प्रत्यक्ष दुःसाहस तथा मेरे उपहास इत्यादि से ही स्पष्ट है। मेरा हृदय अपने स्वामी की अंतरात्मा के हाथ बिक चुका है। × × × अतएव, हे विचारपति महाशयो, यदि मैं यहाँ शांति का उपभोग करने के लिये घर पर रह जाऊँगी, और वह समर-भूमि में चले जायँगे, तो उनकी अनुपस्थिति के कारण मेरा समय काटना कठिन हो जायगा, और मेरे प्रेम का सारा उद्देश्य भी मिट्टी में मिल जायगा। कृपया मुझे भी जाने के लिये आज्ञा दीजिए।)

इन दोनों कविताओं को पढ़कर पाठक स्वयं दोनों आदर्शों की समता पर विचार कर सकते हैं। एक-आध स्थान पर तो एकदम एक दूसरे की नक़ल-सी जान पड़ती है। किंतु यह आदर्श देर तक उसकी समता करने वाला नहीं। ओथेलो के क्रुद्ध हो जाने पर वही डेस्डिमोना हिंदू-महिलाओं के समान अपने ही जन्मांतर के, पापों के परिणाम को कोसने का काम भूल जाती है, और मर्दों पर ही उल्टा संदेह करने लगती है। वह अपनी दासी से एक स्थान पर कहती है—

O, these men, these men !
Dost thou in conscience think,—tell me Emilia !
That there be women do abuse their husbands
In such gross kind.

(Shakespeare)

(हाय पुरुष-जाति ! [नृशंस] पुरुष-जाति ! क्यों एमीलिया, कह तो सही, क्या तेरे अंतःकरण में यह बात कभी आ सकती है कि कोई स्त्री भी अपने पति के साथ ऐसा बर्ताव करती होगी !)

कई स्थानों पर अपनी निर्दोषिता सिद्ध करती हुई भी डेस्डिमोना केवल इतना ही कहने के कारण कुछ नीचे गिर जाती है। यही नहीं, उसी महाकवि की एक दूसरी सीधी-सादी नवयौवना नायिका मिरांडा उसके टेंपेस्ट-नामक नाटक में इस प्रकार अपने प्रेमी फ़र्डिनंड से कहती है—

Mir—Sweet lord you play me false.
Fer— No my dearest love,
I would not for the world.
Mir— Yes, for a score of kingdoms you should wrangle.
And I would call it fair play.

(Shakespeare.)

(मिरांडा—प्यारे तुम मेरे साथ अनुचित बर्ताव कर रहे हो।

फ़र्डिनंड – नहीं प्रिये, मैं संसार को पाकर भी ऐसा नहीं कर सकता।

मिरांडा – हाँ, हाँ, तुम तो ऐसा सैकड़ों राज्यों के लिये भी कर दोगे, और मुझे [तुम्हारे संबंध में] उचित ही दीखेगा।)

अस्तु। थोड़ा-थोड़ा लिखने पर भी इसी भाँति बहुत बढ़ जायगा। नैतिक आचरण इत्यादि के विषय में यहाँ कहने को स्थान नहीं। केवल मातृभूमि की वंदना तथा मृत्यु-संबंधी विचारों का दिग्दर्शन-मात्र कराकर इस विभाग को हम अब समाप्त करते हैं। जन्म-भूमि के विषय में हिंदी-कवियों ने कुछ कम लिखा है; किंतु जो कुछ लिखा है, उसमें उसे, बहुधा, धर्मप्राण होने के कारण, स्वर्ग के समान ही जाना है। रामचरित-मानस में रामचंद्र ने अपनी मातृ-भूमि को स्वर्ग से भी बढ़ा दिया है—

यद्यपि सब बैकुंठ बखाना ; बेद-पुरान-विदित जग जाना।
अवध-सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ ; यह प्रसंग जानै कोउ-कोऊ।

(तुलसीदास)

परंतु संसारी अँगरेज़ी-कवियों के लिये जन्म-भूमि की प्रशंसा उसके बल और प्रभुत्व के कारण ही अधिक है। ऐसे विचार हिंदी में अब अधिक आ रहे हैं। एक अँगरेज़-कवि कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

To thee belongs the rural reign ;
Thy cities shall with commerce shine ;
All thine shall be the subject main,
And every shore it circles thine !

* * *

Rule Britannia ! Britannia rules the waves,
Britons never shall be slaves !

(J. Thomson)

(दिहात का शासन तेरे हाथ में रहेगा; तेरे नगर वाणिज्य के कारण उज्ज्वल बने रहेंगे; सारा समुद्र तेरा आधिपत्य स्वीकार करके तेरी सीमा को घेरे रहेगा। × × ब्रिटेन की जय हो, ब्रिटेन का समुद्र पर शासन है, ब्रिटेन कभी दास नहीं हो सकता।)

मृत्यु होने पर दोनों कवि—

इंद्र भए, धनपति भए, भए शत्रु के साल ;
कलप जिए, तौऊ गए अंत काल के गाल।

अथवा—

Death lays his icy hands on kings. etc.

(J. Shirly)

(मृत्यु अपने ठंडे हाथ राजों तक पर विना फेरे नहीं रहती।)

—इत्यादि कहते हैं ; किंतु अंतिम शव-क्रिया के संबंध में, सामाजिक विचारों के भिन्न होने के कारण, दोनों के वर्णन में कभी-कभी भिन्नता भी आ जाती है। जैसे—

काया पाय बहुत सुख कीन्हों, नित उठि मलि-मलि धोई ;
सो तन छिया छार है जैहै, नाम न लेहै कोई।

(कबीर साहब)

और—

The paths of glory lead but to the grave.

(T. Gray)

(कितनी भी कीर्ति प्राप्त कीजिए, समाधि [क़ब्र] की ओर जाना हीं पड़ेगा।)

—में शव के जलाने तथा उसको पृथ्वी में गाड़ देने की रीतियों की ओर संकेत किया गया है।

व्यक्तित्व क्या है, समाज क्या है, तथा इन दोनों का पारस्परिक संबंध क्या है ? व्यक्तित्व परिस्थिति का परिणाम है, अथवा सारा इतिहास ही कुछ महान् व्यक्तियों का जीवनचरित-मात्र है ? ऐसे समाज-शास्त्र के महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों का उत्तर देने के लिये यह स्थान नहीं है। यहाँ पर प्रश्न यह है कि यदि उपर्युक्त बातें प्रभाव डालती हैं, तो किस पर ? कविता तो एक व्यक्ति-विशेष की रचना-मात्र है ; तब फिर अपनी परिस्थिति किसी व्यक्ति पर किस मात्रा तक मोहर लगा सकती है ? व्यक्तित्व और परिस्थिति के प्रभावों का आपस में क्या संबंध है ? और, हिंदी तथा अँगरेज़ी-भाषा के कवियों में अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डालनेवालों का कहाँ तक समावेश है ? इनमें से पहले तीन प्रश्नों का एकसाथ ही उत्तर यों दिया जा सकता है—

परिस्थिति अपना प्रभाव कवि अथवा कविताकार पर ही डालती है। किंतु कवि का व्यक्तित्व उत्पन्न कैसे हुआ, और उसकी वर्तमान दशा किस नियम का परिणाम है ? कोई मनुष्य यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि मुझ पर अपने कुटुंब, अपनी शिक्षा, अपने अध्ययन, अपने मित्र तथा अपने प्राकृतिक परिवेष्टन का प्रभाव नहीं पड़ा। वास्तव में व्यक्तित्व सिवा इसी प्रकार के प्रभावों द्वारा रची गई एक मानसिक आकृति-विशेष के और कुछ भी नहीं है। वंश-परंपरा अथवा Heredity एक सूत्र-मात्र है ; जिसके उद्देश्य अथवा Direction को एक विशेष कोण में करने तथा जिस पर एक अनोखा रंग चढ़ाने के लिये परिस्थिति का प्रत्येक प्रभाव दिन-रात प्रयत्न करता रहता है। एक क्षुद्र-से-क्षुद्र घटना भी विना कुछ कार्य किए नहीं रह सकती। परंतु वह सूत्र सभी दशाओं में इसी प्रकार नहीं बनता-बिगड़ता रहता। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि उसकी गढ़न एक विशेष stage अर्थात् श्रेणी तक आकर एक बार रुक-सी जाती है, और वहाँ तक की बनी हुई उपर्युक्त आकृति कुछ प्रौढ़ हो जाती है। अब यदि आगे इसी को सहायता मिलती गई, तो इसका रूप ऐसा कठिन हो जाता है कि आगे आनेवाली परिस्थिति के कोई अंग इस पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ हो जाते हैं। केवल इसी दशा में व्यक्तित्व की रचना हो सकती है, और यही व्यक्तित्व परिस्थिति तक पर अपना प्रभाव डाल सकता है। यही परिस्थिति और व्यक्तित्व के पारस्परिक संबंध के विषय में कहा जा सकता है कि परिस्थिति बहुत अंशों तक और व्यक्तित्व कुछ कम अंशों तक, विशेष-विशेष अवस्थाओं में, परस्पर एक दूसरे पर प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालते रहते हैं। चौथे प्रश्न का उत्तर यह है कि यद्यपि हिंदी-कवियों के व्यक्तित्व के विषय में अभी तक बहुत कम ज्ञान है, तथापि जहाँ तक सामग्री सहायता कर सकती है, यही कहा जा सकता है कि अँगरेज़ी-कवियों की अपेक्षा हिंदी-कवि अपनी रचनाओं पर व्यक्तित्व का प्रभाव कम डालते आए हैं। इसका कारण, कुछ अंशों में, हिंदू-समाज की विशेषता भी हो सकती है; क्योंकि हिंदी के मुसलमान-कवियों का व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। यदि नाम रखने की आवश्यकता हो, तो स्थूल रूप से अँगरेज़ी-कवियों में प्रौढ़ व्यक्तित्व के उदाहरण-स्वरूप मिल्टन और शेली को तथा हिंदी-कवियों में कबीर और मीरा बाई को ले लीजिए। और, सामाजिक व्यक्तित्व के उदाहरण के लिये अँगरेज़ी-कवियों में वर्ड्सवर्थ और टेनिसन के तथा हिंदी-कवियों में सूरदास और हरिश्चंद्र के नाम को रख लीजिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये विभाग केवल काल्पनिक हैं। सामाजिक व्यक्तित्व का अर्थ यहाँ बहुत विस्तृत है।

उपर्युक्त सब बातों के सारांश-स्वरूप पहले ही लिखा जा चुका है कि कविता पर परिस्थिति का प्रभाव वैसा ही पड़ता है, जैसा वस्त्र इत्यादि बाहरी आडंबरों का प्रभाव मनुष्य के शरीर पर। वास्तविक वस्तु अर्थात् कविता की आत्मा अथवा रसोत्पादक-शक्ति पर इसका प्रभाव पड़ना उतना ही संभव कहा जा सकता है, जितना कि उपर्युक्त बाहरी बातों का मनुष्य की आत्मा पर। परंतु यह कहने की रीति भी आलंकारिक ही है। अतएव इसके असली अर्थ का स्वयं अनुमान कर लेना चाहिए। कविता का सच्चा मर्म समझ लेना आसान नहीं। इसलिये समालोचक को किसी कवि के विषय में राय देने की शीघ्रता करना शोभा नहीं देता। हिंदी-साहित्य के समालोचक अच्छा करते, यदि कुछ प्रांतिक भाषाओं के साहित्यों का भी तुलनात्मक रीति से पहले अध्ययन कर लेते, और अपने कवियों को साहित्यिक दृष्टि के साथ ही ऐतिहासिक दृष्टि से भी देखने का प्रयत्न करते चलते।

परशुराम चतुर्वेदी

अनंत तृप्ति

मेरे नाथ, करूँ अंतर्जीवन में अनुभव तेरा;
अंतस्तल तव मधुर प्रीति का हो नंदन-वन मेरा।
जब विक्षिप्त शोक-सागर के तट पर देखूँ लहरें,
'मूक सृष्टि' के 'करुण तपोवन' में नीरव घन छहरें।

(२)

निपट शून्य की सहज शांति में मचे खलबली ऐसी;
तब निकलें उद्गार हृदय से "नाथ विषमता कैसी?"
रोम-रोम से, हृदय-रुधिर से, जब तज जगती-सुख को,
प्रेमी कहे, चाहता तुमको, निरखूँ उसके सुख को।

(३)

स्वप्न-राज्य की अमर सृष्टि के नीरव नवल गगन में,
अमर, किशोर, सरल, सुंदर स्वर निरख पड़ें जब मन में,
उज्ज्वल पंख समेट, मनोमय, मनहर, मंथर गति से
नक्षत्रों में मिल जाएँ, तब चाहूँ अविरत मति से,

(४)

विचलित हो मन तनिक जहाँ मम मानव-करुणा मग से,
ऊपर से आकाश अलग हो, निकले वसुधा पग से।
मानस-वृत्ति-निचय निर्मम मन से जब निकलें गाने,
हों बहिरंग-प्रकृति में बिखरी अंतर्जग की तानें।

लक्ष्मीनारायण मिश्र

शरत्सौंदर्य



घन-घनांधकारकारिणी, ... योगिजन-मनोहारिणी, हरित-शस्य-संपत्ति-भूमंडल-शोभा-विस्तारिणी, नदी-नद-तड़ाग-परिखा-गर्तादि-मध्य-जल-संचारिणी, वियोगिजन-हृदय-विदारिणी, धूलि-संहारिणी, ग्रीष्म-भीष्म-संताप-मारिणी, मंडूक-मंडल-संवादिनी, मयूर-समूह-नादिनी, कृषक-जन-शुभ-भविष्यद्विधायिनी वर्षा बीत गई। मानो प्रकृति के मस्तक से बहुत बड़ा बोझ उतर गया। प्रेम-रहित पक्षियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के व्यंग्य वचन के समान मयूरों के शब्द अब नीरस जान पड़ने लगे। बिजली की चमक नहीं भाती। मेघ का गर्जन भी नीरस जान पड़ता है।

शरद् क्या आ गई, मानो प्रकृति के शुभ सौभाग्योदय के दिन आ गए। पृथ्वी पर धूल और कीचड़ का नाम नहीं है। मानो प्रकृति ने अपनी स्वामिनी शरद् का शुभागमन जान समस्त भू-मंडल को सम्मार्जित कर दिया है। नव-संगम-लज्जिता बाला के समान नदियाँ धीरे-धीरे अपने जघन-रूपी तुंग तीर से वस्त्र-रूपी जल को हटा रही हैं। नदियों के निर्मल जल 'कलकल'-ध्वनि करके मंद गमन से प्रवाहित हो रहे हैं। मानो धीर पुरुष अपने प्रिय से मिलने के लिये धैर्य-पूर्वक धीरे-धीरे जा रहे हैं। सज्जनों के पाप-रहित शुद्ध हृदय के समान जलाशयों के जल निर्मल हो रहे हैं। जलाशयों में अगणित कमल-कैरव की कोमल कलियाँ क्रमशः विकसित हो रही हैं। मानो यह शरद् ही प्रकृति की अनुपम शोभा देखने की उत्कट उत्कंठा से इंद्र के समान सहस्राक्ष बन रही है।

जिस प्रकार न्यायी राजा के शांति-पूर्ण राज्य में प्रजा आनंद-पूर्वक क्रीड़ा-कौतुक और आमोद-प्रमोद के साथ मनोविनोद किया करती है, उसी प्रकार जलाशयों के दर्पण-समान निर्मल जल में मछलियाँ आनंद-पूर्वक अठखेलियाँ कर रही हैं। नदियों के तीरों पर कुश, काश आदि के शारदीय पुष्प चारों ओर देख पड़ते हैं। मानो वर्षा-वृद्धा के सकल केश श्वेत हो रहे हैं। खेतों की क्यारियों में स्वल्प निर्मल जल दर्पण के समान स्वच्छ हो रहा है। उसमें पके और झुके हुए धानों की पीली परछाहीं पड़ रही है। मानो वे धान अपनी शोभा देखने के लिये सिर झुकाए खड़े हैं।

इस ऋतु में कहीं ऐसा जल नहीं है, जिसमें कमल न खिल हों; कोई ऐसा कमल नहीं है, जिस पर भौंरा न बैठा हो; कोई ऐसा भौंरा नहीं है, जो मधुर गुंजार न करता हो; और कोई ऐसा मधुर गुंजार भी नहीं है, जो श्रोताओं के मन को न हरता हो। शरद् के आगमन से सभी नदियाँ विरहिणी कामिनी के समान प्रतिदिन क्षीण होती चली जा रही हैं। उनमें शारदीय वायु के कोमल संचार से तरल तरंगें उठतीं और क्रमशः नष्ट होती जा रही हैं; जैसे दरिद्रों के हृदय में अनेक मनोरथ उत्पन्न होते और अपूर्ण ही नष्ट हो जाते हैं।

आकाश वैसे ही निर्मल हो गया है, जैसे वासना-रहित ज्ञानियों का निर्विकार चित्त। दिन में सूर्य की किरणें तीखी होने लगी हैं। उनके उष्ण स्पर्श से वृक्षों और लताओं के नवीन सुकुमार पल्लव वैसे ही मुरझा जाते हैं, जैसे व्यर्थ क्रोध करने-वाले अहंकारियों के कटु वचन सुनकर सज्जनों के चित्त दुखी हो जाते हैं। आकाश मेघ-शून्य हो रहा है; किंतु कभी-कभी निर्जल मेघों के श्वेत खंड इधर-उधर बिखरे हुए देख पड़ते हैं। मानो आकाश अगणित, स्वच्छ, धवल चामर लेकर प्रकृति-देवी के मनोहर मस्तक पर ढार रहा है।

रात्रि में आकाश की सुषमा अनिर्वचनीय हो रही है। अगणित तारा-गण हीरे की कनियों के समान अपना विमल प्रकाश भूमंडल-तल तक प्रसारित कर रहे हैं। मानो ज़री के बेल-बूटों से खचित श्वेत रेशमी झूल आकाश-रूपी कृष्ण गज की पीठ पर झूल रही है। अथवा यों कहिए कि शरद् ने प्रकृति-देवी के सिंहासन के ऊपर मोतियों की झालरों से झिलमिलाता हुआ श्वेत चँदोवा तान दिया है। चंद्र-मंडल निर्मल, उज्ज्वल, देदीप्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान, शीतल, आह्लाद-दायक तथा पूर्ण होकर परम सुंदरी नायिका के सुंदर हास्य से युक्त मुख-मंडल के समान अत्यंत सुहावना तथा मनोहर जान पड़ता है। आज ही का चंद्र कवियों की उपमाओं का आधार-स्तंभ है। आज ही के चंद्र को देखकर रसिक जन अपनी परम सुंदरी प्राण-वल्लभा के विशद मुख-मंडल को स्मरण करते हैं। यही चंद्र संयोगियों को चंदन-पंक के समान शीतल और सुखद तथा वियोगियों को देदीप्यमान प्रज्वलित अग्नि-पिंड के सदृश तप्त प्रतीत होता है। जब शरत्काल की चारु चंद्रिका चारों ओर बिखर जाती है, तब संसार आलोकमय जान पड़ता है। मानो सारा संसार ही मंदाकिनी के परम पावन धवल जल में स्नान कर निर्मल तथा निष्पाप हो गया है। अथवा यों कहिए कि प्रकृति-दासी ने शारदीय उत्सव में देवी के नृत्य के लिये चारों ओर श्वेत चाँदनी बिछा रक्खी है। जैसे सच्चे कवि की कविता अथवा न्यायी राजा की कीर्ति स्वच्छ तथा निष्कलंक होती है, वैसे ही यह चंद्रिका भी निष्कलंक तथा स्वच्छ है।

इसी सुहावनी चाँदनी में नटनागर, सब गुन-आगर, वृंदावन-विहारी, भक्त-सुखकारी, मुरारि माधव ने महारास रचा था। उसी रास में गोपियों के बहु-काल-तप्त हृदय की तरल तृषा को अनुकंपा-मृत से शांत किया था। आज भी जब शरद्-ऋतु आती है, तभी उस रास-मंडल का दृश्य भक्तों और रसिकों की आँखों के सामने नाचने लगता है। जिस समय श्रीयशोदा-नंदन, भक्त-हृदय-चंदन, नंद-नंदन ने गोपियों के बीच, राधिका के साथ, महारास में नृत्य किया था, उस समय चंद्रमा ने भी अपनी स्वच्छ चंद्रिका फैलाकर अपने को कृतार्थ माना था। इन्हीं सब शोभाओं को याद-कर पद्माकर ने लिखा है—

"तालन पै, ताल पै, तमालन पै, मालन पै,
बृंदाबन-बीथिन, बिहार-बंसी-बट पै;
कहै पदमाकर अखंड रास-मंडल पै,
मंडित उमंडि महाकालिंदी के तट पै।
छिति पर, छान पर, छज्जन छतान पर,
ललित लतान पर, लाड़िली की लट पै;
आई भले छाई यह सरद-जुन्हाई, जिहि
पाई छबि आजु ही कन्हाई के मुकट पै।"

"खनक चुरीन की, त्यों ठनक मृदंगन की,
रुनुक-झुनुक सुर नूपुर के जाल को;
कहै पदमाकर त्यों बाँसुरी की धुनि मिलि,
रह्यो बँधि सरस सनाको एक ताल को।
देखत बनत, पै न कहत बनै री कछू,
बिबिध बिलास सों हुलास यह ख्याल को;
चंद छबि-रास, चाँदनी को परगास,
राधिका को मंद हास, रास-मंडल गोपाल को।"

एक और कवि कहता है—

"जमुना के पुलिन, उजेरी निसि सरद की,
राका को छपाकर किरिन नभ चाल की;
नंद को लड़ैतो तहाँ गोपिका-समूह लैकै,
रची रास-क्रीड़ा, बजै बीना सुर-ताल की।
लहाछेह गतिन की कही ना परत मो पै,
द्वै-द्वै गोपिका के मध्य छबि नंदलाल की;
सोभा अभिराम अवलोकि कै "अभिन्न" कहै,
एक बार बोलो जै-जै मदन-गोपाल की।"

इसी तरह प्रायः सभी कवियों ने शरद्-ऋतु का वर्णन किया है।

इस शरद्-ऋतु में स्वच्छता के कारण सारा संसार ही स्वच्छ होना चाहता है। स्वच्छता ही के कारण हंस चंद्रमा के समान, कामिनी-गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण हंस के समान, जल सुख-स्पर्श के कारण कामिनी के समान, और आकाश निर्मलता के कारण जल के समान आनंद-प्रद जान पड़ता है।

गरमी निकल गई। सरदी आ गई। अब पसीने से शरीर तर नहीं होता। अब पंखे की हवा नहीं रुचती। पर अभी सूक्ष्म वस्त्रों का धारण सुखकर जान पड़ता है। नर-नारी श्वेत वस्त्र धारण कर इधर-उधर आनंद-पूर्वक विचरण करते हैं। यह समय अत्यंत सुख-दायक है, इसीलिये इस समय परदेसी परदेस जाने की सामग्रियाँ इकट्ठी करने लगते हैं। पूर्व समय में राजा लोग इसी ऋतु में विजय-यात्रा किया करते थे। महाराज श्रीरामचंद्र ने भी इसी शरद् में—विजया-दशमी के दिन—विजय-यात्रा की थी।

सचमुच यह ऋतु बड़ी सुख-दायिनी है। इस ऋतु में, हमारे यहाँ अनेक महोत्सव होते हैं। आश्विन तथा कार्तिक, इन्हीं दोनों महीनों की गिनती शरद्-ऋतु में है। प्राचीन पितरों का स्मरण, दुर्गा-पूजा, विजया-दशमी, शरत्पूर्णिमा, धन्वंतरि-जन्म, लक्ष्मी-पूजा, दीप-मालिका, अन्नकूट, भ्रातृ-द्वितीया, देवोत्थान आदि अनेक पर्व शरत्काल की महिमा के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जगदीश्वर भी इसी की शोभा देखने के लिये अपनी योग-निद्रा त्याग करते हैं। देखें, भारतवासी कब निद्रा छोड़कर उठते हैं।

कृषकों के लिये यह बड़े ही आनंद का अवसर है। वे धानों के अन्न-पूर्ण गुच्छों को देख फूले अंग नहीं समाते। उनका सारा परिश्रम आज सफल हो गया है। कहीं धान पक गए हैं, कहीं कट रहे हैं, कहीं उसाए जाते हैं, और कहीं राशि बनाकर रक्खे जा रहे हैं।

जब सारा संसार प्रसन्न है, तो मैं भी प्रसन्न होकर ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि भारत-वासियों का सारा परिश्रम सफल हो, उनके सब मनोरथ पूर्ण हों, और गोलोक-वासी भारतेंदु हरिश्चंद्र की यह भाव-भरी कविता सत्य हो—

"खल-गनन सों सज्जन दुखी मति होइँ, हरि-पद-रति रहै;
उपधर्म छूटैं, सत्त्व निज भारत गहै, कर-दुख बहै।
बुध तजहिं मत्सर, नारि, नर सम होहिं, सब जग सुख लहैं;
तजि ग्राम-कविता, सुकवि जन की अमृत-बानी सब कहैं।"

तथास्तु।

अक्षयवट मिश्र (विप्रचंद)

जीवन का अंतिम दृश्य *

स्थान — मंसूरी, समय—प्रातःकाल
दिन — सोमवार, ६ अगस्त, १९२३

दृश्य

कोठी का भीतरी कमरा

(कार्बंकल का आपरेशन होने के पश्चात् पंडितजी चारपाई पर लेटे हुए सोच रहे हैं। पास सरला-देवी बैठी हुई हैं)

पं० जी—(मन में) जीवन का दूसरा नाम निराशा है; किंतु फिर भी मनुष्य इसे प्यार करता है। ज्यों-ज्यों इच्छाएँ मोहिनी-रूप रखकर आयु-वीणा पर जीवन-संगीत अलापती हैं, त्यों-त्यों मनुष्य मुग्ध होकर इसे प्यार करता है। श्रवण-शक्ति जाती रही, आँखों की ज्योति मंद पड़ गई, जिह्वा लड़खड़ाने लगी, यहाँ तक कि शिथिलता ने नस-नस को कर्म-हीनता की रिशवत देकर अपने वश में कर लिया, तो भी मनुष्य इसे प्यार करता है। मनुष्य—मनुष्य जिस जीवन को कस्तूरी की तरह नाफे में बंद रखकर इच्छानुसार उसकी सुगंध से अपने शारीरिक भवन को सुगंधित करना चाहता है, अनित्य व्याध के मृत्यु-बाण की काल-वश चोट से भय-

---

* मुख्य-मुख्य पात्रों के नाम

पति ...	... पं० रामभजदत्त
पत्नी ...	... सरला-देवी
पुत्र ...	... दीपक
नौकर ...	... अफलातूँ
डॉक्टर ...	... कर्नल ब्राउन
पुलिटिकल लीडर ...	... आजकल जितने हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीत होकर वहीं—आह - वही निर्मम जीवन एक दिन अकस्मात् इसे छोड़ जाता है ; किंतु मनुष्य माता के गर्भ से पुनर्जन्म लेते ही जीवन की सारी पिछली निर्दयता को भूलकर फिर इसे प्यार करता है ! मनुष्य, तू इसे क्यों इतना प्यार करता है ? (सोचना) आह, समझा, समझा, यही ठीक है, यही । किसी को अपनी सुंदर स्त्री से प्यार है तो किसी को वृद्ध हो जाने पर अपने वंश का नाम-लेवा देखने का इंतज़ार है । यदि किसी को अपने देश-भाइयों का गला कटवाने का मर्ज़ है, तो किसी को देश-भक्ति की लालसा है । किसी को जाति के धन पर डाका डालने की प्रबल इच्छा है, तो किसी को जाति-सेवा का मेनिया (Mania) है । मानो हरएक मनुष्य अपने-अपने उद्देश की पूर्ति के लिये इसे प्यार करता है । क्या मैं इसे प्यार नहीं करता ? प्यार—अवश्य प्यार करता हूँ । किंतु हाय अब तो—

जीवन की गंगा में डगमग मम प्यार की नैया डोलत है ;
और श्वास की डाली पर यह ही जीवन की मैना बोलत है ।
याँ मैं न रहूँगी, उड़ जाऊँगी, माली सोनेवाला है ;
कारण कि राज्य है गरमी का, अब पतझड़ होनेवाला है ।
सिर पर घनघोर घटा छाई, और दूर का पथ तय करना है ;
उड़ चल, सूखी डाली पर रहकर क्या बेआई मरना है ।

—(प्रकट) क्या मरना है ?—क्या मुझको भी मरना है ?

सरला—नाथ, यह जीवन अवश्य अनित्य है, किंतु वह समय आपके लिये अभी नहीं आया ।

पं० जी—आशा, आशा । सच कहा सरला, तुमने सच कहा । मानो मेरी हार्दिक ध्वनि को तुमने अपनी वाणी द्वारा दुहराया । वह समय अभी नहीं आया ; क्योंकि मुझे अभी अपना उद्देश पूरा करना है । उद्देश ! प्यारा उद्देश ! जब तक भारत की सब अछूत जातियों का यज्ञोपवीत-संस्कार न हो लेगा, जब तक बिछड़ी हुई आर्य-संतान वैदिक ध्वनि की पवित्र गर्जना सुनकर अपने को सच्चा आर्य-वीर न बना लेगी, जब तक भारत की चौंसठ करोड़ भुजाओं में स्वराज्य लेने का बल न आ लेगा, तब तक जियूँगा—सरला, मैं तब तक जियूँगा ।

सरला—प्राणनाथ, परमात्मा आपके उद्देश की पूर्ति करें ।

पं० जी—परमात्मा अवश्य करेंगे (वेग के साथ भुजाओं को आकाश की तरफ़ ले जाते हुए बोलते-बोलते रुक जाते हैं) आह, कैसी हृदय में वेदना है ! जीवन का दूसरा नाम निराशा है—तो भी मनुष्य इसे प्यार करता है—

इच्छा तो कहती है कि उठ, पर आत्मा में बल नहीं ;
इस ज़िंदगी का क्या भरोसा, आज हैं और कल नहीं ।

—किंतु कोई चिंता नहीं । कोई चिंता नहीं—

पूरा भगीरथ ने किया था 'सगर' के उद्देश को,
भागीरथी लाकर किया उज्ज्वल था कुल को, देश को ।
वैसे मेरे उद्देश की 'दीपक' करेगा पूर्ती ;
लो आ गई वह सामने प्रत्यक्ष उसकी मूर्ती ।

(दीपक की छाया-मूर्ति देखकर) दीपक, प्यारे दीपक, तुम आ गए, अच्छे अवसर पर आए । जुग-जुग जियो ।

सरला—दीपक ? कहाँ है दीपक ? नाथ, मेरा कुल-भूषण दीपक कहाँ है ?

पं० जी—सरला, तुम नहीं देख सकतीं । भगवान् ने मुझे दिव्य दृष्टि दी है । देखो, वह सामने देखो । आहा, कैसी अचल श्रद्धा और भक्ति-भरी नज़रों से मेरी ओर देख रहा है । बेटा, मैं तुम्हारे आचार-व्यवहार से अति प्रसन्न हूँ (सिरहाने के पास डॉक्टर का लिखा हुआ नुसख़ा देखकर) लो बेटा, लो । यही वह मेरा अंतिम पत्र है, यही वह मेरी will (इच्छा) है, इसे पढ़ो । जानते हो, मैंने तुम्हें विरासत में क्या दिया है ? सुनो, मैंने तुम्हें विरासत में वह अमूल्य रत्न दिया है, जिसकी क़ीमत दुनिया के सारे ख़ज़ाने मिलकर भी नहीं दे सकते । वह अमूल्य—बेटा, वह अमूल्य रत्न पिता का उद्देश है, और उस उद्देश का अर्थ—अर्थ—अछूत जातियों का उद्धार और भारत-देश का प्यार—आह, कैसा अंधकार—गहरा अंधकार—(बेसुध हो जाना)

सरला—नाथ, प्रभु, स्वामी, क्यों, क्या हुआ, बोलते क्यों नहीं ? (आवाज़ देकर) अफ़लातूँ, ओ अफ़लातूँ, दौड़कर डॉक्टर साहब को तो बुला ला । इनकी तबीयत बिगड़ रही है ।

अफ़लातूँ—(अंदर आकर) अभी बुलाए लाता हूँ माजी । (जाता है)

सरला—मेरे जीवन की हँसती हुई दुनिया, क्या तुम्हें पुत्र-स्नेह की गंगा अपनी प्रबल धारा में डुबाना चाहती है ? नहीं—प्रभु, नहीं । उठिए, देखिए, वह दीपक आया । नेत्र खोलिए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० जी—(धीरे-धीरे नेत्र खोलकर) दीपक, सरला, मेरा जीवन-दीपक बुझना चाहता है। तुम इस दीपक में अपना हृदय, प्रिये, अमृत की छटा बरसानेवाला 'हरि ओम्!' गीत का तेल डालो—मुझे बचा लो—ताकि मेरा जीवन-दीपक अपने नन्हे प्रकाश के साथ ज्योति में लीन हो।

सरला—जो आज्ञा स्वामी!

(गाती है)

'हरी ओम्-ओम्' कहने की मुझे बान पड़ गई।
जानूँ नहीं कुछ और मैं हरी ओम् के सिवा;
जब से मृदु हरि ओम् की ध्वनि कान पड़ गई।
मीठा लगे है नीके अधिक मुक्ति रस भरा;
कर पान ज्ञान जान में आ जान पड़ गई।
छाई है रोम-रोम में हरी ओम् की प्रभा;
इस नाम से मुश्किल मुझे आसान पड़ गई।
निज श्वास की वीणा पै "शैदा" ओम्-राग हो;
कारण कि प्यार ओम् से पहचान पड़ गई।

पं० जी—हरि ओम्—हरि ओम्! आहा कैसी अमृत-मयी ध्वनि है! कैसा प्रकाशमय शब्द है! (ओम्-शब्द का नजर आना) ओम्—हरि ओम्! हैं, यह क्या! (ओम्-शब्द का भारत-माता के रूप में बदल जाना) यह कैसा विचित्र परिवर्तन है! आहा, कैसी शांतिमयी मूर्ति है! जिस पर स्वच्छता पुष्प-वृष्टि कर रही है, मर्यादा उत्सर्ग हो रही है, नीति और वेद सहस्र-मुख से प्रशंसा कर रहे हैं! आहा, विशाल भाल पर स्वतंत्रता का शब्द दिव्य तिलक बनकर विराजमान है—यह क्या, यह कैसा आश्चर्य-मय परिवर्तन है! ऐसे प्रसन्न मुख-मंडल पर अश्रु-धारा कैसी!—मा! मा!—तुम क्यों रोती हो?

मूर्ति—तुम्हारे वियोग में।

पं० जी—मेरे वियोग में?—मा, तुम कौन हो, जो मुझ तुच्छ जीव के लिये अपने उज्ज्वल और ज्योतिर्मय नेत्रों द्वारा हृदय-स्रोत खुलने का प्रमाण दे रही हो?

मूर्ति—मुझ भाग्य-हीना का परिचय न लो।

पं० जी—हैं, यह क्या? महात्मा गाँधीजी, लाला लाजपतराय, अली-बंधु, हकीम अजमल ख़ाँ, महर्षि मालवीयजी—

(सब नेताओं का छाया-मूर्ति में प्रकट होना)

सब नेता—(मिलकर) भैया! भैया! हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो? कौन-से देश की यात्रा करने की ठानी है? हमें भी तो साथ ले चलो।

पं० जी—हैं, यह क्या हो रहा है! मैं क्या देख रहा हूँ! आह, अँधेरा, कैसी वेदना!—कौन? कौन? जन्म-भूमि—भारत-माता—मा, मा, मेरी कल्याणी मा! मा! मा!—

भारत-माता—आह, मेरा बच्चा! मेरी गोदी की शोभा! मेरा लाल! आह, यह कैसा प्रलय, कैसा भूचाल! (बेसुध हो जाती है)

सरला—नाथ, प्रभु, बोलो न, क्या सोच रहे हो? (डॉक्टर को देखकर) डॉक्टर साहब, इन्हें देखिए, इन्हें क्या हो गया है, यह बोलते क्यों नहीं?

डॉक्टर—(नाड़ी देखकर) समाप्त!

(डॉक्टर का सिर नीचा किए हुए वहाँ से जाना)

सरला—समाप्त—आह समाप्त! सुहाग की शोभा समाप्त! जीवन का सुख-सौभाग्य समाप्त! जीवन की अभिलाषा, दिल की हँसी, माँग का सेंदुर, माथे की बिंदी, काँच की चूड़ियाँ, केश का जूड़ा, सब कुछ समाप्त! बाक़ी रहा जलना, कुढ़ना, और रोना। सो उसका भी आर्तनाद काल की गंभीर गर्जना में लीन हो जायगा।

समाप्त होने पै इनके केवल समाप्त सब कुछ हुआ है मेरा!
विचित्र लीला है यह-प्रकृति की, इधर निशा है, उधर सबेरा।
न जानूँ जीवन की ग्रीष्म-ऋतु का जहाँ में किस रोज़ अंत होगा,
मिलूँगी मरकर मैं इनसे जिस दिन, मेरा उसी दिन बसंत होगा।

आशा (परमात्मा की शक्ति का नाम)—धैर्य सरला, धैर्य। तुझसे अधिक दुखी भारत-माता है। सुन, उसका विलाप सुन, वह क्या कह रही है।

(सरला विचार-सागर में डूबी हुई सुनती है)

भारत-माता का विलाप

मेरा रोना ही हज़ारों का हँसावन हो गया;
मेरी बरबादी से दुश्मन का बसावन हो गया।
मेरा जीवन-रूप मधुवन आज से वन हो गया;
यों तो सावन है, मगर मेरा असावन हो गया।

रह गया खाली हिंडोला, झूलनेवाला नहीं;
गोद सूनी हो गई है, गोद का पाला नहीं।

मर मिटे थे सर्व भारत-भारती (य) जिस "राम" पर,
दिल से "भज" कर सर्वदा बलिहार थे जिस नाम पर,
"दत्त"-कुल-भूषण दया करते थे ख़ासो-आम पर,
गर्व करते थे सदा "मोहपाल" जिसके काम पर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज वह ही लाल मेरा दिन-दहाड़े लुट गया ;
मेरी आशा का गला भीतर से कैसा घुट गया !
बुझ गई है ज्योति जीवन की, अँधेरी रह गई ;
उड़ गई मैना, यहाँ हड्डी की ढेरी रह गई।
चल बसा जोगी, मगर जोगी की फेरी रह गई ;
और सारे उठ गए, ममता ही मेरी रह गई।
श्वास की शोभा थी केवल उस सुरीले साज से ;
दिल को सुख, आँखों को ठंडक थी उसी आवाज़ से।
जिसने अपने कर्म-गुण से मेरा मन वश कर लिया,
जिसने रग-रग में मेरी स्वराज्य का रँग भर दिया,
जिसने केवल देश-भक्ती का यहाँ अमृत पिया,
जिसने अंतिम श्वास भी जातीय सेवा में दिया,
जो अछूतों का था शैदा और उनकी जान था,
जिसके जीवन से मेरे जीवन का सब सामान था।
अब मेरा जीवन कहाँ, जीवन मेरा जाता रहा ;
अब न "शैदा" है, न "शैदा" से हि कुछ नाता रहा।
अब न वह ध्वनि बाँसुरी की, जो कोई गाता रहा ;
मेरे कानों में अमृत-सा जो कि बरसाता रहा।
छिप गया मृत्यू के बादल में कन्हैया देश का ;
नाव ख़ाली रह गई, डूबा खिवैया देश का !

आह, मुझे क्या हो गया ! अँधेरा-अँधेरा ! मैं गई—मुझे सँभालो (बेसुध हो जाना)

सब राजनीतिक नेता—माता! माता! (सबका अदृश्य होना)

सरला—(चौंककर) ब्रह्मांड का हृदय कँपानेवाली भारत-माता की विलाप-ध्वनि आकाश में लीन हो गई।

(अछूत जातियों का छाया-रूप में देख पड़ना और कहना)

"आह, ईश्वर, यह कैसा अन्याय, कैसा कठोर व्यवहार !"

सरला—(सुनकर) हैं, यह कैसा दुःख-भरा हाहाकार ! (देखकर) क्या, क्या, अछूत जातियों की हृदय-विदारक पुकार ? प्राणाधार ! क्या आप नहीं सुनते ? उठिए, इतनी निष्ठुरता न कीजिए, हृदय को इतना कठोर न बनाइए। क्या नहीं सुनोगे, नहीं सुनोगे ?—अछूत जातियो, तुम्हारा यज्ञोपवीत-संस्कार करानेवाले मुझ अभागिन से रूठ गए—रूठ गए—हाँ-हाँ सचमुच रूठ गए—(बेसुध होकर गिर पड़ती है)

(पर्दा गिरता है)

तुलसीदत्त 'शैदा'

प्रेमाश्रम और साहित्य-कला



मैं इस समय भारत से बहुत दूर आ गया हूँ। मेरे पास भारत के पत्र भी इने-गिने आते हैं ; मेरे एक मित्र ने इस डाक से मेरे पास, माधुरी से काटकर, "साहित्य-कला और प्रेमाश्रम"-नामक वह प्रत्यालोचना भेजी है, जो पं० जनार्दनप्रसाद झा ने लिखी है, और माधुरी के ज्येष्ठ के अंक में छपी है। मैंने प्रेमाश्रम की आलोचना इसलिये की थी कि मातृ-भाषा हिंदी में साहित्य का आदर्श उतना ही ऊँचा रहे, जितना संसार की अन्य भाषाओं में। इसकी जो प्रशंसा छपी थी, वह हद को पार कर गई थी। इस अति को देखकर मेरी क्षुद्र बुद्धि में यह उचित जँचा कि अप्रिय सत्य प्रकट कर मुझे व्यक्ति-गत गालियाँ भले ही सहनी पड़ें, पर संभव है कि साहित्य की मर्यादा आगे को इतनी भ्रष्ट न की जाय। 'प्रभा' की समालोचना में लेखक ने संसार के बड़े-से-बड़े लेखक को प्रेमचंदजी की तुलना में घसीट मारा था। यह देखकर मुझे चोट पहुँची। मैंने समझा, कोई योग्य व्यक्ति इसका समुचित प्रतिवाद करेगा ; पर कहीं कुछ देखने में न आया। तब मैंने अपनी अयोग्यता जानते हुए भी क़लम हाथ में ली, और अपनी आलोचना में बतलाया कि साहित्य में प्रेमाश्रम का स्थान बहुत नीचे है। जिस आकाश में असंख्य चंद्र छोटी-छोटी दुनियाओं का चक्कर लगाया करते हैं, जिस गगन में हमारे सूर्य से असंख्य-गुना बड़ा ऐसा सूर्य विद्यमान है, जिसका एक-एक सितारा हमारी पृथ्वी से लाखोंगुना बड़ा है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके विषय में यह कहना कि हमारे भू-मंडल का आकाश ही अद्वितीय और सबसे बड़ा है, किसी ज़माने में फब सकता था, लेकिन आज इस विज्ञान-युग में—उस समय में, जब सर्वत्र सार्वभौम-ज्ञान, साहित्य और सभ्यता का प्रचार हो रहा है—ऐसा ही है, जैसा मेरे एक समाजी मित्र का कहना कि शेर से गधा उत्तम है; क्योंकि वह निरामिष-भोजी है। यहाँ भी वही बात है। 'प्रेमाश्रम' अपनी समुज्ज्वल ज्योतियों से सारे साहित्य-संसार को आलोकित कर रहा है। कारण, वह हिंदी में है, और हमने संसार को हिंदी-भाषा-भाषियों में ही समाप्त समझ लिया है। इसलिये 'प्रभा' में एक उपदेश-कुशल गुम-नाम साहित्यिक चिलमन के भीतर से अपनी सम्मति देते हैं कि हमें तुलना नहीं करनी चाहिए। हमें 'शरत्' और 'रवि' से क्या? हमारे हिंदी-साहित्य की गति निराली है। "रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।" मुझे यह पढ़कर हँसी आई, और संताप भी हुआ। हँसी इसलिये आई कि जिस युग में तुलना द्वारा नए-नए शास्त्रों की उत्पत्ति हो रही है, धर्म, समाज और जातीय जीवन आदि सबकी तुलना-मूलक आलोचना की जा रही है, उस युग में हिंदी के कुछ लेखक तुलना को पाप बतलाते हैं। संताप भी इसी कारण हुआ। उस रोज़ यहाँ पुस्तकों की एक दूकान में गया। एक पुस्तक रूसी-साहित्य पर ऐसी देखी, जिसमें प्रिंस कुरोपाटकिन ने रूसी-लेखकों की तुलना संसार-भर के लेखकों से कर रक्खी थी। ऐसा आनंद आया कि घंटे-भर खड़े-खड़े पढ़ता रहा। जब बेचनेवाली लड़की आई, और मुझसे हँसकर बोली—'क्या सारी किताब यहीं समाप्त कर डालोगे', तो बड़ा लज्जित हुआ, और लाचार होकर पुस्तक ख़रीदनी पड़ी। इस साहित्यिक तुलना का स्वाद क्या कभी भूलेगा? इस बार पं० पद्मसिंह को सतसई की टीका पर पुरस्कार मिला है। उसका सारा आनंद इसी में है कि टीका तुलना-मूलक है। भगवान् ने अभी एक ऐसा पद्मसिंह दिया है, जो भारतीय भाषाओं का पंडित है; किंतु अभी कई ऐसे पद्मसिंहों की आवश्यकता है, जो संसार की भाषाओं के पंडित हों। तब हमें मालूम होगा कि विश्व-साहित्य में हमारा क्या पद है? अपनी छोटी-सी चहारदिवारी के भीतर, कूप-मंडूक की तरह, समुद्र को छोटा बताकर अगर हम फुदकते रहे, तो मेरी तुच्छ सम्मति में बीसवीं सदी का नैतिक जीवन उतना अधिक भ्रष्ट न होगा, जितना खड़ी-बोली का बाल-साहित्य। इस बात को हिंदी-प्रेमियों के सम्मुख बार-बार रखने के लिये मैं कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। झा महोदय को यह बताने में मैं अपनेको असमर्थ देख रहा हूँ कि जिस उपन्यास में किसानों के दुःख-निवारण का उपाय बतलाने की चेष्टा की गई है, और जिसका प्रेमाश्रम नाम बतलाता है कि इसका मुख्य उद्देश्य प्रेमशंकर की महत्ता दिखलाना है, उसका श्रेणी-निर्णय इन बातों से नहीं होता। जो विद्वान् प्रत्यालोचक 'प्रेमाश्रम में जो समस्याएँ रक्खी गई हैं, वे ही सब कुछ हैं' का अभिप्राय नहीं समझा, उसे समझाना टेढ़ी खीर है। यदि मैं भूला नहीं हूँ, तो शायद पं० श्रीधर पाठक ने इस पुस्तक के लेखक को मंगलाप्रसाद-पुरस्कार के अयोग्य इसलिये बतलाया था कि पचास साल बाद इसका इतना महत्त्व नहीं रहेगा। क्यों? इसीलिये कि वर्तमान समस्याएँ उन दिनों पुरानी जँचेंगी; लेकिन 'गोरा' आज का-सा ही आनंद देगा। शेक्सपियर का 'हेमलेट' आज भी नया है। शकुंतला कब जीर्ण होगी? सबसे बड़ी बात यह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जो लेखक यह नहीं जानता कि शरत् बाबू ने क्या सम्मति दी थी, और फिर भी सम्मति देता है कि प्रकाशकों के पास सम्मति-पत्र वर्तमान हैं, उससे क्या झगड़ा ? हाँ, मैं हिंदी-भाषा के सेवकों से कहूँगा कि मैंने जो लेख लिखा था, वह केवल साहित्य-सेवा की इच्छा से, इस अभिप्राय से कि हिंदी में साहित्यिक अराजकता न आने पावे। मेरा तो यही मतलब था कि 'बे-बूझ राजा' हिंदी-संसार में 'अँधेर-नगरी' स्थापित न करे। मैं कोई प्रकाशक नहीं, कोई लेखक नहीं, मुझे किससे क्या शत्रुता साधनी है ? जब मैं प्रयाग के म्योर-कॉलेज में पढ़ता था, तब रामदास बाबू अध्यापक थे, और मैं फ़ोर्थ ईयर में था। बा० रघुपतसहाय थर्ड ईयर में थे। सो हम एक कॉलेज के हैं। हिंदी-पुस्तक-एजंसी के मालिक ने मेरा परिचय बा० प्रेमचंद से कराया था, अतः वह भी मित्र हैं। किंतु यह सब होने पर भी मैं कैसे कह दूँ कि यह पुस्तक संसार में अद्वितीय निकली है ? क्या साहित्य की तौल में भी पासंग रहता है। मुझे बड़ा आश्चर्य इस बात का हो रहा है कि क्यों हिंदी के कई प्रेमी प्रेमाश्रम को ठोक-पीटकर वैद्यराज बनाने का निष्फल प्रयास कर रहे हैं ! इससे तो हमारे साहित्य-ज्ञान का पता चलता है। प्रेमाश्रम की अत्यंत प्रशंसा-मूलक समालोचना तथा रवि बाबू से तुलना देखकर उस रोज़ एक बंगाली साहित्यिक ने मुझसे कहा—"क्या हिंदी-वाले साहित्य का अर्थ नहीं समझते ?"

अयथार्थ प्रशंसा या तो दिल्लगी उड़ाना है, या अपनी अज्ञता प्रकट करना। कौन कहता है, यह पुस्तक रद्दी की टोकरी में फेंकने लायक़ है ? किंतु जो साहित्य-मर्मज्ञ कहता है कि प्रेमाश्रम ने साहित्य-संसार में युगांतर उपस्थित कर दिया, वह नहीं जानता कि ऐसी बातें अपने साहित्य का आदर्श गिराने के साथ साथ अन्य भाषा-भाषियों में हमारी हँसी कराती हैं। हम तो जोश में आकर यह भी कह बैठेंगे कि 'प्रेमाश्रम को नोबिल-पुरस्कार मिलना चाहिए'; पर इससे जो लाभ होगा, सो सहज ही विचारा जा सकता है। इसलिये मैं अंत में इतना ही निवेदन करूँगा कि अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू न बनिए। ऐसा करना सहज है, पर इससे हानि के सिवा लाभ नहीं। *

ऐ दोस्त, अपने हुस्न पर तू खुद मरा न कर,
दुनिया को भी तो देख जरा, कुछ हया तो कर।

हेमचंद्र जोशी (बर्लिन०)

सार्वजनिक संस्थाओं की दुरवस्था



सार्वजनिक संस्थाएँ इस बीसवीं शताब्दी में किसी राष्ट्र या देश-विशेष की नाड़ी समझी जाती हैं। जिस तरह मनुष्य की नाड़ी से उसकी हरएक अवस्था का पता लगता है, उसी तरह हरएक राष्ट्र, देश अथवा संप्रदाय की सार्वजनिक संस्थाओं से उसकी भीतरी दशा का स्पष्ट अनुभव प्राप्त होता है। प्रकृति के अनुकूल पथ्य और आहार-विहार करने से नाड़ी की चाल दुरुस्त रहती है, मनुष्य प्रकृतिस्थ रहता है। अपनी प्रकृत गति से नाड़ी ही मनुष्य की स्वास्थ्य-रक्षा में सहायक सिद्ध होती है। इसी प्रकार नियमानुकूल कार्य-पद्धति, समयानुकूल संगठन और सुव्यवस्था-पूर्वक संचालन से सार्वजनिक संस्थाएँ अपने देश, राष्ट्र, समाज या संप्रदाय का महान् उपकार करती

---

* हमने दोनों पक्षों का वक्तव्य छाप दिया है। फ़ैसला पाठकों पर है। हमारी राय में यह झगड़ा यहीं शांत हो जाना चाहिए। अब इस संबंध का वाद-विवाद माधुरी में नहीं प्रकाशित किया जायगा।—संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। जैसे मनुष्य की भीतरी अवस्था जानने का एक-मात्र साधन नाड़ी है, वैसे ही किसी देश, राष्ट्र, समाज अथवा संप्रदाय की आकांक्षाओं, आवश्यकताओं और मनोवृत्तियों का स्पष्ट आभास सार्वजनिक संस्थाओं से ही प्राप्त होता है। केवल स्पष्ट आभास ही नहीं प्राप्त होता, उस देश, राष्ट्र, समाज या संप्रदाय की उन्नत एवं अवनत गति का क्रम भी मालूम हो जाता है। सार्वजनिक संस्थाओं से देश, राष्ट्र तथा समाज का महान् उपकार भी होता है। जो अभाव, त्रुटि या आवश्यकता किसी बड़े-से-बड़े कर्म-वीर पुरुष से भी पूरी नहीं होती, वह किसी सार्वजनिक संस्था द्वारा सहज ही पूरी हो जाती है।

सारांश यह कि मनुष्य जैसे नाड़ी द्वारा अपने देह, प्रकृति, आंतरिक अवस्था और स्वास्थ्य के संबंध की सारी बातें जान जाता और विविध आशंकाओं से सचेत होकर अपने भावी जीवन को सुखमय बनाने का उद्योग करता है, वैसे ही राष्ट्र, देश, संप्रदाय अथवा समाज की विचार-प्रगति, भावना-लहरी, वास्तविक दशा और प्रवृत्तियों, चेष्टाओं तथा आकांक्षाओं का परिचय देनेवाली सार्वजनिक संस्थाएँ हैं। अतएव, नाड़ी ही की तरह, संस्थाओं की भी रक्षा करनी चाहिए। जैसे नाड़ी बंद होने से श्वास-वायु रुक जाती और शरीर की रक्त-संचालन-क्रिया बंद हो जाती है, अतएव शरीर निश्चेष्ट एवं निष्प्राण हो जाता है, वैसे ही संस्थाओं के बंद होने से देश, राष्ट्र और समाज का जीवन नष्ट हो जाता है।

सार्वजनिक संस्थाएँ क्या हैं ? किसी जाति, देश या समाज के साथ हार्दिक सहानुभूति और उसके हिताहित का विशेष ध्यान रखनेवाले, उसके अभावों की पूर्ति के लिये स्वार्थ भूलकर सोत्साह कार्य में तत्पर रहनेवाले, उदार, सहृदय, श्रम-शील, परोपकार-प्रवण और शिक्षित जन-समुदाय के उपयोगी विचार-समूहों का सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित कार्य-पद्धति के रूप में परिणत हो जाना ही सार्वजनिक संस्थाओं की आकृति धारण करता है। जब लोक-हितैषणा अथवा समाज-सेवा की शुद्ध प्रेरणा से जन-कल्याणकारी विचारों की परिणति निस्स्वार्थ सेवा-कार्य के रूप में होती है, और जब स्वाभाविक प्रेम तथा नित-नए उत्साह के साथ वह लोक-सेवा का पवित्र कार्य दृढ़ संकल्पवाले कर्तव्य-ज्ञानी, विनयी कार्यकर्ताओं द्वारा निरंतर संपन्न होता है, तब सार्वजनिक संस्थाएँ, आरोग्य शरीर की नाड़ियों की तरह, देश, राष्ट्र तथा समाज की सच्ची परिस्थिति को स्पष्ट बतला देती हैं।

सार्वजनिक संस्थाओं के रूप, कार्य-क्षेत्र तथा उद्देश भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। सरसरी निगाह से देखने में सार्वजनिक संस्थाएँ दो प्रकार की दिखलाई देती हैं। एक प्रकार की तो वे हैं, जो राजा तथा प्रजा, दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों द्वारा संचालित होती हैं। दूसरे प्रकार की वे हैं, जिनमें केवल प्रजा-पक्ष के ही प्रतिनिधि रहते हैं। पहली तरह की संस्थाएँ कोऑपरेटिव-सोसाइटियाँ, म्युनिसिपल-बोर्ड्स्, लोकल-बोर्ड्स् और डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड्स् आदि हैं, और दूसरी तरह की संस्थाएँ कांग्रेस, हिंदू-सभा, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन आदि। कितने ही सूक्ष्मदर्शी तो पार्लियामेंट तक को सार्वजनिक संस्था समझते हैं; किंतु वर्तमान युग की स्थिति को देखते हुए यह निस्संकोच कहना पड़ता है कि उनकी यह धारणा आधार-शून्य है। कारण, पार्लियामेंट, इंपीरियल-कौंसिल और लेजिस्लेटिव-कौंसिलों द्वारा जो निर्णय होता है, उससे सदा प्रजा-पक्ष का ही अनिष्ट देखा जाता है। उक्त संस्थाओं में जब राजा और प्रजा के स्वार्थ में परस्पर संघर्ष हुआ है, तभी प्रजा के जन्म-सिद्ध अधिकार में बट्टा लगा है। अतएव इन संस्थाओं की स्थापना ही इस उद्देश से हुई है कि मुट्ठी-भर शासक-वर्ग के स्वत्व की रक्षा हो। उँगलियों पर गिने जाने योग्य लोगों की स्वत्व-रक्षा के लिये असंख्य प्रजा का अनिष्ट हो जाय, कुछ मुज़ायका नहीं! परिमित संख्या की रक्षा के लिये अपरिमित संख्या कुचल दी जाती है। पार्लियामेंट के विधान में साम्राज्य-रक्षा को ही प्रश्रय दिया गया है, प्रजा-रंजन का नाम नहीं है। वहाँ केवल राज-सत्ता की स्थापना ही अभीष्ट है। ऐसी दशा में, उक्त संस्थाएँ, पारिभाषिक गुणों के अनुसार, सार्वजनिक संस्थाएँ नहीं हो सकतीं।

सार्वजनिक संस्थाओं की नींव उदारता, पक्षपात-शून्यता और सचाई पर ही खड़ी की जाती है। उनकी जड़ में ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट, पक्षपात, अभिमान, स्वार्थ और निष्ठुरता का लेश भी नहीं रहता। स्वार्थ-परता, अहम्मन्यता तथा क्रूरता आदि तो व्यक्ति-विशेष के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी दुर्गुण समझे गए हैं, फिर व्यक्ति-समूह की परोपकारी वृत्तियों के कार्य-क्षेत्र में यदि उक्त निंदनीय दुर्गुणों के कीटाणु पैदा हो रहे हों, या हुए हों, तो उस व्यक्ति-समूह से युक्त देश या समाज के अमंगल का कहना ही क्या है ? जिस प्रकार सतोगुणी पुरुष सदा सुखी रहकर संसार का उपकार करता है, उसी प्रकार जिस सार्वजनिक संस्था का संचालन-सूत्र केवल ऐसे ही हाथों में है, जिनमें परापकार की कलंक-कालिमा नहीं लगी है, उसी संस्था के किए कुछ होता भी है। सार्वजनिक संस्था जिस वायु-मंडल में जीवन धारण करती है, वह वायु-मंडल यदि मोह, ममता, मान, मत्सर, स्वार्थ-परता, लालच और कूट-नीति की टेढ़ी चालों के विकार से दूषित हो गया, तो समझ लीजिए, वह संस्था अब टिक नहीं सकती।

सच पूछिए, तो संस्था का संचालन करनेवाली मंडली ही स्वयं संस्था है। संस्था का भवन या स्थान उसका शरीर है, और संचालक-मंडली आत्मा। कोई सार्वजनिक संस्था अपने भवन, कार्यालय अथवा ऑफ़िस के असबाबों में नहीं रहती। वह कर्मठ संचालकों की कार्य-तत्परता और उनकी निष्काम जन-सेवा की विशुद्ध भावना में ही रहती है। नियमित कार्य में सोत्साह अनुरक्त व्यक्तियों का समूह ही सभा या संस्था है। इसलिये किसी संस्था का जीवन उसके संचालकों के जीवन से भिन्न नहीं होता। कई संस्थाओं का जीवन-चरित ही उनके संचालकों का जीवन-चरित है। जब संस्था और संचालक परस्पर जल और तरंग, या वाणी और अर्थ की तरह अभिन्न हों, तो फिर उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचना ज़रा भी मुशकिल न होगा। मैं आगे चलकर अपने इस कथन को पुष्ट प्रमाण से सिद्ध करूँगा।

संस्था या सभा का अस्तित्व उसके कार्यकर्ताओं, सदस्यों और संचालकों में ही निहित होता है। अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का प्रत्येक सदस्य यदि उससे संबंध-विच्छेद कर ले, तो वह 'संस्था' रह ही न जाय। फिर, शरीर रूप-संस्था के प्राण-स्वरूप संचालक यदि तमोगुणी होते हैं, तो, तामसी प्रकृति के मनुष्यों की तरह, वह संस्था भी अपने व्यक्तित्व का महत्त्व और अपना अस्तित्व खो बैठती है। इसीलिये सार्वजनिक संस्थाओं का कार्य-वहन-भार ऐसे ही व्यक्तियों के सुपुष्ट स्कंधों पर स्थापित किया जाना चाहिए, जिनके व्यक्तित्व में गुरुत्व है, हृदय में विशालता है, मस्तिष्क में स्थिरता है, नेत्रों में समदर्शिता है, प्राणों में उत्साह है, भावों में पवित्रता है, विचारों में न्याय-शीलता है, वाणी में माधुर्य है, शरीर में स्फूर्ति है, और हाथ में निष्काम परहित-व्रत का बीड़ा है। ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा संचालित सार्वजनिक संस्था से राष्ट्र, देश अथवा समाज का सच्चा हित-साधन हो सकता है।

आजकल भारत में सार्वजनिक संस्थाओं की भरमार देख पड़ती है। भिन्न-भिन्न नामोंवाली सार्वजनिक संस्थाओं का आविर्भाव देशवासियों की जागृति का सूचक है। आधुनिक सभ्यता तो सार्वजनिक संस्था को ही नव जीवन, उद्धार और चैतन्य प्राप्त करने का एक-मात्र मार्ग समझती है। अब आंदोलनों से ही राष्ट्रों की आकांक्षाएँ पूरी हो रही हैं। अभी तक किसी राष्ट्र ने सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा संचालित आंदोलन के अलावा अपने अभीष्ट की सिद्धि का कोई दूसरा मार्ग नहीं ढूँढ़ पाया है। बड़े-से-बड़े शक्ति-शाली राष्ट्र को भी अपने अभाव की पूर्ति अथवा उठने के लिये आंदोलन की ही आवश्यकता होती है। किंतु किसी आंदोलन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये एक सुसंगठित संस्था का होना अनिवार्य है। भारत में यद्यपि सार्वजनिक संस्थाएँ कई हैं, और उनके चलाए हुए आंदोलन भी चल रहे हैं, पर अधिकांश संस्थाएँ अभी तक अपने मंतव्यों को पूरा नहीं कर सकी हैं। उनकी असफलता का कारण क्या है ? यह प्रश्न जटिल है, ज़रा सावधानता से विचार करना होगा।

कितनी ही संस्थाओं का आरंभिक आयोजन बड़ी धूम-धाम और तत्परता से होता है। शुरू में ठाट-बाट और तड़क-भड़क दिखाने में जितनी तत्परता की मात्रा रहती है, उतनी फिर आगे नहीं रहती। "बह्वारंभे लघुक्रिया" की ही कहावत चरितार्थ होती है। बहुत-से लोग संस्थाओं के कार्यकर्ताओं की अयोग्यता को दोष देते हैं। कुछ लोग द्रव्याभाव को ही असफलता का मुख्य कारण बतलाते हैं। मैं द्रव्याभाव को गौण और संचालकों की अयोग्यता को असफलता का प्रधान कारण समझता हूँ। किंतु यहाँ इसका भी स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए कि योग्यता और अयोग्यता कहते किसे हैं ? क्या जो बी० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एम्० ए० पास हैं, उपाधिधारी हैं, प्रभाव-शाली व्याख्याता हैं, प्रतिभा-शाली लेखक हैं, चलते-पुर्जे और विद्वान् हैं, वे ही योग्य कहे जा सकते हैं ? क्या उन्हें छोड़कर संस्था-संचालन की योग्यता को कहीं शरण नहीं है ? क्या ये विशेषताएँ जिनमें नहीं हैं, वे सर्वथा अयोग्य हैं ? नहीं, हर्गिज़ नहीं । एक ही मनुष्य में सब कामों के करने की योग्यता नहीं होती । भिन्न-भिन्न कामों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की योग्यता दरकार है । एक मनुष्य एक काम को पूरा कर देने के लिये जितनी उपयुक्त योग्यता रखता है, दूसरा आदमी उसी काम को उतनी ही ख़ूबी के साथ नहीं कर सकता ; और, दूसरा आदमी जिस काम को पूरा करता है, उसे पहला आदमी उतनी ही योग्यता के साथ नहीं कर सकता ।

कानपुर के तेरहवें साहित्य-सम्मेलन को ही ले लीजिए । लाला फूलचंदजी, कौशिकजी, सनेहीजी, वाजपेयी-जी आदि स्वागत-सभा के कार्यकर्ताओं में कौन डिग्रीधारी था ? कौन उपाधिधारी था ? कौन लेक्चरार था ? किंतु, तो भी, स्वागत का काम प्रशंसनीय ही हुआ । और, वह इसीलिये कि धन-संग्रह, पंडाल-निर्माण, भोजन-विभाग, सेवा-विभाग और प्रदर्शिनी-विभाग के काम अलग-अलग बँटे हुए थे । जो जिसके ज़िम्मे था, उसे वही जी-जान से पूरा करने में लगा था । और, कार्य-संपादन की शैली इतनी उत्तम थी कि कार्यकर्ताओं के चुनाव और उनकी उपयुक्त नियुक्ति पर विस्मय-मिश्रित आनंद होता था । जिस काम को जितनी उत्तमता से सनेहीजी ने किया था, उस काम को शायद लाला फूलचंदजी नहीं कर सकते ; और, बहुत संभव है, लालाजी का काम सनेहीजी से भी न होता । इसी प्रकार समझ लीजिए, सार्वजनिक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं में कार्यानुरूप क्षमता होनी चाहिए । जिस कार्यकर्ता की मानसिक प्रवृत्ति संस्था के किसी विभाग में स्वतः प्रवेश करती और प्रविष्ट होकर उस विभाग के कामों में स्वभावतः दिलचस्पी लेती है, वही कार्यकर्ता सफलता का निष्कंटक मार्ग पकड़ता है । योग्य होकर भी जो कार्यानुरूप क्षमता से हीन है, वह अयोग्य ही है । इसलिये केवल 'योग्यता' पर ही 'सफलता' निर्भर है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । यदि कहा जा सकता है, तो 'योग्यता'-शब्द के अर्थ की व्यापकता का विस्तार बतलाना पड़ेगा । तब योग्यता की परिभाषा में केवल पांडित्य, वक्तृत्व, गुरुत्व और प्रौढ़त्व ही नहीं शामिल रहेगा, बल्कि अनुभव-शीलता, दूरदर्शिता, धीरता, कार्य-दक्षता और बुद्धिमत्ता भी उसमें शरीक हो जायगी । किंतु 'योग्यता' के ये सारे साधन 'सच्ची लगन' के बिना—'लवन बिना बहु व्यंजन जैसे'—फीके हैं । जिसमें 'सच्ची लगन' नहीं, वह न तो अपनी धुन का पक्का हो सकता है, न वह 'असंभव' में 'संभव' की झलक देख सकता है, न वह सहानुभूति और सहृदयता का प्रसाद पा सकता है, न उसकी नसों में अदम्य साहस और उत्कट उत्साह की बिजली दौड़ सकती है, और न उसमें सरलता तथा सादगी की शोभा ही फब सकती है । इसी 'सच्ची लगन' के बदौलत सम्मेलन में सनेहीजी ने साहित्यिकों के चित चुरा लिए, लाला फूलचंदजी ने कोमल वाणी के फूल बरसा दिए, कौशिकजी और वाजपेयीजी ने भी अपने व्यवहारों से सबको मुग्ध एवं तृप्त कर दिया । जिसके हृदय में 'सच्ची लगन' है, लोक-प्रियता और सिद्धि उसी की छाया बनी फिरती हैं, आडंबर उसके पास फटकने नहीं पाता, साधना और साधक सर्वथा अभिन्न हो जाते हैं । वस्तुतः 'सच्ची लगन' वाला अपनी 'लगन' पूरी करने के लिये अपनेको भूल जाता है, अपने अस्तित्व को संस्था के अस्तित्व में सम्मिश्रित कर देता है, आत्म-विस्मृति और पर-परिणति में ही उसकी साधना-सिद्धि की इयत्ता रहती है ।

ऊपर मैं संचालक और संस्था की अभिन्नता को उन्नति की चरम सीमा बतलाते हुए प्रमाण देने का वचन दे चुका हूँ । इसलिये पाठकों से सविनय निवेदन है कि वे हिंदू-विश्वविद्यालय और माननीय मालवीयजी, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन और श्रद्धेय टंडनजी, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा और सुप्रसिद्ध बाबू श्यामसुंदरदासजी तथा 'प्रताप' और 'विद्यार्थीजी' की ओर अपनी विचार-दृष्टि फेरकर देखें, तो मेरी उपर्युक्त बातें प्रत्यक्ष रीति से प्रमाणित हो जायँगी । कहने का तात्पर्य यह है कि जिस संचालक के हृदय में संस्था के साथ सच्ची प्रीति और सहानुभूति होती है, वही उसका आधार-स्तंभ होता है ।

अब मैं संस्थाओं की दुरवस्था के अन्य कारणों की संक्षिप्त चर्चा करके इस लेख को समाप्त करूँगा । अन्य कारणों में प्रत्यक्ष ये हैं—देशवासियों में शिक्षा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभाव, समाज में उच्च-नीच का भेद-भाव, कार्यकर्ताओं में स्वार्थ-त्याग की न्यूनता, व्यक्ति-गत द्वेष और स्वार्थ के कुपरिणाम, दलबंदी, हठ-प्रियता, समय की पाबंदी का न होना, अकर्मण्यता-जनित शिथिलता और धनाभाव। यदि देश में शिक्षा का यथेष्ट प्रचार होता, तो हिमालय से निकली हुई 'राष्ट्रीय संदेश की गंभीर ध्वनि' कन्याकुमारी-अंतरीप तक पहुँच जाती, और ब्रह्म-प्रदेश की आवाज़ कंबु की खाड़ी तक गूँज जाती। यहाँ तो अविद्या के घोर अंधकार में पहुँचकर संदेश-वाहक भी भटक जाते हैं। न-जाने इस देश के 'सच्चे देशवासी' कब सरस्वती के कृपा-पात्र बनेंगे! सामाजिक भेद-भाव भी संस्था-संचालन-पथ का बड़ा भारी रोड़ा है। यहाँ का शिक्षित-समुदाय भी संकीर्णता और अनुदारता का शिकार हो चुका है। चाहे किसी श्रेणी के मनुष्यों के साथ भ्रातृ-भाव से मिलकर—संघ-शक्ति की वृद्धि के ख़याल से—काम करना शिक्षितों को भी नहीं रुचता, फिर 'अविद्यांधस्य का कथा'? स्वार्थ-त्याग की कमी, पारस्परिक द्वेष, हठ-प्रियता, दीर्घ-सूत्रीपन और ईर्ष्या-जन्य अकर्मण्यता आदि संघातक दुर्गुणों के कारण हमारे देश की अनेक सार्वजनिक संस्थाएँ नष्ट हो रही हैं। प्रत्यक्ष के लिये प्रमाण की कोई ज़रूरत नहीं है। जब संचालकों में कर्तव्य-ज्ञान, उत्साह, सच्चरित्रता, आत्म-गौरव, स्वार्थ-विसर्जन और संस्था के प्रति आंतरिक अनुराग का अभाव परिलक्षित होने लगता है, तब जन-साधारण में अविश्वास, संदेह, शंका, अनास्था और असंतोष फैलने के कारण धन का अभाव हो जाता है। किसी संस्था को कभी धनाभाव नहीं हो सकता, बशर्ते कि उसके कार्य-कर्ता 'सच्ची लगनवाले' हों। 'इस संसार में बिना धन के कुछ भी नहीं हो सकता'—इसे सिद्धांत-वाक्य मान लेना ठीक नहीं। हाँ, 'सच्ची लगनवाले के लिये कुछ भी असंभव नहीं है'—इसे यदि सिद्धांत-वाक्य माना जाय, तो नीति के विपरीत नहीं कहा जा सकता। संस्था का संचालक यदि अपनी सचाई, कर्तव्य-परायणता, स्वार्थ-शून्यता और अनन्यता द्वारा जनता की आस्था का पात्र बन जायगा, तो धन उसके आगे आप-से-आप बरसेगा।

दुःख यही है कि हमारे देश की अधिकांश संस्थाओं में ऐसे ही महाशयों का हाथ है, जो अधिकार-मद से अंधे हो रहे हैं, यशोलोलुपता के मारे बेचैन हैं, आपस की खींच-तान और व्यक्ति-गत वैमनस्य में फँसे हुए तथा मत-भेद और मनोमालिन्य फैलाने में ही अपनी इति-कर्तव्यता समझते हैं। सबकी अलग-अलग डफली और अलग-अलग तान है। जो कोई अपनी 'डेढ़ चावल की खिचड़ी' अलग पकाने लग जाता है, वही 'अपने सिद्धांत का पक्का' कहलाने लगता है। इससे एका नहीं बढ़ने का। क्योंकि—

"सर्वे वै यत्र नेतारः सर्वे पंडितमानिनः ;
सर्वे महत्त्वमिच्छंति तद्वृंदमवसीदति ।"

इसी कारण हमारे देश की सार्वजनिक संस्थाओं से यथेष्ट उपकार नहीं होता। आजकल उक्त कोटि के कार्यकर्ताओं का बाहुल्य है। केवल परोपकार और स्वदेश तथा समाज की भलाई के विचार से बिरले ही सज्जन किसी संस्था से संबंध स्थापित करते हैं। अधिकतर उनके 'संबंध' की जड़ में यशोलिप्सा और अर्थ-कामना की गंध रहती है। असहयोग-आंदोलन-जैसे पवित्र आंदोलन में भी ऐसे ही अनेक कार्यकर्ता घुस पड़े हैं। ऐसे कार्यकर्ताओं के दो रूप होते हैं—एक स्वाभाविक (स्वार्थमय) और दूसरा कृत्रिम (परमार्थमय); जैसे हाथी के दाँत दिखाने के और, और खाने के और। जैसे बड़े आदमियों के पास 'मिलने' के लिये 'धराऊ' कपड़े होते हैं, जो मिलने के बाद उतारकर रख दिए जाते हैं, वैसे ही अवसर-विशेष पर ये 'साधु'—नहीं, 'सिंह-चर्मावृत गर्दभ'—बनते हैं, और फिर ज्यों-के-त्यों अपने असली रूप को धारण कर लेते हैं। बेर के फल के समान ऊपर सुंदर सुकोमल और अंदर प्राणाणु-कठोर। मन में कुछ और, ज़बान पर कुछ और, और काम कुछ और। ऐसे कार्यकर्ताओं और संचालकों से सार्वजनिक संस्थाएँ नहीं चलतीं। जिसमें केवल "परोपदेशे पांडित्यं" है, उसका व्यक्तित्व कभी प्रभाव-शाली हो ही नहीं सकता। और, व्यक्तित्व के बिना सार्वजनिक कामों में सफलता बहुत कम होती है। नीतिकारों ने बहुत ठीक कहा है—

"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ;
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्दुरात्मनाम् ।"

जब तक मन, वचन और कर्म की एकता—'सच्ची लगन'—नहीं होती, तब तक मानव-जीवन सार्थक नहीं होता। मन-वचन-कर्म से जो सार्वजनिक सेवा करते हैं, वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्य हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपने स्वार्थ के साथ-साथ संस्था के स्वार्थ की भी चिंता और रक्षा करते हैं। यदि दोनों ही स्वार्थ उनकी दृष्टि में समान हैं, तो वे भी धन्य हैं। पर ऐसे जीवन-संग्राम-विजयी अद्भुत-कौशल-शाली मनुष्य नहीं के बराबर हैं।

हाँ, एक आवश्यक बात छूट रही है। कुछ पंक्तियों में उसे समाप्त करके मैं बिदा होता हूँ। आजकल देखा जाता है, अवैतनिक कार्यकर्ताओं का व्यवहार वैतनिक कर्मचारियों के प्रति अच्छा नहीं होता। अवैतनिक कार्य-कर्ता महाशय वैतनिक कर्मचारियों को उपेक्षा की और तुच्छ दृष्टि से देखते हैं। चाहे वे योग्यता या समाज में उनके सम-कक्ष ही हों, पर उनकी दृष्टि में वेतन-भोगियों का कुछ भी मूल्य नहीं। वेतन-भोगी लोग चाहे कितना भी काम क्यों न करें, पर अवैतनिक कार्यकर्ता महाशय उनके बड़े-से-बड़े कामों को अपने छोटे-से-छोटे काम के पासंग में भी नहीं समझते। सार्वजनिक संस्थाओं की दुरवस्था के कारणों में यह भी एक है। जब तक आदर्श-चरित्र संचालकों का टोटा रहेगा, तब तक सार्व-जनिक संस्थाओं से किसी प्रकार की आशा रखना दुराशा-मात्र है।

शुकदेवसिंह

मेरी छाया

लेकर मेरे साथ जन्म जग में वह आई;
उसी समय से बनी सहचरी वह सुखदाई।
धीरे-धीरे बड़ा हुआ मैं जैसे-जैसे,
वह भी बढ़ती गई बराबर वैसे-वैसे ॥ १ ॥
वह मेरे ही संग सदा खेला करती है;
मेरे बाधा-विघ्न सभी झेला करती है।
जाता हूँ मैं जहाँ, वहाँ वह भी जाती है;
फिर मेरे ही साथ लौट भी वह आती है ॥ २ ॥
मुझ पर उसका प्रेम हुआ है ऐसा भारी,
पल-भर मुझसे कभी नहीं होती वह न्यारी।
घटता-बढ़ता प्रेम सभी का नद के जल-सा;
पर उसका अनुराग अटल है अचल 'अचल'-सा ॥ ३ ॥
उसकी ऐसी प्रीति देखकर मेरी जाया
रहती हरदम दुखी, बहुत मैं भी शरमाया।
वह है सौत-समान प्रिया के दुख का कारण;
कर सकता मैं, हाय, न उसका क्लेश-निवारण ॥ ४ ॥
मैं न चाहता, वह तथापि घेरे ही रहती;
मेरी सब फटकार, मौन रहकर ही सहती।
हरदम मेरे साथ-साथ सब कहीं विचरती;
है ऐसी वह ढीठ, ज़रा भी मुझे न डरती ॥ ५ ॥
रहती पीछे कभी, कभी आगे वह आती;
है चपला-सी चपल, ज़रा भी नहीं लजाती।
धोखे से वह कभी मुझे करती चुंबन-सा;
करती मेरा कभी प्रेम से आलिंगन-सा ॥ ६ ॥
है कलंक का हेतु कालिमा शशि को जैसे,
मेरा जीवन किया कलंकित उसने वैसे।
हो उससे किस तरह, हाय, मेरा छुटकारा;
मिट्टी में मिल गया यशोधन मेरा प्यारा ॥ ७ ॥
मैंने अब तक उसे भली विधि जान न पाया;
अपना परिचय कभी न उसने मुझे बताया।
है पिशाचिनी या कि किसी की है वह माया;
मुझे सिर्फ़ यह ज्ञात कि है वह मेरी छाया ॥ ८ ॥

गोपालशरणसिंह

मयंक-महिमा

[गतांक से आगे, अंतिम अंश]

अस्ताचल चूड़ा-अवलंबित मरीचिमाली-मंडल की
मंद मनोहरता हो गई, प्रकाशित प्रभा हुई हलकी।
लगा दिखाई देने जिससे स्वच्छ स्वरूप सहज ससि का;
जैसे गोले उज्ज्वल काग़ज़ पर हो पड़ा दाग़ मसि का।
लगा सोचने मन में मैं यह विधि-विचित्रता कैसी है;
"तले दिया के अंधकार" की सुनी कहावत जैसी है।
इस प्रकाश-आकर के भीतर तिमिर-अंश कैसे आया;
सुंदर सुमन गुलाब कंटकों में ज्यों विधि ने विकसाया।
नहीं समझ में आता है फिर लगी कालिमा कैसी है;
जिसके जी में आता जो, वह बकता बातें वैसी है।
कोई कहता है, मयंक जब निकला सागर-मंथन से;
लगी कीच जो थी, छूटी वह नहीं अभी उसके तन से।
कोई कहता है मयंक यह है मुनिपत्नी का प्रेमी;

(स्वर्गीय) उपाध्याय श्रीबदरीनारायण
चौधरी "प्रेमघन"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलियुग के कविराज

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]



कविता का दफ़्तर लिए कलियुग के कविराज ;
मारे-मारे फिर रहे टके-टके को आज ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



[बागीश्वरी—तीन ताल]

स्वरकार—'निषाद'

शब्दकार—गोविंदवल्लभ पंत

गीत

रजनि गई, पिया नहिं आए,
पिया नहिं आए, स्वामी नहिं आए।

अंतरा

सखि, कहाँ जाऊँ?
शांति न पाऊँ,
शून्य सदन में मन अकुलाए।

स्थायी

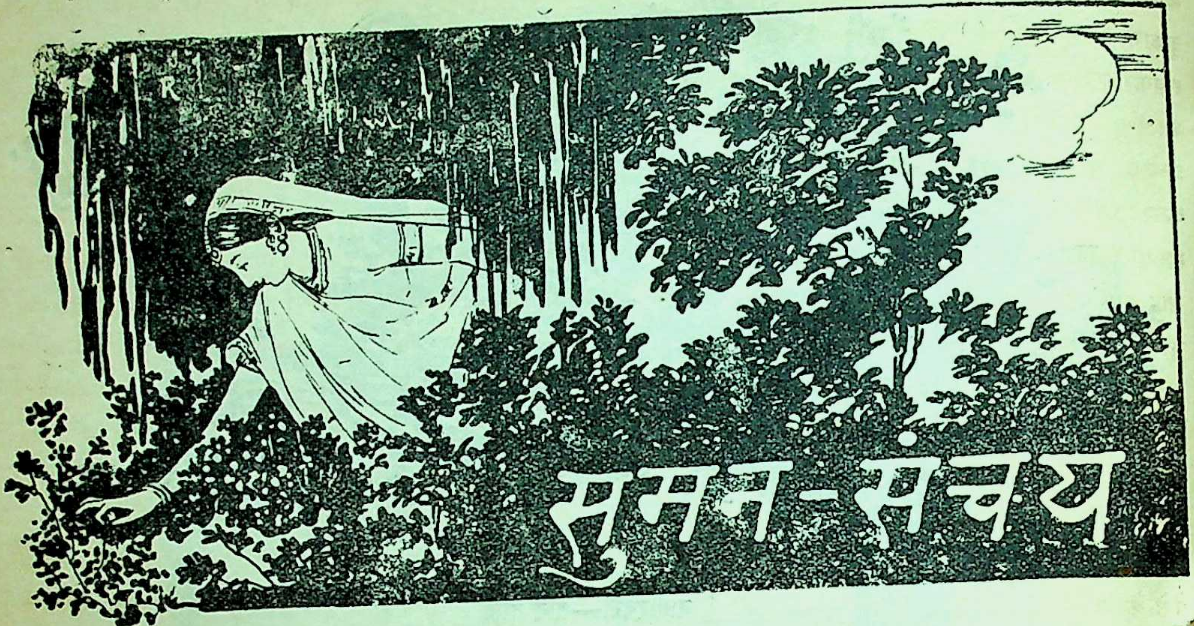
×				२				०				३			
म	ध	म	ग	रे	सा	रे	नी	सा	म	—	म	धनी	सांगं	रेंसां	नीध
र	ज	नि	ग	ई	—	पि	या	—	न	—	हिं	आ-	--	ए-	--
म	सा	ग	रे	म	ग	रे	—	नी	सा	ग	म	धनी	सांगं	रेंसां	नीध
पि	या	न	हिं	आ	—	ए	—	स्वा	मी	न	हिं	आ-	--	ए-	--

अंतरा

सां	नी	ध	म	मध	नीसां	सां	—	ध	नी	ध	नी	गं	रें	सां	—
स	खि	क	हाँ	जा-	--	ऊँ	—	शां	—	ति	न	पा	—	ऊँ	—
सां :	नी	सां	मंगं	गं	रें	सां	—	रें	रें	नी	नी	धनी	सांगं	रेंसां	नीध
शू	—	न्य	स	द	न	में	—	म	न	अ	कु	ला-	--	ए-	--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. भारत में चिकन की दस्तकारी



ज्ञानिक युग के बदौलत जिस प्रकार संसार की पुरानी दस्तकारी का लोप होता जा रहा है, वही क्रम यदि जारी रहा, तो बीसवीं शताब्दी के अंत तक मनुष्य को कोई काम हाथ से न करना पड़ेगा। मोटर, साइकिल और ट्राम-गाड़ी के बदौलत दस क़दम भी पैदल न चलना तो साधारण बात ठहरी। अब कमरे की सफ़ाई तक का काम मशीनें किया करेंगी। बटन दबाया और काम पूरा हुआ। इस प्रकार मनुष्य को हाथ-पैर तक हिलाने की आवश्यकता न रहेगी।

नए-नए आविष्कारों ने प्राचीन कलाओं को चौपट कर दिया। छापेख़ाने खुल गए; प्राचीन सुलेखन-कला का लोप-सा हो गया। मंचेस्टर की तनज़ेब ने हाथ की बनी हुई मलमलों का मूल्य कुछ भी नहीं रक्खा। इसी प्रकार की प्राचीन दस्तकारियों में से चिकन की दस्तकारी भी एक है। पंद्रह वर्ष पहले यह कारीगरी कैसी उन्नत, कैसी प्रशंसनीय थी, और आजकल इसकी क्या दशा है, यही मैं यहाँ दिखलाने का प्रयत्न करूँगा।

चिकन की दस्तकारी भारत में प्राचीन काल से चली आती है, और आज भी किसी-न-किसी रूप में मौजूद है। 'चिकन'-शब्द से एक ऐसे विशेष पदार्थ का बोध होता है, जो चिकना हो। पर यह विशेष पदार्थ कपड़े की चिकनाहट से संबंध रखता है। कुछ लोग कहते हैं, 'चिकन'-शब्द फ़ारसी है; जिसका अर्थ है सुईकारी। संस्कृत-शब्द चिक्कण से भी कोई-कोई इसकी उत्पत्ति बतलाते हैं। हिंदी में 'चिकना' के माने हैं साफ़-सुथरा और खुरदरेपन से रहित। बँगला में चिकन-शब्द का अर्थ होता है सुंदर। जो हो, पर चिकन-शब्द का अर्थ वस्त्र-विशेष है, इसमें संदेह नहीं।

चिकन की दस्तकारी क्या है, यह बतलाना सहज नहीं। मलमल, मख़मल, रेशम और डोरिए इत्यादि कपड़ों पर सुई-तागे से बेल-बूटे बनाना, अथवा सुई से कपड़े के बारीक-बारीक रेशे निकालकर छोटे-छोटे छिद्र (जाली) बना देना चिकनकारी कहलाता है। युक्त-प्रांत के अंतर्गत लखनऊ और बनारस-शहर, तथा बंगाल के अंतर्गत ढाका, मेदिनीपुर, हुगली और चौबीस-परगने के ज़िले विशेष रूप से चिकन के काम के लिये प्रसिद्ध हैं। मदरास और पंजाब के भी कुछ भागों में यह काम होता है।

चिकन की दस्तकारी का काम प्रायः तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

१—सबसे अधिक काम पुतलीघरों के द्वारा होता है। वहाँ सैकड़ों कारीगर काम करते हैं, और बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँगों की पूर्ति होती है । २—कोई चतुर कारीगर एक दूकान खोल लेता है, और अपने अधीन कई कारीगर रखकर उनसे काम करवाता तथा स्वयं उसकी देख-भाल करता है। ३—सबसे अच्छी प्रणाली यह है कि प्रत्येक घर के कुछ व्यक्ति अवकाश के समय यह काम करते हैं । इस प्रकार काम करनेवालों में विशेष संख्या स्त्रियों की होती है । इससे पारिवारिक व्यय-भार कम हो जाता है, कार्यकर्ताओं का मनोरंजन हो जाता है, और एक आवश्यक तथा प्रशंसनीय कला की रक्षा भी होती है । चिकन का काम एक विस्तृत काम है; परंतु जैसे दिहातों में चरखे का चलना परम आवश्यक है, वैसे ही प्रत्येक परिवार में इसका होना भी। बंगाल के हुगली और चौबीस-परगने के ज़िलों में दो हज़ार से तीस हज़ार तक चिकन बनानेवाले मुख्य पेशे के रूप में यह काम करते हैं । इनमें अधिकतर मर्द हैं । पर हुगली में यह काम विशेष रूप से स्त्रियाँ करती हैं, और संभवतः इसी कारण हुगली की चिकन चौबीस-परगने की अपेक्षा कहीं अधिक सुंदर और बारीक होती है ।

चिकन बनाने के लिये चार चीज़ों की ज़रूरत होती है—कपड़ा, डिज़ाइन (नमूना), सूत की गोलियाँ (या लच्छियाँ) और सुई ।

कलकत्ते के चिकन के अनेक बड़े बड़े फ़र्मों के साथ गाँववालों का संबंध रहता है । ये फ़र्म गाँववालों को चिकन तैयार करने के सब सामान देते हैं । गाँववालों और फ़र्मों के बीच एक ऐसा मध्यस्थ (दलाल) रहता है, जो दोनों ओर की आवश्यकताओं को समझता और उन्हें पूरी करने की चेष्टा करता है । उसको थानदार या सरकार कहते हैं । कपड़ों पर जैसे बेल-बूटे बनाने होते हैं, उनका नमूना या तो कपड़ों पर पहले ही से बना लिया जाता है, या—यदि ऐसा न हो, तो—थानदार काग़ज़ पर ही डिज़ाइन बनाकर देता है । थानदार बनने के लिये दो शर्तें होती हैं । पहली यह कि कलकत्ते के फ़र्मों से उसका सीधा संबंध हो; दूसरी यह कि वह उस जगह रहता हो, जहाँ मज़दूर दिहातों में काम करते हैं । उन मज़दूरों को अच्छी तरह जानना भी उसके लिये ज़रूरी होता है ।

थानदार कलकत्ते के इन फ़र्मों से आवश्यक सामान लेकर दिहात में लौट आता है, और अपनी देख-रेख में काम करनेवाले प्रत्येक कारीगर को, उसकी काम करने की योग्यता के अनुसार, सामान बाँट देता है। काम करनेवालों में से अधिकांश मर्द तो बड़े-बड़े कारख़ानों में काम करते हैं, और स्त्री तथा बच्चे अपने-अपने घरों में । थानदार प्रत्येक कारख़ाने और घर से तैयार माल लाकर इकट्ठा करता है । फिर वह माल लेकर उक्त फ़र्मों में पहुँचाता तथा उनसे निश्चित मज़दूरी लेकर कारीगरों को बाँट देता है । मज़दूरी उस काम की बारीकी, उसमें लगे हुए समय और काम के परिमाण पर निर्भर है । कमीशन और थानदार की तनख़्वाह देने पर जो कुछ लाभ बच रहता है, वह कारीगरों में बाँट दिया जाता है । औसत मज़दूरी छः आने से लेकर एक रुपया रोज़ तक होशियार कारीगर को मिल जाती है । इन कारीगरों के अतिरिक्त और भी एक प्रकार के व्यापारी होते हैं । वे फेरीवाले कहलाते हैं। वे लोग अपने सामान से अपने घर पर माल तैयार कराते हैं, और बाहर चारों ओर—केवल भारत में ही नहीं, बल्कि अमेरिका आदि दूर-दूर के देशों तक में—जाकर चिकन बेचते हैं ।

चिकन के कई भेद हैं। उनमें जाली, विलायती जाली, छुटाई जाली, मदरासी जाली, खोल और शिरी (?) प्रसिद्ध हैं । चिकन का काम बंगाल की अपेक्षा लखनऊ में अधिक बारीक और सुंदर होता है । कितने ही प्रमाणों से पता चलता है कि चिकनकारी का जन्म पहले पूर्व-बंगाल में हुआ था । पीछे अवध के बादशाहों द्वारा अवध की राजधानी लखनऊ में इसकी उन्नति हुई । लखनऊ में भी बंगाल की ही तरह काम होता है । परंतु यहाँ टोपियों और साड़ियों पर जो काम होता है, वह प्रायः और कहीं भी नहीं देखा जाता ।

दस पंद्रह वर्ष पहले तक भारत की चिकनकारी उन्नत दशा में थी । किंतु अब उन फेरीवालों का पता ही नहीं लगता, जो सात समुद्र-पार विदेशों में जाकर चिकन बेचते और उससे यथेष्ट लाभ उठाते थे । विदेशी लोग जालीदार मनोहर बूटियों को देखकर मुग्ध हो जाते थे। विदेशी लेडियाँ बड़े शौक़ से उसे ख़रीदती और पहनती थीं । फेरीवालों के भेजे मनीआर्डर इतनी बड़ी संख्या में आते थे कि पोस्ट-ऑफ़िसों में उनके लिये एक अलग विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही खुल गया था। कई ब्रिटिश उपनिवेशों में, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तक में, बहुत-से भारतीय इसी रोज़गार के लिये जा बसे थे। वे वहाँ अपने घर में रहकर चिकन का प्रचार करते थे। परंतु जब से इमिग्रेशन लॉ (विदेश-वास-संबंधी क़ानून) तथा अन्य एशियाई क़ानूनों की रचना हुई, तब से फेरीवालों का औद्योगिक व्यापार नष्ट-प्राय हो गया। महासमर के आरंभ से तो इसके ऊपर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा है। विदेशी व्यापार के बंद होने, गाड़ियों का सुबीता न पाने, रुई और सूत के महँगे होने, मज़दूरी बढ़ जाने और खाद्य पदार्थों की महँगी से यह रोज़गार मृतप्राय हो गया है। जिस नैनसुख के थान का भाव सन् १९१४ के जुलाई में ३) थान था, वही सन् १९२० में ११=) का हो गया। जिस मलमल के थान का मूल्य सन् १९१४ में २)॥ था, वही सन् १९२० में ११॥=) का हो गया! इससे सूत और रुई की बनी हुई अन्यान्य चीज़ों की मूल्य-वृद्धि का भी अंदाज़ा लगाया जा सकता है। भारत से—विशेषकर कलकत्ते से—यूनाइटेड किंगडम, फ़्रांस, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, दक्षिण आफ़्रिका, कनाडा, ब्रिटिश कोलंबिया और यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरिका में बहुत बड़े परिमाण में चिकन भेजी जाती है। कलकत्ते के एक फ़र्म को एक बार ६०,००० रूमालों का ऑर्डर मिला था। इससे साफ़ मालूम होता है कि चिकन का काम और देशों की अपेक्षा यहाँ सुंदर और सस्ता होता है। इसीलिये यहाँ बाहर से ऑर्डर आते हैं। भारत में कलों की कमी के कारण अभी हाथ से बनी चीज़ें सस्ती पड़ती हैं; परंतु दूसरे देशों में ऐसा नहीं होता। इधर विदेशी-वस्त्र-वर्जन से भी इस व्यवसाय को धक्का लगा है। अगर खद्दर की टोपियों अथवा सारियों पर सूती और रेशमी चिकन का काम बनाया जाने लगे, तो व्यवसाय की रक्षा के साथ ही खद्दर के वस्त्रों में सौंदर्य का समावेश हो, और लोग उन्हें ख़ुशी से पहनने भी लगें।

जगदीशनारायण तिवारी

× × ×

२. देवतों की संख्या

ऋग्वेद-संहिता की अनेकों ऋचाओं में देवतों की संख्या तेंतीस मिलती है। नीचे लिखी ऋचाओं को देखना चाहिए—

१।३४।११, १।४५।२, १।१३९।११, ३।६।९, ८।२८।१, ८।३०।२, ८।३५।३, ९।९२।४

देवगण सप्तलोक देव-लोक, अंतरिक्ष और भू-लोक में निवास करते हैं—

"ये देवासो दिवि एकादशस्थ पृथिव्यामधि एकादशस्थ। अप्सु क्षितो माहना एकादशस्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्।"

(१।१३९।११)

"ये देवा दिविषदो अंतरिक्षसदश्च ये ये च इमे भूम्यामधि।"

(अथर्व १०।९।१२)

जिस प्रकार होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा, इन चार श्रेणियों में अपने-अपने कर्मानुसार पुरोहितगण विभक्त हैं, उसी प्रकार महत्त्व या अलग-अलग कार्यानुष्ठान के अनुसार देवगण भी भिन्न-भिन्न नामों को धारण करते हैं। एक ही पुरोहित जैसे अपने अनुष्ठित कर्म से 'होता' आदि कहलाता है, वैसे ही भूर्लोकस्थ अग्नि, अंतरिक्ष-लोकस्थ इंद्र या वायु एवं द्यु-लोकवासी सूर्य भिन्न नामों से परिचित और स्तुत हुए हैं।

निरुक्त (७।५) में यही लिखा है—

"तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वा इंद्रो वा अंतरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः। तासां महाभाग्यात् एकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवंति। अपि वा कर्मपृथक्त्वाद् यथा होता अध्वर्यू ब्रह्मा उद्गाता इत्यप्येकस्य सतः। अपि वा पृथग् वा स्युः। पृथग् हि स्तुतयो भवंति तथाभिधानानि।"

शतपथ-ब्राह्मण के मत से आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, द्यौ और पृथिवी मिलकर तेंतीस देवता होते हैं। और प्रजापति चौंतीसवें हैं—

"अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादश आदित्या इमे एव द्यावापृथिवी त्रयस्त्रिंशौ। त्रयस्त्रिंशद् वै देवाः। प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशः।" (शत० ब्रा० ४।५।७।२)

शतपथ ब्राह्मण के एक स्थल (११।६।३।५) में द्यावा-पृथिवी के स्थान में इंद्र और प्रजापति को लेकर तेंतीस संख्या मानी है। ऐतरेय ब्राह्मण (२।१८) में लिखा है—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति और वषट्कार, ये तेंतीस सोमपायी देवता हैं; और, ११ प्रयाज, ११ अनुयाज और ११ उपयाज, ये तेंतीस असोमपायी (मांसाहारी) देवता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत के वन, उद्योग, अनुशासन और शांति— इन पर्वों में उक्त तेंतीस देवतों का उल्लेख है। रामायण में दोनों अश्विनीकुमारों को भी उक्त तेंतीस प्रधान देवतों में परिगणित किया है—

"आदित्यं जज्ञिरे देवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ;
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च परंतप।"
(रामायण, आरण्य-कांड १४।१।१)

पौराणिक आठ वसुओं के नाम हैं—धर, ध्रुव, सोम, सविता (विष्णु), अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। परंतु भिन्न-भिन्न पुराणों में देवनामावली भी भिन्न ही है। अज, एकपाद, अहिर्बुध्न, पिनाकी, ऋत, पितृरूप, वृषाकपि, त्र्यंबक, शंभु, हवन और ईश्वर, ये एकादश रुद्रों के नाम भी लिखे हैं। महाभारत के आदि-पर्व (१२१ अध्याय) में तो विलक्षण ही संकेत उपलब्ध होते हैं। यथा—

"मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महायशाः ;
अजैकपादहिर्बुध्नः पिनाकी च परंतपः।
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च विशांपतिः ;
स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रास्तत्रावतस्थिरे।"

इत्यादि। जिस प्रकार तेंतीस देवतों के नामों में भेद है, उसी प्रकार उनकी संख्या में भी। और तो क्या, ऋक्-संहिता में ही ३।६।६ और १०।५२।६ ऋचाओं में देव-संख्या ३३३६ निर्दिष्ट है। वाजसनेय-संहिता (३३।७), शतपथ-ब्राह्मण (११।६।३।४) और बृहदारण्यक-उपनिषद् में भी इस प्रकार की संख्याएँ प्राप्त होती हैं—

"त्रीणि शतानि त्रीसहस्राणि अग्निं त्रिंशच्च देवा
नव चासपर्यन्।" (ऋग्वेद ३।९।९)

ऋक्-संहिता में महत्, क्षुद्र, युवक और वृद्ध कहकर देवगणों का श्रेणि-विभाग किया गया है। कहीं सभी को श्रेष्ठ मानकर वर्णन किया है—

"नमो महद्भ्यः नमो अर्भकेभ्यः नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान् यदि शक्नुवाम न ज्यायसः शंस्य आवृक्षि देवाः।"
(१।२७।१३)

"नहि वो अस्ति अर्भको देवासो न कुमारकः।
विश्वे सतो महांत ईत्।" (८।३०।१)

अथर्व-वेद में लिखा है कि जल, स्थल, वृक्ष, लता, विश्व और ब्रह्मांड, सर्वत्र ही देवगण विराजते हैं—

"ये देवा दिविस्थ ये पृथिव्यां ये अंतरिक्षे ओषधीषु पशुषु अप्सु अंतः।" (अथर्व-वेद १।३०।३)

वैदिक-साहित्य के ज्ञाता इन नामों और संख्याओं का सामंजस्य विज्ञान की दृष्टि से कर सकते हैं।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

× × ×

३. जिज्ञासा

गत वैशाख-मास की माधुरी में बाबू जयशंकरप्रसाद-जी के "जनमेजय या नाग-यज्ञ नाटक" का जो अंश छपा है, उसमें पृष्ठ ३१० के पहले कॉलम में शीला और सोमश्रवा का संवाद आरंभ हुआ है। शीला के प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए सोमश्रवा ने "××× पाणिगृहीता भार्या क्या पितृ-कुल में वास करेगी ? ×××" कहा है। अब यहाँ पर विचारने की बात यह है कि 'पाणिगृहीता'-शब्द का व्यवहार किसके लिये होता है ? यह शब्द जिस अर्थ का बोध करानेवाला है, उसके विपरीत अर्थ में यहाँ प्रयुक्त हुआ है। सोमश्रवा शास्त्रीय रीति से विवाहिता पत्नी के विशेषण-रूप में इस शब्द का प्रयोग करता है; किंतु पाणिनि इत्यादि वैयाकरणों की राय से "पाणिगृहीती"-शब्द पत्नी-बोधक है; "पाणिगृहीता" का प्रयोग भोगिनी भार्या अर्थात् वेश्या आदि के लिये होना चाहिए। उन लोगों ने स्त्रीप्रत्यय के प्रकरण में "पाणिगृहीती भार्यायाम्, अन्या पाणिगृहीता" लिखा है। यदि यह कहा जाय कि यह संस्कृत नहीं है, हिंदी है, यहाँ वैसा 'गृहीती', 'गृहीता' का भेद नहीं रक्खा जायगा, तो ठीक नहीं। यह शब्द जब इस रूप में अर्थ का अनर्थ कर रहा है, तब या तो इसका प्रयोग न किया जाय, और यदि किया जाय, तो शुद्ध रूप में।

दूसरी बात यह है कि उसी पृष्ठ में, आगे चलकर, दूसरे कॉलम में, सोमश्रवा ने शीला से कहा है— "××× राजा का अग्निहोत्र भी मेरे साथ है। ×××" यहाँ भी यह संदेह होता है कि "अग्निहोत्र" एक कर्म का नाम है; जो शास्त्रोक्त रीति से शास्त्रोक्त समय पर आरंभ होकर एक मास अथवा कर्ता के आजीवन के लिये होता है। मृत्यु होने पर कर्ता का शव उसी अग्निहोत्र की आग से जलाया जाता है। इससे अग्निहोत्र कोई जंगम वस्तु नहीं ज्ञात होता कि वह किसी के साथ फिरा करे, जैसा कि लेखक महोदय ने लिखा है। पूर्वोक्त वाक्य पढ़ने से तो जान पड़ता है, अग्निहोत्र कोई ऐसी चीज़ है, जो कहीं जा सकती है, या कोई उसे ले जा सकता है। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में बात ऐसी नहीं है । यह शब्द यहाँ किस तात्पर्य से प्रयुक्त हुआ है, यह संदेह हो रहा है । आशा है, बाबू जयशंकरप्रसादजी उक्त दोनों संदेहों को दूर करने की कृपा करेंगे ।

कामताप्रसाद पांडेय

× × ×

४. एक सूचना

माधुरी की सम्मेलन-संख्या में, पृष्ठ २८६ पर, श्रीयुत सकलनारायणजी ने लिखा है—

"शोण के पूर्वी तट पर 'कोइलवर' के सामने बड़ा भारी सून-सान मैदान देख पड़ता है । उसकी अंतिम सीमा बिहटा-स्टेशन के पास समाप्त होती है । वहीं च्यवन का आश्रम था । × × × ×"

मैं च्यवनजी के आश्रम के विषय में माधुरी के पाठकों से यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि गोंडा-ज़िले के अंतर्गत जो रेल की सड़क गोंडे से बलरामपुर को, उत्तर की ओर, जाती है, उसी के साथ जो पक्की सड़क है, उसके पाँचवें मील के पास सुभागपुर नाम का एक गाँव है । इस गाँव के पास एक लंबा तालाब है ; जिसके दक्खिन ओर एक प्राचीन बस्ती का भग्नावशेष है । आस-पास कोसों के लोग च्यवन का आश्रम यहीं बताते हैं, और प्रतिवर्ष यहीं मेला लगता है । इस आश्रम से उत्तर-पश्चिम ओर च्यवनजी के पुत्र का भी आश्रम लगभग तीन मील पर है ।

क्या सकलनारायणजी यह बतलाने की कृपा करेंगे कि उन्होंने जो आश्रम च्यवनजी का लिखा है, वह यों ही अनुमान से, अथवा और कोई प्रमाण है ?

शांतिप्रसाद शुक्ल

× × ×

५. विद्यालंकारजी के कुछ अनौचित्य

जून की 'सरस्वती' में 'सीता-परित्याग पर कालिदास'-नामक एक लेख प्रकाशित हुआ है । उसके लेखक श्रीमान् जयदेवजी विद्यालंकार हैं । लेख में विचार-संबंधी कई अनर्गल और उपहासास्पद बातें पाई जाती हैं । कुछ बातें तो ऐसी हैं, जिन्हें पढ़कर सहृदय जनों के हृदय पर आघात पहुँचे विना नहीं रह सकता । माना कि परमेश्वर की ओर से विचार-स्वातंत्र्य सबको मिला है, किंतु उसका दुरुपयोग करना मानसिक मुक्ति की अवहेलना करना है । कल्पना—विशेषकर अपनी प्राचीन और पवित्र सद्गाथाओं के संबंध में कल्पना—उसी दरजे तक उपयुक्त है, जहाँ तक सजीवता, सत्य और सहृदयता का नाश न हो । विद्यालंकारजी ने मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचंद्र और जगज्जननी जानकीजी पर कई आपत्ति-जनक कल्पनाएँ गढ़ी हैं । पृष्ठ ६२४ में आप लिखते हैं—

"कुछ भी हो, आदि-कवि ने राम को मनुष्य-सीमा के भीतर रक्खा है । यदि सभी नायक देव-तुल्य हों और उनमें सब प्रकार से पूर्णता हो, तो उन पर संकट ही न पड़े, उनके जीवन में इतनी घटनाएँ, इतनी समस्याएँ, इतने संकट, इतनी दुबधाएँ न हों ।"

आपका यह भी कहना है कि "क्या उन्हें (वाल्मीकि को) भय था कि यदि राम के जीवन की इस घटना का उल्लेख न करूँगा, तो लोग राम को आदर्श देव मान बैठेंगे ?"

उपर्युक्त वाक्-चातुर्य पर हम क्या कहें ? क्या देवता सब प्रकार से पूर्ण ही होते हैं ? क्या उनके जीवन में संकटों का पड़ना, या अनेक घटनाओं, अनेक समस्याओं, अनेक संकटों और अनेक दुबधाओं का होना विस्मय-जनक है ? हमारी सम्मति में तो वही देवता है, जो अपूर्णता में पूर्णता, अनेकता में एकता, संकट में सुविधा और दुबधा में शांति का अन्वेषण करता है । आपकी राय में 'आदि-कवि ने राम को मनुष्य-सीमा के भीतर रक्खा है ।' यद्यपि यह बात है नहीं, पर काल-चक्र ने, अपूर्ण मनुष्यों ने और आदि-कवि की विचित्र प्रतिभा ने आपके आगे तो नहीं, किंतु संसार के आगे यह प्रत्यक्ष कर दिया है कि श्रीरामचंद्रजी देव-तुल्य ही नहीं, बरन् देवाधिदेव परमात्मा हैं ।

पृष्ठ ६३४ पर विद्यालंकारजी कल्पना करते हैं—

"कदाचित् रजोधर्म का प्रकट होना ही वह्नि-परीक्षा थी ।"

इस पर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी करना एक प्रकार से व्यर्थ ही है । भला, यह भी कोई लिखने का ढंग है ? यह भी कोई कल्पना है ? इससे अच्छा तो यही था कि आप वह्नि-परीक्षावाली घटना को—यदि उसके विषय में विचार करना आपके लिये आकाश-कुसुम-सा था—बिलकुल निर्मूल ही मान लेते ; जैसा कि आपने, आदि-कवि और कालिदास को अपने साथ घसीटकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सिद्ध कर लिया है कि राम देव-तुल्य नहीं थे। अस्तु, ऐसी ही और भी कई बातें हैं, जिन पर प्रकाश डालना केवल समय को नष्ट करना है।

एक बात जो हमें बहुत ही अनुचित मालूम हुई। लेखक महाशय ने भगवान् रामचंद्रजी और जगज्जननी सीताजी का बहुत ही अनादर-पूर्ण शैली के साथ उल्लेख किया है। उनके नाम के पहले या पीछे 'श्री' या 'जी' जाने दीजिए, उनका उल्लेख एकवचनांत क्रिया और सर्वनाम से किया है। देखिए—

"उसके पति रामचंद्र को और भी अधिक आनंद था।" (पृष्ठ ६२८)

"सीता रथ पर चढ़ी हुई ख़ुश हो रही थी।" (पृष्ठ ६३१)

"सीता ने उसको नहीं कोसा।" (पृष्ठ ६३१)

"अपने पति राजा राम के प्रति संदेशा भेजती है।" (पृष्ठ ६३२)

"जैसे राम जानता था।" (पृष्ठ ६३३)

"सीता भी अपने को ख़ूब जानती थी।' (पृष्ठ ६३३)

कहाँ तक लिखें, आदि से अंत तक ऐसे ही अनर्गल और अक्षम्य, अनुचित प्रयोगों से लेख भरा पड़ा है। हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि विद्यालंकारजी श्रीरामचंद्र-जी को परमेश्वर या देव-तुल्य मानें; किंतु कम-से-कम रामचंद्रजी को आप एक शिष्ट और भले आदमी की तरह लिखते, तो आपका क्या बिगड़ जाता? आप ही नहीं, हम बहुत दिनों से और-और लेखकों के किए हुए ऐसे अनुचित प्रयोग देख रहे हैं। आश्चर्य है उन पाठकों पर, जो ऐसे अनौचित्य देखकर एक शब्द भी नहीं कहते। और, महान् आश्चर्य तथा शोक है उन संपादकों पर, जो आँख बंद कर, विना कुछ काट-छाँट किए, ज्यों-के-त्यों ऐसे-ऐसे लेख प्रकाशित कर दिया करते हैं। पत्र-पत्रिकाओं का इसी में गौरव नहीं है कि जैसे-तैसे उनकी पृष्ठ-संख्या बढ़ा दी जाय, और उनके संपादन में अधिक परिश्रम न करना पड़े। अभी कुछ दिन हुए, एक सज्जन ने लोक-मान्य तिलक को 'महाशय तिलक' लिखा था, और उस पर कुछ टीका-टिप्पणी भी हुई थी; किंतु हमें यह देखकर अत्यंत आश्चर्य और शोक होता है कि ऐसे-ऐसे अनुचित प्रयोगों को देख-सुनकर लोग हाथ-पर-हाथ धरे चुप-चाप बैठे हैं! यह अपने जातीय गौरव का ह्रास नहीं तो क्या है? क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि भविष्य में, हमारे संकेतों की ओर ध्यान देकर, सहृदय सुलेखक और सत्संपादक महोदय उपर्युक्त अनुचित प्रयोगों के दूर करने में यथासाध्य चेष्टा करेंगे?

वियोगी हरि

× × ×

६. बत्तीस वर्ष की निद्रा

कुंभकर्ण की दीर्घ निद्रा प्रसिद्ध थी, पर थी वह छः ही मास की। इधर एक चिरकाल-व्यापिनी निद्रा का समाचार मिला है। स्वीडन के स्टॉकहम-नगर के पास एक स्थान है मांस्टरीस। यहाँ की एक १३ वर्ष की लड़की स्कूल में पढ़ती थी। वहीं वह एक दिन पढ़ते-पढ़ते सो गई। मास्टरों ने उसे कितना ही जगाया, पर उसकी नींद न खुली। लोग उसे घर ले गए। वहाँ वह ३२ वर्ष तक बराबर सोती ही रही। जब जगी, तो उसने देखा, वह ४५ वर्ष की अधेड़ हो चुकी है! एक ही नींद में बाल्यकाल और युवावस्था भी समाप्त हो गई। ख़ैर, इसकी उसने कुछ परवा नहीं की, और फिर से पढ़ना-लिखना आरंभ कर दिया; क्योंकि उसे अपनी शक्तियों में कुछ भी अंतर नहीं जान पड़ा। बल्कि उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे वह रात-भर ख़ूब सोने के बाद उठी हो। इस लड़की का नाम है कैरोलिन कार्लमैंडेटर।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी

× × ×

७. 'औध'-कवि का समय और 'द्विज चंद' की रचना

नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, (भाग ३, अंक ४) में श्री पं० रामाज्ञा द्विवेदी बी० ए० का—रायबरेली ज़िले के कुछ कवि—कवि 'औध'-कृत 'अवध-सिकार'-शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस नोट में उसी के संबंध में कुछ निवेदन किया जायगा। उक्त लेख के लेखक महाशय ने कविवर अयोध्याप्रसादजी वाजपेयी के 'अवध-सिकार'-नामक ग्रंथ को '१५० वर्ष से ऊपर का बना हुआ' ठहराया है। यह भी लिखा है—"जो कुछ हो, अयोध्याप्रसादजी को मरे हुए लगभग १०० वर्ष हुए।" इस पर निवेदन यही है कि उपर्युक्त दोनों ही बातें भ्रमात्मक हैं। कविवर 'औध' को पैदा हुए अभी १२० वर्ष से अधिक नहीं हुए! 'शिवसिंहसरोज' और 'मिश्रबंधु-विनोद' देखने का कष्ट यदि उठाया गया होता, तो इस प्रकार की भ्रम-पूर्ण बातें न लिखी गईं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती। 'शिवसिंहसरोज' सं० १९३४ वि० में बना था। उसमें स्पष्ट लिखा है—"अयोध्याप्रसाद वाजपेयी सातनपुरवा ज़िले रायबरेली औध छाप है विद्यमान हैं।" रायबरेली ज़िले के 'सातनपुरवा'-नामक गाँव में लखनऊ के (ऊँचेवाले) कुछ वाजपेयी रहते हैं। कविवर अयोध्याप्रसादजी का जन्म सं० १८६० में, इसी ग्राम में, उन्हीं वाजपेयियों के वंश में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० नंदकिशोर वाजपेयी था। कविवर 'औध' को बौंड़ी, चंदापुर, बलरामपुर, गोंडा आदि राज्यों में अच्छा सम्मान प्राप्त हुआ। सीतापुर ज़िले की रामपुर और मल्लापुर-नामक रियासतों में भी इनकी अच्छी ख़ातिर होती थी। वाजपेयीजी के वंशज आजकल चंदापुर और वाजपेयीपुर (ज़िला-बहराइच) में रहते हैं। इनके कुछ कुटुंबी ज़िला-बहराइच के पंडितपुरवा और बहिरापुर-नामक ग्रामों में भी हैं। हमारे पूज्य पितामह स्वर्गीय पं० नंदकिशोर मिश्र (लेखराज) तथा पूज्य पितृव्य स्वर्गीय पं० लालबिहारी मिश्र (द्विजराज) से वाजपेयीजी बहुत अच्छी तरह परिचित थे। हमारे जन्म-स्थान गँधौली से एक मील के फ़ासले पर एक ग्राम 'बौनाभारी' है। एक बार पं० अयोध्याप्रसादजी एक बारात में वहाँ आए थे। आप 'देव' और 'पद्माकर' की कविता से बड़ा प्रेम रखते थे। कविवर पद्माकर से तो 'सोरों' में आपने मुलाक़ात भी की थी। वाजपेयीजी की कविता अनुप्रासों से भरी है। शायद यह देव और पद्माकर की कविता से अधिक प्रेम होने का फल हो। शब्दों की तोड़-मरोड़ भी इनकी रचना में खूब देख पड़ती है। फ़ारसी, उर्दू, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्द भी इनकी कविता में बहुत मिलते हैं। सुनते हैं, यह बड़े परिहास-प्रिय थे। वाजपेयीजी की कविता का अधिक भाग शंकर और रामचंद्र की प्रशंसा तथा स्तुति से संबंध रखता है। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'रघुनाथ-शिकार' है। 'शिवसिंहसरोज' में यद्यपि इनके कई ग्रंथों के नाम लिखे हैं, पर 'रघुनाथ-शिकार' का उल्लेख नहीं है। संभव है, शिवसिंहसरोज के रचना-काल के समय तक यह ग्रंथ न बना हो। 'रघुनाथ-शिकार' कई नामों से प्रसिद्ध है। 'शिकार-गाह', 'अवध-सिकार', 'राम-आखेट', 'रघुनाथ-आखेट' आदि उसी के भिन्न-भिन्न नाम हैं। अब तक यह, संभवतः, तीन बार छप चुका है। पहली बार १८६६ ई० में, दूसरी बार १९०५ ई० में, और तीसरी बार १९१९ ई० में। नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका के लेखक महाशय को जो हस्त-लिखित प्रति मिली है, वह बहुत अशुद्ध जान पड़ती है। सबसे शुद्ध पुस्तक तृतीय संस्करण की है। इसका संपादन श्रीयुत पं० चंपाराम मिश्र बी० ए० ने किया है। आपने कविवर अयोध्याप्रसादजी के पौत्रों से उनका वृत्तांत ज्ञात किया है, अतः उसके प्रामाणिक होने में कुछ भी संदेह नहीं हो सकता। 'शिवसिंहसरोज' और 'मिश्रबंधु-विनोद' में इनका जो समय दिया गया है, उसका भी समर्थन उससे हो जाता है।

हमारे पूज्य पितृव्य स्वर्गवासी पं० लालबिहारी मिश्र 'द्विजराज' कवि ने एक बार वाजपेयीजी से महाकवि 'देव' का सुप्रसिद्ध 'काव्य-रसायन' ग्रंथ पढ़ा देने की इच्छा प्रकट की थी। वाजपेयीजी उस समय स्वयं उक्त ग्रंथ-रत्न का अध्ययन कर रहे थे। बड़े प्रेम और आदर के साथ कविवर अयोध्याप्रसादजी ने कहा—"भैया, इस समय तो मुझे इस अद्वितीय ग्रंथ का पूर्ण ज्ञाता कोई दिखलाई नहीं पड़ता।" देवजी को यह बहुत बड़ा कवि मानते थे, और उनकी रचना पर मुग्ध थे। 'देव' के सैकड़ों छंद वाजपेयीजी को याद थे। कविवर अयोध्याप्रसादजी का स्वर्गवास सं० १९४२ में, अयोध्या में, हुआ। इस प्रकार आपका स्वर्गवास हुए अभी केवल ३८ वर्ष ही हुए हैं। 'मरे हुए लगभग १०० वर्ष' लिखना बिलकुल भ्रम-पूर्ण है। वाजपेयीजी की रचना बड़ी सरस और भाव-पूर्ण होती थी।

उसी लेख में लेखक महाशय ने एक और विचित्र बात लिख डाली है! वह है 'जवाहिरजी के पौत्र शीतलादीनजी मिश्र' के संबंध में। लिखा गया है—"जवाहिरजी के पौत्र पं० शीतलादीनजी मिश्र अब भी जीवित हैं, और 'द्विज चंद' के नाम से कविता करते हैं। × × × आप कविता के ही नहीं अनेक बाजाओं (जों?) के ज्ञाता हैं × × × डॉक्टर भी हैं। × × × आपकी एक कविता सुनिए। ऊधोजी को फटकार है—

"ऊधोजी सूधो गहो वह मारग ज्ञान की तेरी जहाँ गुदरी है;
कोऊ नहीं सिख मानि है ह्याँ यक श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है।
पै ब्रजबाला सबै बिगरीं × × × ×
एक जो होय तो ज्ञान सिखाइए, कूपहि में यहाँ भाँग परी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विज चंदजी की एक और छोटी-सी कविता है। उपमा की छटा खूब ही जड़-सी दी गई है—

× × × मन बाल गुड़ी बहु रंगन जोरी;
तामैं माझ दियौ द्विज चंद सु लै अपने गुन की रस डोरी।
फेरिके नैन परै तन पै, बदनामी की तापै लगाई पुछोरी;
प्रीति को चंग उमंग चढ़ायकै सो हरि हाथ बढ़ायके तोरी।"

उपर्युक्त उद्धृत अंश पढ़कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ! आजकल एक ही 'उपनाम' से अनेक नए कवि कविता करते हैं। कुछ लोग तो इससे भी आगे बढ़ गए हैं। वे प्राचीन कवियों के नामों पर अपना 'उपनाम' रखते हैं! 'समस्या-पूर्ति'-संबंधी मासिक पत्रों को देखने से इस कथन की सत्यता मालूम पड़ेगी। इस कार्य से साहित्य-संसार में बड़ा भ्रम फैल जाने की आशंका है। नए कवियों की इस बुरी प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। हमें तो इस समय महाकवि सेनापति का यह कथन स्मरण हो आया!—

"सुनौ महाजन चोरी होति चारि चरन की
तातें सेनापति कहै तजि उर लाज को;
लीजियो बचाइ ज्यों चुरावै नाहिं कोई सौंपी
वित्त की-सी थाती मैं कबित्तन के ब्याज को।"

सेनापतिजी ने इसी डर से कि आगे चलकर कोई महानुभाव मेरे छंदों को ज़बर्दस्ती अपने न बतलाने लगें, अपने प्रत्येक छंद में अपना नाम रक्खा है।

इन 'द्विज चंद'जी का साहस तो बहुत बड़ा दिखलाई पड़ता है! आपके उपनाम और भारतेंदु हरिश्चंद्र के 'हरिचंद' उपनाम में काफ़ी फ़र्क़ होते हुए भी आपने भारतेंदुजी के दोनों छंद अपने बना डाले! पर यह प्रयास व्यर्थ है! भारतेंदुजी ने अपनी 'प्रेम-माधुरी' में अपने उपनाम से ये दोनों छंद लिखे हैं। उसके बाद प्रसिद्ध संग्रहकार मुंशी हफ़ीज़ुल्लाह ख़ाँ ने भी अपने 'हज़ारे' में उन छंदों को 'हरिचंद' ही के नाम से दिया है। इस पर कुछ टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है! नहीं मालूम, 'पत्रिका' के लेखक ने ही उन छंदों का रचयिता द्विज चंदजी को माना है, अथवा स्वयं 'डॉक्टर साहब' भी उनसे सहमत हैं!

पाठकों के मनोरंजनार्थ हम उपर्युक्त दोनों छंद भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'प्रेम-माधुरी' से उद्धृत किए देते हैं—

"ऊधोजू, सूधो गहो वह मारग, ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है;
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्याँ, इक श्याम की प्रीति-प्रतीति खरी है।
ये ब्रजबाला सबै इक-सी, हरिचंदजू मंडली ही बिगरी है;
एक जो होय, तौ ज्ञान सिखाइए, कूप ही में इहाँ भाँग परी है।"
"रूप दिखायकै मोल लियो, मन बाल गुड़ी बहु रंगन जोरी;
चाहत माँझो दियो हरिचंदजू, लै अपने गुन की रस डोरी।
फेरिकै नैन परे तन पै, बदनामी की तापै लगाइ पुँछोरी;
प्रीति की चंग उमंग चढ़ायकै, सो हरि हाथ बढ़ायकै तोरी।"

सहृदय पाठक देखेंगे, 'पत्रिका' में प्रकाशित छंद कितने अपूर्ण और अशुद्ध हैं। अब यह निर्णय करना विज्ञ पाठकों पर निर्भर है कि उपर्युक्त दोनों छंद 'हरिचंद' के हैं या 'द्विज चंद' के!

हम तो 'हरिचंद' के ही शब्दों को दुहराकर लेखनी को विश्राम देते हैं—"कूप ही मैं इहाँ भाँग परी है!"

विपिनविहारी मिश्र

× × ×

८. व्यथित कलिका

(१)

क्षुब्ध, चंचल वायु के अति वेग से,
खिन्न कलिका एक भू पर आ गिरी;
देखकर घबरा गई अपना पतन,
क्योंकि थी भोली अभी तक वह निरी।

(२)

देख उसकी स्वच्छता सुकुमारता,
आर्द्र होकर रो दिया सबका हृदय;
आ गिरा मानों मही पर भाग्य से,
चाँद का टुकड़ा, सुधा का या घड़ा।

(३)

या कहीं से धूल में आकर मिली,
मोतियों की मोहिनी नव कांति है;
गिर गई या व्यस्त होकर धूल में—
कीर्ति है—यों हो रही कुछ भ्रांति है।

(४)

आज अथवा इंदिरा के दंत की
है प्रभा सौभाग्य से इसको मिली;
सोहती है स्वर्ग की वह ज्योति-सी,
कुंठिता कलिका अभागी अधखिली।

(५)

सौरभित करती कभी वह वायु को,
दे हृदय, सर्वस्व अपना सौंपकर;
अज्ञता-वश वायु ने धक्के दिए—
कर दिया निर्जीव निष्ठुर कोप कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

चित्त पर अधिकार उसका है अटल,
हो बड़ी वह प्रेमिका बनती कभी ;
प्यार से वितने उसे तब देखते,
चाहते छूना उसे मोहित सभी ।

(७)

गाल की समता उसे मिलती कभी
पंखड़ी उसकी लजाती है अधर ;
सेज पर रहती पड़ी मन मोहती,
प्यास की होती किसी की आँख तर ।

(८)

वायु ने आशा सभी उसकी कुचल,
नष्ट ही उत्साह सारा कर दिया ;
हा किसी कोमल कलेजे को जला
क्रूर ने जलता अँगारा कर दिया ।

जगन्नाथप्रसाद शर्मा 'रसिकेश'

× × ×

९. आजकल के हिंदी-नाटक और नाटककार

आजकल साहित्य-सर में कुछ ऐसे नाटक-नलिन प्रस्फुटित हुए हैं, जिन्हें देखते ही रस-रसिक भौंरे भिनभिनाकर भौं सिकोड़ लेते हैं । कारण, आजकल नाटक उन्हीं लेखकों द्वारा लिखे जा रहे हैं, जिनकी मौलिकता एकदम मुरझा गई है । जिनकी प्रवृत्ति अधिक दिनों से केवल अनुवादों की ओर ही झुकी है, भला वे नाटक कैसे लिख सकते हैं ?

काव्य के दो भेद हैं, एक श्रव्य, दूसरा दृश्य । श्रव्य-काव्य वही है, जिसका प्रभाव श्रोताओं पर पड़े । और दृश्य वह है, जिसका दर्शकों पर प्रभाव पड़े । नाटक की गणना 'काव्य-प्रकाश' तथा बड़े-बड़े आचार्यों ने दृश्य-काव्य में ही की है । 'वाग्भट' नाटक को किसी अन्य संज्ञा से सुशोभित करना चाहते थे ; परंतु वह असफल हुए । इसका पूर्ण दिग्दर्शन फिर कराऊँगा ।

जब नाटक वस्तुतः काव्य है, तब उसके लेखक का कवि होना अत्यावश्यक है । कवि भी दो प्रकार के होते हैं । एक 'प्राज्ञ', दूसरे 'प्राकृतिक' । प्राज्ञ कवि वही है, जो अध्ययन करके कविता करे । प्राकृतिक वह है, जो थोड़ा अध्ययन करके अच्छी कविता करे * ।

* इस विषय की पूर्ण विवेचना 'नाट्य-शास्त्र' (भरत मुनि-कृत) में देखो ।—लेखक

मेरी समझ में, आजकल के अधिकांश नाटककार यह भी नहीं जानते कि नाटक की भाषा कैसी होनी चाहिए, नाटक में किन गुणों की आवश्यकता है । यह तो विषय विस्तृत और जटिल है । इसके लिये अध्ययन और अनुभव की ज़रूरत है । एक बार एक नाटक-लेखक मार्ग में मुझे मिले थे । उन्होंने अपने लिखे हुए नाटक की एक प्रति मेरे हाथों में देते हुए कहा—"पंडितजी, यही नाटक अब की लिखा है, जिसकी चर्चा ज़ोरों से हो रही थी ।" मैंने घर पर आकर उस पुस्तक को अच्छी तरह देखा । पुस्तक कैसी थी, इसका उत्तर मैं यही, निष्पक्ष होकर, दूँगा कि वह साहित्य-शरीर को कलंकित करने का साधन-मात्र है । अनुभव-शून्य, विचार-विहीन कुछ नए लेखकों की लेखनी से आजकल कई नाटक निकले हैं । उन पर न किसी संपादक की लेखनी उठती है, न किसी आलोचक की ! दुःख तो यही है कि हिंदी-साहित्य के बड़े-बड़े महारथियों के रहते हुए भी कूड़े-करकट से साहित्य के उत्कृष्ट अंग को कलुषित किया जा रहा है, और वे शायद व्यक्ति-गत वैमनस्य हो जाने के भय से, या किसी अन्य कारण से, मौन हैं, उपेक्षा-पूर्वक कर्तव्य-पालन से विरत हो रहे हैं ।

आरे की एक नाटक-मंडली ने 'सूर्योदय'-नामक नाटक लिखकर उसका अभिनय किया था । भाग्य-वश वहाँ मैं भी उपस्थित हो गया । अभिनय देखने से यही ज्ञात हुआ कि नाटक-लेखक को नाटक की भाषा तथा उसके गुण-दोष का कुछ भी ज्ञान नहीं है । यहाँ तक कि नाटक के पात्रों का कर्तव्य अपने अधिपतियों के साथ कैसा होना चाहिए, लेखक को इसका ज़रा भी ज्ञान नहीं । यह पुस्तक प्राप्त होने पर इसकी आलोचना करके मैं अवश्य माधुरी-पाठकों की सेवा में शीघ्र उपस्थित करूँगा ।

कलकत्ते के कुछ पुस्तक-प्रकाशकों ने भी रुपए के लिये हिंदी-साहित्य-क्षेत्र को गंदे उपन्यासों तथा भ्रष्ट नाटकों से गंदा करना शुरू कर दिया है । उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास है कि हमारी सजावट से हिंदी-साहित्य कुछ दिनों में सर्वांग-पूर्ण होकर बँगला आदि के साहित्यों की श्रेणी में गिना जाने लगेगा । पर यह उनकी भारी भूल है !

एक राष्ट्रीय पथिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. क्या हमें पृथ्वी छोड़नी पड़ेगी ?



हमारी आँखों के सामने, किंतु अनजान में, विविध प्रकार कीड़ों (पतिंगे, पिल्लू आदि) के साथ हमारी लड़ाई चल रही है। यह लड़ाई योरपियन महायुद्ध से भी भयानक है, और इसी की हार-जीत पर हमारा अस्तित्व निर्भर है। भाँति-भाँति के कीड़े चारों ओर से मनुष्य के साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा रहे हैं। वे हमारे खेतों पर चढ़ आते हैं, नाजों को नष्ट करते हैं, और हमारा आहार छीन रहे हैं। वे जंगल के पेड़ों को नष्ट करके हमारे घरों को बिना छत की करना चाहते हैं। ऊन और रुई को नष्ट करके वे हमारे शरीर ढकने के वस्त्र को छीन रहे हैं। यहीं तक होता, तो भी ग़नीमत थी; किंतु उनको तो इतने से भी संतोष नहीं हुआ। वे तो हमारे शरीर में नाना प्रकार के रोगों के विषों को प्रवेश कराकर हमारी हत्या करने पर उद्यत हो रहे हैं। वे हमें पृथ्वी से खदेड़कर सारा आधिपत्य अपने हाथ में करना चाहते हैं। उदाहरण लीजिए—

एक प्रकार के कीड़े—जो रुई पर अपनी बसर करते हैं—अमेरिका के प्रत्येक मनुष्य, स्त्री और लड़के से प्रतिवर्ष प्रायः ४० रुपए कर वसूल करते हैं। हिसाब लगाने से पता लगता है कि ये कीड़े करोड़ों रुपए की रुई प्रतिवर्ष नष्ट कर डालते हैं। एक और दूसरे प्रकार का कीड़ा, जो आलू का कीड़ा है, प्रत्येक अमेरिकन के पीछे एक रुपए का आलू नष्ट करता है, अर्थात् वह प्रतिवर्ष १०,००,००,००० रु० का आलू खा जाता है।

हमारे ये निष्ठुर शत्रु असंख्य हैं। वे दया का नाम तक नहीं जानते। हमारे विरुद्ध काम करने से वे कभी थकते नहीं। वे हम पर जो टैक्स लादते हैं, उसे प्रत्येक मनुष्य से, सख़्ती के साथ, वसूल करते हैं। फिर भी संतुष्ट नहीं होते। वे समस्त पृथ्वी का आधिपत्य चाहते हैं। इधर विज्ञान-जगत् भी उनका सामना करने को उद्यत हो गया है, वह वैज्ञानिक उपायों से कीड़ों का नाश करने पर उतारू हो गया है। देखें, अंत में जय किसको प्राप्त होती है। विज्ञान-जगत् की ओर से सेना का पहला दल डॉक्टर एल्० ओ० हावर्ड के सेनापतित्व में निकला है। डॉक्टर साहब बहुत-से वैज्ञानिकों को साथ लेकर कीड़ों को खेतों से भगाने की चेष्टा में लगे हुए हैं। अमेरिकन सरकार इस विषय में उनकी सहायता कर रही है।

डॉक्टर हावर्ड ने कहा है—"पृथ्वी का साम्राज्य अब तक मनुष्यों के हाथ में है; किंतु कीड़ों के साथ उनकी जो लड़ाई चल रही है, उसमें उनकी हार ही देख पड़ती है। कीड़े बड़ी तेज़ी के साथ संख्या में बढ़ रहे हैं। वे सहज ही अपने शत्रुओं से छिपकर बच भी जाते हैं। और भी ऐसे कई कारण हैं, जिन्हें देखकर कहना पड़ता है कि पृथ्वी पर उनका अस्तित्व मनुष्य जाति की अपेक्षा अधिक स्थायी है।

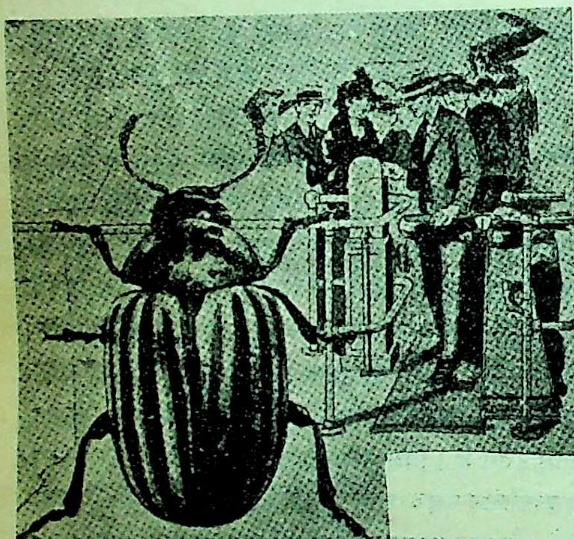
हम लोग कीड़ों को छोटा जीव कहकर अब तक उनकी पर्वा नहीं करते थे; किंतु वे धीरे-धीरे शक्ति-शाली होते गए, और एकसाथ मिलकर हम पर आक्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगे। अब ऐसी हालत हो गई है कि पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिये हमें कीड़ों को नष्ट करना अत्यावश्यक हो गया है। उन्हें नष्ट करने के लिये वैज्ञानिक उपायों का अवलंबन करना पड़ेगा।"

कीड़ों के आक्रमण का प्रत्यक्ष प्रमाण, ध्यान देने से, चारों ओर दिखलाई पड़ेगा। हम खेत के हानिकारक कीड़ों को भले ही न पहचानें, किंतु मच्छड़, मक्खी आदि तो हर समय हमारे साथ बने रहते हैं। वे ही क्या कम अनिष्टकारक हैं? प्रायः सभी जानते हैं कि मक्खियाँ बीमारी फैलाती हैं। इस बात को प्रमाणित हुए कई वर्ष हो गए। हम प्रतिवर्ष उनसे बचने के लिये यदि



आलू नष्ट करनेवाला कीड़ा मनुष्यों से टैक्स वसूल करने आया है

विष आदि ख़रीदने में बहुत-सा रुपया ख़र्च करते हैं; किंतु मक्खियों की संख्या कम होने की जगह बढ़ती ही जाती है। ज्वर फैलानेवाले मच्छड़ सालों युद्ध करने पर भी हार का नाम तक नहीं लेते।

कीड़े असंख्य हैं, और मनुष्यों की जीत एक ही दो स्थानों में होती है। कोचीन-चीन से टेक्सस बहुत दूर है; फिर भी आलू नष्ट करनेवाले कीड़े वहाँ पहुँच गए। यही एक दृष्टांत यह साबित करने के लिये काफ़ी है कि कीड़े एक स्थान से केवल दूर-दूर देश की यात्रा ही नहीं कर सकते, वहाँ अपना वास-स्थान भी बना लेते हैं। वे मनुष्य के निकाले हुए यातायत के नए साधनों का पूरा उपयोग करते हैं। रेल, जहाज़, मोटर आदि पर चढ़कर वे पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच जाते हैं।

United States Bureau of Entoniology नाम की संस्था आजकल ७१६ प्रकार के हानिकारक कीड़ों की सेना से लड़ाई लड़ रही है। उनमें एक प्रकार की चींटी ऐसी भी है, जो मनुष्यों को खा जाती है। यह आफ़्रिका में पाई जाती है। ये चींटियाँ एक बड़ी संख्या में यात्रा करती हैं। रास्ते में जो कुछ पाती हैं, खा जाती हैं। इनसे मनुष्यों की भी रक्षा नहीं होती। इसी प्रकार की कुछ छोटी चींटियाँ होती हैं; जो पलनों में सोए हुए लड़कों को चट कर जाती हैं। इस जाति की चींटियाँ अर्जेंटाइन-प्रदेश में होती हैं; किंतु सफलता-पूर्वक समुद्र की यात्रा तय करके वे इँगलैंड तक पहुँच गई हैं। कौन कह सकता है, वे भारतवर्ष तथा अन्य देशों में भी नहीं पहुँचेंगी।

इसीलिये वैज्ञानिक पूछने लगे हैं—"क्या पृथ्वी मनुष्य-शून्य हो जायगी?"

× × ×

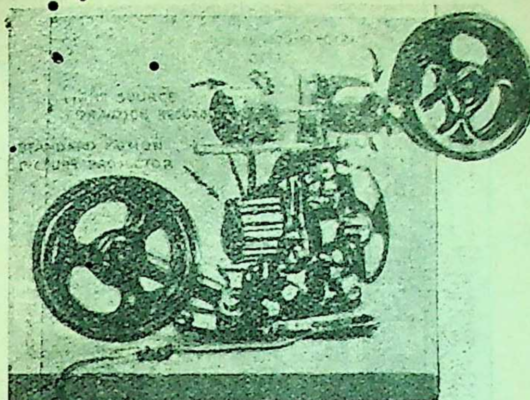
२. बोलनेवाला बायस्कोप

बायस्कोप के मूक अभिनय को बोलता-चालता हुआ करने की चेष्टा बहुत दिनों से हो रही है। वैज्ञानिकों ने पहले बायस्कोप के चित्रों के अभिनय के साथ ही फ़ोनोग्राफ़ बजाना आरंभ किया। जब तक दोनों की चाल में समता रही, तब तक चित्र के साथ-साथ तत्संबंधी बातें भी ठीक-ठीक सुनाई देती थीं; किंतु ज्यों ही चाल में अंतर पड़ा, त्यों ही कभी तो बात-चीत चित्र के पहले सुनाई पड़ती थी, और कभी चित्र बात-चीत के पहले ही परदे पर दिखलाई पड़ता था। ऐसा होने से अभिनय का आनंद जाता रहता था, और दर्शकों का मन भी ऐसा तमाशा देखने में नहीं लगता था।

जर्मन-वैज्ञानिक रूमर ने एक दूसरी ही राह पकड़ी। वह शब्द-तरंग को प्रकाश-तरंग में बदलकर, फ़िल्म के ऊपर, अभिनय के फ़ोटो के साथ-साथ, अभिनय करनेवाले की बातों का भी चित्र लेने लगे। रंग-मंच के परदे पर इस प्रकार के चित्रों का प्रदर्शन करते समय एक यंत्र की सहायता से फ़िल्म का प्रकाश-चित्र शब्द-तरंगों में बदल जाता है, और वह शब्द-तरंग विद्युत्-तरंग में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चित्र-प्रदर्शन का यंत्र

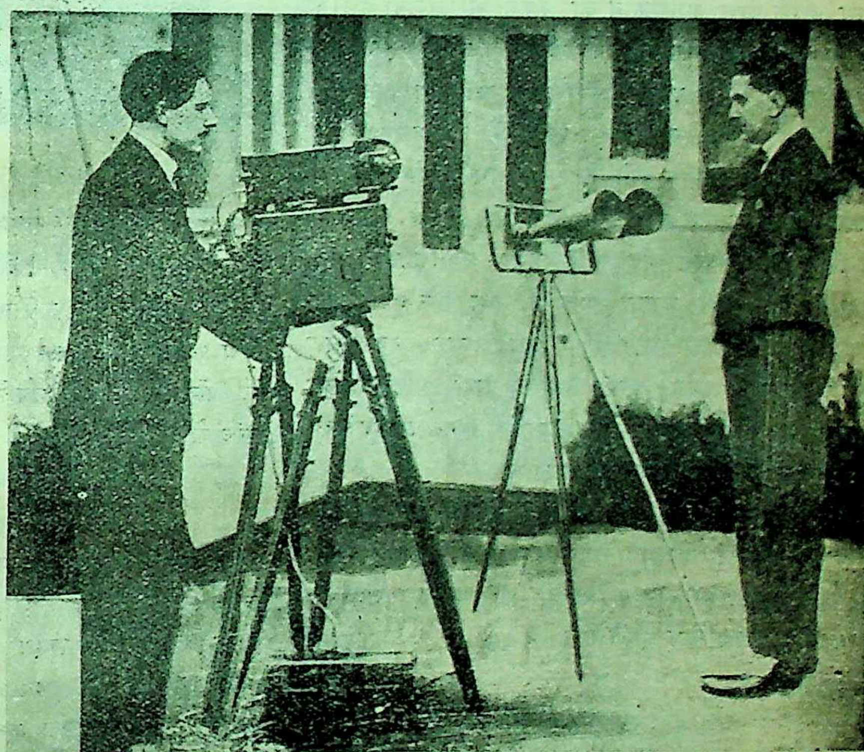
परिणत होकर, रेडियोफ़ोन की सहायता से शब्द का आकार ग्रहण कर, दर्शकों को सुनाई पड़ती है।

और अमेरिका के प्रोफ़ेसर टाइको साइनर भी ठीक इसी प्रकार का बोलता हुआ बायस्कोप बनाने में कृतकार्य हुए हैं, और फ़्रांस के श्रीयुक्त लिओ गमंट ने एक अन्य उपाय के द्वारा बायस्कोप को 'बोलता हुआ' बनाया है।

यद्यपि रूमर, ग्रिंडेल मैथ्यूज़ और प्रो० टाइको साइनर द्वारा उद्भावित बोलते हुए बायस्कोपों का सिद्धांत एक ही है, किंतु उनके यंत्र एक दूसरे से बिलकुल नहीं मिलते। रूमर और टाइको साइनर ने ऐसा फ़िल्म बनाया है, जिस पर फ़ोटो और शब्दों का चित्र पास-पास लिया जाता है; किंतु मैथ्यूज़ के यंत्र में तसवीर और शब्द-चित्र पृथक्-पृथक् लिए जाते हैं। डबल-कॅमरे में एक ही समय दो फ़िल्मों पर एकसाथ फ़ोटो लिया और उसी प्रकार दिखलाया भी जाता है। इसलिये अभिनय



अभिनय और शब्दों का चित्र
(एक ही फ़िल्म पर)



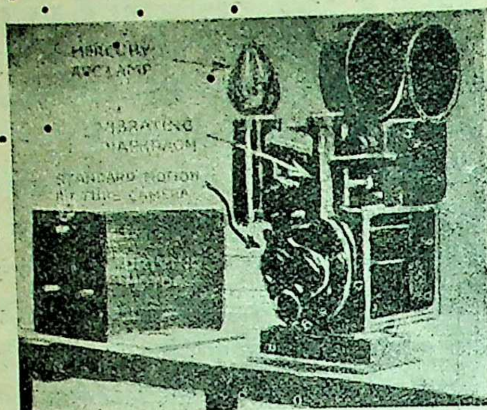
डबल-कॅमरा
(एकसाथ अभिनय और बातों के पृथक्-पृथक् चित्र लिए जाते हैं।)

जर्मन-वैज्ञानिक रूमर के इस आविष्कार का प्रचार होन के बाद ही सुना गया कि इँगलैंड के ग्रिंडल मैथ्यूज़

और शब्द आगे-पीछे नहीं होते; दोनों साथ-साथ चलते हैं। लिओ गमंट ने ग्रामोफ़ोन की सहायता से अपने बायस्कोप को बोलता हुआ बनाया है। वह फ़ोटो लेने के कॅमरे में लगे हुए फ़िल्म को हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बोलता हुआ चित्र खींचने का कैमरा

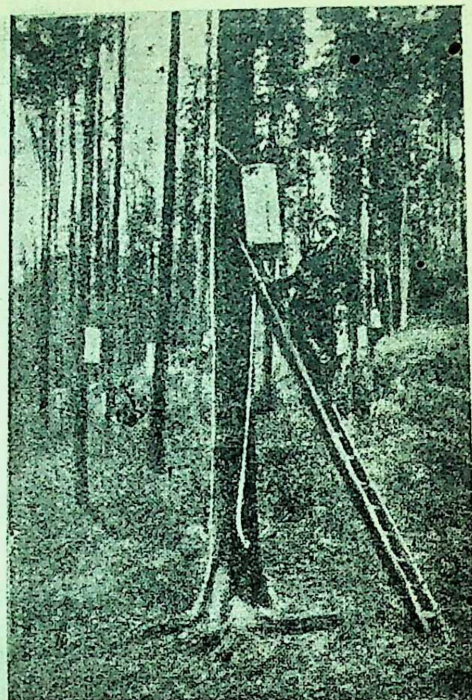
से नहीं, विद्युत्-शक्ति की सहायता से घुमाते हैं, और उसी शक्ति द्वारा ग्रामोफ़ोन का रेकर्ड भी घूमता है। इससे चित्र के साथ-साथ रेकर्ड पर शब्द भी अंकित हो जाता है। गमंट की प्रथा द्वारा अभिनय दिखाते समय दो ग्रामोफ़ोन रखने पड़ते हैं; क्योंकि एक यंत्र का रेकर्ड समाप्त होने के साथ-साथ दूसरे यंत्र का रेकर्ड बजाना आरंभ कर दिया जाता है। रेकर्ड बदलने के लिये प्रदर्शन-कार्य बंद नहीं रहता; क्योंकि जब तक एक यंत्र पर रेकर्ड बजता रहता है, तब तक दूसरे का रेकर्ड बदलकर ठीक रखते हैं। इस प्रकार चित्र और शब्द एक ही समय, एक ही शक्ति द्वारा, परिचालित होते हैं, इसलिये चित्र और शब्द में किसी प्रकार का असामंजस्य नहीं उपस्थित होता।

किंतु इसमें संदेह नहीं कि जब प्रकाश-तरंग शब्द-तरंग में परिणत होकर रेडियोफ़ोन द्वारा सुनाई पड़ती है, तब वह ग्रामोफ़ोन के शब्दों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और स्वाभाविक होती है।

× × ×

३. लकड़ी रँगना

जर्मनी में जो मनुष्य लकड़ी की वस्तुएँ बनाते हैं, वे पेड़ काटकर, उसकी लकड़ी सुखाकर और कोई वस्तु बनाकर तब उसे नहीं रँगते। वे जीवित पेड़ ही को रँग डालते हैं। वे किसी रँग को पानी में घोलकर और उसे किसी पात्र में रखकर पेड़ की किसी आठ-दस हाथ ऊँची डाल में टाँग देते हैं। उस पात्र के रँग का, एक पतली नली द्वारा, पेड़ की जड़ से संबंध कर देते हैं। जड़ प्रायः एक



पेड़ रँगने की रीति

महीने तक उस रँग को सोखती है, और लकड़ी, डाल पत्ती आदि रंगीन हो जाते हैं। तब पेड़ अपने आप सूख जाता है। उसके बाद उसे काट लेते हैं।

रँग पानी में मिलाकर इस प्रकार देना चाहिए कि पेड़ मिट्टी से रस खींचने के साथ-साथ रँग को भी खींच ले।

× × ×

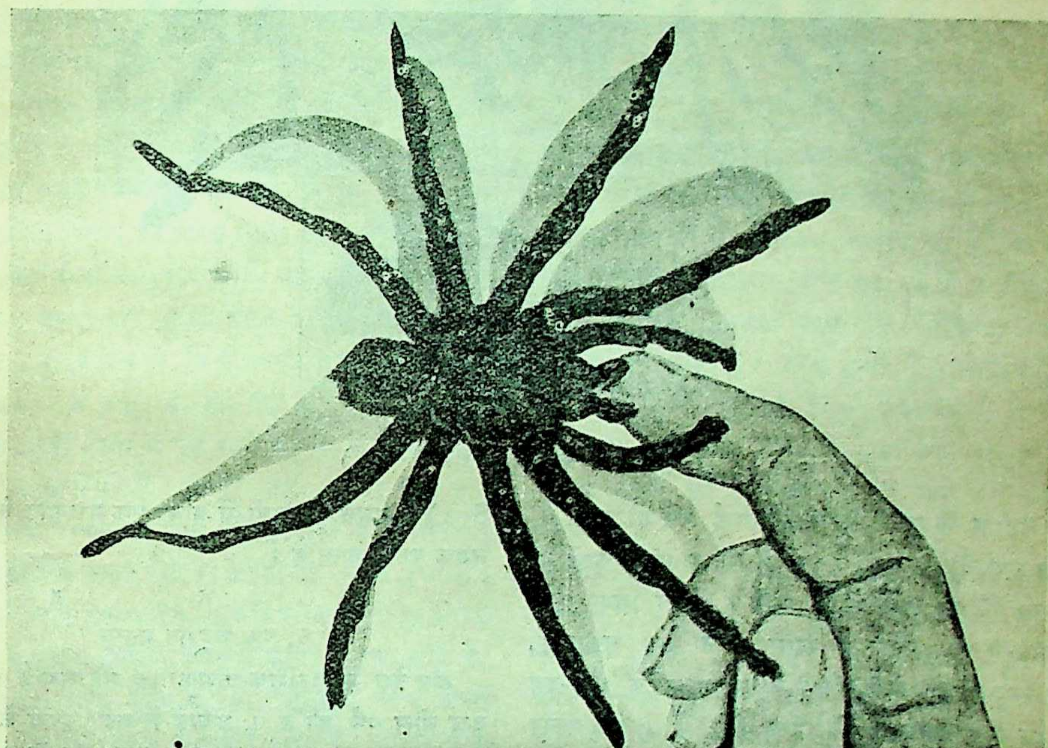
४. मकड़ी

सब देश के मनुष्य मकड़ी से डरते हैं, और इसका कारण उसका विष है। किसी ने कहा है, यदि दुनिया से आज मनुष्यों का लोप हो जाय, तो सारी पृथ्वी मकड़ियों से ढक जाय। दक्षिण-अमेरिका में 'तारांतुला'-नामक एक प्रकार के केश-युक्त बड़े-बड़े मकड़े पाए जाते हैं। उस देश के मनुष्यों की ऐसी धारणा थी कि यदि वह मकड़ा किसी को काट ले, तो उसकी तत्क्षण मृत्यु हो जाती है। संभवतः मकड़े का भयानक चेहरा देखकर यह धारणा उन्हें हुई थी। विख्यात प्राणितत्त्वज्ञ श्रीयुक्त बेयार्ग ने प्रमाणित किया है कि 'तारांतुला' के काटने से मनुष्य की मृत्यु नहीं होती। वह अपनी उँगली कटवाकर इस सिद्धांत पर पहुँचे हैं कि 'तारांतुला' के काटने

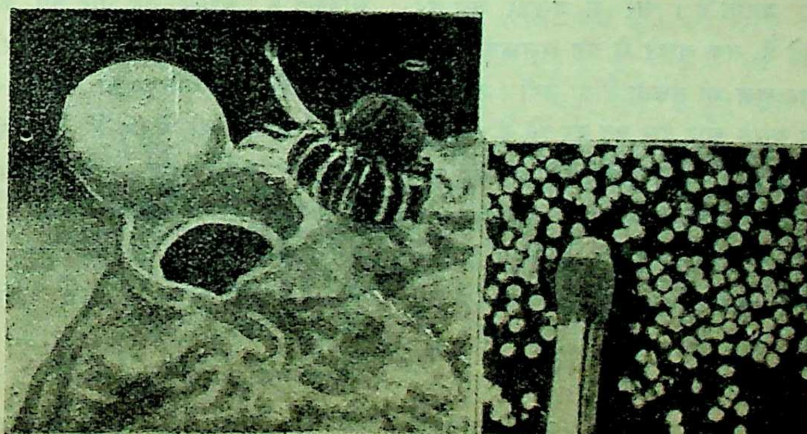
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सुई से छेदने का-सा कष्ट होता है। दो-तीन घंटे जलन रहती है, और कुछ सूज जाता है; इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। मकड़ी-संबंधी बहुत-सी खोज करके इन्होंने कहा है कि इस मकड़ी को पिल्लू कहना भूल है। ये पिल्लू नहीं हैं, बरन् केंकड़ा-जाति के जीव हैं। ये चतुर तीक्ष्ण बुद्धिवाले होते हैं। मकड़ों से मकड़ियाँ देखने में बड़ी और अधिक शक्ति-शाली होती हैं। मकड़ी जब खुश जान पड़ती है, तभी मकड़े उसके पास जाने का साहस करते हैं; क्योंकि क्रोधित मकड़ी मकड़े को मार डालती और भोजन का अभाव होने से उसे खा भी जाती है। उनमें राक्षसी-प्रवृत्ति खूब प्रबल होती है। एक मकड़ी पाँच सौ से भी अधिक अंडे देती है; किंतु सौभाग्य की



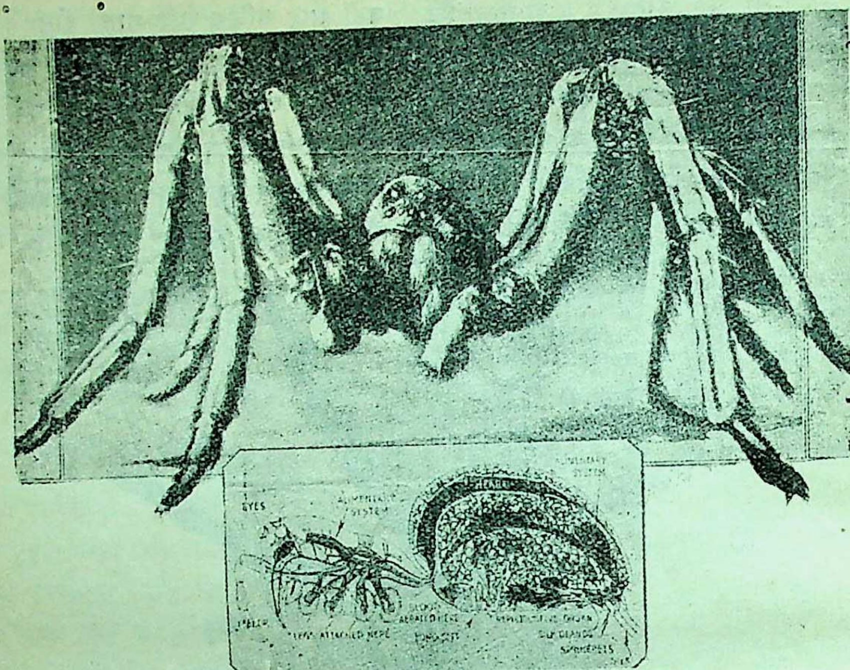
तारांतुला



गुहावासी मकड़ी मकड़ी के अंडे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साधारण मकड़ी (वर्द्धित चित्र)

बात यही है कि उनमें से तीन-चौथाई नष्ट हो जाते हैं, केवल एक चौथाई फूटते हैं। इनमें भी जो पहले फूटते हैं, वे आधे फूटे हुए अंडों को खा जाते हैं। अंग छिपा रखने के लिये ये एक प्रकार की रेशमी थैली बना सकते हैं, और शिकार पकड़ने के लिये नाना प्रकार के छोटे-बड़े विचित्र जाल बुनने में सिद्धहस्त होते हैं। एक प्रकार के मकड़े घर बनाकर रहते हैं। मिट्टी में गढ़े बनाकर उसके चारों ओर रेशमी दीवार बुनते हैं, और दरवाज़े के-जैसा एक ढकना बनाते हैं। घर में घुसकर जब वह ढकना बंद कर देते हैं, तब बाहर से यह समझना कठिन हो जाता है कि वह खुल भी सकता है या नहीं। डरकर ये अपने घर में जा घुसते और द्वार बंद कर देते हैं। मकड़ी का प्रधान शत्रु भिड़ है। मकड़ी को देखते ही भिड़ उसे पकड़ लाती और समय-समय पर खाती है। मकड़ी मनुष्य का कोई अपकार नहीं करती, बल्कि घर के भीतर के कीट-पतंगों का नाश कर उनका उपकार ही करती है।

× × ×

५. समुद्र में नमक

अटलांटिक समुद्र के एक टन (२७½ मन) पानी में साढ़े पंद्रह सेर नमक रहता है। मृत-सागर (Dead Sea) के इतने ही पानी में प्रायः एक मन साढ़े तेरह सेर नमक पाया जाता है।

× × ×

६. एक अद्भुत मनुष्य

रूस देश में राटुशिक-नामक एक महाशय हैं। उनकी उम्र बीस वर्ष की है। लंबाई में वह पृथ्वी के अपनी उम्र के सब मनुष्यों से छोटे हैं। उनकी ऊँचाई २६ इंच, अर्थात् डेढ़ हाथ से भी कम है। उनका शरीर एकदम अविकृत है। यद्यपि वह चार वर्ष के लड़के से भी छोटे हैं, पर विद्या-बुद्धि में बहुत-से सिनदार आदमियों से बढ़-चढ़कर हैं। लिखना-पढ़ना तो वह जानते ही हैं, किंतु चित्र-विद्या में भी निपुण हैं। अपनी भाषा के अलावा फ्रेंच और जर्मन-भाषा में भी उनका दख़ल है। उनके मा-बाप साधारण मनुष्य-जैसे हैं। वह जहाँ जाते हैं, अपनी ज़रूरी चीज़ों को एक बक्स में बंद करके ले जाते हैं। उनके बक्स में टेबिल, कुर्सी, ड्रायर, यहाँ तक कि उनके स्नान करने का टब भी रक्खा रहता है। उनका भोजन एक आलू का चौथाई भाग, एक चम्मच 'सूप' (Soup), चार अंगूर या एक टुकड़ा सेब (Apple) है।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. हँसी से चरित्र-निर्णय

मानव चरित्र उसकी रहन-सहन, हाव-भाव, चाल-ढाल, बोली तथा हँसी आदि से स्पष्ट झलकता है। कोई मनुष्य के हाथ की लेखन-शैली देखकर उसका चरित्र पहचानते हैं, तो कोई उसके बोलने के ढँग से। कोई नाक का आकार देखकर चरित्र की परीक्षा करते हैं, तो कोई कान की बनावट देखकर। तात्पर्य यह कि सभी प्रकार के अनुभवी अपने-अपने अनुभव द्वारा मानव-चरित्र की परीक्षा करते हैं। परंतु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इटली के एक विशेषज्ञ मनुष्य की हँसी सुनकर उसका चरित्र बता सकते हैं। उनका कहना है कि विविध हाव-भाव-युक्त हँसी सुनकर मानव-चरित्र का निर्णय करना सरल है। हँसी में मनुष्य का चरित्र छिपा रहता है। हाँ, हँसी स्वाभाविक होनी चाहिए। उनका कथन है कि जो मनुष्य ज़ोर से 'हा-हा-हा'' करके हँसते हैं, उनका मन साफ़ होता है; उनके मन में किसी प्रकार का मैल या कटुता नहीं रहती। वे उदार भी कम नहीं होते। जो दिन-रात किसी-न-किसी चिंता में पड़े रहते हैं, वे धीरे-धीरे और "हे-हे" करके हँसते हैं। उनकी हँसी सुनकर ऐसा जान पड़ता है कि उनका मन दाँतों के बाहर नहीं आना चाहता। जो चंचल और चपल होते हैं, वे "ही-ही" करके हँसते हैं। "हो-हो" करके हँसना ठीक इसके विपरीत चरित्र का बोधक है। जो बलवान् होते हैं, जिनकी छाती में प्रचुर शक्ति है, जिनका मन साफ़ होता है, वे "हो-हो" करके हँसते हैं। जो "हू-हू" करके धीरे-धीरे हँसते हैं, उनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। उनके लिये कोई काम असाध्य नहीं होता। अस्तु। यदि हँसी स्वाभाविक हो, तो दाँतों के बीच से मन की गुप्त बातें प्रकट हो सकती हैं।

× × ×

८. पेट में लोहा-लकड़

'बृटिश-मेडिकल-जरनल' में डॉक्टर ए० जी० ब्रैंड ने एक अद्भुत औरत का विवरण प्रकाशित किया है। यह औरत कभी-कभी लोहे या अन्यान्य धातुओं के पदार्थों को खा जाया करती थी; किंतु लोहे की चाभियाँ ही उसका प्रिय खाद्य था। उसका पेट चीरकर निम्न-लिखित पदार्थ निकाले गए हैं—

सत्रह लोहे की चाभियाँ। इनमें जो सबसे बड़ी है, उसकी लंबाई पौने चार इंच है। दो मुद्रा। इनमें से एक में एक अँगूठी लगी हुई थी। तीन सेफ़्टी पिंस (Safety Pins), एक बोताम। एक स्प्लिट पिन (Split Pin); जिसका व्यवहार इंजीनियर करते हैं।

उसकी उम्र २७ वर्ष की है। कई बार उसका पेट चीरा गया; किंतु आश्चर्य की बात है कि वह प्रत्येक बार भली-चंगी हो जाती है।

× × ×

९. अंधों की अद्भुत शक्ति

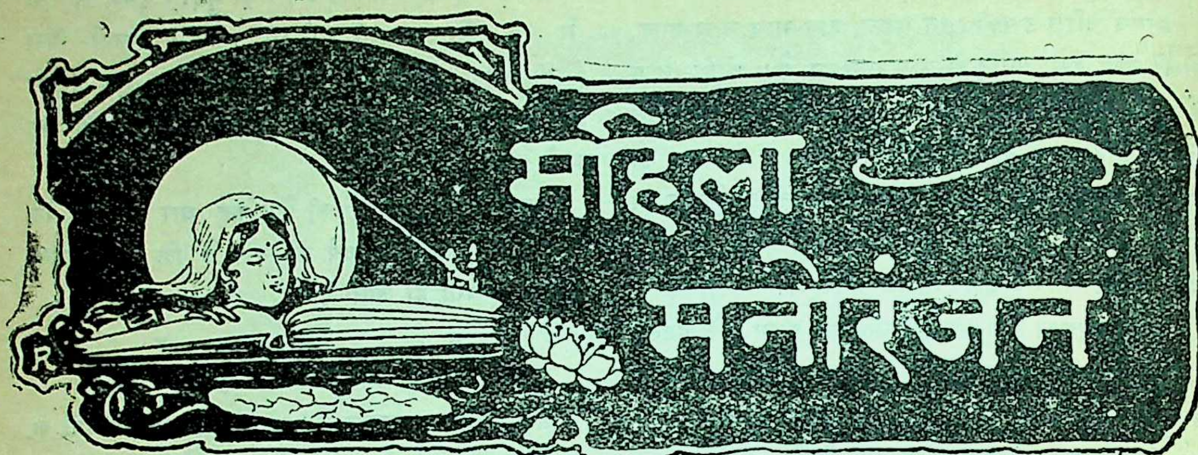
अंधे आजकल कमाल कर रहे हैं। समाचार-पत्रों के पाठक जानते होंगे कि अंधे केवल हाथ के स्पर्श से या सूँघकर वस्तुओं का रूप-रंग बतला रहे हैं, मोटे मोटे अक्षरों पर हाथ फेरकर उन्हें पढ़ रहे हैं। किंतु एक जन्मांध व्यक्ति, जिनका नाम मि० विलियम मैकफ़रसन है, हस्त-हीन हैं। दोनों हाथों में से कोई नहीं है। हस्त-हीन होने पर भी मि० मैकफ़रसन सरस्वती-देवी के कृपा-पात्र हैं। जिह्वाग्र से लिखी हुई पुस्तक स्पर्श कर उन्होंने समूची 'बाइबिल' कंठस्थ कर ली है।

किसी-किसी अंधे की करतूत सुनकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। हारोगेट में एलिन निकोलस-नामक एक जन्मांध मनुष्य रहता है। उसने केवल एक पथ-प्रदर्शक लेकर एक हज़ार मील मोटर चलाया है। रास्ते में कोई दुर्घटना नहीं हुई। मि० निकोलस बड़े संकीर्ण स्थानों में भी मोटर चला सकते हैं। रास्ते में यदि दूसरी ओर से मोटर या गाड़ी आती हो, तो उससे बचकर चलना आपके लिये कोई असाधारण बात नहीं। मोटर-गाड़ी तथा मनुष्यों की भीड़ में भी आप मोटर चला सकते हैं। आप एक प्रसिद्ध फल-विक्रेता हैं, और विना किसी की सहायता लिए अपना व्यवसाय अकेले चलाते हैं। आप 'बिलियर्ड'-खेल में भी सिद्धहस्त हैं।

रमेशप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



१. एक प्रस्ताव



सवीं शताब्दी व्यक्ति-गत उन्नति के लिये बहुत बढ़ी-चढ़ी है। इस युग में समस्त शक्तियाँ स्वतंत्र जीवन के लिये जिस प्रकार परस्पर घोर संग्राम कर रही हैं, उस प्रकार शायद ही कभी लड़ी हों। प्रत्येक राज्य, प्रजा, जाति, कुटुंब और उसका प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र रूप से रहने के लिये स्वयं उत्कंठित हो रहा है। केवल उत्कंठित ही नहीं, वरन् सभी अपना समस्त संगठन पृथक्-पृथक् करने की पूरी चेष्टा में हैं।

अपनी-अपनी प्राचीनता का प्रमाण देना, अंतर्गत कुरीतियों को निकालना, राज-नीति और धर्म-नीति में परिवर्तन करना आदि सब कार्यों का भार दिन-दिन प्रत्येक समुदाय शक्ति-भर अपने ऊपर ले रहा है। ऐसी अवस्था में स्त्री-समाज को भी अपना संगठन सुदृढ़ रूप से करना चाहिए। यद्यपि बहुत-सी विदुषी स्त्रियाँ अपने प्राचीन गौरव को जगाने के लिये मन, वाणी, कर्म से प्रयत्न करके ज्ञानाभिवृद्धि और कुरीति-निवारण में लगी हैं, स्थान-स्थान पर कन्या-विद्यालय तथा सभाएँ स्थापित करा रही हैं, परंतु ये कार्य हमारे लुप्त-प्राय अभिमान का पुनरुद्धार करने के लिये पर्याप्त नहीं हैं।

जिस प्रकार मूल को छोड़कर केवल पत्तों की सिंचाई वृक्ष को लाभ-प्रद नहीं होती, उसी प्रकार जब तक प्राचीन और आधुनिक, दोनों प्रकार का स्त्रियों के लिये उपयोगी साहित्य उन्नत न होगा, तब तक महिला-समाज की उन्नति असंभव है। प्राचीन समय में भारतीय स्त्रियों ने जो अनेक ग्रंथ लिखे हैं, उनका सप्रमाण पता लगाने के लिये, और इस समय महिलाओं द्वारा जो रचनाएँ रचित होती हैं, उन सबका संग्रह करने के लिये, हम लोगों को कोई महत् प्रयत्न करना चाहिए। इस समय तो लीलावती का गणित-शास्त्र, मंडन मिश्र की धर्म-पत्नी का विवाद-पांडित्य, तथा कवि कालिदास की पत्नी का उच्चतम उपदेश केवल शब्दों में ही प्रसिद्ध है। विद्वानों को इन बातों का ऐतिहासिक दृष्टि से पता लगाना, इनके सम-कालीन और जो-जो देवियाँ हो गई हैं, उनकी कौन-कौन-सी रचनाएँ इस समय तक अवशिष्ट हैं, इन बातों की खोज करना और क्रमशः इन पवित्र महिलाओं के जीवन-चरित्र प्रकाशित करना चाहिए। इन कार्यों से वास्तव में हमारे गत गौरव का पुनः उद्धार हो सकता है।

इस समय भी देश में कितनी ही विचक्षण विदुषी रमणियाँ विद्यमान हैं; परंतु उनके विकास का मार्ग न होने के कारण उनसे समाज को कोई लाभ नहीं है।

भारतोद्यान में खिला हुआ पुष्प इसी उद्यान में विलीन हो जाता है। यदि उसकी सुगंध नागरिक लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जाय, तो सारा संसार सुगंधित बन जायगा। जब तक हम आदर्श जीवनियों को नहीं पढ़ेंगी, आधुनिक ज्ञान-संपन्न देवियों का उत्तम रीति से सत्कार नहीं करेंगी, तब तक "स्त्रियों के पढ़ने से क्या लाभ है" यह रूढ़ि कदापि नष्ट नहीं होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कार्य के लिये महिला-साहित्य-प्रचारिणी सभाएँ स्थापित होनी चाहिए, और उनका संचालन एक-देशीय न होकर सर्व-देशीय होना चाहिए। हमारी सम्मति है कि इसके लिये प्रत्येक प्रांत की विदुषी स्त्रियाँ और स्त्री-शिक्षा-प्रेमी पुरुष सदस्य बनाए जायँ—प्रतिवर्ष भिन्न-भिन्न स्थानों में अधिवेशन किए जायँ। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के समान इन सभाओं का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों की रचना को संगृहीत, उन्नत और परिपूर्ण करना हो। अंतर केवल इतना हो कि यह सभा केवल हिंदी ही में नहीं, भारत की सभी भाषाओं में विकसित कुसुमों को चुन-चुनकर मालाएँ बनावे, और उनका अनुवाद, प्रत्यनुवाद कराकर उन्हें सुलभ करे। यह काम कहने में तो सरल परंतु करने में अत्यंत कठिन है। इसके लिये एक अच्छा स्थायी फ़ंड जमा किया जाय; क्योंकि विना रुपए के कोई काम नहीं हो सकता। अच्छी रक़म जमा होने पर गण्य-मान्य पुरुष भी इस विषय को अवश्य हाथ में लेंगे। स्त्रियों के पास धन की कमी नहीं है। आशा है, इस प्रस्ताव को पढ़कर हमारी बहनें इस विषय पर पूर्ण विचार करेंगी, और अपनी-अपनी सम्मति प्रकाशित कर अनुगृहीत करेंगी।

चंदाबाई जैन

× × ×

२. सती-मंदिर की सजीव प्रतिमा

सन् १९१४ ई० की बात है। देवी नंदरानी का मरणासन्न पति अंत-काल की राह देख रहा था। उसके निकट-संबंधी अत्यंत उद्विग्न थे। लेकिन देवी नंदरानी के सिर पर सतीत्व चढ़कर बोल रहा था। वह ज़रा भी विचलित नहीं देख पड़ती थी। उसे पति की सेवा-सुश्रूषा के सिवा किसी अन्य बात की चिंता नहीं थी।

भारतीय महिलाएँ पर्दा-नशीन होती हैं। पर्दे से बाहर आना उनके लिये दोष समझा जाता है। लेकिन देवी नंदरानी पति की रुग्णावस्था में पर्दे का वैसा ख़याल नहीं करती थी। लोगों ने उसकी निंदा की—उसे कुलटा तक कह डाला। लेकिन उसने उसकी पर्वा नहीं की। उस अपमान के घूँट को भी उसने सहर्ष पी लिया।

नंदरानी का पति लक्ष्मी और सरस्वती, दोनों ही का कृपा-पात्र था। घर का ज़मींदार और वकील था। उसे नंदरानी-देवी पर प्रगाढ़ प्रेम था। वह देवी के सद्गुणों पर मुग्ध था। और देवी, उसका क्या पूछना! वह तो उस पर सब प्रकार से निछावर थी।

सन् १९१४ ई० के ११ ऑक्टोबर का दिन था। दस बजे थे। देवी के प्यार की सामग्री प्रायः नष्ट हो चुकी थी। आधे घंटे के बाद तो देवी का सौभाग्य-सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया। जिस प्रकार प्रलयकारी झंझा-वात के ऊधम से शांत वन-प्रदेश में घोर हाहाकार मच जाता है, जिस प्रकार स्थिर सागर में एकाएक पवन के पाशविक प्राबल्य से तरंगों का कुहराम सैकड़ों मीलों तक सुन पड़ता है, उसी प्रकार देवी के पति की मृत्यु से संबंधियों की करुणा-जनक रोदन-ध्वनि दिशाओं को गुँजाने लगी। परंतु आश्चर्य की बात यह थी कि देवी के शुष्क नयन केवल सजल हो आए थे। वह रो नहीं रही थी।

आधे घंटे के अंदर ही विधवा नंदरानी को लाल साड़ी पहने, पान से अधर रँगे, पति के सिरहाने खड़े देखकर लोग विस्मय से व्याकुल हो उठे। वह भैरवी-मूर्ति धीरे-धीरे पति की मृत्यु-शय्या की पाँच बार परिक्रमा कर धीरे से उस कमरे से बाहर निकल गई।

निकट ही में लगनेवाले दूध के बाज़ार से लौटती हुई गोप-स्त्रियों ने विस्मयोत्फुल्ल लोचनों से देखते हुए शोर किया—"बाबू के घर में आग लगी!" लोगों ने देखा, सचमुच दोमंज़िले की खिड़कियों से अग्नि की लपटें निकल रही हैं!

देवी अध-जली अवस्था में खड़ी पानी के लिये आग्रह कर रही थी। लोगों ने जब देवी की इस करुण मूर्ति को देखा, तब वे अवाक् हो गए। देवी जल गई, लेकिन उसकी एक चीख़ भी न सुन पड़ी। देवी चिल्लाई तक नहीं। स्वर्ण-सा शरीर जलकर ख़ाक हो गया, परंतु मुँह से एक आह तक नहीं निकली!

बात-की-बात में देवी ने अपने को अस्पताल के भव्य कमरे में पाया। सामने उसकी चिर-परिचित लेडी-डॉक्टर उसकी ओर विस्मय के साथ देख रही थी। देवी ने उसे देखकर कहा—"मुझे कोई ऐसी दवा दो, जिससे शीघ्र ही मैं पति के निकट पहुँच सकूँ।"

देवी—नहीं-नहीं—सती की मनोवांछा पूर्ण हुई। शीघ्रातिशीघ्र उसे पति की गोद में सोने का सुअवसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हो गया। जाह्नवी के तीर पर पति के शव के साथ ही सती का शव भी पंचत्व में परिणत हो गया।

उस दिन मैंने एक स्वप्न देखा। जाह्नवी के तीर पर एक संगमरमर-रचित श्वेत मंदिर में देवी की वही अध-जली मूर्ति प्रतिष्ठित थी। इतने अर्से के बाद अपनी स्नेहास्पद भावज को देख मेरी आँखें सजल हो आईं। हृदय में श्रद्धा-भक्ति की प्रबल तरंगें उठने लगीं। मैं गंगा-तट की बालुकामय रेत से अपने बाल सुखाना छोड़ देवी—नहीं सती—के मंदिर की ओर लपकी। चाहती थी, सती के पद-रेणु-रज अपने कपाल में लगाऊँ। परंतु चरण-रेणु अभी मेरे कपाल की शोभा भी नहीं बढ़ा पाए थे कि मेरी निद्रा—सुख-निद्रा—भंग हो गई!

ईश, तुमने बड़ा धोखा दिया! जीवन-काल में यदि देवी की पद-रज अपने मस्तक में न लगा सकी, तो स्वप्न में भी क्यों वंचित रक्खी गई? क्या मैं इसके लायक़ भी न थी? क्या उसका शरीर इतना पवित्र है? क्या सती इतनी पवित्र होती है कि मानव उसके पैर तक नहीं छू सकते? तो फिर भगवन्, क्या देवी-सरीखी स्त्रियाँ भारत के नवीन युग की अपूर्ण एवं छोटी-सी सती-गाथा को पूर्ण करने के लिये फिर अवतीर्ण न होंगी? क्या भारत-भूमि एक बार फिर सात्त्विक सती-देवियों के तेज से प्रकाशमान एवं उन्नत न होगी? ईश, वह दिन कब देखने को मिलेगा, जब भारत के कोने-कोने में सतियों की विजय-वैजयंती फहरावेगी, और समस्त संसार उनकी विजय-दुंदुभी को सुनकर सादर अभिवादन करेगा?

श्रीमिथिलेशकुमारी बाला

× × ×

३. महिलाओं की लावण्य-वृद्धि का एक नया उपाय

प्रायः समस्त देशों की स्त्रियाँ अपने शारीरिक सौंदर्य को बढ़ाने में व्यस्त रहती हैं। पूर्व-काल में भारतीय महिलाएँ चंदन आदि के लेपन द्वारा अपने सौंदर्य को बढ़ाती थीं। जिन स्त्रियों के पास इस प्रकार की विलास-वस्तुओं का अभाव था, वे दूध की मलाई तथा बेसन आदि से अपने शौक़ को पूर्ण करती थीं। आजकल पाश्चात्य नारियों की सौंदर्य-वृद्धि के लिये कितने ही नए-नए उपाय निकाले गए हैं। अनेक प्रकार के 'ब्लूम' (Bloom), 'बाम' (Balm), 'पेस्ट' (Paste) आदि उनके शरीर तथा मुँह की सुंदरता बढ़ाने को बने हैं। इनमें से दो-चार का आगमन हमारे देश में भी हुआ है, और भारत की देवियाँ भी उनका उपयोग करने लगी हैं।

परंतु इँगलैंड में नारियों की सुंदरता बढ़ाने का एक ऐसा नवीन उपाय निकाला गया है, जिसके सामने सुंदरता-वृद्धि की समस्त सामग्रियों को हार माननी पड़ती है। यह "मड बाथ" (Mud bath) अथवा "कर्दम-स्नान" कहलाता है। वास्तव में यह एक प्रकार का लेप है। योरप के कई स्थानों से गंगा-मृत्तिका की नाईं मिट्टी लाकर लंदन के "सेवाय-होटल" में यह स्नान कराया जाता है। शरीर के जिस भाग का लावण्य बढ़ाना होता है, उस स्थान पर इस मिट्टी का लेप करके लगभग आध घंटे तक सूखने दिए जाता है। मिट्टी जब सूखकर कड़ी हो जाती है, तब उसे धीरे-धीरे उखाड़ लेते हैं। मिट्टी के लगने से शरीर का रंग एकदम सफ़ेद-सा हो जाता है, और उस जगह का चमड़ा सिकड़ा हुआ भी नहीं रहता। किसी रसायन-शास्त्र के विशेषज्ञ का कथन है कि इस मिट्टी में किसी भी प्रकार का रासायनिक पदार्थ नहीं है।

इस नवीन औषध से अपनी सुंदरता को बढ़ाने के लिये प्रतिदिन सैकड़ों स्त्रियाँ सेवाय-होटल में पदार्पण करती हैं। परंतु एक दिन के स्नान से ही कोई कुरूपा स्त्री सदा के लिये रूपवती नहीं हो जाती। उसे अपनी सुंदरता को स्थिर रखने के लिये हफ़्ते में तीन-चार बार "कर्दम-स्नान" करना पड़ता है।

श्रीराम अग्रवाल

× × ×

४. राजदूत स्त्रियाँ

विलायत के "विमेन-सिटिज़ेन" नाम के मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ है कि अभी तक ५ स्त्रियों के राजदूत होने का समाचार मिला है। इनमें एक कोलंबस की कुमारी लुसिले एचग्सन है। दूसरी बलगेरिया के राज-दूत-पद पर मेडम स्टेनक्राइफ़ हैं। आप पहली स्त्री थीं, जो राजदूत नियुक्त हुई थीं। तीसरी लेडी सुर्मोडिलर शोमिम सीरिया की ओर से लंदन में राजदूत हैं। चौथी मेडम क्लोटाइड लूइस, उर्गन-प्रांत की ओर से, बेलजियम की राजधानी ब्रुशल में राजदूत नियुक्त हुई हैं। पाँचवीं हेनरियट हाग नार्वे की ओर से मेक्सिको में पहली स्त्री-राजदूत हुई हैं।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. अविद्या हटाने का उद्योग

उत्तर डकोटा का स्त्री-संघ अपने प्रांत से अविद्या उठाने का उद्योग कर रहा है। सन् १६२० में वहाँ ६६३७ व्यक्ति अशिक्षित थे। वहाँ की सरकार की ओर से एक कमीशन बैठा है। स्त्री-संघ की प्रतिनिधि मिसेज़ अलफ्रेड जंगर ने संघ की ओर से अद्भुत हुई उन्नति बताई है। वहाँ का स्त्री-संघ अपने सरकार के नियुक्त किए हुए विद्या-सचिव के साथ मिलकर काम कर रहा है।

× × ×

६. खानों में क्या स्त्रियाँ काम करें ?

बंबई के त्रैमासिक पत्र "सोशियल सर्विस" में श्रीयुत ए० वी० ठक्कर लिखते हैं कि भारतीय खदानों के संघ ने स्वतः ही यह प्रश्न पूछा कि क्या हम कभी स्त्रियों को खदानों के अंदर काम करने से रोक सकेंगे ?, तो उन्हें उत्तर मिला—कभी नहीं। इँगलैंड, आयर्लैंड आदि देशों में, जहाँ की खदानों में अधिक काम होता है, ८० वर्ष हुए, स्त्रियों से खदानों के अंदर काम नहीं लिया जाता; परंतु भारत में, जहाँ मज़दूरी इतनी सस्ती है, स्त्रियों को खानों के अंदर काम करने से कभी रोकने की संभावना नहीं मालूम होती। यह प्रश्न हो सकता है कि जहाँ स्त्रियों के सिर पर कोयला ढुआया जाता है, वहाँ क्यों न उसकी जगह पर पटरी डालकर ठेलों से कोयला बाहर ढुआया जाय? दुःख यही है कि भारतीय जनता खदानों में काम करनेवाले मज़दूरों की स्थिति से बिलकुल अनभिज्ञ है। लोग कौतूहल की दृष्टि से कपड़े अथवा जूट की मिलें देखने अवश्य जाते हैं, लेकिन कोई भी आदमी ५०० अथवा १००० फ़ीट गहरी खदानों में घुसकर काम करनेवालों को काम करते हुए नहीं देखने जाता। जो चीज़ दिखाई नहीं पड़ती, उसका ख़याल भी नहीं होता। यदि स्त्रियों को मिलों और फ़ैक्टरियों में रात में काम करना मना है, तो खदानों के अंदर, जहाँ सदैव रात का-सा अँधेरा होता है, क्यों नहीं काम करने से मना किया जाता ?

× × ×

७. स्त्रियों की मज़दूरी की दर

स्त्रियों के धनोपार्जन के विषय में नीचे के उदाहरण से मालूम होगा कि स्त्रियों को कितनी कम मज़दूरी दी जाती है। मदरास में स्त्रियों को १० ताड़ के पंखे बनाने की मज़दूरी १ पैसा दी जाती है। अपने सारे फ़ुरसत के समय में काम करने पर भी उन्हें ·) प्रतिदिन से अधिक नहीं मिलता। सुधारकों और नेताओं को इधर ध्यान देना चाहिए।

× × ×

८. जहाज़ में क्या स्त्रियाँ कप्तान होंगी ?

विलायत के सौदागरी के जहाज़ी विभाग ने सूचित किया है कि किसी भी व्यक्ति को जहाज़ के कामों की परीक्षा देने में इसलिये रोका नहीं जायगा कि वह स्त्री है; मगर शर्त यह है कि उसे उन तमाम शर्तों को पूरा करना पड़ेगा, जो जहाज़ी काम की परीक्षा देनेवालों के लिये रक्खी गई हैं। पहले यह नियम था कि कोई स्त्री जहाज़ के कप्तान होने की परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सकती; परंतु अब यह नियम रद कर दिया जाता है। इस सूचना से विलायती स्त्रियों के लिये जहाज़ में काम करने का मार्ग खुल गया। अब देखना यह है कि कितनी स्त्रियाँ जहाज़ का कप्तान बनाई जाती हैं।

कृष्णकुमारी

× × ×

९. पूना में स्त्री-कॉलेज

सर हरमुसजी वाडिया ने "नाथीबाई दामोदर ठकर्सी-कॉलेज" के एक नवीन भवन का द्वारोद्घाटन किया है। यह कॉलेज स्त्रियों के लिये स्थापित हुआ है। भारतीय स्त्री-विश्वविद्यालय से यह संबद्ध भी हो गया है। बंबई-निवासी श्रीयुत मूलराज खातन ने इस कॉलेज के निकट ही एक छात्री-निवास (Hostel) तैयार करने के लिये ३५ हज़ार रुपए दान दिए हैं। उक्त छात्री-निवास में प्रायः ५० विद्यार्थिनियाँ रह सकेंगी।

स्वर्गीय दानवीर सर बिठलदास ठकर्स ने १५ लाख रुपए दान देकर भारतीय-नारी-विश्वविद्यालय का संपूर्ण अनुष्ठान प्रतिष्ठित कराया है; अतः इस शुभ काम के लिये उन्हें जितनी बधाई दी जाय, थोड़ी है। भारतीय-नारी-समाज के लिये सर बिठलदास और अध्यापक कार्वे ने जो असाधारण स्वार्थ-त्याग किया है, उससे उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

गोपीनाथ वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पुस्तक-परिचय

१. अर्थ-शास्त्र और समाज-शास्त्र

भारतीय संपत्ति-शास्त्र अर्थात् देश की सच्ची बात—प्रकाशक, पंडित शिवनारायणजी मिश्र वैद्य, प्रताप-पुस्तकालय, कानपुर। लेखक, श्रीयुत प्राणनाथजी विद्यालंकार, प्रोफ़ेसर हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी (आजकल जर्मनी में हैं)। आकार २०×३० सोलह-पेजी। सुंदर रेशमी जिल्द। काग़ज़, छपाई, सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ८८०। मूल्य ५)

इस अर्थ-प्रधान युग में अर्थ-शास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता स्वयंसिद्ध है। संसार के सभ्य देशों ने इस शास्त्र की सहायता से ही अपनी आर्थिक उन्नति की है। भारत-वासियों की सब कठिनाइयाँ विशेष रूप से आर्थिक हैं। उनको दूर करने के लिये इस समय भारतीय जनता में अर्थ-शास्त्र का ज्ञान विस्तृत करने की बड़ी आवश्यकता है। परंतु यह काम हिंदी में अर्थ-शास्त्र-संबंधी पुस्तकों की कमी के कारण रुका हुआ है। पुस्तकों की कमी इतनी अधिक है कि जहाँ अँगरेज़ी-भाषा में इस विषय पर हज़ारों पुस्तकें हैं, वहाँ हिंदी में ३०-४० पुस्तकें भी न निकलेंगी। इस कमी का प्रधान कारण हिंदी के विद्वान् लेखकों और प्रकाशकों की अर्थ-शास्त्र-संबंधी पुस्तकों की ओर उदासीनता ही है। हमको यह देखकर हर्ष होता है कि यह उदासीनता अब धीरे-धीरे घट रही है। फिर भी ऐसे सज्जनों की संख्या बहुत कम है, जो हिंदी में आर्थिक विषयों पर लिखकर हिंदी-साहित्य की इस कमी को पूरा करना अपना कर्तव्य समझते हों। उन इने-गिने विद्वानों में इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत प्राणनाथजी विद्यालंकार का एक विशेष स्थान है। आप हिंदी के एक होनहार लेखक हैं, और आर्थिक विषयों पर लगभग १०-१२ पुस्तकें लिख चुके हैं। उनमें से समालोच्य पुस्तक के अतिरिक्त दो पुस्तकें तो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। मातृ-भाषा में अर्थ-शास्त्र-संबंधी साहित्य की कमी पूरी करने के लिये, पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश से, आप आस्ट्रिया होते हुए जर्मनी गए हैं। वहाँ से शायद इँगलैंड भी जानेवाले हैं। बेशक आपका प्रयत्न और प्रस्थान स्तुत्य है। हम आशा करते हैं कि वह अपना अध्ययन समाप्त करने पर सकुशल भारत लौटकर तत्परता के साथ मातृ-भाषा की सेवा करने में समर्थ होंगे।

प्राणनाथजी ने यह भारतीय संपत्ति-शास्त्र लगभग ६४ अँगरेज़ी तथा हिंदी-पुस्तकों का अध्ययन करके लिखा है। इस पुस्तक में आपने देश की आर्थिक दशा का बहुत ही अच्छी तरह से निरीक्षण कर उसकी दुरवस्था पर महत्त्व-पूर्ण विचार प्रकट किए हैं। पुस्तक के सब ऐतिहासिक भाग बहुत खोज और परिश्रम से लिखे गए हैं, और वे गवेषणा-पूर्ण भी हैं। पुस्तक तीन खंडों में विभाजित हुई है। प्रथम खंड में जातीय समृद्धि के कारणों का विवेचन कर यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रत्येक देश को व्यवसाय-व्यापार-प्रधान भी होना चाहिए। फिर भारत-सरकार की आर्थिक नीति पर विचार करके यह बतलाया गया है कि यह देश, जो पहले व्यवसाय-प्रधान भी था, किस प्रकार से केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि प्रधान देश बनाया गया है। दूसरे खंड में, जो सबसे बड़ा है, खनिज पदार्थ, खाद्य पदार्थ, तेलहन तथा व्यवसाय-योग्य पदार्थ इत्यादि का आर्थिक दृष्टि से वर्णन किया गया है। भारत के प्रधान व्यवसायों की उन्नति तथा ह्रास भी बहुत ही अच्छी तरह से दिखाया गया है। इस खंड में भारतीय श्रम और पूँजी की दशा का ज़िक्र भी किया गया है, और भारत में लगान बढ़ने का इतिहास देते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि ज़मीन पर केवल किसानों का ही अधिकार न्याय-संगत कहा जा सकता है। तृतीय खंड में विनिमय का विकास बतलाते हुए व्यापार-नीति पर विचार किया गया है, और सरकार की राष्ट्रीय आय-व्यय-नीति का दिग्दर्शन कराते हुए सरकार की मुद्रा-नीति तथा नहर-रेलवे-संबंधी नीति की आलोचना की गई है। इस खंड में महँगी की समस्या पर भी प्रकाश डाला गया है। परंतु यह हमारी समझ में नहीं आता कि भारत की महँगी की समस्या के परिच्छेद में ताल्लुक़ेदारों की लूट और नज़राना तथा पाप की कमाई का विवेचन किस सिद्धांत के अनुसार किया गया है। इसका ज़िक्र तो एक अलग परिच्छेद में होना चाहिए था। इस पुस्तक में लेखक ने भौतिक क्षेत्र में साम्य-वाद का अवलंबन किया है, और अन्य प्रश्नों में जर्मनी के प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्रज्ञ फ्रेडरिक लिस्ट और भारत के जातीयता-वादियों का ही पक्ष-पोषण किया है। पुस्तक इतनी बड़ी होने पर भी हम इसको कुछ अंशों में अपूर्ण ही समझते हैं। इसमें अर्थ-शास्त्र के एक महत्त्व-पूर्ण विभाग 'उपभोग' के संबंध में कुछ भी नहीं लिखा गया, और मज़दूरों की समस्या, ब्याज, बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के हानि-लाभ, होम-चार्जेज़, विदेशी विनिमय इत्यादि महत्त्व-पूर्ण विषयों पर पूरी तरह से विचार नहीं किया गया।

यद्यपि पुस्तक दो-तीन वर्ष पहले लिखी गई थी, तो भी यदि छपते समय इसमें कुछ महत्त्व-पूर्ण विषयों का समावेश कर दिया जाता, तो अच्छा होता। भारत के इंपीरियल बैंक का कहीं पर इसमें ज़िक्र तक नहीं किया गया। 'वस्तुओं की मूल्य-वृद्धि'-शीर्षक परिच्छेद में गत दस वर्षों में जो मूल्य-वृद्धि हुई, वह नहीं बतलाई गई, और 'बजट पर अधिकार'-शीर्षक परिच्छेद में भारतीय व्यवस्था-सभाओं को सुधार-योजना के अनुसार जो थोड़ा-सा अधिकार मिला है, उसका भी उल्लेख नहीं किया गया। पुस्तक में दिए हुए कोष्ठकों के सब अंक पुराने हैं। कहीं-कहीं तो सन् १९१०-११ तक के ही अंक दिए गए हैं। १९१८-१९ के बाद के अंक शायद ही किसी कोष्ठक में दिए गए हों। थोड़े ही परिश्रम से कम-से-कम दो वर्ष बाद के सब अंक आसानी से मिल जाते। परंतु इस पुस्तक के विद्वान् लेखक ने किसी कारण से इतनी मेहनत करना शायद उचित नहीं समझा।

कोष्ठकों के संबंध में एक बात, जो बहुत खटकती है, यह है कि अंक प्रायः पौंड और टन में दिए गए हैं। पुस्तक तो भारत-वासियों के लिये लिखी गई है, पर भारत-संबंधी अंक भी विदेशी करेंसी और तौल में दिए गए हैं। एक कोष्ठक में तो (पृष्ठ १९७ देखिए) एक ही कॉलम के अधिकांश अंक रुपए में और कुछ अंक पौंड में दिए हुए हैं। इससे तुलना करने में बड़ी असुविधा होती है। क्या लेखक महाशय प्रत्येक पाठक से यह आशा करते हैं कि वह उस कॉलम के पौंड में दिए हुए अंकों का रुपयों में परिवर्तन कर ले? ऐसा मालूम होता है कि कोष्ठक में दिए हुए अंकों का योग भी बराबर नहीं लगाया गया। हमारे पास इतना समय नहीं था कि हम पुस्तक में दिए हुए सब कोष्ठकों के अंकों का जोड़ लगाने बैठते। केवल तीन-चार कॉलमों के अंकों का जोड़ लगाया, और उसमें एक जोड़ (पृष्ठ ३३६-३३७, आख़िरी कॉलम) ग़लत निकला। ऐसी महत्त्व-पूर्ण पुस्तक में ऐसी साधारण ग़लतियाँ नहीं होनी चाहिए थीं।

इस पुस्तक में दी हुई कुछ बातें भ्रम-पूर्ण तथा पक्षपात-युक्त मालूम होती हैं। पृष्ठ ९७ पर प्राणनाथजी लिखते हैं—'महँगी भारत ने सही, और उसकी आमदनी मय स्वर्ण-कोष के इँगलैंड के पूँजी-पतियों के जेबों में चली गई।' यहाँ पर स्वर्ण-कोष से मतलब गोल्ड स्टैंडर्ड रिज़र्व फ़ंड से है; जिसमें आजकल क़रीब ४०-६० करोड़ रुपयों की हुंडियाँ तथा सिक्यूरिटी इत्यादि जमा हैं। जब स्वर्ण-कोष इँगलैंड के पूँजी-पतियों की जेबों में चला गया, तो फिर इतनी रक़म इस कोष में कैसे बची रही, इसका रहस्य ग्रंथकर्ता ही समझा सकते हैं। पृष्ठ १०३ में, इँगलैंड के संबंध में, प्राणनाथजी लिखते हैं—'१९१३-१४ में इँगलैंड की आमदनी २० करोड़ पौंड थी, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़र्च इतना ही था । अब आमदनी तो पूर्ववत् ही है; परंतु इस वर्ष (?) ख़र्च बयासी करोड़ पचास लाख पौंड होगा। Statesman's Year Book, 1922 से इँगलैंड की आमदनी और ख़र्च के कुछ अंश नीचे दिए जाते हैं ; जिनसे उपर्युक्त कथन की सत्यता का पता लग जायगा—

(करोड़ पौंड में)

	आमदनी	ख़र्च
१९१३-१४	२०	२०
१९१७-१८	७१	२७०
१९१८-१९	८९	२४८
१९१९-२०	१३४	१६६
१९२०-२१	१४२	१२०

पृष्ठ १०७ में प्राणनाथजी लिखते हैं—'रेलें तथा सेनाएँ सारी-की-सारी आमदनी खाती जाती हैं । परंतु इनसे भारत की उत्पादक-शक्ति तिल-मात्र भी नहीं बढ़ रही है।' इस कथन में अत्युक्ति की मात्रा बहुत अधिक है, और हम लेखक के इस मत से सहमत नहीं हैं कि रेलों से भारत की उत्पादक-शक्ति तिल-मात्र भी नहीं बढ़ती। पृष्ठ ३५६-५७में साधारण वृष्टि तो ८५ इंच से १२३ इंच तक बतलाई गई है, पर पृष्ठ ३५७ में तीव्र वृष्टि ५० से ५९ इंच तक ही मानी गई है। क्या तीव्र वृष्टि से साधारण वृष्टि अधिक मानी जानी चाहिए ? पृष्ठ ३८४ में लेखक महाशय लिखते हैं—'१७९३ में बंगाल में कुल उपज का ९० प्र० श० स्थिर लगान भूमि-पतियों से राज्य ने सदा के लिये स्थिर कर दिया।' पर असल बात तो यह है कि सन् १७९३ में लार्ड कार्नवालिस ने आर्थिक लगान (net assets) का ९० फ़ी-सैकड़ा मालगुज़ारी के रूप में लेना निश्चय किया था। आर्थिक लगान और कुल उपज में बड़ा अंतर है। इसलिये, हमारी समझ में, यह कहना ठीक नहीं कि कुल उपज का ९० फ़ी सैकड़ा मालगुज़ारी (Land Revenue) के रूप में लिया गया। हाँ, हम यह मानने को तैयार हैं कि उस समय आर्थिक लगान का ९० फ़ी-सैकड़ा मालगुज़ारी के रूप में ले लेना उचित नहीं था।

पुस्तक की भाषा भी कहीं-कहीं पर अशुद्ध और क्लिष्ट हो गई है, और कहीं-कहीं लेखक के भाव आसानी से समझ में नहीं आते। अपनी 'इँगलैंड का इतिहास'-नामक पुस्तक के समान श्रीयुत प्राणनाथजी यदि इस पुस्तक को भी मौजूँ तथा सरल भाषा में लिखने का प्रयत्न करते, तो पाठकों को बड़ा लाभ होता । यदि इस पुस्तक के लिखने में कुछ अधिक सावधानी से काम लिया जाता, तो इसका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता। हमारी समझ में इस पुस्तक में संपादन की बड़ी आवश्यकता है। यदि इस पुस्तक का संपादन भारतवर्षीय हिंदी-अर्थशास्त्र-परिषद् की संपादन-समिति द्वारा अथवा गंगा-पुस्तकमाला के संपादक के समान किसी विद्वान् व्यक्ति द्वारा किया जाता, तो हमें पूर्ण विश्वास है कि उपर्युक्त त्रुटियाँ इस पुस्तक में नहीं रहने पातीं। आशा है, लेखक महाशय दूसरे संस्करण के समय ऊपर बतलाई हुई सब त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

प्रकाशक महाशय ने भी काफ़ी सावधानी से काम नहीं लिया। प्रूफ़-संबंधी ग़लतियों की तो पुस्तक में भरमार है। इन ग़लतियों के कारण कहीं-कहीं अर्थ का अनर्थ हो गया है । शुद्धि-पत्र भी कहीं पर नहीं दिया गया । १३४ पृष्ठ के बाद जो सूचियाँ दी जानी चाहिए थीं, वे वहाँ पर नहीं हैं। न फुट-नोट में ही कहीं पर यह बतलाया गया है कि वे कहाँ पर दी गई हैं। कई पन्ने इधर-उधर उलटने पर बड़ी मुशकिल से यह पता लगा कि वे सूचियाँ ४९६ पृष्ठ पर दी गई हैं। पुस्तक के अंत में शब्दानुक्रमणिका (Index) भी नहीं दी गई । क़रीब ६०० पृष्ठ की पुस्तक के लिये उसका दिया जाना अत्यंत आवश्यक था। यदि अंत में पारिभाषिक शब्दों की सूची भी जोड़ दी जाती, तो पुस्तक की उपयोगिता कुछ बढ़ जाती। पुस्तक का मूल्य भी अधिक रक्खा गया है। इससे इस पुस्तक के प्रचार में कुछ बाधा होने की संभावना है।

किंतु पुस्तक में कुछ त्रुटियाँ होने पर भी वह अत्यंत उपयोगी और उपादेय है। प्रत्येक देश-भक्त को इसका अध्ययन कम-से-कम एक बार अवश्य करना चाहिए।

× × ×

वैज्ञानिक साम्य-वाद—अनुवादक और प्रकाशक, श्रीयुत रामचंद्र वर्मा, साहित्य-रत्न-माला-कार्यालय, काशी। आकार २०×३० सोलह-पेजी। कागज़, छपाई, सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ६८। मूल्य ≡)

यह पुस्तक श्रीयुत विलियम पाल-रचित "Scientific Socialism" नाम की पुस्तिका का छायानुवाद है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible] परंतु इस वर्ष (?) [illegible] जाता।

	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ १०७ में प्रोफ़ेसरजी लिखते हैं — 'रेलें तथा नहरें सारी-की-सारी आमदनी खाती जाती हैं। परंतु इनसे भारत की उत्पादक-शक्ति तिल-मात्र भी नहीं बढ़ रही है।' इस कथन में अत्युक्ति की मात्रा बहुत अधिक है, और हम लेखक के इस मत से सहमत नहीं हैं कि रेलों से भारत की उत्पादक-शक्ति तिल-मात्र भी नहीं बढ़ती। पृष्ठ ३२१-२२ में साधारण वृष्टि तो ८२ इंच से १२३ इंच तक बतलाई गई है, पर पृष्ठ ३२० में तीव्र वृष्टि २० से ४० इंच तक ही मानी गई है। क्या तीव्र वृष्टि से साधारण वृष्टि अधिक मानी जानी चाहिए? पृष्ठ ३८४ में लेखक महाशय लिखते हैं — '१७९३ में बंगाल में कुल उपज का ९० प्र० श० स्थिर लगान भूमि-पतियों से राज्य ने सदा के लिये स्थिर कर लिया।' पर वास्तव बात तो यह है कि सन् [illegible]

[illegible]

यदि इस पुस्तक [illegible] तथा सरल भाषा में लिखने का प्रयत्न करते, तो पाठकों को अधिक लाभ होता। यदि इस पुस्तक के लिखने में कुछ अधिक सावधानी से काम लिया जाता, तो इसका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता। हमारी समझ में इस पुस्तक के संपादन की बड़ी आवश्यकता है। यदि इस पुस्तक का संपादन भारतवर्षीय हिंदी-अर्थशास्त्र-परिषद् की प्रकाशन-समिति द्वारा अथवा गंगा-पुस्तकमाला के संपादक के समान किसी विद्वान् व्यक्ति द्वारा किया जाता, तो हमें पूर्ण विश्वास है कि उपर्युक्त त्रुटियाँ इस पुस्तक में नहीं रहने पातीं। आशा है, लेखक महाशय दूसरे संस्करण के समय ऊपर बतलाई हुई सब त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

प्रकाशक महाशय ने भी उतनी सावधानी से काम नहीं लिया। प्रूफ-संबंधी गलतियों की तो पुस्तक में भरमार है। इन गलतियों के कारण कहीं-कहीं अर्थ का अनर्थ हो गया है। शुद्धि-पत्र भी कहीं पर नहीं दिया गया। [illegible] पृष्ठ के बाद जो सूचियाँ दी जानी चाहिए थीं, वे वहाँ पर नहीं हैं। न फुट-नोट में ही कहीं पर यह बतलाया गया है कि वे कहाँ पर दी गई हैं। कई पृष्ठ इधर-उधर उलटने पर बड़ी मुश्किल से यह पता चला कि ये सूचियाँ ४८६ पृष्ठ पर दी गई हैं। पुस्तक के अंत में शब्दानुक्रमणिका (Index) भी नहीं दी गई। करीब ५०० पृष्ठ की पुस्तक के लिये उसका दिया जाना अत्यंत आवश्यक था। यदि अंत में पारिभाषिक शब्दों की सूची भी जोड़ दी जाती, तो पुस्तक की उपयोगिता कुछ बढ़ जाती। पुस्तक का मूल्य भी अधिक रक्खा गया है। इससे इस पुस्तक के प्रचार में कुछ बाधा होने की संभावना है।

किंतु पुस्तक में कुछ त्रुटियाँ होने पर भी वह अत्यंत उपयोगी और उपादेय है। प्रत्येक देश-भक्त को इसका अध्ययन कम-से-कम एक बार अवश्य करना चाहिए।

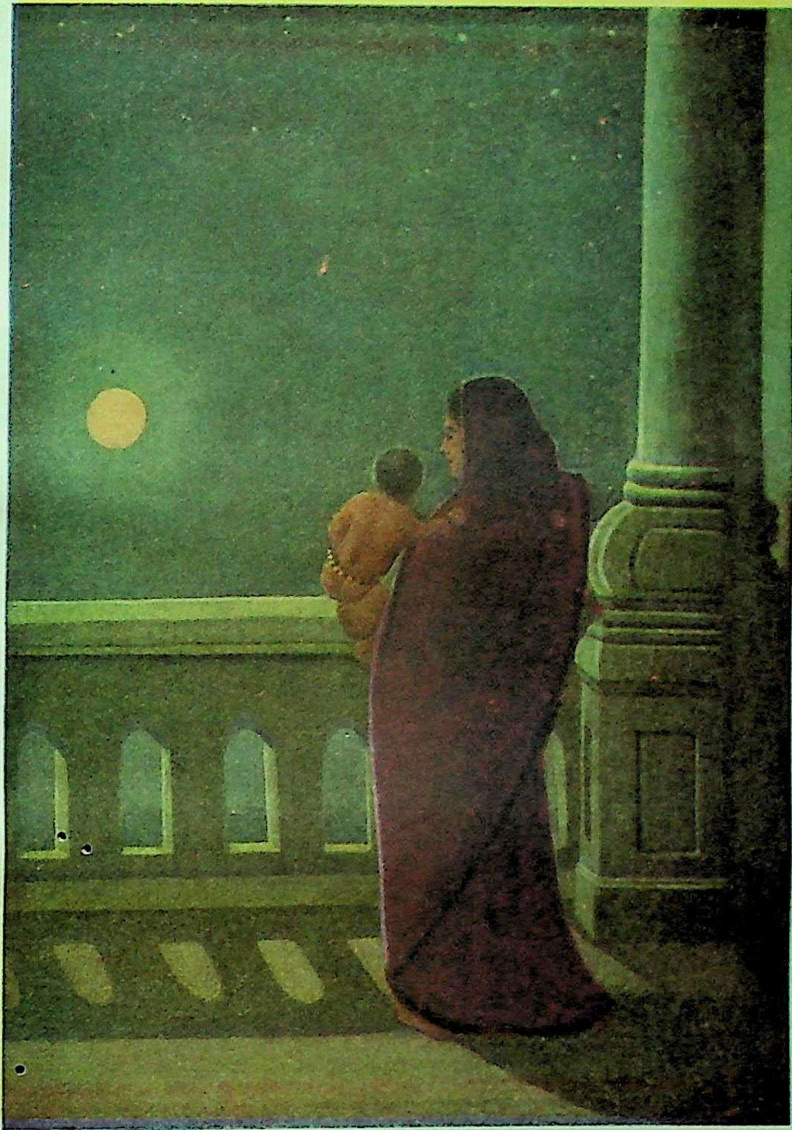
× × ×

वैज्ञानिक साम्य-वाद — अनुवादक और प्रकाशक, श्रीयुत रामचंद्र वर्मा, साहित्य-रत्न-माला-कार्यालय, काशी। आकार २०×३० सोलह-पेजी। कागज़, छपाई, सफाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ४८। मूल्य [illegible]

यह पुस्तक श्रीयुत विलियम पाल-रचित "Scientific Socialism" नाम की पुस्तिका का भावानुवाद है। इस [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बाल-मनावन

[चित्रकार—श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू]

बिचलयो बालक गोद में जननी रही रिझाइ ;
बार-बार बहलावती पूनो-चंद दिखाइ ।

N. K. Press, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक में साम्य-वाद का वैज्ञानिक ढंग से विवेचन किया गया है। प्रथम प्रकरण में विषय-प्रवेश है। दूसरे में पूँजीदारी का पतन बतलाया गया है। तीसरे प्रकरण में साम्य-वादी श्रमजीवी-दल का उद्देश्य बतलाते हुए यह सिफ़ारिश की गई है—'साम्य-वादियों को चाहिए कि वे राजनीतिक अधिकार प्राप्त करके पूँजीदारों के हाथ से वर्तमान शासन-संस्था ही ज़बरदस्ती छीन लें, और उनके हाथों से वह हत्यारी शक्ति निकाल लें, जिससे वे मज़दूरों के साथ झगड़ा होने पर सहायता लेते हैं।' चौथे प्रकरण में शिल्पीय संघ-वाद का परिचय दिया गया है। पाँचवें प्रकरण में मज़दूरों की स्वतंत्र शिक्षा पर ज़ोर दिया गया है। अनुवाद सरल और सुबोध है। प्रत्येक व्यक्ति को इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिए।

दयाशंकर दुबे

× × ×

२. इतिहास और राजनीति

भारत का प्राचीन इतिहास—लेखक, पं० रामदहिन मिश्र। प्रकाशक, बालमित्र मासिक ग्रंथमाला, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ७८। छपाई-सफ़ाई अच्छी। मूल्य ।-)

यह हिंदू-युग का इतिहास है। मालूम नहीं पड़ता कि यह पुस्तक किन लोगों के लिये लिखी गई है। यदि छोटे बच्चों के लिये लिखी गई है, तो इसमें रामायण, महाभारत आदि की कथाएँ देनी चाहिए थीं, और यदि उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है, तो यह अपूर्ण और अपर्याप्त है; क्योंकि इसमें वैदिक भारत का हाल नहीं दिया गया, सामाजिक और सभ्यता का इतिहास प्रायः छुआ तक नहीं गया, और दक्षिण का इतिहास क़रीब-क़रीब छोड़ ही दिया गया है। पुस्तक में चित्र या नक़्शे कुछ भी नहीं हैं। कहीं-कहीं विषय-संबंधी अशुद्धियाँ भी हैं। भाषा सरल है, किंतु कहीं-कहीं खटकती है। साधारण पाठकों के लिये यह पुस्तक लाभ-दायक हो सकती है।

× × ×

गुलामी—लेखक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० और प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार-कार्यालय, बनारस सिटी। पृष्ठ-संख्या १०१+२०। मूल्य ।।।=); दो चित्र भी हैं।

यह पुस्तक रूस के प्रसिद्ध दार्शनिक काउंट लिओ टालस्टाय की पुस्तक Slavery of our own times का अनुवाद है। अनुवाद बहुत सुंदर हुआ है, और विषय की कठिनता देखते हुए सरल भी कहा जा सकता है। प्रूफ़ असावधानी से देखे जाने के कारण कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। आरंभ में टालस्टाय की संक्षिप्त जीवनी भी दे दी गई है। इससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। इसमें टालस्टाय ने वर्तमान समय की सामाजिक अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि "श्रमजीवी लोग पूँजीवालों के क़ब्ज़े में हैं; और सरकार इन पूँजीवाले लोगों की मुट्ठी में। श्रमजीवी लोग इस बुरी तरह से चंगुल में फँसे हुए हैं, और उनकी दशा इतनी ख़राब है कि वे गुलामों से किसी तरह कम नहीं हैं। पूँजीवाले सरकार की सहायता से इन्हें गुलाम बनाते हैं, और सरकार की शक्ति सेना तथा क़ानून के ऊपर निर्भर है, इसलिये दासत्व का आविर्भाव क़ानून से होता है। क़ानून का निर्माण सरकार करती है, इसलिये लोगों को स्वाधीन किए जाने का एक-मात्र उपाय यह है कि सरकार की समाप्ति कर दी जाय।" बहुत कुछ तर्क-वितर्क के बाद और बल-प्रयोग द्वारा सरकार को नष्ट करने की निरर्थकता दिखलाने के उपरांत लेखक इस परिणाम पर पहुँचा है कि "सरकार को नष्ट करने का एक-मात्र उपाय उसकी मायाविनी नीति-जाल का उद्घाटन करना है। इसके लिये बल-प्रयोग उपयुक्त साधन नहीं है।" इसके बाद उपर्युक्त तत्त्व का यह अवश्यंभावी परिणाम निकाला गया है कि "सरकार की अपराधमयी कारगुज़ारियों में भाग लेना" उचित नहीं है, "चाहे वह भाग लेना धन-प्रदान के रूप में हो, अथवा सीधे-सीधे सेना के भरती होने के रूप में हो।" "अब लोगों के यह समझ लेने का समय आ गया है कि सरकारों की आवश्यकता नहीं है। उनसे हानि होती है। वे नैतिक हीनता-युक्त हैं। ऐसी संस्थाओं में सच्चे और आत्म-सम्मानी पुरुष को कदापि भाग न लेना चाहिए, तथा इसमें जो कुछ लाभ है, उसका भी उपभोग न करना चाहिए।" इस प्रकार लेखक एक प्रकार की दार्शनिक अराजकता Philosophical Anarchy का समर्थन करता है। अंत में असहयोग और अहिंसा के सिद्धांत की पुष्टि की गई है। सरकार की दलीलों का यह उत्तर बतलाया गया है—"हम जानते हैं कि बल-प्रयोग से हम ऐसे जकड़े हुए हैं कि उससे बिलकुल पृथक् हो जाना बड़ा कठिन काम है; फिर भी जहाँ तक हो सकेगा, हम उसमें भाग न लेंगे। इस पाप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कार्य में हम सहायक न बनेंगे, और उद्योग यह करेंगे कि हत्या से संरक्षित अथवा प्राप्त वस्तुओं को अपने काम में न लावें।" किंतु इस असहयोग का परिणाम क्या होगा? क्या सरकार चुप-चाप इसे सहन कर लेगी? इससे समाज की क्या दशा हो जायगी? इन सबके उत्तर में लेखक एक बहुत ही सीधा-सादा, भोलेपन का उत्तर देता है। वह कहता है—"इसका परिणाम क्या होगा, यह हम नहीं जानते, पर यह जानते हैं कि अंतरात्मा की इच्छा के अनुकूल कार्य करने से कोई हानि न होगी।" इस तरह इसमें तर्क करके अहिंसा और असहयोग की पुष्टि की गई है। महात्मा गाँधी टाल्स्टाय के बड़े भक्त हैं, और उन्होंने अपने सिद्धांत स्थिर करने में टाल्स्टाय के विचारों से बहुत कुछ सहायता ली है। इस दृष्टि से विचार-शील तथा सामाजिक संगठन-संबंधी दार्शनिक विचार रखनेवालों को इस पुस्तक में विचार के लिये बहुत कुछ मसाला मिलेगा। हिंदी में इस प्रकार की सामाजिक अवस्था पर दार्शनिक दृष्टि से विचार करनेवाली पुस्तकों की बहुत कमी है। संसार के एक बहुत बड़े चिंता-शील व्यक्ति के इस ग्रंथ के हिंदी-अनुवाद का हिंदी-संसार में स्वागत होना चाहिए। खेद है कि पुस्तक बहुत रद्दी काग़ज़ पर छापी गई है।

× × ×

Outlines of British System of administration in India (भारत की बृटिश शासन-प्रणाली का वर्णन)—लेखक, लेफ्टिनेंट एन्० डी० मिश्र बी० ए०, मेरठ। पृष्ठ-संख्या १७३+५, मूल्य १॥) लेखक ही से प्राप्य। छपाई बहुत सुंदर।

इस पुस्तक में वर्तमान शासन-प्रणाली का वर्णन है। वर्णन बहुत ही स्पष्ट और ठीक है। लेखन-शैली रोचक है। अंत के एक अध्याय में बृटिश राज्य के कारण इस देश में जो शांति स्थापित है, उसके लाभ और हानियाँ भी बतलाई गई हैं। परिशिष्ट में बहुत-सी काम की बातें दे दी गई हैं, और उनके कारण पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। इसके पढ़ने से वर्तमान शासन-प्रणाली भली भाँति समझ में आ जाती है। भाषा इतनी सरल है कि हाई स्कूलों के विद्यार्थी आसानी से समझ सकते हैं। शासन-संबंधी बातें जानने के लिये यह पुस्तक कोष का काम दे सकती है। यों तो यह सभी के काम की है, किंतु स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थी इससे विशेष लाभ उठा सकते हैं।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

३. अध्यात्म और दर्शन

गीताष्टक—अनुवादक तथा प्रकाशक, शास्त्री भद्रगुप्त वैद्य। पृष्ठ-संख्या १०२, और मूल्य ॥)

महाभारत में भगवान् कृष्ण ने युद्ध से विरत होते हुए अर्जुन को जो उपदेश दिया है, वह भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है। उसके अतिरिक्त और भी अनेक गीताएँ यत्र-तत्र महाभारत तथा पुराणों आदि में वर्णित हैं, और उनमें भी विवेक, वैराग्य, कर्तव्य-निष्ठता आदि का समीचीन उपदेश मिलता है। परंतु अन्य गीताओं का उतना प्रचार नहीं है। इस पुस्तक में आठ गीताओं का संग्रह है। उनके आचार्यों के नाम ये हैं—शम्याक, हारीत, पिंगल, बोध्य, मंकि, हंस, उतथ्य और वामदेव।

इन्हीं आठ गीताओं का संग्रह, अनुवाद-सहित, वैद्यजी ने प्रकाशित किया है। अनुवाद सरल और सुबोध है। पुस्तक उपदेश-पूर्ण और प्रत्येक के पाठ करने योग्य है।

× × ×

नवीन व प्राचीन वेदांत—अनुवादक, श्रीयुत बुद्धिसागर वर्मा। प्रकाशक, दीवान अवधविहारीलाल वर्मा (आर्य), रियासत थमरवाँ, हरदोई। पृष्ठ-संख्या ७८; मू०।)

श्रीस्वामी दर्शनानंदजी ने नवीन व प्राचीन वेदांत-नामक एक पुस्तक उर्दू में लिखी थी। उसमें उपनिषद्, ब्रह्म-सूत्र आदि प्राचीन वेदांत-विषयक पुस्तकों के आधार पर अर्वाचीन वेदांतियों के माया-वाद को कपोल-कल्पित तथा अवेद-मूलक सिद्ध किया गया है। अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये पद्म-पुराण से वचन भी उद्धृत किए गए हैं। इसके अनंतर बृहदारण्यकोपनिषद् के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि आत्मा ही प्रत्येक का ज्ञातव्य विषय है, उसी के लिये प्रत्येक पुरुष प्रयत्न करता है। उसी आत्मा के लिये पति, पुत्र, पत्नी, धन-धान्य, समृद्धि, दासी, दास आदि होते हैं। जो आत्मा के लिये प्रतिकूल हैं, वे सर्वथा हेय हैं। इसी आधार पर

'आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि;
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि।'

इस श्लोक की व्याख्या की गई है। उसके बाद मैत्रेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को महात्मा याज्ञवल्क्यजी ने जो उपदेश दिया है, उसका सार दिया गया है—'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यः निदिध्यासितव्यः।' तत्पश्चात् द्वितीय अध्याय में, प्रश्नोत्तर-रूप में, अनेक वेदांत-विषयक तत्त्वों का सम्यग्विवेचन किया है। भाषानुवाद अच्छा हुआ है। पुस्तक सर्वथा संग्रहणीय है। पुस्तक की उपयोगिता देखते हुए मूल्य भी स्वल्प है।

× × ×

कर्मयोग—मूल-लेखक, श्रीअश्विनीकुमार दत्त। अनुवादक, पंडित छविनाथ पांडेय बी० ए०; एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भवन, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १४६, और मूल्य ॥)

पूर्वीय बंगाल के जीवन-सर्वस्व बरीसाल-निवासी स्व-नाम-धन्य बाबू अश्विनीकुमार दत्त का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। राजनीतिक क्षेत्र में उनका स्थान इतना उच्च है कि उनके संबंध में विशेष कुछ लिखना पिष्ट-पेषण होगा। परंतु यह कहना आवश्यक है कि जिस प्रकार वह राजनीतिक विषयों में अग्रणी हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक विषयों में भी उन्होंने बहुत उन्नति की है। उन्होंने भक्तियोग, प्रेम, कर्मयोग इत्यादि अनेक पुस्तकों की रचना की है। प्रस्तुत पुस्तक 'कर्मयोग' उन्हीं में से अन्यतम है। मूल-ग्रंथ का सबसे प्रथम आदर्श है 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' इसी एक वाक्य से पुस्तक के विषय का पता चल सकता है। संसार-क्षेत्र में अवतीर्ण होकर लोक-संग्रहार्थ कार्य करना प्रत्येक का धर्म होना चाहिए। फल की आशा न रखकर, कर्म में लिप्त न रहकर, निष्काम कर्म करने का उपदेश भगवद्गीता में दिया गया है। योगवाशिष्ठ में भी इस विषय का अच्छा विवेचन किया गया है। इन्हीं सबके आधार पर लेखक ने बड़ी सुंदर रीति से 'कर्मयोग' का वर्णन किया है। पाश्चात्य पंडितों के मतों का प्रमाण भी स्थान-स्थान पर दिया गया है। विषय को हृदयंगत करने के लिये आख्यायिकाएँ भी दी गई हैं। सिद्धि और असिद्धि में सम भाव रखना कर्मयोगी के प्रधान लक्षणों में से है। यह भाव यदि प्रत्येक पुरुष के हृदय में जाग्रत् हो जाय, तो अनेक बार कार्य सिद्ध न होने के कारण नैराश्य-जन्य जो दुःख होता है, उससे उसको छुटकारा मिल जाय। भगवान् कृष्णचंद्र का निम्न-लिखित वाक्य प्रत्येक को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिए। यही संक्षेप में कर्मयोग का सार है—

'धर्मकार्ये यतन् शक्त्या नो चेत् प्राप्नोति मानवः ;
प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः।'

अर्थात् धर्म-कार्य के लिये यत्न करता हुआ मानव उसमें चाहे सिद्धि न भी पा सके, पर तो भी उसे उसके यत्न के कारण उसका पुण्य अवश्य मिलता है, इसमें संदेह नहीं। इसी आशय को लेकर भगवद्गीता में भी भगवान् ने कहा है—

'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'

इसी आशय को लेकर एक पाश्चात्य पंडित ने कहा है—

'No true effort can be lost.'

इसी भाव को सामने रखकर बाइरन ने भी कहा है—

Freedom's battle once begun,
Bequeathed from bleeding sire to son,
Though baffled oft is ever won.

पुस्तक के उपसंहार में भगवान् से प्रार्थना की गई है कि "हे महाप्रभु, इस देश में बसनेवाली किसी भी प्रजा की बुद्धि में हिंसा और द्वेष की वृत्ति न आने देना × × भगवन्, ऐसी प्रेरणा करो, जिससे हम लोग ऋषि-मुनियों की निर्दिष्ट सात्त्विक प्रवृत्ति को अपने लक्ष्य में रखकर शुभेच्छा की प्रेरणा से समस्त संसार को परिवेष्टित करके सच्चिदानंद की प्रतिष्ठा की प्रेरणा करते हुए अपनी उन्नति करने में सदा लव-लीन और सफल होते रहें।" ऐसी सुंदर और उपदेश-पूर्ण पुस्तक का हिंदी में अनुवाद करके अनुवादक महाशय ने हिंदी को उपकृत किया है। पुस्तक प्रत्येक भारतवासी के मनन करने योग्य है। मूल्य भी अधिक नहीं है।

आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

४. भूगोल

भारत का भूगोल—लेखक और संपादक, पं० रामदहिन मिश्र। प्रकाशक, रामनरायनलाल, प्रकाशक और विक्रेता, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ६३; मूल्य ।-)

इस पुस्तक में भारत के भूगोल का वर्णन है। भूगोल लिखना उतना सरल नहीं है, जितना लोग साधारणतया समझते हैं। ढंग से मालूम पड़ता है, लेखक ने मारिसन साहब की अँगरेज़ी-पुस्तक का आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया है, यद्यपि उसने इस बात का उल्लेख नहीं किया। पुस्तक अशुद्धियों से पूर्ण है। उसका ढंग पुराना है। शिक्षा के सिद्धांतों पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया गया। शिक्षा का एक सिद्धांत है कि ज्ञात से अज्ञात बतलाना चाहिए; किंतु परिभाषा लिखते समय लेखक इसे भूल गए। पहले महादेश, उसके बाद देश और फिर प्रांत की परिभाषाएँ दी गई हैं, और इनमें से प्रत्येक परिभाषा में एक अज्ञात वस्तु के द्वारा ही दूसरी अज्ञात वस्तु का ज्ञान कराने की चेष्टा की गई है। उदाहरण के लिये महादेश की परिभाषा ले लीजिए। अभी देश की परिभाषा नहीं बतलाई गई, किंतु महादेश की परिभाषा इस प्रकार लिखी गई है—"पृथ्वी के उस बड़े खंड को महादेश कहते हैं, जिसमें कई देश होते हैं।" जब बालकों को अभी देश ही की परिभाषा मालूम नहीं, तो फिर वे उसके द्वारा एक अज्ञात वस्तु (महादेश) का ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकते हैं? देश की परिभाषा भी वही दक़ियानूसी रक्खी गई है। यथा—"महादेश ही का एक बड़ा टुकड़ा देश कहलाता है।" इससे लड़कों को देश के क्या लक्षण मालूम होंगे? उन्हें बतलाना चाहिए कि समान भौगोलिक अवस्थाओं के कारण पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न प्रकार के हो जाते हैं। इन्हीं भौगोलिक कारणों से भिन्न पृथ्वी के भागों को देश कहते हैं। इसी प्रकार राज्य की परिभाषा भी अशुद्ध है। यथा—"स्वतंत्र शासक के अधीन रहनेवाले प्रदेश को राज्य कहते हैं; जो साम्राज्य के भीतर होता है।" इस परिभाषा के अनुसार काबुल राज्य नहीं हुआ; क्योंकि वह किसी साम्राज्य के भीतर नहीं है। इसी प्रकार 'मैदान', 'उपत्यका', 'अधित्यका', 'मरु-भूमि', 'शिखर', 'घाटी' आदि की परिभाषाएँ भी अशुद्ध हैं। परिभाषाओं की अशुद्धियों के सिवा इसमें बहुत-सी तथ्य (Facts)-संबंधी अशुद्धियाँ भी हैं। यथा—"भारत में दो प्रधान अधित्यकाएँ हैं। एक मालव-अधित्यका और दूसरी दक्षिण-अधित्यका। पहली सिंध और अरावली पहाड़ के बीच में है और दूसरी दक्षिण में।" सिंध और अरावली के बीच में राजपूताने की मरु-भूमि है। मालव-अधित्यका पश्चिमी मध्य-भारत में है। आब-हवा के विषय में लिखा है—"बंगाल, बिहार और युक्त-प्रांत की आब—हवा अनुकूल—मातेदिल है।" यदि इन प्रदेशों की आब—हवा 'मातेदिल' (?) है तो गरम कहाँ की है? जंगलों का विभाग विचित्र रीति से किया गया है। यथा—"भारत में दो तरह के जंगल हैं। एक के ऊपर राजा की निगरानी है और एक ऐसी (?) है, जिस पर किसी की देख-रेख नहीं है।" भूगोल में लिखना चाहिए था कि इस देश में उष्ण देशों के जंगल (Tropical forests), शीतोष्ण देशों के जंगल (Temperate forests) आदि प्रायः सभी तरह के जंगल हैं, और भूगोल में इन सभी तरह के जंगलों का हाल लिखना चाहिए था। आजकल तो नक़्शा-हीन भूगोल की पुस्तक की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस पुस्तक में नक़्शे तक नहीं हैं, चित्रों की तो बात ही कौन। सारांश, पुस्तक में भाषा-संबंधी और विषय-संबंधी सभी तरह की अशुद्धियाँ हैं। लड़कों को ऐसी पुस्तक देना हानिकारक है। हाँ, इसकी छपाई-सफ़ाई ज़रूर अच्छी है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

५. चंपू

प्रबुद्ध भारत—रचयिता तथा प्रकाशक, पं० रामनारायण शास्त्री। पृष्ठ-संख्या ७१, और मूल्य ॥)

संस्कृत-साहित्य में काव्य को तीन भागों में विभक्त किया गया है—गद्य, पद्य और मिश्रित। इसी अंतिम अर्थात् मिश्रित काव्य को चंपू भी कहते हैं। जिस काव्य में गद्य और पद्य, दोनों मिश्रित होते हैं, उसे चंपू-काव्य कहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक—प्रबुद्ध भारत-नामक चंपू-काव्य—संस्कृत में लिखी गई है। आशय इस प्रकार है—स्वर्गलोक में एक स्वागत-सभा का आयोजन किया गया है। देव-गुरु बृहस्पति सभाध्यक्ष का आसन समलंकृत कर रहे हैं। समस्त देव-मंडल के अधिपति इंद्र मंत्रि-पद को सुशोभित कर रहे हैं। देव, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, विद्याधर आदि असंख्य सभ्य जन उपस्थित हैं। उसी समय भारत-स्वागत-गीत गाया जाता है। ततः पर भारत-माता की ओर से भेजा हुआ राष्ट्र-दूत संदेश पढ़कर सुनाता है। फिर प्रसंग-वश प्राचीन-कालीन भारत-समाज की सुख-समृद्धि के वर्णन के साथ-साथ वर्तमान-कालीन सर्वतोमुखी अवनति का चित्र मार्मिकता के साथ खींचा गया है। देश-दशा का चित्रण रमणीय रीति से किया गया है। अंत में आशीर्वाद है। मूल के नीचे हिंदी-भाषा में अनुवाद भी दे दिया गया है, जिससे संस्कृत-भाषा न जाननेवाले पाठक भी उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसास्वादन कर सकें। यद्यपि यह प्रत्यक्ष है कि मूल-काव्य में जो काव्यच्छटा है, वह अनुवाद में नहीं आ सकती, तथापि 'अकरणान्मंदकरणं श्रेयः' के अनुसार कुछ लाभ तो अवश्य ही होता है। पुस्तक प्रत्येक मनुष्य के पढ़ने योग्य है। इसके पढ़ने से देश के प्राचीन गौरव का एक बार फिर स्मरण हो आता है।

आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

६. बालकोपयोगी

विज्ञान की सरल बातें—लेखक और संपादक, पं० रामदहिन मिश्र; प्रकाशक, रामनरायनलाल, प्रकाशक और विक्रेता, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ५९; मूल्य ।-)

यह पुस्तक बालमित्र मासिक माला की सातवीं पुस्तक है। श्रीयुत नरेंद्रनाथ मित्र बी० एस्-सी० की किसी बँगला-पुस्तक के आधार पर, बालकों के लिये, लिखी गई है। भाषा सरल है, किंतु कहीं-कहीं खटकती है। एकसाथ हिंदी और उर्दू-शब्द देने का प्रयास हास्यास्पद हो गया है। यथा—"तौर-तरीके में बहुत अंतर—फ़र्क़ है।" "इसके ख़ास अंग—हिस्से हैं;" "तुमको आश्चर्य—ताज्जुब होगा—" इत्यादि। 'मोताबिक' आदि शब्दों के हिज्जे ठीक होने चाहिए। विषय रोचक है। इसमें तार, एअरोप्लेन, टेलिफ़ोन आदि का वर्णन है। किंतु इससे केवल बड़े लड़के ही लाभ उठा सकते हैं। चित्रों के न होने से लड़कों की कल्पना पर बहुत ज़ोर पड़ेगा, और फिर भी विना किसी के समझाए बहुत-सी बातें उनकी समझ में न आवेंगी। यह पुस्तक उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये, जो कुछ विज्ञान जानते हैं, लाभ-दायक है।

× × ×

बाल-भारत—लेखक और संपादक, पं० रामदहिन मिश्र। प्रकाशक, रामनरायनलाल, प्रकाशक और विक्रेता, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ८५; मूल्य ।-)

यह पुस्तक पं० वासुदेव गोविंद आपटे बी० ए० की मराठी-पुस्तक की 'नक़ल' है। एक विषय पर कई पुस्तकें होने पर भी और पुस्तकें लिखना समय और शक्ति को नष्ट करना है। 'इधन', 'मोताबिक' आदि शब्दों के हिज्जे खटकते हैं। पुस्तक साधारण है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

७. शिक्षा

संस्कृत-शिक्षा—भाग १ से ५ तक। पुस्तक-प्रणेता तथा प्रकाशक, पं० जीवाराम शर्माजी उपाध्याय, किसरौल, मुरादाबाद।

इन पुस्तकों की रचना बालकों को सरल रीति से संस्कृत-भाषा सिखलाने के लिये की गई है। निःसंदेह इस कार्य में उक्त पंडितजी को अच्छी सफलता हुई है। प्राचीन परिपाटी से संस्कृत-भाषा के पठन-पाठन में समय अधिक लगता है, और वर्तमान-कालीन बहु-विषय-व्यस्त बालकों को संस्कृत-भाषा की क्लिष्टता देखकर उससे अरुचि-सी हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि अनेक छात्र, जिन्हें संस्कृत-भाषा पढ़ने में गौरवान्वित होना चाहिए, संस्कृत छोड़कर फ़ारसी आदि की शरण लेने लगते हैं। इससे न केवल संस्कृत की अवहेलना ही होती है, बल्कि, संस्कृत में रुचि न होने के कारण, हिंदी-भाषा में भी उन लोगों की अभिरुचि कम हो जाती है। हिंदी के सम्यग् ज्ञान के लिये संस्कृत का परिज्ञान परमावश्यक है। अतः संस्कृत को सरल रीति से सिखाने के कार्य में जितनी सफलता होगी, उतना ही अधिक संस्कृत की ओर छात्रों का आकर्षण होगा, और उससे संस्कृत तथा हिंदी दोनों ही उपकृत होंगी।

प्रथम भाग में, प्रारंभ में, अकारांत पुंलिंग शब्दों के कुछ रूप बनाकर वर्तमान काल की क्रिया के प्रथम पुरुष एकवचन के रूप बनाए गए हैं, और फिर इनसे वाक्य बनाना बताया गया है। इस प्रक्रिया से बालक छोटे-छोटे वाक्य बोलने तथा समझने लगता है। उससे उसका मनोरंजन होता है, और साथ ही संस्कृत-भाषा का ज्ञान भी होता जाता है। बोल-चाल के सरल शब्द इस प्रकार सहज ही में सिखा दिए जाते हैं। द्वितीय भाग में धातु और सार्वधातुक प्रयोगवाले लकार इसी पद्धति से (विशेष रूप से) लिखे गए हैं। तृतीय भाग में सुबंत, चतुर्थ में तिङंत तथा पंचम में णिजंत-यङंत-यङ्लुगंत, नामधातु, पद-प्रक्रिया आदि के वर्णन के बाद कारक का वर्णन है। इन पुस्तकों में कृदंत और तद्धित का विशेष उल्लेख नहीं होने पाया। समास भी रह गया है। पंचम भाग के अंत में विविध विषयों पर छोटे-छोटे आदर्श निबंध हैं; जिनके परिशीलन से विद्यार्थी लोग लेख लिखने का अभ्यास कर सकते हैं। द्वितीय भाग के अंत में पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखने का भी ढंग बताया गया है। पुस्तकें उपयोगी हैं, और लेखक महाशय का श्रम सर्वथा सराहनीय।

आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

८. कविता

कवि-कीर्तन—लेखक, श्रीवियोगी हरि; प्रकाशक, साहित्य-भवन-लिमिटेड, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ८७; मूल्य सजिल्द का ।॥=) और अजिल्द का ॥=)

इसमें चंदबरदाई से लगाकर अब तक के १७१ कवियों का पद्य-बद्ध कीर्तन किया गया है। अंत में लेखक ने यह अभिलाषा प्रकट की है—

'हमें न चहिए मुक्ति, जन्म भारत में पावैं,
कबि-निकुंज में रमैं, रसिक नटनागर ध्यावैं;
सब्द-ब्रह्म गुन गाय भारती बीन बजावैं,
घर-घर होय उछाह, काव्य-उपबन सरसावैं।'

तथास्तु। 'मुक्ति' और 'जन्म'-सरीखे शब्दों को व्रज-भाषा की रचना में स्थान दिया गया है, इससे अनुमान होता है कि व्रज भाषा के पक्षपाती भी अब संस्कृत के शब्दों को बिगाड़कर लिखने की उतनी आवश्यकता नहीं समझते, यद्यपि पहले बिगाड़े गए रूप ही माधुर्य के स्रोत समझे जाते थे। यों तो कौन कवि है और कौन नहीं, इस पर मत-भेद होना स्वाभाविक ही है, परंतु इसमें कुछ ऐसे सज्जनों के नाम देखकर हमें आश्चर्य हुआ, जो न शुद्ध खड़ी-बोली में ही लिख सकते हैं और न शुद्ध व्रज-भाषा ही में, अर्थात् जो अपनी रचनाओं में खिचड़ी-भाषा से काम लेते हैं। कुछ तुकबंदों और अनुवादकों तक का कीर्तन किया गया है; किंतु कुछ सुकवियों का स्मरण तक नहीं किया गया! जब कि पं० अक्षयवट मिश्र अपने लिये—

'रचे अनेकन ग्रंथ सुद्ध ब्रजभाषा माहीं,
नीरसता, सैथिल्य, अरोचकता कहुँ नाहीं।'

पढ़कर लेखक की सहृदयता पर मुग्ध होंगे, तब अपने ग्रंथ 'नवरत्न' के लिये—

'कहुँ-कहुँ कछु भ्रम भरयो'

का सार्टिफ़िकेट पाकर मिश्र-बंधु क्या सोचते होंगे, यह जान लेना कठिन है। हमारी राय में इसमें किसी की गद्य-रचना पर इस प्रकार सम्मति-प्रदान करने की कोई आवश्यकता न थी, बल्कि इसमें काव्य-रचना की दृष्टि से ही 'कीर्तन' किया जाना चाहिए था। कहने का तात्पर्य यह कि मत-भेद की बहुत कुछ गुंजायश है। परंतु पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है, इसमें कोई संदेह नहीं। हिंदी-प्रेमियों को इसे अवश्य अपनाना चाहिए।

× × ×

९. उपन्यास

मायापुरी—लेखक, पं० चंद्रशेखरजी पाठक; प्रकाशक, रिखवदास बाहिती, प्रोप्राइटर आर० डी० बाहिती ऐंड कं०, नं० ४ चोरबागान, कलकत्ता। मूल्य २।'); रेशमी जिल्द-वाली का ३)

यह पुस्तक केवल इसी उद्देश्य से लिखी गई है कि 'पाठक इसे पढ़कर इस मायापुरी के माया-चक्र से बचने की चेष्टा करें।' आगे लेखक महोदय कहते हैं—'मैं उद्देश्य में सफल हुआ या नहीं, यह सहृदय पाठक और उदार-हृदय समालोचक समझ लें। एक कार्य किया है, फल क्या होगा, सो राम ही जानें।' निस्संदेह कुछ भयानक फल होने की आशंका नहीं है, पाठकजी धैर्य रक्खें। हाँ, कामना, वासना तथा रति को यावज्जीवन कारा-दंड की आज्ञा मिली, यह कुछ अनुचित हुआ, क्योंकि इनके विना संसार कैसे चलेगा? और यह शायद पाठकजी भी न चाहते होंगे कि सब लोग सचमुच ही मायापुरी के माया-चक्र से बच-बचकर भाग निकलें; जिसमें न मायापुरी ही रह जाय और न कहीं भागनेवाले ही, सदा के लिये सृष्टि का क्रम ही बंद हो जाय। भला यदि सचमुच ऐसा हो जाय, तो कलकत्ते से तड़कीली-भड़कीली पुस्तकें कैसे प्रकाशित हों? और, कौन लेखकों को फ़ी पेज चार गंडे पैसे थमा दिया करे? जो हो, पाठकजी का उद्देश्य अच्छा है। हम पाठकजी से अनुरोध करते हैं कि वह मुर्दा विषयों पर न लिखकर जीवित विषयों पर लेखनी उठावें। अब मायापुरी से बचकर भागने का नहीं, बल्कि साहस-पूर्वक मायापुरी में डटे रहकर काम करने का ज़माना है। इस पुस्तक का टाइटिल रंगीन है। बीच में एक और भी चित्र रंगीन दिया हुआ है। ५ चित्र सादे हैं। दिल्लगी यह है कि किसी-किसी चित्र पर जिस पेज का हवाला दिया गया है, उस पेज पर उस चित्र के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया।

भरतानंद भारती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साहित्य-सूचना

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "प्रेम-पचीसी", श्रीप्रेमचंद-लिखित २५ गल्पें। मूल्य खद्दर की जिल्द २।), रेशमी जिल्द २॥)

(२) "ग़रीब हिंदोस्तान", श्रीयुत लाला किशनचंद 'ज़ेबा'-लिखित नाटक । मूल्य १)

(३) "बालक", श्रीयुत संतराम बी० ए०-लिखित। मूल्य १)

(४) "शेक्सपियर के मनोहर नाटक (प्रथम और द्वितीय भाग)", स्वर्गीय लाला काशीनाथ खत्री द्वारा अनुवादित । प्रथम भाग १), दूसरा भाग १।≈)

(५) "लक्ष्मी-चरित्र", श्रीयुत 'विमल' लिखित । मूल्य १)

(६) "वीर-केसरी शिवाजी", श्रीयुत नंदकुमारदेव शर्मा-लिखित जीवन-चरित्र । मूल्य ४)

(७) "टालस्टाय की कहानियाँ", रूस के प्रसिद्ध गल्प-लेखक श्रीटालस्टाय की कहानियाँ । श्रीयुक्त प्रेमचंद द्वारा संपादित । मूल्य १)

(८) "सत्य-विजय", कवि श्रीगोकुलदास-लिखित नाटक । मूल्य ।॥)

(९) "चारु चिकित्सा", हकीम अजमल ख़ाँ देहलवी की चिकित्साओं का सिद्ध प्रयोग । मूल्य ॥।)

(१०) "आर्य-सामाजिक धर्म", स्वामी सत्यानंदजी-लिखित । मूल्य ॥)

(११) "दिव्य जीवन", स्विट मार्सडन की अँगरेज़ी-पुस्तक Miracles of Right thoughts का श्रीयुत सुखसंपत्तिराय भंडारी-कृत हिंदी-अनुवाद । मूल्य ॥।)

(१२) "रूस का पंचायती राज्य", श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालंकार-लिखित । मूल्य ॥)

(१३) "मानव-जीवन का विधान", श्रीयुत संतराम बी० ए०-लिखित । मूल्य ॥)

(१४) "विवाह-कुसुम", श्रीयुत चारुचंद्र बंद्योपाध्याय-लिखित बँगला-उपन्यास का श्रीयुत प्रकाशचंद्र सेठी-कृत हिंदी-अनुवाद । मूल्य १॥)

(१५) "देश-दशा वा प्रेमयोगी", श्रीयुत बा० कन्हैयालाल बी० ए० 'तसव्वर'-लिखित नाटक । मूल्य ॥)

(१६) "श्रीदयानंद-वचनामृत", स्वामी सत्यानंदजी महाराज द्वारा लिखित । मूल्य ॥≈)

(१७) "तैरने की कला", स्वर्गीय श्रीकालिदास माणिक-लिखित । मूल्य ।≈)

(१८) "भारत की विदुषी नारियाँ", श्रीमती कृष्णकुमारी महोदया द्वारा संकलित और संपादित, महिला-माला का द्वितीय पुष्प । मूल्य ॥)

(१९) "व्यावहारिक पत्र-बोध (पहला भाग)", श्रीयुत लक्ष्मणदास चतुर्वेदी-लिखित । मूल्य ॥≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विविध विषय

१. आगामी चतुर्दश हिं०-सा०-सम्मेलन के सभापति

इस बार सम्मेलन का चौदहवाँ अधिवेशन दिल्ली में फागुन-बदी ३,४,५ शनिवार, रविवार, सोमवार (ता० २३,२४,२५ फ़रवरी) को होगा। सभापति-पद के लिये हम निम्न-लिखित पाँच नाम पेश करते हैं—ज्ञानवयोवृद्ध पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, हिंदी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक लेखक पं० गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा, ब्रज-भाषा के मर्मज्ञ और मार्मिक कवि बाबू जगन्नाथदासजी बी० ए० (रत्नाकर), हिंदी के प्राचीन लेखक और संपादक बाबू अमृतलालजी चक्रवर्ती और पं० राधाचरण-जी गोस्वामी।

अब तक साहित्य-सम्मेलन के जो सभापति हुए हैं, वे सब योग्य हैं। उनमें से किसी सज्जन पर आक्षेप करना हमारा उद्देश्य नहीं है। पर हम यह कहने के लिये बाध्य हैं कि अब तक सभापति के चुनाव में इस बात का ध्यान प्रायः नहीं रक्खा गया कि जो वयोवृद्ध और साहित्य-सेवी हैं, उन्हें पहले यह सम्मान दिया जाय। औसत निकालने पर, इस दृष्टि से, केवल ४-५ सभापतियों का चुनाव ही ठीक निकलेगा। यदि ऐसा न होता, तो पं० बालकृष्णजी भट्ट, श्रीयुत देवीप्रसादजी (पूर्ण कवि), मुं० देवीप्रसादजी मुंसिफ़ आदि पूजनीय साहित्य-सेवी इस सम्मान से वंचित रहकर ही स्वर्ग न सिधार जाते। अब भी अवसर है। शेष वयोवृद्ध विद्वानों का सम्मान करके हिंदी-भाषी जनता अपनी भूल का प्रायश्चित्त कर सकती है। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी आदि सज्जनों के पाँच नाम जो हमने पेश किए हैं, ये सब ज्ञानवृद्ध होने के साथ ही वयोवृद्ध भी हैं। इनकी उपेक्षा करके अन्य कम अवस्था के साहित्य-सेवियों को सभापति बनाने से हम अकृतज्ञता के दोष-भागी होंगे। पूर्वोक्त सज्जनों को सभापति बनाने से उनका गौरव नहीं, बल्कि सम्मेलन का गौरव है। पूज्य द्विवेदी-जी ने हिंदी की उन्नति और प्रचार में, लेखक तैयार करने में, तथा अन्य प्रकार से जितना काम किया है, वह किसी से छिपा नहीं। द्विवेदीजी का ऋण हिंदी-भाषी जनता किसी तरह चुका नहीं सकती। द्विवेदीजी को अब से बहुत पहले सभापति बनाना चाहिए था। लोगों ने चेष्टा की भी थी, पर दुर्भाग्य-वश स्वास्थ्य ठीक न रहने से द्विवेदीजी वारंवार अस्वीकार ही करते रहे। परंतु अब किसी प्रकार यह उपेक्षणीय विषय नहीं है। अब द्विवेदीजी अपनी आयु के अंतिम सोपान पर पहुँच चुके हैं। ईश्वर उन्हें चिरजीवी करें, पर सच तो यह है कि जब जवानों के जीवन का भरोसा नहीं है, तब वह तो वृद्ध ठहरे। अब द्विवेदीजी को, जिस तरह हो, अवश्य सभापति बना देना चाहिए। यदि स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण अब भी द्विवेदीजी राज़ी न हों, तो उन्हें ले जाकर सभापति के आसन पर बिठा देना चाहिए। वह गत वर्ष के सम्मेलन की तरह अपना व्याख्यान लिख-भर दें। कोई पढ़ देगा। संभव है, वह अधिक समय तक अपने आसन पर न बैठ सकें, इस-लिये दूसरे किसी सज्जन को स्थानापन्न सभापति चुन लेना मुनासिब होगा। हम हिंदी-भाषी जनता से आग्रह और अनुरोध करते हैं कि इस बार दिल्ली के सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पूज्य द्विवेदीजी को अवश्य सभापति बनाइए। आगामी अधिवेशनों में क्रमशः शेष चार सज्जनों को भी सभापति बनाकर अपने कर्तव्य का पालन किया जाना उचित होगा। आशा है, हमारी इस प्रार्थना पर अवश्य ध्यान दिया जायगा। हम फिर कहते हैं, जैसे कांग्रेस के सभापतित्व के लिये अनन्य रूप से मौलाना महम्मदअली का नाम लिया गया था, वैसे ही यदि आप लोग केवल द्विवेदीजी का ही नाम लिख भेजेंगे, तो द्विवेदीजी आप लोगों की प्रार्थना को—भक्ति-पूर्ण आह्वान को—कदापि टाल न सकेंगे।

× × ×

२. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का आगामी विशेष अधिवेशन

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की ओर देश के शिक्षित-समुदाय का ध्यान अधिकाधिक आकृष्ट होता जा रहा है, यह सौभाग्य की बात है। समाचार-पत्रों के पाठक जानते हैं कि इस बार कोकनाडा में कांग्रेस का अधिवेशन होनेवाला है। उसके साथ ही हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का विशेषाधिवेशन होना भी तय हो चुका है। यह समारोह बड़े दिन की छुट्टियों में होगा। स्वागत-कारिणी समिति का संगठन हो चुका है। विशेषाधिवेशन का सभापति कौन हो, यह प्रश्न महत्त्व का है। कारण, अधिवेशन की सफलता सभापति की योग्यता पर अधिक निर्भर रहती है। हमारी राय में इस अधिवेशन के सभापति-पद को सुशोभित करनेवाले वही सज्जन होने चाहिए, जो हिंदी की योग्यता के साथ ही राजनीति के भी विशेषज्ञ हों। स्वनाम-धन्य लाला लाजपतरायजी और 'देश'-पत्र के संपादक, बिहार के प्रधान नेता बाबू राजेंद्रप्रसादजी के नाम इस पद के लिये लिए जा रहे हैं। दोनों ही सज्जन इस दायित्व-पूर्ण पद के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। सम्मेलन के प्रधान मंत्रीजी ने सभासदों, प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलनों और संबद्ध संस्थाओं के मंत्रियों से इस पद के लिये पाँच नाम चुनकर भेजने की प्रार्थना की है। हम भी स्वतंत्र-संपादक पं० अंबिकाप्रसादजी वाजपेयी, 'आज' के अस्थायी संपादक पं० बाबूरावजी पराड़कर और पं० श्यामविहारीजी मिश्र एम्० ए० के नाम और पेश करते हैं।

× × ×

३. चतुर्दश हिं०-सा०-सम्मेलन के लिये निबंध-सूची

इस बार दिल्ली में होनेवाले चतुर्दश हिं०-सा०-सम्मेलन के लिये लेख लिखने के विषयों की सूची स्वागत-कारिणी समिति ने प्रकाशित कर दी है। विषयों का चुनाव बहुत अच्छा हुआ है; और उसमें सभी उपयोगी तथा आवश्यक विषयों का समावेश करने में विशेष योग्यता से काम लिया गया है। आशा है, हिंदी के विद्वान् लेखकगण यथासमय लेख लिखकर स्वागत-कारिणी समिति के प्रधान मंत्री श्रीयुत केदारनाथ गोयनकाजी के पास भेजने की कृपा अवश्य करेंगे। लेखों की सूची इस प्रकार है—

१. दूषित साहित्य से हानि और उसके रोकने का उपाय। २. समालोचना। ३. हिंदी-साहित्य की वर्तमान दशा। ४. सामयिक समाचार-पत्र। ५. समालोचनात्मक दृष्टि से भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचना की चर्चा। ६. भारतीय पुष्पों, वृक्षों और पशुओं का वर्णन। ७. बाल-साहित्य। ८. संपादन-कला। ९. वर्तमान कवि-समाज। १०. स्त्रियों के लायक़ साहित्य। ११. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की भविष्योन्नति पर विचार। १२. हिंदी-संग्रहालय। १३. हिंदी-साहित्य में नायिका-भेद और नखशिख-वर्णन का स्थान। १४. दिल्ली का ऐतिहासिक महत्त्व। १५. हिंदी-भाषा का रूपांतर समय-समय पर किन-किन कारणों से होता रहा? १६. हिंदी-लेखकों की मत-विभिन्नता के कारण। १७. हिंदी और धार्मिक सुधारक। १८. अन्य भाषा-भाषियों का हिंदी-प्रेम। १९. हिंदी-लेखक और प्रकाशक। २०. हिंदी में अनुवादित ग्रंथ और अनुवाद की उपयोगिता। २१. हिंदी में मौलिक साहित्य। २२. कविवर केशव का पांडित्य। २३. हिंदी-पद्य की प्रधान पुस्तकों की व्यापकता। २४. मुसलमानी-राज्यकाल में हिंदी का आदर। २५. हिंदी-भाषा में उपन्यास और नाटक। २६. हिंदी में राजनीतिक साहित्य। २७. सिख और हिंदी। २८. आर्य-समाज और हिंदी। २९. हिंदी में व्यंग्य-साहित्य और उसकी आवश्यकता। ३०. हिंदी के प्राचीन और नवीन कवियों में भेद। ३१. हिंदी में गद्य-काव्य। ३२. उर्दू-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास। ३३. गुजराती-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास। ३४. मराठी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास। बँगला-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास। ३५. तामिल-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास। ३६. तेलगू-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास। ३७. उड़िया-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास। ३८. कविता की भाषा। ३९. हिंदी-साहित्य के अभाव और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी पूर्ति के उपाय। ४०. हिंदी में उच्च शिक्षा और उसकी सामग्री। ४१. गोस्वामी तुलसीदासजी के काव्य पर समालोचनात्मक दृष्टि। ४२. न्यायालयों में हिंदी-प्रचार। ४३. राष्ट्र मिति। ४४. हिंदी में स्वर-लिपि।

× × ×

४. हिंदी का वृहत् संग्रहालय

कानपुर के सम्मेलन में हिंदी का एक वृहत् संग्रहालय स्थापित करने का प्रस्ताव पास हो चुका है; पर अभी तक उस प्रस्ताव को कार्य-रूप में परिणत करने का उद्योग वैसी सफलता नहीं प्राप्त कर सका, जैसी होनी चाहिए थी। ऐसे उपयोगी और महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव की पूर्ति में इतनी उदासीनता और शिथिलता वास्तव में हिंदी के सेवकों के लिये लज्जा की बात है। हस्त-लिखित दुर्लभ पुस्तकों के संग्रह में देर हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं; किंतु लाख-दो लाख की मामूली रक़म भी न एकत्र हो सकना अवश्य ही हिंदी-भाषी जनता का अक्षम्य अपराध है। ऐसे उपयोगी कार्य के लिये दो-चार लाख रुपए तो तत्काल आ जाने चाहिए थे। हिंदी के सेवकों में ऐसे सज्जनों की कमी नहीं है, जो अकेले ही इतना धन दे सकते हैं। फिर यह उदासीनता क्यों? रुपयों की कौन कहे, अभी तक पुस्तक-प्रकाशकों ने अपने यहाँ से प्रकाशित पुस्तकों की एक-एक प्रति भी इस संग्रहालय के लिये नहीं भेजी! जो लोग दबाव या भय के मारे अपनी पुस्तकों की दो-दो, तीन-तीन प्रतियाँ मुफ़्त सरकार को देते हैं, वे इस संग्रहालय को क्या एक कॉपी भी मुफ़्त नहीं दे सकते? हम सविनय प्रार्थना करते हैं कि जो लोग धनी-मानी हैं, वे विना विलंब उक्त संग्रहालय के लिये यथा-शक्ति धन देकर अपने कर्तव्य का पालन करें। पुस्तक-प्रकाशकों से भी हमारा यह अनुरोध है कि वे संग्रहालय के लिये प्रत्येक पुस्तक की एक—केवल एक—कॉपी मुफ़्त भेजने की उदारता दिखलावें। आशा है, हमारी यह प्रार्थना निष्फल न होगी। हम लोगों को आगामी अधि-वेशन तक दो लाख रुपए जमा करके और हिंदी में अब तक प्रकाशित सभी पुस्तकों को संग्रहालय में संगृहीत करके अपनी कर्तव्य-निष्ठा का परिचय देना चाहिए; जिसमें अन्य भाषा-भाषियों की दृष्टि में हमारा गौरव कम न हो।

× × ×

५. स्वर्गीय पंडित गोविंदनारायणजी मिश्र

हिंदी के दुर्भाग्य से एक-एक करके पुराने विद्वान् हिंदी-सेवक और हिंदी-साहित्य के आधार-स्तंभ कराल



स्वर्गीय पं० गोविंदनारायणजी मिश्र

[जन्म सं० १९१६ वि० मृत्यु सं० १९८० वि०]

काल के गाल में चले जा रहे हैं। सबसे अधिक शोक तो इस बात का है कि जो स्थान ख़ाली होते जाते हैं, उनकी पूर्ति करनेवाले नहीं नज़र आते; बल्कि यह कहना चाहिए कि भविष्य में भी उन स्थानों की पूर्ति होते नहीं देख पड़ती। पूज्य पं० बदरीनारायणजी चौधरी, वयोवृद्ध ऐतिहासिक मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ़ और शास्त्र-निष्णात पं० चंद्रधरजी गुलेरी के वियोग का शोक अभी ताज़ा ही था कि गत २३ सितंबर रविवार की रात को, चार बजे, चौंसठ वर्ष की अवस्था में, पं० गोविंदनारायणजी मिश्र का भी स्वर्गवास हो गया। मिश्रजी विद्या और शास्त्र-ज्ञान में एक विशिष्ट व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। आपका ज्ञान बहु-विस्तृत, प्रतिभा प्रखर और बुद्धि विशाल थी। मिश्रजी की रचनाएँ गंभीर और विद्वानों के पढ़ने योग्य हुआ करती थीं। जिन्होंने शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया, गुरु-मुख से साहित्य का अनुशीलन नहीं किया, वे मिश्रजी के लेखों और रचनाओं को समझ नहीं सकते थे। मिश्रजी की भाषा भी ऐसी होती थी कि साधारण अख़बारों के पढ़नेवाले उसे पढ़कर भाव-ग्रहण नहीं कर सकते थे। मतलब यह कि मिश्र-



पं० गोविंदनारायणजी मिश्र (श्मशान में)

जी विद्वान् थे, और उनकी रचनाओं का आनंद विद्वानों को ही प्राप्त होता था। मिश्रजी माधुरी में जो 'प्राकृत-विचार' शीर्षक लेख-माला लिख रहे थे, वह भी हमारे इस कथन का अन्यतम प्रमाण है। गत वर्ष कानपुर में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर हमने मिश्रजी से मिलकर प्राकृत-विचार को शीघ्र पूर्ण कर देने की प्रार्थना की थी। मिश्रजी ने उसके उत्तर में कहा था कि यह लेख-माला बहुत बड़ी होगी, अभी तो यह भूमिका ही है। उन्होंने हमारे अनुरोध को स्वीकार करके दशांग-साहित्य पर एक पुस्तक लिखने का भी वादा किया था। हम सब अच्छे-अच्छे प्राचीन कवियों की ग्रंथावलियाँ निकालना चाहते हैं। उसके लिये भी उन्होंने कुछ कवियों की कृतियों का संपादन स्वीकार कर लिया था। लेकिन कौन जानता था कि माननीय मिश्र-जी इतनी जल्दी हम लोगों से बिछुड़ जायँगे? मिश्रजी इधर बदरिकाश्रम की यात्रा करने गए थे। मेरठ आदि अन्य कई स्थानों में भी गए थे। वहीं से रोग ने घेर लिया। काशी में लौट आने पर जलोदर-रोग हो गया। काशी से चिकित्सा के लिये कलकत्ते गए। वहाँ प्रसिद्ध चिकित्सकों की चिकित्सा से भी कुछ फल नहीं हुआ। अंत को आप कैलाश-वासी हो गए। मिश्रजी हिंदी-माता के गले में जो रत्न डाल गए हैं, वे बहु-मूल्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हीं से उनका नाम अमर रहेगा और हिंदी के सेवक उन्हें सम्मान के साथ स्मरण करेंगे। मिश्रजी के कोई पुत्र नहीं है, कन्याएँ कई हैं, दौहित्र भी हैं।

× × ×

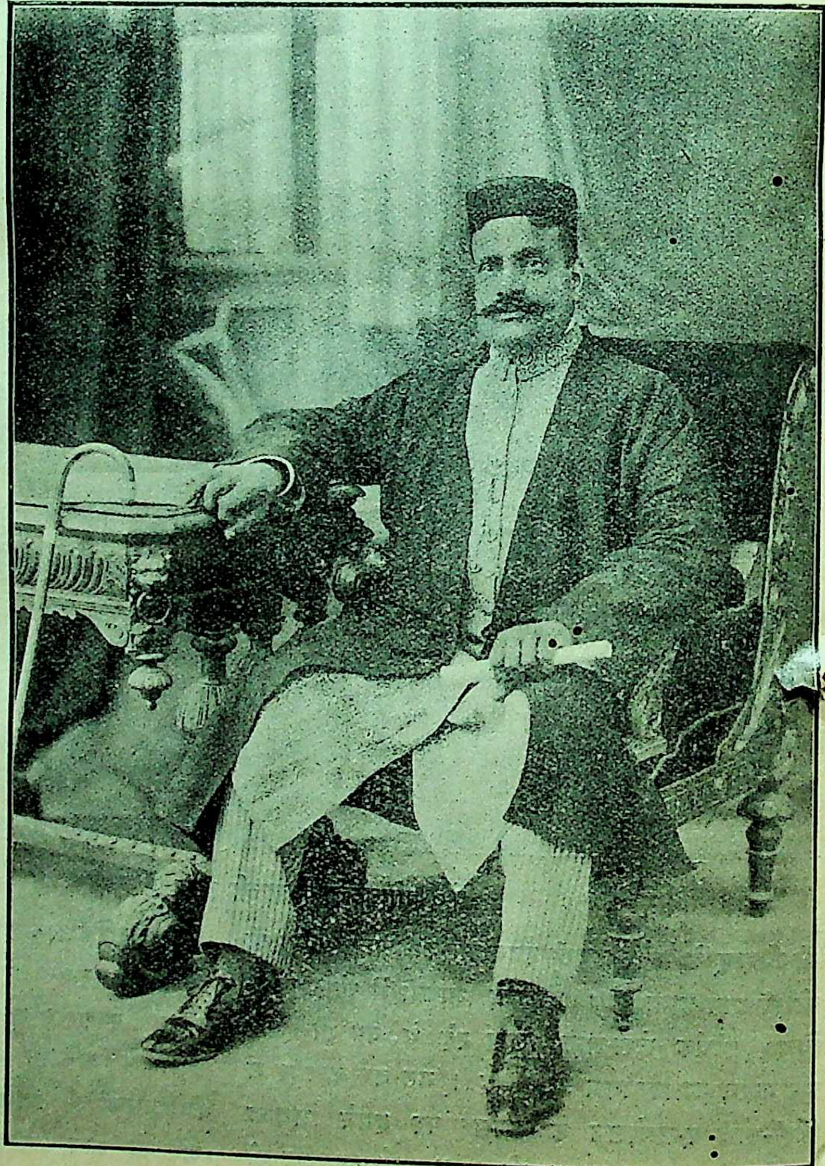
६. समालोचना के लिये दो कॉपियाँ आनी चाहिए

माधुरी के पुस्तक-परिचय को अब हम और भी उपयोगी और उन्नत बनाने का उद्योग कर रहे हैं, और उसका परिचय गत दो संख्याओं से पाठक पा रहे हैं। बहुत दिनों से हिंदी के पत्र-संसार में यह प्रथा चली आ रही है कि संपादक ही प्रत्येक विषय की पुस्तकों पर अपनी सम्मति प्रकट करते हैं। पर यह प्रथा समीचीन नहीं है। लाख विद्वान् होने पर भी एक मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हो सकता। फिर संपादकों को—विशेषकर विशाल-काय पत्रों के संपादकों को—इतना समय ही कब मिलता है कि वे प्रत्येक पुस्तक को आद्योपांत पढ़ सकें। इसी से हमने अब ऐसा प्रबंध किया है कि हरएक पुस्तक उस विषय के विशेषज्ञ विद्वान् के पास समालोचनार्थ भेज दी जाय। हमारी इस चेष्टा को लोगों ने बहुत पसंद किया है। समालोचक विद्वानों को उत्साहित करने के लिये माधुरी के संचालक यथेष्ट पुरस्कार भी देते हैं। समालोचना के लिये पुस्तकें भेजनेवाले सज्जनों की सेवा में हमारा निवेदन यही है कि वे अब से प्रत्येक पुस्तक की दो कॉपियाँ हमारे कार्यालय में भेजा करें। एक कॉपी समालोचक के पास भेजी जायगी, और एक माधुरी के संपादकीय पुस्तकालय में रहेगी। किसी पुस्तक की एक ही कॉपी भेजने पर उसकी समालोचना नहीं की जायगी।

× × ×

७. कानपुर का सनातनधर्म-व्यापारिक कॉलेज

यह कॉलेज सन् १९२१ में स्थापित हुआ था। पहले-पहल कानपुर के उदार रईस रायबहादुर लाला विश्वंभरनाथजी ने सनातनधर्म हाई-स्कूल के संचालनार्थ एक लाख रुपए का दान दिया, जिससे सनातनधर्म हाई-स्कूल सुदृढ़ होकर कार्य-क्षेत्र में अग्रसर हो गया। जब वह सफलता-पूर्वक चल पड़ा, तो कानपुर के सनातन-धर्मानुरागियों पर प्रेम-भाव रखनेवाले, भारत-धर्म-महामंडल के प्राण स्वामी दयानंदजी ने कानपुर के सना-



रायबहादुर लाला विश्वंभरनाथजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्वामी दयानंदजी बी० ए०

रायबहादुर बाबू विक्रमाजीतसिंहजी बी० ए०, एल्-एल्० बी०, एम्० एल्० सी०, ऐडवोकेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रिंसिपल शंकरप्रसाद भार्गव एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

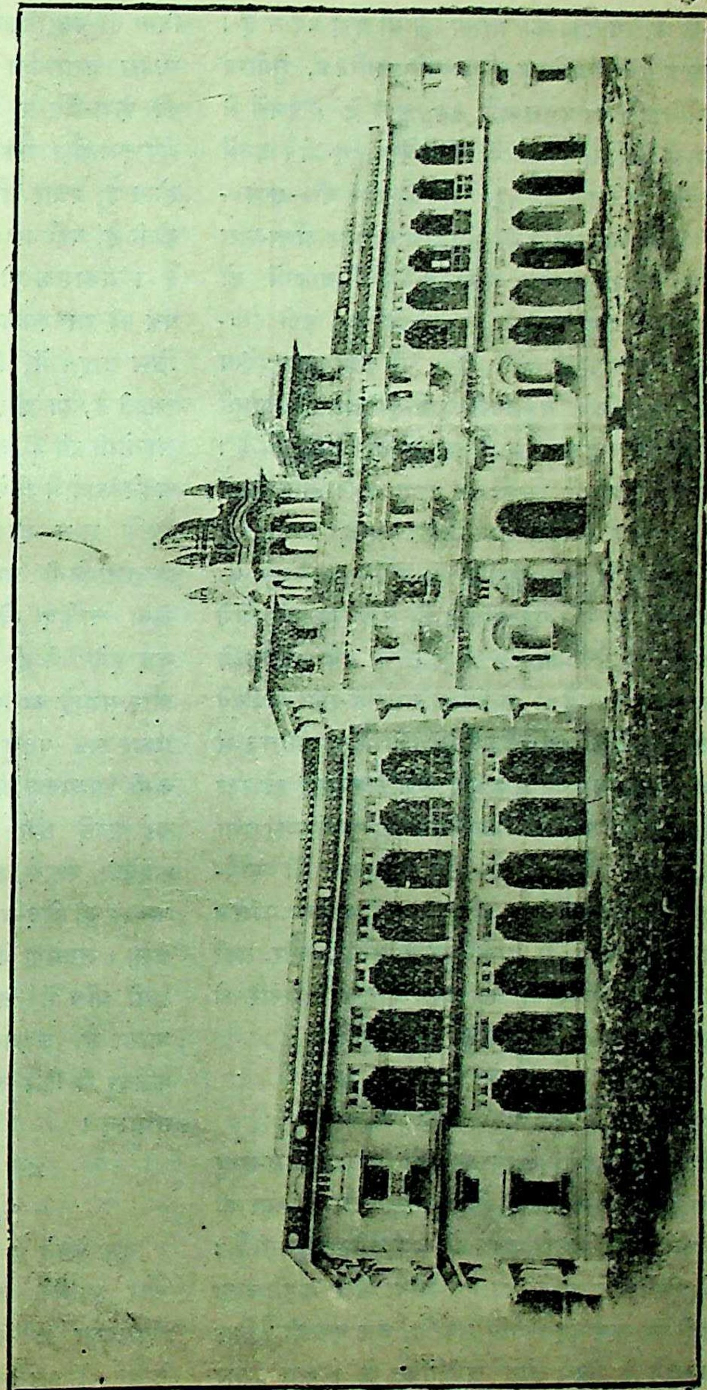
स्वर्गीय लाला हरदत्तराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तनधर्म के प्रेमियों का ध्यान सनातनधर्म-कॉलेज की स्थापना की ओर आकर्षित किया। कानपुर के सनातनधर्मावलंबी तो पहले से ही अपने मन में यह शुभ कामना रखते थे, अतएव उन्होंने स्वामी दयानंदजी के निश्चय का सच्चे हृदय से साथ दिया, और रायबहादुर बाबू बिक्रमाजीतसिंहजी एम्० एल्० सी० ऐडवोकेट बड़े उत्साह से इस कार्य में अग्रसर हुए। सौभाग्य से कॉलेज की स्थापना के लिये लाला हरदत्तरायजी ने तत्काल एक लाख का दान दिया। आपके इस दान से कानपुर के सनातनधर्मावलंबी कॉलेज-प्रेमियों का उत्साह बढ़ गया, अतएव उन्होंने धन-संग्रह करने के लिये प्रांत-भर में भ्रमण किया। फलतः चार लाख से अधिक के वचन मिल गए, और कॉलेज का शिला-न्यास ता० १ मार्च, सन् १९२० ई० को हमारे प्रांत के तत्कालीन गवर्नर महोदय सर हारकोर्ट बटलर द्वारा किया गया। आपने तथा माननीय सी० वाई० चिंतामणिजी ने हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए प्रांतीय सरकार से पर्याप्त आर्थिक सहायता प्राप्त कराने का वचन दिया। तदनुसार प्रांतीय सरकार से १,५४,००० रुपए कॉलेज-भवन-निर्माण के लिये और १०,००० रुपए फ़रनीचर के लिये प्राप्त हुए। कॉलेज के ख़र्च के लिये प्रति वर्ष कुल ख़र्चे का आधा सरकार ने भी देना स्वीकार किया। सरकार की दी हुई इस सहायता के अतिरिक्त ४,४०,७५२ रुपए के दिए हुए वचनों में से ३,९३,१४६ रुपए प्राप्त हो चुके हैं। शेष प्राप्त होने को हैं। अब तक भवन-निर्माण, फ़रनीचर, पुस्तकें तथा समाचार-पत्रादि, कॉलेज तथा छात्रालय के आवश्यक ख़र्चों में ४,८९,०२५ रुपए व्यय हो चुके हैं।

इस सनातनधर्म-व्यापारिक कॉलेज की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट इस समय हमारे सामने है। इसके अवलोकन से


सनातनधर्म-कॉलेज का भवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता चलता है कि अब कॉलेज का कार्य सुचारु रूप से चल पड़ा है । इसके प्रिंसिपल श्रीयुत शंकरप्रसादजी भार्गव एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, एफ़्० एस्-एस्० और अन्य शिक्षक सुयोग्य तथा अनुभवी विद्वान् हैं। व्यापारिक शिक्षा के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा की ओर कॉलेज के अधिनायकों का आरंभ से ही पूर्ण ध्यान है। धर्म-शिक्षक पं० गंगाविष्णु मिश्र बड़े सात्त्विक, सुयोग्य तथा कर्मनिष्ठ हैं । प्रथम वर्ष २५ छात्र थे । इनमें से २३ कॉमर्स-डिप्लोमा-परीक्षा में सम्मिलित हुए थे। उनमें १३ उत्तीर्ण हुए। इस वर्ष १६० छात्र हैं, और बी०-काम०-क्लास भी खोल दिया गया है। संयुक्त प्रांत और आस-पास के प्रांतों में प्रयाग और लखनऊ-विश्वविद्यालयों को छोड़कर यह एक ही कॉमर्स का कॉलेज है, जहाँ बी०-काम०-क्लास तक पढ़ाई होती है । परिश्रमी तथा योग्य विद्यार्थियों के लिये बहुत-सी छात्र-वृत्तियाँ दी जाती हैं। कॉमर्स की व्यावहारिक शिक्षा देने का भी प्रबंध है। इसके लिये विद्यार्थी मिलों में जाते हैं । कॉलेज के पुस्तकालय और वाचनालय क्रमशः अच्छी उन्नति कर रहे हैं। कॉलेज में एक कमर्शियल म्यूज़ियम बनाने का भी प्रबंध हो रहा है। वक्तृत्व-शक्ति की वृद्धि करने के लिये विद्यार्थियों का डिबेटिंग क्लब भी है; जो बड़े उत्साह के साथ कार्य कर रहा है । शारीरिक स्वास्थ्य-रक्षा के लिये व्यायाम कराने का भी प्रबंध हो रहा है । वास्तव में विद्यालय उन्नति-पथ की ओर पूर्ण रूप से अग्रसर हो रहा है। हमें आशा है, कॉलेज के अधिनायकों, अध्यापकों तथा सुयोग्य, अनुभवी और परिश्रमशील प्रिंसिपल की कार्य-कुशलता से यह कॉलेज शीघ्र ही एक आदर्श कॉलेज का रूप धारण करने में पूर्ण समर्थ होगा, और यहाँ से ऐसे विद्यार्थी निकलेंगे, जो अपने देश के व्यापार को विदेशियों के हाथ से अपने हाथ में ले सकेंगे।

× × ×

८. हिंदी के समाचार-पत्रों की अकाल-मृत्यु

हमें सबसे बढ़कर समाचार-पत्रों की अकाल-मृत्यु अखरती है। हम जब कभी किसी हिंदी-पत्र के अंत की ख़बर पढ़ते हैं, तो हमारे हृदय को कड़ी चोट पहुँचती है। हिंदी के लिये यह उन्नति का युग माना और कहा जाता है। हिंदी की अब वह स्थिति नहीं है, जब एक ही दैनिक पत्र निकलने के लिये लोग लालायित थे । अब ईश्वर की कृपा से १०-१२ दैनिक निकलते हैं । अच्छे मासिक और साप्ताहिक पत्रों की भी संख्या काफ़ी कही जा सकती है। इन दिनों किसी पत्र के निकलकर साल-दो साल के भीतर ही बंद हो जाने का अवश्य ही कोई ख़ास कारण होता है । जो कोई स्थान और स्थिति पर ग़ौर किए विना ही पत्र निकालने का साहस करता है, उसका वह साहस प्रशंसनीय अवश्य हो सकता है, पर सफलता की कृपा-दृष्टि से वंचित ही रहता है। इसी तरह जहाँ संपादक और प्रकाशक, दोनों या एक भी अनुभव-हीन होता है, प्रचार और प्रसिद्धि के उद्योग की विधि अज्ञात होती है, वहाँ भी अकाल-मृत्यु ही अवश्यंभावी परिणाम है । प्रकाशक को पहले यह देखना चाहिए कि उसके पत्र की आवश्यकता उस देश-काल में है या नहीं ? वह जिस लाइन में, जिस मैदान में जाना चाहता है, वह ख़ाली है, या और लोग भी काम कर रहे हैं ? अगर और सहयोगी भी हैं, तो यह देखना चाहिए कि उनके कार्य से अपने कार्य में विशेषता या अधिकता कुछ होगी या नहीं ? उसके साथ ही अपने में प्रतियोगिता की शक्ति भी आज़मा लेनी चाहिए । अपनी नीति पर भी ग़ौर कर लेना चाहिए कि वह बहुत लोगों को पसंद होगी, या कुछ इने-गिने ही लोगों को ? इसके बाद अपनी पूँजी और समाई का भी हिसाब लगा लेना चाहिए । इस प्रकार सब पहलू देखकर क़ायदे से काम शुरू करने से कभी 'अचानक अंत' की नौबत नहीं आ सकती। इधर कई अच्छे और पुराने पत्र भी बंद कर दिए गए हैं— साहित्य, स्वार्थ, मर्यादा, लक्ष्मण इत्यादि । इनका अंत अवश्य ही खेद-जनक है । साहित्य छः महीने में ही चल बसा। लक्ष्मण बेचारा साल ही भर का हो पाया था; इसी बीच में अकाल-मृत्यु के मुख में जा पड़ा । हमें आशा है, लक्ष्मण चाहे इस चोले से और चाहे दूसरे कलेवर से फिर कार्य-क्षेत्र में अवश्य अवतीर्ण होगा। तथास्तु ।

× × ×

९. मुसलमान-भाइयों का रुख़

हम देखते हैं, हमारे मुसलमान-भाइयों में जो लीडर और धार्मिक नेता माने जाते हैं, जो कांग्रेस और ख़िलाफ़त के मेंबर हैं, उनका भी हिंदुओं की ओर रूखा ही रुख़ हो रहा है। स्वामी श्रद्धानंद और मान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीय-मौलवीयजी से तो वे ख़ार ही खाते हैं। मौक़े-बे-मौक़े, यत्र-तत्र इन दोनों महानुभावों पर वाक्य-बाण बरस ए जाते हैं। इन्हें दोनों जातियों में लड़ाई करानेवाला बतलाया जाता है। कैसी ओछी प्रवृत्ति है! उधर मुसलमान-मौलवियों की करतूत पर दृष्टिपात भी नहीं किया जाता। वे जगह-जगह जाकर मुसलमानों को हिंदुओं के विरुद्ध उभाड़ते और उत्तेजित करते हैं—हिंदुओं को बुरा-भला कहते हैं। हम मौलवियों की भलमंसी का एक छोटा-सा नमूना पेश करते हैं। ख़्वाजा हसन निज़ामी-नामक एक सज्जन ने दाइमे-इस्लाम नाम की एक किताब लिखी है। उसका हिंदी-अनुवाद अजमेर से 'अलार्मबेल' नाम से प्रकाशित कर दिया गया है। यह पुस्तक मुसलमानों को यह पाठ पढ़ाती है कि हिंदुओं को छल से, कौशल से, फ़रेब से, हर तरह से मुसलमान बनाया जाय। लेखक इस काम में मुसलमान नौकरों, फ़क़ीरों, रंडियों, फेरीवालों, दूकानदारों, इक्के-ताँगेवालों और ऐसे ही अन्य पेशेवरों से सहायता लेने की राय देता है। विश्वास में फँसाकर धोखे से धर्म नष्ट करने को उक्त मुसलमान लेखक भले ही धर्म-संगत और युक्ति-युक्त समझे, किंतु हिंदुओं में तो हरएक की दृष्टि में यह काम घोर पाप और निंदनीय अपराध ही है। हिंदुओं को उक्त पुस्तक की एक कॉपी मँगाकर अवश्य देखनी चाहिए, और सबको प्रत्येक ऐसे मुसलमान से, जिससे कुछ संबंध रहता हो, सर्वदा सतर्क रहना चाहिए। सामने का वार सँभाला जा सकता है, छिपकर किया गया वार नहीं रोका जा सकता।

× × ×

१०. लखनऊ में विकट बाढ़

इस दफ़े गंगा, यमुना, घाघरा, सोन आदि प्रायः सभी बड़ी नदियों में भयानक बाढ़ आने से देश की भारी जन-धन-हानि हुई है। अंतिम वर्षा में, सितंबर के अंतिम सप्ताह में, गोमती भी बढ़ने लगी, और यहाँ तक बढ़ी कि पिछली सन् १८९४ और सन् १९१५ की बाढ़ों से भी अधिक बढ़ गई। नगर के अनेक भागों में जल भर गया। सैकड़ों घर गिर पड़े। गोमती के किनारे के अधिकांश गाँव डूब गए। जियामऊ, दाऊदनगर, घैला आदि नदी-तट के निकटवर्ती गाँव तो तहस-नहस ही हो गए समझिए। हुसैनाबाद की सड़क पर नावें चल रही थीं। छोटेलाल के पुल और पक्के पुल पर से बाढ़ का दृश्य देखने पर हृदय में एक साथ विस्मय और भय के भाव भर जाते थे। इन पुलों पर मेला-सा लगा रहता था। हज़ारों दर्शक पैदल और इक्कों, ताँगों, मोटरों, साइकिलों आदि पर भी बाढ़ देखने आते थे। नदी के प्रवाह में धन्नियाँ, बल्लियाँ, छप्पर, बाँस, किवाड़ आदि बहते हुए नज़र आते थे, जो कि गाँवों के नष्ट-भ्रष्ट होने की मूक साक्षी दे रहे थे। कुछ दुस्साहसी तैराक पुल पर से धारा में फाँदकर पूर्वोक्त वस्तुओं को बाहर निकालने की कोशिश करते और निकाल भी लाते थे। डालीगंज अन्न की मंडी है। यह नदी के किनारे ही पर है। एकाएक बाढ़ आ जाने से बनियों के अन्न के बोरे गोदामों में ही रह गए थे। बनिए पानी के भीतर से बोरे निकाल लानेवालों को आधा माल देने को तैयार थे; पर इस तरह भी वे बहुत ही थोड़ा माल बचा सके। इमामबाड़ा, जुडीशल कमिश्नर की अदालत, जजों की कचहरियाँ, छतर-मंज़िल, बादशाहबाग़, मोतीमहल, इंपीरियल बैंक, शाहनजफ़, सिकंदरबाग़, नवलकिशोर-विद्यालय, बटलर-पैलेस, बनारसीबाग़, नरही, लामार्टीनियर-कॉलेज आदि सब पानी से घिरे या डूबे हुए थे। हज़रतगंज में हमारे नवल-किशोर प्रेस में भी पानी आ गया था। नवलकिशोर-रोड पर पानी बहता था। डालीगंज, निषादगंज, बटलर-गंज आदि बस्तियाँ बिलकुल बरबाद हो गई हैं। लखनऊ के बाहर नदी के किनारे पर बसे हुए सभी गाँवों पर विपत्ति आई है। इटौंजे में २०० किसान बेघर-बार के हो गए हैं। मगर कोई मृत्यु नहीं हुई। मोहनलालगंज-तहसील में भी नुक़सान अधिक हुआ है, लेकिन प्राण-हानि बहुत कम। अर्जुनगंज के पास फ़ौजी सिपाहियों ने पेड़ों पर चढ़े हुए २० नर-नारियों की रक्षा की। सरकारी और ग़ैर-सरकारी, सभी आदमियों ने बाढ़-पीड़ितों की सहायता और रक्षा करने में अपने कर्तव्य का पालन पूर्ण रूप से किया। नगर के जल-मग्न या जल से घिरे हुए भाग कई विभागों में बाँट दिए गए थे। प्रत्येक विभाग का काम एक अफ़सर और एक म्युनिसिपल-बोर्ड के सदस्य को सौंपा गया था। हरएक विभाग में बाढ़-पीड़ितों को आश्रय देने के लिये रावटियाँ खड़ी कर दी गई थीं। कुछ रईस लोगों ने अपने मकान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

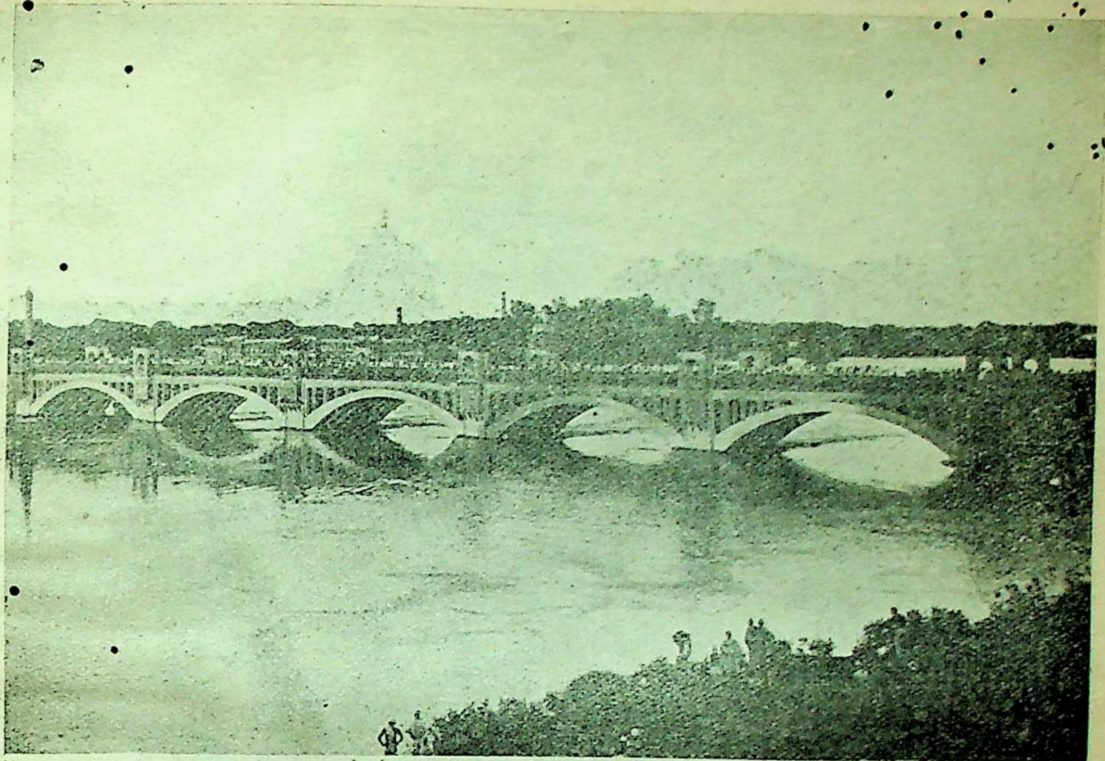
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुसैनाबाद-घंटाघर

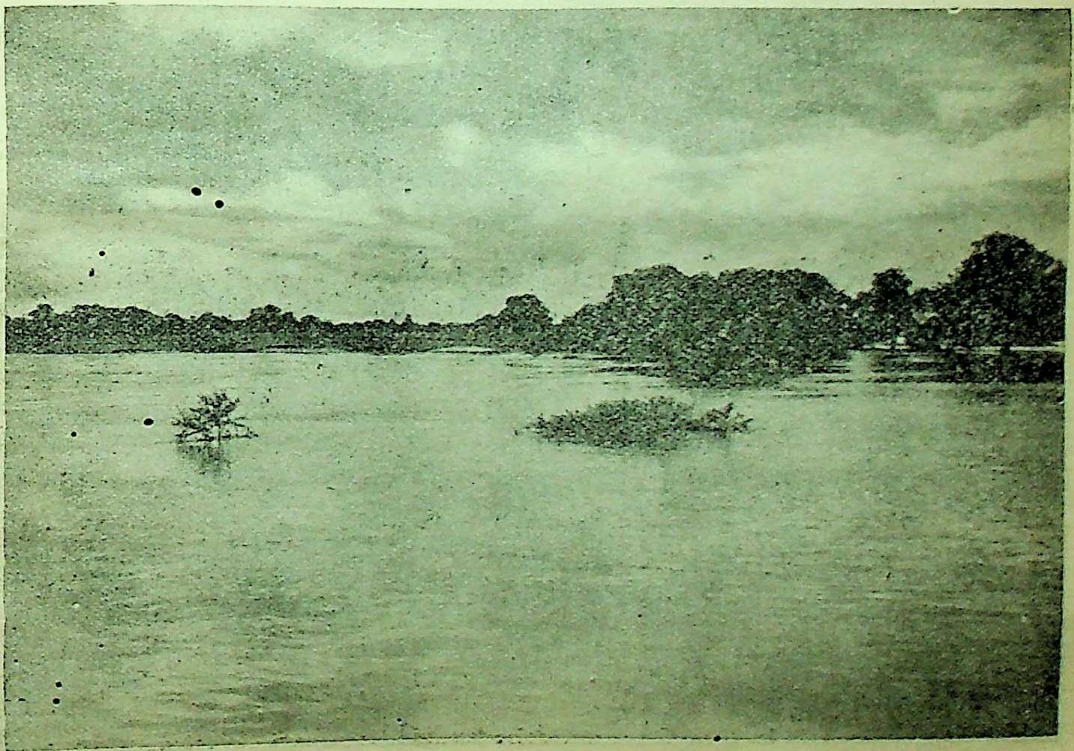
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इमामबाड़ा, लक्ष्मण-टीले की मसजिद और पक्का पुल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पक्का पुल या हार्डिंज-ब्रिज

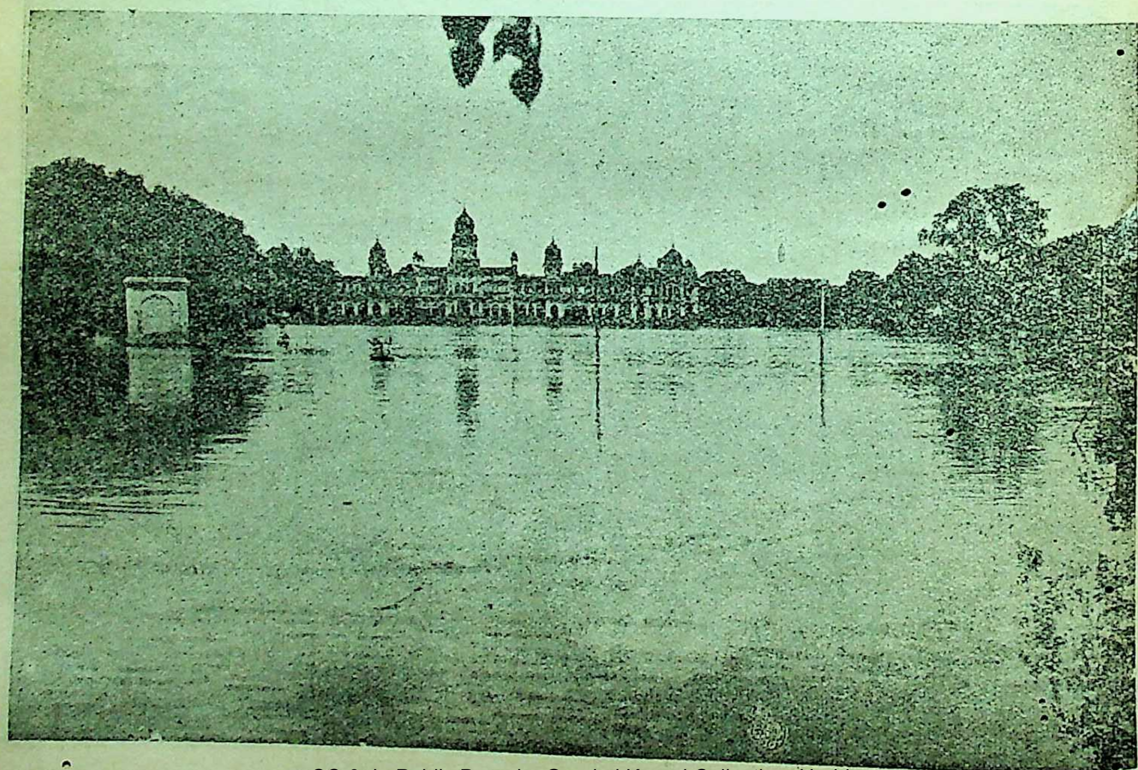


लोहे का पुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

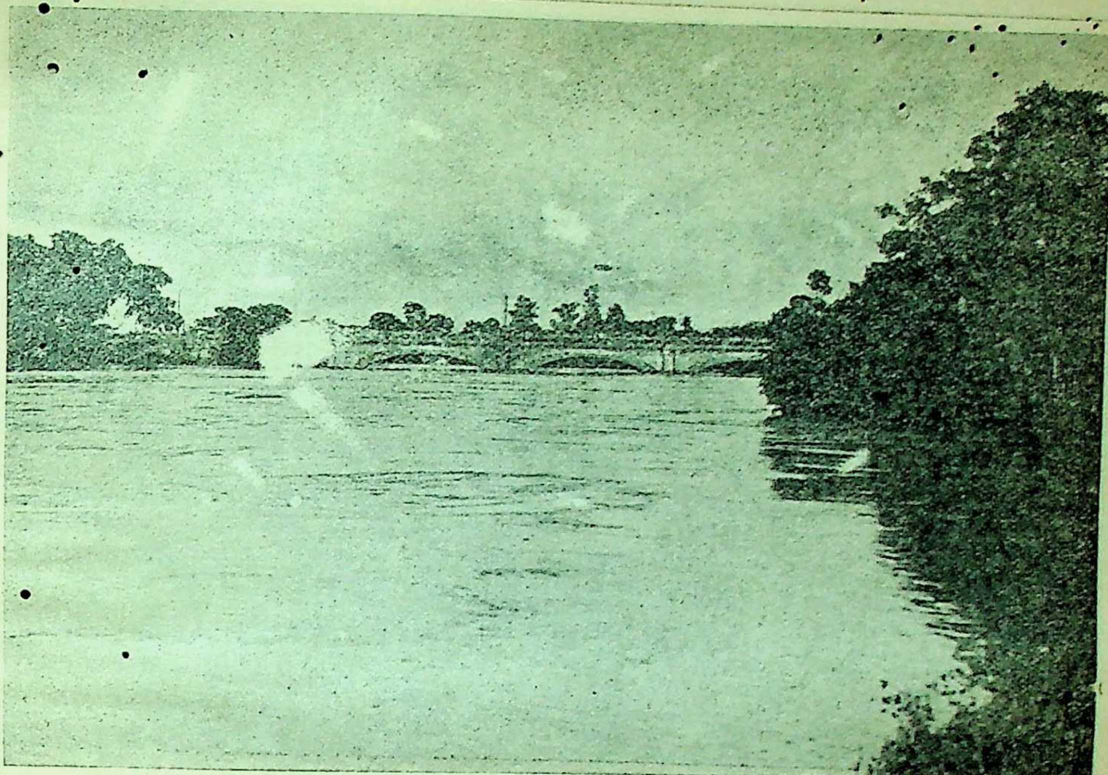
छतर-मंज़िल



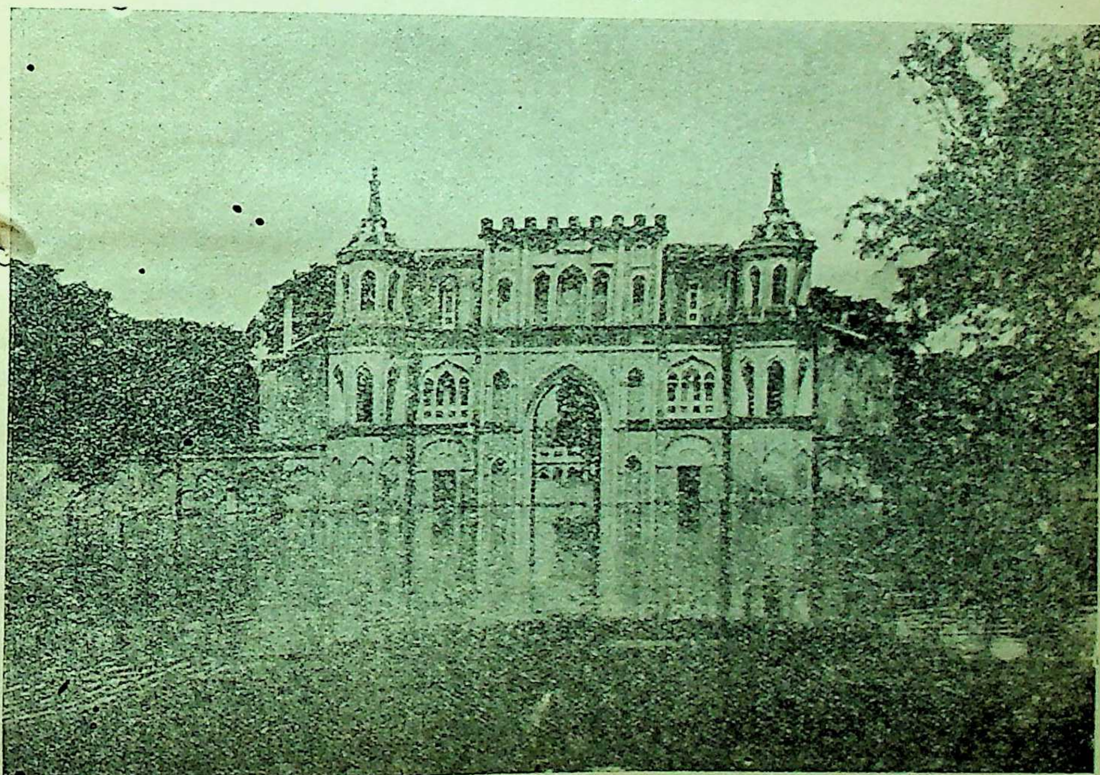
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कैनिंग-कालेज (सड़क पर नाव चल रही है)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



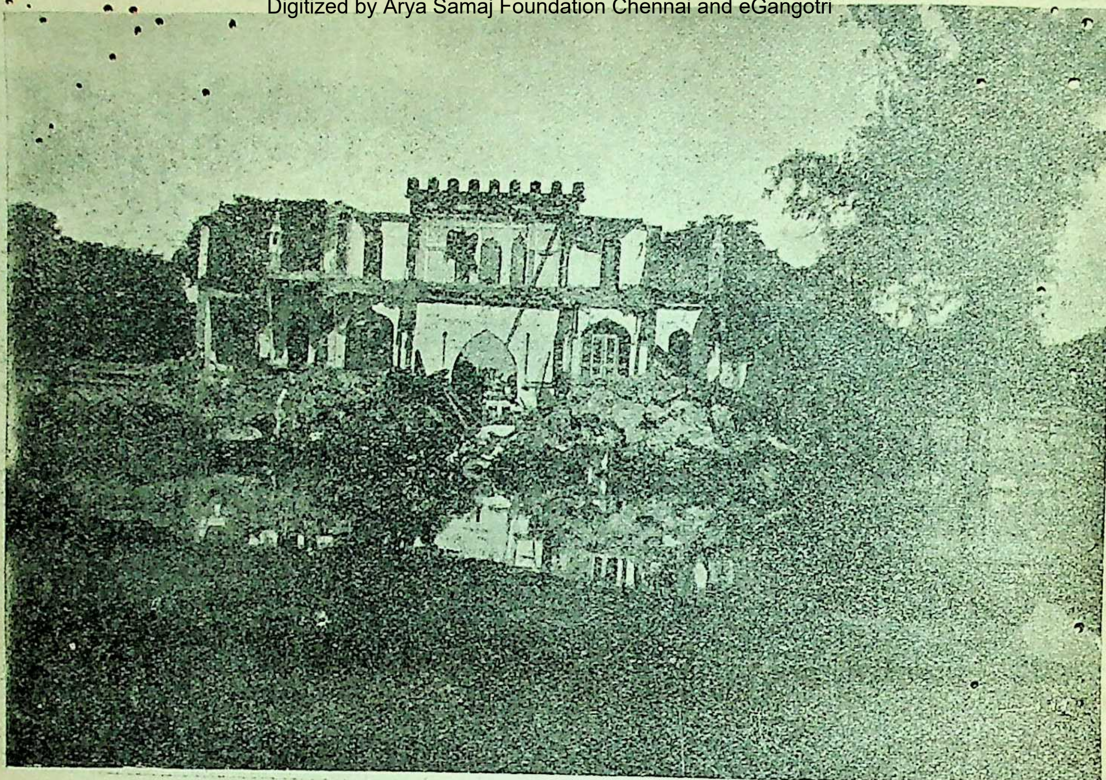
छोटेलाल का पुल



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मोतीमहल का फाटक (गिरने से पहले)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

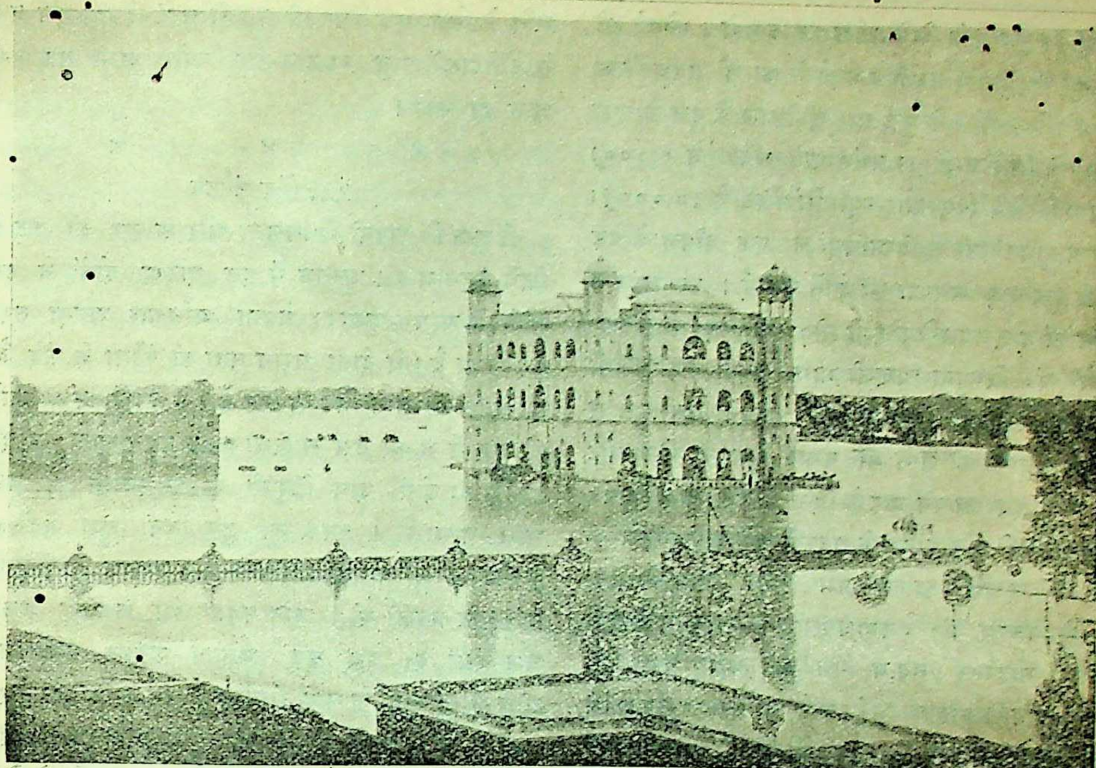


मोतीमहल का फाटक (गिरा हुआ)

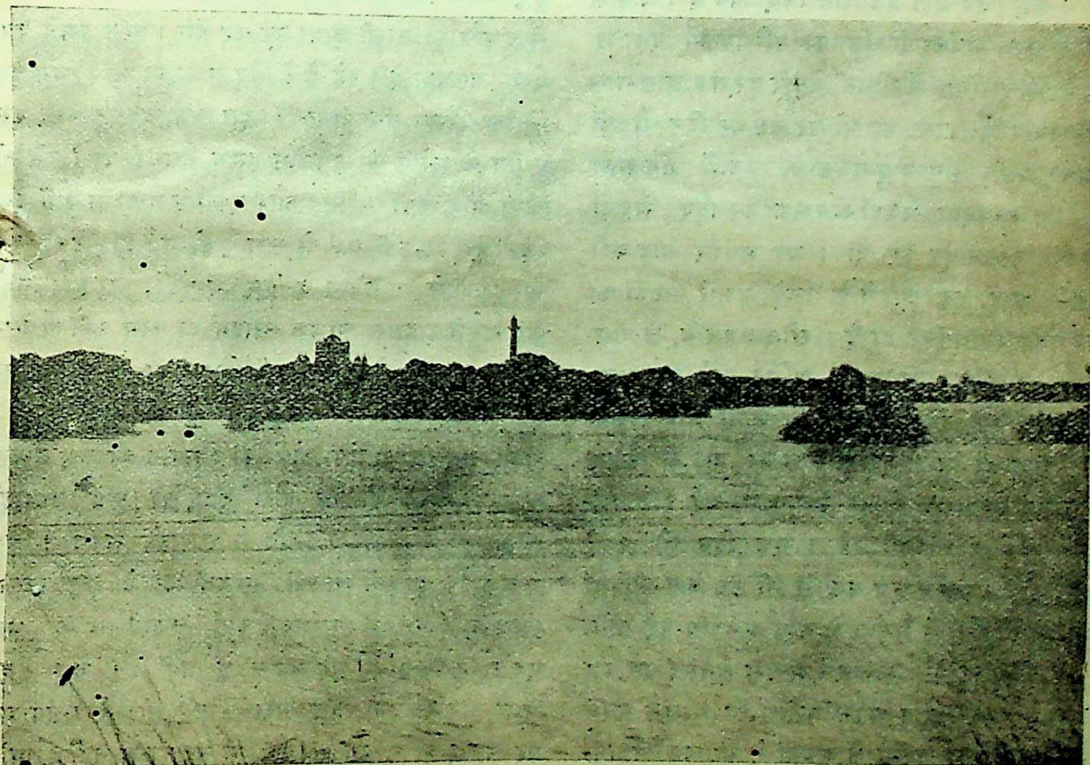
नवलकिशोर-रोड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बटलर-पैलेस



लामार्टीनियर-कॉलेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इस-पुण्य-कार्य के लिये अर्पण कर दिए थे। झोपड़े भी खड़े किए गए थे। ६ गश्ती दवाख़ानों का भी प्रबंध किया गया था। पेपर-मिल के पुल और छोटेलाल के पुल के पास यात्रियों के लिये नावों का प्रबंध था। सरकार ने ४,०००) सहायता के लिये दिए, और म्युनिसिपैलिटी ने १०,०००)। लखनऊ युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों ने एक पीपल के पेड़ पर चढ़े हुए कुछ मनुष्यों की जानें बचाईं। स्वनामधन्य स्वर्गीय श्रीमान् नवलकिशोरजी सी० आई० ई० के उत्तराधिकारी पं० विष्णुनारायणजी भार्गव ने भी बाढ़-पीड़ितों को अच्छी सहायता पहुँचाई, और अपने सत्साहस से ३०-४० मनुष्यों की जानें भी बचाईं। अपनी मोटर-बोट और नावों द्वारा आपने बाढ़ के दिनों में बड़ा काम किया। म्युनिसिपालटी और कांग्रेस के सदस्यों और कर्मचारियों—विशेषकर चौधरी ख़लीक़ुज़्ज़मा, बा० रामचंद्रसिंह, बाबू मोहनलाल, पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, हकीम बशीर-अहमद, मोहम्मद नवाब—का भी काम बहुत ही सराहनीय था। बाढ़ की भयंकरता का पूरा वर्णन करने के लिये एक बड़ी भारी पुस्तक लिखने की आवश्यकता है। उसका थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराने के लिये स्थान-स्थान के कुछ चित्र यहाँ प्रकाशित किए जाते हैं। थोड़े से शब्दों में उस भयंकर स्थिति का परिचय यों दिया जा सकता है कि इस बाढ़ में गोमती ने दूर-दूर तक आस-पास के गाँव तबाह कर डाले, हज़ारों घर नष्ट कर दिए, सैकड़ों पशु और अनेक मनुष्य डुबा डाले, हज़ारों मन ग़ल्ला तहस-नहस कर दिया, सैकड़ों खेत सफ़ा कर दिए, सैकड़ों गिरस्तियाँ नेस्तनाबूद कर दीं। यह भयंकर बाढ़ क्यों और कैसे आई, यह जानने के लिये हमारे पाठकों का उत्सुक होना स्वाभाविक ही है। लोग कहते हैं, लखीमपुर और पीलीभीत में बहुत अधिक वर्षा का होना, नैनीताल में एक झील का बाँध टूट जाना और घाघरा-नदी में बाढ़ आ जाना ही गोमती की बाढ़ के कारण हैं। लखनऊ में बाढ़ के ही ज़माने में, कई दिन इंद्रदेव भी ख़ूब कृपा करते रहे। एक दिन तो २४½ इंच तक पानी बरसा। इस वर्षा से भी उन बाढ़-पीड़ितों को, जो दूर दिहातों में मैदान के बीच असहाय पड़े होंगे, बड़ा कष्ट पहुँचा होगा। लखनऊ में इस अवसर पर कुछ ही धर्मात्मा धनी पुरुष अपने कर्तव्य का पालन करते देखे गए, अधिकांश लक्ष्मी के वाहनों ने मौखिक सहानुभूति के सिवा एक पैसा भी जेब से नहीं दिया। इस बाढ़ से होनेवाली क्षति का ठीक-ठीक ब्योरा अभी तक नहीं ज्ञात हो सका।

× × ×

११. हिंदू-संगठन

हिंदू-जाति अपनी शिथिलता और आपस की फूट के लिये बदनाम है। वास्तव में इन दारुण दोषों ने इस जाति में आसन जमाकर अपना अधिकार अच्छी तरह कर लिया है। ये दोनों पराधीनता की फाँसी के फंदे हैं, जो जाति की जान निकाल लेते हैं। ये दोनों कीड़े जाति की जड़ में जाकर उसे खोखली करके पतनोन्मुख कर देते हैं। ये ही दोनों दोष हिंदुओं के अभ्युत्थान में बड़ी भारी बाधा हैं। इनके दूर हुए बिना कुछ नहीं हो सकता। अभी बारंबार लगातार मार खाकर हिंदू-जाति ने करवट बदली थी। जान पड़ता था, अब की उसके चोट लगी है; वह अब अवश्य उठकर, यथासंभव शीघ्र ही, तत्परता के साथ संगठित होकर, शक्ति की आराधना के साथ शांति, मैत्री, साम्य का साम्राज्य स्थापित करके ही दम लेगा। उसके प्रेम और सहानुभूति से मिले हुए आत्म-रक्षा तथा आत्म-सम्मान के भाव दुष्टों के दिलों से दुर्भाव की काली छाया दूर कर देंगे। परंतु हमने क्या देखा, या क्या देख रहे हैं? हिंदू-सभा का अधिवेशन हुए कितना समय बीत गया? इस लंबे अवसर का, इस सुयोग के समय का उपयोग हमने कैसा किया? हमें तो किसी ओर, कहीं उत्साह और एकनिष्ठ तत्परता नहीं देख पड़ती। कहीं-कहीं एक-दो सभाएँ हो गई हों, उनमें दो-चार जोशीले व्याख्यान दे दिए गए हों, तो हम नहीं कह सकते। इससे अधिक संगठन का काम कहीं अग्रसर नहीं हुआ। सबसे बड़ी ग़लती हिंदू-सभा के अवसर पर यह हो गई है कि धन-संग्रह का कोई यत्न नहीं हुआ। चंदा, दान या जातीय कोष की स्थापना की कुछ-न-कुछ सूरत हो जाती, दो-चार लाख रुपए का फ़ंड जमा हो जाता, तो काम भी ज़ोर-शोर से शुरू हो सकता। यह सच है कि दूरदर्शी माननीय मालवीयजी ने कुछ ख़ास-ख़ास आदमियों से आरंभिक कार्य चलाने-भर का धन एकत्र कर लिया है, पर वह यथेष्ट नहीं है। जब केंद्र-सभा ज़ोर पकड़ेगी, तब शाखा-सभाएँ भी कर्तव्य-संपादन पर सन्नद्ध हो सकेंगी। काम इस तरह कुछ नहीं होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश में सर्वत्र हिंदू-सभाएँ स्थापित हों। सभा का कार्यालय क्लब के रूप में हो। वहाँ नित्य कुछ समय के लिये स्थानीय कार्य-कर्ता और अन्य लोग भी जमा हुआ करें। वार्तालाप, व्याख्यान, कथा-कीर्तन, अख़बारों और पुस्तकों का अध्ययन, व्यायाम तथा स्थानीय जाति-गत समस्याओं पर विचार तथा आवश्यकतानुसार उनको अच्छी तरह निबटाना, ये सब काम, तथा इनके अलावा और भी जाति के हित और उन्नति के उपयोगी काम, हुआ करें। केवल कभी-कभी साल-छः महीने में एक सभा करके कुछ प्रस्ताव पास करने अथवा व्याख्यान दे देने से इस तरह रोज़ कुछ-कुछ करते रहना कहीं अच्छा है। लखनऊ की अवध-हिंदू-सभा या हिंदू-सभा का काम भी सुस्त ही देख पड़ता है। क्या एक दिन किसी अछूत को गले लगा लेने से अथवा चमारों को मंदिर में ले जाने और शिव-मूर्ति पर जल चढ़वा देने से कर्तव्य पूरा हो गया? ये तो सब आनुषंगिक अनुष्ठान हैं—असली काम कुछ होना चाहिए। हम अवध-हिंदू-सभा और हिंदू-सभा के कार्य-कर्ताओं से ऐसा ही करने का अनुरोध करते हैं। यह शिथिलता ठीक नहीं है।

× × ×

१२. भारत में रेल का सामान

सन् १९२२-२३ से १९२६-२७ तक क़रीब १ अरब ५० करोड़ रुपए रेल के सामान—एंजिन-डब्बे इत्यादि वस्तुओं—के लिये ख़र्च किए जाने की व्यवस्था की गई है। बड़ी व्यवस्थापक-सभा में यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया है कि पहले इस सामान के अधिकांश भाग को भारत में ही ख़रीदने का प्रयत्न किया जाय। अभी रेलवे-बोर्ड द्वारा ३,१३२ रेल के डब्बों के लिये टेंडर माँगे गए थे। भारत, इँगलैंड, बेलजियम, जर्मनी, अमेरिका, कनाडा, फ्रांस और हालैंड के ४४ बड़े-बड़े कारख़ानेवालों ने टेंडर भेजे। भारत के कारख़ानेवालों ने डब्बों के लिये बहुत ज़्यादा दाम माँगे, इसलिये सब डब्बे इँगलैंड से ही ख़रीदे जाने की व्यवस्था की गई; क्योंकि वहीं से वे सबसे सस्ते मिल सकते थे। कहा गया है कि भारत के कारख़ानेवालों की क़ीमतें इँगलैंड की क़ीमतों के ड्योढ़े से भी अधिक थीं। परंतु यह संदेह किया जाता है कि इँगलैंड के कारख़ानेवालों ने जान-बूझकर अपने ख़र्चे से भी कम क़ीमत पर माल देना इसलिये स्वीकार कर लिया है कि भारतीय उद्योग की बढ़ती न होने पावे। सरकार को इस बात की जाँच करनी चाहिए, और, यदि यह सच हो, तो इँगलैंड की कंपनी से अपना ठेका मंसूख़ कर भारत से ही माल ख़रीदने की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि भारत में माल कुछ महँगा मिले, तो भी कुछ वर्षों तक इस उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिये भारतीय कंपनियों को ही ठेका देना चाहिए। क्या यह अत्यंत खेद की बात नहीं है कि भारत में रेलवे-संबंधी प्रायः सब माल तैयार करने के लिये कच्चा सामान प्रचुर परिमाण में होने पर भी हमें उस सामान के लिये आजकल अन्य देशों का मुँह ताकना पड़ता है?

× × ×

१३. बिना गरमी की रोशनी

जुगनू को सभी लोग जानते हैं। वह रात को आग की चिनगारी की तरह इधर-उधर उड़ता रहता है। यदि बहुत-से जुगनू इकट्ठे कर लिए जायँ, तो उनसे शायद काफ़ी रोशनी हो जाय। पर जुगनू में ख़ाली रोशनी ही होती है, गरमी नहीं। उसके छूने से हाथ नहीं जल सकता। योरप और अमेरिका के वैज्ञानिक बहुत दिनों से इस बात की जाँच कर रहे हैं कि जुगनू की तरह बिना गरमी की रोशनी हो सके। इस संबंध में कुछ पहले अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने यह प्रकाशित किया कि उसने बिना गरमी की रोशनी निकाल ली है। यद्यपि उसकी बात सच थी, पर उसमें इतना ख़र्च और इतनी कठिनाई थी कि वह उपाय वैज्ञानिक लोगों के ही काम का था। अभी फिर सुनने में आया है कि फ्रांस के एक वैज्ञानिक ने बिना गरमी की रोशनी निकाली है। उसमें ख़र्च भी थोड़ा होता है, और हरएक घर में वह आसानी से की भी जा सकती है। यदि ऐसा हुआ, तो शीघ्र ही ऐसी रोशनी मिल जायगी, जिसे छूने से भी हाथ न जलेगा। आजकल तेल आदि की रोशनी के कारण जो सैकड़ों जगह आग लग जाती है, और करोड़ों रुपए का नुक़सान हो जाता है, वह भी न होगा।

× × ×

१४. बंगाल की वर्तमान स्थिति

सारे बंगाल-प्रांत का घेरा ८४,००० वर्ग-मील है। इसमें ५ विभाग, २८ ज़िले, १२५ शहर और १,२५,००० गाँव हैं। सन् १९११ की मनुष्य-गणना में जन-संख्या ४, ६३,०५, १७० थी। सन् १९२१ की गणना में ४, ७५,९२,४६२ हो गई। उसमें २, ४६, २८, ३६४ मर्द और २, २९,६४, ०९७ औरतें हैं। इनमें एक आने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी शहरों में और शेष पंद्रह आने दिहात में रहते हैं। बंगाल में ६,४८३ वर्ग-मील ज़मीन में रक्षित वन हैं। २,३३७ वर्ग-मील गवर्नमेंट की ख़ास पड़ती ज़मीन है। बंदोबस्ती ज़मीन ६४,२११ वर्ग-मील है। इसमें से ६३,६६६ वर्ग-मील ज़मीन में बंगाल का ज़मींदारी-आईन जारी है। बंगाल की रिआया साल में १२½ करोड़ के लगभग मालगुज़ारी देती है। उसमें २ करोड़ ७६ लाख रुपए गवर्नमेंट को मिलते हैं, बाक़ी ज़मींदारों को। बंगाल के ज़िलों में मैमनसिंह-ज़िला सबसे बड़ा है। इसका विस्तार ६,२४६ वर्ग-मील में है। १२,००० गाँव और ४८,७३,७३० जन-संख्या इसके अंतर्गत है। मेदिनीपुर-ज़िला ५,१४५ वर्ग-मील में है। जन-संख्या २६,६६,६६० है। इस ज़िले को बंगाल में विस्तार की दृष्टि से दूसरा और जन-संख्या की दृष्टि से तीसरा नंबर प्राप्त है। बर्दवान-विभाग में फ़ी-सदी ८०, प्रेसीडेंसी-विभाग में ४६, राजशाही-विभाग में ३७, ढाका और चटगाँव-विभागों में ३१-३१ हिंदू हैं। ज़िले के हिसाब से मेदिनीपुर-ज़िले में सबसे अधिक और चटगाँव के पहाड़ी अंचल में सबसे कम हिंदू हैं। मेदिनीपुर के निवासियों में फ़ी-सदी ८८ और चटगाँव के पहाड़ी अंचल में फ़ी-सदी ६ हिंदू हैं। पूर्व-बंगाल में मुसलमानों का औसत हिंदुओं की अपेक्षा दूने से भी अधिक है। नवाखाली और चटगाँव-ज़िलों में मुसलमानों का औसत हिंदुओं की अपेक्षा तिगुने से भी अधिक है। कुल बंगाल में २, ०६, ४५, ५७६ हिंदू और २, ४२, ३७, २२३ मुसलमान हैं। लिख-पढ़ सकनेवाले हिंदू २४, ७५, २२६ और मुसलमान १०, ०३, ७२५ हैं। बंगाल में हर एक लाख में ८५ हज़ार आदमी ४० वर्ष की अवस्था होने के पहले और ६३ हज़ार आदमी ५० वर्ष की अवस्था होने के पहले मर जाते हैं। बंगाल के दिहातों में रहनेवाले लोगों की चिकित्सा के लिये सिर्फ़ १,००० डॉक्टर या वैद्य हैं। बंगाल में अब तक 'पाट' की ही खेती सबसे अधिक होती थी। खेती घटने लगी है। कोई ४० करोड़ रुपए का पाट पैदा होता था। पाट की मिलों की पूँजी १६½ करोड़ रुपए है। पर अब महायुद्ध के उपरांत से इसकी खेती घटने लगी है।

× × ×

१५. मंगलाप्रसाद-पारितोषिक की संशोधित नई नियमावली

(१) हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के प्रतिवर्ष के अधिवेशन में प्रतिवर्ष 'मंगलाप्रसाद-पारितोषिक' दिया जायगा, या पारितोषिक पानेवाले का नाम प्रकट कर दिया जायगा।

(२) प्रतिवर्ष स्थायी समिति द्वारा 'मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-समिति' का संगठन होगा। इसमें कुल पाँच सदस्य रहेंगे, जिनमें एक श्रीयुक्त गोकुलचंदजी या उनके कोई प्रतिनिधि अवश्य होंगे। यह समिति नियमानुसार पारितोषिक का प्रबंध करेगी। समिति का अधिवेशन दो सदस्यों तक की उपस्थिति में हो सकेगा। पत्र द्वारा आई हुई अन्य सदस्यों की सम्मतियाँ भी ग्राह्य होंगी।

(३) यह 'मंगलाप्रसाद-पारितोषिक' प्रति वर्ष हिंदी के किसी लेखक को उसकी किसी मौलिक-रचना के सम्मानार्थ दिया जायगा।

(४) पारितोषिक वितरण के लिये संपूर्ण विषयों के निम्न-लिखित चार विभाग किए जायँगे—

क—साहित्य, काव्य (गद्य तथा पद्य), उपन्यास, नाटक, समालोचना तथा रीति-ग्रंथ।

ख—समाज-शास्त्र (पुरातत्त्व, इतिहास, राजनीति और अर्थ-शास्त्र)

ग—दर्शन (समाज-शास्त्र, नीति-शास्त्र, तर्क-शास्त्र, अध्यात्म-विद्या और मनोविज्ञान)।

घ—विज्ञान (गणित, रसायन, भौतिक शास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, कृषि-विज्ञान आदि)।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों के संबंध में पारितोषिक-समिति निश्चित करेगी कि वह विषय उपर्युक्त किस विभाग के अंतर्गत होना चाहिए।

(५) क्रमानुसार साहित्य, समाज-शास्त्र, दर्शन और विज्ञान-विभाग के लिये प्रति वर्ष पारितोषिक दिया जायगा।

(६) पारितोषिक के लिये केवल जीवित लेखकों की रचनाओं पर विचार किया जायगा। यदि किसी पुस्तक के संबंध में किसी व्यक्ति की इच्छा हो कि उस पर पारितोषिक के लिये विचार किया जाय, तो उसका कर्तव्य होगा कि उसकी तीन प्रतियाँ सम्मेलन-कार्यालय में पारितोषिक-समिति द्वारा निश्चित तिथि से पहले भेज दे। सब पुस्तकें सम्मेलन की संपत्ति होंगी।

(७) पारितोषिक किसको दिया जाय, इसका निर्णय करने के लिये पारितोषिक-समिति पाँच निर्णायकों का निर्वाचन करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) पारितोषिक-समिति को अधिकार होगा कि वह निश्चित तिथि तक आई हुई पुस्तकों के अतिरिक्त भी उक्त तिथि के १५ दिन बाद तक निर्णायकों के सामने विचारार्थ पुस्तकें उपस्थित कर सके।

(६) जो पुस्तकें विचारार्थ कार्यालय में आवेंगी, उनकी पहुँच प्रेषक के पास भेजी जायगी।

(१०) विचारार्थ आई हुई पुस्तकों में पारितोषिक-समिति उस विषय की पुस्तक चुन लेगी, जिस पर उस वर्ष पारितोषिक दिया जायगा। विचारार्थ चुनी हुई पुस्तकों की सूची पूर्वोक्त नियत तिथि के १५ दिन बाद तक तैयार हो जानी चाहिए। इस सूची में उन पुस्तकों के नामों का भी समावेश होगा, जिन्हें पारितोषिक-समिति नियम ८ के अनुसार अपनी ओर से उपस्थित करे। यह सूची एक नियुक्ति-सारिणी के अनुरूप होगी।

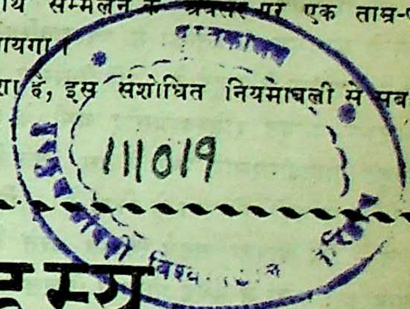
(११) उपर्युक्त सूची तैयार हो जाने पर उसकी एक-एक प्रति प्रत्येक निर्णायक के पास भेजी जायगी, और सुविधानुसार निर्णायकों के पास पुस्तकें भेजने का प्रबंध किया जायगा।

(१२) पुस्तकों पर विचार करके प्रत्येक निर्णायक अपनी सम्मति के अनुसार उनमें एक सर्वोत्तम ग्रंथ चुन लेंगे, और पारितोषिक-समिति को अपनी सम्मति की सूचना देंगे। सम्मति जहाँ तक संभव हो, आलोचनात्मक होनी चाहिए।

(१३) निर्णायकों की सम्मति आ जाने पर पारितोषिक-समिति प्रत्येक निर्णायक के पास अन्य चार निर्णायकों की सम्मति भेज देगी। इस समय यदि निर्णायक चाहें, तो पारितोषिक-समिति द्वारा निश्चित की हुई एक तिथि तक अपनी सम्मति बदल सकेंगे। जिस पुस्तक के लिये सबसे अधिक निर्णायकों की सम्मति होगी, उस पुस्तक के रचयिता पारितोषिक के अधिकारी होंगे। यदि प्रत्येक निर्णायक की भिन्न-भिन्न सम्मति हुई, या दो निर्णायक एक पुस्तक के पक्ष में और एक निर्णायक किसी अन्य तीसरी पुस्तक के पक्ष में हुए, तो ऐसी दशा में पारितोषिक-समिति निर्णय करेगी कि पारितोषिक किसको दिया जाय।

(१४) पारितोषिक पानेवाले सज्जन को पारितोषिक के साथ-साथ सम्मेलन के अवसर पर एक ताम्र-पत्र भी दिया जायगा।

हमें आशा है, इस संशोधित नियमावली से सबको संतोष होगा।



वारांगना-रहस्य

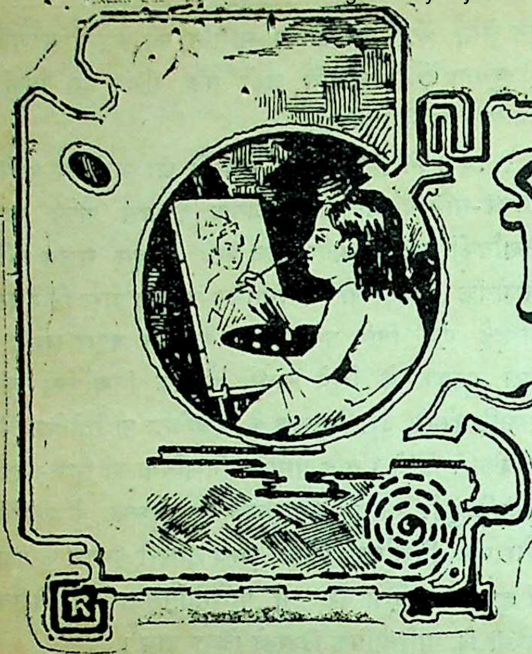
इसमें वेश्याओं के समस्त भेद, उनकी पुरुषों को फँसाने की समस्त चालें, किस समय वे कैसा भाव बनाती हैं, महेफ़िल से किस तरह प्रेमियों को फँसा लाती हैं, उन्हें आरंभ से कैसी शिक्षा दी जाती है, आँखों का कटाक्ष, भावों का परिवर्तन—किस समय किस ढंग से उन्हें काम करना पड़ता है; दो प्रेमियों के एकसाथ उपस्थित रहने पर वे क्या करती हैं, नौकर तथा स्वतंत्र वेश्याओं के कार्यों का भेद, धूर्त पुरुष किस तरह वेश्याओं के जाल में न फँसकर उन्हें ही फँसा लेते हैं, वेश्याओं की जवानी से लेकर बुढ़ापे तक के सभी कार्य, अनेक षड्यंत्र कितने ही वे प्रपंच जो नित्य होते हैं, लिखे हैं। साथ ही वेश्यासक्त स्वामी की सती, साध्वी, सुशीला का अद्भुत चरित्र देखकर आप दंग रह जायँगे। बड़ी ही उपदेश-प्रद और चित्ताकर्षक पुस्तक है। जितने प्रकार की वेश्याएँ होती हैं—सबका पूरा-पूरा हाल इसमें मिलेगा। मूल्य ६ भागों का ४॥) सजिल्द ५)

अन्य पुस्तकें—भीमसिंह सचित्र १।), पृथ्वीराज १।), सिकंदरशाह १॥=), ध्रुव-चरित्र।=), महात्मा गांधी १)

१४८/१४५ पता—पाठक ऐंड कंपनी, नं० ५७ वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



1111019

१. रंगीन चित्र

पहला रंगीन चित्र 'प्रतीक्षा' है। नायिका अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा में ध्यानावस्थित-सी होकर टकटकी लगाए बैठी हुई है। हिंदी-संसार के सुपरिचित चित्रकार श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा के कनिष्ठ भ्राता श्रीयुत महावीरप्रसाद वर्मा ने इस चित्र में इसी भाव का चित्रण बड़ी योग्यता से किया है। चित्रण-कला के क्षेत्र में हम आपका सहर्ष स्वागत करते हैं। आशा है, आप इस कला में यथेष्ट योग्यता दिखलावेंगे।

दूसरा रंगीन चित्र 'रुक्मिणी और कृष्ण'-नामक है। इसका चित्रण श्रीमद्भागवत की एक कथा के आधार पर किया गया है। कथा इस प्रकार है—द्वापर में नरकासुर नाम का एक राक्षस था। वह बड़ा अत्याचारी था। उसने सोलह हज़ार से ऊपर नाग, गंधर्व, नर, किन्नर आदि की सुंदर कन्याएँ हर लाकर अपने यहाँ रख छोड़ी थीं। एक लाख होने पर उनसे ब्याह करना चाहता था। उन कुमारियों ने अपने उद्धार के लिये एक पत्र कृष्णचंद्र की सेवा में भेजा। इस चित्र में यही दिखाया गया है कि रुक्मिणीजी श्रीकृष्णचंद्रजी को वह पत्र दिखा रही हैं। श्रीकृष्णचंद्र उस पत्र को बड़े ध्यान से देख रहे हैं।

तीसरा रंगीन चित्र 'बाल-मनावन' का है। नायिका का प्राणप्रिय बालक मचल गया है। वह उसे भाँति-भाँति के खिलौने देकर दुलराती है; परंतु वह किसी से संतुष्ट नहीं होता। शरद्-पूर्णिमा का दिन है। माता ने सोचा, शायद पूर्ण चंद्र के दर्शन से बालक मान जाय, अतएव वह बालक को छत पर ले जाकर अपनी समस्त कलाओं से पूर्ण चंद्र के दर्शन कराती है, और बालक उसे मुग्ध दृष्टि से देखने लगता है।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र 'दो जोरूवाला' है। बिना परिणाम सोचे दो-दो ब्याह करने का जो फल होता है, वह इसमें बिलकुल स्पष्ट दिखलाया गया है। चित्रकार ने इस विनोद-पूर्ण चित्र का अच्छा चित्रण किया है।

दूसरा व्यंग्य-चित्र 'कलियुग के कविराज' का है। काव्य-शास्त्र का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किए बिना शत-शत रचनाएँ लिखनेवाले कलियुग के कवि महाशयों की आजकल क्या दशा है, यह इस व्यंग्य-चित्र से बिलकुल स्पष्ट झलकता है। यश और अर्थ-लोलुपता के फेर में पड़कर ये अपने जीवन का अमूल्य समय व्यर्थ खोकर मारे-मारे फिर रहे हैं, और कवि और कविता के नाम पर कलंक-कालिमा पोत रहे हैं। चतुर चित्रकार ने चित्रांकण बड़ी खूबी के साथ किया है।

३. लखनऊ की बाढ़ के चित्र

"विविध विषय" में लखनऊ की बाढ़-संबंधी जो १२ सुंदर चित्र दिए गए हैं, वे सब लखनऊ के सुप्रसिद्ध सुनिपुण फ़ोटोग्राफ़र सी० मल ऐंड को० के खींचे हुए हैं, और उन्हीं से ॥) प्रति चित्र के हिसाब से मिल सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लेख-सूची

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी-साहित्य में एक अनूठा रत्न

ज्ञानोदय-ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प

कालिदास और शेक्सपियर

साहित्य-संसार में भला ऐसा कौन होगा, जिसने कालिदास और शेक्सपियर का नाम न सुना हो। कौन ऐसा साहित्य-सेवी होगा, जो इनकी सुमधुर और चमत्कारिणी लेखनी से प्रभावित न हुआ हो। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं दोनों कवि-सम्राटों की प्रतिभाओं का दिग्दर्शन कराया गया है। यदि आपको प्राच्य और पाश्चात्य प्रतिभाओं का कौतुक देखना है, यदि आप प्रकृति के सौंदर्य का पूर्ण रस-स्वादन करना चाहते हैं, यदि आप मनुष्य-प्रकृति से पूर्णतया परिचित होना चाहते हैं, यदि आप अंतर्जगत् और बहिर्जगत् का समुचित ज्ञान संपादन करना चाहते हैं, यदि आप इन दोनों कवि-कुल-गुरुओं के भाव, भाषा और काव्य के संबंध में कुछ भी जानने की इच्छा रखते हैं और यदि आप इनकी आनंदोत्पादिनी तथा चमत्कारिणी उक्तियों तथा युक्तियों से लाभ उठाना चाहते हैं, तो शीघ्र लौटती डाक से ऑर्डर भेजिए। मूल्य २)

नोट—"श्रीयुत रामदासजी गौड़ एम्० ए०, श्रीयुत पं० कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० प्रभृति लोगों ने इस पुस्तक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।"

आलम-केलि—(खंड-काव्य) सुप्रसिद्ध आलम और शेख़ का यह वही ग्रंथ है, जिसके लिये सवा दो सौ वर्ष से काव्य-रसिक लालायित हो रहे थे। यदि आपको काव्य से कुछ भी प्रेम है और कविता-कानन की सैर करना चाहते हैं, तो आप ला० भगवानदीन द्वारा संपादित इस आलम-केलि को अवश्य मँगाइए। टिप्पणी देने से ग्रंथ और भी सुगम और सरल हो गया है। दाम भी केवल ॥) है।

पता:—ज्ञानोदय-ग्रंथमाला कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी-संसार में एकदम नई चीज़—

सचित्र

आरव्य उपन्यास

अलिफ़लैला की कहानियाँ—भाव में, भाषा में, घटनाओं में, चरित्र-चित्रण में, उपदेश में, मनोरंजन में—सभी साहित्यिक विषयों में अद्वितीय है। इसलिये, संसार की समस्त सभ्य भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद मौजूद है। हिंदी में इसका कोई भी सर्वांग-सुंदर अनुवाद न था; इसीलिये यह पुस्तक बड़ी सज-धज से खंड-खंड कर प्रकाशित हो रही है। प्रत्येक खंड लगभग ८० पृष्ठों का और कहानी समाप्त ही है। साथ ही उसमें कई एकरंगे तथा बहुरंगे चित्र भी दिए गए हैं। अनुवाद बड़ा ही सरल, सरस तथा सुंदर हो रहा है। पाठकों के सुबीते के लिये मूल्य भी बहुत कम रक्खा गया है अर्थात् ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखा लेने पर प्रत्येक खंड डाक-खर्च सहित ॥) की वी०पी० से भेजा जाता है। काग़ज़ की इस महँगी में इतनी सस्ती और ऐसी सचित्र पुस्तक दूसरी नहीं है।

हिंदी-पाठकों और पुस्तकालयवालों को यह सुअवसर कदापि न त्यागना चाहिए।

१५०
१५६

पता—लक्ष्मीविलास-प्रेस,
नं० १४, जगन्नाथदत्त लेन, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चित्र-सूची

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) रंगीन

(ख) व्यंग्य

(ग) सादे

वारांगना-रहस्य

इसमें वेश्याओं के समस्त भेद, उनकी पुरुषों को फँसाने की समस्त चालें, किस समय वे कैसा भाव बनाती हैं, महेफ़िल से किस तरह प्रेमियों को फँसा लाती हैं, उन्हें आरंभ से कैसी शिक्षा दी जाती है, आँखों का कटाक्ष, भावों का परिवर्तन—किस समय किस ढंग से उन्हें काम करना पड़ता है; दो प्रेमियों के एकसाथ उपस्थित रहने पर वे क्या करती हैं, नौकर तथा स्वतंत्र वेश्याओं के कार्यों का भेद, धूर्त पुरुष किस तरह वेश्याओं के जाल में न फँसकर उन्हें ही फँसा लेते हैं, वेश्याओं की जवानी से लेकर बुढ़ापे तक के सभी कार्य, अनेक षड्यंत्र कितने ही वे प्रपंच जो रहस्य होते हैं, लिखे हैं। साथ ही वेश्यासक्त स्वामी की सती, साध्वी, सुशीला का अद्भुत चरित्र देखकर आप दंग रह जायँगे। बड़ी ही उपदेश-प्रद और चित्ताकर्षक पुस्तक है। जितने प्रकार की वेश्याएँ होती हैं—सबका पूरा-पूरा हाल इसमें मिलेगा। मूल्य ६ भागों का ४॥) सजिल्द ५)

अन्य पुस्तकें—भीमसिंह सचित्र १॥), पृथ्वीराज १), सिकंदरशाह १॥=), ध्रुव-चरित्र ।=), महात्मा गांधी १)

पता—पाठक ऐंड कंपनी, नं० ५७ वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू कुँवर सिंह

जगदीशपुर-निवासी उज्जन-क्षत्रियकुलतिलक बाबू कुँवर सिंहकी यह सुविस्तृत जीवनी है। इस पुस्तकमें महाराजा विक्रमादित्यसे लेकर सन् १८५७के गदर और बाबू अमर सिंहके देहान्त-कालतकका इतिहास है। ऐतिहासिक पुस्तकोंके सिवा हफ्तों बाबू साहबकी जन्मभूमिमें रह कर इसका सामग्री-संग्रह किया गया है। इसमें दस रङ्गबिरङ्गे चित्र दिये गये हैं। बाबू साहबका प्रसिद्ध तिनरङ्गा शिकारी चित्र भी जिल्द पर है। बाबू कुँवर सिंहके जिस असली चित्रका दर्शन किसी भी ऐतिहासिकको नहीं हुआ था, वह भी बड़े परिश्रम और व्ययसे प्राप्त कर इस पुस्तकमें दे दिया गया है। इसके सिवा रेशमी जिल्दपर दुरङ्गा रैपर और बुक मार्क भी दिये गये हैं। आज तक हिन्दीकी किसी भी पुस्तककी ऐसी सजावट नहीं हुई है। सचमुच इससे आपकी लाइब्रेरी जगमगा उठेगी। आज ही आर्डर दीजिये, नहीं तो दूसरे संस्करण तक पछताना पड़ेगा। इसके भूमिका-लेखक हैं आल इण्डिया कांग्रेस कमिटीके जेनरल सेक्रेटरी बाबू राजेन्द्रप्रसादजी एम० ए०, एम० एल०। केवल लागत भर मूल्य २॥) है।

मैनेजर, भारतीपुस्तकमाला, २२, सरकार लेन, कलकत्ता।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

111019

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar


Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri